।। शिवशिवासंवादात्मकम् ।।

महानिर्वाणतन्त्रम्

ॐ

अजय कुमार उत्तम

पुस्तकालय
परिग्रहण सं० 23121
दि० 26.03.07
नई दिल्ली

शिवशिवासंवादात्मक

महानिर्वाणतन्त्रम्

कुलावधूत हरिहरानन्दभारतीकृत
संस्कृत टीका तथा "पद्मा" हिन्दी व्याख्या

'Forwarded Free of Cost With
The Compliments of Rashtriya
Sanskrit Sansthan, New Delhi

सम्पादक

अजय कुमार उत्तम

पुस्तकालय
परिग्रहण सं० 23121
दि० 26.03.07
नई दिल्ली

प्रकाशक :

भारतीय विद्या संस्थान

वाराणसी - 221002

प्रकाशक :

भारतीय विद्या संस्थान

(प्रकाशक एवं पुस्तक विक्रेता)

सी. २७/५९, जगतगंज, वाराणसी-२२१००२

❖

ISBN - 81 - 87415 - 66 - 5

संस्करण - प्रथम : सन् २००६

मूल्य : ५००.००

❖

अक्षर संयोजक :

ज्योति कम्प्यूटर्स

जैतपुरा, वाराणसी-२२१००१

समर्पणम्

परमपूज्य सद्गुरुदेव

परमहंस स्वामी निखिलेश्वरानन्द

के

दिव्य चरण कमलों

में

समर्पित !

– अजय कुमार उत्तम

सम्पादकीय

महानिर्वाण तन्त्र तन्त्रशास्त्र का एक महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ है। ''महासिद्धसार तन्त्र'' के अनुसार इसका सम्बन्ध 'रथक्रान्त' से है। यहाँ पर ध्यान देने की बात है पृथ्वी की क्रान्तिरेखा के अनुसार सम्पूर्ण प्राचीन भारत को तीन भागों में बाँटा गया था—अश्वक्रान्त, विष्णुकान्त तथा रथक्रान्त। प्रत्येक भाग में १४ तंत्रों की गणना की गयी है। इस प्रकार कुल १९२ तंत्र माने गये हैं।

महानिर्वाण तन्त्र का सर्वप्रथम प्रकाशन ''आदि ब्रह्मसमाज'' द्वारा सन् १८७६ई० में किया गया। इसके सम्पादक श्री आनन्द चन्द्र वेदान्तवागीश थे। यह महानिर्वाण तंत्र का प्रथम खण्ड था, जिसमें चौदह उल्लास हैं। आदि ब्रह्म समाज की समस्त शिक्षाएँ इसी ग्रन्थ के आधार पर तैयार की गयी थी। इस खण्ड की संस्कृत टीका स्वामी हरिहरानन्द भारती ने लिखी, जिसकी पाण्डुलिपि उनके शिष्य तथा ब्रह्मसमाज के संस्थापक राजाराम मोहनराय के हाथ की लिखी उपलब्ध थी। संस्कृत टीका को भी मूल ग्रन्थ के साथ प्रकाशित किया गया था। यह ग्रन्थ आज भी उपलब्ध है जिसे आर्थर एवलान (सर जान वुडरफ) ने १९२९ ई० में पुनः प्रकाशित कराया था। प्रस्तुत 'पद्मा' हिन्दी व्याख्या का आधार भी यही ग्रन्थ है।

इसके उपरान्त १८८६ई० में श्रीकृष्णगोपाल भक्त ने श्री जगन्मोहन तर्कालङ्कार से सम्पादित करा कर भारती की संस्कृत टीका, बङ्गानुवाद तथा तर्कालङ्कार की व्याख्यात्मक टिप्पणियों के साथ प्रकाशित कराया। १८८६ ई० में ही वाराणसी की दण्डी सभा के श्री शतानन्द सरस्वती द्वारा ग्रन्थ का प्रकाशन कराया गया। किन्हीं शङ्कराचार्य द्वारा इसकी आध्यात्मिक व्याख्यान एवं बंगानुवाद, भारती तथा तर्कालङ्कार की टीकाओं की आलोचना सहित प्रकाशित कराया। यह ग्रन्थ छठे उल्लास के १५८वें श्लोक तक ही प्रकाशित हो पाया।

पं० जीवानन्द विद्यासागर ने सर्वप्रथम मूल तथा संस्कृत टीका को देवनागरी लिपि में प्रकाशित कराया।

सन् १८९१ ई० में 'बंगवासी' प्रेस कलकत्ता के श्री बिहारी लाल सरकार ने इस ग्रन्थ को बंगानुवाद सहित प्रकाशित किया।

श्री वेंकटेश्वर प्रेस मुम्बई द्वारा १९०३ई० में पं० बलदेव प्रसाद मिश्र कृत हिन्दी भाषा टीका सहित इस तन्त्र का प्रकाशन किया गया।

१९०६ में श्री श्यामाचरण कविरत्न ने मूल एवं बङ्गानुवाद के साथ प्रकाशित किया।

इस ग्रन्थ का पूर्ण अंग्रेजी भावानुवाद 'ग्रेट लिबरेशन' के नाम से आर्थर एवलान तांत्रिक ने प्रकाशित कराया। साहित्य में इस ग्रन्थ का विवरण इस प्रकार है–

१. एशियाटिक सोसायटी बंगाल सूची पत्र, संख्य ६०२९- प्रथम भाग के १९ पटल इसका प्रकाशन हो चुका है।

२. राजेन्द्र लाल मित्र की संस्कृत पुस्तकें, संख्या २८९-आद्या सदाशिव के संवादरूप में पूर्वकाण्ड मात्र, जिसमें १४ उल्लास हैं। विषय है-भगवती आद्या महादेव से 'जीवों के निस्तार' का दशाक्षरमात्र, कलश स्थापन, तत्त्वसंस्कार, श्रीपात्र स्थापन, होम, चक्रानुष्ठान, कुलतन्त्र, अनिष्टकारी पापों का प्रायश्चित आदि ।

३. वंगीय साहित्य परिषद सूत्रीपत्र, संख्या १२९-अपूर्ण

४. कलकत्ता संस्कृत कालेज पुस्तकालय सूची पत्र संख्या ५५-आद्यासदाशिव के सन्दर्भ में उत्तरार्द्ध मात्र, जिसमें १४ उल्लास है। विषय है—कलियुग में पतित जीवों का उद्धार कैसे हो, परब्रह्मोपासना, उपासना विधि, प्रकृतिसाधना, मन्त्रों के उद्धार संस्कार आदि। पात्र स्थापन होम, चक्रानुष्ठान, कुलतत्त्व, वर्णाश्रम के आचार, कुशकण्डिका दश संस्कार, पूर्णाभिषेकादि, अपने पराये पापों का प्रायश्चित, सनातन व्यवहार, वास्तु, गृह-त्याग, शिव-लिङ्गस्थापनादि।

५. जम्मू काश्मीर महाराज पुस्तकालय सूत्रीपत्र संख्या १०६६-सदाशिव प्रोक्त।

६. राजस्थान पुरातत्त्व ग्रन्थ सूची, संख्या ६२६२ मात्र पूर्वकाण्ड।

७. 'प्राणतोषिणी तंत्र' और 'सर्वोल्लास तन्त्र' में महानिर्वाण तन्त्र के वचनों को उद्धृत किया गया है।

वर्तमान समय में आर्थर एवलांन द्वारा सम्पादित संस्करण तथा पण्डित बलदेव प्रसाद मिश्र कृत भाषा टीका सहित खेमराज श्री कृष्णदास प्रकाशन मुम्बई संस्करण उपलब्ध है।

वर्तमान समय में जो संस्करण उपलब्ध है वे सभी अधूरे हैं और केवल १४ उल्लास (पूर्वकाण्ड मात्र) तक ही प्रकाशित है। जिसका संकेत चौदहवे उल्लास के अन्त में हरिहरानन्दभारती ने अपनी संस्कृत टीका में किया है। यद्यपि म०म० गोपीनाथ कविराज ने १९ पटल की एक पाण्डुलिपि का वर्णन किया है। जो एशियाटिक सोसायटी बंगाल में उपलब्ध है। उन्होंने लिखा है कि इसका प्रकाशन हो चुका है, किन्तु यह संस्करण अभी तक प्रकाश में आया नहीं है। सर्वोल्लास तन्त्र में भी प्रकाशित महानिर्वाणतन्त्र के वचन नहीं पाये जाते ।

इसका पूर्वकाण्ड ही प्रकाशित है। इसी का हिन्दी अनुवाद प्रकाशित किया जा रहा है। साथ में हरिहरानन्द भारती की संस्कृत टीका को भी दे दिया गया है। इसमें जो विषय हैं उनकी विषयसूची में विषयानुक्रमणिका में दे दी है।

इस ग्रन्थ को भारतीय विद्या संस्थान के श्री कुलदीप जैन ने अत्यन्त उत्साह एवं रुचि के साथ प्रकाशित किया है। मैं आशा करता हूँ कि यह ग्रन्थ तन्त्रसाधकों एवं तन्त्र में रुचि रखने वाले पाठकों को पसन्द आएगा ।

मझलेगाँव (शाहजहाँपुर)
विजया दशमी २०५९ वि०

आपका ही
अजय कुमार उत्तम

॥ श्रीगुरुचरणकमलेभ्योनमः ॥

महानिर्वाणतन्त्रस्य विषयानुक्रमणिका

प्रथमोल्लासे

कैलासवर्णनम् १
सदाशिववर्णनम् २
सत्ययुगाचारव्यवहारकीर्त्तनम् ५
त्रेतायुगाचारव्यवहारकीर्त्तनम् ७
द्वापरयुगाचारव्यवहारकीर्त्तनम् ८
कलियुगाचार्यव्यवहारकीर्तनम् ९
कलियुगेपशुदिव्यभावयोर्निषेधः ११
पशुभाव लक्षणम् ११
दिव्यभावलक्षणम् १२
वीरसाधने लोभिजनपतनाशङ्का १४
मद्यपानदोषकीर्त्तनम् १४
कलिजात दुर्वृत्तमानवानामुद्धारोपायप्रश्नः १४

द्वितीयोल्लासे

कलियुगे जीवानां निस्तारोपायकथनम् १५-२०
कलियुगे तन्त्रमार्गेणैव निस्तारः १६
कलौ वेदमन्त्राः निर्वीर्याः १७
तन्त्रदेवतासम्प्रदायभेदकारणम् १९
महानिर्वाणतन्त्रप्रशंसा २०
ब्रह्मोपासनक्रम २०-२४
परब्रह्मप्रशंसा २१

तृतीयोल्लासे

परब्रह्मोपासनोदेशः २५-५२
ब्रह्मलक्षणम् २६
ब्रह्ममन्त्रोद्धारः २७
ब्रह्ममन्त्रार्थः ब्रह्ममन्त्रचैतन्यम् ३१
बहुविधब्रह्ममन्त्राः ३२
ऋष्यादिकत्रिविधन्यासः ३३
प्राणायामः ३४
ब्रह्मध्यानम् ३५
मानसपूजा, बाह्यपूजा ३६
पञ्चरत्नस्तवः ३७
जगन्मङ्गलकवचम् ३९
ब्रह्मप्रणामः ४०
महाप्रसादग्रहणम् प्रसादस्य माहात्म्यम् ४०
ब्रह्ममन्त्रिणः कृत्याकृतम् ४३
ब्राह्मणां सन्ध्याकृत्यम् ४४
ब्राह्मणां प्रातः कृत्यम्, ४५
ब्रह्ममन्त्रपुरश्चरणम् ४६
ब्रह्मदीक्षादिमन्त्रसाधयोरावश्यकता ४६
शाक्तवैष्णवादीनां ब्रह्ममन्त्रग्रहणे-अधिकार ५०
अत्र गुरुविचारानावश्यकता ५१

चतुर्थोल्लासे

प्रकृतेः स्वरूपकथनम् ५५
कलौ पशुदिव्यभावयोर्निषेध ५६
वीरसाधने प्रत्यक्षफलम् ५६
ब्रह्मज्ञानिनां पवित्रापवित्रविचारो नास्ति ५६
शक्तित एव सृष्टिस्थितिसंहाराः ५७
महाकालनामयौगिकार्थः ५८
आद्याकालिकानामयौगिकार्थः ५८
कौलप्रशंसा ५९
प्रबलकलिलक्षणम् ६०
सुरापानादिविधिः ६३
सत्कौललक्षणम् ६३
कलौ संकल्पत एव श्रेयः ६३
कलिकिङ्करनिरूपणम् ६४

सत्यनिष्ठायाः प्रशंसा	६४	अन्तर्मातृकान्यासः	९४
कुलाचारप्रकाशे युक्तिः	६५	बाह्यमातृकान्यासः	९४-९५
संस्कारादि कृत्यानि तन्त्र-		प्राणायामः	९६
वर्त्मनैव कर्त्तव्यानि	६६	ऋष्यादिन्यासः	९७
शिवोक्ताचार एव प्रकृतिसाधनम्	६८	व्यापकन्यासः कराङ्गन्यासः	९७
पञ्चमोल्लासे		पीठन्यासः	९८
आद्याकालिकासाधनप्रशंसा, मन्त्रोद्धारः	७१	अष्टनायिकाष्टभैरवनामानि	१००
मन्त्रप्रकारभेदा	७१	आद्याकालिकास्थूलध्यानम्	१०२
पञ्चतत्त्वं विना शक्तिपूजा निष्फला	७४	मानसीपूजा	१०२
प्रातः कृत्यम्	७४	विशेषार्घ्यसंस्कारः	१०६
गुरुध्यानम्	७५	यन्त्रनिर्माणम्	१०९
गुरुप्रणामः इष्टदेव प्रणामः	७५	पीठदेवतापूजा	१११
स्नानविधिः	७६	घटनिर्माणविधिः	१११
शिखाबन्धनादि	७८	घटभेदे फलभेदकथनम्	११२
तान्त्रिकी सन्ध्या	७८	सुराशोधनम्	११३
त्रिविधगायत्रीकथनम्	८०	शुक्रशापमोचनम्	११४
देवीगायत्रीकथनम्	८१	हंसवती ऋक्	११४
तर्पणम्	८२	ब्रह्मशापमोचनम्	११५
देव्यार्घ्यदानम्	८२	कृष्णशापमोचनम्	११५
यागमण्डपकथनम्	८३	आनन्दभैरवपूजा, आनन्दभैरवीपूजा	११५
पाणिपादप्रक्षालनम्	८३	मांसशोधनम्	११७
सामान्यर्घ्यस्थापनम्	८३	मत्स्यशोधनम् , मुद्राशोधनम्	११८
द्वारदेवतापूजा	८४	**षष्ठोल्लासे**	
विघ्ननिवारणम्	८५	सुराभेदकथनम्	१२०
आसनस्थापनम्	८५	मांसभेदकथनम्, बलिपशुनिरूपणम्	१२१
विजयासोधनम्	८६	मत्स्यभेदः मुद्राभेदः	१२१
विजयातर्पणम्	८७	शुद्धिस्वरूपकथनम्, शुद्धिंविना	१२२
पूजाद्रव्यस्थापनम्	८८	सुधापाननिषेधः	१२२
पूजाद्रव्यप्रोक्षणम्, वह्निप्राकारचिन्तनम्	८९	शेषतत्त्वम्, शक्तिशोधनम्	१२२
करसोधनम्, दिग्बन्धनम्	८९	श्रीपात्रस्थापनम्	१२३
भूतशुद्धिः	८९	नवपात्राणि	१३०
जीवन्यासः मातृकान्यासः	९१	पात्रस्थापनविधिः तर्पणविधिः	१३०
मातृकासरस्वतीध्यानम्	९२	वटुकादिबलिः	१३२

सर्वभूतबलि: १३३
आद्याकालिकाया: प्रकारान्तरध्यानम् १३४
तस्या आवाहनादि १३५
देवताशोधनम् १३५
षोडशोपचार: उपचारप्रदानमन्त्रा: १३७
गुरुपंक्तिपूजादि १४१
आवरणदेवतापूजा १४२
बलिदान विधि: १४३
खड्गपूजा १४४
पशुच्छेदनविधि: १४५
रुधिरबलि: सदीपशीर्षबलि: १४५
होममण्डलसंस्कारादि १४६
अग्निप्रज्वालमन्त्र: १५०
पूर्णाहुति १५४
जपक्रम १५५
मालापूजा, तर्पणम् १५७
जपसमर्पणम् स्तवपाठादि १५७
आत्मसमर्पणम् १५८
विसर्जनम् १५९
निर्माल्यवासिनीपूजा १५९
पानपात्रनिर्माणविधि १५९
पानपात्रशुद्धिपात्रस्थापननियम: १६०
परिवेशनप्रकार १६०
सुधापाननियम: १६१
कुलस्त्रीगृहस्थसाधकानां सुधापानविधि: १६१
प्रसादभोजने उच्छिष्टविचारो नास्ति १६१

सप्तमोल्लासे

ककारकूटस्तवमाहात्म्यम् १६३
ऋष्यादिशतनामस्तोतम् १६३
ककारकूटकीर्त्तनमफलम् १६४
त्रैलोक्यविजयकवचस्य ऋष्यादि १७०
त्रैलोक्यविजयकवचम् १७०
त्रैलोक्यविजयकवचपाठफलम् १७१
संक्षेपपूजा, संक्षेपपुरश्चरणम् १७३
कुललक्षणं कुलप्रचारनिरूपणञ्च १७५
प्रथमतत्त्वलक्षणम् द्वितीयतत्त्वलक्षणम् १७७
तृतीयतत्त्वलक्षणम् चतुर्थतत्त्वलक्षणम् १७७
पञ्चमतत्त्वलक्षणम् पञ्चतत्त्वलक्षणम् १७८

अष्टमोल्लासे

पञ्चवर्णा: १७९
द्विविधाश्रम: १८०
गृहस्थाश्रम: भिक्षुकाश्रम: १८०
कलियुगे सन्यास: १८१
उक्ताश्रमयो: सर्वेषामेव अधिकार: १८१
आश्रमकालनिरूपणम् १८२
गृहस्थकर्त्तव्यानि १८२
अन्तर्बाह्यशौचाशौचनिरूपणम् १८९
सन्ध्याविधि: १९१
वैदिकतान्त्रिकोभयसन्याकरणे युक्ति १९३
कलावुपवासप्रतिनिधि: १९४
पुण्यकालनिर्देश: १९४
पुण्यतीर्थनिर्देश: १९४
पितृशुश्रुषादिकर्मणां मुख्यत्वम् १९५
योषिद्धर्मकथनम् १९५
योषितां विवाहे प्रशस्तकाल: १९६
अभक्ष्यमांसनिर्णय: १९६
निरामिषभोजनविधि: १९६
विप्रादिपञ्चवर्णानां वृत्तिनिर्णय: १९७
ब्राह्मणकर्त्तव्यानि १९७
क्षत्रियकर्त्तव्यानि १९८
शुद्रकर्त्तव्यानि २०१
भैरवीचक्रकथनम् २०२
घटस्थापनम्, संक्षेपपूजा २०३
आनन्दभैरवीध्यानम् २०४
आनन्दभैरवध्यानम् २०५
सुराप्रतिनिधिकथनम् २०५

शैव विवाहः	२०७	द्रव्यस्थापनम्	२३२
चक्रस्थल माहात्म्यम्	२०७	धाराहोमः	२३४
चक्रस्थसाधनकर्त्तव्यानि	२०८	प्रकृतहोमः	२३५
चक्रस्थसाधकानां शिवत्वम्	२०९	स्विष्टकृतहोमः	२३६
कलौ कुलधर्मगोपने दोषः	२१०	व्याहृतिहोमः	२३६
तत्त्वचक्रकथनम्, तत्र अधिकारिता	२१०	पूर्णाहुतिः	२३६
तत्त्वशोधनमन्त्रः	२११	शान्तिकर्म	२३८
चक्रानुष्ठेयानि	२१२	अग्निप्रार्थना,	
सन्यासधर्मकथनम्	२१३	अग्निविसर्जनम्	२३८-२३९
तत्कानियमः	२१३	दक्षिणा, तिलकधारणम्	२३९-२४०
सर्ववर्णाधिकारिता	२१४	पुष्पधारणम्	२४०
संन्यासग्रहण कर्त्तव्यानि	२१४	चरुकर्म	२४०
गुरुप्रार्थना	२१४	जानुहोमः	२४२
ऋणत्रयमोचनम्	२१५	ऋतुसंस्कारः	२४२
आत्मश्राद्धक्रिया	२१६	गर्भाधानम्	२४७
वह्निस्थापनम्	२१८	पुंसवनम्	२४९
साकल्यहोमः व्याहृतिहोमः	२१८	पञ्चामृतम्	२५१
प्राणहोमः तत्त्वहोमः	२१८	सीमन्तोन्नयनम्	२५१
उपवीत होमः शिखाहुतिः	२२०	जातकर्म	२५२
"तत्त्वमसि" महावाक्योपदेशः	२२१	नामकरणम्	२५३
शिष्यप्रणामः	२२१	निष्क्रमणम्	२५५
ब्रह्मज्ञस्य सन्न्यासः अवधूताचारकथनम्	२२२	अन्नप्राशनम्	२५६
अवधूतदेहदाहनिषेधः	२२५	चूडाकरणम्	२५८
चित्तशुद्ध्यर्थमेव उपसनादि	२२५	कर्णवेधः	२५९
कुलावधूतमाहात्म्यकीर्त्तनम्	२२५	उपनयनम्	२६१
नवमोल्लासे		गायत्री व्याख्या	२६७
दशविधसंस्कारकथनम्	२२७	गार्हस्थ्याश्रमग्रहणम्	२६८
अस्यावश्यकत्त्वे हेतुः	२२७	विवाहः	२६९-२७०
कुशण्डिका	२२८	कन्यासंप्रदानम्	२७३
स्थण्डिलरचनम् अग्निस्थापनम्	२२८	विवाहान्तकुशण्डिका	२७५
अग्निध्यानम्	२३०	दारान्तरपरिग्रहे प्रथमाया अनुमतिः	२७७
अग्ने सप्तजिह्वाः	२३१	शैवविवाह	२७७
ब्रह्मस्थापनम्	२३१	ब्राह्मीसन्तत्या दार्याहत्त्वम्	२७७

शैवविवाहस्य द्वैविध्यम् २७७
शैवापत्यजाति निर्णय: २७९
शैवविवाहे हेतु: २७९

दशमोल्लासे

वृद्धिश्राद्धे व्यवस्था २८१
वृद्धिश्राद्धप्रयोग: २८२
पार्वणश्राद्धविधानम् २९६-२९७
श्राद्धविषये व्यवस्था २९७
एकोद्दिष्टश्राद्धविधानम् २९७
प्रेतश्राद्धविधानम् २९८
अशौचव्यवस्था २९९
शवदाहव्यवस्था २९९
सहमरणनिषेध: २९९
मृतब्रह्मोपासकदेहस्थापन व्यवस्था २९९
अन्त्येष्टिक्रिया ३००
आद्यश्राद्धाधिकारिण: ३००
तिलकाञ्चनोत्सर्ग: ३०१
शय्यादिदानम् ३०१
वृषोत्सर्ग: ३०२
आद्यश्राद्धविधि: ३०२
कौलपूजाप्रशंसा ३०२
शुभकर्मदिननिर्णय: ३०२
गृहप्रवेशनियम: संक्षेपयात्रा ३०३
दुर्गोत्सवादौ कौलकृत्यम् ३०३
कौलमाहात्म्यम् ३०३
पूर्णाभिषेक: ३०३
पूर्णाभिषेके अधिकारि गुर्वन्तराश्रयणम् ३०४
पूर्णाभिषेकाङ्ग गणेशपूजा ३०५
गणेपूजाध्यानादि ३०५
पूर्णाभिषेकसंकल्प: ३०८
गुरुवरणम् ३०८
यागमण्डपसंस्कारादि ३०९
घटस्थापनम् ३०९
पात्रस्थापनम् ३१०
तर्पणविधि: इष्टपूजा,
कुमारीपूजा ३११-३१२
पूर्णाभिषेके
शक्तिसाधकसम्मति ३११-३१२
पूर्णाभिषेक मन्त्र: ३१३
पशुमुखलब्धमन्त्रस्य पुनर्ग्रहणम् ३१५
शिष्यनामकरणम् ३१६
गुरुदक्षिणादिकम् ३१६
अमृतदाने विधि: ३१७
प्रसादपरिवेशनं चक्रानुष्ठानञ्च ३१७
पूर्णाभिषेके नवरात्रादिकल्पभेद: ३१७
पूर्णाभिषेकिगुरो: श्रेष्ठत्वम् ३१७
शाक्ताभिषिक्तस्य चक्रेश्वरतानिषेध: ३१९
कुलद्रव्यादिनिन्दायां दोष: ३१९
ब्रह्मनिष्ठकौलानां कृत्याकृत्याभाव: ३१९
सर्वत्रैव ब्रह्मपूजया सिद्धि: ३१९
सत्कौललक्षणम् ३२०

एकादशोल्लासे

देवीस्तुति: ३२१
स्वपरानिष्टभेदेन पापस्य द्वैविधम् ३२४
द्विविधपापमोचने द्विविधोपाय: ३२५
राजदण्डविधि: ३२५
कृतपापस्य राज्ञ: दण्डविधानम् ३२५
लघुगुरुपादयोरपि विपरीतदण्ड-
विधाने हेतु: ३२६
धार्मिक राजानं प्रति प्रजाकर्त्तव्यम् ३२७
अतिपातकनिरूपणं दण्डश्च ३२८
व्यभिचारे दण्ड: ३२८
वारनारी पश्वादिगमने दण्ड: ३२९
ज्ञानत: पापुगमने दण्ड: ३२९-३३०
बलात्कारे दण्ड: ३३०
परस्त्रीलक्षणम् ३३१

कामतः परस्त्रियः परपुरुषस्य-दर्शने दण्ड	३३२
गुह्याङ्गदर्शनादौ दण्डः	३३२
स्वगुह्याङ्ग प्रदर्शने दण्डः	३३२
पत्नीव्यभिचारप्रामाणाभावे-पतिकर्त्तव्यम्	३३३
उपपतौ रममाणां पत्नी पश्यन् तपोर्विनाश दण्डाभाव	३३३
मृतपतिकायाः कर्तव्यनिरूपणम्	३३४
मातृपितृपत्निबन्धुनिरूपणम्	३३५
ग्रासाच्छादनार्हनिरूपणम्	३३५
पत्नीं प्रति दुर्वाक्यादिकथने दण्डः	३३६
भार्यायां मातृत्वाद्यारोपे दण्डः	३३६
स्त्रीणां पुनरुद्धारविधिः	३३६
आरजपुत्रनिरूपणम्	३३७
भ्रूणवधे दण्डः	३३७
मनुष्यवधे दण्डविधिः	३३७
गुरुजनप्रहरणादौ दण्डः	३३८
राजद्रोहिहनने दण्डाभावः	३३९
नरघातकपाप निरूपणम्	३३९
नरवधानमनुष्यवधे दण्डः	३४०
कुलाचारदूषकानां दण्डः	३४०
सन्तानविक्रयादौ दण्डः	३४०
क्षतिपूरणः दण्डः	३४१
चौर्यविशेषे दण्डविशेषः	३४२
कूटसाक्षिणोदण्डः	३४२
ग्राह्याग्राह्यसाक्ष्यनिरूपणम्	३४२
कल्पितलिपिकरणे दण्डः	३४३
असत्यकथने दण्डः	३४४
शपथस्वरूपम्	३४४
शपथं कृत्वा मिथ्याभाषणे पापम्	३४४
अङ्गीकारपालनम्	३४५
सुरामाहात्यम्	३४५
पञ्चतत्त्वसेवनमाहात्म्यम्	३४६
अवैधसुरापाने दोषः	३४६
सुरासक्तानां दण्डः	
अतिपाननिरूपणम्	३४७
मदमत्तानां दण्डः	३४८
अतिपानासक्तकौलः पशुः	३४८
ब्राह्मभार्यायाः सुरापान निषेधः	३४३
असंस्कृतपञ्चतत्त्वसेवने दण्डः	३४९
अवैधमांसादिसेवने प्रायश्चितम्	३५०
चक्रार्पितनिषिद्धान्नभक्षणे दोषाभाव	३५०
स्पर्शदोषाभावनिरूपणम्	३५१
अवैधपशुवधे पापम्	३५१
गवादिहननप्रायश्चितम्	३५२
मृगमायां वैधपशुवधे दोषाभावः	३५३
व्रतभङ्गे महागुरुनिन्दायाञ्च प्रायश्चितम्	३५४
उपवास नियमः	३५५
परनिन्दायां तथा आत्मश्लाघायां प्रायश्चितम्	३५६
महारोगादौ प्रायश्चितम्	३५६
दुष्टवापीकूपादिसंस्कारः	३५७
नीचवृत्तिद्विजप्रायश्चितम्	३५९

द्वादशोल्लासे

दायभागकथनम्	३६१-३६४

त्रयोदशोल्लासे

मूलप्रकृतेः रूप कल्पनायां युक्तिः	३९५
प्रतिमागृह जलाशयादि प्रतिष्ठाफलम्	३९७
वास्तुपुरुषपूजाविधिः	४०२
वास्तुमण्डलम्	४०२
वास्तुराक्षसध्यानम्	४०५
वास्तुदैत्यपूजने सर्वापच्छान्तिः	४०६
प्रतिष्ठादौ नवग्रहादेः पूजाविधिः	४०६
ग्रहयन्त्रम् तत्रपूजाविधिः	४०६

ग्रहाणां वर्णध्यानादि कथनम् ४०७
दिक्पालपूजादि ४०९
द्वारपालपूजा ४१०
ब्रह्मानन्तयोर्ध्यानकथनम् ४१०
ग्रहवर्णानुरूपं पुष्पादिदानविधिः ४१४
अग्नेः सप्तनामानि ४१४
सर्वकार्येषु देवार्चनापितृतर्पणं कर्त्तव्यम् ४१४
असंस्कृतजलाशयादिदाननिषेधः ४१५
काम्यकर्मणि संकल्पप्रयोजनम् ४१७
प्रोक्षणमन्त्रम् ४१५
कार्यभेदे देवविशेषपूजनम् ४१६
वास्तुयागविधिः ४१८
गणपतिध्यानम् ४१८
कूपसंस्कारः । ४२०
तडागद्युत्संर्गविधिः ४२१
गृहप्रतिष्ठा ४२४
देवगेहप्रतिष्ठा ४२४
देवपूजोपचाराः ४२५
उपचारनिवेदन मन्त्रम् ४२५
देवगेहप्रार्थना ४३५
वाहनदानमन्त्रम् ४३७
आरामसेत्वादि प्रतिष्ठाक्रमः ४३८
प्रतिमाङ्गे न्यासादि ४४२
भगवतीपूजनम् ४४३

चतुर्दशोल्लासे

अचलशिवलिङ्गप्रतिष्ठा प्रश्नः ४४६
शिवलिङ्गमाहात्म्यम् ४४७
अधिवासद्रव्याणि ४४९
सदाशिवध्यानम् ४५०
मन्त्रोद्धारः ४५१
वेदी शोधनम् ४५१
तत्रदेव्याःपूजा ४५२
देवीध्यानम् ४५२
बलिमन्त्रकथनम् ४५३
प्रतिष्ठादिनाकृत्यम् ४५४
गृहे लिङ्गस्थापनम् ४५५
प्रार्थनम् ४५६
प्राणप्रतिष्ठा, पूजा ४५७
अष्टमूर्तिपूजा ४५७
अनन्तरदिनकृत्यम् ४५९
लिङ्गस्थानान्तरकरणे निषेधः ४६०
पूजावाध्ये कर्त्तव्यम् ४६०
अन्यदुष्टदोषदुष्टे विधिः ४६०
महापीठादौ स्पर्शदोषाद्यभावः ४६२
कर्मक्षयान्मुक्तिः ४६३
तत्त्वज्ञानान्मुक्तिः ४६३
योगशब्दव्युत्पत्तिः ४६४
चतुर्विद्यावधूतलक्षणानि ४६६
ब्राह्मशैवावधूतयोः कर्त्तव्यकर्माणि ४६७
''ओं तत् सत'' मन्त्र माहात्म्यम् ४६८
पूर्णशैवावधूतस्य नित्यनैमित्तिकक्रियानधिकारः ४३९
पूर्णब्राह्मावधूतस्य सर्वकर्मण्यनाधिकारः ४७०
चतुर्विधावधूतमाहात्म्यकथनम् ४७०
सर्वेषां कुलाचारे अधिकारः ४७१
कुलधर्ममाहात्मयम् ४७२
महानिर्वाणतन्त्रस्यश्रेष्ठत्वम् ॥ ४७४

॥ श्री गुरुचरणकमलेभ्यो नमः

शिवशिवासंवादात्मक

महानिर्वाणतन्त्रम्

संस्कृत हिन्दी व्याख्या सहिता

प्रथमोल्लासः

गिरीन्द्रशिखरे रम्ये नानारत्नोपशोभिते ।
नानावृक्षलताकीर्णे नानापक्षिरवैर्युते ॥१॥

पद्या–कैलाश पर्वत का रमणीय शिखर अनेक प्रकार के रत्नों से सुशोभित, अनेकवृक्ष एवं लताओं तथा विविध पक्षियों के कलरव से गुंजायमान है ।

हरि०–ॐ नमो ब्रह्मणे ।

ॐ अहं ब्रह्मास्मि ब्रह्मैवाहमस्मि ।

कृत्वा षडाम्नायममेयशक्तिः सदाशिवः प्रेरित आदिशक्त्या ।
जगाद सेतुं कुलवारिराशेर्निर्वाणतन्त्रं महता समस्तम् ॥
स्मारं स्मारं परंब्रह्म नामं नामं गुरोः पदम् ।
निरपेक्षं वचः शम्भोर्विवृणोमि यथामति ॥

वेदादिबोधितसमस्त पुण्यकर्मोच्छेदकातिनिन्दितानन्तपापकर्मप्रवर्त्तककलियुगागमने सति परमात्मचिन्तनाधननुरक्तानां नाना विधपापकर्म्मप्रसक्तानां नराणां कथं निस्तारो भविष्यतीति सञ्चिन्तयन्ती पार्वती कैलासशिखरे तिष्ठन्तं कारुण्यवन्तं सदाशिवं प्रति तेषां निस्तारोपायमप्राक्षीदेतत्तदेवाह-गिरीन्द्र शिखर इत्यादिभिः। तत्र तस्मिन् गिरीन्द्रशिखरे पर्वताधिराजस्य कैलासस्य शृङ्गे स्थितं मौनधरं मौनिनं शिवं वीक्ष्य विलोक्य लोकानां हितकाम्यया जनानां हितेच्छया पार्वती देवी विनयावनता सती शिवमब्रवीदित्येकादशश्लोकस्थितैः पदैरन्वयः। मौनधरमित्यनेन कथानवरो दर्शितः। रम्ये इत्यादीनि सप्तम्यन्तानि त्रयोदशपदानि गिरीन्द्रशिखरे इत्यस्य विशेषणानि। चराचरजगद् गुरुमित्यादीनि द्वितीयान्तानि पदानि तु शिवमित्यस्येति बोद्धव्यम् । रम्यते क्रीडयते सिद्धचारणादिभिर्यत्र तद्रम्यं तस्मिन् । पोरदुपधादित्याधिकरणे यत्। नानारत्नोपशोभिते अनेकैः पद्मरागमरकतादिभिः रत्नैर्विराजिते। नानावृक्षलताकीर्णे अनेकैर्वृक्षैरनेकाभिर्लताश्च व्यापते। नानापक्षिरवैर्युते नानाविधानां पक्षिणां शब्दैर्युक्ते ॥१॥

सर्वर्त्तुकुसुममोदमोदिते सुमनोहरे ।
शैत्यसौगन्ध्यमान्द्याढ्यमरुद्भिरुपवीजिते ।।२।।

पद्मा–उस सुन्दर मनोहर कैलास शिखर में समस्त ऋतुयें सभी समय में उदित हो कर विविध प्रकार का पुष्प सौरभ फैलाती हैं जहां पर सदा ही शीतल, मंद एवं सुगन्धित पवन चला करता है ।

हरि०-सर्वर्त्तुकुसुममोदमोदिते सकलवसन्ताद्यृतुसम्बन्धिपुष्पसम्बन्धिभिरतिमनोहारिभिर्गन्धैः सुरभीकृते अतएव सुमनोहरे अतिमनोहारके शैत्येन सौगन्ध्येन मान्द्येन चाढ्यैः युक्तैः मरुद्भिर्वायुभिरुपवीजिते ।।२।।

अप्सरौगणसङ्गीतकलध्वनिनिनादिते ।
स्थिरच्छायद्रुमच्छायाच्छादिते स्निग्धमञ्जुले ।।३।।

पद्मा–अप्सराओं के संगीत की मधुर ध्वनि गूंजती रहती है। वहाँ के स्थिर एवं अचल वृक्षों की छाया से आच्छादित यह स्थान स्निग्ध एवं मनोहर है ।

हरि०–अप्सरोगणेत्यादि। अप्सरसां गणैः समूहैः सङ्गीतो यः कलध्वनिर्गम्भीरः शब्दस्तेन निनादिते शब्दिते। स्थिरा अचञ्चला छाया येषां द्रुमाणां तेषां छायाभिछादिते छन्ने। स्निग्धं चिक्कणञ्चतन्मञ्जुलं सुन्दरञ्चेति स्निग्धमञ्जुलम् तस्मिन् ।।३।।

मत्तकोकिलसन्दोहसङ्घुष्टविपिनान्तरे ।
सर्वदा स्वगणैः सार्द्धमृतुराजनिषेविते ।।४।।

पद्मा–अन्य वनों में सुन्दर मस्त कोयलों के झुण्ड मधुर शब्द कर रहे हैं। वनों में ऋतुराज वसन्त अपने सहयोगियों के साथ स्थित रहता है ।

हरि०–मत्तेत्यादि ! मत्तानां कोकिलानां सन्दोहेन समूहेन सङ्घुष्टं संशब्दितं विपिनान्तरं वनमध्यं यस्मिन् तस्मिन् । सर्वदा सर्वस्मिन् काले स्वगणैर्भ्रमरादिभिः सार्द्धमृतुराजेन वसन्तेन निषेविते ।।४।।

सिद्धचारणगन्धर्वगाणपत्यगणैर्वृत्ते ।
तत्र मौनधरं देवं चराचरजगद्गुरुम् ।।५।।

पद्मा–सिद्ध, चारण, गन्धर्व एवं गणेश गणों से वह स्थान घिरा रहता है। वहां पर चराचर जगत् के गुरु भगवान शिव मौन होकर स्थित हैं ।

हरि०–सिद्धेत्यादि । देवयोनिभिः सिद्धैः चारणैर्गन्धर्वैः गाणपत्य गणैर्गणपतिस्वामिकैर्गणैश्च। वृत्ते रुद्धे । देवं दीप्तिमन्तं । चराचरजगद्गुरुं चराणं जङ्गमानामचराणां स्थावराणाञ्च जगतां पितरम् ।।५।।

सदाशिवं सदानन्दं करुणामृतसागरम् ।
कर्पूरकुन्दधवलं शुद्धसत्त्वमयं विभुम् ।।६।।

पद्मा–जो सदा कल्याण प्रदायक, सदानन्द, करुणा व अमृत के सागर, कर्पूर और कुन्द पुष्प के समान श्वेत, विशुद्धसत्त्वगुणमय व विभु हैं ।

हरि०–सदेत्यादि । सदा सर्वदा शिव कल्याणं यस्य यस्माद्वा तं। सदा आनन्दः सत् सर्वदा स्थायी वा आनन्दो यस्य तं । सतः साधून् का आनन्दयति यः तं । करुणामृतसागर दयारूपस्य पीयूषस्य समुद्रं । कर्पूरकुन्दधवलं कर्पूरकुन्दवत् शुभ्रं। शुद्धसत्त्वमयं विमल-सत्त्वगुणप्रधानं। विभुं व्यापकम् ।।६।।

दिगम्बरं दीननाथं योगीन्द्रं योगिवल्लभम् ।
गङ्गाशीकरसंसिक्तजटामण्डलमण्डितम् ।।७।।

पद्मा–वे नग्न, दीनों के स्वामी, योगियों के ईश्वर तथा योगियों के प्रिय हैं। वे गंगाजल से भीगे हुये जटा-जूट से शोभित हो रहे हैं।

हरि०–दिगित्यादि। दिगेवाम्बरं वस्त्रं यस्य तं वस्त्ररहितमित्यर्थः। दीननाथं दरिद्राणां जनानां भर्त्तारं। योगीन्द्रं योगः परमात्मचिन्तनं तद्वत्सु श्रेष्ठ। योगिवल्लभं योगिनान्दयितं। योगिनो वल्लभाः प्रिया यस्येति वा तम् । गङ्गायाः शीकरैरितस्ततो विक्षिप्तैरम्बुकणैः संसिक्तेन जटामण्डलेन जटासमूहेन मण्डितम् ।।७।।

विभूतिभूषितं शान्तं व्यालमालं कपालिनम् ।
त्रिलोचनं त्रिलोकेशं त्रिशूलवरधारिणम् ।।८।।

पद्मा–भस्म से भूषित, अत्यन्त शान्त, सर्प की माला धारण किये हुये, नरकपाल धारी, त्रिनेत्रधारी, तीनों लोको के स्वामी, त्रिशूल व वरधारण करने वाले हैं।

हरि०–विभूतीत्यादि। विभूतिभूषितं भस्मभिरलङ्कृतं। शान्तं संयतान्तः करणं। व्यालाः सर्पा एव माला यस्य सः । कपालिनं नृकपालशालिनं। लोच्यते दृश्यते यैस्तानि लोचनानि नेत्राणि तानि त्रीणि यस्य तं। त्रिलोकेशं त्रयाणां लोकानामधिष्ठातारं। त्रिशूलवरधारिणं त्रिशूलेषु वरं त्रिशूलञ्च वरञ्च वा धर्त्तुशीलं यस्येति त्रिशूलवरधारी तम् ।।८।।

आशुतोषं ज्ञानमयं कैवल्यफलदायकम् ।
निर्विकल्पं निरातङ्कं निर्विशेषं निरञ्जनम् ।।९।।

पद्मा-वे शीघ्र प्रसन्न होने वाले, ज्ञानमय, मोक्ष फल प्रदान करने वाले, निर्विकल्प, आशङ्काहीन भेदरहित एवं निरंजन है ।

हरि०–आश्वित्यादि-आशु शीघ्रं तोषस्तुष्टिर्यस्य तम् । ज्ञानमयं ज्ञानं तत्त्वतः समस्त पदार्थविबोधस्तदात्मकम् । कैवल्य फलदायकं निर्वाणरूपस्य फलस्य दातारम् । निर्विकल्पं निर्गतो, विकल्पो विविधा कल्पना यस्मात् तम् । निरातङ्कं निर्गतः आतङ्कः तापशङ्का यस्मात् तम् । निर्विशेषं नानाविधभेदरहितम् । निरञ्जनं अविदुषामप्रत्यक्षम् ।।९।।

सर्वेषां हितकर्त्तारं देवदेवं निरामयम् ।
प्रसन्नवदनं वीक्ष्य लोकानां हितकाम्यया ।
विनयावनता देवी पार्वती शिवमब्रवीत् ।।१०।।

पद्मा–सबके कल्याणकारी, निरामय, देवों के देव, प्रसन्नमुख भगवान शिव को देखकर विनय से झुकी हुई देवी पार्वती ने लोक हित के लिये भगवान शिव से कहा ।

हरि०–सर्वेषामित्यादि। निरामयं निर्गत आमयो व्याधिर्यस्मात्तम् ।।१०।।

श्रीपार्वत्युवाच

देवदेव जगन्नाथ मन्नाथ करुणानिधे ।
त्वदधीनाऽस्मि देवेश तवाऽऽज्ञाकारिणी सदा ।।११।।
विनाऽऽज्ञया मया किञ्चिद्भाषितं नैव शक्यते ।
कृपावलेशो मयि चेत् स्नेहोऽस्ति यदि मां प्रति ।
तदा निवेद्यते किञ्चिन्मनसा यद्विचारितम् ।।१२।।

पद्या–हे देवों के देव ! जगत् के स्वामी, मेरे नाथ करुणनिधि ! मैं आपके अधीन हूं। मैं सदैव ही आपकी आज्ञा मानने वाली हूँ। बिना आपके आदेश के मैं कुछ भी कहने में समर्थ नहीं हूँ। यदि मेरे ऊपर आपकी थोड़ी भी कृपा हो और यदि मुझ पर स्नेह हो, तो मेरे मन में जो कुछ विचार हैं उन्हें मैं कहती हूँ ।

हरि०–पार्वती शिवं प्रति किमब्रवीदित्यपेक्षायामाह-श्रीपार्वत्युवाच। देव देवेत्यादि! हे देवे! देवानामिन्द्रादीनामपि नियन्तः यतोऽहं त्वदधीना तव वशीभुता सदा सर्वस्मिन् काले तवाऽऽज्ञाकारिणी चाऽस्मि। अतस्तवाज्ञया विना किञ्चिदपि भाषितुं नैव मया शक्यते।

त्वदन्यः संशयस्याऽस्य कस्त्रिलोक्यां महेश्वर ।
छेत्ता भवितुमर्हो वा सर्वज्ञः सर्वशास्त्रवित् ।।१३।।

पद्या–हे महेश्वर ! तीनों लोकों में आपके अतिरिक्त और कौन है जो मेरे संशय को दूर करने में समर्थ है? आप ही सर्वशास्त्र ज्ञाता एवं सर्वज्ञ हैं ।

हरि०–त्वदन्य इति। त्वत्तोऽन्यस्त्वदन्य इति पञ्चमीतत्पुरुषः। त्वदिति पञ्चम्यन्तं भिन्नं वा पदम् ।।१३।।

श्री सदाशिव उवाच

किमुच्यते महाप्राज्ञे कथ्यतां प्राणवल्लभे ।
यदकथ्यं गणेशेऽपि स्कन्दे सेनापतावपि ।।१४।।

पद्या–हे महाप्राज्ञे ! हे प्राणवल्लभे ! तुम क्या कहना चाहती हो, उसे कहो। जो बात मैंने गणेश और स्कन्द से नहीं कही है उसे भी मैं तुमसे कहूँगा ।

हरि०–पार्वत्या प्रष्टव्यमर्थमभिजिज्ञासुः श्री सदाशिव उवाच। किमुच्यते इत्यादि गणेशेऽपि स्कन्दे कार्त्तिकेये सेनापतावपीति व्याहरता भगवता महादेवेन तयोर्महावीरत्वेन मदतिप्रियत्वादतिगुह्यस्याप्यर्थस्य बलात् कारेणाप्यभिधायने योग्य त्वमस्तीति सूचितम् ।।१४।।

तवाग्रे कथयिष्यामि सुयोग्यमपि यद्भवेत् ।
किमस्ति त्रिषु लोकेषु गोपनीयं तवाग्रतः ।।१५।।

पद्या–तुम्हारे आगे मैं गोपनीय से भी गोपनीय विषय कहूँगा। तुम्हारे लिये त्रिलोक में क्या गोपनीय है ।

हरि०–तवाग्रेइति। तवाग्रतस्त्वदग्रे गोपनीयं त्रिष्वपि लोकेषु किं वस्त्वस्ति अपितु न किञ्चिदित्यर्थः। अग्रे इत्यग्रतः आद्यादिभ्य उपसंख्यानमिति सम्यन्तात् स्वार्थे तसिः।।१५।।

मम रुपाऽसि देवि त्वं न भेदोऽस्ति त्वया मम ।
सर्वज्ञा किं न जानासि त्वनभिज्ञेव पृच्छसि ।।१६।।
इति देववचः श्रुत्वा पार्वती हृष्टमानसा ।
विनयावता साध्वी परिपप्रच्छ शङ्करम् ।।१७।।

पद्या–हे देवि! तुम मेरा ही रुप हो, तुममें और मुझमें कोई भेद नहीं है। तुम सर्वज्ञ होकर भी क्यों अनभिज्ञ की भाँति पूछती हो?

भगवान शिव के इस प्रकार के वचन सुनकर हर्षित मन से साध्वी पार्वती ने विनय पूर्वक शङ्कर जी से पूछा ।

हरि०–मम रुपेत्यादि। रुप्यते रुपक्रिया विशिष्टा विधीयते इति रुपा। कर्मण्यच । मम रुपा मद्रूपशालिनीत्यर्थः। मत्स्वरुपेति पाठे तु मया सह समानमेकं रुपं यस्याः सा। अनभिज्ञेव अविदुषी इव ।।१६-१७।।

श्री आद्योवाच

भगवन्! सर्वभूतेश! सर्वधर्मविदां वर ।
कृपावता भगवता ब्रह्मान्तर्यामिना पुरा ।।१८।।

पद्या–श्री आद्या ने कहा-हे भगवन्! आप सभी प्राणियों के ईश्वर, समस्त धर्म ज्ञाताओं में श्रेष्ठ, सभी पर कृपा करने वाले, ऐश्वर्यशाली एवं अन्तर्यामी है ।

हरि०–पार्वती शङ्करं किं परिपप्रच्छेत्याकाङ्क्षायामाह श्री आद्योवाच भगवन्नित्यादि। हे भगवन् ऐश्वर्यादिशालिन् । सर्वभूतेश सर्वेषं भूतानां नियन्तः। यथा श्रुतिस्मृतिसंहिताद्युपदेशेन सत्यत्रेतादौ भवता लोका निस्तारिता एवं दुष्टकर्मप्रवर्त्तके पापिनि कलावपि केनाप्युपायेन दयावता भवतैव मनुष्या उद्धर्तव्या इत्याशयेनाह-कृपावतेत्यादि ।।१८।।

प्रकाशिताश्चतुर्वेदाः सर्वधर्मोपवृंहिताः ।
वर्णाश्रमादिनियमा यत्र चैव प्रतिष्ठिताः ।।१९।।

पद्या–आपने पूर्वकाल में ब्रह्मा का रुप धारण करके चारों वेद प्रकाशित किया है। जिनसे समस्त धर्मो में वृद्धि होकर वर्णाश्रम आदि के नियम प्रतिष्ठित हुये ।

हरि०–प्रकाशिता इत्यादि। सर्वे धर्मा उपवृंहिता वर्द्धिता येषु ते ।।१९।।

तदुक्तयोगयज्ञाद्यैः कर्मभिर्भुवि मानवाः ।
देवान् पितृन् प्रीणयन्तः पुण्यशीलाः कृते युगे ।।२०।।

पद्या–उन्हीं वेदों में कहे गये योग, यज्ञादि रूपी सभी कार्यों द्वारा पृथ्वी पर पुण्यवान् समस्त मनुष्यों ने कृत युग (सत्य युग) में समस्त देवताओं एवं पितरों को प्रसन्न किया ।

हरि०–तदुक्तेत्यादि। कृते युगे सत्ययुगे। भुवि पृथिव्याम् । पुण्यशीला मानवाः तदुक्तयोगयेज्ञाद्यैर्वेदभाषितैर्निस्तारोपापभूतैर्यज्ञादिभिः कर्मभिर्देवान् पितृंश्च प्रीणयन्तस्प्रसन्नाः आसन्निति पञ्चमश्लोकस्थितेन पदेनान्वयः ।।२०।।

स्वाध्यायध्यानतपसा दयादानैर्जितेन्द्रियाः ।
महाबला महावीर्य्या महासत्त्वपराक्रमाः ।।२१।।

पद्मा–(उस कृत युग में) मनुष्य स्वाध्याय, ध्यान, तपस्या, दया एवं दान के द्वारा जितेन्द्रिय थे। वे महाबली, अति वीर्यवान् एवं महासत्त्व पराक्रमी थे।

हरि०–**स्वाध्यायेत्यादि**। स्वाध्यायो वेदाध्ययनं ध्यानं परमात्मचिन्तनं तपः कृच्छ्रचान्द्रायणादि दया निष्कारणपरदुःखनाशेच्छा दानं न्यायार्जितस्य धनादेः पात्रेऽर्पणं तैः सर्वैर्विशिष्ट मानवा आसन्। जितेन्द्रिया इत्यादीनां सर्वेषां जसन्तानां पदानामासन्नित्यत्रान्वयो विधातव्यः। जितेन्द्रिया वशीकृत चक्षुरादयः। महाबला महासामर्थ्याः। स्थौल्यसामर्थ्यसैन्येषु बलमित्यमरः। महावीर्य्या, महाप्रभावाः महातेजसो वा। वीर्य्यं प्रभावे शुक्रे च तेजः सामर्थ्ययोरपीति मेदिनी महान्तौ सत्त्वपराक्रमौ व्यवसायशौर्य्ये येषामन्ते महासत्त्वपराक्रमाः ॥२१॥

देवायतनगा मर्त्या देवकल्पा दृढव्रताः ।
सत्यधर्मापराः सर्वे साधवः सत्यवादिनः ।।२२।।

पद्मा–वे मानव मरणशील धर्म के होने पर भी स्वर्गादि जाने में समर्थ, देवतुल्य एवं नियम पालन करने में दृढ़ व निश्चयी थे। सभी मनुष्य सरल, सत्यधर्म, परायण एवं सत्यवादी थे।

हरि०–**देवायतनेत्यादि**। देवायतनगा देवतामन्दिरगामिनः। मर्त्त्या मरणशीला अपि देवकल्पा इव दूना देवाः देवतुल्या इत्यर्थः। दृढं व्रतं नियमो येषामन्ते। साधवः स्वस्वधर्मवर्त्तिनः। सत्यवादिनः सत्यं यथार्थाभिधानं तस्य वक्तारः॥२२॥

राजानः सत्यसङ्कल्पाः प्रजापालनतत्पराः ।
मातृवत् परयोषित्सु पुत्रवत् परसूनुषु ।।२३।।
लोष्टवत् परवित्तेषु पश्यन्तो मानवास्तदा ।
आसन् स्वधर्मनिरताः सदा सन्मार्गवर्त्तिनः ।।२४।।

पद्मा–उस युग में शासकगण सत्यसङ्कल्प व प्रजापालन परायण थे। वे परस्त्री को माँ के समान एवं पर पुत्र को पुत्र के समान मानते थे।

उस युग में मनुष्य पराये धन को मिट्टी के ढेले के समान देखते थे और अपने धर्म का पालन करते हुए सन्मार्ग पर सदा चलते थे।

हरि०–**राजान इत्यादि**। सत्यः सङ्कल्पो मानसं कर्म येषामन्ते। परयोषित्सु परस्त्रीषु-परसूनुषु अन्यपुत्रेषु ॥२३-२४॥

न मिथ्याभाषिणः केचित् न प्रमादरताः क्वचित् ।
न चौरा न परद्रोहकारका न दुराशयाः ।।२५।।

पद्मा–न ही कोई मिथ्यावादी अर्थात् झूठ बोलने वाला, न कोई प्रमादी, चोरी और परद्रोही एवं दुष्ट प्रवृत्ति वाले थे।

हरि०–नेत्यादि। न प्रमादरता: सावधाना इत्यर्थ:। न दुराशया न दुष्टाभिप्राया:॥२५॥

न मत्सरा नातिरुष्टा नातिलुब्धा न कामुका: ।
सदन्त: करणा: सर्वे सर्वदाऽऽनन्दमानसा: ।।२६।।

पद्या–कोई भी मनुष्य ईर्ष्यालु, क्रोधी, लोभी व कामुक नहीं था। सभी शुद्ध अन्त:करण वाले, एवं सभी आनन्दित एवं प्रसन्न हृदय वाले थे ।

हरि०–नेत्यादि। न मत्सरा नान्यशुभद्वेषिण:। नातिरुष्टा न बहुक्रोधशालिन:। सर्वदा आनन्दो यत्र एवम्भूतं मानसं हृदयं येषान्ते ॥२६॥

भूमय: सर्वशस्याढ्या: पर्जन्या: कालवर्षिण: ।
गावोऽपि दुग्धसम्पन्ना: पादपा: फलशालिन: ।।२७।।

पद्या–उस युग में पृथ्वी सभी धान्यों से परिपूर्ण थी, मेघ समय पर वर्षा करते थे, गायें दुग्ध से सम्पन्न एवं वृक्ष फलों से परिपूर्ण थे ।

हरि०–भूमय इति। पर्ज्जन्या मेघा:॥२७॥

नाऽकालमृत्युस्तत्रासीत् न दुर्भिक्षं न वा रुज: ।
हृष्टा: पुष्टा: सदारोग्यास्तेजोरुपगुणान्विता: ।
स्त्रियो न व्यभिचारिण्य: पतिभक्तिपरायणा: ।।२८।।

पद्या–उस युग में किसी भी प्राणी की अकाल मृत्यु नहीं होती थी। दुर्भिक्ष एवं रोग नहीं होते थे। सभी मनुष्य हृष्ट-पुष्ट, सदैव स्वस्थ, तेजस्वी एवं गुणों से युक्त थे । स्त्रियाँ पतिव्रता एवं व्यभिचार रहित थीं ।

हरि०–नेत्यदि। तत्र कृतयुगे। रुजो रोगा:। सदा आरोग्यं येषामन्ते। तेजोरुपगुणान्विता: तेजसा रुपेण अन्यैश्च गुणैर्युक्ता: ॥२८॥

ब्राह्मणा: क्षत्रिया वैश्या: शूद्रा: स्वाचारवर्त्तिन: ।
स्वै: स्वैर्धर्मैर्यजन्तस्ते निस्तारपदवीं गता: ।।२९।।

पद्या–ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र आदि सभी अपने-अपने आचार-व्यवहार के अनुसार अपने धर्म का पालन करते हुए मोक्षपद को प्राप्त करते थे ।

हरि०–ब्राह्मणा इत्यादि। यजन्त: परमेश्वरमर्च्चयन्त: ॥२९॥

कृते व्यतीते त्रेतायां दृष्ट्वा धर्मव्यतिक्रमम् ।
वेदोक्तकर्मभिमर्त्त्या न शक्ता: स्वेष्टसाधने ।।३०।।
बहुक्लेशकरं कर्म्म वैदिकं भूरिसाधनम् ।
कर्तुं न योग्या मनुजाश्चिन्ताव्याकुलमानसा: ।।३१।।
त्यक्तुं कर्तुं न चार्हन्ति सदा कातरचेतस: ।
वेदार्थयुक्तशास्त्राणि स्मृतिरुपाणि भूतले ।।३२।।

तदा त्वं प्रकटीकृत्य तपः स्वाध्यायदुर्बलान् ।
लोकानतारयः पापात् दुःखशोकामयप्रदात् ।।३३।।

पद्मा–सत्ययुग के व्यतीत होने पर धर्म में व्यतिक्रम दिखायी देने लगा। वेदों के कहे अनुसार मनुष्य अपने अभीष्ट को प्राप्त करने में असमर्थ होने लगे। अधिक साधना वाले वैदिक उस समय बहुत क्लेशकारी हो गये थे। मनुष्य अनेक चिन्ताओं से व्याकुल होकर स्वधर्म पालन करने में समर्थ नहीं थे। वैदिक धर्म का त्याग करने से अनेक दोष होने की बात सुनने से वे लोग उन कर्मों को छोड़ने में समर्थ भी नहीं थे। फलतः अपनी इस असमर्थता से वे सदा ही व्याकुल चित्त रहते थे। उसी समय आपने भूतल पर 'स्मृति' रूपी वेदार्थमय शास्त्र का प्रतिपादन किया। दुःख, शोक, रोगदायक पाप के होने पर तपस्या स्वाध्याय करने में दुर्बल सभी लोग उसके द्वारा अपना उद्धार करने लगे ।

हरि०–कृते इत्यादि। कृते सत्ययुगे व्यतीते विगते सति त्रेतायां चायातायां सत्यां यदा वेदोक्तकर्मभिर्मर्त्या मनुष्याः स्वेष्टसाधने आत्मनोऽभीष्टसम्पादने शक्ताः समर्था न बभूवुः। यदा च भूरीणि बहूनि साधनानि यस्य तद्भूरिसाधनम् । अतएव बहुक्लेशकरं बहूनां क्लेशानां जनकम् । अथवा बहुभिः क्लेशैः क्रियते निष्पाद्यते यत्तद् बहुक्लेशकरम् । बाहुलकात् कर्म्मण्यच् । अतएवेदृशं वैदिकं कर्म्म कर्त्तुं चिन्ताव्याकुलमानसा मनुजा मनुष्या योग्या न बभूवुः। यदा च सदा कातरचेतसः सर्वदा अधीरस्वान्ता मनुजा वैदिकर्मत्यागे नाना दोषश्रवणात् तत् कर्म्म त्यक्तुं बहुक्लेशसाध्यत्वात् कर्त्तुञ्च नार्हन्ति स्म तदा धर्म्म व्यक्तिक्रमं धर्म्मोल्लङ्घनं धर्म्मविपर्य्यायं वा दृष्ट्वा स्मृतिरुपाणि वेदार्थयुक्तशास्त्राणि भूतले प्रकटीकृत्य तपः स्वाध्यायः दुर्बलान् लोकान् जनान् पापात् त्वमतारयः तारत्कनित्यन्वयः।।३०-३३।।

त्वं विना कोऽस्ति जीवानां घोरसंसारसागरे ।
भर्त्ता पाता समुद्धर्त्ता पितृवत् प्रियकृत् प्रभुः ।।३४।।

पद्मा–इस घोर संसार-सागर में आपके अतिरिक्त समस्त जीवों का पालन, रक्षा, उद्धार करने वाला पिता के समान प्रिय करने वाला प्रभु और कौन है ? ।

हरि०–त्वामिति। यतस्त्वमेवम्भूतोऽतस्त्वां विनेत्येवं योजनीयम् । घोरसंसारसागरे भयानक संसारसमुद्रे। प्रभुर्जगत्पतिः।।३४।।

ततोऽपि द्वापरे प्राप्ते स्मृत्युक्तसुकृतोज्झिते ।
धर्मार्द्धलोपे मनुजे आधिव्याधिसमाकुले ।
संहिताद्युपदेशेन त्वयैवोद्धारिता नराः ।।३५।।

पद्मा–इसके पश्चात् द्वापर युग के आगमन पर स्मृति कथित कर्म का ह्रास होने लगा। उस युग में आधा धर्म लुप्त हो गये । धर्म के लोप होने पर मनुष्य अनेक प्रकार की व्यथा एवं व्याधियों से ग्रस्त हो गये। उस युग के पश्चात् द्वापर में आपने व्यासादि मुनियों के माध्यम से 'संहिताशास्त्र' का उपदेश देकर मनुष्यों का उद्धार किया ।

हरि०–तत् इत्यादि। स्मृत्युक्तसुकृतोज्झिते स्मृतिभिरुक्तानि यानि सुकृतानि। पुण्यानि

तैरुज्झिते त्यक्ते। धर्मार्द्धलोपे धर्मस्यार्द्धं लुम्पतीति धर्मार्द्धलोपस्तस्मिन्। स्मृत्युक्त सुकृतोज्झिते इति धर्मार्द्धलोपे इति च द्वापरे इत्यस्य विशेषणं मनुजे इत्यस्य वेति बोध्यम्। आधिर्मनसी व्यथा ॥३५॥

आयाते पापिनि कलौ सर्वधर्मविलोपिनि ।
दुराचारे दुष्प्रपञ्चे दुष्टकर्मप्रवर्त्तके ॥३६॥

पद्मा–द्वापर युग के पश्चात् पापरूपी, समस्त धर्मों का लोप करने वाला, दुराचार एवं दुष्कर्म को फैलाने वाला, दुष्ट कर्मों का प्रवर्तक कलियुग का आगमन हुआ।

हरि०–आयाते इत्यादि। दुराचारे दुष्ट आचारो यत्र तस्मिन् ॥३६॥

न वेदाः प्रभवस्तत्र स्मृतीनां स्मरणं कुतः ।
नानेतिहासयुक्तानां नानामार्गप्रदर्शिनाम् ॥३७॥
बहुलानां पुराणानां विनाशो भविता विभो ।
तदा लोका भविष्यन्ति धर्मकर्मबहिर्मुखाः ॥३८॥

पद्मा–इस पाप-युक्त कलियुग के आने पर वेदों का प्रभाव समाप्त हो गया। स्मृतियों का भी किसे स्मरण रहा। इस युग में नाना इतिहासादि से पूर्ण विविध मार्ग प्रदर्शक का अभाव हो जायेगा। अनेक पुराणों का नाम तक नहीं रहेगा। इस कारण से हे विभो ! समस्त मनुष्य धर्म-कर्म से विमुख हो जायेंगे।

हरि०–नेत्यादि। प्रभवः समर्थाः॥३७-३८॥

उच्छृङ्खला मदोन्मत्ताः पापकर्मरताः सदा ।
कामुका लोलुपाः क्रूरा निष्ठुरा दुर्मुखाः शठाः ॥३९॥

पद्मा–कलियुग के मनुष्य वेदादिरूपी धर्म के क्षय के कारण, उच्छृङ्खल, स्वेच्छाचारी, मदोन्मत्त, पापकर्म में लिप्त, कामुक, लोभी, क्रूर, निष्ठुर, अप्रियभाषी और धूर्त हो जायेंगे।

हरि०–उच्छृङ्खला इत्यादि। उद्गतं शृङ्खलं वेदादिरुपनिगडो येषां ते उच्छृङ्खला बन्धनरहिता इत्यर्थः। लोलुपाः अतिलुब्धाः। क्रूराः निर्दयाः। निष्ठुराः परुषवादिनः। दुर्मुखाः अबद्धमुखाः। शठाः अनृजवः॥३९॥

स्वल्पायुर्मन्दमतयो रोगशोकसमाकुलाः ।
निः श्रीका निर्बला नीचा नीचाचारपरायणा ॥४०॥

पद्मा–कलियुग के लोग अल्पायु, मन्दबुद्धि, रोग-शोक से युक्त, श्रीहीन, निर्बल, नीच व नीचकार्य करने वाले होंगे।

हरि०–स्वल्पेत्यादि। स्वल्पायुषश्च ते मन्दमतयश्चेति कर्मधारयः॥४०॥

नीचसंसर्गनिरतापरवित्तापहारकाः ।
परनिन्दापरद्रोहपरिवादपराः खलाः ॥४१॥

पद्मा–इस कलियुग में लोग नीचों का साथ करने वाले, पराये धन का अपहरण करने वाले, परनिन्दा में लिप्त, परद्रोही, विवाद परायण एवं दुष्ट होंगे।

हरि०–नीचेति। खला दुर्जनाः।।४१।।

परस्त्रीहरणे पापशङ्काभयविवर्जिता ।
निर्धना मलिना दीना दरिद्राश्चिररोगिणः ।।४२।।
विप्राः शूद्रसमाचाराः सन्ध्यावन्दनवर्जिताः ।
अयाज्ययाजका लुब्धा दुर्वृत्ताः पापकारिणः ।।४३।।

पद्मा–पाप, शङ्का व भय से शून्य होकर परायी स्त्री का अपहरण करेंगे और निर्धन, मलिन, दीन, दरिद्र वं सदा रोगी होंगे। ब्राह्मण सन्ध्यावन्दनादि से शून्य होकर शूद्र के समान आचरण करेंगे। वे (ब्राह्मण) निषिद्ध जाति के पुरोहित बनकर यज्ञ करायेंगे तथा लोभी, दुराग्रही एवं दुराग्रही होंगे ।

हरि०–परस्त्रीत्यादि । परस्त्रीहरणे पापशङ्काभयविवर्जिता: परस्त्रीहरणनिमित्तकपापे उद्वेगसाध्वसरहिताः। मलिनाः मल दूषिताः। दीनाः खेदवन्तः। दरिद्राः दुर्गतिमन्तः ।।४२-४३।।

असत्यभाषिणो मूर्खा दाम्भिका दुष्प्रपञ्चकाः ।
कन्याविक्रयिणो व्रात्यास्तपोव्रतपराङ्मुखाः ।।४४।।

पद्मा–वे (ब्राह्मण) झूठ बोलने वाले, मूर्ख, दम्भी एवं अति प्रपञ्ची (धोखेबाज) कन्या को बेचने वाले, नीच एवं तपस्यादि से विरत होंगे ।

हरि०–असत्येत्यादि। दाम्भिकाः दम्भो धर्मध्वजित्वं तद्वन्तः। व्रात्याः षोडश वर्षपर्य्यन्तमप्यसंस्कृता भ्रष्टगायत्री का विप्रा भविष्यन्तीति पूर्वेणान्वयः।।४४।।

लोकप्रतारणार्थाय जपपूजापरायणाः ।
पाखण्डाः पण्डितम्मन्याः श्रद्धाभक्तिविवर्जिताः ।।४५।।

पद्मा–वे ब्राह्मण, लोगों को ठगने के लिये जप एवं पूजा करेंगे, पाखण्ड का आचारण करेंगे। अपने को पण्डित कहकर घमण्ड करने वाले श्रद्धा भक्ति से हीन होंगे ।

हरि०–लोकेत्यादि। पाखण्डाः वेदवाह्यरक्तपटमौञ्जादिव्रतचर्य्याशालिनः। श्रद्धाभक्ति विवर्जिताः, श्रद्धावेदादौ दृढ़ प्रत्ययः भक्तिः प्रीतिजनकव्यापारः ताभ्यांहीनाः।।४५।।

कदाहाराः कदाचारभृतकाः शूद्रसेवकाः ।
शूद्रान्नभोजिनः क्रूरा वृषलीरतिकामुकाः ।।४६।।
दास्यन्ति धनलोभेन स्वदारान्नीचजातिषु ।
ब्राह्मण्यचिह्नमेतावत् केवलं सूत्रधारणम् ।।४७।।
नैव पानादिनियमो भक्ष्याभक्ष्यविवेचनम् ।
धर्मशास्त्रे सदा निन्दा साधुद्रोही निरन्तरम् ।।४८।।

पद्मा–कलियुग के ब्राह्मणों का आहार निन्दित होगा, अधर्म आचारण वाले होंगें, अपना पेट भरकर जीवन यापन करने वाले तथा शूद्र के सेवक होकर शूद्र का अन्न ग्रहण

करने वाले होंगे। वे क्रूर एवं शूद्र स्त्री से सम्भोग करने के लिये लालायित रहने वाले होंगे। धन के लोभ से अपनी पत्नी को नीच जाति वालों को दे देंगे। इनके ब्राह्मणत्व का चिह्न मात्र गले में सूत्र-धारण होगा। पेय, अपेय भक्ष्य-अभक्ष्य का विचार नहीं करेंगे । ये सर्वदा धर्मनिन्दक एवं साधुद्रोही होंगे ॥

हरि०-कदाहारा इत्यादि। भृतका: भरणायत्तजीवना: अतएव शूद्राणामपि सेवका:। क्रूरा: कठिना:। वृषलीरतिकामुका: शूद्रारतिकामयितार:॥४६-४८॥

सत्कथालापमात्रञ्च न तेषां मनसि क्वचित् ।
त्वया कृतानि तन्त्राणि जीवोद्धारणहेतवे ।।४९।।

पद्मा-वे सत्कथा का मात्र अलाप ही करेंगे, किन्तु उसमें मन से कुछ भी नहीं होगा। इसलिए जीवों का उद्धार करने के लिये आपने तन्त्र-शास्त्र का निर्माण किया है ।

हरि०-सदित्यादि। सत्कथालापमात्रं चेत्यत्र च शब्द: तु इत्यर्थे ॥४९॥

निगमागमजातानि भुक्तिमुक्तिकराणि च ।
देवीनां यत्र देवानां मन्त्रयन्त्रादिसाधनम् ।
कथिता बहवो न्यासा सृष्टिस्थित्यादि लक्षणा:।।५०।।

पद्मा-भोग और मोक्ष के लिये आपने बहुत से निगम-आगम समूह को प्रकाशित किया है। इन शास्त्रों, देवी-देवताओं के मन्त्र व यन्त्रादि सिद्ध करने के साधन हैं। सृष्टि स्थिति आदि के बहुत से न्यास आपने कहे हैं ।

हरि०-निगमेत्यादि। यत्र तन्त्रादिषु। सृष्टिस्थित्यादिलक्षणा: सृष्टिस्थित्यादिस्वरूपा: ॥५०॥

बद्धपद्मासनादीनि गदितन्यपि भूरिशः ।
पशुवीरदिव्यभावा देवता मन्त्रसिद्धिदाः ।।५१।।

पद्मा-आपने बहुत से बद्धपद्मासन एवं अन्य आसन कहे हैं। सभी देवताओं के मन्त्रों की सिद्धि प्रदान करने वाले* पशु भाव, दिव्यभाव एवं वीर भाव कहे हैं ।

हरि०-बद्धपद्मेत्यादि। यत्रेत्यनुषज्यते आदिना मुक्तपद्मासनादे: संग्रह:॥५१॥

शवासनं चितारोहो मुण्डसाधनमेव च ।
लतासाधनकर्माणि त्वयोक्तानि सहस्रशः ।।५२।।
पशुभावदिव्यभावौ स्वयमेव निवारितौ ।
कलौ न पशुभावोऽस्ति दिव्यभावः कुतो भवेत् ।।५३।।

पद्मा-इसमें शवासन, चितारोहण, मुण्डसाधन, लतासाधनादि सभी असंख्य कर्म आपके द्वारा कहे गये हैं। आपके द्वारा पशु भाव एवं दिव्य भाव का निषेध किया गया है। कलियुग में पशुभाव ही नहीं है तो दिव्यभाव किस प्रकार हो सकता है ।

हरि०-शवासनमिति। अत्रापि यत्रेत्यस्यानुषङ्गः। शवासनं मृतशरीरासनम् ॥५२-५३॥

* लेखक के ही योनितन्त्र एवं निरूत्तर तन्त्र द्रष्टव्य है।

पत्र पुष्पं फलं तोयं स्वयमेवाहरेत् पशुः ।
न शूद्र दर्शनं कुर्यात् मनसा न स्त्रियं स्मरेत् ।।५४।।

पद्या–पत्ते, पुष्प, फल व जल इनका लाना पशुभाव के अवलंबन का है। शूद्र का दर्शन न करें और न ही मन में स्त्री का स्मरण करें ।

हरि०–कलौ युगे पशुभाव दिव्यभावयोरसत्त्वे हेतुं दर्शयितुं प्रथमतः पशुदिव्ययोर्विधेयानि यानि कर्माणि तानि दर्शयति द्वाभ्याम् । पत्रमित्यादि। आहरेत् आनयेत् ।।५४।।

दिव्यश्च देवताप्रायः शुद्धान्तःकरणः सदा ।
द्वन्द्वातीतो वीतरागः सर्वभूतसमः क्षमी ।।५५।।

पद्या–दिव्य भाव की प्राप्ति के लिये देवता के समान सदा शुद्ध अन्तःकरण वाला निर्द्वन्द्व, वीतरागी, सभी प्राणियों के प्रति समान दृष्टि एवं क्षमाशील होना है ।

हरि०–दिव्यश्चेति। भवेदित्यध्याहार्य्यम् । देवताप्रायः देवतुल्यः। द्वन्द्वातीतः सुखदुःख-शीतोष्णादि युगलानि द्वन्द्वानि तान्यतीतोऽतिक्रान्तः तत्सहनशील इत्यर्थः। वीतरागः वीतो विशेषेण गतो रागः प्रीतिर्मात्सर्य वा यस्य यस्माद्वा सः। रागोऽनुरागे मात्सर्ये इति कोशः। सर्वभूतसमः सर्वेषु भूतेषु समः रागद्वेषादिशून्यः। क्षमी परेणापकारे कृते तस्य प्रत्यपकारानाचरणं क्षमा तद्वान् ।।५५।।

कलिकल्मषयुक्तानां सर्वदाऽस्थिरचेतसाम् ।
निद्राऽऽलस्य प्रसक्तानां भावशुद्धिः कथं भवेत् ।।५६।।

पद्या–कलियुग के दोषों से युक्त सभी मनुष्य अस्थिरचित्त निद्रा एवं आलस्य से युक्त होंगे। फिर इनकी भावशुद्धि किस प्रकार होगी ।

हरि०–एवं पशुदिव्ययोर्विधेयानि कर्म्माणि प्रदर्शयेदानीं सर्वदा चञ्चलचित्तानां निद्राल-स्यप्रसक्तानां नानाविधदुष्कृतशालिनां पशुदिव्यविधेयककर्म्मसाधनायोग्यानां कलिजन्मनां मनुष्याणां पशुभावदिव्यभावौ न सिध्यति इति प्रतिपादयितुमाह । कलीत्यादि ।।५६।।

वीरसाधनकर्म्माणि पञ्चतत्त्वोदितानि च ।
मद्यं मांस तथा मत्स्यमुद्रामैथुनमेव च ।
एतानि पञ्चतत्त्वानि त्वया प्रोक्तानि शङ्कर ।।५७।।

पद्या–हे शिव! वीरसाधन के सन्दर्भ में आपने पञ्चतत्त्व के विषय में कहा है। मद्य, मांस, मत्स्य, मुद्रा व मैथुन यह पांच तत्त्व आपने कहे हैं ।

हरि०–वीरेत्यादि। हे शङ्कर लोककल्याणकर्तुः पञ्च मद्यादीनि तत्त्वानि उदितान्युक्तानि येषु। एवम्भूतानि वीरसाधनकर्म्माणि मद्यमांसादीनि पञ्चतत्त्वानि च त्वया प्रोक्तानीत्यन्वयः।।५७।।

कलिजा मानवा लुब्धाः शिश्नोदरपरायणाः ।
लोभात्तत्र पतिष्यन्ति न करिष्यन्ति साधनम् ।।५८।।

पद्या–कलियुग में जन्मे मनुष्य लोभी एवं कामुक तथा उदरपरायण होंगे। वे लोभवश इन पञ्च तत्त्वों से पतित होंगे, साधन नहीं करेंगे ।

हरि०–कलिजा इति। तत्र मद्यादिपञ्चतत्त्वेषु ।।५८।।

इन्द्रियाणां सुखार्थाय पीत्वा च बहुलं मधु ।
भविष्यन्ति मदोन्मत्ता हिताहितविवर्जिताः ।।५९।।

पद्मा-कलियुग के लोग इन्द्रिय सुख के लिये अत्यधिक मधु (मद्य) का पान करके मद से उन्मत्त होकर हित-अहित के ज्ञान से शून्य होंगे ।

हरि०-इन्द्रियाणामिति। मधु मद्यम् ।।५९।।

परस्त्रीधर्षकाः केचिद्दस्यवो बहवो भुवि ।
न करिष्यन्ति ते मत्ताः पापायोनिविचारणम् ।।६०।।
अतिपानादिदोषेण रोगिणो बहवः क्षितौ ।
शक्तिहीना बुद्धिहीना भूत्वा च विकलेन्द्रियाः ।।६१।।
ह्रदे गर्त्ते प्रान्तरे च प्रासादात् पर्वतादपि ।
पतिष्यन्ति मरिष्यन्ति मनुजा मदविह्वलाः ।।६२।।

पद्मा-उनमें से अनेक दूसरे की स्त्रियों का सतीत्व नाश करेंगे और अनेक चौर्यवृत्ति का सहारा लेंगे। वे सब महापापी पुरुष उन्मत्त होकर योनि का विचार नहीं करेंगे। असीमित पान दोष से इस पृथ्वी पर मद्विह्वल लोग रोगी, निर्बल एवं विकल इन्द्रिय होकर जलाशय, गर्त, अरण्य, भवन, पर्वत आदि से गिरकर मृत्यु को प्राप्त होंगे ।

हरि०-परस्त्रीत्यादि। परस्त्रीधर्षकाः परस्त्र्यभिभवकर्त्तारः। दस्यवश्चौराः। ह्रदे अगाधजलाधारे। प्रान्तरे ग्रामस्य दूरे वृक्षलतादिशून्येऽध्वनि ।।६०-६२।।

केचिद्विवादयिष्यन्ति गुरुभिः स्वजनैरपि ।
केचिन्मौना मृतप्राया अपरे बहुजल्पकाः ।।६३।।
अकार्य्यकारिणः क्रूरा धर्ममार्गविलोपकाः ।
हिताय यानि कर्म्माणि कथितानि त्वया प्रभो ।।६४।।
मन्ये तानि महादेव विपरीतानि मानवे ।
के वा योगं करिष्यन्ति न्यासजातानि केऽपि वा ।।६५।।
स्तोत्रपाठं यन्त्रलिपिं पुरश्चर्यां जगत्पते ।
युगधर्म्मप्रभावेण स्वभावेन कलौ नराः ।
भविष्यन्त्यतिदुर्वृत्ताः सर्वथा पापकारिणः ।।६६।।

पद्मा-कुछ मदोन्मत्त जन अपने बड़े एवं गुरुजनों से वाद-विवाद करेंगे। कुछ मौन रहेंगे, कुछ मृतप्राय होंगे और कुछ बहुत वाद-विवाद करके अपने ही मत स्थापित करने वाले होंगे। कुछ अनुचित एवं क्रूरकर्म करने वाले एवं धर्म मार्ग के विलोपक होंगे। हे प्रभो! आपने प्राणियों के हितार्थ जिन कार्यों का उपदेश किया है, वह कलियुग में विपरीत हो जायेंगे । कौन व्यक्ति योग का अभ्यास करेगा ? कौन न्यासादि करेगा ? कौन स्तोत्र पाठ करेगा ? कौन व्यक्ति यन्त्राधार में पूजा करेगा और कौन व्यक्ति पुरश्चरण करेगा ? हे जगत्पते! युगधर्म के प्रभाव से मनुष्य लोग स्वभावतः बड़े दुराचारी एवं सदा पाप करने वाले होंगे ।

हरि०–केचिदिति। गुरुभिः पित्रादिभिः। मौनाः न किञ्चिदपि व्याहरन्तः। योगं तन्त्रादिप्रयुक्त तत्तत् पुण्यकर्मरुपमुद्धारोपायम्। पुरश्चर्य्या पुरश्चरणम् ।।६३-६६।।

तेषामुपायं दीनेश कृपया कथय प्रभो ।
आयुरारोग्यवर्चस्यं बलवीर्य्याविबर्द्धनम् ।।६७।।

पद्मा–हे दीनेश प्रभो ! कृपा कर कलि में उत्पन्न मनुष्यों के निस्तार का उपाय कहें जिससे उनकी आयु, आरोग्य, तेज, बल, वीर्य आदि की वृद्धि हो।

हरि०–तेषामित्यादि। तेषां नराणाम्। आयुरारोग्यवर्चसम् आयुषे आरोग्याय वर्चसे तेजसे च हितम् ।।६७।।

विद्याबुद्धिप्रदं नृणामप्रयत्नशुभङ्करम् ।
येन लोका भविष्यन्ति महाबलापराक्रमाः ।।६८।।
शुद्धचित्ताः परहिता मातापित्रोः पियङ्कराः ।
स्वदारनिष्ठः पुरुषाः परस्त्रीषु पराङ्मुखाः ।।६९।।
देवतागुरुभक्ताश्च पुत्रस्वजनपोषकाः ।।७०।।

पद्मा–कलियुग के मनुष्यों को विद्या, बुद्धि प्राप्त हो। बिना प्रयत्न के शुभत्वप्राप्त हो जिससे सभी लोग महावली, महापराक्रमी, शुद्धचित्त होकर परोपकार में तत्पर हों, माता-पिता का प्रिय करने वाले हों, पुरुष अपने पत्नी के प्रति एकनिष्ठ और परस्त्री विमुख होकर देवता-गुरु-भक्त तथा पुत्र स्वजनादि के पोषक हों।

हरि०–विद्येत्यादि। येन उपायेन ।।६८-७०।।

ब्रह्मज्ञा ब्रह्मविद्याश्च ब्रह्मचिन्तनमानसाः ।
सिद्ध्यर्थं लोकयात्रायाः कथयस्व हिताय यत् ।।७१।।
कर्त्तव्यं यदकर्त्तव्यं वर्णाश्रमविभेदतः ।
विना त्वां सर्वलोकानां कस्त्राता भुवनत्रये ।।७२।।

इति श्री महानिर्वाणतन्त्रे सर्वतन्त्रोत्तमोत्तमे सर्वधर्मनिर्णय सारे श्रीमदाद्याशिवसंवादे जीवनिस्तारोपायप्रश्नो नाम प्रथमोल्लासः ।।१।।

पद्मा–जिस उपाय से यह सब ब्रह्मज्ञ, ब्रह्मविद्या के ज्ञाता और ब्रह्म की चिन्तन में तत्पर हों। मनुष्यों के लोक-यात्रा के निर्वाह हेतु एवं पारलौकिक हित के लिये आप कृपा करके उसी उपाय का वर्णन करें। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्रादि वर्ण एवं आश्रम भेद से जो कर्त्तव्य-अकर्त्तव्य हैं, उन्हें कृपा करके प्रकट करें। त्रिलोक में आपको छोड़कर समस्त लोगों का उद्धार करने वाला कौन है ? ।

श्री महानिर्वाण तन्त्र के प्रथम उल्लास की 'पद्मा' हिन्दी व्याख्या पूर्ण हुई ।।१।।

हरि०–ब्रह्मज्ञा इति। ब्रह्मविद्याः सर्व ब्रह्मैवेति प्रज्ञावन्तः। लोकयात्रायाः लोक-निर्वाहस्य ।।७१-७२।।

द्वितीयोल्लासः

इति देव्या वचः श्रुत्वा शङ्करो लोकशङ्करः ।
कथयामास तत्त्वेन महाकारुण्यवारिधिः ।।१।।

पद्मा–भगवती के इस प्रकार के वचन को सुनकर, लोक-कल्याणकारी करुणा के सागर भगवान् शिव ने तत्त्व कथा का आरम्भ करते हुये कहा ।

हरि०–ॐ नमो ब्रह्मणे ।

शङ्कर इदानीं कृतजीवनिस्तारोपायप्रश्नां पार्वतीं तत्प्रश्नश्च स्तुवंस्तां प्रत्युत्तरं दातुमुपक्रमते। इतीत्यादि । लोकशङ्करः जनानां कल्याणस्योत्पादकः । महाकारुण्यवारिधिः महादया-समुद्रः ।।१।।

श्री सदाशिव उवाच

साधु पृष्टं महाभागे जगतां हितकारिणि ।
एतादृशः शुभः प्रश्नो न केनापि कृतः पुरा ।।२।।

पद्मा–श्री सदाशिव ने कहा–हे महाभागे ! तुम जगत की हितकारिणी हो। तुमने बहुत ही अच्छा प्रश्न किया है। ऐसा शुभ और श्रेष्ठ प्रश्न इससे पूर्व किसी ने नहीं किया है ।

धन्याऽसि सुकृतज्ञाऽसि हिताऽसि कलिजन्मनाम् ।
यद्यदुक्तं त्वया भद्रे सत्यं सत्यं यथार्थतः ।।३।।

पद्मा–हे भद्रे ! तुम धन्य हो, सुकृतज्ञ हो। कलियुग में उत्पन्न समस्त प्राणियों की वास्तविक हितकारिणी हो । तुमने जो कुछ कहा है वह निश्चित रूप से सत्य है, इसमें सन्देह नहीं ।

विशेष-श्लोक २ एवं ३ पर हरिहरानन्द भारती की टीका नहीं है।

सर्वज्ञा त्वं त्रिकालज्ञा धर्म्मज्ञा परमेश्वरि ।
भूतं भवद्भविष्यञ्च धर्म्मयुक्तं त्वया प्रिये ।।४।।

पद्मा–हे परमेश्वरि ! तुम सर्वज्ञ, त्रिकाल की ज्ञाता एवं धर्म को जानने वाली हो। हे प्रिये!, भूत, भविष्य, वर्तमान धर्मयुक्त जो कहा है ।

हरि०–सर्वज्ञेत्यादि। भवत् वर्त्तमानम् ।।४।।

यथातत्त्वं यथान्यायं यथायोग्यं न संशयः ।
कलिकल्मषदीनानां द्विजादीनां सुरेश्वरि ।।५।।
मेध्यामेध्याविचाराणां न शुद्धिः श्रौतकर्म्मणा ।
न संहिताद्यैः स्मृतिभिरिष्टसिद्धिर्नृणां भवेत् ।।६।।

पद्मा–वह वास्तव में न्यायानुसार, योग्य एवं सत्य है। हे सुरेश्वरि ! कलि दोष से ग्रसित, दीन भाव को प्राप्त हुए द्विजादिकों को पवित्र-अपवित्र का विचार नहीं होगा। मनुष्यों को पुराण, संहिता एवं स्मृतियों से इष्ट सिद्धि न होगा।

हरि०–कलीति। कलिकल्मषदीनानां कलियुगसम्बन्धिदुष्कृतहेतुकदुर्गतिशलिनां मेध्या-मेध्याविचाराणां पवित्रापवित्रविचारशून्यानाम् अतएव द्विजादीनां ब्राह्मणप्रभृतीनां श्रौतकर्म्मणा वेदोक्तेन कर्म्मणा शुद्धिर्न भवेत् ॥५-६॥

सत्यं सत्यं पुनः सत्यं सत्यं मयोच्यते ।
विना ह्यागममार्गेण कलौ नास्ति गतिः प्रिये ॥७॥

पद्मा–हे प्रिये ! मैं सत्य-सत्य पुनः सत्य कहता हूँ। कलियुग में आगम द्वारा निर्दिष्ट मार्ग के अतिरिक्त अन्य कोई गति नहीं है।

हरि०–सत्यमिति। हीत्यवधारणे ॥७॥

श्रुतिस्मृतिपुराणादौ मयैवोक्तं पुरा शिवे! ।
आगमोक्तविधानेन कलौ देवान् यजेत् सुधीः ॥८॥
कलावागममुल्लङ्घ्य योऽन्यमार्गे प्रवर्तते ।
न तस्य गतिरस्तीति सत्यं सत्यं न संशयः ॥९॥

पद्मा–हे शिवे ! पूर्वकाल में श्रुति, स्मृति, पुराणादि शास्त्र मेरे द्वारा ही कहे गये हैं। कलियुग में बुद्धिमान् व्यक्ति आगमोक्त विधि से देवताओं की पूजा करे। कलियुग में आगमशास्त्र का उल्लंघन कर जो व्यक्ति अन्य मार्ग का अनुसरण करेगा, उसका उद्धार नहीं होगा। यह निस्सन्देह रूप से सत्य है।

हरि०–श्रुतीत्यादि। हे शिवे! सुधीर्विचक्षणः आगमोक्त विधानेन देवान् यजेत् पूजयेत् इति पुरा पूर्व श्रुतिस्मृतिपुराणौ मयैवोक्तमित्यन्वयः ॥८-९॥

सर्व्ववेदैः पुराणैश्च स्मृतिभिः संहितादिभिः ।
प्रतिपाद्योऽस्मि नान्योऽस्ति प्रभुर्जगति मां विना ॥१०॥

पद्मा–समस्त वेद, पुराण, स्मृति एवं संहितादि शास्त्रों के मैं ही प्रतिपाद्य हूँ। मेरे अतिरिक्त इस जगत् का अन्य कोई प्रभु नहीं है।

हरि०–स्वमत प्रामाण्याय प्रथमत आत्मन् एव सर्वोत्तमत्वं व्याहर्तुमाह सर्वैरित्यादि। यत इत्यध्याहार्य्यम्। प्रतिपाद्यः बोधयितव्यः ॥१०॥

आमनन्ति च ते सर्वे मत्पदं लोकपावनम् ।
मन्मार्गविमुखा लोकाः पाखण्डा ब्रह्मघातिनः ॥११॥

पद्मा–वेदादि समस्त शास्त्र मेरे पद को लोकपावन मानते हैं। मेरे मार्ग से विमुख सभी लोग पाखण्डी एवं ब्रह्मघाती हैं।

हरि०–आमन्तीति। सर्वे ते वेदादयो मत्पदं मदीयं स्थानं लोकपावनं लोकानां पूतत्वजनकमामनन्ति बोधयन्ति। ब्रह्मघातिनो भवेयुरिति शेषः ॥११॥

अतो मन्मतमुत्सृज्य यो यत् कर्म्म समाचरेत् ।
निष्फलं तद्भवेद्देवि कर्ताऽपि नारकी भवेत् ॥१२॥
मूढो मन्मतमुत्सृज्य योऽन्यन्मतमुपाश्रयेत् ।
ब्रह्महा पितृहा स्त्रीघ्नः स भवेन्नात्र संशयः ॥१३॥

पद्मा–इसीलिये जो मनुष्य मेरे मत को त्याग कर जो कर्म करता है, हे देवि ! उसका वह कर्म विफल हो जाता है तथा मनुष्य नरकगामी होता है। जो मूर्ख मेरे मत को छोड़कर अन्य मत को ग्रहण करता है वह ब्रह्महत्यारा, पितृघाती एवं स्त्रीघातक होता है। इसमें संशय नहीं है ।

हरि०–अत इत्यादि । उत्सृज्य परित्यज्य। तत् कर्म्म ॥१२-१३॥

कलौ तन्त्रोदिता मन्त्राः सिद्धास्तूर्णफलप्रदाः ।
शस्ताः कर्म्मसु सर्वेषु जपयज्ञक्रियादिषु ॥१४॥

पद्मा–कलियुग में तन्त्रोक्त समस्त मन्त्र सिद्ध एवं शीघ्र सिद्धिप्रदायक हैं। जप, यज्ञ क्रियादि में एवं समस्त कर्मों में वे प्रशस्त हैं ।

हरि०–अथ वेदोक्तानां मन्त्राणां कलौ निष्प्रभावत्वं तत्तत्फलानिष्पादकत्वञ्च प्रतिपादयंस्तन्त्रोदितानामेव मन्त्राणां सिद्धत्वात् झटिति तत्तत्फलप्रदातृत्वाच्चातिप्राशस्त्यमाह कलावित्यादिभिः ॥१४॥

निर्व्वीर्याः श्रौतजातीया विषहीनोरगा इव ।
सत्यादौ सफला आसन् कलौ ते मृतका इव ॥१५॥

पद्मा–कलियुग में वेदोक्त समस्त मन्त्रविषहीन सर्प के समान शक्तिहीन हैं। सत्यादि युगों में वे मन्त्रफलदायक थे, किन्तु कलियुग में मृत व निष्फल हैं ।

हरि०-निर्व्वीर्य्या इत्यादि। ये श्रौतजातीया वेदोदिता मन्त्राः सत्यादौ युगे सफलास्तत्तत्फलोत्पादका आसन् ते सर्वे मन्त्राः कलौ युगे विषहीना उरगाः सर्पा इव निर्व्वीया निष्प्रभा मृतका इव तत्तत्फलानिष्पादकाश्च बोद्धव्या इत्यन्वयः॥१५॥

पाञ्चालिका यथा भित्तौ सर्वेन्द्रियसमन्विताः ।
अमूरशक्ताः कार्येषु तथान्ये मन्त्रराशयः ॥१६॥

पद्मा–जिस प्रकार भित्ति (दीवार) में बनी हुई पुतली आंख, कान, नाक आदि समस्त इन्द्रियों से युक्त होने पर भी कार्य करने में असमर्थ है, उसी प्रकार तन्त्र में कथित मन्त्रों के अतिरिक्त मन्त्र उन कार्यों को करने में असफल रहते है ।

हरि०–पाञ्चालिका इत्यादि। भित्तौ स्थिताः सर्वैरिन्द्रियैः समन्विता युता अमू पाञ्चालिका वक्त्रदन्तादिभिर्निर्म्मिताः पुत्रिकाः यथा कार्येष्वशक्त असमर्थाः भवन्ति तथैवान्ये

तन्त्रोक्तभिन्ना मन्त्रराशयो मन्त्रसमूहाः कलौ तत्तत्कार्यानिष्पादकाश्रेयाः। पाञ्चालिका पुत्रिका स्याद्वक्त्रदन्तादिभि कृतेत्यमरः ॥१६॥

अन्यमन्त्रैः कृतं कर्म्म बन्ध्यास्त्रीसङ्गमो यथा ।
न तत्रफलसिद्धिः स्यात् श्रम एव हि केवलम् ॥१७॥
कलावन्योदितैर्मार्गैः सिद्धिमिच्छति यो नरः ।
तृषितो जाह्नवीतीरे कूपं खनति दुर्मतः ॥१८॥

पद्या–तन्त्रोक्त मन्त्रों के अतिरिक्त अन्य प्रकार के मन्त्रों से कार्य करने पर फल नहीं प्राप्त होता है। जिस प्रकार से वन्ध्यास्त्री के सङ्गम से पुत्र की प्राप्ति नहीं होती है, केवल परिश्रममात्र होता है। जो मनुष्य इस कलिकाल में अन्य कथित मार्ग से सिद्धि पाने की आकांक्षा रखता है, वह दुर्मति मानो प्यासा होकर गंगा के किनारे कुँआ खोदता है ।

हरि०–अन्येत्यादि। यथा वन्ध्यास्त्रीसङ्गमोऽपत्यरुपफलसाधको न भवति। एवमन्यमन्त्रैः कृतं यत् कर्म्म। तत्र तस्मिन् कर्म्मणि कृते सति फलसिद्धि फलनिष्पत्तिर्न स्यात् केवलं श्रम एव स्यात् । हीति निश्चयेन ॥१७-१८॥

मद्वक्त्रादुदित धर्म्मं हित्वाऽन्यद्धर्म्ममीहते ।
अमृतं स्वगृहे व्यक्त्वा क्षीरमार्कं स वाञ्छति ॥१९॥

पद्या–मेरे मुख से कहे गये धर्म का त्याग कर जो मूर्ख मनुष्य अन्य धर्म को स्वीकार करता है अथवा इच्छा करता है, वह मानो अपने घर में रखे हुए अमृत को छोड़कर आक के दूध की इच्छा करता है ।

हरि०–मद्वक्त्रादिति । मद्वक्त्रात् मम मुखात् उदितं कथितम् । ईहते वाञ्छति। आर्कम् अर्कवृक्षोद्भवम् ॥१९॥

नान्यः पन्था मुक्तिहेतुरिहामुत्र सुखाप्तये ।
यथा तन्त्रोदितो मार्गो मोक्षाय च सुखाय च ॥२०॥
तन्त्राणि बहुधोक्तानि नानाख्यानान्वितानि च ।
सिद्धानां साधकानाञ्च विधानानि च भूरिशः ॥२१॥

पद्या–तन्त्र द्वारा कहा गया मार्ग जिस प्रकार सुख (मोक्ष) मुक्ति का कारण एवं लोक परलोक में सुख प्राप्ति का हेतु हैं, उस प्रकार अन्य कोई भी मार्ग नहीं है। विविध प्रकार के आख्यानों से युक्त बहुत से तन्त्र मेरे द्वारा कहे गये है। उनमें सिद्धों व साधकों के साधन विधान विस्तार से कहे गये हैं ।

हरि०–नान्य इति । अमुत्र परे लोके ॥२०-२१॥

अधिकारिविभेदेन पशुबाहुल्यतः प्रिये ।
कुलाचारोदितं धर्म्मं गुप्त्यर्थं कथितं क्वचित् ॥२२॥

पद्या–हे प्रिये ! अधिकारी-भेद से पशुभाव की अधिकता होने के कारण रक्षा हेतु यही

पद्मा–हे प्रिये ! अधिकारी-भेद से पशुभाव की अधिकता होने के कारण रक्षा हेतु यही गुप्त रखने योग्य कुलाचार धर्म कहा गया है।

हरि०–अधिकारीत्यादि। हे प्रिये! अधिकारिविभेदेनाधिकारिणां विशेषेण पशूनां बाहुल्यतश्च हेतो: क्वचित् कुलाचारोदितं कुलाचारोक्तं धर्म्मं गुप्त्यर्थं कथितम् ॥२२॥

जीवप्रवृत्तिकारीणि कानिचित् कथितान्यपि ।
देवा नानाविधा प्रोक्तां देव्योऽपि बहुधा: प्रियं ।।२३।।
भैरवाश्चैव वेताला वटुका नायिका गणा: ।
शाक्ता: शैवा वैष्णवाश्च सौरा गाणपतादय: ।।२४।।

पद्मा–जीवों की प्रवृत्ति करने वाले भी कुछ तन्त्र-कर्म कहे गये हैं। हे प्रिये ! विविध प्रकार के देव एवं अनेक प्रकार की देवियों के विषय में भी कहे गये हैं। भैरव, बेताल, वटुक, नायिकागण, शैव, शाक्त, वैष्णव, सौर एवं गाणपत्य का भी वर्णन किया गया है।

हरि०–जीवेत्यादि। अधिकारिविभेदेनेत्यनुषज्यते। कानिचित् तन्त्राणि अपीत्यस्य जीवप्रवृत्तिकारीणीत्यत्रान्वय: कर्त्तव्य:॥२३-२४॥

नानामन्त्राश्च यन्त्राणि सिद्धोपायान्यनेकश: ।
भूरिप्रयाससाध्यानि यथोक्त फलदानि च ।।२५।।

पद्मा–अनेक प्रकार के मन्त्र, यन्त्र, विविध प्रकार के सिद्धोपाय, यथोक्त-फलप्रदायक, अत्यन्त ही श्रम से सिद्ध होने वाले अनेक उपाय भी कहे गये हैं ।

हरि०–नानेत्यादि। सिद्धोपायानि सिद्धा: सिद्धिमन्त उपाया तेषु तानि ॥२५॥

यथा यथा कृता: प्रश्ना येन येन यदा यदा ।
तदा तस्योपकारस्य तथैवोक्तं मया प्रिये ।।२६।।
सर्वलोकोपकाराय सर्वप्राणिहिताय च ।
युगधर्मानुसारेण यथातथ्येन पार्वति ।।२७।।
त्वया यादृक्कृता: प्रश्ना न केनापि पुरा कृता: ।
तव स्नेहेन वक्ष्यामि सारात्सारं परात्परं ।।२८।।

पद्मा–हे प्रिये ! जिस-जिस समय जिन-जिन व्यक्तियों ने जो जो प्रश्न पूछा है, उन लोगों के हित हेतु मैंने उसी अनुरुप कहा है। हे पार्वति ! समस्त लोगों के हित हेतु, समस्त प्राणियों के कल्याण हेतु युग के धर्मानुसार यथोचित रूप से तुमने जिस प्रकार का प्रश्न किया है, उस प्रकार का प्रश्न कभी किसी ने नहीं किया। तुम्हारे स्नेह के कारण ही मैं सर्वश्रेष्ठ तन्त्र का भी वर्णन करता हूँ ।

हरि०–यथेत्यादि। यथा यथा यादृशा यादृशा: प्रश्ना: तथैव तादृशमेवोत्तरम् । सर्वलोकोपकारायेत्यस्य त्वया यादृक्कृत: प्रश्न इत्यनेनान्वय: करणीय ॥२६-२८॥

वेदानामागमानाञ्च तन्त्राणाञ्च विशेषत: ।

सारमुद्धृत्य देवेशि तवाग्रे कथ्यते यथा ।।२९।।

पद्मा–हे देवेशि! वेद, आगम, विशेष कर तन्त्रशास्त्र के सार को उद्धृत करके मैं तुम्हारे समक्ष कहता हूँ।

हरि०–वेदानामित्यादि। सारं स्थिरांशम् ॥२९॥

यथा नरेषु तन्त्रज्ञाः सरितां जाह्नवी यथा ।
यथाऽहं त्रिदिवेशानामागमानामिदं तथा ।।३०।।
किं वेदैः किं पुराणैश्च किं शास्त्रैर्बहुभिः शिवे ।
विज्ञातेऽस्मिन् महातन्त्रे सर्वसिद्धीश्वरो भवेत् ।।३१।।

पद्मा–जिस प्रकार मनुष्यों में तन्त्रज्ञानी श्रेष्ठ हैं, नदियों में श्रीगंगा जी श्रेष्ठ हैं, देवताओं में मैं श्रेष्ठ हूँ। उसी प्रकार तन्त्रों में महानिर्वाण तन्त्र श्रेष्ठ है। हे शिवे ! समस्त वेद, पुराण एवं अनेक प्रकार के शास्त्रों का अनुशीलन करने से क्या फल मिलता है ? इस महातन्त्र के ज्ञान मात्र से ही समस्त सिद्धियों का साधक स्वामी हो जाता है।

हरि०–अथ सर्वतन्त्रेभ्यो महानिर्वाणतन्त्रस्य सदृष्टान्तं श्रेष्ठयमाह। यथेत्तयादिना। तन्त्रज्ञ उत्तमा इति शेषः। इदं महानिर्वाणतन्त्रम् ॥३०-३१॥

यतो जगन्मङ्गलाय त्वयाऽहं विनियोजितः ।
अतस्ते कथयिष्यामि यद्विश्वहितकृद्भवेत् ।।३२।।

पद्मा–जिस प्रकार जगत् के कल्याण हेतु तुमने मुझे नियुक्त किया है, अत: जिसके द्वारा विश्व का कल्याण हो; मैं उसको कहता हूँ।

हरि०-यत इत्यादि विनियोजितः प्रवर्त्तितः॥३२॥

कृते विश्वहिते देवि विश्वेशः परमेश्वरि ।
प्रीतो भवति विश्वात्मा यतो विश्वं तदाश्रितम् ।।३३।।

पद्मा–हे देवि! हे परमेश्वरि ! विश्व का हित करने से परमेश्वर प्रसन्न होते हैं; क्योंकि वही विश्वात्मा हैं एवं विश्व उन्हीं का आश्रय लेकर स्थित है।

हरि०–ननु विश्वहितोत्पादकोपायकथनाद्भवतः को लाभोऽत आह कृत इत्यादि। हे देवि! विश्वहिते कृते सति विश्वेशो विश्वेषामस्मदादीनां सर्वेषां नियन्ता परमेश्वरः प्रीतो भवति। ननु विश्वहितोत्पादनात् परमेश्वरे कथं प्रीतिरुत्पद्यते तत्राह विश्वात्मेति। यतः परमेश्वरो विश्वमात्मनि यस्य तथाभूतो भवति, अतो विश्वहितोत्पादनेन तत्र प्रीतिर्जायते इति भावः। ननु तस्य विश्वात्मात्वमेव कथं स्यात्तत्राह यतो विश्वमित्यादि। यतो विश्वं तदाश्रितं तं परमेश्वरमाश्रितं वर्तते विश्वात्मा स भवति ॥३३॥

स एक एव सद्रूपः सत्योऽद्वैतः परात्परः ।
स्वप्रकाशः सदापूर्णः सच्चिदानन्दलक्षणः ।।३४।।

पद्मा–वे एक अद्वितीय सत्य, सद्रूप, परात्पर, स्वप्रकाश, सदापूर्ण एवं सच्चिदानन्द स्वरूप है।

हरि०–अथ सत्यत्वात्तद्ध्यानादेः सर्वेषां प्रीतिजनकत्वान्निर्वाणहेतुत्वाच्च परमात्मैवैको ध्येयः पूज्यः सुखाराध्यश्चेत्यभिधातुं प्रथमतः परमात्मन् एवैकस्य सत्यत्वं तदन्यस्याखिलपदार्थस्य मिथ्यात्वमस्तीति प्रतिपादयति स एक एवेत्यादिभिः। सद्रूपः सत्स्वभाव स परमेश्वर एवैकः सत्यः तदन्यस्तु सर्वः पदार्थोऽसत्यो ज्ञेयः। तत्सत्यत्वे हेतून् दर्शयन्नाह अद्वैत इत्यादि। यतोऽद्वैत सजातीयविजातीयद्वितीयशून्यः अतएव परब्रह्मादेरपि परः श्रेष्ठः स्वेनैवात्मनै व प्रकाशते इति स्वप्रकाशः चन्द्रसूर्य्यादिप्रकाशनिरपेक्ष इत्यर्थः। सदापूर्णः सर्वदा अखण्डः। सच्चिदानन्दलक्षणः सन्तौ सर्वदा स्थायिनौ यौ चिदानन्दौ ज्ञानानन्दौ तत्स्वरुपः ।।३४।।

निर्विकारो निराधारो निर्विशेषो निराकुलः ।
गुणातीतः सर्वसाक्षी सर्वात्मा सर्वदृग्विभुः ।।३५।।

पद्या–वे निर्विकार, निराधार, निर्विशेष, आकुलतारहित, गुणातीत, समस्त प्रकार के शुभ-अशुभ कर्मों के साक्षात् द्रष्टा, सभी की आत्मा, सभी को देखने वाला विभु हैं ।

हरि०–निर्विकारः प्रकृतेरन्यथाभावो विकारः तद्रहितः। निराधारः आश्रय शून्यः। निर्विशेषः स्वगतभेदरहितः। निराकुलः आकुलता शून्यः। गुणातीतः गुणाः शीतोष्णः सुखदुःखादयः सत्त्वादयो वा तानतीतोऽतिक्रान्तः। सर्वसाक्षी सर्वेषां शुभाशुभकर्मणां साक्षात् द्रष्टा। सर्वात्मा सर्वस्वरूपः। सर्वदृक् अखिलस्य पदार्थस्यावलोकयिता। विभुः प्राप्तसमस्तैश्वर्यः।।३५।।

गूढः सर्वेषु भूतेषु सर्वव्यापी सनातनः ।
सर्वेन्द्रियगुणाभासः सर्वेन्द्रियविवर्जितः ।।३६।।

पद्या–वे सर्वव्यापी समस्त भूतों में गूढ़भाव से स्थित हैं, वे समस्त इन्द्रियों से रहित है, तथापि समस्त इन्द्रियाँ एवं इन्द्रियों के विषय उन्हीं से दीप्त होते हैं।

हरि०–सर्वेषु चराचरेषु भूतेषु गूढः संवृतः। सर्वव्यापी सकलपदार्थव्यापनशीलः। सनातनः आद्यन्तशून्यः। सर्वेन्द्रियगुणाभासः सर्वाणीन्द्रियाणि गुणांश्च तद्विषयानाभासयति यः तथाभूतः। सर्वेन्द्रियविवर्जितः चक्षुरादिसकलेन्द्रियशून्यः।।३६।।

लोकातीतो लोकहेतुरवाङ्मनसगोचरः ।
स वेत्ति विश्वं सर्वज्ञस्तं न जानाति कश्चन् ।।३७।।

पद्या–वे लोकातीत, त्रिभुवन का कारण तथा वाक्य, मन से अगोचर, सर्वज्ञ, विश्व को सम्पूर्ण रुप से जानने वाला है, उन्हें कोई भी नहीं जानता है ।

हरि०–लोकातीतोऽतिक्रान्तलोकः। लोकहेतुः भुवनबीजम्। अवाङ्मनसगोचरः वाचो मनसश्चाविषयः। सर्वज्ञः स परमात्मा विश्वं सर्वजगद्वेति जानाति तं परमात्मानन्तु कश्चन अपि न जानाति अतः परमात्मैवैकः सत्य तद्भिन्नस्त्वखिलः पदार्थोनैवम्भूतत्वादसत्य इत्यर्थः।।३७।।

तदधीनं जगत् सर्वं त्रैलोक्य सचराचरम् ।
तदालम्बनतस्तिष्ठेदवितर्क्यमिदं जगत् ।।३८।।
तत्सत्यतामुपाश्रित्य सद्विद्धाति पृथक् पृथक् ।
तेनैव हेतुभूतेन वयं जाता महेश्वरि ।।३९।।

पद्मा–यह सम्पूर्ण जगत् उन्हीं के अधीन है। सम्पूर्ण त्रिभुवन एवं चराचर जगत् उन्हीं पर आश्रित है। यह वितर्क से रहित जगत् परमात्मा के सत्यत्व का आश्रय लेकर इस पृथ्वी, जल, वायु इत्यादि रुपों में पृथक्-पृथक् सत्य के समान प्रकाशित होता है। हे महेश्वरि ! 'ब्रह्म' हेतु भूत होकर भी मुझसे ही उत्पन्न हुआ है ।

हरि०–तदधीनमित्यादि। यत इति अध्याहार्यम् । यतः सर्वं जगत्तदधीनं परमात्मवशवर्त्ति। सचराचरं जङ्गमस्थावरसहितं त्रैलोक्यं तदालम्बनतः परमात्मावलम्बन तस्तिष्ठेत् । इदम् वितर्क्य मनूहनीयं जगत् तत्सत्यतां परमात्मसत्यत्वमुपाश्रित्य इयं पृथ्वी इमा आपः अयं वाय रित्यादिरूपेण पृथक्-पृथक् सद्वत् स्वल्पविद्भाति प्रकाशते इत्यन्वयः। वयं शङ्करादयः॥३८-३९॥

कारणं सर्वभूतानां स एकः परमेश्वरः ।
लोकेषु सृष्टिकरणात् स्रष्टा ब्रह्मेति गीयते ।।४०।।
विष्णुः पालयिता देवि संहर्ताऽहं तदिच्छया ।
इन्द्रादयो लोकपालाः सर्वे तद्वशवर्त्तिनः ।।४१।।
स्वे स्वेऽधिकारे निरतास्ते शासति तदाज्ञया ।
त्वं परा प्रकृतिस्तस्य पूज्याऽसि भुवनत्रये ।।४२।।

पद्मा–वे ही परमेश्वर समस्त प्राणियों का एकमात्र कारण हैं। ब्रह्मा समस्त लोकों की सृष्टि करने के कारण 'स्रष्टा' कहे जाते हैं। हे देवि ! उनकी (परमेश्वर) इच्छा से ही श्रीविष्णु पालन करते हैं तथा 'पालयिता' कहे जाते हैं। उनकी इच्छा से संहार करने में नियुक्त मैं जगत् में 'संहर्ता' नाम से जाना जाता हूँ। इन्द्रादि समस्त लोकपाल सभी उनके वश में हैं। उनकी आज्ञा से वे अपने-अपने अधिकार में नियुक्त होकर जगत् का शासन करते हैं। उनकी 'परा-प्रकृति' हो, इसीलिये तीनो भुवन में तुम पूजित हो ।

हरि०–कारणमित्यादि । एकः केवलः। तदिच्छया परमेश्वरेच्छया। सृष्टिकरणाल्लोकेषु ब्रह्मा स्रष्टेति गीयते शब्द्यते। तदिच्छयैव सृष्टजगत्पालनात् विष्णुः पालयितेति गीयते। तत्संहरणाच्चाऽहं संहर्त्तेति गीयते। इन्द्रादय इत्यादि। तद्वशवर्त्तिनः परमेश्वराधीना ये इन्द्रादयो लोकपालास्ते सर्वो स्वेऽधिकारे निरताः सन्तस्तदाज्ञया लोकान् शासतीत्यन्वयः ॥४०-४२॥

तेनान्तर्यामिरूपेण तत्तद्विषययोजिताः ।
स्वस्वकर्म्म प्रकुर्व्वन्ति न स्वतन्त्राः कदाचन् ।।४३।।
यद्भयाद्वाति वातोऽपि सूर्य्यस्तपति यद् भयात् ।
वर्षन्ति तोयदाः काले पुष्प्यन्ति तरवो वने ।।४४।।

पद्मा–वे परमात्मा अन्तर्यामी रुप में उन सभी को उनके अपने विषयों में नियुक्त कर उनसे कार्य करवाते हैं। कोई जीव कभी भी स्वतंत्र रूप से कार्य नहीं कर सकता है। जिसके भय से वायु का प्रवाह होता है, जिसके भय से सूर्य ताप प्रदान करता है। मेघ समय पर वर्षा करते हैं तथा वन में पुष्प खिलते हैं ।

हरि०–तेनेत्यादि। ते· ·परमात्मना तत्तद्विषययोजिता: तस्मिन् तस्मिन् विषये प्रवर्तिता:। न स्वत त्रा: न स्वाधीना:.. .-४४॥

कालं कालयते काले मृत्योर्मृत्युर्भियो भयम् ।
वेदान्तवेद्यो भगवान् यत्तच्छब्दोपलक्षित: ॥४५॥

पद्म.-जो प्रलयकाल में काल को भी ग्रसते हैं (नाश करते हैं) जो मृत्यु के भी मृत्यु तथा भय के भी भय हैं, जो वेदान्त के द्वारा जानने योग्य हैं, जो यत् यत्शब्दों से उपलक्षित हैं वे ही भगवान् हैं ।

हरि०–कालमित्यादि। काले प्रलयसमये कालमपि कालयते नाशं गमयति भियो भयस्य। यत्तच्छब्दोपलक्षित: यत्तच्छब्दाभ्यां बोधित:॥४५॥

सर्वे देवाश्च देव्यश्च तन्मया सुरवन्दिते ।
आब्रह्मस्तम्बपर्यन्तं तन्मयं सकलं जगत् ॥४६॥

पद्म–हे देवताओं की वन्दनीय ! सभी देवी-देवता इसी में तन्मय हैं। ब्रह्मा से लेकर तृणादि पर्यन्त समस्त जगत् तन्मय है ।

हरि०–सर्वे इत्यादि। तन्मया: परमात्मस्वरुपा:। आब्रह्मस्तम्बपर्यन्तं ब्रह्माणमारभ्य तृणादिगुच्छपर्यन्तं सकलं सम्पूर्णं जगत्तन्मयं परब्रह्मस्वरूपं भवति ॥४६॥:

तस्मिंस्तुष्टे जगत्तुष्टं प्रीणिते जगत् ।
तदाराधनतो देवि सर्वेषां प्रीणनं भवेत् ॥४७॥

पद्म–उन्हीं परमात्मा के सन्तुष्ट होने पर जगत् संतुष्ट होता है, प्रसन्न होने पर सम्पूर्ण जगत् प्रसन्न होता है। हे देवि ! उसकी आराधना से सभी को प्रीति होती है ।

हरि०–तस्मिन्नित्यादि। अत इति शेष:। तस्मिन् परमात्मनि ॥४७॥

तरोर्मूलाभिषेकेण यथा तद्भुजपल्लवा: ।
तृप्यन्ति तदनुष्ठानात् तथा सर्वेऽमरादय: ॥४८॥

पद्म–जिस प्रकार से वृक्ष की जड़ को सींचने पर उसकी शाखा व पत्ते बढ़ते हैं उसी प्रकार उन परमेश्वर की आराधना से सभी देवता तृप्त हो जाते हैं ।

हरि०–परब्रह्माराधनत: सर्वेषां प्रीणने दृष्टान्तमाह तरोरित्यादि। तद्भुजपल्लवा तरो: शाखा किसलयानि च। तदनुष्ठानात् परमेश्वराराधनात् ॥४८॥

यथा तवार्च्चनाद्ध्यानात् पूजनाज्जपनात् प्रिये ।
भवन्ति तुष्टा: सुन्दर्यस्तथा जानीहि सुव्रते ॥४९॥
यथा गच्छन्ति सरितोऽवशेनापि सरित्पतिम् ।
तथार्च्चादीनि कर्म्माणि तदुद्देश्यानि पार्वति ॥५०॥
यो यो यान् यान् यजेद्देवान् श्रद्धया यद्यदाप्तये ।
तत्तद्ददाति सोऽध्यक्षस्तैस्तैर्देवगणै: शिवे ॥५१॥

पद्म–हे प्रिये ! हे सुव्रते ! जिस प्रकार तुम्हारी अर्चना, ध्यान, पूजन तथा जप से

समस्त देवियाँ प्रसन्न होती हैं। हे पार्वति ! जिस प्रकार समस्त नदियाँ विवश होकर समुद्र में जाती हैं, उसी प्रकार पूजन, अर्चन, ध्यानादि कर्म एक ईश्वर में जाते हैं।

जो जो मनुष्य जिस-जिस फल की प्राप्ति हेतु जिस-जिस देवता की पूजा श्रद्धा के साथ करता है, हे शिवे ! वही परमेश्वर रूपी अध्यक्ष उन देवताओं के माध्यम से वही फल उस मनुष्य को प्राप्त होता है।

हरि०–यथेत्यादि। पूजनात् मानसार्च्चनात्। **यथेत्यादि।** तदुद्देश्यानि स परमात्मा उद्देश्यो येषामर्च्चादिकर्मणां तानि। यो य इत्यादि। यद्यदाप्तये यस्य यस्य फलस्य लाभाय। अध्यक्ष: सर्वेषां प्राणिनां तत्तत्क्रियासु प्रवर्त्तक:। ॥४९-५१॥

बहुनाऽत्र किमुक्तेन तवाऽग्रे कथ्यते प्रिये।
ध्येय: पूज्य: सुखाराध्यस्तं विना नास्ति मुक्तये ॥५२॥

पद्मा–हे प्रिये ! तुम्हारे सम्मुख और अधिक तुमसे क्या कहूँ, उस परमात्मा के ध्यान, पूजन एवं सुखाराध्य के अतिरिक्त मुक्ति का अन्य कोई मार्ग नहीं है।

हरि०–बहुनेत्यादि। सुखेनाराध्य उपास्य: सुखाराध्य: ॥५२॥

नाऽऽयासो: नोपवासश्च कायक्लेशो न विद्यते।
नैवाऽऽचारादिनियमो नोपचाराश्च भूरिश: ॥५३॥

पद्मा–उन परब्रह्म परमेश्वर की उपासना में परिश्रम उपवास, काय-क्लेश (शरीर को कष्ट) आचारादि नियम या उपचार की आवश्यकता नहीं है।

हरि०–सुखाराध्यत्वमेव दर्शयन्नाह। नायास इत्यादि। आयास: परिश्रम ॥५३॥

न दिक्कालविचारोऽस्ति न मुद्रान्याससंहति:।
यत्साधने कुलेशानि तं विनाकोऽन्यमाश्रयेत् ॥५४॥

इति श्रीमहानिर्वाणतन्त्रे सर्वतन्त्रोत्तमोत्तमे सर्वधर्म्मनिर्णयसारे श्रीमदाद्याशिवसंवादे जीवनिस्तारोपायप्रश्नो नाम द्वितीयोल्लास: ॥२॥

पद्मा-हे कुलेशानि ! (परब्रह्म के) साधन में दिशा एवं काल के विचार की आवश्यकता नहीं है, मुद्रा एवं न्यास का भी प्रयोजन नहीं है; अत: उन ईश्वर के अतिरिक्त कोई दूसरे का आश्रय भला कौन ग्रहण करेगा।

श्रीमहानिर्वाणतंत्र के द्वितीय उल्लास की 'पद्मा' हिन्दी व्याख्या पूर्ण हुई ॥५४॥

हरि०–तं परमात्मानम् ॥५४॥

इति श्रीमहानिर्वाणतन्त्रटीकायां द्वितीयोल्लास: ॥२॥

तृतीयोल्लासः

श्रीदेव्युवाच

देवदेव महादेव देवतानां गुरोर्गुरो ।
वक्ता त्वं सर्वशास्त्राणां मन्त्राणां साधनस्य च ।।१।।
कथितं यत् परं ब्रह्म परमेशं परात्परम् ।
यस्योपासनतो मर्त्यो भुक्तिं मुक्तिश्च विन्दति ।।२।।
केनोपायेन भगवन् परमात्मा प्रसीदति ।
किं तस्य साधनं देव मन्त्रं को वा प्रकीर्तितः ।।३।।
किं ध्यानं किं विधानञ्च परेशस्य परात्मनः[1] ।
तत्त्वेन श्रोतुमिच्छामि कृपया कथय प्रभो ।।४।।

पद्मा–श्री देवी ने कहा–हे देवाधि देव, महादेव ! आप देवताओं के गुरु के भी गुरु हैं। आप सभी शास्त्रों, मन्त्रों एवं साधनों के उपदेष्टा हैं। आपने परात्पर परब्रह्म परमेश्वर का वर्णन किया, जिनकी उपासना से मनुष्य भोग एवं मोक्ष को प्राप्त करता है। हे भगवन्! परमात्मा किस उपाय के द्वारा प्रसन्न होते हैं। हे देव! उनकी साधना व मन्त्र किस प्रकार का है। हे प्रभो! उन परमात्मा परब्रह्म का ध्यान एवं विधान कैसा है, मैं उस तत्त्व को सुनने को इच्छुक हूँ। आप कृपा करके उसका वर्णन कीजिए ।

हरि०–ॐ नमो ब्रह्मणे

कैवल्यार्थ परमात्मैव ध्येयः पूज्यः सुखाराध्यश्चेत्याकर्ण्य तद्ध्यानादिकं जिज्ञासुः सदाशिवं प्रशंसन्ती देव्युवाच। देवदेवेत्यादि। देवतानां गुरोर्बृहस्पतेरपि गुरो। विन्दति लभते। तस्य परमात्मनः। तत्त्वेन याथार्थ्येन ।।१-४।।

श्री सदाशिव उवाच

अतिगुह्यं परं तत्त्वं शृणु मत्प्राणवल्लभे ।
रहस्यमेतत् कल्याणि न कुत्रापि प्रकाशितम् ।
तव स्नेहेन वक्ष्यामि मम प्राणाधिकं परम् ।।५।।

पद्मा–श्री सदाशिव ने कहा–हे मेरी प्राणवल्लभे ! यह परम तत्त्व अत्यन्त ही गोपनीय है। हे कल्याणि ! इसका रहस्य मैंने आज तक प्रकाशित नहीं किया है। तुम्हारे स्नेहवश मैं इसे कह रहा हूँ। यह तत्त्व मुझे प्राणों से भी अधिक प्रिय है। इसका श्रवण करो।।५।।

हरि०–अथोत्तरयन् सदाशिव उवाच। अतिगुह्यमित्यादि। अतिगुह्यमतिरहस्यं परं तत्त्वं परं ब्रह्म। तत्त्वं ब्रह्मणि याथार्थ्ये इति कोशः। रहस्यं गुह्यम् ।।५।।

१. परेतस्य महात्मनः इति वा पाठः।

ज्ञेयं भवति तद्ब्रह्म सच्चिद्विश्वमयं परम् ।
तथा तत्त्वस्वरूपेण लक्षणैर्वा महेश्वरि ।।६।।

पद्मा–हे महेश्वरि ! सत् चित् विश्वमय उस परब्रह्म को रुप लक्षण एवं तटस्थ लक्षण द्वारा जाना जाता है ।

हरि०–ज्ञेयमित्यादि। हे महेश्वरि सच्चिदविश्वमयं सत् सदा स्थायि चित् चैतन्यं विश्वमशेषं जगत् एतत् स्वरूपं यदतिगुह्यं तत् परं ब्रह्म। तत्त्वस्वरूपेण। ब्रह्मणः स्वरूपेण लक्षणेन तटस्थैर्वा लक्षणैर्यथावत् ज्ञेयं भवति लक्ष्यते। ज्ञायते पदार्थों यैः तानि लक्षणानि तैः। करणेल्युट् ।।६।।

सत्तामात्रं निर्विशेषमवाङ्मनसगोचरम् ।
असत्त्रिलोकीसद्भानं स्वरूपं ब्रह्मणः स्मृतम् ।।७।।

पद्मा–जो सत्ता मात्र, निर्विशेष, वाणी एवं मन के अगोचर हैं जो असत्य त्रिलोकी में सत्य भाषित होता है वही ब्रह्म का स्वरूप कहा जाता है ।

हरि०–ननु किं तत्तत्त्वस्वरुपं येन परं ब्रह्म ज्ञेयं भवेदित्यपेक्षायां ब्रह्मणः स्वरुपं निरुपयति सत्तामात्रमित्यादि। यत् सत्तामात्रं केवल परमार्थसत्त्वस्वरुपनिर्विशेषं स्वगतभेदरहितम्। असत्त्रिलोकीसद्भानम् असत्या मिथ्याभूतायास्त्रिलोक्याः सद्भानं सद्दज्ञानं यस्मात् ब्रह्मणः स्वरूपं स्मृतम् ।।७।।

समाधियोगैस्तद्वेद्यं सर्वत्र समदृष्टिभिः ।
द्वन्द्वातीतैर्निर्विकल्पैर्देहात्माध्यासवर्जितैः ।।८।।

पद्मा–जो समाधि योग के द्वारा जाना जाता है। जो समस्त प्राणियों में समदर्शन है, जो सभी प्रकार के द्वन्द्वों से रहित है निर्विकल्प है अर्थात् कल्पनाशून्य है तथा शरीर निष्ठ आत्मत्व बुद्धि रहित है ।

हरि०–तच्च ब्रह्मस्वरूपं परमहंसैरेव वेदितव्यमित्याह समाधीत्यादिना। सर्वत्र समदृष्टिभिः सर्वत्रारिमित्रादौ समा तुल्या दृष्टिर्येषां तैः। द्वन्द्वातीतैः अतिक्रान्तसुख दुःखशीतोष्णादिभिः। निर्विकल्पैर्नानाविधकल्पनाशून्यैः। देहात्माध्यासवर्जितैः शरीरनिष्ठात्मत्वबुद्धिरहितैर्योगिभिः। दर्शनादयः तै करणैः तद्ब्रह्म वेद्यं भवति अथवा समाधीयते चित्तमस्मिन्निति समाधिः परमेश्वरः उपसर्गे घोः किरित्यधिकरणे किः। तत्र योगाः सम्यग्दर्शनादयो येषां तैः समाधियोगैर्ज्ञनैः।।८।।

यतो विश्वं समुद्भूतं येन जातञ्च तिष्ठति ।
यस्मिन् सर्वाणि लीयन्ते ज्ञेयं तद्ब्रह्म लक्षणैः ।।९।।

पद्मा–जिससे यह सम्पूर्ण विश्व (ब्रह्माण्ड) उत्पन्न होता है, जिससे उत्पन्न होकर स्थित रहता है तथा प्रलय समय में यह सम्पूर्ण विश्वलीन हो जाता है वही ब्रह्म है जो तटस्थ लक्षण द्वारा जाना जाता है ।

हरि०–तटस्थलक्षणानि दर्शयन्नाह यतो विश्वमित्यादि। यतो हेतुभूतात् विश्वमशेषं

जगत् समुद्भूतं जातम् । जातञ्च सद्विश्वं येनावलम्बनभूतेन तिष्ठति। प्रलयकाले सर्वाणि चराण्यचराणि च भूतानि यस्मिन् लीयन्ते लीनानि भवन्ति तद्ब्रह्म तटस्थैरेतैर्लक्षणैर्ज्ञेयं वेदितव्यम् ॥९॥

स्वरुपबुद्ध्या यद्वेद्यं तदेव लक्षणैः शिवे ।
लक्षणैराप्तुमिच्छूनां विहितं तत्र साधनम् ॥१०॥

पद्मा–हे शिवे ! स्वरूप बुद्धि द्वारा जो ब्रह्म जाना जाता है, वही तटस्थ लक्षण द्वारा जाना जाता है। तटस्थ लक्षण के द्वारा जो ब्रह्म जानने के इच्छुक हैं उनके लिये साधन उपेक्षित है ।

हरि०–स्वरूपलक्षणेन तटस्थलक्षणेन च वेदितव्यः ब्रह्मणो भेदो नास्तीति प्रतिपादयितुमाह स्वरूपबुद्ध्येत्यादि। हे शिवे! स्वरुपबुद्ध्या यद्ब्रह्म वेद्यं ज्ञेयं भवति, तदेव ब्रह्म तटस्थैरपि लक्षणैर्वेद्यं भवेत् । स्वरूपलक्षणेन ब्रह्माधिन्तुमिच्छतां जनानां साधनानपेक्षत्वात्तटस्थैरेव लक्षणतटस्थलक्षणेषु मध्ये तटस्थैर्लक्षणैब्रह्माप्तुमधिगन्तुमिच्छूनां जनानां साधनं विहितम् ॥१०॥

तत्साधनं प्रवक्ष्यामि शृणुष्वावहिता प्रिये ।
तत्रादौ कथयाम्याद्ये मन्त्रोद्धारं महेशितुः ॥११॥

पद्मा–हे प्रिये ! उस साधन को सावधान होकर सुनो। हे महेशानि ! सर्वप्रथम मैं मन्त्रोद्धार का वर्णन करता हूँ ।

हरि०–तदित्यादि। हे प्रिये! तत्साधनं तटस्थलक्षणैर्वेद्यस्य ब्रह्मणः साधनमहं प्रवक्ष्यामि अवहिता सावधानां सतीत्वं शृणुष्व। तत्र साधने वक्तव्ये आदौ प्रथमतो महेशितुर्महेश्वरस्य मन्त्रोद्धारं कथयामि ॥११॥

प्रणवं पूर्वमुद्धृत्य सच्चित्पदमुदाहरेत् ।
एकं पदान्ते ब्रह्मेति मन्त्रोद्धारः प्रकीर्त्तितः ॥१२॥

पद्मा–सर्वप्रथम प्रणव अर्थात् ॐ का उच्चारण कर तत्पश्चात् 'सच्चित' पद का उच्चारण करें। तदुपरान्त 'एकं' पद इसके बाद 'ब्रह्म' पद का उच्चारण करने से मन्त्रोद्धार होता है। इस प्रकार मन्त्र बनता है–ॐ सच्चिदेकं ब्रह्म' यह सप्ताक्षरी मन्त्र है ।

हरि०–मन्त्रोद्धारमेव कथयति प्रणवमित्यादिना। पूर्व प्रथम प्रणवमोङ्कारमुद्धृत्य ततोऽनन्तरं सच्चित्पदमुदाहरेत् वदेत् । सच्चित्पदान्ते च एकं ब्रह्मेत्युदाहरेत् । ततश्च ॐ सच्चिदेकं ब्रह्मेत्याकारको मन्त्रो निष्पन्नः। मन्त्रोद्धारोऽयमेव प्रकीर्त्तितः कथितः॥१२॥

सन्धि क्रमेण मिलितः सप्तार्णोऽयं मनर्मतः ।
तारहीनेन देवेशि षड्वर्णोऽयं मनुर्भवेत्[1] ॥१३॥

पद्मा–हे देवेशि ! सन्धि क्रम के अनुसार मिलकर यह मन्त्र सप्ताक्षर अर्थात् सात

१. *षड्वर्णोयो मनुर्मत इति पाठः ।*

अक्षरों का होगा। प्रणवरहित अर्थात् ॐ पृथक कर देने से यह मन्त्र षड्क्षर अर्थात् छः अक्षरों का होगा।

हरि०–सन्धीति। हे देवेशि! सन्धिक्रमेण मिलित सङ्गतोऽयं मनुर्मन्त्रः सप्तार्णः सप्त-वर्णको मतः। तारहीनेन प्रणवत्यागेनायं पूर्वोक्त एव मनुः षड्वर्णो भवेत् ॥१३॥

सर्वमन्त्रोत्तमः साक्षाद्धर्मार्थकाममोक्षदः।
नात्र सिद्धाद्यपेक्षाऽस्ति नारिमित्रादिदूषणम् ॥१४॥

पद्या–यह मन्त्र समस्त मन्त्रों में श्रेष्ठ है। यह साक्षात् धर्म-अर्थ-काम तथा मोक्ष को प्रदान करने वाला है। इस मन्त्र में सिद्धादि चक्र के विचार की अपेक्षा नहीं होती है तथा शत्रु-मित्र आदि के दोष की सम्भावना नहीं है।

हरि०–अथेमं मन्त्रं स्तौति सर्वेत्यादिना। अयं मन्त्रः सर्वेषु मन्त्रेषूत्तमः श्रेष्ठः। सर्वमन्त्रोत्तमत्वमेवाह साक्षादित्यादिना ॥१४॥

न तिथिर्न च नक्षत्रं न राशिगणनं तथा।
कुलाकुलादिनियमो[1] न संस्कारोऽत्र विद्यते।
सर्वथा सिद्धमन्त्रोऽयं नात्र कार्या विचारणा ॥१५॥

पद्या–इस मन्त्र के ग्रहण में तिथि, नक्षत्र, राशि, कुलाकुलादि चक्र के नियम संस्कार आदि के गणना की आवश्यकता नहीं है। यह मन्त्र सर्वथा सिद्ध मन्त्र है। इसमें किसी प्रकार के विचार की आवश्यकता नहीं है।

हरि०–न तिथिरिति। तिथिर्न गणनीयेति शेषः ॥१५॥

बहुजन्मार्जितैः पुण्यैः सद्गुरुर्यदि लभ्यते।
तदा तद्वक्त्रतो ज्ञात्वा[2] जन्मसाफल्यमाप्नुयात् ॥१६॥

पद्या–अनेक जन्मों के प्राप्त पुण्यों के फल से यदि सद्गुरु प्राप्त हो जाय तो उनके श्री मुख से निकले हुये इस मन्त्र को ग्रहण करने से साधक का जन्म सफल हो जाता है।

हरि०–अथैतस्य मन्त्रस्य ग्रहीतुः पुरुषस्य सर्वोत्तमत्वं प्रतिपादयितुमाह यदित्यादि। तद्वक्त्रतः सद्गुरुमुखात् मन्त्रमिमं ज्ञात्वा ॥१६॥

चतुर्वर्गं करे कृत्वा परत्रेह च मोदते ॥१७॥

पद्या–वह साधक धर्म, अर्थ काम एवं मोक्ष को प्राप्त कर इस लोक एवं परलोक में आनन्द भोग करता है।

हरि०–चतुर्वर्गमिति। धर्मार्थकाममोक्षैरुपलक्षितो वर्गः समूहश्चतुर्वर्गम्। त्रिवर्गो धर्मकामार्थैश्चतुर्वर्गः समोक्षकैरित्यमरः। परत्र परलोके ॥१७॥

सः धन्यः स कृतार्थश्च स कृती स च धार्मिकः।
स स्नातः सर्वतीर्थेषु सर्वयज्ञेषु दीक्षितः ॥१८॥

---

१. कुलाकुलानां नियमः इति पाठः। २. लब्ध्वा इति पाठः।

सर्वशास्त्रेषु निष्णातः सर्वलोकप्रतिष्ठितः ।
यस्य कर्णपथोपान्तप्राप्तो[1] मन्त्रमहामणिः ।।१९।।

पद्मा–महामणिरूपी यह मन्त्र जिसके कानों में पहुँचता है, वही धन्य है। वही कृतार्थ है, वही कृती है, वही धार्मिक है, वही समस्त तीर्थों में नहाये हुये है, वही समस्त यज्ञों में दीक्षित हुआ है। वह व्यक्ति ही समस्त शास्त्रों में निष्णात है तथा समस्त लोकों में प्रतिष्ठित है ।

हरि०–**निष्णातो निपुणः**। कर्णपथस्योपान्तं प्राप्तः कर्णपथोपान्तप्राप्तः। मन्त्र एव महामणिः॥१८-१९॥

धन्या माता पिता तस्य पवित्रं तत्कुलं शिवे ।
पितरस्तस्य सन्तुष्टा मोदन्ते त्रिदशैः सह ।
गायन्ति गायनीं गाथां पुलकाञ्चितविग्रहाः ।।२०।।

पद्मा–हे शिवे ! उस साधक के माता-पिता धन्य हैं उसका कुल पवित्र है, उसके पितृगण सन्तुष्ट होकर देवताओं के साथ आनन्द लाभ करते हुए तथा पुलकित शरीर से यह गाथा गाया करते हैं ।

हरि०–**पितर इति** । गीयते इति गायनी ताम् । ल्युट् वेति बाहुलकात् कर्मणि ल्युट्। पुलकैः रोमहर्षणैरञ्चिता अधिगता विग्रहा देहा येषां तथाभूताः सन्तः। (पुलकाङ्कितविग्रहा इति पाठेऽप्यङ्कितं चिह्नितमित्यर्थः)॥२०॥

अस्मत्कुले कुलश्रेष्ठो जातो ब्रह्मोपदेशिकः ।
किमस्माकं गयापिण्डैः किं तीर्थैः श्राद्धतर्पणैः ।।२१।।
किं दानैः किं जपैर्होमैः किमन्यैर्बहुसाधनैः ।
वयमक्षयतृप्ताः स्म सत्पुत्रस्यास्य साधनात् ।।२२।।

पद्मा–हमारे कुल में उत्पन्न पुत्र ने ब्रह्ममन्त्र की दीक्षा लेकर कुल को पवित्र किया है। हम लोगों के हेतु गया में पिण्डदान, तीर्थ एवं श्राद्ध व तर्पण की आवश्यकता नहीं है। हमारे लिये दान, जप, होम तथा बहुत से अन्य साधनों की अवश्यकता नहीं है। हम अपने इस सत्पुत्र द्वारा किये गये कार्य से ही अक्षय तृप्ति को प्राप्त हो गये हैं।

हरि०–तां गाथामेवाह अस्मत्कुल इत्यादिभ्यां द्वाभ्याम् । ब्रह्मोपदेशिकः ब्रह्मोपदेशवान्। अक्षयतृप्ताः अविनश्वरतृप्तिमन्तः ॥२१-२२॥

शृणु देवि जगद्वन्द्ये सत्यं सत्यं मयोच्यते ।
परब्रह्मोपासकानां किमन्यैः साधनान्तरैः ।।२३।।

पद्मा–हे देवि! हे जगद्वन्द्ये! सुनो! मैं तुमसे सत्य-सत्य कहता हूँ। ब्रह्म के उपासक को अन्य किसी साधन की आवश्यकता नहीं है ।

हरि०–**शृण्वित्यादि** । साधनान्तरैः साधनविशेषैः ॥२३॥

---

१. कर्णपथोपान्ते प्राप्तः इति पाठ ।

मन्त्रग्रहणमात्रेण देही ब्रह्ममयो भवेत् ।
ब्रह्मभूतस्य देवेशि किमवाप्यं जगत्त्रये ।।२४।।

पद्मा–हे देवेशि ! मन्त्र को ग्रहण करने मात्र से साधक ब्रह्ममय हो जाता है तथा जो ब्रह्ममय हो जाता है उसके लिये तीनों लोकों में कुछ भी अप्राप्य नहीं है ।

हरि०–मन्त्रेत्यादि। किमवाप्यं किं लब्धव्यमस्ति अपि तु सर्ववस्तु लब्धमेवास्तीत्यर्थः।।२४।।

किं कुर्वन्ति ग्रहा रुष्टा वेतालाश्चेटकादयः ।
पिशाचा गुह्यका भूता डाकिन्यो मातृकादयः ।
तस्य दर्शनमात्रेण पलायन्ते पराङ्मुखाः ।।२५।।

पद्मा–ग्रह, वेताल, चेटकगण, पिशाच, गुह्यक, भूत, डाकिनी आदि तथा मातृकागण साधक से रुष्ट होकर भी उसका कुछ भी नहीं बिगाड़ सकते हैं। यह सब साधक के दर्शन मात्र से पलायन कर जाते हैं ।

हरि०–तस्य ब्रह्मभूतस्य दर्शनमात्रेण पराङ्मुखाः सन्तो ग्रहादय पलायन्ते ।।२५।।

रक्षितो ब्रह्ममन्त्रेण प्रावृतो ब्रह्मतेजसा ।
किं विभेति ग्रहादिभ्यो मार्त्तण्ड इव चापरः ।।२६।।

पद्मा–ब्रह्ममन्त्र से रक्षित एवं ब्रह्मतेज से आवृत्त (ढका हुआ) वह साधक दूसरे सूर्य की भाँति है। उसे ग्रहादि से क्या भय होगा ?

हरि०–रक्षित इत्यादि । ब्रह्मभूतो जनो ग्रहादिभ्यो विभेति भीतो भवति किम् । किन्तु न विभेतीत्यर्थः। मार्त्तण्ड इव सूर्य इव ।।२६।।

तं दृष्ट्वा ते भयापन्नाः सिंहं दृष्ट्वा यथा गजाः ।
विद्रवन्ति च नश्यन्ति पतङ्गा इव पावके ।।२७।।

पद्मा–उस साधक को देखकर ग्रहादि उसी प्रकार भाग जाते हैं जैसे सिंह को देखकर हाथी भाग जाते हैं, और पतंग अग्नि में जलकर नष्ट हो जाते हैं ।

हरि०–तमित्यादि। तं परब्रह्मोपासकम् । ते ग्रहादयः। विद्रवन्ति पलायन्ते । पतङ्गा इव शलभा इव ।।२७।।

न तस्य दुरितं किञ्चिद्ब्रह्मनिष्ठस्य देहिनः ।
सत्यपूतस्य शुद्धस्य सर्वप्राणिहितस्य च ।
को वोपद्रवमन्विच्छेदात्मापघातकं विना ।।२८।।

पद्मा–वह ब्रह्मनिष्ठ साधक, सत्यपूत, सभी प्राणियों का हित करने वाला, शुद्ध अतःकरण युक्त होता है। वह किसी भी प्रकार के पापों से ग्रसित नहीं होता है। आत्मघाती के अतिरिक्त कौन मनुष्य ऐसे व्यक्ति के प्रति उपद्रव करने की इच्छा करेगा ।

हरि०–शुद्धस्य निर्मलान्तः करणस्य ।।२८।।

ये द्रुह्यन्ति खलाः पापाः परब्रह्मोपदेशिने[1] ।
स्वद्रोहं न प्रकुर्वन्ति ह्यतिरिक्तायतः सतः ।।२९।।

पद्मा–जो दुष्ट तथा पापात्मा मनुष्य परब्रह्म उपासक के साथ दुष्टता करते हैं वे स्वयं अपना ही अनिष्ट करते हैं; क्योंकि ब्रह्म तथा परब्रह्म का उपासक एक ही है इसके अतिरिक्त कोई भी नहीं है ।

हरि०–य इत्यादि । ये पापाः पापशीलनः खला दुर्जनाः परब्रह्मोपदेशिने जनाय द्रुह्यन्ति तस्यापकारं विदधति ते पापाः स्वद्रोहमेव प्रकुर्वन्ति। परब्रह्मोपदेशिने इति क्रुधद्रुहेर्ष्यासूयार्थानां यं प्रति कोप इति सम्प्रदानत्वात् चतुर्थी सम्प्रदाने इति चतुर्थी । परब्रह्मोपदेशिजनद्रोहकरणात् स्वस्यैवापकारस्योत्पादने हेतुं दर्शयन्नाह नातिरिक्ता इत्यादि यतो हेतो सतः साधोर्ब्रह्मभूताद् ब्रह्मोपदेशिनो जनात् तेऽतिरिक्ता भिन्ना न भवन्ति अतः स्वद्रोहमेव प्रकुर्वन्तीति भावः ।।२९।।

स तु सर्वहितः साधुः सर्वेषां प्रियकारकः ।
तस्यानिष्टे कृते देवि को वा स्यान्निरुपद्रवः ।।३०।।

पद्मा–हे देवि ! वह ब्रह्मोपासक साधक सबका प्रिय, साधु एवं सभी का हितकारी होता है। ऐसे साधक का अनिष्ट कर कौन व्यक्ति शान्तिपूर्वक रह सकता है ।

हरि०–स तु ब्रह्मनिष्ठस्तु ।।३०।।

मन्त्रार्थं मन्त्रचैतन्यं यो न जानाति साधकः ।
शतलक्षप्रजप्तोऽपि तस्य मन्त्रो न सिद्ध्यति ।।३१।।
अतोऽस्यार्थञ्च चैतन्यं कथयामि शृणु प्रिये ।
अकारेण जगत्पाता संहर्त्ता स्यादुकारतः ।।३२।।

पद्मा–जो साधक मन्त्र का अर्थ तथा उसके चैतन्य करने की विधि को नहीं जानता है वह चाहे करोड़ बार भी जप कर ले, उसे मन्त्रसिद्ध नहीं होता है। हे प्रिये ! इसलिये मन्त्र का अर्थ एवं उसके चैतन्य करने की विधि कहता हूँ सुनो! अ उ 'म्' इन तीन वर्णों से मिलकर प्रणव अर्थात् 'ॐ' मन्त्र बनता है । अ का तात्पर्य है जगत् की रक्षा करने वाला 'उ' का तात्पर्य है संहार करने वाला ।

हरि०–मन्त्रार्थमिति तस्य साधकस्य यतो न सिद्ध्यति अतः प्रथमतः प्रणवार्थ निरुपयति अकारेणेत्यादिना ।।३१-३२।।

मकारेण जगत्स्रष्टा प्रणवार्थ उदाहृतः ।
सच्छब्देन सदा स्थायि चिच्चैतन्यं प्रकीर्त्तितम् ।।३३।।
एकमद्वैतमीशानि बृहत्त्वाद्ब्रह्म गीयते ।
मन्त्रार्थः कथितो देवि साधकाभीष्टसिद्धिदः ।।३४।।

पद्मा–'म' कार का अर्थ है जगत् की सृष्टि करने वाला। प्रणव (ॐ) का यही अर्थ

---

१. परब्रह्मोपदेशिनः इति पाठः ।

कहा गया है। ''सत'' शब्द का अर्थ है 'सदा स्थिर'। 'चित' शब्द का अर्थ है चैतन्य। हे ईशानि! हे देवि! 'एक' शब्द का अर्थ है अद्वैत। बृहत् होने से ब्रह्म कहा गया है।

हरि०–अथ सच्चिदादिपदार्थमाह सच्छब्देनेत्यादिना ॥३३-३४॥

मन्त्रचैतन्यमेतत्तु तदधिष्ठातृदेवता ।
तज्ज्ञानं परमेशानि भक्तानां सिद्धिदायकम् ॥३५॥

पद्या–हे परमेशानि ! मन्त्र का अधिष्ठात देवता ही 'मन्त्र का चैतन्य' है। मन्त्र के अधिष्ठातृ देवता का ज्ञान ही भक्तों को सिद्धि प्रदान करता है।

हरि०–अथमन्त्रचैतन्यमभिधत्ते मन्त्रेत्यादिना। हे परमेशानि! पातस्य मन्त्रस्याधिष्ठात्री देवता तस्या यत् ज्ञानमेतदेव मन्त्रचैतन्यं जानीहीत्यन्वयः। तच्चाधिष्ठातृदेलताज्ञानं भक्तानां सिद्धिदायकं भवेत् ॥३५॥

अस्याधिष्ठातृ देवेशि सर्वव्यापि सनातनम् ।
अवितर्क्यं निरातङ्क[१] वाचातीतं निरञ्जनम् ॥३६॥

पद्या–हे देवेशि! जो सर्वव्यापी, सनातन, अवितर्क्य, वाणी से अतीत तथा निरञ्जन है।

हरि०–नन्वस्य मन्त्रस्य काऽधिष्ठात्री देवतेत्यपेक्षायामाह अस्येत्यादि। हे देवेशि सर्वव्यापि सकलपदार्थव्यापनशीलम्। सनातन प्रागभावध्वंसरहितम्। अवितर्क्यमनूहनीयम्। निराकारमाकृतिशून्यम्। वाचातीतमतिक्रान्तवाक्। निरञ्जनम् मनश्चक्षुराद्यविषयभूतम्। यद् ब्रह्म तदस्य मन्त्रस्याधिष्ठातृ भवेत् ॥३६॥

वाङ्मायाकमलाद्येन तारहीनेन पार्वति ।
दीयते विविधा विद्या माया श्रीः सर्वतोमुखी ॥३७॥

पद्या–हे पार्वति ! यह मंत्र तार अर्थात् प्रणव (ॐ) से रहित होकर ऐं, ह्रीं, श्रीं को प्रारम्भ में जोड़ने से अनेक विद्यायें, माया तथा सर्वतोमुखी लक्ष्मी की प्राप्ति प्रदान करता है।

हरि०–**वागित्यादि**। हे पार्वति! वाङ्मायाकमलाद्येन ऐमिति ह्रीमिति श्रीमिति वीजमाद्यं यस्य तथाभूतेन। तारहीनेन प्रणवरहितेन पूर्वोक्तेन मन्त्रेण क्रमतो विविधा अनेकप्रकारा विद्या दीयते विविधा माया दीयते सर्वतो मुखं यस्य एवम्भूता श्रीर्लक्ष्मीर्दीयते। तथा ऐं सच्चिदेकं ब्रह्मेत्यनेन मन्त्रेण विद्या दीयते। ह्रीं सच्चिदेकं ब्रह्मेत्यनेन माया दीयते। श्रीं सच्चिदेकं ब्रह्मेत्यनेन तु श्रीरिति ॥३७॥

तारेण तारहीनेन प्रत्येकं सकलं पदम् ।
युग्मयुग्मक्रमेणाऽपि मन्त्रोऽयं विविधो भवेत् ॥३८॥

पद्या–इस मन्त्र को प्रत्येक पद में अथवा सभी पदों में तारयुक्त अर्थात् प्रणवयुक्त या प्रणवहीन करने से मन्त्र के दो ही दो पदों प्रणवयुक्त या प्राणवीन करने से विविध प्रकार के मन्त्र बनते हैं।

हरि०–अथैतस्यैव मन्त्रस्य नानाविधत्वं सम्पादयति तारेणेत्यादिना। पूर्वोक्तमन्त्रस्य प्रत्येकं पदं सकलं वा पदं तारेण प्रणवेन सहितं कर्त्तव्यं तारहीनेन प्रणवत्यागेनोपलक्षितं वा विधेयम्। ततश्चायं मन्त्रो विविधो भवेत्। युग्मयुग्मक्रमेणापि। प्रणवसहितस्तद्रहितो वायं पूर्वोक्तां पदं यथा ओं सत्। ओं चित्। ओ एकम्। ओं ब्रह्म सत्। चित्। एकम्। ब्रह्म इति। प्रणवसम्बद्धं तदसम्बद्धं समस्तं पदम् यथा ओं सच्चिदेकं ब्रह्मेति। युग्मयुग्मक्रमतो यथा ओं सद्ब्रह्म। चिद्ब्रह्म। एकं ब्रह्म। इ सच्चित्। चिदेकमिति ॥३८॥

विशेष–प्रत्येक प्रद में प्रणव जोड़ने पर–ॐ सत्, ॐ चित्, ॐ एकं, ॐ ब्रह्म।

प्रणव रहित करने पर - सत् तं, चित, एकं, ब्रह्म।

समस्त पदों में प्रणव जोड़ने पर – ॐ सच्चिदेकं ब्रह्म।

समस्त पदों में प्रणव रहित करने पर–सच्चिदेकं ब्रह्म।

दो-दो पदों में प्रणव जोड़ने पर–ॐ सद् ब्रह्म, ॐ चिद् ब्रह्म, ॐ एकं, ब्रह्म, ॐ सच्चित्, ॐ चिदेकम्।

प्रणवरहित करने पर – सद्ब्रह्म, चिद् ब्रह्म, एकं ब्रह्म, सच्चिद् चिदेकम् ॥

ऋषिः सदाशिवो ह्यस्य छन्दोऽनुष्टुबुदाहृतम।
देवता परमं ब्रह्म सर्वान्तर्यामि निर्गुणम् ॥३९॥
चतुर्वर्गफलावाप्त्यै विनियोगः प्रकीर्तितः।
अङ्गन्यासकरन्यासौ कथयामि शृणु प्रिये ॥४०॥

पद्य–इस मन्त्र के ऋषि सदाशिव, छन्द अनुष्टुप् देवता सर्वान्तर्यामी निर्गुण परब्रह्म हैं। चतुर्वर्ग-धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष की प्राप्ति हेतु विनियोग कहा गया है। हे प्रिये! अङ्गन्यास तथा कर न्यास का वर्णन करता हूँ। उसका श्रवण करो।

ऋष्यादिन्यास– शिरसि सदाशिवाय ऋषये नमः।
मुखे अनुष्टुप् छन्दसे नमः।
हृदि सर्वान्तर्यामिनिर्गुणपरब्रह्मणे देवतायै नमः।
धर्मार्थ - काम मोक्षावाप्तये विनियोगः ॥३९-४०॥

हरि०–अथास्य मन्त्रस्य ऋष्यादिकमाह ऋषिरित्यादिना सार्द्धेन। अस्य मन्त्रस्य। सर्वान्तर्यामि सर्वान्तर्नियन्तृ। अस्य मन्त्रस्य सदाशिव ऋषिरनुष्टुप्छन्दः सर्वान्तर्यामि निर्गुण परमं ब्रह्म देवता धमार्थकाममोक्षावाप्तये विनियोगः। शिरसि सदाशिवाय ऋषये नमः। मुखेऽनुष्टुप्छन्दसे नमः हृदि सर्वान्तर्यामिनिर्गुणपरमब्रह्मणे देवतायै नमः धर्म्मार्थकाममोक्षवाप्तये विनियोगः। इति ऋषिन्यासं विधायाङ्गन्यासकरन्यासौ विधातव्यौ अतस्तावभिधातुमाह अङ्गन्यासेत्यादि ॥३९-४०॥

तारं सच्चिदेकमिति ब्रह्मेति सकलं ततः।
अङ्गुष्ठार्जनीमध्यानामिकासु महेश्वरि ॥४१॥

कनिष्ठयोः करतलपृष्ठोः सुरवन्दिते ।
नमः स्वाहा वषट् हूँ वौषट् फड़न्तैर्यथाक्रमम् ।।४२।।
न्यसेन्न्यासोक्तविधिना साधकः सुसमाहितः ।
हृदादिकरपर्यन्तमेवमेव विधीयते ।।४३।।

पद्म–हे महेश्वरि ॐ, सत्, चित् एकम् ब्रह्म को क्रम से उच्चारण करके अंगुष्ठ, तर्जनी, मध्यमा, अनामिका तथा कनिष्ठा इन अंगुलियों में एवं दोनो करतल पृष्ठों में क्रमशः नमः, स्वाहा, वषट्, हुँ, वौषट्' तथा फट् को क्रम से अन्त में उच्चारण कर संयत चित्त से न्यासोक्त विधि से न्यास करें। इसी प्रकार हृदय से कर तक करें। जैसे ॐ अंगुष्ठाभ्यां नमः। सत्तर्ज्जनीभ्यां स्वाहा, चिन्मध्यमाभ्यां वषट्, एकमनामिकाभ्यां हूँ। ब्रह्मकनिष्ठभ्यां वौषट् ॐ सच्चिदेकं ब्रह्म करतलपृष्ठाभ्यांफट् यह करन्यास है। ॐ हृदयाय नमः। सच्छिरसे स्वाहा। विच्छिखायै वषट् । एकं कवचाय हूँ। ब्रह्म नेत्रत्र, याय वौषट्। ॐ सच्चिदेकं ब्रह्म करतलकरपृष्ठाभ्यां फट् यह अंगन्यास है ।

हरि०–तयोर्मध्ये प्रथमतः करन्यासमाह तारमित्यादिभ्यां सार्द्धाभ्यां द्वाभ्याम् । हे महेश्वरि! हे सुखन्दिते। नमः स्वाहावषट् हूँ वौषट्फड़न्तैः अन्तभूतैर्नमः स्वाहावषट्हूँवौषट्फट्रूपैः पदैर्विशिष्ट तारं प्रणवं सदिति चिदिति एकमिति ब्रह्मेति। ततोऽनन्तरम् । ॐ सच्चिदेकं ब्रह्मेति सकलञ्च पदम् अङ्गुष्ठ तर्जनीमध्यानामिकासु कनिष्ठयोः करतलपृष्ठोश्च न्यासोक्तविधिना सुसमाहितोऽतिसावधानः सन् साधको यथा क्रमं न्यसेत् । क्रमो यथा ओं अङ्गुष्ठाभ्यां नमः। सत्तर्ज्जनीभ्यां स्वाहा। चिन्मध्यमाभ्यां वषट्। एकमनाभिकाभ्यां हूँ। ब्रह्मकनिष्ठाभ्यां वौषट्। ॐ सच्चिदेकं ब्रह्म करतलपृष्ठाभ्यां फट् । इति करन्यासः। अथाङ्गन्यासमाहार्द्धेन हृदित्यादि। हृदादिकरपर्य्यन्तं प्रत्येवमेव न्यासो विधीयते। यथा ओं हृदयाय नमः। सच्छिरसे स्वाहा। चिच्छिखायै वषट्। एक कवचाय हूँ। ब्रह्मनेत्रत्रयाय वौषट्। ओं सच्चिदेकं ब्रह्म करतलकरपृष्ठाभ्यां फट् इति ॥४१-४३॥

प्राणायामं ततः कुर्यात् मूलेन प्रणवेन वा ।
मध्यमानामिकाभ्याञ्च दक्षहस्तस्य पार्वति ।।४४।।
वामानासापुटं धृत्वा दक्षनासापुटेन च ।
पूरयेत् पवनं मन्त्री मूलमष्टमितं जपन् ।।४५।।
अङ्गुष्ठो दक्षनासां धृत्वा कुम्भकयोगतः ।
जपेद्द्वात्रिंशताऽऽवृत्त्या ततो दक्षिणनासया ।।४६।।
शनैः शनैस्त्यजेद्वायुं जपन् षोडशधा मनुम् ।
वामानासापुटेऽप्येवं पूरकुम्भकरेचकम् ।।४७।।
पुनर्दक्षिणतः कुर्यात् पूर्ववत् सुरपूजिते ।
प्राणायामविधिः प्रोक्तो ब्रह्ममन्त्रस्य साधने ।।४८।।

पद्म–हे पार्वति ! तत्पश्चात् मूलमन्त्र या प्रणव से प्राणायाम करें। दाहिने हाथ की

मध्यमा तथा अनामिका अंगुलियों से बायें नासापुट को बन्द कर दाहिने नासापुट से वायु को आकर्षित करके आठ बार मूल मन्त्र से या प्रणव का जप करे, तत्पश्चात् अंगूठे से दाहिने नासापुट को बन्द कर कुम्भक (श्वास की गति को अवरुद्ध कर) कर बत्तीस बार जप करे। तदुपरान्त दाहिने नासापुट से धीरे-धीरे श्वांस छोड़ते हुए सोलह बार मन्त्र का जप करे। इसी इसी प्रकार बायें नासापुट से रेचक, पूरक एवं कुम्भक करे। हे सुरपूजिते! तत्पश्चात् दाहिने नासापुट से प्रारम्भ करके बायें नासापुट पर क्रम से पूर्व की भाँति रेचक, पूरक एवं कुम्भक करें। मैंने ब्रह्ममन्त्र के साधन में प्राणायाम की यह विधि तुमसे कही।

हरि०–एवमङ्गन्यासकरन्यासौ विधाय प्राणायामो विधेय इत्याह प्राणायाम-मित्यादिना। ततोऽनन्तरम् ओं सच्चिदेकं ब्रह्मेत्यादि मूलमन्त्रेण प्रणवेन ओंकारेण वा प्राणायामं कुर्यात्। ननु प्राणायामः। कथं विधातव्य इत्यपेक्षायां तद्विधानमाह मध्येमेत्यादिभिः सार्द्धैश्चतुर्भिः। हे पार्व्वति दक्षिणहस्तस्य मध्यमानामिकाभ्यामङ्गुलिभ्यां वामनासापुटं धृत्वा मन्त्री साधकोऽष्टमिदं मूलमन्त्रं जपन् सन् दक्षिणनासापुटेन पवनं वायु पूरयेत्। ततो दक्षहस्तस्यैवाङ्गुष्ठेन दक्षनासापुटं धृत्वा कुम्भकयोगतो द्वात्रिंशता आवृत्त्या मूल मन्त्रं जपेत्। ततः षोडशधामनु मूलमन्त्रं जपन् सन् दक्षिणनासायैव शनैः शनैर्वायुं त्यजेत्। ततो वामनासापुटेप्यवमेव पूरक कुम्भकरेचकं कुर्यात्, क्रमेणैवाकृष्टं निश्चलं विमुक्तञ्च श्वासं विदध्यादित्यर्थः पूर्ववत् पुनर्दक्षिणतोऽपि पूरककुम्भकरेचकं कुर्यात्। ब्रह्ममन्त्रस्य साधने एष प्राणायामविधिः प्रोक्तः। पूरकादिस्वरुपमाह योगियाज्ञवल्क्यः।

नासिकोत्कृष्ट उच्छ्वासो ध्मात-पूरक उच्यते।
कुम्भको निश्चलश्वासो मुच्यमानस्तु रेचकः॥
ततो ध्यानं प्रकुर्वीत साधकाभीष्टसाधनम्॥४९॥

पद्मा–इसके अनन्तर साधक अपने अभीष्ट को सिद्ध करने वाले का ध्यान करे।

हरि०–इत्थं प्राणायामं कृत्वा परब्रह्मध्यानं कर्तव्यमित्याह तत इत्यादिना॥४९॥

हृदयकमलमध्ये निर्विशेषं निरीहम्।
हरिहरविधिवेद्यं योगिभिर्ध्यानगम्यम्।
जननमरणीभीतिभ्रंसि सच्चित्स्वरूपम्।
सकलभुवनवीजं ब्रह्म चैतन्यमीडे॥५०॥

पद्मा–जो निर्विशेष (अनेक भेदों से रहित) निरीह (चेष्टा रहित), विष्णु, शिव एवं ब्रह्मा द्वारा ज्ञेय, योगियों को ध्यान द्वारा ज्ञेय, जिनके द्वारा जन्म-मृत्यु का भय निवारण होता है, जो सदा ज्ञानस्वरूप है जो समस्त ब्रह्माण्डों के बीज है, ऐसे चैतन्यस्वरूपमय ब्रह्म का मैं अपने हृदय कमल के मध्य में ध्यान करता हूँ।

हरि०–अथ तद्ध्यानमाह हृदयेत्यादि। हृदयकमलस्य मध्ये स्थितं चैतन्यं चेत् ब्रह्माहमीडे ध्यायामीत्यन्वयः। धातूनामनेकार्यत्वादीड्धातोर्ध्यनिऽनोऽपि प्रवृत्तिः। निर्विशेषमित्यादीनि

ब्रह्मणो विशेषणानि। निर्विशेषेन विधभेदशून्यम् । निरीहं निराकाङ्क्षम् प्राप्तसमस्तैश्वर्यमित्यर्थ गम्यम् ध्यानेनावगन्तव्यम् । जननमरणभीतिभ्रंसि जन्ममृत्युनिमित्तभयपहन्तु। सच्चित्स्वरूपं सदास्थायिस्वरूपं ज्ञानस्वरूपपक्षेत्यर्थ सकलभुवनबीजं समस्तस्य भुवनस्य कारणम् ॥५०॥

ध्यात्वैवं परमं ब्रह्म मानसैरुपचारकैः ।
पूजयेत् परया भक्त्या ब्रह्मसायुज्यहेतवे ॥५१॥
धूपं दद्याद्वायुतत्त्वं दीपं तेजः समर्पयेत् ।
नैवेद्यं तोयतत्त्वेन प्रदद्यात् परमात्मने ॥५२॥

पद्मा–ब्रह्म सायुज्य के हेतु परा भक्ति के साथ परम ब्रह्म का भी इसी प्रकार ध्यान कर मानसिक पूजन करे। मानसिक पूजन में वायुतत्त्व को धूप, तेज तत्त्व को दीप एवं जल तत्त्व को नैवेद्य मानकर प्रदान करें।

हरि०–एवं ब्रह्म ध्यात्वा तस्य पूजनं विधेयमित्याह ध्यात्वेत्यादिना। मानसैर्मन सङ्कल्पितैः। ब्रह्मसायुज्यहेतवे ब्रह्मत्वनिमित्ताय। स्याद् ब्रह्मभूयं ब्रह्मत्वं ब्रह्मसायुज्यमित्यपीत्यमरः। मानसानुपचारानेवाह गन्धमित्यादिना ॥५१-५२॥

ततो जप्त्वा महामन्त्रं मनसा साधकोत्तमः ।
समर्प्य ब्रह्मणे पश्चाद्बहिः पूजां समारभेत् ॥५३॥
उपस्थितानि द्रव्याणि गन्धपुष्पादिकानि च ।
वस्त्रालङ्करणादीनि भक्ष्यपेयानि यानि च ॥५४॥
मन्त्रेणानेन संशोध्य ध्यात्वा ब्रह्म सनातनम् ।
निमील्य नेत्रे मतिमानर्पयेत् परमात्मने ॥५५॥

पद्मा–तत्पश्चात् साधक महामन्त्र 'ॐ सच्चिदेकं ब्रह्म' का जप कर ब्रह्म को समर्पित करे, तत्पश्चात् बाह्य पूजा करे। गन्ध-पुष्प वस्त्रालङ्कारादि, भक्ष्य द्रव्य जो भी उपस्थित हो उन सभी को कहे जा रहे मन्त्र के द्वारा शोधित कर, दोनों नेत्रों को बन्द कर परम् ब्रह्म का ध्यान करे परमात्मा को समर्पित करे ।

हरि०–**तत इति** । महामन्त्रम् ओं सच्चिदेकं ब्रह्मेत्याद्यात्मकम् । समर्प्य महामन्त्र जपहेतुकं फलं दत्त्वा।। बहिः पूजामेवाह उपस्थितानीत्यादिना। उपस्थितानि समीपे स्थितानि। अनेन इतोऽनन्तरमेव वक्ष्यमाणेन मन्त्रेण ॥५३-५५॥

ब्रह्मार्पणं ब्रह्महविर्ब्रह्माग्नौ ब्रह्मणा हुतम् ।
ब्रह्मैव तेन गन्तव्यं ब्रह्मकर्म्मसमाधिना ॥५६॥

पद्मा–यह गन्धपुष्पादि के अर्पण का ब्रह्मार्पण मन्त्र है। अर्पण भी ब्रह्म है। यज्ञपात्र भी ब्रह्म है। हवि अर्थात् घृतादि हवनीय द्रव्य जो अर्पित करता है वह भी ब्रह्म है। जिस अग्नि में आहुति प्रदान की जाती है वह भी ब्रह्म है। आहुति प्रदान करने वाला भी ब्रह्म है। ब्रह्म में मन को जो स्थिर करता है वह ब्रह्म को ही प्राप्त होता है ।

हरि०–अथ गन्ध पुष्पाद्यर्पणमन्त्रमेवाह ब्रह्मार्पणमिति। अर्प्यते दीयतेऽनेनेत्यर्पणं स्रुवादि यज्ञपात्रम् तदपि ब्रह्मैव। दीयमानं हविर्घृतादिकमपि ब्रह्मैव। ब्रह्मैवाग्निस्तस्मिन् । ब्रह्मणा कर्त्ता हुतं हवनमपि ब्रह्म। अग्निश्च कर्त्ता च हवन क्रिया चापि ब्रह्मैवेत्यर्थः। एवं ब्रह्मण्येव कर्म्मात्मके समाधिश्चित्तैकाग्र्यञ्च यस्य तेन पुंसा ब्रह्मैव गन्तव्यं प्राप्तव्यं न तु फलान्तरमित्यर्थः॥५६॥

ततो नेत्रे समुन्मील्य जप्त्वा मूलं स्वशक्तितः ।
तज्जपं ब्रह्मसात् कृत्वा स्तोत्रञ्च कवचं पठेत् ॥५७॥

पद्या–तत्पश्चात् अपनी क्षमतानुसार जप करके दोनों आँखे खोल कर उपरोक्त मन्त्र (ब्रह्मार्पण०) का उच्चारण करके ब्रह्म को समर्पित कर स्तोत्र एवं कवच का पाठ करें ॥५७॥

हरि०–**तत इत्यादि** । समुन्मील्य उद्धाट्य । मूलं मूलमन्त्रम् । ब्रह्मसात् ब्रह्माधीनम् ॥५७॥

स्तोत्रं शृणु महेशानि ! ब्रह्मणः परमात्मनः ।
यच्छ्रुत्वा साधको देवि ! ब्रह्मसायुज्यमश्नुते ॥५८॥

पद्या–हे महेशानि, हे देवि ! परम ब्रह्म के स्तोत्र का श्रवण करो। जिसके सुनने से साधक ब्रह्मसायुज्य को प्राप्त होता है ।

हरि०–**स्तोत्रमिति** । ब्रह्मसायुज्यमश्नुते ब्रह्मत्त्वं प्राप्नोति ॥५८॥

नमस्ते सते सर्वलोकाश्रयायनमस्ते चिते विश्वरूपात्मकाय ।
नमोऽद्वैततत्त्वाय मुक्तिप्रदाय नमो ब्रह्मणे व्यापिने निर्गुणाय ॥५९॥

पद्या–तुम नित्य (सत्), समस्त लोकों के आश्रय हो, तुम्हें नमस्कार है। तुम प्रज्ञारूप हो, तुम विश्व की आत्मारूप हो, तुम अद्वैत तत्त्व हो, तुम मुक्ति प्रदायक हो, तुम सर्वव्यापी निर्गुण ब्रह्म को नमस्कार है।

हरि०–अथ तत्स्तोत्रमाह नमस्ते इत्यादि। सते सदा स्थायिने। सर्वलोके श्रयाय सकललोकाधारभूताय। चिते चैतन्याय। विश्वरूप आत्मा यस्य तस्मै। अद्वैततत्त्वाय सजातीय विजातीयात्मगतभेदरहिततत्त्वाय ब्रह्मणे अतिबृहते अतएव व्यापिने सकलवस्तुव्यापनशीलाय निर्गुनणाय सत्त्वदिगुणरहिताय ॥५९॥

त्वमेकं शरण्यं त्वमेकं वरेण्यंत्वमेकं जगत्कारणं विश्वरूपम् ।
त्वमेकं जगत्कर्तृपातृप्रहर्त्तृत्वमेकं परं निश्चलं निर्विकल्पम् ॥६०॥

पद्या–तुम ही एकमात्र शरणदाता हो, तुम ही एकमात्र वरणीय हो। तुम ही जगत् के एकमात्र सृष्टिकर्त्ता, पालनकर्त्ता एवं विध्वंसकर्त्ता हो, तुम ही एकमात्र श्रेष्ठ शासक हो, तुम ही निश्चल एवं अनेक कल्पनाओं से रहित हो ।

हरि०–**त्वमित्यादि**। एकं मुख्यं केवलं वा। शरणे रक्षणे साधु इति शरण्यम् । तत्र साधुरिति यत्। वरेण्यं वरणीयम् । जन्ममृत्युदुःखादिभिरुपासनीयमित्यर्थः। परं श्रेष्ठम् । निर्विकल्पम् नानाविधकल्पनाशून्यम् ॥६०॥

भयानां भयं भीषणं भीषणानां, गतिः प्राणीनां पावनं पावनानाम् ।
महोच्चैः पदानां नियन्तृ त्वमेकं, परेषां परं रक्षकं रक्षकाणाम् ।।६१।।

पद्मा-तुम भय के भी भय हो, भीषण के भी भीषण हो, केवल तुम ही मात्र प्राणियों की गति हो, पवित्रों के भी पवित्र हो, अति उच्चपदों (ब्रह्मादिपद) के एकमात्र तुम्हीं नियामक हो, तुम श्रेष्ठों में भी श्रेष्ठ हो तथा रक्षकों के भी रक्षक हो।

हरि०-भयानामित्यादि। भीषणानां भयानकानामपि भीषणं भयानकम् । पावनानां पूतत्वजनकानामपि पावनम् पावित्र्यजनकम् । पदानां स्थानानां मध्ये महोच्चैरत्युच्छ्रितं पदम् अथवा महोच्चैरत्युच्छ्रितं पदं येषां तेषां ब्रह्मादीनामपि नियन्तृ नियामकम् । परेषां श्रेष्ठानामपि॥६१॥

परेश प्रभो सर्वरूपाप्रकाशिन् अनिर्देश्य सर्वेन्द्रियागमम्य सत्य ।
अचिन्त्याक्षर व्यापकाव्यक्त तत्त्व जगद्भासकाधीश पायादपापात् ।।६२।।

पद्मा-हे परेश! हे प्रभो! तुम सर्वरूप, अमर-अविनाशी, निर्देश रहित, समस्त इन्द्रियों से अगम्य हो। हे नित्य, हे अचिन्त्य, हे अक्षर, हे व्यापक, हे रूपादि से रहित, हे जगद्भासकाधीश (चन्द्र सूर्यादि के ईश्वर) तुम हमारी भक्ति बुद्धि आदि के विश्लेषण से रक्षा करो।

हरि०-परेशेतयादि। परेश परेषां ब्रह्मादीनामप्यधिप। प्रभो नियन्तः। अनिर्देश्यशब्देन निर्देष्टुम-शक्य। सर्वेन्द्रियागम्य सर्वैनेत्रादिभिरिन्द्रियैरप्राप्य। सत्य परमार्थ सत्यशालिन अचिन्त्य मनसोऽप्यविषयभूत। न क्षरति चलतीत्यक्षरम् तत्सम्बोधने अक्षर। अव्यक्त रूपादिरहित। जगद् भासकानां चन्द्रसूर्यादीनामपीश्वर अथक जगाद्भाकेति अधीशेति च भिन्नमेवपदम् (पायात रक्षत्) अपायात् भक्तिबुद्ध्यादिविश्लेषात् ॥६२॥

तदेकं समरामस्तदेकं जपामः, तदेकं जगत्साक्षिरूपं नमामः ।
सदेकं निधानं निरालम्बमीशं भवाम्बोधिपोतं शरण्यं व्रजामः ।।६३।।

पद्मा-हम उसी एकमात्र ब्रह्म का स्मरण एवं जप करते हैं, उसी एक मात्र साक्षि स्वरूप ब्रह्म का नमन करते हैं, तुम वही सत् हो, तुम जगत् के एकमात्र आश्रयभूत हो। तुम आश्रयशून्य एवं ईश्वर हो। भवरूपी सागर के पोत (जलयान) स्वरूप हो, हम तुम्हारी शरण ग्रहण करते हैं ।

हरि०-तदित्यादि। तत् ब्रह्म निधीयते जगद् यस्मिन् तन्निधानं जगदाश्रय भूतम् । निरालम्बम् आश्रयशून्यम् ॥६३॥

पञ्चरत्नमिदं स्तोत्रं ब्रह्मणः परमात्मनः ।
यः पठेत् प्रयतो भूत्वा ब्रह्मसायुज्यमाप्नुयात् ।।६४।।
प्रदोषेऽदः पठेन्नित्यं सोमवारे विशेषतः ।
श्रावयेद्बोधयेत् प्राज्ञो ब्रह्मनिष्ठान् स्वबान्धवान् ।।६५।।

पद्मा-यह 'पञ्चरत्न' नामक परब्रह्म स्तोत्र का जो साधक स्थिरचित्त हो पाठ करता है वह ब्रह्मसायुज्य को प्राप्त करता है ।

प्रदोषकाल में नित्य इस स्तोत्र का पाठ करें। सोमवार को विशेष रूप से इस स्तोत्र को ज्ञानी व्यक्ति अपनी भाई-बन्धुओं को सुनायें एवं बताये।

हरि०—अथ पञ्चरत्नाख्यैतत्स्तोत्रपाठहेतुकं फलमाह पञ्चरत्नमित्यादिना प्रयत: पवित्र:। अद: स्तोत्रम् ॥६४-६५॥

इति ते कथितं देवि पञ्चरत्नं महेशितु: ।
कवचं शृणु चार्वङ्गि जगन्मङ्गलनामकम् ।
पठनाद्धारणाद् यस्य ब्रह्मज्ञो जायते ध्रुवम् ।।६६।।

पद्मा—हे देवि! हे चार्वङ्गि! शिव के इस पञ्चरत्न स्तोत्र को तुमसे कहा। अब उनके जगन्मंगल नामक कवच का श्रवण करो। इस कवच के पाठ करने एवं धारण करने से साधक निश्चितरूप से ब्रह्मज्ञानी हो जाता है।

हरि०—स्तोत्रं पठित्वा कवचं पठितव्यमतस्तदभिधातुमुपक्रमते इतीति॥६६॥

परमात्मा शिर: पातु हृदयं परमेश्वर: ।
कण्ठं पातु जगत्पाता वदनं सर्वदृग्विभु: ।।६७।।
करौ मे पातु विश्वात्मा पादौ रक्षतु चिन्मय: ।
सर्वाङ्गं सर्वदा पातु परं ब्रह्म सनातनम् ।।६८।।

पद्मा—परमात्मा हमारे शिर की रक्षा करें, परमेश्वर हृदय प्रदेश की रक्षा करें। कण्ठ की रक्षा जगत्पाता करें, मुख की रक्षा सर्वदर्शी विभु करें। कर अर्थात् हाथों की रक्षा विश्वात्मा करें, पैरों की रक्षा विश्वात्मा करें। हमारे सर्वाङ्ग की रक्षा सनातन परब्रह्म करें।

हरि०—तद् ब्रह्मकवचमेवाह परमात्मेत्यादि। चिन्मय: चैतन्यरूप: ॥६७-६८॥

श्रीजगन्मङ्गलस्यास्य कवचस्य सदाशिव: ।
ऋषिश्छन्दोऽनुष्टुबिति परमब्रह्म देवता ।
चतुर्वर्गफलावाप्त्यै विनियोग प्रकीर्त्तित: ।।६९।।
य: पठेद् ब्रह्मकवचं ऋषिन्यासपुर:सरम् ।
स ब्रह्मज्ञानमासाद्य साक्षाद् ब्रह्ममयो भवेत् ।।७०।।
भूर्ज्जे विलिख्य गुटिकां स्वर्णस्थां धारयेत् यदि ।
कण्ठे व दक्षिणे बाहौ सर्वसिद्धीश्वरो भवेत् ।।७१।।

पद्मा—इस जगन्मंगल कवच में ऋषि सदाशिव, छन्द अनुष्टुप्, देवता परमब्रह्म फल चतुर्वर्ग की प्राप्ति हेतु विनियोग कहा गया है। जो भी साधक इस ब्रह्मकवच के ऋषिन्यास कर पाठ करता है वह ब्रह्मज्ञान को प्राप्त करके साक्षात् ब्रह्ममय हो जाता है। भोज-पत्र पर इस कवच को लिखकर सोने की गुटिका में वेष्टित कर गले या दाहिनी भुजा में धारण करने पर समस्त प्रकार की सिद्धियों का अधीश्वर होता है।

हरि०—अथास्य कवचस्य ऋष्यादिकमाह श्रीजगदित्याना। अथ ब्रह्मकवचपठनजन्यं

फलमाह य इत्यादिना। ऋषिन्यासः पुरःसरो यत्र तत्। ऋषिन्यासश्च अस्य श्री जगन्मङ्गल-नामकस्य कवचस्य सदाशिव ऋषिः अनुष्टुप्छन्दः परमब्रह्म देवता धर्म्मार्थकाममोक्षावाप्त्यै श्री जगन्मङ्गलाख्यकवचपाठे विनियोगः। शिरसि सदाशिवाय ऋषये नमः। मुखेऽनुष्टुप्छन्दसे नमः। हृदये परब्रह्मणे देवतायै नमः। धर्म्मार्थ काममोक्षावाप्तये श्रीजगन्मङ्गलाख्यक-वचपाठे विनियोग इति। आसाद्य प्राप्य। ब्रह्मयः ब्रह्मस्वरूपः ॥६९-७१॥

इत्येतत् परमब्रह्मकवचं ते प्रकाशितम् ।
दद्यात् प्रियाय शिष्याय गुरुभक्ताय धीमते ॥७२॥
पठित्वा स्तोत्रकवचं प्रणमेत् साधकाग्रणीः ॥७३॥
नमस्ते परमं ब्रह्म नमस्ते परमात्मने ।
निर्गुणाय नमस्तुभ्यं सद्रूपाय नमो नमः ॥७४॥

पद्य—इस परमब्रह्म कवच को मैंने तुमसे कहा। इस कवच को गुरू भक्त प्रिय बुद्धिमान् शिष्य को ही प्रदान करे। साधकों में अग्रणी साधक इस कवच का पाठ करके प्रणाम करे। परम ब्रह्म को नमस्कार है, परमात्मा को नमस्कार है, आप सत्त्वादि गुणों से रहित है आपको प्रणाम हैं, आप सत् स्वरूप हैं, आपको अनेक बार नमस्कार हैं ।

हरि०—इतीति। ते तुभ्यं तवाग्रे वा। प्रणमेत् परमात्मानमिति शेषः। साधकाग्रणीः साधकोत्तमः। तत्प्रणमनमेवाह नम इत्यादिना ॥७२-७४॥

वाचिकं कायिकं वाऽपि मानसं वा यथामति ।
आराधने परेशर्वस्य भावशुद्धिर्वधीयते ॥७५॥

पद्य—परम ब्रह्म की उपासना में, शारीरिक, वाचिक या मानसिक तीनों प्रकार से प्रणाम या नमस्कार किये जा सकते हैं जिससे भाव शुद्धि हो, उसी विधि का प्रयोग करें ।

हरि०—ननु परमात्मानं प्रति कायिकवाचिकमानसास्त्रयोऽपि प्रणामा विधातव्यास्तेषां मध्ये एकतमो वा तत्राह वाचिकमित्यादि। यथामति परब्रह्मणे कायिकस्यैव प्रणामस्यौचित्यं नतु वाचिकमानसयोरत आह आराधन इत्यादि। भावशुद्धिरन्तःकरणशुद्धत्वम् ॥७५॥

एवं संपूज्य मतिमान् स्वजनैर्बान्धवैः सह ।
महाप्रसादं स्वीकुर्याद् ब्रह्मणः परमात्मनः ॥७६॥
पूजने परमेशस्य नावाहनविसर्जने ।
सर्वत्र सर्वकालेषु साधयेद् ब्रह्मसाधनम् ॥७७॥
अस्नातो वा कृतस्नानो भुक्तो वाऽपि बुभुक्षितः ।
पूजयेत् परमात्मानं सदा निर्मलमानसः ॥७८॥

पद्य—बुद्धिमान् व्यक्ति इस प्रकार परम ब्रह्म की पूजा कर अपने स्वजन बन्धुओं के साथ महाप्रसाद ग्रहण करे। परम ब्रह्म की पूजा के समय आवाहन व विसर्जन नहीं होता हैं, सभी स्थानों में, किसी भी समय में ब्रह्म की साधना की जा सकती है। स्नान या बिना

स्नान, भोजन या भूखे जिस भी अवस्था में हो, परब्रह्म की पूजा निर्मल मन से करे।

हरि०—एवमित्यादि। संपूज्य परमात्मानमिति शेषः। साधयेत् निष्पादयेत् ॥७६-७८॥

अनेन ब्रह्मन्त्रेण भक्ष्यपेयादिकञ्च यत्।
दीयते परमेशाय तदेव पावनं महत् ॥७९॥
गङ्गातोये शिलादौ च स्पृष्टदोषोऽपि वर्तते।
परब्रह्मार्पिते द्रव्ये स्पृष्टास्पृष्टं न विद्यते ॥८०॥

पद्मा—इस ब्रह्ममन्त्र द्वारा भक्ष्य, पेय आदि जो भी वस्तु परम ब्रह्म को प्रदान की जाती है वह अत्यन्त ही पवित्र होती है। गंगाजल, शालग्राम शिला में स्पर्श दोष लगता है परन्तु परब्रह्म को अर्पित द्रव्य में स्पर्श-अस्पर्श का दोष नहीं लगता है।

हरि०—अथ ब्रह्मणो महाप्रसादस्य माहात्म्यं वर्णयितुमुपक्रमते अनेनेत्यादि। ब्रह्ममन्त्रेण ओं सच्चिदित्याद्यात्मकेन ब्रह्मार्पणमित्याद्यात्यकेन वा॥ शिलादौ शालग्राम शिलादौ ॥७९-८०॥

पक्वं वाऽपि न पक्वं वा मन्त्रेणानेन मन्त्रितम्।
साधको ब्रह्मसात् कृत्वा भुञ्जीयात् स्वजनैः सह ॥८१॥
नात्र वर्णविचारोऽस्ति नोच्छिष्टादिविवेचनम्।
न कालनियमोऽप्यत्र शौचाशौचं तथैव च ॥८२॥
यथाकाले यथादेशे यथायोगेन लभ्यते।
ब्रह्मसात् कृतनैवेद्यमश्नीयादविचारयन् ॥८३॥
आनीतं श्वपचेनापि श्वमुखादपि निःसृतम्।
तदन्नं पावनं देवि देवानामपि दुर्लभम् ॥८४॥
किं पुनर्मनुजादीनां वक्तव्यं देववन्दिते।
परमेशस्य नैवेद्यसेवनाद् यत् फलं भवेत् ॥८५॥
महापातकयुक्तो वा कष्यन्यपातकैः।
सकृत् प्रसादग्रहणात् मुच्यते नात्र संशयः ॥८६॥
सार्द्धत्रिकोटितीर्थेषु स्नानदानेन यत्फलम्।
तत् फलं लभते मर्त्यो ब्रह्मार्पितनिषेवणात् ॥८७॥
अश्वमेधादिभिर्यज्ञैरिष्ट्वा यत् फलमश्नुते।
भक्षिते ब्रह्म नैवेद्ये तस्मात् कोटिगुणं लभेत् ॥८८॥
जिह्वाकोटिसहस्रैस्तु वक्त्रकोटिशतैरपि।
महाप्रसादमाहात्म्यं वर्णितुं नैव शक्यते ॥८९॥

पद्मा—द्रव्य चाहे कच्चा हो या पका हुआ उपरोक्त मन्त्र के द्वारा उसे अभिमन्त्रित करके साधक ब्रह्मसात् करे तथा अपने स्वजनों के साथ भोजन करे। यहाँ पर वर्ण (ब्राह्मणादि) तथा जूठा (उच्छिष्ट) आदि का विचार नहीं है न काल-नियम तथा शौच-अशौच (पवित्र-

अपवित्र) का विचार है। जिस समय, जिस देश में तथा जिस योग में ब्रह्म को समर्पित नैवेद्य प्राप्त हो उसका विचार न करके भक्षण करे। चाण्डाल द्वारा लाया हुआ या कुत्ते के द्वारा लाया गया अन्न भी पवित्र है। हे देवि ! वह अन्न पवित्र है तथा देवताओं को भी दुर्लभ है। हे देववन्दिते! मनुष्यों के लिये इसकी दुर्लभता क्या कही जाए। महापातक युक्त या किसी पाप से ग्रसित व्यक्ति एक बार इस प्रसाद को भक्षण कर ले तो उसके किये गये सभी पाप निश्चित रूप से समाप्त हो जाते हैं। साढ़े तीन-करोड़ तीर्थों में स्नान व दान से जो फल मिलता है, वही फल ब्रह्म को समर्पित वस्तु के सेवन करने से प्राप्त हो जाता है। अश्वमेधादि यज्ञों से जो फल मनुष्यों को प्राप्त होता है उससे कोटि (करोड़) गुणा अधिक फल ब्रह्म को समर्पित वस्तु के भक्षण से प्राप्त होता है। हे देवि! मैं करोड़ो जिह्वाओं एवं सौ करोड़ मुखों से भी महाप्रसाद के माहात्म्य को वर्णन करने में समर्थ नहीं हूँ।

हरि०—पक्वमिति। मन्त्रेण ओं तत् सदित्याद्यात्मकेन। नात्रेति। अत्र ब्रह्मणो महाप्रसादे। आनीतमिति। श्वपचेन चाण्डालेनाप्यानीतं यदन्नं तद्ब्रह्मसात्कृत सत् पावनं भवेत्। अश्नुते लभते॥८१-८९॥

यत्र कुत्र स्थितो वापि प्राप्य ब्रह्मार्पितामृतम्।
गृहीत्वा कीकशो वाऽपि ब्रह्मसायुज्यमाप्नुयात्॥९०॥

पद्मा—जहाँ कहीं भी, किसी स्थान में स्थित हो, ब्रह्म को समर्पित महाप्रसाद को यदि चाण्डाल भी ग्रहण कर ले तो उसे भी ब्रह्म-सायुज्य प्राप्त करता है।

हरि०—यत्रेत्यादि। अमृतम् शीधु। कीकशो वापि चाण्डालोऽपि॥९०॥

यदि स्यान्नीचजातीयमन्नं ब्रह्मणि भावितम्।
तदन्नं ब्राह्मणैर्ग्राह्यमपि वेदान्तपारगैः॥९१॥
जातिभेदो न कर्तव्यः प्रसादे परमात्मनः।
योऽशुद्धबुद्धिं कुरुते स महापातकी भवेत्॥९२॥

पद्मा—यदि अन्न नीच जाति के मनुष्यों का है किन्तु ब्रह्म को समर्पित है तो उसे वेदान्तदर्शी ब्राह्मण भी ग्रहण कर सकता है। जाति भेद का विचार ब्रह्मप्रसाद के ग्रहण में न करें। यदि इस प्रसाद के ग्रहण में अशुद्धि का विचार करता है वह महापापी होता है।

हरि०—यदीति। नीचजातीयं चाण्डालादिसम्बन्धि। ब्रह्मणिभावितं चिन्तितं ब्रह्मणेऽर्पितमित्यर्थः॥९१-९२॥

वरं पापशतं कुर्याद्वरं विप्रवधं प्रिये।
परब्रह्मार्पिते ह्यन्ने न कुर्यादवहेलनम्॥९३॥
ये त्यजन्ति नरा मूढा महामन्त्रेण संस्कृतम्।
अन्नतोयादिकं भद्रे पितॄंस्ते पातयन्त्यधः॥९४॥

पद्मा—हे प्रिये! व्यक्ति चाहे सौ पाप करे या ब्राह्मण की हत्या करे, किन्तु परब्रह्म को

समर्पित अन्न की कणी भी उपेक्षा या अवहेलना न करे। हे भद्रे! जो मूढ़ (अज्ञानी) व्यक्ति इस महामन्त्र के द्वारा संस्कृत अन्न-जल का परित्याग करते है, उनके पितृगणों का अध:पतन होता है।

हरि०—वरमित्यादि । वरमीषत् प्रियम् । देवाद्वृते वर: श्रेष्ठ त्रिषु क्लीवं मनाक् प्रिये इत्यमर:। अवहेलनम् तिरस्कारम् ।।९३-९४।।

स्वयमप्यन्धतामिस्रे पतन्त्याहूतसंप्लवम् ।
ब्रह्मसात्कृतनैवेद्यद्वेष्टृणां नास्ति निष्कृति: ।।९५।।

पद्मा—वे मूर्ख व्यक्ति प्रलय काल पर्यन्त, अन्धतामिस्र नामक नरक में पतित होकर रहते हैं। ब्रह्म को समर्पित नैवेद्य से जिसको द्वेष है उनका कुछ भी प्रायश्चित नहीं होता है।

हरि०—स्वयमित्यादि। अन्धतामिस्र नरके। आहूतस्य विश्वस्य संप्लव: सलिले सम्यक् प्लवनं यत्र तत्कालपर्य्यन्तम् प्रलयकालपर्य्यन्तमित्यर्थ:। निष्कृतिर्निस्तार:।।९५।।

पुण्यायन्ते क्रिया: सर्वा: सुषुप्ति: सुकृतायते ।
स्वेच्छाचारोऽत्र विहितो महामन्त्रस्य साधने ।।९६।।

पद्मा—जो व्यक्ति महामन्त्र की साधना करता है उसके सभी पाप कर्म पुण्य कर्मों में परिवर्तित हो जाते हैं, सुषुप्ति (निद्रा) भी श्रेष्ठ कर्म एवं स्वेच्छाचार भी प्रशस्त कर्म माना जाता है ।

हरि०—पुण्येत्यादि । सर्वा अपुण्या अपि क्रिया: पुण्यायन्ते पुण्या इवाचरन्तीत्यर्थ:।।९६।।

किं तस्य वैदिकाचारैस्तान्त्रिकैर्वाऽपि तस्य किम् ।
ब्रह्मनिष्ठस्य विदुष: स्वेच्छाचारो विधि: स्मृत: ।।९७।।
कृतेनास्य फलं नास्ति नाकृतेनापि किल्विषम् ।
न विघ्न: प्रत्यवायोऽस्य ब्रह्ममन्त्रस्य साधनात् ।।९८।।

पद्मा—जो साधक ब्रह्मनिष्ठ होता है उसे वैदिक आचार एवं तांत्रिक आचार से कोई प्रयोजन नहीं रहता। ब्रह्म साधक का स्वेच्छाचार ही विधिसम्मत कहा जाता है। उनके किसी भी अनुष्ठान के करने या न करने का उन्हें कोई पाप पुण्य प्राप्त नहीं होता है। ब्रह्ममन्त्र के साधक के प्रभाव से उन्हे कोई विघ्न या दोष नहीं व्याप्त होता है ।

हरि०—किमित्यादि। विदुष: सर्वं ब्रह्मैवेति जानत:। स्वेच्छाचार एव विधि:। अस्य ब्रह्मनिष्ठस्य:।।९७-९८।।

अस्मिन् धर्म्मे महेशि स्यात् सत्यवादी जितेन्द्रिय: ।
परोपकारनिरतो निर्विकार: सदाशय: ।।९९।।
मात्सर्यहीनोऽदम्भी च दयावान् शुद्धमानस: ।
मातापित्रो प्रीतिकारी तयो: सेवनतत्पर: ।।१००।।

पद्मा—हे महेशि! इस धर्म की साधना करते समय साधक सत्यवादी जितेन्द्रिय,

परोपकारी, विकार रहित एवं सदाशग मात्सर्यहीन, दम्भहीन, दयावान, शुद्धचित्त, माता-पिता का प्रीतिकारी तथा उनकी सेवा में तत्पर रहे।

हरि०—अस्मिन्नित्यादि। सदाशयः साध्वभिप्रायः। मात्सर्यहीनः अन्यशुभद्वेषरहितः। अदम्भी कपटताशून्यः। तयोः माता पित्रोः ॥९९-१००॥

ब्रह्मश्रोता ब्रह्मन्ता ब्रह्मान्वेषणमानसः।
यतात्मा दृढबुद्धिः स्यात् साक्षाद् ब्रह्मेति भावयन् ॥१०१॥
न मिथ्याभाषणं कुर्यान्न परानिष्टचिन्तनम्।
परस्त्रीगमनञ्चैव ब्रह्ममन्त्री विवर्जयेत् ॥१०२॥
तत्सदिति वदेद्देवि प्रारम्भे सर्वकर्म्मजाम्।
ब्रह्मार्पणमस्तु वाक्यं पानभोजन कर्म्मणोः ॥१०३॥
येनोपायेन मर्त्यानां लोकयात्रा प्रसिद्ध्यति।
तदेव कार्यं ब्रह्मज्ञैरिदं धर्म्मं सनातनम् ॥१०४॥

पद्या—वह साधक ब्रह्मज्ञान की बातों का श्रवण करता है, ब्रह्म का चिन्तन मनन सदा करता है तथा ब्रह्म अन्वेषण की ओर जिज्ञासु रहता है एवं स्थिर चित्त व दृढ़ बुद्धि से ब्रह्म साक्षात्कार की भावना करता है। वह मिथ्याभाषण एवं दूसरों का अनिष्ट नहीं करता। ब्रह्ममन्त्र का साधक परस्त्री सम्भोग से दूर रहता है, वह समस्त कार्यों के प्रारम्भ में 'ॐ तत् सत्' शब्दों का उच्चारण करता है। हे देवि! **'ब्रह्मार्पणमस्तु'** इन शब्दों को ब्रह्मसाधक भोजन-जलपान आदि कार्यों के प्रारम्भ करने में कहे। जिस विधि से समस्त मनुष्यों की जीवनयात्रा का निर्वाह हो, वही उपाय ब्रह्मविद् करें; क्योंकि यही सनातन धर्म है।

हरि०—ब्रह्मेत्यादि। यतात्मा संयतचित्तः। ब्रह्म साक्षादस्तीति भावयन् चिन्तयन्। ब्रह्मार्पणमस्त्विति वाक्यम्। लोकयात्रा लोकनिर्वाहः ॥१०१-१०४॥

अथ सन्ध्याविधिं वक्ष्ये ब्रह्ममन्त्रस्य शाम्भवि।
यां कृत्वा ब्रह्मसम्पत्तिं लभन्ते भुवि मानवाः ॥१०५॥
प्रातर्मध्याह्नसायाह्ने यथादेशे यथाऽऽसने।
पूर्ववत् परमब्रह्म ध्यात्वा साधकसत्तमः ॥१०६॥
अष्टोत्तरशतं देवि गायत्रीजपमाचरेत्।
जपं समर्प्य विधिवत् पूर्ववत् प्रणमेत् सुधीः ॥१०७॥
एषा सन्ध्या मया प्रोक्ता सर्वथा ब्रह्मसाधने।
यदनुष्ठानतो मन्त्री शुद्धान्तःकरणो भवेत् ॥१०८॥

पद्या—हे शाम्भवि! अब मैं ब्रह्ममन्त्र की सन्ध्या विधि कहता हूँ। जिसको करके ब्रह्मनिष्ठ मनुष्य इस धरा पर ब्रह्मसम्पत्ति प्राप्त कर सकते हैं। प्रातः, मध्याह्न एवं सायंकाल में किसी भी स्थान तथा किसी भी आसन में पूर्व की भाँति साधक श्रेष्ठ परम ब्रह्म का ध्यान करे। ध्यान के उपरान्त साधक श्रेष्ठ गायत्री मन्त्र का एक सौ आठ बार (१०८) गायत्री

मन्त्र का जप करें। विद्वान् साधक यथाविधि जप का समर्पण करके प्रणाम करे। ब्रह्म साधना हेतु यह सन्ध्या विधि मैंने तुमसे कही। इसके अनुष्ठान से मन्त्रसाधक का अन्तःकरण शुद्ध एवं पवित्र हो जाता है।

हरि०—अथेति । यां सन्ध्याम् । ब्रह्मसम्पत्तिम् ब्रह्मरूपां सम्पदम् । तत्सन्ध्याविधिमेवाह प्रातरित्यादिना । यदनुष्ठानतः यदाचरणतः ॥१०५-१०८॥

गायत्रीं शृणु चार्वङ्गि सर्वपापप्रणाशिनीम् ।
परमेश्वरं ङेऽन्तमुक्त्वा विद्महे तदनन्तरम् ॥१०९॥
परतत्त्वाय पदतो धीमहीति वदेत् प्रिये ।
तदनन्तरमीशानि तन्नो ब्रह्म प्रचोदयात् ।
इयं श्री ब्रह्मगायत्री चतुर्वर्गप्रदायिनी ॥११०॥

पद्मा—हे चार्वङ्गि! समस्त पापनाशक गायत्री का श्रवण करो। सर्वप्रथम परमेश्वरं ङेविभक्ति युक्त अर्थात् परमेश्वराय। इसके बाद विद्महे पद का, उसके पश्चात् परतत्त्वाय पद, उसके पश्चात् हे प्रिये ! धीमहि पद का उच्चारण करे। इसके पश्चात् हे महेशानि ! तन्नो ब्रह्म प्रचोदयात् कहे। इस प्रकार चतुर्वर्गफलप्रदायक श्री ब्रह्मगायत्री मंत्र बनता है।

हरि०—तां ब्रह्मगायत्रीमेवाह परमेश्वरमित्यादिना सार्द्धेन । हे प्रिय ईशानि ङेऽतं ङे विभक्त्यन्तं परमेश्वरं पदमुक्त्वा विद्महे इति पदं वदेत् । तदनन्तरं विद्महे इति पदानन्तरं परतत्त्वायेति पदं वदेत् । परतत्त्वायेति पदतः परं धीमहीति पदं वदेत् । तदनन्तरं धीमहीति पदानन्तरं तन्नो ब्रह्म प्रचोदयादिति वदेत् । ततश्च परमेश्वराय विद्महेपरतत्त्वाय धीमहि तन्नो ब्रह्म प्रचोदयादित्याकारिका ब्रह्मगायत्री सम्पन्नासीत् । ब्रह्मगायत्र्यर्थस्तु परतत्त्वाय परमेश्वराय परतत्त्वं परमेश्वरमाप्तुं यद्ब्रह्म वयं विद्महे मन्यामहे धीमहि चिन्तयामश्च तद्ब्रह्मनोऽस्मन् प्रचोदयात् प्रेरयेत् धर्म्मार्थकाममोक्षेषु विनियोजयेदित्यर्थ इति ॥१०९-११०॥

पूजनं यजनञ्चैव स्नानं पानञ्च भोजनम् ।
यद्यत्कर्म्म प्रकुर्वीत ब्रह्ममन्त्रेण साधयेत् ॥१११॥
ब्राह्मे मुहूर्त्ते चोत्थाय प्रणम्य ब्रह्मदं गुरुम् ।
ध्यात्वा च परमं ब्रह्म यथाशक्ति मनुं स्मरेत् ॥
पूर्ववत् प्रणमेद् ब्रह्मप्रातः कृत्यमिदं स्मृतम् ॥११२॥

पद्मा—पूजन, यजन, स्नान, पान एवं भोजन आदि जो भी कार्य करे वह ब्रह्म मन्त्र के द्वारा ही करे। प्रातःकाल ब्रह्ममुहूर्त्त में उठकर ब्रह्ममन्त्र प्रदान करने वाले गुरु को प्रणाम करे। परम ब्रह्म का ध्यान कर अपनी क्षमता के अनुसार मन्त्र का जप करे, तदुपरान्त ब्रह्म को पूर्ववत् प्रणाम करे। यही प्रातः कृत्य कहा गया है।

हरि०—पूजनमिति साधयेत् तत्तत्कर्मेति शेषः। अथ प्रातः कृत्यमाह ब्राह्मे इत्यादिना। मनुम् ओं सच्चिदेकं ब्रह्मेत्यादिमन्त्रम् ॥१११-११२॥

द्वात्रिंशता सहस्रेण जपेनास्य पुरस्क्रिया ।
तद्दशांशेन हवनं तर्पणं तद्दशांशतः ।।११३।।
सेचनं तद्दशांशेन तद्दशांशेन सुन्दरि ।
ब्राह्मणान् भोजयेन्मन्त्री पुरश्चरण कर्म्मणि ।।११४।।
भक्ष्याभक्ष्यविचारोऽत्र त्याज्यं ग्राह्यं न विद्यते ।
न कालशुद्धिनियमो न वा स्थाननिरूपणम् ।।११५।।

पद्या—इस ब्रह्ममन्त्र का पुरश्चरण ३२ हजार बार जप है। इस जप का दशांश हवन, हवन का दशांश तर्पण, तर्पण का दशांश सेचन (अभिषेक) हे सुन्दरि ! पुरश्चरण कर्म में सेचन का दशांश ब्राह्मण भोजन कराये। पुरश्चरण काल में भक्ष्य-अभक्ष्य, त्याज्य-ग्राह्य आदि का विचार नहीं है और न ही काल शुद्धि नियम और न स्थान का निरूपण है।

हरि०—अथ ब्रह्ममन्त्रस्य पुरश्चरण विधिमाह द्वात्रिंशतेत्यादिना। अस्या ब्रह्ममन्त्रस्य पुरस्क्रिया पुरश्चरणम्। तद्दशांशेन जपदशमांशेन हवनं होमः। तद्दशांशतः होमदशांशतः। तद्दशांशेन तर्पण दशांशेन सेचनं मार्जनम्। तद्दशांशेन मार्जनदशांशेन।। भक्ष्येत्यादि। अत्र ब्रह्ममन्त्रस्य पुरश्चरणकर्मणि ।।११३-११५।।

अभुक्तो वाऽपि भुक्तो वा स्नातो वाऽस्नात एव वा ।
साधयेत् परमं मन्त्रं स्वेच्छाचारेण साधकः ।।११६।।
विनाऽऽयासं विना क्लेशं स्तोत्रञ्च कवचं विना ।
विना न्यासं विना मुद्रां विना सेतुं वरानने ।।११७।।
विना चौर गणेशादिजपञ्च कुल्लुकां विना ।
अकस्मात् परमब्रह्मसाक्षात्कारो भवेद् ध्रुवम् ।।११८।।
संकल्पेऽस्मिन् महामन्त्रे मानसः परिकीर्त्तितः ।
साधने ब्रह्ममन्त्रस्य भावशुद्धिर्विधीयते ।।११९।।

पद्या—बिना भोजन किये या भोजन किये हुये, स्नान किये हुये या बिना स्नान किये ही स्वेच्छाचार पूर्वक इस परममन्त्र की साधक साधना करे। हे वरानने ! बिना कष्ट बिना क्लेश, बिना स्तोत्र कवच, बिना न्यास, बिना मुद्रा, बिना सेतु, बिना चौर गणेशादि जपके, बिना कुल्लुका के, ब्रह्ममन्त्र का साधन करे। इससे निश्चित रूप से अकस्मात् रूप से अल्प समय में परमब्रह्म से साक्षात्कार होता है। इस महामन्त्र की साधना में मानसिक रूप से संकल्प लिया जाता है। ऐसा कहा जाता है। ब्रह्ममन्त्र की साधना में भाव शुद्धि का विधान है।

हरि०—अभुक्त इत्यादि। न भुक्तमस्यास्तीति अभुक्तः। अर्श आदिभ्योऽजित्यच्। सेतुम् जपविशेषम्। कुल्लुवाऽपि जपविशेष एव तां विना। भावयेत् चिन्तयेत् ।।११६-११९।।

सर्वं ब्रह्ममयं देवि भावयेत् ब्रह्मसाधकः ।
न चाऽस्य प्रत्यवायोऽस्ति नाङ्गवैगुण्यमेव च ।
महामनोः साधने तु व्यङ्गं साङ्गायते ध्रुवम् ।।१२०।।

कलौ पापयुगे घोरे तपोहीनेऽतिदुस्तरे ।
निस्तारबीजमेतावत् ब्रह्ममन्त्रस्य साधनम् ।।१२१।।

पद्मा—हे देवि! सभी कुछ ब्रह्ममय है ऐसी भावना ब्रह्मसाधक करे। इस ब्रह्मसाधना में न्यूनता या त्रुटि रहने पर अंगदोष व्याप्त नहीं होता है। महामन्त्र की साधना में यदि अंगदोष भी हो जाता है तो वह निश्चित रूप से ठीक हो जाता है। ब्रह्ममन्त्र की साधना ही इस तपोहीन अतिदुस्तर, पापयुग, घोर कलियुग में एकमात्र मोक्ष का उपाय एवं बीज है।

हरि०—न चेत्यादि । अस्य महामनोरङ्गवैगुण्यादितः प्रत्यवायो न भवेत् । व्यङ्गम् अङ्गहीनमपि॥१२०-१२१॥

साधनानि बहूक्तानि नानातन्त्रागमादिषु ।
कलौ दुर्बलजीवानामसाध्यानि महेश्वरि ।।१२२।।

पद्मा—हे महेश्वरि! अनेक तन्त्रों एवं आगमों में अनेक प्रकार की साधनायें कही गयी हैं किन्तु कलियुग में दुर्बल मनुष्यों के लिये वह सब असाध्य है ।

हरि०—नन्वनेकेषु तन्त्रादिषु निस्तारबीजानि बहूनि साधनानि भवतैवोक्तानि तत् कथमुच्यते कलौ ब्रह्ममन्त्रस्य साधनमेव निस्तारबीजमित्यत आह साधना नीत्यादि। अत्र यद्यपि तथापीत्यध्याहार्यम् ॥१२२॥

अल्पायुषः स्वल्पवृत्ता अन्नाधीनासवः प्रिये ।
लुब्धा धनार्ज्जने व्यग्राः सदा चञ्चलमानसाः ।।१२३।।

पद्मा—हे प्रिये! कलियुग के मानव अल्पायु एवं अल्पवृत्ति वाले होंगे, वे कठिन साधना नहीं कर पायेंगे । उनके प्राण अन्न के ही अधीन रहेंगे। वे लोभी, धन के अर्जन में व्यग्र एवं सदैव चञ्चल मन वाले होंगे ।

हरि०—असाध्यत्वे हेतुं दर्शयन्नाह अल्पायुष इत्यादि। यत इति शेषः। अन्नाधीनासवः अन्नवशीभूतप्राणाः ॥१२३॥

समाधावस्थिरधियो योगक्लेशासहिष्णवः ।
तेषां हिताय मोक्षाय ब्रह्ममार्गोऽयमीरितः ।।१२४।।

पद्मा—उनकी बुद्धि समाधि में स्थिर नहीं रहेगी । वे योग साधना के कष्ट को सहन करने में असमर्थ होंगे हैं। मैने उनके हित एवं मोक्ष के लिये ही इस ब्रह्ममार्ग (ब्रह्मसाधन) को प्रकाशित किया है ।

हरि०—समाधावित्यादि। समाधिश्चित्तवृत्तिनिरोधः तत्र। योगक्लेशासहिष्णवः। निस्तारोपाय भूततत्तत्कर्मसाधनहेतुक क्लेशसहनाशीलाः॥१२४॥

कलौ नास्त्येव नास्त्येव सत्यं सत्यं मयोच्यते ।
ब्रह्मदीक्षां विना देवि कैवल्याय सुखाय च ।।१२५।।

पद्मा—हे देवि! कलियुग में ब्रह्मदीक्षा के अतिरिक्त कोई अन्य दीक्षा मोक्ष (कैवल्य)

एवं सुख नहीं प्रदान कर सकती। यह मैं सत्य और निश्चित रूप से सत्य प्रतिज्ञा करके कहता हूँ।

हरि०—कलौ युगे ब्रह्मदीक्षाया अन्या कश्चिदपि दीक्षा मोक्षाय सुखाय च नैवास्तीति प्रतिज्ञां कुर्वन्नाह कलावित्यादि ॥१२५॥

प्रातः कृत्यं प्रातरेव सन्ध्यां कुर्यात् त्रिकालतः।
मध्याह्ने पूजनं कुर्यात् सर्वतन्त्रेष्वयं विधिः।
परब्रह्मोपासने तु साधकेच्छाविधिः शिवे ॥१२६॥
विधयः किङ्करा यत्र निषेधाः प्रभवोऽपि न।
स्वेच्छाचारेजेष्टसिद्धिस्तद्विना कोऽन्यमाश्रयेत् ॥१२७॥

पद्मा—हे शिवे! प्रातःकाल में प्रातःकर्म करे। त्रिकाल में सन्ध्या करे तथा मध्याह्न में पूजन करे। सभी तन्त्र ग्रन्थों में यही विधि कही गयी है। परब्रह्म की साधना में साधक का स्वेच्छाचार ही विधि है। सभी विधियाँ दासीवत् हो जाती हैं तथा किसी भी निषेध का कोई भी प्रभाव नहीं होता है। स्वेच्छाचार के द्वारा ही इष्ट सिद्धि होती है। इसके बिना अन्य किसका आश्रय लिया जा सकता है।

हरि०—प्रातरिति। साधकेच्छैव विधिः। यत्र परब्रह्मोपासने ॥१२६-१२७॥

ब्रह्मज्ञानिगुरुं प्राप्य शान्तं निश्चलमानसम्।
धृत्वा तच्चरणाम्भोजं प्रार्थयेद् भक्तिभावतः ॥१२८॥
करुणामय दीनेश तवाऽहं शरणागतः।
त्वत्पदाम्भोरुहच्छायां देहि मूर्द्धिन यशोधन ॥१२९॥
इति प्रार्थ्य गुरुं पश्चात् पूजयित्वा स्वशक्तितः।
कृताञ्जलिपुटो भूत्वा तूष्णीं तिष्ठेत् गुरोः पुरः॥१३०॥

पद्मा—रागद्वेष से रहित, दृढ चित्त युक्त, ब्रह्मज्ञानी गुरु के मिलते ही उनके चरण कमलों को पकड़कर भक्तिभाव से प्रार्थना करें-'हे करुणामय, हे दीनों के स्वामी, मैं आपकी शरण में आया हूँ। हे यशोधन! मेरे सिर पर आप अपने चरण की छाया प्रदान करने की कृपा करें।' यह प्रार्थना करके शिष्य अपनी सामर्थ्यानुसार गुरु का पूजन करे तथा हाथ जोड़कर गुरु के सामने चुपचाप बैठे।

हरि०—अथ ब्रह्ममन्त्रोपदेशविधिमभिधातुमुपक्रमते ब्रह्मज्ञानीत्यादि। शान्तम् रागद्वेषादि शून्यम्। भक्तिभावतः भक्तियोगिन। किं प्रार्थयेदित्यपेक्षायामाह करुणामयेत्यादि ॥१२८-१३०॥

गुरुर्विचार्य विधिवत् यथोक्तं शिष्यलक्षणम्।
आहूय कृपया दद्यात् सच्छिष्याय महामनुम् ॥१३१॥

पद्मा—गुरु विधिपूर्वक शिष्य के कहे गये लक्षणों को विचार करके उसे बुलाकर उस पर अपनी कृपा करके 'महामन्त्र' प्रदान करें।

हरि०—गुरुरित्यादि। यथोक्तं शिष्य लक्षणम् शान्तो दान्तो विनीतश्चेत्यादिकम् ॥

उपविश्याऽऽसने ज्ञानी प्राङ्मुखो वाप्युदङ्मुखः ।
स्ववामे शिष्यमानीय कारुण्येनाऽवलोकयेत् ।।१३२।।

पद्मा—ज्ञानी गुरु पूर्व या उत्तर दिशा की ओर मुख करके आसन पर आसीन होकर उस शिष्य को अपनी बायीं ओर बैठाकर करुणापूर्ण हृदय से देखें।

हरि०—उपविश्येत्यादि। ज्ञानी ब्रह्मज्ञानवान् गुरुः। कारुण्येन कृपायुक्तया दृष्ट्या ॥१३२॥

ततः शिष्यस्य शिरसि ऋषिन्यासपुरःसरम् ।
जपेदष्टशतं मन्त्रं साधकस्येष्टसिद्धये ।।१३३।।
दक्षकर्णे ब्राह्मणानामितरेषाञ्च वामतः ।
सप्तधा श्रावयेत् मन्त्रं सद्गुरुः करुणानिधिः ।।१३४।।

पद्मा—इसके पश्चात् शिष्य के सिर में इष्ट सिद्धि हेतु ऋषि-न्यास करके एक सौ आठ बार मन्त्र (ॐ सच्चिदेकं ब्रह्म) का जप करे। तत्पश्चात् करुणावान् सद्गुरु ब्राह्मण साधक के दाहिने कान में तथा अन्य जातियों के साधकों के बायें कान में सात बार मन्त्र को सुनाये।

हरि०—तत इत्यादि। मन्त्रम् ओं सच्चिदेकं ब्रह्मेत्यादिकम्। दक्षेत्यादि। वामतः वामे कर्णे। मन्त्रम् पूर्वोक्तमेव ॥१३३-१३४॥

उपदेश विधिः प्रोक्तो ब्रह्ममन्त्रस्य कालिके ।
नात्र पूजाद्यपेक्षाऽस्ति संकल्पं मानसञ्चरेत् ।।१३५।।

पद्मा—हे कालिके ! मैंने तुमसे ब्रह्ममन्त्र के उपदेश की विधि कही। इसमें पूजादि की अपेक्षा नहीं केवल मानसिक संकल्प का आचरण करना है।

हरि०—ऊपदेशेति। अत्र ब्रह्ममन्त्रोपदेशविधौ। चरेत् कुर्यात् ॥१३५॥

ततः श्रीगुरुपादाब्जे दण्डवत् पतितं शिशुम् ।
उत्थापयेद् गुरुः स्नेहादिमं मन्त्रमुदीरयन् ।।१३६।।
उत्तिष्ठ वत्स मुक्तोऽसि ब्रह्मज्ञानपरो भव ।
जितेन्द्रियः सत्यवादी बलारोग्यं सदाऽस्तु ते ।।१३७।।

पद्मा—तत्पश्चात् शिष्य श्रीगुरु के चरण कमलों में गिरकर प्रणाम करे। गुरु शिष्य के मन्त्र का उच्चारण करता हुआ स्नेहपूर्वक उठाये–हे वत्स उठो, तुम मुक्त हो, ब्रह्मज्ञानपरायण होओ। तुम सदा जितेन्द्रिय, सत्यवादी, बली एवं आरोग्य रहो।

हरि०—तत इत्यादि। ततः मन्त्रश्रवणात् परतः। शिशुम् शिष्यम्। तं मन्त्रमेवाह उत्तिष्ठ वत्सेत्यादि॥१३६-१३७॥

दक्षिणां स्वं फलं वाऽपि दद्यात् साधकसत्तमः ।
गुरोराज्ञावशीभूत्वा विहरेद्देववद् भुवि ।।१३८।।

पद्मा—साधक श्रेष्ठ गुरुचरणों से उठकर अपनी क्षमतानुसार दक्षिणा के रूप में धन

या फल प्रदान करे तथा गुरु आज्ञा के द्वारा समस्त पृथ्वी पर देवता की भाँति विचरण करे।

हरि०—तत इति। स्व धनम् आत्मानं वा ॥१३८॥

मन्त्रग्रहणमात्रेण तदात्मा तन्मयो भवेत्।
ब्रह्मभूतस्य देवेशि! किमन्यैर्बहुसाधनैः ॥१३९॥

पद्या—हे देवेशि! जो व्यक्ति (ब्रह्म) मन्त्र को ग्रहण करता है उसकी आत्मा भी ब्रह्ममयी हो जाती है। जो साधक ब्रह्मस्वरूप हो जाता है उसे अन्य बहुत से साधनों की क्या आवश्यकता है।

हरि०—मन्त्रेत्यादि। तदात्मा ब्रह्मनिष्ठान्तः करणः। तन्मयः ब्रह्मस्वरूपः॥१३९॥

इति संक्षेपतो ब्रह्मदीक्षा ते कथिता प्रिये।
गुरुकारुण्यमात्रेण ब्रह्मदीक्षां समाश्रयेत् ॥१४०॥

पद्या—हे प्रिये! मैंने संक्षेप में तुमसे दीक्षा विधान कहा। गुरु कृपा होने पर ही ब्रह्म मन्त्र की दीक्षा ग्रहण करें।

हरि०—ब्रह्ममन्त्रग्रहणे कालादिनियमो नास्तीति प्रतिपादयन्नाह गुर्वित्यादि।॥१४०॥

शाक्ताः शैवा वैष्णवाश्च सौरा गाणपत्यास्तथा।
विप्रा विप्रेतराश्चैव सर्वेऽप्यत्राधिकारिणः ॥१४१॥

पद्या—शाक्त, शैव, वैष्णव, सौर, गाणपत्य, ब्राह्मण हो या अब्राह्मण कोई भी जाति हो, सभी ब्रह्ममन्त्र के अधिकारी हैं।

हरि०—उपादिष्टनामनुपदिष्टनाञ्च ब्राह्मणदीनां सर्वेषामप्यस्मिन् ब्रह्ममन्त्रेऽधिकारोऽस्तीत्याह शाक्ता इत्यादिना। अत्र ब्रह्ममन्त्रे ॥१४१॥

अहं मृत्युञ्जयो देवि देवदेवो जगद्गुरुः।
स्वेच्छाचारी निर्विकल्पो मन्त्रस्याऽस्य प्रसादतः ॥१४२॥

पद्या—हे देवि! मैं इस मन्त्र के प्रसाद से ही मृत्युञ्जय, देवदेव, जगत् का गुरु, स्वेच्छाचारी, विकल्परहित हूँ।

हरि०—एतन्मन्त्रप्रसादादेव मयि मृत्युञ्जयत्वादिकमासीदित्याह अहमित्यादिना। अहं मृत्युञ्जयोऽभवमिति शेषः ॥१४२॥

अमुमेव ब्रह्ममन्त्रं मत्तः पूर्वमुपासिताः।
ब्रह्मा ब्रह्मर्षयश्चापि देवा देवर्षयस्तथा ॥१४३॥

पद्या—मुझसे इस ब्रह्म मन्त्र को पूर्वकाल में ब्रह्मा एवं ब्रह्मर्षिगणों ने तथा देवताओं एवं देवर्षि नारद ने प्राप्त कर उपासना की है।

हरि०—एतन्मन्त्रोपासनादेव विरिञ्चयादिषु ब्रह्मभूतत्वं जातमित्याह अमुमित्यादिना। मन्त्रो गृहीत्वेति शेषः। उपासिताः श्रद्धया अनुष्ठिवन्तः। गत्यर्थाकर्मकश्लिष शीङित्यादिना कर्त्तरि क्तः। ब्रह्मर्षयो भृग्वादयः। देवा इन्द्रादयः। देवर्षयो नारदादयः ॥१४३॥

देवर्षिवक्त्रान्मुनयस्तेभ्यो राजर्षयः प्रिये ।
उपासिता ब्रह्मभूताः परमात्मप्रसादतः ।।१४४।।

पद्मा—हे प्रिये ! देवर्षि नारद के मुख से इस विद्या को व्यासादि मुनि गणों ने तथा उनसे राजर्षि जनक तथा अपने इस पर ब्रह्म के मन्त्र को प्राप्त कर परमात्मा की कृपा से ब्रह्मस्वरूप हुए हैं ।

हरि०—देवर्षीति । देवर्षिवक्त्रात् नारदमुखात् । मुनयो व्यासादयः। राजर्षयो जनकादयः।।१४४।।

ब्राह्मे मनौ महेशानि विचारो नास्ति कुत्रचित् ।
स्वीयमन्त्रं गुरुर्दद्यात् शिष्येभ्यो ह्यविचारयन् ।।१४५।।
पिताऽपि दीक्षयेत् पुत्रान् भ्राता भ्रातॄन् पतिः स्त्रियम् ।
मातुलो भागिनेयांश्च नप्तॄन् मातामहोऽपि च ।।१४६।।

पद्मा—हे महेशानि! ब्रह्ममन्त्र के विषय में किसी प्रकार का विचार नहीं है। गुरु बिना विचार किये अपना मन्त्र शिष्य को प्रदान कर सकता है, पिता पुत्र को दीक्षित कर सकता है। भाई, भाई को दीक्षित कर सकता है, पति पत्नी को दीक्षित कर सकता है, मामा भान्जे को दीक्षित कर सकता है तथा नाना नाती को दीक्षित कर सकता है ।

हरि०—आत्मना ग्रहीतोप्ययं ब्रह्ममन्त्रो गुरुणा शिष्येभ्यो देयः पित्रादिभिरपि पुत्रादिभ्यो देय इत्याह ब्राह्मे इत्यादिभ्यां द्वाभ्याम् । अविचारयन् स्वीयमन्त्रदाननिमित्तकं दोषमगणयन् ।।१४५-१४६।।

स्वमन्त्रदाने यो दोषस्तथा पित्रादिदीक्षया ।
सिद्धे ब्रह्ममहामन्त्रे तद्दोषो नैव विद्यते ।।१४७।।
ब्रह्मज्ञानिमुखात् श्रुत्वा येन केन विधानतः ।
ब्रह्मभूतो नरः पूतः पुण्यपापैर्न लिप्यते ।।१४८।।

पद्मा—अपने मन्त्र के देने में जो दोष कहा जाता है तथा पितादि की दीक्षा में जो दोष कहे गये हैं वह दोष इस सिद्ध ब्रह्ममन्त्र में व्याप्त नहीं होते। जिस किसी भी विधि से इस मन्त्र को ब्रह्मज्ञानी के मुख से सुनकर व्यक्ति ब्रह्ममय एवं पवित्र हो जाता है और पुण्यपाप में वह लिप्त नहीं होता है।

हरि०—ननु पितुर्मन्त्र न गृह्णीयात्तथा मातामहस्य चेत्यादिनिषेधवाक्यमुल्लङ्घ्य पित्रादिभ्यो ब्राह्ममन्त्रं गृह्णाणां पुत्रादीनामात्मीयमन्त्रदाने तत्तन्निषेध वाक्यमनादृत्य शिष्येभ्यः स्वीयं ब्रह्ममन्त्र ददतो गुरोश्च प्रत्यवायभागित्वं स्यात्तत्राह स्वमन्त्रदाने इत्यादि। यो दोषः उक्त इति शेषः।।१४७-१४८।।

ब्रह्ममन्त्रोपासिता ये गृहस्था ब्राह्मणादयः ।
स्वस्ववर्णोत्तमास्ते तु पूज्या मान्या विशेषतः ।।१४९।।

पद्मा–ब्रह्म मन्त्र के उपासक ब्राह्मण तथा अन्य जातियों के जो गृहस्थ हैं वे अपने अपने वर्ण अर्थात् जाति में पूजनीय एवं विशेष रूप से मान्य होते हैं।

हरि०–ब्रह्ममन्त्रेत्यादि । यत इति शेषः। ब्रह्ममन्त्रमुपासिताः। ब्रह्ममन्त्रोपासिताः। गम्यादीनामुपसंख्यानमिति द्वितीयातत्पुरुषः॥१४९॥

ब्राह्मणा यतयः साक्षादितरे ब्राह्मणैः समाः ।
तस्मात् सर्वे पूजयेयुर्ब्रह्मज्ञान् ब्रह्मदीक्षितान् ।।१५०।।

पद्मा–(ब्रह्म के उपासक) ब्राह्मण साक्षात् यति स्वरूप होते हैं तथा अन्य वर्णों के व्यक्ति ब्राह्मण के समान होते हैं। ब्रह्मज्ञान से सम्पन्न एवं ब्रह्ममन्त्र में दीक्षित व्यक्ति की पूजा सभी को करनी चाहिए।

हरि०–ब्राह्मण इति। ब्राह्मणः साक्षात् यततः परिव्राजका भवेयुः । इतरे क्षत्रियादयः ॥१५०॥

ये च तानवमन्यन्ते ते नरा ब्रह्मघातिनः ।
पतन्ति घोरनरके यावद्भास्करतारकम् ।।१५१।।
यत् पापं स्त्रीवधे प्रोक्तं यत्पापं भ्रूणघातने ।
तस्मात् कोटिगुणं पापं ब्रह्मोपासकनिन्दनात् ।।१५२।।

पद्मा–जो मनुष्य ब्रह्मज्ञानी व्यक्ति की अवमानना व अपमान करते हैं वे ब्रह्मघाती हैं तथा वे जब तक सूर्य एवं तारे हैं तब तक अर्थात् प्रलय काल तक घोर नरक में रहते हैं। जो पाप स्त्री हत्या एवं भ्रूण हत्या करने से लगता है उससे करोड़ों गुणा पाप ब्रह्मोपासक की निन्दा करने से होता है ।

हरि०–अथ ब्रह्मोपसकान् जनानिन्दतां जनानामखिलपातकाश्रयत्वमित्याह ये च तानित्यादिभ्यां द्वाभ्याम् । तान् ब्रह्मदीक्षितान् । अवमन्यते अनादि यन्ते । भास्कर तारकं यावत्तिष्ठेत्तावत् । भ्रूणघातने गर्भघातने ॥१५१-१५२॥

यथा ब्रह्मोपदेशेन विमुक्तः सर्वपातकैः ।
गच्छन्ति ब्रह्मसायुज्यं तथैव तव साधनात् ।।१५३।।

इति श्रीमहानिर्वाण तन्त्रे सर्वतन्त्रोत्तमोत्तमे सर्वधर्मनिर्णयसारे
श्रीमदाद्या-सदाशिवसंवादे जीवनिस्तारो पापप्रश्ने
परब्रह्मोपदेश कथनं नाम तृतीयोल्लासः।

हे देवि ! जिस प्रकार ब्रह्ममन्त्र के उपदेश से मनुष्य सभी प्रकार के पापों से मुक्त होकर ब्रह्मसायुज्य को प्राप्त करते हैं उसी प्रकार तुम्हारी साधना से भी होता है।।१५३।।

श्री महानिर्वाणतन्त्र के तीसरे उल्लास की पद्मा हिन्दी व्याख्या पूर्ण हुई ।।३।।

हरि०–ब्रह्मसायुज्यम् ब्रह्मत्वम् ॥१५३॥

इति श्री महानिर्वाणतन्त्र टीकायां तृतीयोल्लासः।

चतुर्थोल्लासः

श्रुत्वा सम्यक् परब्रह्मोपासनं परमेश्वरी ।
परमानन्दसम्पन्ना शङ्करं परिपृच्छति ।।१।।

श्री देव्युवाच

कथितं यत्त्वया नाथ ब्रह्मोपासनमुत्तमम् ।
सर्वलोकप्रियकरं साक्षाद्ब्रह्मपदप्रदम् ।।२।।

पद्मा–परमेश्वरी ने सम्यक् प्रकार से परब्रह्म उपासना को सुनकर परमानन्द से सम्पन्न (अत्यन्त आनन्दपूर्वक) होकर भगवान् शिव से पूछा-श्री देवी ने कहा-हे नाथ! आपने श्रेष्ठ ब्रह्मोपासना की विधि कही है वह सभी लोगों को प्रियकारक एवं साक्षात् ब्रह्मपद प्रदायक है।

हरि०–ॐ नमो ब्रह्मणे ।

परमेश्वरी शङ्करं किं परिपृच्छतीत्यपेक्षायामाह। कथितं यदित्यादि।।१-२।।

तेजोबुद्धिबलैश्वर्यदायकं सुखसाधनम् ।
तृप्ताऽस्मि जगदीशान तव वाक्यामृतप्लुता ।।३।।

पद्मा–इस ब्रह्मोपासना से तेज, बुद्धि, बल, ऐश्वर्य की प्राप्ति होती है तथा सुख का साधन है। हे जगदीशान! मैं आपके वाक्यरूपी अमृत से तृप्त हो गयी हूँ ।

हरि०–तेज इत्यादि। तृप्ताऽस्मि तद्ब्रह्मोपासनं श्रुत्वेति शेषः। तव वागमृतप्लुता तावकीनवाग्रूपपीयूशे निमग्ना ।।३।।

यदुक्तं करुणासिन्धो यथा ब्रह्मनिषेवणात् ।
गच्छन्ति ब्रह्मसायुज्यं तथैव मम साधनात् ।।४।।

पद्मा–हे करुणा (दया) के सागर! आपने कहा है कि जिस प्रकार ब्रह्मोपासना के द्वारा ब्रह्मसायुज्य प्राप्त होता है उसी प्रकार से मेरी (अर्थात् देवी की) साधना द्वारा भी ब्रह्मसायुज्य प्राप्त किया जा सकता है ।

हरि०–यदुक्त मित्यादि! हे करुणासिन्धो कृपा समुद्र ब्रह्मनिषेवणात् परब्रह्मण उपासनाद्यया जना ब्रह्मसायुज्यं यत्त्वयोक्तं तत्र किं कारणमस्तीत्येतद्वेदितुं जातुमहमिच्छामीति द्वितीयश्लोक गतैः पदैरन्वयः।।४।।

एतद्वेदितुमिच्छामि ! मदीयसाधनं परम् ।
ब्रह्मसायुज्यजननं यत्त्वया कथितं प्रभो ।।५।।

पद्मा–हे प्रभो ! मुझे अपनी श्रेष्ठ साधना जानने की इच्छा है जैसा कि आपने कहा है कि इसके द्वारा ब्रह्मसायुज्य की प्राप्ति होती है ।

हरि०–एतदित्यादि। हे प्रभो ब्रह्मसायुज्य जननं ब्रह्मत्वोत्पादकमतएव परं श्रेष्ठ यन्मदीयं साधनं त्वया कथितं तच्च कीदृशं वर्त्तते एतदपि वेदितुमिच्छामि॥५॥

विधानं कीदृशं तस्य साधनं केन वर्त्मना ।
मन्त्रः को वाऽत्र विहितो ध्यानपूजादिकञ्च किम्।।६।।

पद्मा–मेरी साधना का विधान कैसा है तथा किस प्रकार से साधना करनी है एवं मन्त्र क्या है ? उसके विहित ध्यान, पूजादि क्या हैं ? ।

हरि०–तस्यमदीयसाधनस्य। अत्र मम साधने ॥६॥

सविशेषं सावशेषमामूलाद्वक्तुमर्हसि ।
मम प्रीतिकरं देव लोकानां हितकारकम् ।
को ह्यन्यस्त्वामृते शम्भो भवव्याधिभिषग्गुरुः ।।७।।

पद्मा–हे शम्भो! आप यह सब विशेष रूप से एवं अवशेष पर्यन्तमूल से प्रारम्भ करके कहिये। हे देव! मेरी प्रिय कारक एवं लोकहित कारक विधि को कहें। आपके अतिरिक्त संसाररूपी व्याधि की चिकित्सा करने में कौन समर्थ है अर्थात् आपके ही द्वारा इसकी चिकित्सा कर सकते हैं; क्योंकि आप ही वैद्यराज हैं ।

हरि०–**सविशेषमित्यादि**। सावशेषम् अवशेषपर्यन्तम् । आमूलात् मूलमारभ्य। त्वामृते त्वां विना। भवव्याधिभिषग्गुरुः जन्मरूपस्य व्याधेश्चिकित्सकराजः॥७॥

इति देव्या वचः श्रुत्वा देवदेवो महेश्वरः ।
उवाच परया प्रीत्या पार्वती पार्वतीपतिः ।।८।।

पद्मा–भगवान महेश्वर, पार्वतीपति ने देवी पार्वती के यह वचन सुनकर उनसे प्रीतिपूर्वक कहा ।

हरि०–**इतीत्यादि**। उवाच उत्तरमिति शेषः॥८॥

श्रीसदाशिव उवाच

शृणु देवि महाभागे तवाराधनकारणम् ।
तव साधनतो येन ब्रह्मसायुज्यमश्नुते ।।९।।

पद्मा–हे देवि! हे महाभागे! श्रवण करो। जिस कारण से तुम्हारी साधना द्वारा ब्रह्मसायुज्य प्राप्त कर सके उस साधन को मैं तुमसे कहता हूँ ।

हरि०–पार्वतीपतिः पार्वतीं किमुत्तरमुवाचेत्यपेक्षायामाह शृणु देवीत्यादि। हे देवि हे महाभागे महाभाग्यशालिनि येन कारणेन तव साधनतो जनो ब्रह्मसायुज्यं ब्रह्मत्वमश्नुते लभते तन्मया कथ्यमानं तवाराधनकारणं त्वं शृणिवत्यन्वयः॥९॥

त्वं परा प्रकृतिः साक्षाद् ब्रह्मणः परमात्मनः ।
त्वत्तो जातं जगत् सर्वं त्वं जगज्जननी शिवे ।।१०।।

पद्मा–हे शिवे! तुम साक्षात् परम ब्रह्म की परा प्रकृति हो। यह समस्त जगत तुम्हीं से उत्पन्न हुआ है। तुम ही सम्पूर्ण जगत की जननी हो ।

हरि०-अथ परमेश्वरी साधनस्य ब्रह्मसायुज्य जनकत्वे तद्गतं ब्रह्मसारूप्यमेव कारणमस्तीत्यभिधातुमुपक्रमते त्वं परा प्रकृतिरित्यादि। यत इति शेषः। परमा माया शक्तिर्वा यस्य स परमः अतति सर्वं व्याप्नोतीत्यात परमश्चासर्वात्मा चेति परमात्मना तस्य परमात्मनो ब्रह्मणो यतस्त्वं साक्षात् पराऽत्युत्कृष्टा प्रकृतिरसीत्येवमन्वयः कार्य्यः॥१०॥

महदाद्यणुपर्यन्तं यदेतत् सचराचरम् ।
त्वयैवोत्पादितं भद्रे त्वदधीनमिदं जगत् ।।११।।

पद्मा-हे भद्रे ! महत् तत्त्व से अणुपर्यन्त एवं चर-अचर जगत् सब तुम्हीं से उत्पन्न हुआ है। यह समस्त जगत् तुम्हारे ही अधीन है ।

हरि०-महत्तत्त्वमादिर्यस्य तन्महदादि ॥११॥

त्वमाद्या सर्वविद्यानामस्माकमपि जन्मभूः ।
त्वं जानासि जगत् सर्वं न त्वां जानाति कश्चन् ।।१२।।

पद्मा-तुम ही आद्या (आदि अर्थात् जिसके पूर्व कोई न हो) समस्त विद्यायें एवं हम समस्त देवगण तुम से ही उत्पन्न हुए हैं। तुम समस्त जगत् को जानती हो किन्तु तुम्हें कोई नहीं जानता है ।

हरि०-किञ्च त्वमाद्येत्यादि। आद्या आदिभूता। नत्वन्येषामेव जगतां जननी त्वमसि किन्त्वस्माकं शङ्करादीनामपि जन्मभूरुत्पत्तिस्थानं त्वम् । जगज्जननीत्वात् सर्वं जगत् त्वं जानासि। त्वत्ते जातत्त्वात् कश्चन अपि त्वां तु न जानाति ॥१२॥

त्वं काली तारिणी दुर्गा षोडशी भुवनेश्वरी ।
धूमावती त्वं बगला भैरवी छिन्नमस्तका ।।१३।।

पद्मा-हे देवि! तुम ही काली, तारा, सुन्दरी षोडशी एवं भुवनेश्वरी हो, तुम ही धूमावती, तुम ही भैरवी एवं छिन्नमस्ता हो ।

हरि०-किञ्च त्वं कालीत्यादि ॥१३॥

त्वमन्नपूर्णा वाग्देवी त्वं देवी कमलालया ।
सर्वशक्तिस्वरूपा त्वं सर्वदेवमयी तनुः ।।१४।।

पद्मा-तुम ही अन्नपूर्णा हो, तुम वाग्देवी सरस्वती हो, तुम ही लक्ष्मी हो, सर्वशक्ति स्वरूपा एवं सर्वदेवमयी हो ।

हरि०-वाग्देवी सरस्वती । कमलालय लक्ष्मीः। तनुः तवेति शेषः ॥१४॥

त्वमेव सूक्ष्मा स्थूला त्वं व्यक्ताव्यक्तस्वरूपिणी ।
निराकाराऽपि साकारा कस्त्वां वेदितुमर्हति ।।१५।।

पद्मा-तुम ही सूक्ष्मा, तुम ही स्थूला, तुम ही व्यक्त-अव्यक्त स्वरूपा हो। तुम आकृति शून्य होकर भी आकारविशिष्टा हो। तुम्हें जानने में कोई भी योग्य नहीं है ।

हरि०-त्वमित्यादि। सूक्ष्मा परमाणुरूपा। स्थूलरूपत्वात् व्यक्तम् परमाणु रूपत्वाच्चाव्यक्तं

स्वं रूपं विद्यते यस्याः तथात्वम्। वस्तुतो निराकारोऽपि आकृतिशून्याऽपि त्वं साकारा आकारविशिष्टा भवसि। अतः त्वां वेदितुं ज्ञातुं कोऽर्हति योग्यो भवति न कोऽपीत्यर्थः॥१५॥

उपासकानां कार्यार्थं श्रेयसे जगतामपि ।
दानवानां विनाशाय धत्से नानाविधास्तनूः ॥१६॥
चतुर्भुजा त्वं द्विभुजा षड्भुजाऽष्टभुजा तथा ।
त्वमेव विश्वरक्षार्थं नानाशस्त्रास्त्रधारिणी ॥१७॥
तत्तद्रूपविभेदेन मन्त्रयन्त्रादिसाधनम् ।
कथितं सर्वतन्त्रेषु भावाश्च कथितास्त्रयः ॥१८॥

पद्म–तुम साधकों (उपासकों) के कार्य के लिये, जगत के कल्याण हेतु, दानवों के विनाश के लिए अनेक प्रकार के रूप समय-समय पर धारण करती रहती हो। तुम विश्व-रक्षा के लिये कभी चतुर्भुजा, कभी द्विभुजा, कभी षड्भुजा, कभी अष्टभुजा रूप धारण करके अनेक प्रकार के अस्त्र-शस्त्र धारण करती हो। उन अनेक रूप भेदों का समस्त तांत्रिक गन्थों में मन्त्र और यन्त्र के साथ अनेक साधना विधियाँ कही गयी हैं तथा तीन प्रकार के भाव कहे गये हैं ।

हरि०–ननु वस्तुतो यदि निराकारैवाहं तर्हि किमर्थ नानाविधमाकारं दधामि तत्राह उपासकानामित्यादि। ता नानाविधास्तनूरेव दर्शयन्नाह चतुर्भुजेत्यादि ॥१६-१८॥

पशुभावः कलौ नास्ति दिव्यभावोऽपि दुर्लभः ।
वीरसाधनकर्म्माणि प्रत्यक्षाणि कलौ युगे ॥१९॥
कुलाचारं विना देवि कलौ सिद्धिर्न जायते ।
तस्मात् सर्वप्रयत्नेन साधयेत् कुलसाधनम् ॥२०॥
कुलाचारेण देवेशि ब्रह्मज्ञानं प्रजायते ।
ब्रह्मज्ञानयुतो मर्त्यो जीवन्मुक्तो न संशयः ॥२१॥

पद्म–भाव तीन कहे गये हैं-पशु, दिव्य एवं वीर। कलियुग में पशुभाव का अभाव है अर्थात् नहीं है, दिव्यभाव भी दुर्लभ ही है। कलियुग में वीरभाव की साधना ही प्रत्यक्ष फल प्रदायक है। हे देवि! कलियुग में कुलाचार के बिना सिद्धि नहीं प्राप्त होती हैं, अतः सब प्रयत्न करके कुलसाधना करे। हे देवेशि! कुलाचार के द्वारा ब्रह्मज्ञान उत्पन्न होता है। ब्रह्मज्ञान से युक्त मनुष्य जीवन्मुक्त हो जाता है, इसमें संशय नहीं है ।

हरि०–अथ पशुभावादिप्रसङ्गात् कलौ युगे वीरभावस्यैव विद्यमानत्वेन प्रत्यक्षफलदायकानि वीरसाधनकर्माण्येव साधनीयानीत्येवाह पशुभाव इत्यादिभिः॥१९-२१॥

ज्ञानेन मेध्यामखिलममेध्यं ज्ञानतो भवेत् ।
ब्रह्मज्ञाने समुत्पन्ने मेध्यामेध्यं न विद्यते ॥२२॥

पद्म–ज्ञान के द्वारा सभी कुछ पवित्र हो जाता है तथा उसी ज्ञान के द्वारा ही सभी कुछ

अपवित्र प्रतीत होता है; किन्तु ब्रह्मज्ञान के उत्पन्न होने पर कुछ भी पदार्थ पवित्र या अपवित्र नहीं प्रतीत होता है।

हरि०–मेध्यम् पवित्रम् ॥२२॥

यो जानाति परं ब्रह्म सर्वव्यापि सनातनम् ।
किमस्त्यमेध्यं तस्याग्रे सर्वं ब्रह्मेति जानतः ।।२३।।
त्वं सर्वरूपिणी देवी सर्वेषां जननी परा ।
तुष्टाया त्वयि देवेशि सर्वेषां तोषणं भवेत् ।।२४।।
सृष्टेरादौ त्वमेकाऽऽसीत् तमोरूपमगोचरम् ।
त्वत्तो जातं जगत् सर्वं पर ब्रह्मसिसृक्षया ।।२५।।

पद्मा–जो सर्वव्यापी सनातन परम ब्रह्म को जानता है उसके लिये कौन सी वस्तु अपवित्र है अर्थात् कुछ भी अपवित्र नहीं है। उसके आगे समस्त जगत् ब्रह्ममय हो जाता है। हे देवि! तुम सर्वरूपिणी हो तथा सभी की परा जननी हो। हे देवेशि! तुम्हारे सन्तुष्ट होने पर समस्त जगत् संतुष्ट हो जाता है। सृष्टि के आदि में तुम्हीं प्रकृति रूप में जो मन वाणी से अगोचर है-विद्यमान रहती हो। परब्रह्म की सृष्टि करने की इच्छा से ही सम्पूर्ण जगत् तुम्हीं से उत्पन्न होता है ।

हरि०–**य इति**। सनातनम् सर्वदैकरूपम् ॥ अगोचरम् आकृति शून्यत्वात् वाङ्मनसयोरप्यविषयभूतम् ॥२३-२५॥

महत्तत्त्वादिभूतान्तं त्वया सृष्टिमिदं जगत् ।
निमित्तमात्रं तद्ब्रह्म सर्वकारणकारणम् ।।२६।।

पद्मा–महत्तत्व से लेकर महाभूत पृथ्वी पर्यन्त सम्पूर्ण जगत् तुम्हारी ही सृष्टि है। समस्त कारणों का कारण वह ब्रह्म निमित्त मात्र है ।

हरि०–**महदित्यादि**। भूतान्तं पृथिवीपर्य्यन्तम् । सर्वकारणकारणम् सर्वेषां महदादीनां कारणानामपि कारणं निमित्तभूतम् ॥२६॥

सद्रूपं सर्वतोव्यापि सर्वमावृत्य तिष्ठति ।
सदैकरूपं चिन्मात्रं निर्लिप्तं सर्ववस्तुषु ।।२७।।

पद्मा–वह ब्रह्मसत् रूप एवं सर्वव्यापी है, वह समस्त निःशेष पदार्थों एवं समस्त वस्तुओं को वेष्टित करके स्थित रहता है। वह सर्वदा एक रूप, चिन्मात्र एवं समस्त वस्तुओं में निर्लिप्त रहता है ।

हरि०–**सद्रूपमित्यादि**। सद्रूपं सर्वदा स्थायिस्वरूपम् । सर्वमावृत्य निश्शेषं पदार्थमावेष्ट्य सर्ववस्तुषु स्थितमपि निर्लिप्तमसम्बद्धम् ॥२७॥

न करोति न चाऽश्नाति न गच्छति न तिष्ठति ।
सत्यं ज्ञानमनाद्यन्तमवाङ्मसगोचरम् ।।२८।।

पद्मा–वह (ब्रह्म) कोई कर्म नहीं करता है, न ही भोग करता है, न ही आवागमन

करता है, न ही अवस्थापन करता है अर्थात् उसका कोई स्थान विशेष नही है, वही यथार्थ स्वरूप है, समस्त पदार्थों का ज्ञान उसी से है, वह आदि अन्त से रहित है, वह वचन एवं मन से अगोचर है ।

हरि०-मेत्यादि। न चाश्नाति न च भुङ्क्ते। सत्यम् यथार्थस्वरूपम् । ज्ञानं समस्तपदार्थावबोध: तत्स्वरूपम् । अनाद्यन्तम् न विद्यते आदि: कारणम् अन्तोनाशश्च यस्य तथाभूतम्॥२८॥

तदिच्छामात्रमालम्ब्य त्वं महायोगिनी परा ।
करोषि पासि हंस्यन्ते जगदेतच्चराचरम् ।।२९।।
तव रूपं महाकालो जगत्संहारकारक: ।
महासंहारसमये काल: सर्वं ग्रसिष्यति ।।३०।।

पद्या-हे परामहायोगिनी! उस ब्रह्म की इच्छामात्र का अवलम्बन करके तुम इस चराचर जगत् की सृष्टि, पालन एवं संहार करती हो। जगत् की संहारक महाकाल तुम्हारा ही एक रूप है। महासंहार के समय वही काल सभी निगलता है ।

हरि०-तदित्यादि। तदिच्छामात्रम् परब्रह्मण इच्छामेव। अन्तेप्रलय काले॥२९-३०॥

कलनात् सर्वभूतानां महाकाल: प्रकीर्त्तित: ।
महाकालस्य कलनात् त्वमाद्या कालिका परा ।।३१।।
कालसंग्रसनात् काली सर्वेषामादिरूपिणी ।
कालत्वादादिभूतत्वादाद्या कालीति गीयते ।।३२।।

पद्या-समस्त प्राणियों के 'कलन' अर्थात् ग्रास करने के कारण ही उसे महाकाल कहा जाता है। तुम महाकाल का कलन अर्थात् ग्रास करने कारण आद्या, कालिका व परा कहलाती हो। काल को ग्रास करने के कारण तुम्हें काली कहा जाता है, तुम ही समस्त प्राणियों की आदिरूपा हो। तुम ही समस्त प्राण्यों की कालस्वरूपा एवं आदिभूता हो इसीलिये तुम 'आद्याकाली' कहलाती हो ।

हरि०-कलनादित्यादि। कलनात् ग्रसनात्। आदिरूपिणी कारणस्वरूपा॥३१-३२॥

पुन: स्वरूपमासाद्य तमोरूपं निराकृति: ।
वाचातीतं मनोगम्यं त्वमेकैवाऽवशिष्यसे ।।३३।।

पद्या-प्रलयकाल में तुम वाणी से अतीत, मन से अगम्य, तमोरूप, आकृति रहित (निराकृति) स्वरूप का आश्रय लेकर अकेली स्थित रहती हो ।

हरि०-पुनरित्यादि। निराकृति आकारशून्यम् । वाचातीतम् अतिक्रान्तवाक् । मनोऽगम्यम् मनसोऽप्यप्राप्यम् ॥३३॥

साकाराऽपि निराकारा मायया बहुरूपिणी ।
त्वं सर्वादिरनादिस्त्वं कर्त्री हर्त्री च पालिका ।।३४।।

पद्या-तुम सकारा (आकार धारण करने में समर्थ) भी हो तथा निराकारा भी। तुम माया

का आश्रय लेकर बहुत से रूप धारण करती हो। तुम ही सबकी कारणभुता हो, तुम ही सबकी आदि, अनादि, कर्त्री, हर्त्री तथा पालिका (पालन करने वाली) हो।

हरि०–साकारेत्यादि । सर्वादिः सर्वेषां कारणभूता सर्वकारणत्वादेव न विद्यते आदिः कारणं यस्यास्तथाभूता त्वमसि ॥३४॥

अतस्ते कथितं भद्रे ब्रह्ममन्त्रेण दीक्षितः ।
यत्फलं समवाप्नोति तत्फलं तव साधनात् ॥३५॥

पद्मा–हे भद्रे ! इसीलिये मैंने तुमसे कहा है कि ब्रह्ममन्त्र में दीक्षित व्यक्ति जो फल प्राप्त करता है वही फल वह तुम्हारी साधना से भी प्राप्त कर सकता है।

हरि०–तव साधनतो ब्रह्मत्वलाभे इदमेव कारणमस्तीत्याह अत इत्यादिना ॥३५॥

नानाऽऽचारेण भावेन देशकालाधिकारिणाम् ।
विभेदात् कथितं देवि कुत्रचिद्गुप्तसाधनम् ॥३६॥

पद्मा–हे देवि! मैं विविध आचारों एवं भावों को देश, काल (समय) एवं अधिकारी के भेद से प्रकट करता हूँ, कहीं-कहीं पर मैंने गुप्त साधना विधियाँ भी कही हैं।

हरि०–अथ साधनं केन वर्त्मनेति मदीयं साधनं परं कीदृशं वर्त्तते इति च। यत् परमेश्वर्य्या पृष्टं तत्र मत्कथितैनैव मार्गेण सर्वं कर्म साधनीयं मदुक्तवर्त्मना नित्यनैमित्तिककर्मणां यत् साधनं तदेव तावकीनं साधनमित्युत्तरं दातुमुपक्रमते नानाचारेणेत्यादि। नानाभावेन च। विभेदात् विशेषात् कुत्रचित् तन्त्रादिषु ॥३६॥

ये यत्राधिकृता मर्त्यास्ते तत्र फलभागिनः ।
भविष्यन्ति तरिष्यन्ति मानुषा गतकिल्विषा ॥३७॥

पद्मा–जिस साधन में जो मनुष्य अधिकारी है वह उसी के अनुरूप फल प्राप्त करता है तथा निष्पाप होकर वह व्यक्ति संसार-सागर को पार करता है।

हरि०–य इति । यत्र गुप्तसाधने व्यक्तसाधने वा ॥३७॥

बहुजन्मार्जितैः पुण्यैः कुलाचारे मतिर्लभेत् ।
कुलाचारेण पूतात्मा साक्षाच्छिवमयो भवेत् ॥३८॥

पद्मा–अनेक जन्मों से अर्जित पुण्य के द्वारा ही व्यक्ति की बुद्धि कुलाचार में प्रवृत्त होती है। कुलाचार के द्वारा जिसकी आत्मा पवित्र हो जाती है वह साक्षात् शिवमय हो जाता है।

हरि०–अथ प्रबले कलौ युगे कुलमार्गेणैव सर्वकर्म साधनीयमिति प्रतिपादनाय तमेव मार्गं स्तोतुमना महादेवः पूर्वं तन्मार्गवर्त्तिनं जनं प्रशंसति बहुजनमेत्यादिभिः। साक्षाच्छिवमयः साक्षाच्छिवस्वरूपः॥३८॥

यत्रास्ति भोगबाहुल्यं तत्र योगस्य का कथा ।
योगेऽपि भोगविरहः कौलस्तूभयमश्नुते ॥३९॥

पद्मा–जहां भोग का बाहुल्य है वहां योग का क्या काम है? जहां योग का आचरण

है वहां भोग की क्या आवश्यकता है ? किन्तु कौल (कुलाचार में प्रवृत्त) योग और भोग दोनों का भोग करता है।

हरि०–**यत्रेति** । यत्र साधने भोगविरह: भोगाभाव:। उभयमश्नुते योगं भोगञ्च लभते ॥३९॥

एकश्चेत् कुलतत्त्वज्ञः पूजितो येन सुव्रते ।
सर्वे देवाश्च देव्यश्च पूजिता नात्र संशयः ।।४०।।
पृथिवीं हेमसम्पूर्णां दत्त्वा यत् फलमाप्नुयात् ।
तस्मात् कोटिगुणं पुण्यं लभते कौलिकार्चनात् ।।४१।।

पद्या–हे सुव्रते ! जो मनुष्य एक कुलतत्त्वज्ञ साधक की पूजा कर लेता है, वह समस्त देवी-देवताओं की पूजा कर लेता है इसमें सन्देह नहीं है। जितना पुण्य लाभ स्वर्ण से पूर्ण पृथ्वी का दान करने से होता है उससे करोड़ गुणा अधिक पुण्य कौल साधक की पूजा करने से होता है।

हरि०–**एक इत्यादि** । पूजिता: तेनेनि शेष:॥४०-४१॥

श्वपचोऽपि कुलज्ञानी ब्राह्मणादतिरिच्यते ।
कुलाचारविहीनस्तु ब्राह्मणः श्वपचाधमः ।।४२।।

पद्या–यदि चाण्डाल भी कुलतत्त्व का ज्ञाता है तो वह ब्रह्मण कहा जाता है तथा वह ब्राह्मण से श्रेष्ठ है। यदि ब्राह्मण कुलाचार के ज्ञान से रहित है तो वह चाण्डाल से भी अधम (नीच) है।

हरि०–**श्वपच इत्यादि** । अतिरिच्यते उत्तमतावत्त्वाद्विशिष्यते ॥४२॥

कौलधर्म्मात् परो धर्म्मो नास्ति ज्ञाने तु मामके ।
यस्यानुष्ठानमात्रेण ब्रह्मज्ञानी नरो भवेत् ।।४३।।
सत्यं ब्रवीमि ते देवि हृदि कृत्वाऽवधारय ।
सर्वधर्म्मोत्तमात् कौलात् परो धर्म्मो न विद्यते ।।४४।।

पद्या–कौल धर्म से श्रेष्ठ अन्य कोई धर्म नहीं है ऐसा मैं जानता हूँ। इस कौल धर्म के अनुष्ठानमात्र से व्यक्ति ब्रह्मज्ञानी हो जाते हैं। हे देवि! मैं सत्य कहता हूँ इसे हृदय में धारण कर लो। कौल धर्म समस्त धर्मों से श्रेष्ठ है। इससे श्रेष्ठ दूसरा कोई अन्य धर्म नहीं है।

हरि०–कौलधर्मस्य सर्वधर्मोत्तमत्वे हेतुं दर्शयन्नाह यस्यानुष्ठानमात्रेणेत्यादि॥४३-४४॥

अयन्तु परमो मार्गो गुप्तोऽस्ति पशुसङ्कटे ।
व्यक्तिभविष्यत्यचिरात् संवृत्ते प्रबले कलौ ।।४५।।
कलिकाले प्रबृद्धे तु सत्यं सत्यं मयोच्यते ।
न स्थास्यति विना कौलान् पशवो मानवा भुवि ।।४६।।

पद्या–यही परम मार्ग है तथा पशुसमूह से गुप्त है। जब कलियुग प्रबल होगा तब यह मार्ग शीघ्रतापूर्वक प्रकाशित हो जायेगा। मैं सत्य सत्य कहता हूँ जब कलियुग की

वृद्धि होगी तब पृथ्वी पर केवल कौलसाधक ही रहेंगे पशु आचरण करने वाले नहीं होंगे।

विशेष-पशुसमूह, पशुभाव का आचरण करने वाले साधक गण विशेष अध्ययन के लिए देखें-लेखक कृत योनितन्त्र एवं निरुत्तर तन्त्र। प्रकाशक-भारतीय विद्या संस्थान वाराणसी।

हरि०-अमित्यादि। पशुसङ्कटे पशुसमूहे। सम्वृत्ते सम्यक् प्रवृत्ते ॥४५-४६॥

यदा तु वैदिकी दीक्षा दीक्षा पौराणिकी तथा।
न स्थास्यति वरारोहे तदैव प्रबलः कलिः ॥४७॥

पद्या-हे वरारोहे! जब वैदिकी दीक्षा, पौराणिकी दीक्षा पृथ्वी पर स्थिर न रहे तो समझ लेना चाहिये कि कलियुग प्रबल है।

हरि०-अथ तत्तद्युगविधेयाचारप्रसङ्गेन संक्षेपतः कलियुग प्रबलता लक्षणानि कथयति सदा त्वित्यादिभिः। हे वराराहे उत्तमे ॥४७॥

यदा तु पुण्यपापानां परीक्षा वेदसम्भवा।
न स्थास्यति शिवे शान्ते तदैव प्रबलः कलिः ॥४८॥
क्वचिच्छिन्ना क्वचिद्भिन्ना यदा सुरतरङ्गिणी।
भविष्यति कुलेशानि तदैव प्रबलः कलिः ॥४९॥

पद्या-हे शिवे! हे शान्ते! जब पाप-पुण्य की वेद द्वारा कही गयी परीक्षा स्थिर नहीं रहेगी तभी कलियुग प्रबल होगा। हे कुलेशानि! जिस काल में गंगा कहीं छिन्न तथा कहीं भिन्न होंगी तभी कलियुग प्रबल होगा।

हरि०-शान्ते हे संयतचित्ते॥४८॥ सुरतरङ्गिणी गङ्गा ॥४९॥

यदा तु म्लेच्छजातीया राजानो धनलोलुपाः।
भविष्यन्ति महाप्राज्ञे तदैव प्रबलः कलिः ॥५०॥
यदा स्त्रियोऽतिदुर्दान्ताः कर्कशाः कलहे रताः।
गर्हिष्यन्ति च भर्त्तारं भूमौ स्त्रीजिताः कामकिङ्कराः ॥५१॥
यदा तु मानवा भूमौ स्त्रीजिताः कामकिङ्कराः।
द्रुह्यन्ति गुरुमित्रादीन् तदैव प्रबलः कलिः ॥५२॥
यदा क्षौणी स्वल्पफला तोयदाः स्तोकवर्षिणः।
असम्यक्फलिनो वृक्षास्तदैव प्रबलः कलिः ॥५३॥
भ्रातरः स्वजनामात्या यदा धनकणेहया।
मिथः सम्प्रहरिष्यन्ति तदैव प्रबलः कलि ॥५४॥

पद्या-जब म्लेच्छ जाति के व्यक्ति शासक होंगे और वे धन के लोभी होंगे तभी कलियुग को प्रबल समझना। जब स्त्रियां वशहीन (दुर्दान्त) कठोर वचन बोलने वाली, सदैव लड़ने-झगड़ने वाली और पति की निन्दा करने वाली होंगी तभी कलियुग प्रबल

होगा। पृथ्वी पर जिस समय मनुष्य स्त्री के वश में रहने वाले, कामक्रीड़ा में मग्न रहने वाले, गुरु मित्रादि से द्रोह रखने वाले होंगे तभी जानना चाहिए कि कलियुग प्रबल है। जिस काल में पृथ्वी में वृक्ष कम फल देंने वाले एवं कम वर्षा वाली होगी तभी जानना कि कलियुग बलवान है। जिस समय में भाई, स्वजन एवं अमात्य (मंत्री) धन की आकांक्षा हेतु परस्पर मारपीट करने लगे तभी समझना कि कलियुग प्रबल है ।

हरि०-यदा त्वित्यादि। अतिदुर्दान्ता: अतिदु:खेन दम्यन्ते या: यथाभूता: अतिदु:खेन दमनीया इत्यर्थ:। कर्कशा: कठोरा:। गर्हिष्यन्ति निन्दिष्यन्ति । स्तोकवर्षिण: स्वल्पवर्षणशीला:।।५३।। धनकणेहया वित्तलेशाकाङ्क्षया ।।५०-५४।।

प्रकटे मद्यमांसादौ निन्दादण्डविवर्ज्जिते ।
गूढ़पानं चरिष्यन्ति तदैव प्रबल: कलि: ।।५५।।

पद्मा–जिस समय सार्वजनिक स्थान में मद्य एवं मांस के सेवन में भी निन्दा व दण्ड वर्जित हो और सभी लोग छिपकर गूढ़पान (मदिरा सेवन) करने लगे तभी जानना कि कलियुग प्रबल है ।

हरि०-प्रकटे इत्यादि। प्रकटे व्यक्ते मद्यमांसादौ निन्दादण्डविवर्ज्जितेऽपि सति यदा गूढ़पानं जनाश्चरिष्यन्ति तदैव प्रबल: कलिर्ज्ञातव्य: ।।५५।।

सत्यत्रेताद्वापरेषु यथा मद्यादिसेवनम् ।
कलावपि तथा कुर्यात् कुलवर्त्मानुसारत: ।।५६।।
ये कुर्वन्ति कुलाचारं सत्यपूता जितेन्द्रिया: ।
व्यक्ताचारा दयाशीला न हि तान् बाधते कलि:।।५७।।

पद्मा–सत्य, त्रेता, एवं द्वापर युग में जिस प्रकार से प्रकट रूप से मद्यादि का सेवन किया जाता था, उसी प्रकार कुलधर्म के अनुसार कलियुग में भी करें। जो मनुष्य सत्य से पवित्र एवं जितेन्द्रिय होकर कुलाचार का साधन करेंगे वे प्रकट आचरण वाले एवं दयालु होंगे। उनके लिये कलियुग बाधक नहीं होगा ।

हरि०-सत्यत्रेतेत्यादि । यथामद्यादिसेवनम् प्रकाशत: कृतवानिति शेष: । नहि तान् बाधते तात्र पीड़यति ।।५६-५७।।

गुरुशुश्रूषणे युक्त भक्ता मातृपदाम्बुजे ।
अनुरक्ता: स्वदारेषु न हि तान् बाधते कलि: ।।५८।।
सत्यव्रता: सत्यनिष्ठा: सत्यधर्म्मपरायणा: ।
कुलसाधनसत्या ये न हि तान् बाधते कलि: ।।५९।।
कुलमार्गेण तत्त्वानि शोधितानि च योगिने ।
दद्यु सत्यवचसे न हि तान् बाधते कलि: ।।६०।।

पद्मा–गुरु की सेवा में, एकनिष्ठ माँ के चरण कमलों का भक्त तथा अपनी पत्नी से ही रति करने वाले व्यक्ति के लिए कलियुग बाधक नहीं होगा। सत्य व्रत, सत्यनिष्ठ सत्य

धर्मपरायण एवं कुलसाधन को सत्य समझने वाले मनुष्यों के लिये कलियुग बाधक नहीं होगा। जो कुलमार्ग के अनुसार शुद्ध किया हुआ द्रव्य (मद्य-मासादि) सत्यवादी साधक को प्रदान करेगा उसके लिये कलियुग बाधक नहीं होगा।

हरि०—गुर्वित्यादि। युक्ताः सङ्ग... [illegible]नुरक्ताः अनुरागवन्तः। कुलसाधनसत्याः कुलसाधने यथार्थविधायिनः। तत्त्वानि मद्यमां[illegible]दीनि ॥५८-६०॥

हिंसामात्सर्यरहिता दम्भद्वेषविवर्ज्जिताः।
कुलधर्म्मेषु निष्ठा ये न हि तान् बाधते कलिः ॥६१॥
कौलिकैः सह संसर्ग वसतिं कुलसाधुषु।
कुर्वन्ति कौलसेवा ये न हि तान् बाधते कलिः ॥६२॥
नानावेशधराः कौला कुलाचारेषु निश्चलाः।
सेवन्ते त्वां कुलाचारैर्न हि तान् बाधते कलिः ॥६३॥
स्नानं दानं तपस्तीर्थं व्रतं तर्पणमेव च।
ये कुर्वन्ति कुलाचारैर्न हि तान् बाधते कलिः ॥६४॥
जीवसेकादिसंस्काराः पितृश्राद्धादिकाः क्रियाः।
ये कुर्वन्ति कुलाचारैर्न हि तान् बाधतेकलिः ॥६५॥

पद्मा—जो मनुष्य हिंसा, मत्सर्य (द्वेष) दम्भ (अभिमान) द्वेष (ईर्ष्या) से रहित होंगे तथा कुलधर्म में जिनकी निष्ठा होगी उसके लिये कलियुग बाधक नहीं होगा। जो कौलिकों का संसर्ग करेंगे, कुलसाधुओं के मध्य निवास करेंगे तथा कौलों की सेवा करेंगे उन्हें कलियुग बाधक नहीं होगा। अनेक वेश धारण करके, कुलाचार में निश्चल होकर कुलाचार द्वारा तुम्हारा पूजन करेंगे, उनके लिये कलियुग बाधक नहीं होगा। स्नान, दान, तप, तीर्थ, व्रत एवं तर्पण जो कुलाचार के अनुसार करेंगे, उनके लिये कलियुग बाधक नहीं होगा। जो गर्भादि संस्कार एवं पितृश्राद्ध आदि कर्म कुलाचार के अनुसार करेंगे, उनके लिये कलियुग बाधक नहीं होगा।

हरि०—हिंसेति। हिंसामात्सर्यरहिताः प्राणवियोगानुकूलव्यापारो हिंसा अन्य शुभद्वेषो मात्सर्यम् ताभ्यांरहिताः॥ वसतिं निवासम् ॥६१-६५॥

कुलतत्त्वं कुलद्रव्यं कुलयोगिनमेव च।
नमस्कुर्वन्ति ये भक्ता न हि तान् बाधते कलिः॥६६॥

पद्मा—कुल तत्त्व, अर्थात् स्त्री का कुसुम) कुल द्रव्य (मद्यमांसादि) एवं योगी को जो भक्ति पूर्वक नमस्कार करेंगे उनके लिये कलियुग बाधक नहीं होगा।

हरि०—कुलतत्त्वम् स्त्रीकुसुमादि। कुलद्रव्यम् मद्यमांसादि ॥६६॥

कौटिल्यानृतहीनानां स्वच्छानां कुलमार्गिणाम्।
परोपकारव्रतिनां साधूनां किङ्करः कलिः ॥६७॥

पद्मा–कुटिलता एवं मिथ्याचरण से हीन शुद्ध अन्तःकरण वाला कुलमार्गी परोपकारीव्रती ऐसे साधु पुरुषों के लिए कलियुग दास की भाँति होगा।

हरि०–कौटिल्येत्यादि। परोपकारव्रतिनाम् परोपकाररूपं व्रतमस्त्येषामिति परोपकारव्रतिनः तेषाम् ॥६७॥

कलेर्दोषसमूहस्य महानेको गुणः प्रिये ।
सत्यप्रतिज्ञकौलानां श्रेयः सङ्कल्पमात्रतः ॥६८॥
अपरे तु युगे देवि पुण्यं पापञ्च मानसम् ।
नृणामासीत् कलौ पुण्यं केवलं न तु दुष्कृतम् ॥६९॥
कुलाचारविहीना ये सततासत्यभाषिणः ।
परद्रोहपरा ये च ते नराः कलिकिङ्कराः ॥७०॥
कुलवर्त्मस्वभक्ता ये परयोषित्सु कामुकाः ।
द्वेष्टाचारः कुलनिष्ठानां ते ज्ञेयाः कलिकिङ्कराः ॥७१॥
युगाचारप्रसङ्गेन कलेः प्राबल्यलक्षणम् ।
संक्षेपात् कथितं भद्रे प्रीतये तव पार्वति ॥७२॥

पद्मा–हे प्रिये! कलियुग के दोष समूह के मध्य एक महान् गुण है सत्यप्रतिज्ञ कौलसाधकों को संकल्पमात्र से ही श्रेय (सौभाग्य) की प्राप्ति होती है। हे देवि! सत्ययुग त्रेता द्वापरादि युगों में पाप-पुण्य केवल मानसिक होते थे, किन्तु कलियुग में केवल पुण्य मानसिक होता है, पाप नहीं। जो कुलाचार विहीन हैं, सदा असत्य भाषण करते हैं, दूसरों का अनिष्ट करते हैं वे समस्त मनुष्य कलियुग के दास होंते हैं। जिनकी कुल धर्म में भक्ति नहीं है जो दूसरे की स्त्रियों को कामुक दृष्टि से देखते है, जो कुलपरायण व्यक्ति से द्वेष रखते हैं वे कलियुग के दास जाने जाते हैं। हे भद्रे! हे पार्वति! युगाचार के प्रसङ्ग में तुम्हारी प्रसन्नता हेतु संक्षेप में मैंने कलियुग की प्रबलता के लक्षण कहा।

हरि०–कलेरिति। दोष समूहस्य दोष समूहवतः॥ अपरे सत्यत्रेतादौ ॥६८-७२॥

प्रकटेऽत्र कलौ देवि सर्वे धर्म्माश्च दुर्बलाः ।
स्थास्यत्येकं सत्यमात्रं तस्मात् सत्यमयो भवेत् ॥७३॥
सत्यधर्म्मं समाश्रित्य यत् कर्म्म कुरुते नरः ।
तदेवं सफलं कर्म्म सत्यं जानीहि सुव्रते ॥७४॥

पद्मा–हे देवि! कलियुग के प्रबल हो जाने पर सभी धर्म दुर्बल हो जायेंगे। एकमात्र सत्य ही स्थिर रहेगा। इसीलिये मनुष्य का कर्तव्य होगा कि वह 'सत्यमय' हो। सत्यधर्म का आश्रय लेकर व्यक्ति जो भी कर्म करेगा वही कर्म, हे सुव्रते! सफल होगा, यह निश्चित रूप से जानो।

हरि०–कलेर्युगस्य प्राबल्ये सति सत्येनैव पव्यक्तं कुलाचारो विधातव्य इत्यभिधातुकामो महोदव: सत्यं प्रशंसिष्यन्नाह प्रकटेऽत्रेत्यादि॥७३-७४॥

न हि सत्यात् परो धर्म्मो न पापमनृतात् परम् ।
तस्मात् सर्वात्मना मर्त्याः सत्यमेकं समाश्रयेत् ॥७५॥

पद्मा–सत्य से श्रेष्ठ कोई धर्म नहीं है तथा असत्य से बढ़कर कोई पाप नहीं है। इसलिये मनुष्य का कर्तव्य है कि वह समस्त स्थितियों में सत्य का ही आश्रय ले ।

हरि०–नहीत्यादि। अनृतात् असत्यात् । सर्वात्मना सर्वप्रयत्नेन। आत्मायत्नो धृतिर्बुद्धि: स्वभावो ब्रह्मवर्ष्म चेत्यमरः। समाश्रयेत् सम्यक् सेवेत॥७५॥

सत्यहीना वृथा पूजा सत्यहीनो वृथा जप: ।
सत्यहीनं तपो व्यर्थमूषरे वपनं यथा ॥७६॥
सत्यंरूपं पर ब्रह्म सत्यं हि परमं तप: ।
सत्यमूला: क्रिया: सर्वा: सत्यात् परतरो न हि ॥७७॥
अतएव मया प्रोक्तं दुष्कृते प्रबले कलौ ।
कुलाचारोऽपि सत्येन कर्तव्यो व्यक्तभावत: ॥७८॥

पद्मा–ऊसर भूमि में जिस प्रकार बीज बोना निरर्थक है उसी प्रकार से सत्यहीन पूजा, सत्यहीन जप तथा सत्यहीन तप निरर्थक है। सत्यरूप ही परम ब्रह्म है, सत्य ही परम तप है, समस्त क्रियायें सत्यमूलक है, सत्य से बढ़कर कुछ भी नहीं है। इसी कारण से मैंने कहा है कि इस पापयुक्त प्रबल कलियुग में सत्य का आश्रय लेकर प्रकट रूप से कुलाचार कर्म करें ।

हरि०–ऊषरे क्षारमृत्तिकायुक्तदेशे । अतएव सर्वेषां कर्म्मणां सत्यमूलत्वादेवेत्यर्थ:। दुष्कृते पापिनि ॥७६-७८॥

गोपनाद्धीयते सत्यं न गुप्तिरनृतं विना ।
तस्मात् प्रकाशतः कुर्यात् कौलिकः कुलसाधनम् ॥७९॥

पद्मा–गोपनीयता से सत्य की हानि होती है तथा गोपनीयता असत्य भाषण किये बिना सम्भव नहीं है। इसीलिये कौलसाधक प्रकट रूप से कुल साधना करे ।

हरि०–हीयते हीनं भवति त्यक्तं भवतीत्यर्थ:॥७९॥

कुलधर्म्मस्य गुप्त्यर्थं नानृतं स्याज्जुगुप्सितम् ।
यदुक्तं कुलतन्त्रेषु न शस्तं प्रबले कलौ ॥८०॥

पद्मा–कुल धर्म की रक्षा के लिये असत्य भाषण घृणित नहीं है ऐसा मैंने कुलतन्त्र आदि तन्त्र ग्रन्थों में कहा है किन्तु यह वचन कलियुग में प्रबल होने पर कल्याणकारी नहीं है ।

हरि०–ननु कुलधर्म्मस्य गुप्त्यर्थं नानृतं स्याज्जुगुप्सितमिति कुलतन्त्रेषु भवतैवोक्तं तत्कथमिदानीमुच्यते तस्मात् प्रकाशत: कुर्यात् कौलिक: कुलसाधनमित्यह आह। कुलधर्म्मस्येत्यादि। ॥८०॥

कृते धर्म्मश्चतुष्पादः त्रेतायां पादहीनकः ।
द्विपादो द्वापरे देवि पादमात्रं कलौ युगे ।।८१।।

पद्या–कृतयुग (सत्ययुग) में धर्म के चार पैर थे, त्रेता युग में उसका एक पद कम हो गया। द्वापर युग में उसके दो पद कम हो गये। हे देवि! कलियुग में धर्म का एक ही पद रह जायेगा ।

हरि०–कृत इत्यादि। कृते सत्ययुगे चतुष्पादौ धर्म्म आसीदिति शेषः। समासान्तविधेरनित्यत्वान्न पाद शब्दस्यान्तस्य लोपः। पादमात्रम् धर्म्मस्याव शिष्यते इति शेषः॥८१॥

तत्रापि सत्यं बलवत् तपः खञ्जं दयाऽपि च ।
सत्यपादे कृते लोपे धर्म्मलोपः प्रजायते ।
तस्मात् सत्यं समाश्रित्य सर्वकर्म्माणि साधयेत् ।।८२।।

पद्या–धर्म का एक पाद भी 'तप' एव 'दया' रूपी दो अंशों में बट जाता है केवल सत्य का ही अंश दृढ़ रहता है। सत्यपाद के भग्न या टूट जाने पर धर्म का लोप हो जाएगा। इसीलिये सत्य का आश्रय लेकर ही सभी कर्मों को करें ।

हरि०–तत्रापीत्यादि । तत्रापि पादमात्रेऽपि। दयाऽपि च खञ्जा। लुप्यते इति लोपः। तस्मिन् कर्म्मणि घञ् ॥८२॥

कुलाचारं विना यत्र नात्स्युपायः कुलेश्वरि ।
तत्रानृतप्रवेशश्चेत् कुतो निःश्रेयसं भवेत् ।।८३।।
सर्वथा सत्यपूतात्मा मन्मुखेरितवर्त्मना ।
सर्वं कर्म्म नरः कुर्यात् स्वस्ववर्णाश्रमोदितम् ।।८४।।
दीक्षां पूजां जपं होमं पुरश्चरणतर्पणम् ।
व्रतोद्वाहौ पुंसवनं सीमन्तोन्नयनन्तथा ।।८५।।

पद्या–हे कुलेश्वरि ! कुलाचार के अतिरिक्त अन्य कोई उपाय कलियुग में नहीं है। इस कलियुग में यदि असत्य आचरण में प्रवृत्त होता है तो कभी भी कल्याण नहीं होता है। अतः सभी प्रकार से सत्य पवित्र आत्मा होकर, मेरे द्वारा कहे गये मार्ग के अनुसार अपने अपने वर्णाश्रम धर्म के अनुसार मनुष्य सभी कर्म करे तथा दीक्षा, पूजा, जप, होम, पुरश्चरण, तर्पण, व्रत, पुंसवन एवं सीमन्तोन्नयन आदि कर्म मेरे कहे गये मार्ग के अनुसार ही करें ।

हरि०–कुलाचारमिति । यत्र प्रबलेकलौ। निःश्रेयसं मुक्तिः। तच्च किं सर्वं कर्म्म तत्राह दीक्षमित्यादि। पुरश्चरणतर्पणमिति समाहारद्वन्द्वः ॥८३-८५॥

जातकर्म्म तथा नामचूडाकरणमेव च ।
मृत क्रियां पितृश्राद्धं कुर्यादागमसम्मतम् ।।८६।।
तीर्थश्राद्धं वृषोत्सर्गं शारदोत्सवमेव च ।
यात्रां गृहप्रवेशञ्च नववस्त्रादिधारणम् ।।८७।।

वापीकूपतटागानां संस्कारं तिथि कर्म्म च ।
गृहारम्भप्रतिष्ठाञ्च देवानां स्थापनन्तथा ।।८८।।
दिवाकृत्यं निशाकृत्यं पर्वकृत्यं तथैव च ।
ऋतुमासवर्षकृत्यं नित्यं नैमित्तिकञ्च यत् ।।८९।।
कर्तव्यं यदकर्तव्यं त्याज्यं ग्राह्यञ्च यद्भवेत् ।
मयोक्तेन विधानेन तत सर्वं साधयेन्नरः ।।९०।।

पद्मा–जातकर्म, नामकरण, चूड़ाकरण, अन्त्येष्टि क्रिया एवं पितृश्राद्ध आगम सम्मत करे। तीर्थ-श्राद्ध, वृषोत्सर्ग, शारदोत्सव, यात्रा, गृहप्रवेश, नूतन वस्त्रादिधारण, वापी, कूप, सरोवर, संस्कार, तिथिकर्म, गृहारम्भ, गृहप्रतिष्ठा, देवस्थापन, दिवाकृत्य, निशाकृत्य, पर्वकृत्य, ऋतुकृत्य, मासकृत्य, वर्षकृत्य, नित्य, नैमित्तिक कर्म, कर्तव्य, अकर्तव्य त्याज्य, ग्राह्य जो भी कर्म करे, वह सब मनुष्य मेरे द्वारा कहे गये विधान के अनुसार ही कार्य करे ।

हरि०–नामचूड़ाकरणमेव च नामकरणं चूड़ाकरणञ्चेत्यर्थः। नववस्त्रादीत्यादिना नवीन-भूषणादेः संग्रहः। गृहारम्भप्रतिष्ठाञ्च गृहारम्भं गृहप्रतिष्ठाञ्चेत्यर्थः।।८६-९०।।

न कुर्याद् यदि मोहेन दुर्मत्याऽश्रद्धयाऽपि वा ।
विनष्टः सर्वकर्म्मभ्यो विष्ठायां स भवेत् कृमिः ।।९१।।
यदि मन्मतमुत्सृज्य महेशि प्रबले कलौ ।
यदा यत् क्रियते कर्म्म विपरीताय तद्भवेत् ।।९२।।

पद्मा–यदि कोई मनुष्य मोह, दुर्मति या अश्रद्धा के वश में होकर उपरोक्त सभी कर्मों को नहीं करता है तो वह विष्ठा का कीड़ा बनता है। हे महेशि! यदि मेरे मत को त्याग कर प्रबलकलि युग में कर्म करता है तो विपरीत परिणाम देगा ।

हरि०–प्रबले कलौ युगे सदाशिवमुल्लङ्घ्य कर्म्माणि कुर्वतो जनस्य महापातकत्वं क्रियमाणानां कर्म्मजाञ्च नैष्फल्यमित्याह न कुर्यादित्यादिभिः। मोहेन अविवेकेन। अश्रद्धया विश्वासाभावेन ।।९१-९२।।

मन्मतासम्मता दीक्षा साधक प्राणघातिनी ।
पूजाऽपि विफला देवि हुतं भस्मार्पणं यथा ।
देविता कुपिता तस्य विघ्नस्तस्य पदे पदे ।।९३।।
कलिकाले प्रवृद्धे तु ज्ञात्वा मच्छास्त्रमम्बिके ।
योऽन्यमार्गैः क्रियां कुर्यात् स महापातकी भवेत् ।।९४।।
व्रतोद्वाहौ प्रकुर्वाणो योऽन्यमार्गेण मानवः ।
स याति नरकं घोरं यावच्चन्द्रदिवाकरौ ।।९५।।

पद्मा–हे देवि! मेरे मत से भिन्न दीक्षा साधक के लिये प्राणघातिनी होगी। जिस प्रकार भस्म में आहुति देने से कुछ फल नहीं मिलता है उसी प्रकार मेरे मत से भिन्न व्यक्ति की

पूजा भी निष्फल होती है। उससे देवता क्रोधित हो जाते हैं तथा पग पग पर विघ्न होते हैं। हे अम्बिके! कलियुग के प्रबल होने पर जो व्यक्ति मेरे मार्ग का अनुसरण जानकर नहीं करता तथा अन्यमार्ग के अनुसार क्रिया करेगा वह महापातकी होगा। जो मनुष्य व्रत, विवाह आदि कर्मों को अन्य मार्ग से करेगा, वह प्रलयकाल तक घोर नरक में रहेगा।

हरि०–भस्मार्पणम् अर्प्यते यत् तदर्पणम् कर्मणि ल्युट् भस्मन्यपणमिति सप्तमीपुरुष:। भस्मार्पितमित्यर्थः। भस्मार्पितमित्येव वा पाठः॥९३-९५॥

व्रते ब्रह्मवध: प्रोक्त: व्रात्यो मानवको भवेत्।
केवलं सूत्रवाहोऽसौ चाण्डालादधमोऽपि स: ॥९६॥

पद्मा–अन्यमत से उपनयन संस्कार होने पर वह संस्कार हीन एवं व्रात्य होगा तथा ब्रह्मघातक होगा। वह व्यक्ति केवल मात्र सूत्र वाही होगा तथा चाण्डाल से भी नीच होगा।

हरि०–**व्रते इत्यादि।** अन्यमार्गेण जातसंस्कारोऽपि मानवको व्रात्यो भवेत् संस्कारहीनो भवेदित्यर्थः॥९६॥

उद्वाहिताऽपि या नारी जानीयात् सा तु गर्हिता।
उद्वोढाऽपि भवेत् पापी संसर्गात् कुलनायिके।
वेश्यागमनजं पापं तस्य पुंसो दिने दिने ॥९७॥
तद्धस्तादन्नतोयादि नैव गृह्णन्ति देवता:।
पितरोऽपि न चाश्नन्ति यतस्तन्मपूपवत् ॥९८॥
तयोरपत्यं कानीन: सर्वधर्म्मवहिष्कृत:।
दैवे पैत्रे कुलाचारे नाधिकारोऽस्य जायते ॥९९॥

पद्मा–हे कुलनायिके! अन्य मत से जिस नारी का विवाह होगा वह निन्दा का पात्र होगी तथा उससे विवाह करने वाला पुरुष भी उसके संसर्ग से पापी होगा तथा उसे प्रतिदिन स्त्रीगमन से वेश्यागमनजन्य पाप होगा। उसके हाथ का जल-अन्न आदि देवता भी नहीं ग्रहण करेंगे। पितृगण भी इसे मल-मूत्र के समान समझ नहीं ग्रहण करेंगे। उस स्त्री का पुत्र अविवाहित स्त्री के पुत्र के समान सभी धर्म-कर्म से बहिष्कृत होगा एवं देव-पितृ तथा कुलाचार कर्म में उसका अधिकार नहीं होगा।

हरि०–**उद्वाहितेत्यादि।** अन्यमार्गेणोद्वाहिता या नारी सा तु गर्हिता निन्दिता भवेदिति जानीयात्। तान्तु गर्हितमिति वा पाठः। संसर्गात अन्य मार्गेणोद्वाहिताया नार्या: सङ्गमात्। तस्य कृतान्यविध्युद्वाहितनारीसंसर्गस्य॥ तद्धस्तदत्तान्नतोयाद्यग्रहणे कारणमाह यत इत्यादि। तत् अन्नतोयादि॥ तयो: अन्यमार्गोद्वाहितनारीतदुद्वोढ्पुरुषयो:। अस्यकानीनस्य॥९७-९९॥

अशाम्भवेन मार्गेण देवतास्थापनञ्चरेत्।
न सन्निध्यं भवेत्तत्र देवताया: कथञ्चन।
इहामुत्र फलं नास्ति कायक्लेशो धनक्षय: ॥१००॥
आगमोक्त विधिं हित्वा य: श्राद्धं कुरुते नर:।
श्राद्धं तद्विफलं सोऽपि पितृभिर्नरकं व्रजेत् ॥१०१॥

तत्तोयं शोणितसमं पिण्डो मलमगो भवेत् ।
तस्मान्मर्त्यः प्रयत्नेन शाङ्करं मतमाश्रयेत् ।।१०२।।
बहुनाऽत्र किमुक्तेन सत्यं सत्यं मयोच्यते ।
अशाम्भवं कृतं कर्म्म सर्वं देवि निरर्थकम् ।।१०३।।

पद्मा–शिव के मत से भिन्न विधि से देवता की मूर्ति की स्थापना करने से उसमें देवता का सान्निध्य नहीं होगा तथा इह लोक या परलोक में कोई फल नहीं मिलेगा अपितु काया क्लेश एवं धन का क्षय होगा। आगम विधि की उपेक्षा करके जो व्यक्ति श्राद्ध करता है तो उसका श्राद्ध विफल होगा तथा उसके पितृगण एवं स्वयं नरक को जाएगा। उसके द्वारा प्रदान किया गया जल रक्त के समान तथा पिण्ड (पदार्थ) मल के समान होगा। इसलिये मनुष्यों को समस्त प्रकार से शिव द्वारा प्रवर्तित मार्ग का आश्रय लेना ही उचित है। हे देवि! मैं अधिक और क्या कहूँ, मैं सत्य और निश्चित रूप से सत्य कहता हूँ कि शिवमार्ग से जो भी भिन्न कर्म होंगे वे सभी असफल होंगे ।

हरि०–तत्र अशाम्भवमार्गस्थापितदेवताप्रतिमायाम् ।।१००-१०३।।

अस्तु तावत् परो धर्म्मः पूर्वं धर्म्मोऽपि नश्यति ।
शाम्भवाचारहीनस्य नरकान्नैव निष्कृतिः ।।१०४।।
मदुदीरितमार्गेण नित्यनैमिककर्मणाम् ।
साधनं यन्महेशानि तदेव तव साधनम् ।।१०५।।

पद्मा–शाम्भव आचार से हीन व्यक्तियों का अन्य मत से धर्म होना तो अलग है उनके पूर्व सञ्चित धर्म भी नष्ट हो जाएंगे एवं नरक से उद्धार भी नहीं होगा। हे महेशानि! मेरे द्वारा कहे गये मार्ग से जो नित्य, नैमित्तिक कर्म आदि साधन है वही तुम्हारा साधन है ।

हरि०–निष्कृतिर्निस्तारः।।१०४-१०५।।

विशेषाराधनं तत्र मन्त्रयन्त्रादिसंयुतम् ।
भेषजं कलिरोगाणां श्रूयताङ्गदतो मम ।।१०६।।

इति श्रीमहानिर्वाणतन्त्रे सर्वतन्त्रोत्तमोत्तमे सर्वधर्म्मनिर्णयसारे श्रीमदाद्यासदाशिवसंवादे जीवनिस्तारोपायप्रश्नो पराक्कृतिसाधनोपक्रमो नाम चतुर्थोल्लासः।।४।।

पद्मा–कलियुग रूपी व्याधि की भेषज स्वरूप अनेक प्रकार के मन्त्र एवं यन्त्रादि से संयुक्त तुम्हारी विशेष साधना विधि को मैं कहता हूँ श्रवण करो ।

महानिर्वाणतंत्र के चौथे उल्लास की 'पद्मा' नामक हिन्दी व्याख्या पूर्ण हुई।

हरि०–**भेषजम् औषधम्** । गदतो मम कथयतो मत्तः। **मयेत्यपादानस्य शेषत्वेन** विवक्षितत्त्वात् शेषे षष्ठीति षष्ठी ।।१०६।।

इति श्रीमहानिर्वाणतंत्र टीकायां चतुर्थोल्लासः।।४।।

पञ्चमोल्लासः

श्रीसदाशिव उवाच

त्वमाद्या परमा शक्तिः सर्वशक्तिस्वरूपिणी ।
तव शक्त्या वयं शक्ताः सृष्टिस्थितिलयादिषु ।।१।।

पद्मा–तुम ही आद्या एवं परमा शक्ति हो। तुम ही सर्वशक्तिस्वरूपा हो। तुम्हारी शक्ति के द्वारा ही मैं सृष्टि करने, पालन करने एवं विनाश करने में समर्थ होता हूँ।

हरि०–ॐ नमो ब्रह्मणे ।

मन्त्रयन्त्रादिसंयुक्तस्य विशेषाराधनस्यैवाभिधाने प्रवृत्तः श्री सदाशिव उवाच त्वमाद्या परमेत्यादि ॥१॥

तव रूपाण्यनन्तानि नानावर्णाकृतीनि च ।
नानाप्रयाससाध्यानि वर्णितुं केन शक्यते ।।२।।

पद्मा–तुम्हारे अनेक वर्ण एवं विभिन्न आकार हैं। तुम्हारी अनेक प्रयास साध्य साधनाओं के अनन्त रूप हैं। उनके वर्णन करने की सामर्थ्य किसमें है ।

हरि०–तवेति । नानावर्णाकृतीनि नाना अनेके वर्णा आकृतय आकाराश्च येषां रूपाणां तानि ॥२॥

तव कारुण्यलेशेन कुलतन्त्रागमादिषु ।
तेषामर्चासाधनानि कथितानि यथामति ।।३।।

पद्मा–तुम्हारी दया से कुलतन्त्र आगम आदि में तुम्हारे उन रूपों की पूजा एवं साधना विधि मैंने अपनी बुद्धि के अनुसार कहा है ।

हरि०–कारुण्यलेशेन दयाया लवेन। तेषां तव रूपाणाम् ॥३॥

गुप्तसाधनमेतत्तु न कुत्रापि प्रकाशितम् ।
अस्य प्रसादात् कल्याणि मयि ते करुणेदृशी ।।४।।

पद्मा–मैंने इस गुप्तसाधन को कहीं पर प्रकट नहीं किया है। हे कल्याणि ! इस गुप्तसाधन के प्रसाद से ही तुम्हारी मेरे प्रति कृपा हुई है ।

हरि०–एतत्तु अतः परमुच्यमानन्तु। अस्य गुप्तसाधनस्य॥४॥

त्वया पृष्टमिदानीं तन्नाहं गोपयितु क्षमः ।
कथयामि तव प्रीत्यै मम प्राणाधिकं प्रिये ।।५।।
सर्वदुःख प्रशमनं सर्वापद्विनिवारकम् ।
त्वत्प्राप्तिमूलमचिरात्तव सन्तोषकारणम् ।।६।।

पद्मा–हे प्रिये। तुम्हारे पूछने पर मैं इस समय इस गोपनीय विषय को गोपनीय करने में समर्थ नहीं हूँ। यह विषय मुझे प्राणों से भी अधिक प्रिय होने पर भी इसे मैं तुम्हारी प्रीति

हेतु कहता हूँ। यह साधन सभी दुःखों का शमन करने में तथा समस्त आपदाओं का निवारक है। यह शीघ्र तुम्हारी प्राप्ति कराने वाला तथा सन्तुष्ट करने वाला है।

हरि०–तत् गुप्तसाधनम् ॥५-६॥

कलिकल्मषदीनानां नृणां स्वल्पायुषां प्रिये ।
बहुप्रयासासक्तानामेतदेव परं धनम् ॥७॥

पद्मा–हे प्रिये ! कलियुग के दोषों द्वारा दीन जीवन शक्ति एवं अधिक क्षीण प्रयास करने में असक्त मनुष्यों के लिये यह साधन परम धन के समान है।

हरि०–एतदेव अत: परमुच्यमानं गुप्तसाधनमेव ॥७॥

न चात्र न्यासबाहुल्यं नोपवासादि संयमः ।
सुखसाध्यमबाहुल्यं भक्तानां फलदं महत् ॥८॥

पद्मा–इस गोपनीय साधन में न्यासों की बहुलता नहीं है, न उपवासादि का संयम। यह साधन सुखसाध्य संक्षिप्त एवं भक्तों को महत् फल देने वाला है।

हरि०–अत्र अत: परमुच्यमाने साधने। अबाहुल्यं बाहुल्यशून्यम् ॥८॥

तत्राऽऽसौ शृणु देवेशि मन्त्रोद्धारक्रमं शिवे ।
यस्य श्रवणमात्रेण जीवन्मुक्तोऽपि जायते ॥९॥

पद्मा–हे देवेशि! हे शिवे! मैं सर्वप्रथम मन्त्रोद्धार का क्रम कह रहा हूँ। श्रवण करो। इसके श्रवणमात्र से मनुष्य जीवन्मुक्त हो जाएंगे।

हरि०–तत्रसाधने ॥९॥

प्राणेशस्तैजसारूढो भेरुण्डाव्योमविन्दुमान् ।
बीजमेतत् समुद्धृत्य द्वितीयमुद्धरेत् प्रिये ॥१०॥

पद्मा–हे प्रिये! तेजस अर्थात् रेफ में आरुढ़, प्राणेश (हकार) में भेरुण्डा (ई) का योग करके उसमें व्योम बिन्दु अर्थात् अनुस्वार सम्मिलित कर 'ह्रीं' इस बीज का उद्धार का दूसरे बीज का उद्धार करे।

हरि०–तमेव मन्त्रोद्धार क्रममाह प्राणेश इत्यादिभि:। तैजसारूढ: तेजसो रेफस्तमारूढ:। प्राणेशो हकारो। भेरुण्डाव्योमबिन्दुमान् भेरुण्डा ईकार: व्योम बिन्दुरनुस्वार: ताभ्यां विशिष्टे विधातव्य:। एवं ह्रीमित्येतद्बीजं समुद्धृत्य द्वितीयं बीजमुद्धरेत् ॥१०॥

सन्ध्या रक्तसमारूढा वामनेत्रेन्दुसंयुता ।
तृतीयं शृणु कल्याणि दीपसंस्थः प्रजापतिः ॥११॥
गोविन्दबिन्दुसंयुक्तः साधकानां सुखावहः ।
बीजत्रयान्ते परमेश्वरि सम्बोधनं पदम् ॥१२॥
वह्निकान्तावधि प्रोक्तो दशार्णोऽयं मनुः शिवे ।
सर्वविद्यामयी देवी विद्येयं परमेश्वरी ॥१३॥

पद्मा–सन्ध्या अर्थात तालव्य 'श' रक्तसमारूढा अर्थात् 'र' के ऊपर आरोहण करके,

उसमे वामनेत्र (ई) और इन्दु (ं) को संयुक्त करके पर 'श्रीं' इस द्वितीय बीज का उद्धार हुआ है। हे कल्याणि! अब तृतीय बीज का श्रवण करो। प्रजापति (क) एवं दीप (रेफ अर्थात् र) में गोविन्द (ई) तथा बिन्दु (.) को संयुक्त करने पर साधकों को सुख प्रदान करने वाला क्रीं बीज मन्त्र बनता है। हे देवि! इन बीज त्रय के पश्चात् 'परमेश्वरि' यह सम्बोधन वाचक पद है। हे शिवे! इस मन्त्र के शेष अन्तिम भाग में वह्निकान्ता (स्वाहा) पद है। इस प्रकार यह दश वर्णों का मन्त्र है। **ह्रीं श्रीं क्रीं परमेश्वरि स्वाहा'** सर्व विद्यास्वरूपा इस दशाक्षरी मन्त्र की देवी परमेश्वरी विद्या है।

हरि०–तच्च किं बीजमत् आह सन्ध्येत्यादि रक्तसमारूढ़ा रेफ समारूढ़ा सन्ध्या तालव्यः शकारो वामनेत्रेन्दुसंयुता वामनेत्रत्रयीकारः इन्दुरनुस्वारः ताभ्यां संयुक्ता कर्तव्या। एवं श्रीमिति द्वितीयं बीजमुद्धृतामासीत्। हे कल्याणि तृतीयं बीजं शृणु। तच्च किं बीजमत आह दीपसंस्थ इत्यादि। दीपसंस्थः दीपो रेफः तत्र स्थितः प्रजापतिः ककारो गोविन्द विन्दुसंयुक्तः गोविन्द ईकारः बिन्दुरनुस्वारः ताभ्यां संयुक्तः करणीयः। एतादृशश्च ककारः साधकानां सुखावहः सुखप्रायको भवति। एवच्च क्रीमिति तृतीयं बीजमुद्धृतमासीत्। बीजत्रयास्यान्ते वह्निकान्ता स्वाहा अवधिरन्तभूता यस्य एतादृशं परमेश्वरि इति सम्बाधनं पदं वदेत्। सकलपदयोजनया ह्रीं श्रीं क्रीं परमेश्वरि स्वाहेति मन्त्रो जातः। हे शिवे अयं मनुर्मन्त्रो दशार्णो दशवर्णकः प्रोक्तः। वह्निकान्तावधिरिति पाठे तु मन्त्रो विशेष्यः तस्यैवेदं विशेषणमिति ज्ञातव्यम्। सर्वविधामयी सर्वविद्यास्वरूपये मन्त्रात्मिका देवी परमेश्वरी विद्यानापोयंम्॥११-१३॥

आद्यत्रयाणां बीजानां प्रत्येकं त्रयमेव वा।
प्रजपेत् साधकाधीशः धर्म्मकामार्थसिद्धये ॥१४॥

पद्मा–साधक श्रेष्ठ, धर्म, काम, अर्थ की सिद्धि हेतु प्रारम्भ के तीन बीजों में से कोई एक या तीनों बीजों का जप करते हैं।

हरि०–**आद्येत्यादि**। आद्यत्रयाणामेतस्यैव मन्त्रस्यादिभूतानां ह्रीं प्रभृतीनां त्रयाणां बीजानां मध्ये प्रत्येकं ह्रीमिति श्रीमिति क्रीमिति वा बीजं ह्रीं श्रीं क्रीमिति बीजत्रयमपि वा धर्म्मकामार्थसिद्धये साधकाधीशः साधकोत्तमः प्रजपेत्। एवन्तु पञ्चमन्त्रा आसन्॥१४॥

बीजमाद्यत्रयं हित्वा सप्तार्णाऽपि दशाक्षरी।
कामवाभवताराद्या सप्तार्णाऽष्टाक्षरी विद्या ॥१५॥

पद्मा–तीनों आदि बीजों को त्यागने पर दशाक्षरी मन्त्र सप्ताक्षरी बन जाता है। (परमेश्वरी स्वाहा) इस सप्ताक्षरी मन्त्र के पूर्व काम बीज (क्लीं) वाग्भव बीज (ऐं) तथा तार (ॐ) जोड़ने से अष्टाक्षरीमन्त्र बनता है (क्लीं परमेश्वरि स्वाहा, के क्रम से)।

हरि०–**बीजमित्यादि**। ह्रीं प्रभृत्याद्यबीजत्रयं हित्वा त्यक्त्वा दशाक्षरी मन्त्रात्मिका परमेश्वरी विद्या सप्तार्णाऽपि परमेश्वरि स्वाहेत्याकारा सप्ताक्षर्यपि भवेत्। अनेन सहिताः षड् मन्त्रा अभूवन्। कामवाग्भवताराद्या क्लीमिति ऐमिति ओमिति वा बीजमाद्यं यस्यास्तथाभूता

चेत् सप्तार्णा मन्त्ररूपा परमेश्वरी विद्यास्यात्तदाक्लीं परमेश्वरी स्वाहेत्याकारा ऐं परमेश्वरि स्वाहेत्याकारा ओं परमेश्वरि स्वाहेत्याकारा चाष्टाक्षर्यपि भवति। एवञ्चैषाऽष्टाक्षरी त्रिधा जाता। एतैस्त्रिभिः सहिता नवमन्त्रा वभूवुः॥१५॥

दशार्णामन्त्रेण पदात् कालिके पदमुच्चरेत् ।
पुनराद्यत्रयं बीजं वह्निजायां ततो वदेत् ॥१६॥
षोडशीयं समाख्याता सर्वतन्त्रेषु गोपितां ।
वध्वाद्या प्रणवाद्य चेदेषा सप्तदशी द्विधा ॥१७॥
तव मन्त्रा ह्यसंख्याता कोटिकोट्यर्बुदास्तथा ।
संक्षेपादत्र कथिता मन्त्राणां द्वादश प्रिये ॥१८॥

पद्मा–पूर्व में कहे गये दशाक्षरीमन्त्र के सम्बोधन पद के अन्त में 'कालिके' इस पद का उच्चारण करे। उसके पश्चात् आद्यत्रय बीज का उच्चारण करके वह्निजाया अर्थात् स्वाहा पद को करे। इस **ह्रीं श्रीं क्रीं परमेश्वरि कालिके ह्रीं श्रीं क्रीं स्वाहा'** पर सोलह अक्षरों वाला मन्त्र 'षोडशी' नाम से समस्त तन्त्रों में गोपनीय है। यदि इस षोडशी मन्त्र के आदि में वधू बीज (स्त्रीं) या प्रणव (ॐ) को संयुक्त करने से दो प्रकार के सप्तदशाक्षरी मन्त्र बनते हैं-जैसे-१. **स्त्रीं ह्रीं श्रीं क्रीं परमेश्वरि कालिके ह्रीं श्रीं क्रीं** तथा २. **ॐ ह्रीं श्रीं क्रीं परमेश्वरि कालिके ह्रीं श्रीं क्रीं स्वाहा** (संस्कृत व्याख्या भी देखें)। हे प्रिये! जिस प्रकार तुम्हारे कोटि, कोटि अर्बुद एवं असंख्य मन्त्र हैं उसी प्रकार से मैंने उनमें से संक्षेप में तुम्हारे बारह मन्त्रों को कहा है ।

हरि०–दशार्णेत्यादि। दशार्णस्य मनोरामन्त्रणपदात् परं कालिके इति पदमुच्चरेत् वदेत् । ततः परं ह्रीं प्रभृत्याद्यत्रयं बीजं पुनर्वदेत् । ततोऽनन्तरं वह्निजायां स्वाहेति पदं वदेत् सकलपदयोजनया ह्रीं श्रीं क्रीं परमेश्वरि कालिके ह्रीं श्रीं क्रीं स्वाहेति मन्त्रो जातः। इयं षोडशी षोडश वर्णा मन्त्रात्मिका परमेश्वरी विद्या सर्वतन्त्रेषु गोपितापि तव प्रीत्यै मया समाख्याता सम्यक् कथिता। एतेन सहिता दश मन्त्रा अभवन् । चेद्यद्येषा षोडशी वह वाद्या स्त्रीमिति-बीजाद्या प्रणवाद्या ओङ्काराद्या वा स्यात् तदा स्त्रीं ह्रीं श्रीं क्रीं परमेश्वरि कालिके ह्रीं श्रीं क्रीं स्वाहेत्याकारा च सप्तदशी सप्तदशाक्षर्यपि भवेत् । एवञ्चैषा सप्तदशी द्विधा जाता। एताभ्यां मिलिता द्वादश मन्त्रा आसन् ॥१६-१८॥

येषु येषु च तन्त्रेषु ये ये मन्त्राः प्रकीर्तिताः ।
ते सर्वे तव मन्त्राः स्युस्त्वमाद्या प्रकृतिर्यतः ॥१९॥
एतेशां सर्वमन्त्राणां एकमेव हि साधनम् ।
कथयामि तव प्रीत्यै तथा लोकहिताय च ॥२०॥

पद्मा–जिस-जिस तन्त्र में जो जो मन्त्र कहे गये हैं वे सभी तुम्हारे ही मन्त्र हैं, क्योंकि तुम्ही आद्या प्रकृति हो। इन सभी मन्त्रों के साधन की विधि एक ही है। लोकहित तथा

तुम्हारी प्रसन्नता के लिये मैं उस साधन का वर्णन करता हूँ।

हरि०–सकल तन्त्रोक्तानां सर्वेषां मन्त्राणां पार्वतीसम्बन्धित्वे हेतुमाह त्वमाद्या प्रकृतिर्यत इति॥१९-२०॥

कुलाचारं विना देवि शक्तिमन्त्रो न सिद्धिदः।
तस्मात् कुलाचाररतः साधयेच्छक्तिसाधनम् ॥२१॥

पद्मा–हे देवि! कुलाचार के विना शक्ति मन्त्र सिद्धि प्रदायक नहीं होता है। इसलिये कुलाचार कर्म के द्वारा ही शक्ति साधना करें॥

हरि०–तदेवसाधनमाह कुलाचारामित्यादिभिः॥२१॥

मद्यं मांस तथा मत्स्यं मुद्रा मैथुनमेव च।
शक्तिपूजां विधावाद्ये पञ्चतत्त्वं प्रकीर्तितम् ॥२२॥
पञ्चतत्त्वं विना पूजा अभिचाराय कल्पते।
नेष्टसिद्धिर्भवेत्तस्य विघ्नस्तस्य पदे पदे ॥२३॥
शिलायां शस्यवापे च यथा नैवाङ्कुरो भवेत्।
पञ्चतत्त्व विहीनायां पूजायां न फलोद्भवः ॥२४॥
प्रातः कृत्यं विना देवि नाधिकारी तु कर्म्मसु।
तस्मादादौ प्रवक्ष्यामि प्रातः कृत्यं यथोचितम् ॥२५॥

पद्मा–हे आद्ये ! शक्तिपूजा के प्रसंग में मद्य, मांस, मत्स्य, मुद्रा तथा मैथुन यह पञ्च (पांच) तत्त्व कहे गये हैं। पञ्च तत्त्व के बिना की गयी पूजा अभिचार कर्म है और इससे इष्ट सिद्धि भी नहीं होती है तथा पग-पग पर विघ्न का सामना करना पड़ता है। जिस प्रकार पत्थर पर बीज बोने पर उसमें अंकुर नहीं निकलता है उसी प्रकार पञ्चतत्त्व विहीन पूजा फलदायक नहीं होती। हे देवि! प्रातः कृत्य किये बिना किसी भी कर्म का साधक अधिकारी नहीं होता है इसीलिये यथोचित प्रातः कृत्य कहता हूँ।

हरि०–पञ्चतत्त्वं विना शक्तिपूजायां निष्फलत्वादमवश्यमेव पञ्चतत्त्वेन शक्तेः पूजा विधातव्येत्याह मद्यमित्यादिभिः। अभिचाराय हिंसाकर्मणे। हिंसाकर्माभिचारः स्यादित्यमरः ॥२२-२५॥

रजनीशेषयामस्य शेषार्द्धमरुणोदय।
तदा साधक उत्थाय मुक्तस्वापः कृतासनः।
ध्यायेच्छिरसि शुल्काब्जे द्विनेत्रं द्विभुजं गुरुम् ॥२६॥

पद्मा–रात्रि के अन्तिम प्रहर में अरुणोदय काल में साधक निद्रा त्याग कर उठे तथा आसन में बैठकर अपने शिर में श्वेत कमल में बैठे हुए दो हाथ वाले, दो नेत्र वाले श्री गुरुदेव का ध्यान करें।

हरि०–प्रातः कृत्याह रजनीशेषयामस्येत्यादिभिः। रजनीशेषयामस्य रात्रेरन्तिमस्य प्रहरस्य

शेषार्द्धमन्तिमं दण्ड च तुष्टयमरुणोदस्यात्। तदा तस्मिन्नेवारुणोदये काले मुक्तस्वापस्त्यक्तनिद्रः साधकः उत्थाय कृतमासनं येन तथाभूतं आसनोपविष्टश्च सन् शिरसि उत्थाय कृतमासनञ्च येन तथाभूत आसनोपविष्टश्च सन् शिरसि शुक्लाब्जे श्वेतपद्मे स्थितं गुरुं ध्यायेदित्यन्वयः द्विनेत्रमित्यादीनि द्वितीयान्तानि गुरुविशेषणानि ॥२६॥

श्वेताम्बरपरीधानं श्वेतमाल्यानुलेपनम् ।
वराभयकरं शान्तं करुणामयविग्रहम् ।।२७।।
वामेनोत्पलधारिण्या शक्त्याऽऽलिङ्गितविग्रहम् ।
स्मेराननं सुप्रसन्नं साधकाभीष्टदायकम् ।।२८।।

पद्मा–श्री गुरुदेव श्वेत वस्त्र धारण किये हैं, श्वेत चन्दन का लेप लगाये हुए हैं तथा एक हाथ से वर एवं एक हाथ से अभय प्रदान कर रहे हैं। वे रागद्वेषादि से शून्य तथा कृपामय देह वाले हैं। उनके वाम (बायें) भाग में कमल धारण किये हुए तथा उनका आलिंगन किये हुए उनकी शक्ति स्थित है। उनका मुख हास्य से युक्त है तथा वे अति प्रसन्न हैं। वे साधकों को अभीष्ट फल प्रदान करते हैं ।

हरि०–**श्वेतेत्यादि**। श्वेताम्बरपरीधानं परिधीयते यत्तत् परीधानम् । कर्मणि ल्युट् । परीत्यस्य दीर्घस्वार्षः। श्वेते अम्बरे वस्त्रे परीधाने यस्य तथा भूतम् । श्वेतमाल्यानुलेपनम् अनुलिप्यते पत्तदनुलेपनं चन्दनादि। श्वेते माल्यानुलेपने यस्य तम् । वरेत्यादि। वराभयंकर वरोऽभयं च करयोर्यस्य तम् । शान्तं रागद्वेषादिशून्यम् । करुणामयविग्रहं करुणामयः। कृपा प्राचुर्यवान् विग्रहो देहो यस्य तम् । वामेनोत्पलधारिण्या शक्तया वामहस्तेन कमलं दधत्या स्त्रिया आलिङ्गितविग्रहमश्लिष्टशरीरम् ॥२७-२८॥

एवं ध्यात्वा कुलेशानि मानसैरुपचारकैः ।
पूजयित्वा जपेन्मन्त्री वाग्भवं बीजमुत्तमम् ।।२९।।
यथा शक्ति जपं कृत्वा समर्प्य दक्षिणे करे ।
ततस्तु प्रणयेद्धीमान् मन्त्रेणानेन सद्गुरुम् ।।३०।।

पद्मा–हे कुलेशानि! इस प्रकार साधक ध्यान कर श्रीगुरुदेव की मानसिक उपचारों से पूजन कर श्रेष्ठ वाग्भव बीज–'ऐं' का जप करे। साधक इस प्रकार जप करके (अपनी क्षमतानुसार ही जप करे) श्रीगुरुदेव के दाहिने हाथ में जप को समर्पित कर कहे गये मन्त्र (श्लोक संख्या ३१-३२) से उन्हें प्रणाम करे ।

हरि०–**एवमित्यादि**। हे कुलेशानि मन्त्री साधकः एवं गुरुं ध्यात्वा मानसैर्मनः संकल्पितैः पाद्यार्घ्याचमनीयादिभिरुपचारकैः पूजयित्वा चोत्तमं श्रेष्ठं वाग्भवम् ऐमिति बीजं जपेत् । जपम् ऐमिति बीजस्येति शेषः॥२९-३०॥

भवपाशविनाशाय ज्ञानदृष्टिप्रदर्शिने ।
नमः सद्गुरुवे तुभ्यं भुक्तिमुक्तिप्रदायिने ।।३१।।

नराकृतिपरब्रह्मरूपायाऽज्ञानहारिणे ।
कुलधर्म्म प्रकाशाय तस्मै श्रीगुरुवे नमः ।।३२।।

पद्मा–संसार रूपी पाश के विनाश के लिए आपने ज्ञानदृष्टि को दिखाया है। हे गुरुदेव आप मुक्ति प्रदायक है इसीलिए आप सद्‌गुरुदेव भी हैं। हम आपको प्रणाम करते हैं।। जो मनुष्य देह में ब्रह्मस्वरूप हैं जो अज्ञान का हरण करने वाले हैं तथा जो कुल धर्म को बताने वाले हैं उन श्री गुरुदेव को नमस्कार हैं ।

हरि०–अनेन केन मन्त्रेणेत्यपेक्षायां तमेव मन्त्रमाह भवपाशविनाशयेति भवपाशविनाशय संसाररूपस्य पाशस्य विनाशकाय। ज्ञानदृष्टिप्रदर्शिने ज्ञानरूपां दृष्टिं प्रदर्शयितुं शील यस्य तस्मै ।।३१-३२।।

प्रणम्यैव गुरुं तंत्र चिन्तयेन्निजदेवताम् ।
पूर्ववत् पूजयित्वा तां मूलमन्त्रजपञ्चरेत् ।।३३।।
यथा शक्ति जप्त्वा तद् देवीवामकरेऽर्पयेत् ।
मन्त्रेणानेन मतिमान् प्रणमेदिष्टदेवताम् ।।३४।।
नमः सर्वस्वरूपिण्यै जगद्धात्र्यै नमोनमः ।
आद्यायै कालिकायै ते कर्त्र्यै हर्त्र्यै नमो नमः ।।३५।।
नमस्कृत्य वर्हिगच्छेद्वामपादपुरःसरम् ।
त्यक्त्त्वा मूत्रपुरीषञ्च दन्तधावनमाचरेत् ।।३६।।

पद्मा–अपने गुरुदेव को प्रणाम करके अपने देवता का चिन्तन करें एवं पूर्ववत् पूजन करके मूलमन्त्र का जप करे। यथाशक्ति जप करके उसे देवी के वाम हस्त में अर्थात बाएँ हाथ में समर्पित करे तथा कहे गये मन्त्र के द्वारा इष्ट देवता को प्रणाम करे। सर्वस्वरूपा को नमस्कार है, जगद्धात्री को नमस्कार है। हे आद्या कालिके! तुम जगत् की सृष्टि एवं संहार करती हो, तुम्हें बार-बार नमस्कार है। नमस्कार करके शैय्या से बाहर अपने बाएँ पैर को निकाले तथा मल-मूत्र विसर्जन कर दाँत को धोए ।

हरि०–प्रणम्येत्यादि। एवमुक्तप्रकारेण गुरुप्रणम्य प्रकर्षेण भक्ति श्रद्धातिशयेन नत्वा तत्र शिरसि शुक्लाब्जे आसीनां निजदेवतां साधकश्चिन्तयेद्ध्यायेत् । ततः पूर्ववत् गुरुवन्मानसैरुपचारकैस्तां निजदेवतां पूजयित्वा ह्रीं श्रीं क्रीमित्यादि कस्य मूलमन्त्रस्य जपञ्चरेत् कुर्यात् ।।३३-३४।। तं **मन्त्रमेवाह**। नमः सर्वेति।।३५-३६।।

ततो गत्वा जलाभ्यासे स्नानं कृत्वा यथाविधि ।
आदावप उपस्पृश्य प्रविशेत् सलिले ततः ।।३७।।
नाभिमात्रजले स्थित्वा मलानामपनुत्तपे ।
सकृत् स्नात्वा तथोन्मज्य मन्त्रमाचमञ्चरेत् ।।३८।।

पद्मा–साधक जलाशय के समीप जाकर सर्वप्रथम आचमन करे तदुपरान्त जल में

प्रवेश करके विधिवत् स्नान करे। नाभि तक गहरे जल में घुस कर शरीर के मल को दूर करने हेतु एक बार स्नान करके डुबकी लगाए तथा मन्त्र द्वारा आचमन करे।

हरि०–तत् इत्यादि। जलाभ्यासे वारिनिकटे। स्नानविधिमेवाह आदावप इत्यादिभिः। अपो जलानि। सलिले जले॥३७॥ मन्त्रैः कार्यमान्त्रम् ॥३८॥

आत्मविद्याशिवैस्तत्त्वैः स्वाहान्तैः साधकाग्रणीः।
त्रिस्प्राश्याऽपो द्विरून्मृज्य त्वाचमेत् कुलसाधकः॥३९॥
कुलयन्त्रं मन्त्रगर्भं विलिख्य सलिले सुधीः।
मूलमन्त्रं द्वादशधा तस्योपरि जपेत् प्रिये॥४०॥

पद्मा–साधक श्रेष्ठ कुलसाधक **आत्मतत्त्वाय स्वाहा**, **विद्या तत्त्वाय स्वाहा** तथा **शिवतत्त्वाय स्वाहा** मन्त्रों के द्वारा एक बार जल का पान करे तदुपरान्त ओठों के शुद्धि (मार्जन) के लिए दो बार आचमन करे। हे प्रिये! बुद्धिमान साधक जल में त्रिकोण कुल यन्त्र को निर्मित कर उसके मध्यम में मूल मन्त्र को लिखे तथा उसके ऊपर बारह बार मूलमन्त्र का जप करे।

हरि०–आचमनमन्त्रानेव दर्शयन्नाह आत्मेत्यादि। स्वाहा अन्तो येषां तथाभूतैः आत्मविद्याशिवतत्त्वै आत्मतत्त्वाय स्वाहा विद्यातत्त्वाय स्वाहा शिवतत्त्वाय स्वाहेति मन्त्रैरित्यर्थः। साधकाग्रणीः साधकश्रेष्ठः। कुलसाधकोऽपो जलानि वरित्रयं प्राश्यप्रवीय दिर्वरद्वयमुन्मृज्य इत्येवमाचम्य ह्रीं प्रभृतीनां मन्त्राणां मध्ये कश्चिदपिमन्त्रो गर्भे यस्यैवम्भूतं त्रिकोणात्मकं कुलयन्त्रं सलिले जले विलिख्य सुधीधीर साधकस्तस्य कुलपत्रयोपरि ह्रीं श्रीं क्रीमित्याद्यात्मकं मूलमन्त्रं द्वादशधा द्वादशवारञ्जपेदिति द्वितीयेनान्वयः ॥३९-४०॥

तेजोरूपं जलं ध्यात्वा सूर्यमुद्दिश्य देशिकः।
तत्तोयैस्त्र्यञ्जलीन् दत्त्वा तेनैव पाथसा त्रिधा।
अभिषिच्य स्वमूर्द्धानं सप्तच्छिद्राणि रोधयेत्॥४१॥

पद्मा–साधक जल में तेजो रूप की भावना करके सूर्य को तीन अंजलि जल प्रदान करे तथा उसी जल के द्वारा साधक अपने मस्तक को तीन बार अभिषेक करे तथा मुख, नासिका (दोनों छिद्र) कान के दोनों छिद्र एवं दोनों आँखों को अपनी अंगुलियों से बन्द करे।

हरि०–तेजोरूपमिति (देशिकः साधकः कुलयन्त्र सम्बन्धि जलं तेजो रूपं ध्यात्वा तत्तोयैः कुलयन्त्र सम्बन्धिभिर्जलैस्त्र्यञ्जलीन् सूर्यमुद्दिश्य दत्त्वा तेनैव कुलयन्त्रसम्बन्धिनैव पाथसा जलेन स्वमूर्द्धानं त्रिधा त्रिवारयभिषिच्य सप्तच्छिद्रानि कर्णनेत्रनासामुखविवराणि हस्तद्वयाङ्गुलिभी रोधयेत ॥४१॥

ततस्तु देवताप्रीत्यै त्रिर्निमज्य जलान्तरे।
उत्थाय गात्रं सम्मार्ज्य पिदध्याच्छुद्धवाससी॥४२॥

पद्मा–इसके पश्चात् देवता की प्रीति के लिए जल में तीन बार डुबकी लगाकर बाहर निकले एवं शरीर को पोंछ का शुद्ध वस्त्र धारण करे।

हरि०–ततस्त्विति। ततस्तु सप्तच्छिद्ररोधनादनन्तरं देवताप्रीत्यै सङ्कल्प्य जलान्तरे त्रित्रयं निमज्य तत उत्थाय गात्रं सम्मार्ज्य वस्त्रेण प्रोक्ष्य च शुद्धवाससी धौत वस्त्रेऽपिदध्यात् आच्छदयेत् परिदध्यादित्यर्थः।।४२।।

मृत्स्नया भस्मना वाऽपि त्रिपुण्ड्रं बिन्दुसंयुतम् ।
ललाटे तिलकं कुर्याद्गायत्र्या बद्धकुन्तलः ।।४३।।

पद्मा–वस्त्र धारण करने के उपरान्त गायत्री मन्त्र से शिखा बांध कर मिट्टी या भस्म से अपने ललाट में बिन्दुयुक्त त्रिपुण्ड्रतिलक लगाएं।

हरि०–मृत्स्नयेति। ततोगायत्र्या बद्धकुन्तलो निबद्धकेशः सन् मृत्स्नया प्रशस्तया मृत्तिकया तादृशेनैव भस्मना वाऽपि बिन्दुसंयुतं त्रिपुण्ड्रं तिलकं ललाटे कुर्यात् ।।४३।।

वैदिकी तान्त्रिकीञ्चैव यथानुक्रमयोगतः ।
सन्ध्यां समाचरेन्मन्त्री तांत्रिकीं शृणु कथ्यते ।।४४।।

पद्मा–इसके उपरान्त साधक यथा क्रम से वैदिकी एवं तान्त्रिकी सन्ध्या करे। तान्त्रिकी सन्ध्या कह रहा हूँ। इसका श्रवण करो।

हरि०–वैदिकीमिति। ततो मन्त्री साधको यथानुक्रमयोगतोऽनुक्रमेणैव वैदिकी तान्त्रिकीञ्च सन्ध्यां समाचरेत् कुर्यात्। तयोर्मध्ये तान्त्रिकी सन्ध्यां शृणु मया कथ्यते ।।४४।।

आचम्य पूर्ववत्तोयैस्तीर्थान्यावाहयेच्छिवे ।।४५।।

पद्मा–हे शिवे! जल से पूर्ववत् मन्त्रों के द्वारा आचमन कर तीर्थो का आवाहन करे।

हरि०–तान्त्रिकीं सन्ध्यामेवाह आचम्येत्यादिभिः। हे शिवे पूर्ववदाचम्य तोये जले तीर्थान्यावाहयेत् ।।४५।।

गङ्गे च यमुने चैव गोदावरि सरस्वति ।
नर्मदे सिन्धु कावेरि जलेऽस्मिन् सन्निधिं कुरु ।।४६।।

पद्मा–हे गंगे ! हे यमुने ! हे गोदावरि! हे सरस्वति! हे नर्मदे! हे सिन्धु! हे कावेरि! तुम सब इस जल में प्रवेश करो। इस मन्त्र के द्वारा तीर्थों का आवाहन करे।

हरि०–ननु केन मन्त्रेण कानि वा तीर्थान्यावाह्येदित्यपेक्षायामाहगङ्गे चेत्यादि। सन्निधिम् आसत्तिम् ।।४६।।

मन्त्रेणानेन मतिमान् मुद्रयाऽङ्कुशसंज्ञया ।
आवाह्य तीर्थं सलिले मूलं द्वादशधा जपेत् ।।४७।।

पद्मा–सुधी व्यक्ति इस मन्त्र का उच्चारण करता हुआ अंकुश मुद्रा से जल में तीर्थों का आवाहन करे तथा आवाहन किए गए तीर्थ जल के ऊपर बारह बार मूल मन्त्र का जप करे।

हरि०–मन्त्रेणेति। मतिमान् साधकोऽनेन अनन्तरमेवोक्तेन मन्त्रेणाङ्कुशसंज्ञया मुद्रया सलिले जले तीर्थमावाह्य मूलं मन्त्रं सलिले एवं द्वादशधा जपेत्। अङ्कुशमुद्रा यथा ज्ञानार्णवे- दक्षमुष्टिं विधायाथ तर्ज्जन्यङ्कुशरूपिणी ।
अङ्कुशाख्या महामुद्रा त्रैलोक्याकर्षणक्षमेति ।।४७।।

ततस्तत्त्रोयतो बिन्दूंस्त्रिधा भूमौ विनिक्षिपेत् ।
मध्यामानामिकायोगान्मूलोच्चारणपूर्वकम् ॥४८॥

पद्मा–मूल मन्त्र का उच्चारण करते हुए उस जल के द्वारा मध्यमा एवं अनामिका अंगुलियों के द्वारा भूमि पर तीन बार जल बिन्दु छिड़के ।

हरि०–तत इत्यादि। ततः परं मूलमन्त्रस्योच्चारणं पूर्वं यत्र कर्म्मणि तत् मूलोच्चारणपूर्वकं मध्यमानामिकायोगात्ततोयतो विन्दुन् त्रिधा त्रिवारं भूमौ विनिक्षिपेत् ॥४८॥

सप्तवारं स्वमूर्द्धानमभिषिच्य ततो जलम् ।
वामहस्ते समादाय छादयेद्दक्षपाणिना ॥४९॥

पद्मा–मूलमन्त्र के द्वारा मध्यमा व अनामिका उंगली के द्वारा उसी जल से सात बार अपने मस्तक पर अभिषेक करे तथा कुछ बायें हाथ में लेकर उसे दाहिने हाथ से ढक ले।

हरि०–सप्तवारमिति। मूलोच्चारणपूर्वकं मध्यामानामिकायोगात् तेनैव जलेन सप्तवारं स्वमूर्द्धानमात्मीयं मस्तकमभिषिच्य ततः परं वामहस्ते जलं समादाय गृहीत्वा दक्षपाणिनाऽऽच्छादयेत् ॥४९॥

ईशानवायु वरुणवह्नीन्द्रबीजपञ्चकम् ।
प्रजप्य वेदधा तोयं दक्षहस्ते समानयेत् ॥५०॥

पद्मा–उस जल के ऊपर ईशान (हँ) वायु (यँ) वरुण (वँ) वह्नि (रँ) इन्द्र (लँ) इन पांच बीजमन्त्रों को चार बार जप करके उस जल को दाहिनी हथेली में ले लें ।

हरि०–ईशानेत्यादि। दक्षपाणिनाऽऽच्छाद्य च ईशानवायुवरुणवह्नीन्द्रस्वामिकं हँ यँ वँ रँ लमित्येतद्बीजपञ्चकं वेदधा चतुर्वारं प्रजप्य तत्रोयं दक्षहस्ते समानयेत् ॥५०॥

वीक्ष्य तेजोमयं ध्यात्वा चेडयाऽऽकृष्य साधकः ।
देहान्तः कलुशं तेन रेचयेत् पिङ्गलाख्यया ॥५१॥

पद्मा–साधक उस जल को देख करके उसमें तेजोरूप ध्यान करता हुआ इड़ा (वाम नासिका) द्वारा आकर्षित करके उस जल के साथ दैहिक एवं मानसिक पापों को पिंगला नामक नाड़ी अर्थात् दाहिनी नासिका से निकाल दे ।

हरि०–वीक्ष्येति। साधको जनो दक्षहस्ते समानीतं तज्जलं वीक्ष्य विलोक्य तेजोमयं तेजोरूपं ध्यात्वा ईडया नाड्या आकृष्य च पिङ्गलाख्य नाड्या तेन जलेन देहान्तः कलुषं शरीरान्तः पापं रेचयेन्निष्कर्षयेत् ॥५१॥

निष्कृष्य पुरतो वज्रशिलायामस्त्रमुच्चरन् ।
त्रिवारं ताडयन् मन्त्री हस्तौ प्रक्षालयेत्ततः ॥५२॥

पद्मा–साधक इस प्रकार से समस्त पापों को निकाल कर 'फट' मन्त्र का उच्चारण करके अपने सम्मुख कल्पित वज्रशिला के ऊपर तीन बार ताड़न करके दोनों हाथ धोए।

हरि०–निष्कृष्येति। मन्त्री साधक एवं देहान्तः कलुशं निष्कृष्य पुरतोऽग्रे मनः कल्पितायां वज्र शिलायामस्त्रं फडिति मन्त्रमुच्चरन् जपन् सन् त्रिवारं ताडयेत् आहन्यात् । ततोऽनन्तरं हस्तौ प्रक्षालयेद्धावेत् ॥५२॥

आचम्योक्तेन मन्त्रेण सूर्यायार्घ्यं निवेदयेत् ।।५३।।

पद्मा–कहे गए मन्त्र के द्वारा आचमन कर सूर्य को अर्घ्य प्रदान करें ।

हरि०–आचम्येति । तत उक्तेन मन्त्रेणाचम्य सूर्यायार्घ्यं निवेदयेद्दद्यात् ।।५३।।

तारमायाहंस इति घृणिसूर्य ततः परम् ।
इदमर्घ्यं तुभ्यमुक्त्वा दद्यात् स्वाहेत्युदीरयन् ।।५४।।
ततो ध्यायेन्महादेवीं गायत्रीं परदेवताम् ।
प्रातर्मध्याह्नसायाह्ने त्रिरूपां गुणभेदतः ।।५५।।

पद्मा–तार (ॐ) माया (ह्रीं) हंस, इसके पश्चात् घृणि सूर्य, इसके उपरान्त **इदमर्घ्यं तुभ्य' स्वाहा'** पद का उच्चारण करके अर्घ्य का निवेदन करे। इसके बाद पर देवता महादेवी गायत्री का प्रातः, मध्याह्न एवं सायंकाल तीन रूप में गुणभेद से ध्यान करे ।

हरि०–ननु केन मन्त्रेण सूर्यार्घ्यां निवेदनीयमत आह तारेत्यादि। पूर्वं तारमायाहंस इत्युक्त्वा ततः परं घृणिसूर्येत्युक्त्वा ततश्च परमिदर्घ्यं तुभ्यमित्युक्त्वा ततोऽनन्तरं स्वाहेत्युदीरयन् कीर्त्तयन् साधकः सूर्यायार्घ्यं दद्यात् । ओं ह्रीं हंस घृणिसूर्य इदमर्घ्यं तुभ्यं स्वाहेति मन्त्रेणार्घ्यं निवेदयेदित्यर्थः ।।५४-५५।।

प्रातर्ब्राह्मीं रक्तवर्णां द्विभुजाञ्च कुमारिकाम् ।
कमण्डलुं तीर्थपूर्णमक्षमालाञ्च बिभ्रतीम् ।
कृष्णाजिनाम्बरधरां हंसरूढां शुचिस्मिताम् ।।५६।।

पद्मा–प्रातःकाल रक्तवर्ण, दो भुजा युक्त, कुमारी, गंगादि तीर्थजल से पूर्ण कमण्डलु और अक्षमाला धारण करने वाली, नीलचर्मरूपी वस्त्र धारण करने वाली, हंस पर आसीन, पवित्र शुभ्र स्मित से शोभित ब्राह्मी शक्ति का ध्यान करे ।

हरि०–रज आदिगुणभेदात् प्रातर्मध्याह्नसायाह्ने त्रिरूपत्वं प्रदर्शयन् गायत्र्या ध्यानमेवाह प्रातर्ब्राह्मीमित्यादिभिः। प्रातरिति। रक्तवर्णाम् रक्तो लोहितो वर्णो यस्यास्ताम् । द्विभुजां द्वौ भुजौ बाहू यस्यास्तथाभूताम् । तीर्थपूर्णं गङ्गादितीर्थजलैः पूरितं कमण्डलुम् अक्षमालां अक्षमाल्यञ्च पाणिभ्यां बिभ्रतीं दधतीम् । जिनाम्बरधरां नीलचर्मरूपं वस्त्रं परिदधतीम् । हंसारूढा हंसः पक्षिविशेषस्तमारूढाम् । शुचिस्मितां शुचि पवित्रं शुभ्रं वा स्मितमीषद्धासो यस्यास्ताम् । कुमारिकां कन्यकाम् । ब्राह्मीं ब्रह्मणः शक्तिम् एवम्भूतां गायत्रीं देवीं प्रातः काले ध्यायेत् । अग्रेऽप्येवमान्वयः कर्तव्यः ।।५६।।

मध्याह्ने तां श्यामवर्णां वैष्णवीञ्च चतुर्भुजाम् ।
शङ्खचक्रगदापद्मधारिणीं गरुड़ासनाम् ।।५७।।

पद्मा–मध्याह्न काल में श्याम वर्णा, चार भुजा युक्त, शंखचक्रगदा एवं कमल को धारण करने वाली गरुड़ पर आसीन वैष्णवी शक्ति ।।५७।।

हरि०–मध्याह्न इति। तां गायत्रीम् ।।५७।।

पीनोत्तुङ्गकुचद्वन्द्वां वनमालाविभूषिताम् ।
युवतीं सततं ध्यायेन्मध्ये मार्त्तण्डमण्डले ।।५८।।

पद्या–जिसके स्तन अति स्थूल व ऊंचे है, वनमाला से विभूषित युवती रूप है का सूर्यमण्डल से सतत् ध्यान करें ।

हरि०–पीनेति। पीनं बृहत्तुङ्गमुन्नतं कुचद्वन्द्वं यस्याः तथा भूताम् ।।

सायाह्ने वरदां देवीं गायत्रीं संस्मरेद् यतिः ।
शुक्लां शुक्लाम्बरधरां वृषासनकृताश्रयाम् ।।५९।।

पद्या–सायं काल में साधक वर प्रदाता देवी गायत्री का स्मरण करे। जो शुक्ल वर्ण की, शुक्ल (श्वेत) वस्त्र धारण करने वाली, वृषासन पर आसीन हैं ।

हरि०–सायाह्ने इत्यादि। यतिः निर्जितेन्द्रिय व्यूहः। ये निर्जितेन्द्रियग्रामा यतिनो यतयश्च ते'' इत्यमरः। वृषासनकृताश्रयाम् वृषरूपमासनं यस्य स वृषासनः शिव स एव कृते आश्रयो निजाधारो यया तथा भूताम् ।। ५९।।

त्रिनेत्रां वरदां पाशं शूलञ्च नृकरोटिकाम् ।
बिभ्रतीं करपद्मैश्च वृद्धां गलितयौवनाम् ।।६०।।

पद्या–त्रिनेत्रा, चार कर कमलों में वर, पाश, शूल एवं नरकपाल धारण करने वाली वृद्धा गायत्री देवी का ध्यान करे ।

हरि०–त्रिनेत्रमिति। नृकरोटिकाम् नरकपालम् । गलितयौवनां ध्वस्ततारुण्याम् ।।६०।।

एवं ध्यात्वा महादेव्यै जलानामञ्जलित्रयम् ।
दत्त्वा जपेत्तु गायत्रीं दशधा शतधाऽपि वा ।।६१।।

पद्या–इस प्रकार ध्यान कर महादेवी को जल की तीन अञ्जलि जल देकर सौ बार या दश बार गायत्री मन्त्र का जप करें ।

हरि०–एवमित्यादि। महादेव्यै गायत्र्यै दशधा शतधाऽपि वा दशवारं शतवारं वेत्यर्थः।।६१।।

गायत्रीं शृणु देवेशि वदामि तव भावतः ।
आद्यायै पदमुच्चार्य विद्महे तदनन्तरम् ।।६२।।

पद्या–हे देवि! मैं तुम्हारी प्रसन्नता के लिए गायत्री मन्त्र कहता हूँ, श्रवण करो। सर्वप्रथम 'आद्यायै' पद का उच्चारण करे इसके बाद 'विद्महे' पद का उच्चारण करे ।

हरि०–गायत्रीमित्यादिना गायत्रीं वक्तुमुपक्रमते। भावतः प्रीतितः।।६२।।

परमेश्वर्यै धीमहि तन्नः काली प्रचोदयात् ।
एषा तु तव गायत्री महापापप्रणाशिनी ।।६३।।

पद्या–इसके उपरान्त **''परमेश्वर्यै धीमहि तन्नः काली प्रचोदयात्''** का उच्चारण करें। इस प्रकार-**आद्यायै विद्महे परमेश्वर्यै धीमहि तन्नः काली प्रचोदयात** यह काली

गायत्री मन्त्र बनता है। इस प्रकार महापाप नाशिनी गायत्री मैंने तुमसे कहा है।

हरि०–तां गायत्रीमेवाह आद्यायै इत्यादिना। पूर्वमाद्यायै इति पदमुच्चार्य तदनन्तरं विद्महे इति पदमुच्चरेत्। तदनन्तरं परमेश्वर्यै धीमहि तन्नः काली प्रचोदयादित्युच्चरेत योजनया आद्यायै विद्महे परमेश्वर्यै धीमहि तन्नः काली प्रचोदयादित्याकारा गायत्र्यासीत्। एतद् गायत्र्यर्थस्तु आद्यायै परमेश्वर्यै आद्यां परमेश्वरीं प्राप्तुं या वयं विद्महे मन्यामहे धीमहि चिन्तयामश्च तत् जगत्कारणत्वेन अति प्रसिद्धा काली केऽस्मान् प्रचोदयात् प्रेरयेत् धर्मार्थकाममोक्षेषु विनियोजयेदित्यर्थ इति ॥६३॥

त्रिसन्ध्ययेतां प्रजपनं सन्ध्यायाः फलमाप्नुयात्।
ततस्तु तर्पयेद्भद्रे देवर्षिपितृदेवताः ॥६४॥

पद्मा–हे भद्रे! तीनों संध्याओं में जो व्यक्ति इस गायत्री मन्त्र का जप करते हैं उन्हें त्रिसन्ध्या का लाभ मिलता है, इसके पश्चात् देवता ऋषिगण, पितृगण एवं इष्टदेव का तर्पण करे।

हरि०–त्रिसन्ध्यमिति। एताम् केवलां तव गायत्रीम्। ततस्तु गायत्री जपादनन्तरं तु ॥६४॥

प्रणवं सद्वितीयाख्यां तर्पयामि नमः पदम्।
शक्तौ तु प्रणवे मायां नमः स्थाने द्विठं वदेत् ॥६५॥

पद्मा–सर्वप्रथम प्रणव का उच्चारण करके, द्वितीयान्त उन सभी के नाम का उच्चारण करके **'तर्पयामि नमः'** इस पद का उच्चारण करे। शक्ति के तर्पण में प्रणव के स्थान पर ह्रीं (माया बीज) तथा नमः के स्थान पर स्वाहा (द्विठ) कहे।

हरि०–ननु केन केन मन्त्रेण देवर्षि पितृदेवतास्तर्पयितव्या इत्याकाङ्क्षायां तर्पण मन्त्रमाह प्रणवमित्यादिना। पूर्वं प्रणवमोङ्कारं वदेत्। ततः सद्वितीयाख्यां द्वितीयया विभक्त्या सहितामाख्यां नामधेयं वदेत्। ततश्चापरं तर्पयामीति नमः इति च पदं वदेत्। शक्तौ तु शक्तिविषये तु प्रणेव प्रणवस्थाने माया ह्रीमिति बीजं वदेत्। नमः स्थाने द्विठं स्वाहेति पदं वदेत्। एतेन् ओं देवाँस्तपर्यामि नमः इति मन्त्रेण देव ओमृषींस्तर्पयामि नमः इत्यनेन ऋषीन् ओं पितृंस्तर्पयमि नमः इति मन्त्रेण पितृनः ह्रीं आद्या कालीं तर्पयामि स्वाहेत्यनेनाद्यां कालीं तर्पयेदिति ज्ञापितम् ॥६५॥

मूलान्ते सर्वभूतान्ते निवासिन्यै पदं वदेत्।
''सर्वस्वरूपां ङेयुक्तां सायुधाऽपि तथा पठेत् ॥६६॥
सावरणां सचतुर्थीं तद्वदेव परात्पराम्।
आद्यायै कालिकायै ते इदमर्घ्यं ततो द्विठः॥६७॥

पद्मा–मूलमन्त्र **श्रीं ह्रीं क्रीं परमेश्वरि स्वाहा**' के पश्चात् 'सर्वभूत' यह पद कहे, उसके पश्चात् **'निवासिन्यै'** पद का उच्चारण करे फिर **'सर्वस्वरूपायै'** पद का उच्चारण करके **'सायुधायै'** पद का उच्चारण करे। इसके बाद **सावरणायै परात्परायै आद्यायै**

कालिकायै ते इदमर्घ्यं स्वाहा का उच्चारण करे। सकल पदयोजना इस प्रकार होगी-**ह्रीं श्रीं क्रीं परमेश्वरि स्वाहा। सर्वभूतनिवासिन्यै सर्वस्वरूपायै सायुधायै सावरणायै परात्परयै आद्यायै कालिकायै ते इदमर्घ्यं स्वाहा।**

हरि०-मूलान्त इत्यादि। मूलस्य ह्रीं श्रीं क्रीं परमेश्वरि स्वाहेति मन्त्रस्यान्ते यत् सर्वभूतेति पदं तस्यान्ते निवासिन्यै इति पदं वदेत्। ततो ङेयुक्तां सर्वस्वरूपां वदेत्। ततः आद्यायै कालिकायै ते इदमर्घ्यमिति वदेत्। ततो द्विठः स्वाहेति पदं वदेत्। सकलपदयोजनया ह्रीं श्रीं क्रीं परमेश्वरि स्वाहा सर्वभूतनिवासिन्यै सर्वस्वरूपायै सायुधायै सावरणायै परात्परायै आद्यायै कालिकायै ते इदमर्घ्यं स्वाहेति मन्त्र आसीत् ॥६६-६७॥

अनेनार्घ्यं महादेव्यै दत्त्वा मूलं जपेत् सुधीः ।
यथाशक्ति जपं कृत्वा देव्या वामकरेऽर्पयेत् ॥६८॥

पद्या-सुधी व्यक्ति उपरोक्त प्रकार से महादेवी को अर्घ्य प्रदान कर यथा शक्ति मूलमन्त्र का जप करे तथा देवी के बाएँ हाथ में जप का समर्पण करे।

हरि०-अनेनेति। अनेनान्तरमेवोक्तेन मन्त्रेण महादेव्यै अर्घ्यं दत्त्वा सुधी-धीरः साधको मूलं मन्त्रं जपेत्। यथाशक्ति जपं कृत्वा च जपजन्यं फलं देव्या वाम करेऽर्पयेत् दद्यात् ॥६८॥

प्रणम्यं देवीं पूजार्थं जलमादाय साधकः ।
नत्वा तीर्थं पठन् स्तोत्रं देवताध्यानतत्परः ॥६९॥
यागमण्डपमागत्य पाणिपादौ विशोधयेत् ।
ततो द्वारस्य पुरतः सामान्यार्घ्यं प्रकल्पयेत् ॥७०॥

पद्या-तत्पश्चात् साधक देवी को प्रणाम पूजा के लिए जल ग्रहण कर एवं तीर्थ को नमस्कार कर स्तोत्र पाठ करके देवता के ध्यान में तत्पर होकर यज्ञ मण्डप में आकर हाथ-पैर धोए। इसके बाद द्वार के सामने सामान्य अर्घ्य की रचना करे।

हरि०-प्रणम्येति। ततः साधको देवीं प्रणम्यं पूजार्थं जलमादाय गृहीत्वा तीर्थं नत्वा च स्तोत्रं पठन् देवताध्यानतत्परः सन् यागमण्डपं यजन गृहमागत्य पाणिपादौ विशोधयेत् धावेत्। ततो द्वारस्य पुरतोऽग्रेसामान्यार्घ्यं प्रकल्पयेत् रचयेत् ॥६९-७०॥

त्रिकोणवृत्तभूबिम्बं मण्डलं रचयेत् सुधीः ।
आधारशक्तिं संपूज्य तत्राऽऽधारं नियोजयेत् ॥७१॥

पद्या-सुधी व्यक्ति सर्वप्रथम एक त्रिकोण, उसके बाहर वृत्त उसके बाहर भूबिम्ब उसके बाहर चतुष्कोण मण्डल की रचना करे। उस मण्डल में **ॐ आधारशक्तये नमः** इस मन्त्र के द्वारा गन्ध पुष्प के द्वारा आधारशक्ति की पूजा कर उस पर आधार स्थापित करे।

हरि०-ननु सामान्यर्घ्यं किं नायेत्यत आहत्रिकोणेत्यादि। सुधीर्विचक्षणः त्रिकोणञ्च वृत्तञ्च भूबिम्बं चैतेषां समाहारः त्रिकोणवृहत्तभूबिम्बं मण्डलं रचयेत्। पूर्वं त्रिकोणं ततस्तद्वहिरभितो वृत्तं वर्तुलं ततस्तद्वहिर्भूबिम्बं चतुष्कोणञ्च मण्डलं कुर्यादित्यर्थः। तत्र रचिते मण्डले

ओं आधारशक्त्ये नमः इति मन्त्रेण गन्धपुष्पादिभिराधारशक्तिं संपूज्य सामान्यार्घ्य पात्रस्थापनाय तस्मिन्नेव रचिते मण्डले कमप्याधारं नियोजयेत् स्थापयेत् ॥७१॥

अस्त्रेण पात्रं प्रक्षाल्य हन्मन्त्रेण प्रपूर्ण च ।
निक्षिप्य गन्धं पुष्पञ्च तीर्थान्यावाहयेत्ततः ॥७२॥

पद्य–'फट्' मन्त्र से पात्र को धोकर आधार पर रखे तथा नमः मंत्र के द्वारा जलभर कर पूर्ण करे और गन्ध एवं पुष्प डालकर सभी तीर्थों का आवाहन करें ।

हरि०–अस्त्रेणेति। अस्त्रेण फडिति मन्त्रेण पात्रं प्रक्षाल्याऽऽधारे संस्थाप्य च हन्मन्त्रेण नमो मन्त्रेण जलैः प्रपूर्य च तत्र गन्धं चन्दनादिकं पुष्पञ्च निक्षिप्य तत परं तत्र तीर्थान्यावाहयेत् ॥७२॥

आधारपात्रतोयेषु वह्न्यर्कशशिमण्डलम् ।
पूजयित्वा तद्दशधा मायाबीजेन मन्त्रयेत् ॥७३॥

पद्य–आधार पर अग्नि का, पात्र में सूर्यमण्डल का एवं जल में चन्द्र मण्डल का पूजन कर दश बार माया बीज **ह्रीं** जप द्वारा जल को पवित्र करे ।

हरि०–आधारेति । ततः आधारश्च पात्रञ्च तोयञ्च तान्याधारपात्रतोयानि तेषु वह्न्यर्कशशिमण्डलं पूजयित्वा आधारे वह्निमण्डलं पात्रेऽर्कमण्डलं तोये च शशिमण्डलं वक्ष्यमाणमन्त्रेण गन्धपुष्पादि भिरर्च्चयित्वेत्यर्थः। दशधा दशवारं मायाबीजेन ह्रीमितिबीजेन तज्जलं मन्त्रयेत् ॥७३॥

प्रदर्शयेद्धेनुयोनिं सामान्यार्घ्यमिदं स्मृतम् ।
ततस्तज्जलपुष्पैश्च पूजयेद् द्वारदेवताः ॥७४॥

पद्य–उसके पश्चात् धेनु और योनि मुद्रा का प्रदर्शन करे, यही सामान्यार्घ्य कहा गया है, उस जल एवं पुष्प के द्वारा देवताओं का पूजन करे ।

हरि०–प्रदर्शयेदिति। ततः तस्योपरि धेनेयोनी मुद्रा प्रदर्शयेत । इदमेव सामान्यार्घ्यं स्मृतम् । ततः परं तज्जलपुष्पैः सामान्यार्घ्यसम्बन्धितोपकुसुमैर्द्वारदेवताः पूजयेत् । धेनुमुद्रा यथा–

अन्योन्याभिमुखाश्लिष्ट कनिष्ठानामिका पुनः ।
तथा च तर्जनीमध्या धेनुमुद्राऽमृतप्रदेति ॥७४॥

गणेशं क्षेत्रपालञ्च वटुकं योगिनीं तथा ।
गङ्गाञ्च यमुनाञ्चैव लक्ष्मीं वाणी ततो यजेत् ॥७५॥

पद्य–सर्वप्रथम गणेश, क्षेत्रपाल, वटुक, योगिनी, गंगा, यमुना, लक्ष्मी एवं वाणी इन द्वार देवताओं का पूजन करें। इनके मन्त्र इस प्रकार से हैं–

गणेश – गं गणेशाय नमः।
क्षेत्रपाल – क्षं क्षेत्रपालाय नमः।
वटुक – वं वटुकाय नमः ।
योगिनी – यां योगिन्यै नमः।

गंगा — गां गङ्गायै नमः।
यमुना — यां यमुनायै नमः।
लक्ष्मी — श्रीं लक्ष्म्यै नमः।
सरस्वत्यै — ऐं सरस्वत्यै नमः।

हरि०—या द्वारदेवताः पूजयेत्ता एवं दर्शयन्नाह गणेश मित्यादि। गां गणेशाय नमः इति मन्त्रेण गणेशम् क्षां क्षेत्रपालाय नमः इति मन्त्रेण क्षेत्रपालम् वां वटुकाय नमः इत्येन वटुकम् या योगिन्यै नमः इत्यनेन योगिनीम् गां गङ्गायै नमः इत्यनेन गङ्गाम् यां यमुनायै नमः इति मन्त्रेण यमुनाम् श्रीं लक्ष्म्यै नमः इत्यनेन लक्ष्मीम् ऐं सरस्वत्यै नमः इति मन्त्रेण वाणीं' गन्धपुष्पादिभिर्यजेत् पूजयेत् ॥७५॥

किञ्चित् स्पर्शन् वामशाखां वामपादपुरःसरम् ।
स्मरन् देव्याः पदाम्भोजं मण्डपं प्रविशेत् सुधीः ॥७६॥

पद्मा—इसके पश्चात् सुधी व्यक्ति द्वार के चौखट के बाईं ओर के काष्ठ को कुछ स्पर्श करते हुए, बाएँ पैर को आगे करके, देवी के चरण कमलों का ध्यान करते हुए पूजाघर में प्रवेश करे।

हरि०—**किञ्चिदिति**। ततो वामशाखां द्वारस्थितचतुष्काष्ठानां मध्ये वामं काष्ठं किञ्चित् स्पर्शन् देव्याः पदाम्भोजञ्च स्मरन् सुधी, साधको वामपादपुरः सरं यथा स्यात् तथा मण्डपं देवीयजनमण्डपं देवीयजनमन्दिरंप्रविशेत् ॥७६॥

नैर्ऋत्यां दिशि वास्त्वीशं ब्रह्माणञ्च समर्चयन् ।
सामान्यार्घ्यस्य तोयेन प्रोक्षयेद्यागमन्दिरम् ॥७७॥

पद्मा—मण्डप में प्रवेश करके नैर्ऋत्य कोण में वास्तु पुरुष, ईश्वर एवं ब्रह्मा का पूजन करें-जैसे-**ॐ वास्तु पुरुषाय नमः। ॐ ईशाय नमः।। ॐ ब्रह्मणे नमः** । तत् पश्चात् यागमन्दिर को प्रोक्षित करें।

हरि०—**नैर्ऋत्यामित्यादि**। मण्डपं प्रविश्य च तत्रैव नैर्ऋत्यां दिशि प्रणवादिनमोऽन्तेन मन्त्रेण गन्ध पुष्पादिभिर्वास्त्वीशं ब्रह्माणं च समर्चयन् पूजयन् सन् सामान्यार्घ्यस्य तोयेन यागमन्दिरं प्रोक्षयेत् प्रसिञ्चेत् ॥७७॥

अनन्तरं साधकेन्द्रो दिव्यदृष्ट्यवलोकनैः ।
दिव्यानुत्सारयेद्विघ्नानस्त्रादभिश्चान्तरीक्षगान् ॥७८॥
पार्ष्णिघातत्रिभिर्भौमानिति विघ्नान्निवारयेत् ।
चन्दनागुरुकस्तूरीकर्पूरैर्यागमण्डपम् ॥७९॥
धूपयेत् स्वोपवेशार्थं चतुरस्रं त्रिकोणकम् ।
विलिख्य पूजयेत्तत्र कामरूपाय हृन्मनुः ॥८०॥

पद्मा—तत्पश्चात् साधक श्रेष्ठ एकाग्र दृष्टि से एकटक ऊपर की ओर देखे और समस्त

विघ्नों को दूर करने की भावना करके 'फट्' मन्त्र द्वारा जल फेंककर अन्तरिक्ष से सम्बन्धित समस्त विघ्नों का दूर करे। पृथ्वी पर तीन बार पैर के तलवे के किनारे से आघात करके भूमि सम्बन्धी विघ्नों को दूर करने की भावना करे। इसके पश्चात् पूजाघर को चन्दन, अगरु, कस्तूरी और कर्पूर के द्वारा धूपित करें अर्थात् सुगन्धित करे। स्वयं के बैठने के लिए त्रिकोण गर्भ चतुष्कोण मण्डल निर्मित कर उसमें **'कामरूपाय नमः'** मन्त्र के द्वारा कामरूप की गन्ध पुष्पादि के द्वारा पूजा करे।

हरि०–अनन्तरमिति। अनन्तरं ततः परमेव साधकेन्द्रो दिव्यदृष्ट्यवलोकनै निमेषशून्या दृष्टिर्दिव्यदृष्टिस्तयाऽवलोकनैर्निरीक्षणैः। दिवि भवा दिव्यास्तान् विघ्नानुत्सारयेन्निवारयेत्। अन्तरिक्षगान गगनगतान् विघ्नास्तु अस्त्राद्भिः फडिति मन्त्रेण जलैश्चोत्सारयेत् भौमान् भूमिभवान् विघ्नांस्तु पार्ष्णि घातत्रिभिः त्रिभिः पादतलाघातैर्निवारयेत्। ततो यागमण्डपं चन्दनागरुकस्तूरीकर्पूरैर्धूपयेत् वासयेत्। ततः स्वोपवेशार्थं त्रिकोणं तद्बहिश्चतुरस्रं चतुष्कोणञ्च मण्डलं विलिख्य तत्र लिखिते मण्डले तदधिष्ठातृदैवतं कामरूपं कामरूपाय हत् कामरूपाय नम इति यो मनुर्मन्त्रस्तेन गन्धपुष्पादिभिः पूजयेत् ॥७८-८०॥

तत्राऽऽसनं समास्तीर्य काममाधारशक्तितः।
कमलासनाय नमो मन्त्रेणैवासनं यजेत् ॥८१॥

पद्मा–इसके बाद वहाँ मण्डल के ऊपर आसन बिछाकर **'क्लीं आधारशक्ति कमलासनाय नमः'** मन्त्र से आसन की पूजा करें।

हरि०–तत्रेति। ततस्तत्र मण्डले आसनमास्तीर्याच्छाद्य पूर्वं कामं क्लीमिति बीजमुच्चार्य ततः आधार आसनमास्तीर्याच्छाद्य पूर्वं कामं क्लीमिति बीजमुच्चार्य ततः आधारशक्ति वदेत्। आधारशक्तितश्च परं कमलासनाय नम इति वदेत्। योजनया क्लीमाधारशक्तिकमलासनाय नम इति मन्त्रो जातः। अनेनैव मन्त्रेणासन तदधिष्ठातृ दैवतं यजेत् ॥८१॥

उपविश्यासने विद्वान् प्राङ्मुखो वाप्युदङ्मुखः।
बद्धवीरासनो मन्त्री विजयां परिशोधयेत् ॥८२॥

पद्मा–विद्वान साधक पूर्व या उत्तर दिशा की ओर मुख करके वीरासन में उस पूजित आसन पर आसीन होकर भांग (विजया) का शोधन करें।

हरि०–विजयां भङ्गाम् ॥८२॥

तारं मायां समुच्चार्य अमृते अमृतोद्भवे।
अमृतवर्षिणि ततोऽमृतमाकर्षय द्विधा ॥८३॥
सिद्धिं देहि ततो ब्रूयात् कालिकां मे ततः परम्।
वशमानय ठद्वन्द्वं संविदाशोधने मनुः ॥८४॥

पद्मा–सर्वप्रथम तार (ॐ) तत्पश्चात् माया (ह्रीं) इसके पश्चात् **अमृते अमृतोद्भवे अमृतवर्षिणि** इसके उपरान्त **अमृतानाकर्षयाकर्षय** कहे। इसके बाद **सिद्धिं देहि** पद का उच्चारण करे। इसके बाद कालिका ये' का उच्चारण करो फिर 'वशमानय' तथा इसके

नाद स्वाहा कहे। **ॐ ह्रीं अमृते अमृतोद्भवे अमृतवर्षिणि अमृतयाकर्षयाकर्षय सिद्धिं देहि कालिकां ये वशमानय स्वाहा** यह विजयाशोधन मन्त्र है।

हरि०—ननु केन मन्त्रेण विजया परिशोधयेदित्यपेक्षायां तच्छोधनमन्त्रयेवाह तारमित्यादिद्वाभ्याम्। पूर्वं तारं प्रणवं मायां ह्रींमिति बीजञ्च समुच्चार्य ततः, परम् अमृते अमृतोद्भवे अमृतवर्षिणि इति ब्रूयात्। ततोऽमृतमिति ब्रूयात्। ततो द्विधा द्विवारमाकर्ष येति ब्रूयात्। ततश्च सिद्धिं देहीति ब्रूयात्। तत, परं कालिकां मे इति ब्रूयात्। ततश्च वशमानयेति ठद्वन्द्व स्वाहेति ब्रूयात्। सकलपदयोजनया ओं ह्रीं अमृते अमृतोद् भवे अमृतवर्षिणि अमृतमाकर्षयाकर्षय सिद्धिं देहि कालिकां मे वशमानय स्वाहेति मन्त्रो जातः। सम्विदाशोधने भङ्गायाः शोधनऽयमेव मनुः प्रोक्तः॥८३-८४॥

मूलमन्त्रं सप्तवारं प्रजप्य विजयोपरि।
आवाहन्यादिमुद्राञ्च धेनुयोनी प्रदर्शयेत्॥८५॥

पद्मा—इसके उपरान्त मूलमन्त्र का सात बार विजया के ऊपर जपकर आवाहन आदि एवं धेनु व योनि मुद्रा का प्रदर्शन करे।

हरि०—मूल मन्त्रमिति। विजयोपरि मूलमन्त्रं सप्तवारं प्रजप्य आवाह्यते यया सा आवाहनी मुद्रा सा मुद्रा आदिर्यस्याः सा आवाह्न्यादिः सा चासौ मुद्रा चेत्यावाहन्यादिमुद्रा ताम्। धेनुयोनी च मुद्रे विजयोपरि प्रदर्शयेत्। आवाहन्यादिमुद्रा यथा दक्षिणामूर्तिसंहितायाम्—

पुटाञ्जलिमधः कुर्यादियमावाहनी भवेत्।
इयन्तु विपरीतेन तदा वै स्थापनी भवेत्।
उर्द्धाङ्गुष्ठकमुष्टिभ्यां तदेयं सन्निधापनी।
अन्ताङ्गुष्ठकमुष्टिभ्यां तदेयं सन्निरोधिनीति॥८५॥

गुरुं पद्मे सहस्रारे यथा सङ्केतमुद्रया।
त्रिधैव तर्पयेद्देवीं हृदि मूलं समुच्चरन्॥८६॥

पद्मा—'**ऐं अमुकानन्दनाथं श्रीगुरुं तर्पयामि नमः**' इस मन्त्र के द्वारा संकेतमुद्रा में अर्थात् श्रीगुरु द्वारा उपदिष्ट तत्त्वमुद्रा से सहस्रदल पद्म में विजया के द्वारा तीन बार गुरु का तर्पण कर तथा मूल मन्त्र का उच्चारण कर हृदयस्थल में तीन बार देवी का तर्पण करें।

हरि०—गुरुमिति। ऐं अमुकानन्दनाथं श्रीगुरुं तर्पयामि नमः इति मन्त्रेण संङ्केतमुद्रया गुरूपदिष्टया तत्त्वमुद्रया सहस्रारे सहस्रदले पद्मे गुरुं यथावत्त्रिधा विजयया तर्पयेत्। मूल मन्त्रं समुच्चरन् सन् ह्रीं आद्यां कालीं तर्पयामि स्वाहेति मन्त्रेण तत्त्वमुद्रयैव हृदये देवीं विजयया त्रिधैव तर्पयेत्॥८६॥

वाग्भवं वदयुग्मञ्च वाग्वादिनि पदं ततः।
मम जिह्वाग्रे स्थिरीभव सर्वसत्त्ववशङ्करि।
स्वाहान्तेनैव मनुना जुहुयात् कुण्डलीमुखे॥८७॥

पद्या–वाग्भव (ऐं) वद वद इसके पश्चात् वाग्वादिनि पद इसके बाद **मम जिह्वाग्रे स्थिरीभव सर्वसत्त्वशङ्करि स्वाहा** अर्थात् **ऐं वदवद वाग्वादिनि मम जिह्वाग्रे स्थिरीभव सर्वसत्त्वशङ्करि स्वाहा** इस मन्त्र का उच्चारण कर कुण्डली के मुख में विजया की आहुति प्रदान करे।

हरि०–वाग्भवमिति। पूर्वं वाग्भवम् ऐमिति बीजं वदेत्। ततो वदयुग्मं वदेत्। ततो वाग्वादिनि इति पदं वेदत्। ततो मम जिह्वाग्रे स्थिरीभव सर्वसत्त्ववशङ्करि इति वदेत्। योजनया ऐं वद वद वाग्वादिनि मम जिह्वाग्रे स्थिरीभव सर्वसत्त्ववशङ्करि मन्त्रो जातः। स्वाहान्तेनैवामुना मनुना कुण्डलीमुखे विजयां जुहुयात् दद्यात् ॥८७॥

स्वीकृत्य संविदां वामकर्णोद्ध्वें श्रीगुरुं नमेत्।
दक्षिणे च गणेशानमाद्यां मध्ये सनातनीम्।
कृताञ्जलिपुटो भूत्वा देवीध्यानपरायणः॥८८॥

पद्या–इस प्रकार से विजया (भांग) को ग्रहण कर बाएं कान के ऊपर श्रीगुरु को **ॐ श्रीगुरुभ्यो नमः** इस मन्त्र के द्वारा नमस्कार करे। दाहिने कान के ऊपर गणेश को '**ॐ गणेशाय नम**' इस मन्त्र के द्वारा नमस्कार करे। मध्यस्थान (ललाट) में सनातनी आद्या काली को '**ॐ सनातन्यै आद्यायै काल्यै नमः**' इस मन्त्र से नमस्कार करे। साधक अञ्जलि बांधकर देवी का ध्यान करे।

हरि०–स्वीकृत्येति। एवं संविदा भङ्गां स्वीकृत्य गृहीत्वा वामकर्णस्योद्ध्वेदेशे ओं श्री गुरुभ्यो नम इति मन्त्रेण श्रीगुरुं नमेत्। दक्षिणे दक्षिणकर्णस्योर्द्ध्वदेशे ओं गणेशाय नमः इति मन्त्रेण गणेशान् नमेत्। ओं सनातन्यै आद्यायै काल्यै नमः इत्यनेन मध्ये ललाटदेशे सनातनीमाद्यां कालिकां नमेत् ॥८८॥

पूजाद्रव्याणि सर्वाणि दक्षिणे स्थापयेत् सुधीः।
वामे सुवासितं तोयं कुलद्रव्याणि यानि च॥८९॥

पद्या–बुद्धिमान् साधक पूजा द्रव्य को दाहिनी ओर स्थापित करे तथा बाईं ओर सुगन्धित जल तथा मद्य आदि कुल द्रव्य रखे।

हरि०–पूजेति। पूजाद्रव्याणि पुष्पादीनि। कुल द्रव्याणि मद्यादीनि ॥८९॥

अस्त्रान्तमूलमन्त्रेण सामान्यार्घ्योदकेन च।
संप्रोक्ष्य सर्ववस्तूनि वेष्टयेज्जलधारया।
वह्निबीजेन देवेशि वह्नेः प्रकारमाचरेत्॥९०॥

पद्या–हे देवेशि! मूलमन्त्र के अन्त में 'फट्' को जोड़कर उच्चारण करके सामान्य अर्घ्य के जल के द्वारा समस्त वस्तुओं को प्रोक्षित कर जलधारा के द्वारा वेष्टित करे। तत्पश्चात् वह्नि बीजं (रं) के द्वारा अग्नि आवरण की भावना करे।

हरि०–अस्त्रान्तेति। ततः अस्त्रान्तमूलमन्त्रेण फडन्तेन मूलमन्त्रेण सामान्यार्घ्योदकेन च

सर्ववस्तूनि संप्रोक्ष्याभिषिञ्चय जलधारया वेष्टयेत्। हे देवेशि ततो वह्निबीजेन रैमिति-बीजेन वह्नेः प्राकारमावरणमाचरेत् कुर्यात् ॥९०॥

पुष्पं चन्दनसंयुक्तमादाय करयोर्द्वयोः ।
अस्त्रेण घर्षयित्वा तत् प्रक्षिपेत् करशुद्धये ॥९१॥

पद्मा–कर शुद्धि हेतु दोनों हाथों में चन्दन युक्त पुष्प लेकर 'फट्' मन्त्र का उच्चारण करता हुआ चन्दन सहित पुष्पों को घर्षित करके फेंक दे। इस प्रकार कर शुद्धि होती है।

हरि०–पुष्पमिति। ततः कर शुद्धये चन्दनसंयुक्तं पुष्पं द्वयोः करयोरादाय गृहीत्वा अस्त्रेण फडिति मन्त्रेण तत् पुष्पं घर्षयित्वा प्रक्षिपेत् ॥९१॥

तर्जनीमध्यमाभ्याञ्च वामपाणितले शिवे ।
ऊर्ध्वोर्ध्वतालत्रितयं दत्त्वा दिग्बन्धनं ततः ॥
अस्त्रेण छोटिकाभिश्च भूतशुद्धिमथाऽऽचरेत् ॥९२॥

पद्मा–हे शिवे ! आपस में मिली हुई तर्जनी तथा मध्यमा अंगुलियों से हथेली पर क्रमशः तीन बार ऊपर एवं ऊपर की ओर ताली बजाकर फट् मन्त्र का उच्चारण करते हुए चुटकी बजा कर दशो दिशाओं का बन्धन करे तत्पश्चात् भूतशुद्धि करे ।

हरि०–तर्जनीति। हे शिवे ततः तर्जनीमध्यामाभ्यामङ्गुलिभ्यां वामपाणितले ऊर्ध्वो तालत्रितयं दत्त्वा ततोऽस्त्रेण फडिति मन्त्रेण छोटिकाभिरङ्गुलिध्वनिभिश्च दिग्बन्धनमाचरेत्। अथ दिग्बन्धनादनन्तरं भूत शुद्धिमाचरेत् ॥९२॥

स्वाङ्के निधाय च करावुत्तानौ साधकोत्तमः ।
मनो निवेश्य मूले च हुङ्कारेणैव कुण्डलीम् ॥९३॥
उत्थाप्य हंसमन्त्रेण पृथिव्या सहितां तु ताम् ।
स्वाधिष्ठानं समानीय तत्त्वं तत्त्वे नियोजयेत् ॥९४॥

पद्मा–साधक श्रेष्ठ अपने अंक (गोद) में दोनों हथेलियों को उत्तान रखे तथा अपने मन को मूलाधार चक्र में स्थिर कर हुंकार के द्वारा कुण्डलिनी शक्ति को उठाए तथा 'हंस' मंत्र का उच्चारण करते हुए पृथ्वी सहित उस कुण्डलिनी शक्ति को स्वाधिष्ठान चक्र में लाकर पृथ्वी आदि समस्त कार्य तत्त्वों को क्रमशः जलादि कारण तत्त्वों में प्रवेश कराएं।

हरि०–भूतशुद्ध्याचरणप्रकारमेवाह स्वाङ्के इत्यादिभिः। साधकोत्तमः स्वाङ्के स्वक्रोडे उत्तानौ करौ निधाय संस्थाप्य मूले मूलाधारचक्रे च मनो निवेश्य हुङ्कारेणैव कुण्डलीमुत्थाप्य हंसमन्त्रेण हंसः इत्यात्मकेनैव मन्त्रेण पृथिव्या सहितां तां कुण्डलीं शक्तिं स्वाधिष्ठानं स्वाधिष्ठानचक्रं समानीय तत्त्वं पृथिव्यादिकं तत्त्वे जलादौ नियोजयेत् विलापयेत् ॥९३-९४॥

गन्धादिघ्राणसंयुक्तां पृथिवीमप्सु संहरेत् ।
रसादिजिह्वया सार्द्धं जलमग्नौ विलापयेत् ॥९५॥
रूपादिचक्षुषा सार्द्धमग्निं वायौ विलाप्य च ।

स्पर्शादित्वग्युतं वायुमाकाशे प्रविलापयेत् ।।९६।।

पद्मा-गन्धादि घ्राण से युक्त सम्पूर्ण पृथ्वी को जल में लय करे। जिह्वा के साथ रस को जल को अग्नि अर्थात् तेज में लय करे। रूपादि और चक्षु के साथ अग्नि (तेज) को वायु में लीन करे। स्पर्शादि त्वक् इन्द्रिय सहित वायु को आकाश में लीन करे।

हरि०-पृथिव्यादेस्तत्त्वस्य जलादित्वे विलापनप्रकारमेव दर्शयन्नाह गन्धादीत्यादि। गन्ध आदिर्यस्य तद्गन्धादि एवम्भूतञ्च तद्घ्राणां नासा चेति गन्धादिघ्राणे तेन संयुक्तां पृथिवीम् अप्सु जलेषु संहरेत् विलापयेत्। घ्राणादीति पाठे तु घ्रायते नासिकया गृह्यते यः स घ्राणो गन्ध एव। जलादिकमप्यग्न्यादा वेवमेव विलापयेत् ।।९५-९६।।

अहङ्कारे हरेद् व्योम् सशब्दं तन्महत्यपि ।
महत्तत्त्वञ्च प्रकृतौ तां ब्रह्मणि विलापयेत् ।।९७।।

पद्मा-तदुपरानत शब्दसहित आकाश को अहंकार में तथा अहंकार को बुद्धि तत्त्व में विलीन करे तथा बुद्धितत्त्व को प्रकृति में लय करे तथा प्रकृति को ब्रह्म में लय करे।

हरि०-अहङ्कार इति। अहङ्कारे सशब्दं शब्दसहितं व्योम आकाशं हरेत् विलापयेत्। तत् अहङ्कारतत्त्वं महति महत्तत्त्वे हरेत्। महत्तत्त्वञ्चप्रकृतौ विलापयेत्। तां प्रकृतिं ब्रह्मणि विलापयेत् ।।९७।।

इत्थं विलाप्य मतिमान् वामकुक्षौ विचिन्तयेत् ।
पुरुषं कृष्णवर्णञ्च रक्तश्मश्रुविलोचनम् ।।९८।।
रक्तधर्मधरं क्रुद्धमङ्गुष्ठपरिमाणकम् ।
सर्वपापस्वरूपञ्च सर्वदाऽधोमुखस्थितम् ।।९९।।

पद्मा-बुद्धिमान् पुरुष इस प्रकार समस्त तत्त्वों का लय करके वाम कुक्षि (बायीं कोख) में कृष्ण वर्ण, रक्त नेत्र, लाल श्मश्रु (मूंछ), लाल चर्मधारी, क्रोधाविष्ट, अंगुष्ठमात्र परिणाम वाले सदा नीचे को मुख किए हुए सर्वपाप स्वरूप पुरुष का ध्यान करे।

हरि०-इत्थमिति। मतिमान् साधक इत्थममुना प्रकारेण पृथिव्यादितत्त्वं विलाप्य वामकुक्षौ वामे उदरे कृष्णवर्ण सर्वपापस्वरूपं पुरुषं विचिन्तयेत्। रक्तश्मश्रुविलोचनमित्यादीनि द्वितीयान्तपदानि सर्वपापस्वरूपस्य पुरुषस्यैव विशेषणानि। रक्तश्मश्रुविलोचनम् रक्ते लोहितवर्णे श्मश्रुविलोचने यस्य तथा भूतम् ।।९८-९९।।

ततस्तु वामनासायां यं बीजं धूम्रवर्णकम् ।
सञ्चिन्त्य पूरयेत्तेन वायुं षोडशमात्रया ।
तेन पापात्मकं देहं शोषयेत् साधकाग्रणीः ।।१००।।

पद्मा-इसके उपरान्त बायीं नासिका में धूम्र वर्ण के 'यं' बीज का ध्यान करके उसका सोलह बार जप करे और बायीं नासिका से वायु का आकर्षण करे। श्रेष्ठ साधक उस आकर्षित वायु के द्वारा पापपुरुष की देह को सुखाये।

हरि०-ततस्त्विति। ततोऽनन्तरन्तु वामनासायां धूम्रवर्णकं यं बीजं सञ्जिन्त्य तदेवबीजं

जपन् साधकस्तेन वामनासारन्ध्रेण षोडशमात्रया वायुं पूरयेदाकर्षेत्। साधकाग्रणीः साधकोत्तमस्तेन पूरितेन वायुना पापात्मकं पापमात्मनि स्वस्मिन् यस्य एवम्भूतदेहं शोषयेत् ॥१००॥

नाभौ रं रक्तवर्णञ्च ध्यात्वा तज्जातवह्निना ।
चतुःषष्ट्या कुम्भकेन दहेत् पापरतान्तनूम् ॥१०१॥

पद्मा–नाभि स्थान में लाल रंग के अग्नि बीज 'रं' का ध्यान करते हुए कुम्भक करके ६४ बार इस बीज का ध्यान करते हुए उससे उत्पन्न अग्नि के द्वारा पापरत अपनी देह को दग्ध करे ।

हरि०–**नाभाविति**। ततो नभौ रक्तवर्णं रमिति बीजं ध्यात्वा तदेव बीजं जपन्नपि तज्जातवह्निना ततो रमिति बीजादुत्पन्नेनाग्निना चतुःषष्ट्या कुम्भकेन पापरतां निजां तनूं दहेत् ॥१०१॥

ललाटे वारुणं बीजं शुक्लवर्णं विचिन्त्य च ।
द्वात्रिंशता रेचकेन प्लावयेदमृताम्भसा ॥१०२॥

पद्मा–ललाट में श्वेत रंग के वरुण बीज 'वं' का चिन्तन करते हुए आकर्षित वायु को छोड़ते हुए इस बीज मन्त्र का ३२ बार जप करते हुए इससे उत्पन्न अमृतजल के द्वारा दग्ध शरीर को आप्लावित करे ।

हरि०–**ललाटे इति**। ततो ललाटे शुक्लवर्णं वारुणं वमिति बीजं सञ्चिन्त्य तदेव बीजं जपन्नपि द्वात्रिंशता रेचकेनामृताम्भसा वारुणबीजच्युतेनामृतरूपेण जलेन दग्धां तनूं प्लावयेत् ॥१०२॥

आपादशीर्षपर्यन्तमाप्लाव्य तदनन्तरम् ।
उत्पन्नं भावयेद्देहं नवीनं देवतामयम् ॥१०३॥

पद्मा–इस प्रकार पैर से लेकर सिर तक अमृतजल से सिंचन कर ऐसी भावना करे कि देवमय नवीन शरीर उत्पन्न हुआ है ।

हरि०–**आपादेति**। एवमापादशीर्षपर्यन्तं देहमाप्लाव्य तदनन्तरं देवतामयं देवतादेहस्वरूपं नवीनमुत्पन्नं देहं भावयेत् चिन्तयेत् ॥१०३॥

पृथ्वीबीजं पीतवर्णं मूलाधारे विचिन्तयन् ।
तेन दिव्यावलोकेन दृढीकुर्यान्निजां तनूम् ॥१०४॥

पद्मा–तदुपरान्त मूलाधार चक्र में पीले रंग के पृथ्वीबीज 'लं' का चिन्तन करते हुए दिव्यदृष्टि से शीघ्र उत्पन्न नवीन शरीर को दृढ़ करें ।

हरि०–**पृथ्वीति**। ततो मूलाधारे पीतवर्णं लमित्याकारकं पृथ्वीबीजं विचिन्तयन् सन् तेन लमिति बीजेन दिव्यावलोकेन च निजां तनूं दृढीकुर्यात् ॥१०४॥

हृदये हस्तमादाय आँ ह्रीं क्रौं हंस उच्चरन् ।
सोऽहंमन्त्रेण तद्देहे देव्याः प्राणान् निधापयेत् ॥१०५॥

पद्मा–अपने हृदय पर हाथ रखकर **'आँ, ह्रीं क्रौं हंसः'** का उच्चारण करके साधक

'**सोऽह**' का उच्चारण कर इस मन्त्र के द्वारा उस नवीन देवमय शरीर में देवी की प्राण प्रतिष्ठा करें।

हरि०-हृदये इति। ततो हृदये हस्तमादाय निधाय आँ ह्रीँ क्रौं हंस इत्युच्चरन् साधक: सोऽहं मन्त्रेण तद्देहे तस्मिन्नवीने देहे देव्या: प्राणान् प्रतिष्ठयेत् आँ ह्रीँ क्रौं हंस: सोऽहमिति मन्त्रेण तत्र देहे देव्या: प्राणानां प्रतिष्ठां कुर्यादित्यर्थ: ॥१०५॥

भूतशुद्धिं विधायेत्थं देवीभावपरायण: ।
समाहितमना: कुर्यात् मातृकान्याससम्म्बिके ॥१०६॥

पद्मा-हे अम्बिके ! इस प्रकार से भूतशुद्धि करके देवी भाव परायण होकर एकाग्रचित्त से मातृका न्यास करे।

हरि०-देवीभावपरायण: देवीस्वरूपोऽहमिति चिन्तनतत्पर:॥१०६॥

मातृकाया ऋषिर्ब्रह्मा गायत्रीच्छन्द ईरितम् ।
देवता मातृका देवी बीजं व्यञ्जनसंज्ञकम् ॥१०७॥
स्वराश्च शक्तय: सर्ग: कीलकं परिकीर्तितम् ।
लिपिन्यासे महादेवि विनियोगप्रयोगिता ।
ऋषिन्यासं विधायैवं कराङ्गन्यासमाचरेत् ॥१०८॥

पद्मा-इस मातृका न्यास ऋषि ब्रह्मा, छन्द गायत्री, देवता मातृका सरस्वती देवी, व्यञ्जन वर्ण बीज (हलों बीज) स्वरा: शक्तय: विसर्ग कीलक तथा लिपि के न्यास में विनियोग है। **(अस्या: मातृकाया: या-अस्य मातृका न्यासस्य ब्रह्म ऋषि: गायत्री छन्द:, मातृका सरस्वती देवी देवता व्यञ्जन: बीजा: स्वरा शक्तय: सर्ग: कीलकं लिपि न्यासे विनियोग: ।**

हे महादेवि! इसी प्रकार से ऋषि न्यास करके करन्यास तथा हृदयादि अङ्गन्यास करे।

हरि०-अथ मातृकान्यासक्रममेव दिदर्शयिष्यन् मातृकाया ऋष्यादिकमाह मातृकाया इत्यादिना। सर्ग: विसर्ग:। विनियोगप्रयोगिता विनियोगस्य प्रयोगित्वम् विनियोग: प्रयोक्तव्य इत्यर्थ:। अस्य मातृकाया ब्रह्मा ऋषिर्गायत्री छन्द: मातृका सरस्वती देवी देवता, हलो बीजम् स्वरा: शक्तय:, विसर्ग:, कीलकम् धर्म्मार्थकाममोक्षावाप्तये लिपिन्यासे विनियोग: शिरसि ब्रह्मणे ऋषये नम:, मुखे गायत्री छन्दसे नम:। हृदये मातृकायै सरस्वत्यै देव्यै देवतायै नम:। गुह्ये व्यञ्जनाय बीजाय नम:। पादयो: स्वरेभ्य: शक्तिभ्यो नम:। सर्वाङ्गेषु विसर्गाय कीलकाय नम:। धर्म्मार्थकाममोक्षावाप्तये लिपिन्यासे विनियोग:। एवं ऋषिन्यासं विधाय कृत्वा कराङ्गन्यासमाचरेत् कुर्यात् ॥१०७-१०८॥

अं आं मध्ये कवर्गञ्च इं ई मध्ये चवर्गकम् ।
उं ऊं मध्येट वर्गन्तु एं ऐंमध्ये तवर्गकम् ॥१०९॥
ओं औं मध्ये पवर्गन्तु यादिक्षान्तं वरानने ।
बिन्दुसर्गान्तराले च षडङ्गे मन्त्र ईरित: ॥११०॥

विन्यस्य न्यासविधिना ध्यायेन्मातृसरस्वतीम् ।।१११।।

पद्मा–हे वरानने! इसके पश्चात् अं आं इन दोनों वर्णों के मध्य में क वर्ग अर्थात् अं कं खं गं घं ङं आं तथा इं ईं इन दोनों वर्णों के मध्य में च वर्ग (इं चं छं जं झं ञं ईं) उं ऊं इन दोनों वर्णों के मध्य में ट वर्ग (उं टं ठं डं ढं णं ऊं) एं ऐं इन दोनों वर्णों के मध्य मे त वर्ग (एं तं थं दं धं नं ऐं) ओं औं इन दोनों वर्णों के मध्य में पवर्ग (ओं पं, फं, बं, भं, मं, औं) तथा बिन्दु 'अं' और विसर्ग 'अः' इनके मध्य में 'य' से 'क्ष' तक (अं यं रं लं, वं शं षं सं हं क्षं अः) इन वर्णों का षडङ्ग में विन्यास करें ।।

यथा–अं कं खं गं घं ङं आं	अङ्गुष्ठाभ्यां नम।
इं चं छं जं झं ञं ईं	तर्जनीभ्यां स्वाहा।
उं टं ठं डं ढं णं ऊं	मध्यमाभ्यां वषट् ।
एं तं थं दं धं नं ऐं	अनामिकाभ्यां हुम् ।
ओं पं फं बं भं मं औं	कनिष्ठाभ्यां वौषट् ।
अं यं रं लं वं शं षं सं हं टं क्षं अः	करतलकर पृष्ठाभ्यां अस्त्राय फट् ।

यह करन्यास की विधि है। अब आगे अंगन्यास करे -

अं कं खं गं घं ङं आं	हृदयाय नमः।
इं चं छं जं झं ञं ईं	शिरसे स्वाहा।
उं टं ठं डं ढं णं ऊं	शिखायै वषट् ।
एं तं थं दं धं नं ऐं	कवचाय हुम् ।
ओं पं फं बं भं मं औं	नेत्रत्रयाय वौषट् ।
अं यं रं लं वं शं षं सं ळं क्षं अः	अस्त्राय फट् ।

यह अंगन्यास हुआ। इस प्रकार न्यासकर मातृका सरस्वती का ध्यान करे ।

हरि०–कराङ्गन्यासक्रममेवाह अं आं मध्ये इत्यादिना। अं आं मध्ये स्थितं कवर्गम् इं ई मध्ये स्थितं चवर्गम् उं ऊं मध्ये स्थितं टवर्गम् एं ऐं मध्ये स्थितं तवर्गम् ओ औं मध्ये स्थितं पवर्गम् बिन्दुसर्गान्तराले अनुस्वार विसर्गमध्ये स्थितं यादिक्षान्तञ्च वर्णमङ्गुष्ठा-दिषु हृदयादिशु च षट्सु षट्सु अङ्गेषु न्यासविधिना यथाक्रमं विन्यस्य मातृसरस्वती धयायेदित्य-न्वयः। यथा अं कं खं गं घं ङ् आं अङ्गुष्ठाभ्यां नमः। इं चं छ जं झं ञं ईं तर्जनीभ्यां स्वाहा। उं टं ठं डं ढं णं ऊं मध्यमाभ्यां वषट्। एं तं थं दं धं नं ऐं अनामिकाभ्यां हुम् । ओं पं फं बं भं मं औं कनिष्ठाभ्यां वौषट् (अं यं रं लं वं शं षं हं ळं क्षं अः करतलकरपृष्ठाभ्यां फट्। इति करन्यासः। हृदयादिन्यासो यथा अं कं खं गं घं ङ् आं हृदयाय नमः। इं चं छं जं झं ञं ईं शिरसे स्वाहा। उं टं ठं डं ढं णं ऊं शिखायै वषट्। एं तं थं दं धं नं ऐं कवचाय हुम। ओं पं फं बं भं मं औं नेत्रत्रयाय वौषट्। अं यं रं लं वं शं षं सं हं ळं क्ष अं: अस्त्राय फट्। इति षडङ्गेन्यासेऽयेमव मन्त्र ईरितः कथितः।।१०९-१११।।

पञ्चाशल्लिपिभिर्विभक्तमुखदोः पन्मध्यवक्षः स्थलां।
भास्वन्मौलिनिवद्धचन्द्रशकलामापीन तुङ्गस्तनीम्।
मुद्रामक्षंगुणं सुधाढ्यकलशं विद्याञ्च हस्ताम्बुजे -
र्विभ्राणां विषदप्रभां त्रिनयनां वाग्देवतामाश्रये ।।११२।।

पद्मा–जिनका मुख, हाथ, पैर, कटिप्रदेश तथा वक्षस्थल पचास वर्णो में विभक्त है जिनका किरीट उज्ज्वल चन्द्रकला से निबद्ध है, जिनके स्तन मांसल एवं अत्यन्त ऊँचे हैं तथा जो चारो हाथों में तत्त्वमुद्रा, अक्षमाला, अमृतपूर्ण कुंभ तथा विद्या धारण किए हुए है, जो निर्मल प्रभा से युक्त हैं तथा तीन नेत्र धारण करती हैं, उन वाग्देवता सरस्वती का मैं आश्रय ग्रहण करता हूँ।

हरि०–मातृसरस्वतीध्यानमेवाह पञ्चाशल्लिपिभिरिति। वाग्देवता सरस्वतीमाश्रये भजे इत्यन्वयः। स्थलाम् पञ्चाशता वर्णैर्विभक्तानि पृथक् मुखदोः पन्मध्यवक्षः स्थलानि यस्यास्तथाभूताम। तत्र दोर्बाहुः पद् पादः। पुनः कथम्भूताम् भास्वन्मौलिनिवद्धं चन्द्रशकलं चन्द्रखण्डं ययाताम्।' "चूड़ा किरीटं केशाश्च संयता मौलयस्त्रय" इत्यमरः। पुनः कथम्भूताम् भास्वन्मौलिनिवद्धचन्द्रशकलाम् भास्वन्मौलौ दीप्यमाने किरीटे निवर्द्ध चन्द्रशकलं चन्द्रखण्डं यथाताम्।" "चूड़ा किरीटं केशाश्च संयता मौलयस्त्रय" इत्यमरः। पुन कथम्भूताम आपीनतु/स्तनीम् आपीनौ अतिमहान्तौ तुङ्गावुन्नतौ स्तनौ यस्यास्तथाभूताम्। पुनः कथम्भूताम् हस्ताम्बुजैः पाणिकमलैर्ज्ञानमुद्राम् अक्षगुणमक्षमाल्यम् सुधाढ्यकलशममृतयुक्तं घटं विद्याञ्च विभ्राणां दधतीम्। पुनः कीदृशीम् विशदप्रभाम् विशदा शुभ्रा प्रभा यस्यास्ताम्। पुनः कीदृशीम् त्रीणि नयनानि नेत्राणि यस्यास्तथाभूताम्। पुनः कथम्भूताम् हस्ताम्बुजैः पाणिकमलैर्ज्ञानमुद्राम् अक्षगुणमखमाल्यम् सुधाढ्यकलशममृतयुक्तं घटं विद्याञ्च विभ्राणां दधतीम्। पुनः कीदृशीम् विशदप्रभाम् विशदा शुभ्रा प्रभा यस्यास्ताम्। पुनः कीदृशीम् त्रीणि नयनानि नेत्राणि यस्यास्तथाभूताम्॥११२॥

ध्यात्वैवं मातृकां देवीं षट्सु चक्रेषु विन्यसेत्।
हक्षौ भ्रूमध्यगे पद्मे कण्ठे च षोडश स्वरान्।।११३।।
हृदम्बुजे कादिठान्तान् विन्यस्य कुलसाधकः।
डादिफान्तान् नाभिदेशे बादिलान्तांश्च लिङ्गके।।११४।।
मूलाधारे चतुष्पत्रे वादिसान्तान् प्रविन्यसेत्।
इत्यन्तर्मनसा न्यस्य मातृकार्णान् वहिर्न्यसेत्।।११५।।

पद्मा–इस प्रकार मातृकादेवी का ध्यान करके षट्चक्रकों में मातृका न्यास करें। साधक भ्रूमध्य (आज्ञाचक्र) में 'ह, क्ष' इन दो वर्णों, कण्ठ स्थित विशुद्ध चक्र में अ कार से विसर्ग तक (अ से अः) के षोडश (१६) स्वरों तथा हृदय स्थित अनाहत चक्र में 'क' से 'ठ' तक के वर्णों का न्यास कर नाभि देश मणिपूरक चक्र में 'ड' से 'फ' तक लिङ्गमूल

स्वाधिष्ठान चक्र में 'ब' से 'ल' तक एक चतुर्दल मूलाधार चक्रमें अन्तस्थ 'व' से 'स' तक के वर्णो का न्यास करे। इस प्रकार अन्तर में मातृका वर्णो का न्यास कर बहिर्देश में भी इन मातृकवर्णों का न्यास करे।

हरि०-ध्यसात्वेति! एवं मातृकां देवीं ध्यात्वा षट्सु चक्रेषु विन्यसेत्। षट्सचक्रेषु मातृकायान्यासस्य क्रममेवाह हक्षावित्यादिना। भ्रूमध्ये विशुद्धाख्ये द्विदले पद्मे हक्षौ वर्णौ विन्यसेत्। कण्ठे कण्ठस्थिते आज्ञाख्ये षोडशपत्रे पद्मे षोडश स्वरान् न्यसेत्। हृदम्बुजे अनाहताख्ये द्वादशदले हृदयपद्मे कादिठान्तान् द्वादशवर्णान् विन्यस्य कुलसाधको नाभिदेश-स्थिते मणिपूरकाख्ये दशदले पद्मे डाफिन्तान् दशवर्णान् विन्यसेत्। लिङ्गके लिङ्गदेशस्थे स्वाधिष्ठानाख्ये षड्दले पद्मे वादिलान्तान् षड्वर्णान् विन्यसेत्। चतुष्पत्रे मूलाधारे वादिसान्तांश्चतुरो वर्णान् प्रविन्यसेत्। यथा भ्रूमध्ये पद्मे हं नमः क्षं नमः। कण्ठगे पद्मे अं नम इं नमः ईं नमः उं नमः ऊं नमः ऋं नमः ॠं नमः ऌं नमः ॡं नमः एं नमः ऐं नमः ओं नमः औं नमः अं नमः अः नमः। हृद्गते पद्मे कं नमः खं नमः गं नमः घं नमः ङं नमः चं नमः छं नमः जं नमः झं नमः ञं नमः टं नमः ठं नमः। नाभिगते पद्मे डं नमः ढं नमः णं नमः तं नमः थं नमः दंनमः धं नमः नं नमः पं नमः फं नमः। लिङ्गते पद्मे बं नमः भं नमः मं नमः यं नमः रं नमः लं नमः। मूलाधारे वं नमः शं नमः षं नमः सं नमः। इति षट्चक्रेषु मातृका-न्यास क्रमः। इत्यनेन प्रकारेण मनसा मातृकार्णान् मातृकावर्णानन्तरभ्यन्तरे न्यस्य वहिरपि न्यसेत्॥११३-११५॥

> **ललाटमुखवृत्ताक्षिश्रुतिघ्राणेषु गण्डयोः।**
> **ओष्ठन्तोत्तमाङ्गास्य दोः पत् सन्ध्यग्रगेषु च॥११६॥**
> **पार्श्वयोः पृष्ठतो नाभौ जठरे हृदयांसयोः।**
> **ककुद्यंशे च हृत्पूर्वं पाणिपादयुगे ततः॥११७॥**
> **जठराननयोर्न्यस्येन्मातृकार्णान् यथाक्रमम्।**
> **इत्थं लिपिं प्रविन्यस्य प्राणायामं समाचरेत्॥११८॥**

पद्मा–ललाट, मुख, दोनों नेत्र, दोनों कान, दोनों नासिका, छिद्र, दोनों कपोल, ओष्ठ, अधर, दोनों दन्त पंक्तियाँ, मस्तक, मुख छिद्र, दोनों भुजाओं की सन्धि तथा अग्रभाग, दोनों पैरों की सन्धि तथा अग्रभाग, दोनों पार्श्व (बगल) पीठ (पृष्ठ) नाभि, उदर (पेट) हृदय दोनों कन्धे, ककुद, हृदय से प्रारम्भ करके बायाँ दायाँ हाथ पैर इसी प्रकार जठर तथा मुख पर क्रमवार सभी मातृका वर्णो का न्यास करें जैसे-

ललाटे अं नमः, मुखवृत्ते अं नमः, दक्षिऽक्षिण इं नमः, वामेऽक्षिण ईःनमः। दक्षश्रुतौ उं नमः, वामकर्णे ऊं नमः, दक्षघ्राणे ऋं नमः वामनासायाम् ॠं नमः, दक्षगण्डे ऌं नमः वामकपोले ॡं नमः ओष्ठे एं नमः अधरे ऐं नमः, उर्द्धदन्तः पङ्क्तौ नमः ओं नमः, आस्यविवरे.धोदन्तपक्तौ औं नमः, उत्तमाङ्गे अं नमः, अरञ्जसपिपी अं नमः भुजाओं तथा

दशसन्धियों पर क्रमश कं नमः, खं नमः गं नमः घं नमः ङं नमः, चं नमः, छं नमः, जं नमः, झं नमः, ञं नमः। पैरों की दशसन्धियों तथा उनके अगले भाग पर टं नमः, ठं नमः, डं नमः, ढं नमः, णं नमः, तं नमः, थं नमः, दं नमः, धं नमः, नं नमः। दक्षपार्श्वे पं नमः, वामपार्श्वे फं नमः, पृष्ठ बं नमः, नाभौ भं नमः, जठरे मं नमः, हृदये यं नमः दक्षस्कन्धे रं नमः, वामस्कन्धे लं नमः, ककुद्रूपेंऽशे वं नमः हृदयपूर्वे पाणियुगे शं नमः षं नमः पादयुगे सं नमः, हं नमः जठरानलयो लं नमः, क्षं नमः। इसी प्रकार लिपिन्यास करके प्रणाम करें।

हरि०–मातृकावर्णानां वहिर्न्यासस्य क्रममाह ललाटेत्यादिना। ललाटमुख वृत्तादिशु मातृकार्णान् यथाक्रमं न्यस्येदिति तृतीयेनान्वयः। यथा ललाटे अं नमः, मुखवृत्ते आं नमः, दक्षेऽक्षिण इं नमः, वामेऽक्षिण ईं नमः। दक्षश्रुतौ उं नमः, वामकर्णे ऊं नमः, दक्षघ्राणे ऋं नमः वामनासायाम् ॠं नमः, दक्षगण्डे ऌं नमः वामकपोले ॡं नमः 'ओष्ठे एं नमः' अधरे ऐं नमः, उर्द्धदन्तः पङ्क्तौ नमः ओं नमः, अधोदन्तपंक्तौ औं नमः, उत्तमाङ्गे अं नमः, आस्यविवरे अः नमः, वाह्वोः दशानां सन्धीनामग्रेषु क्रमतः कं नमः, खं नमः गं नमः घं नमः ङं नमः, चं नमः, छं नमः, जं नमः, झं नमः, ञं नमः। पादयोः दशानां संधिनामग्रेषु क्रमतः टं नमः, ठं नमः, डं नमः, ढं नमः, णं नमः, तं नमः, थं नमः, दं नमः, धं नमः, नं नमः। दक्षपार्श्वे पं नमः, वामपार्श्वे फं नमः, पृष्ठे बं नमः, नाभौ भं नमः, जठरे मं नमः, हृदये यं नमः, दक्षस्कन्धे रं नमः, वामस्कन्धे लं नमः, ककुद्रूपेंऽशे वं नमः हृदयपूर्वे, पाणियुगे शं नमः, षंः नमः हृत्पूर्वे पादयुगे सं नमः, हं नमः जठरानलयो ळं नमः, क्षं नमः। इति मातृकार्णानां वहिर्न्यासस्य क्रमः॥११६-११८॥

मायाबीजं षोडशधा जप्त्वा वामेन वायुना।
पूरयेदात्मनो देहं चतुःषष्ट्या तु कुम्भयेत्॥११९॥
कनिष्ठानामिकाङ्गुष्ठैर्धृत्वा नासाद्वयं सुधीः।
द्वात्रिंशता जपन् बीजं वायुं दक्षेण रेचयेत्॥१२०॥
पुनः पुनस्त्रिरावृत्या प्राणायाम इति स्मृतः।
प्राणायामं विधायेत्थमृषिन्यासं समाचरेत्॥१२१॥

पद्मा–मायाबीज 'ह्रीं' का सोलह बार जप करते हुए बायीं नासिका से वायु खींचकर अपने शरीर को पूर्ण करें तथा दाहिने हाथ की कनिष्ठा, अनामिका एवं अंगूठे से दोनों नासिका छिद्रों को बन्द करके ६४ बार जप करते हुए कुम्भक करें। तत्पश्चात् अंगूठे को छोड़कर मात्र दो अंगुलियों से बाएँ नासिका छिद्र को बन्द कर ३२ बार ह्रीं बीज का जप करते हुए दाहिने नासिका छिद्र से धीरे-धीरे वायु को निकाल दें। बार-बार तीन बार यही क्रिया करना प्राणायाम् कहा जाता है। इस प्रकार प्राणायाम कर ऋषि न्यास करें।

हरि०–ननु देवीमन्त्रस्य साधने कथं प्राणायामं विदध्यात् तत्राह मायाबीजमित्यादिं सुधीर्धीरो मायाबीजं ह्रीं वीजं षोडशधा षोडशवारं जप्त्वा वामेन नासापुटेन वायुनाऽऽत्मनो

देहं पूरयेत्। ततः कनिष्ठनामिकाङ्गुष्ठैर्नासाद्वयं धृत्वा चतुः षष्टः या आवृत्त्या ह्रीं बीजं जपन् स् वायुं कुम्भयेत् स्थिरं कुर्यात्। ततो द्वात्रिंशताऽऽवृत्त्या ह्रीं बीजं जपन् तेनैव दक्षनासापुटेनैव वायुं रेचयेत् त्यजेत्। पुनः पुनरावृत्त्या त्रिर्वारत्रयमेव कुर्यात्। देवीमन्त्रस्य साधने इति एष प्राणायामः स्मृतः प्राणायामविधिः प्रोक्त इत्यर्थः॥११९-१२१॥

अस्य मन्त्रस्य ऋषयो ब्रह्मा ब्रह्मर्षयस्तथा ।
गायत्र्यादीनि छन्दांसि आद्या काली तु देवता ।।१२२।।
आद्याबीजं बीजमिति शक्तिर्माया प्रकीर्तिता ।
कमला कीलकं प्रोक्तं स्थानेष्वेतेषु विन्यसेत् ।
शिरो वदनहृद्गुह्यपादसर्वाङ्गकेषु च ।।१२३।।

पद्या–इस मन्त्र के ऋषि ब्रह्मा तथा ब्रह्मर्षिगण हैं। गायत्री आदि इसके छन्द हैं तथा आद्या काली इसकी देवता हैं। 'क्रीं' इसका बीज है, आद्या माया 'ह्रीं' इसकी शक्ति है, कमला 'श्रीं' इसका कीलक है। इन मन्त्रों के द्वारा क्रमशः शिर, मुख, हृदय, गुह्यप्रदेश, दोनों पैर एवं सर्वांग में न्यास करना है ।

'ह्रीं श्रीं क्रीं परमेश्वरि स्वाहा' इस मंत्र का ऋष्यादि न्यास प्रयोग इस प्रकार है-अस्य मंत्रस्य ब्रह्माब्रह्मर्षयश्च ऋषयो गायत्र्यादीनिछन्दांसि आद्या काली देवता क्रीं बीजं ह्रीं शक्तिः श्रीं कीलकं धम्मार्थकाममोक्षावाप्तये ऋषिन्यासे विनियोगः।

ऋषिन्यास-शिरसि ब्रह्मणे ब्रह्मर्षिभ्यश्चर्षिभ्यो नमः। मुखे गायत्र्यादिभ्यश्चछन्देभ्यो नमः। हृदये आद्यायै काल्यै देवतायै नमः। गुह्ये क्रीं बीजाय नमः। पादयोः ह्रीं शक्तये नमः। सर्वाङ्गेषु श्रीं कीलकाय नमः। धम्मार्थकाममोक्षावाप्तये ऋषिः न्यासे विनियोगः यह ऋषिन्यास हुआ।

हरि०–ऋषिन्यास क्रम दर्शयंस्तस्य मन्त्रस्य ऋष्यादिकमाह अस्य मन्त्रस्येत्यादिना। अस्य मन्त्रस्य ह्रीं श्रीं क्रीं परमेश्वरि स्वाहेत्यस्य आद्याबीजं क्रीं बीजम्, माया ह्रीं बीजम, कमला श्रीं बीजम्। एतेषु स्थानेषु ऋष्यादिकं विन्यसेत् एतेषु केषु स्थानेषु विन्यसेत् तत्राह शिर इत्यादिना। यथा अस्य मन्त्रस्य ब्रह्मा ब्रह्मर्षयश्च ऋषयो गायत्र्यादीनि छन्दांसि आद्या काली देवता क्रीं बीजं 'ह्रीं' शक्तिः श्रीं कीलकं धम्मार्थकाममोक्षावाप्तये ऋषिन्यासे विनियोगः। शिरसि ब्रह्मणे ब्रह्मर्षि देवतायै नमः। गुह्यै क्रीं बीजाय नमः। पादयोः ह्रीं शक्तयो नमः। सर्वाङ्गेषु श्रीं कीलकाय नमः। धर्म्मार्थकाममोक्षावाप्तये ऋषिन्यासे विनियोगः। इति ऋषिन्यासक्रमः॥१२२-१२३॥

मूलमन्त्रेण हस्ताभ्यामापादमस्तकावधि ।
मस्तकात् पादपर्यन्तं सप्तधा व त्रिधा न्यसेत् ।
अयं तु व्यापकन्यासो यथोक्तफलसिद्धिदः।।१२४।।

पद्या–मूलमन्त्र का उच्चारण करके दोनों हाथों से पैरों से लेकर माथे तक तथा माथे से लेकर पैरों तक सात या तीन बार न्यास करे। यह व्यापक न्यास है जो इच्छित फल प्रदान करता है ।

हरि०–अथ व्यापकन्यासं ब्रूते मूलेत्यादिना। आपादमस्तकावधि पादमारभ्य मस्तकपर्यन्तं मस्तकमारभ्य पादपर्यन्तं च प्रतिहस्ताभ्यां मूलमन्त्रेण सप्तधा सप्तवारं त्रिधा व न्यसेत् न्यासं कुर्यात्। मस्तकादिति ल्यब्लोपे कर्म्मण्यधिकरणे चेति कर्म्माणि पञ्चमी ।।१२४।।

यद् बीजाद्या भवेद्विद्या तद्बीजेनाऽङ्गकल्पना ।
अथवा मूलमन्त्रेण षड्दीर्घेण विना प्रिये ।।१२५।।

पद्या–हे प्रिये ! मूल मन्त्र के आदि अक्षर में जो बीज होगा, उसमें छ: दीर्घ आ ई, ऊ, आदि जोड़कर अथवा उनके न होने पर अंग शुद्ध बीज द्वारा न्यास करे ।

हरि०–अथ कराङ्गन्यासविधिं निरूपयति तद्बीजाद्येत्यादिना यद्बीजमाद्यं यस्या: सा यद्बीजाद्या मन्त्रात्मिका विद्या भवेत्। परार्द्धे षड्दीर्घेण विनेति निषेधात् आकारादि षड्दीर्घस्वरभाव तेन बीजेनाऽङ्गकल्पना अङ्गुष्ठादि हृदयादि षडङ्गन्यास कल्पना कर्तव्येत्यर्थ:। अथवा हे प्रिये षड्दीर्घेण बिना अध्याह्रियमाणाकारादिषड्दीर्घस्वरशून्येन मूलमन्त्रेणैवाऽङ्गकल्पना कर्तव्या।।१२५।।

अङ्गुष्ठाभ्यां तर्जनीभ्यां मध्यमाभ्यां तथैव च ।
अनामाभ्यां कनिष्ठाभ्यां करयोस्तलपृष्ठयो: ।
नम: स्वाहावषट्हूञ्च वौषट् फट् क्रमश: सुधी: ।।१२६।।

पद्या–दोनों अंगुठों, दोनो तर्जनियों, दोनों मध्यमाओं, दोनों अनामिकाओं, दोनों कनिष्ठकाओं एवं करतल तथा कर पृष्ठ में क्रमपूर्वक नम:, स्वाहा, वषट्, हूँ, वौषट्, फट् मन्त्र के द्वारा कर न्यास करे। जैसे-**ह्रां अङ्गुष्ठाभ्यां नम:। ह्रीं तर्ज्जनीभ्यां स्वाहा। ह्रूं मध्यमाभ्यां वषट् । ह्रीं श्रीं क्रीं परमेश्वरि स्वाहा अङ्गुष्ठाभ्यां नम:। ह्रीं श्रीं क्रीं परमेश्वरि स्वाहातर्ज्जनीभ्यां स्वाहा। ह्रीं श्रीं क्रीं परमेश्वरि स्वाहा मध्यमाभ्यां वषट्। ह्रीं श्रीं क्रीं परमेश्वरि स्वाहा अनामिकाभ्यां हुम् । ह्रीं श्रीं क्रीं परमेश्वरि स्वाहा कनिष्ठाभ्यां वौषट् । ह्रीं श्रीं क्रीं परमेश्वरि स्वाहा करतलकरपृष्ठाभ्यां फट्।** यह करन्यास हुआ।

हरि०–पूर्वमङ्गुष्ठादि षडङ्गन्यासक्रममाह अङ्गुष्ठाभ्यामित्यादिना सार्द्धेन। अङ्गुष्ठाभ्यां नम: अङ्गुष्ठावुद्दिश्य नम इत्युक्तमित्यर्थ:। एवमग्रेऽप्यन्वयो विधेय: । सुधी साधक: क्रमश: क्रमेण ह्रां अङ्गुष्ठाभ्यां नम: ह्रीं तर्जनीभ्यां स्वाहा ह्रूं मध्यमाभ्यां वषट ह्रैं अनामिकाभ्यां नम: ह्रौं कनिष्ठाभ्यां वौषट् ह्रः करतलकरपृष्ठाभ्यां फट्। ह्रीं श्रीं क्रीं परमेश्वरि स्वाहा अङ्गुष्ठाभ्यां नम: एवं वा अङ्गुष्ठादिषडङ्गेषु न्यासं विदध्यादिति शेष:।।१२६।।

हृदयाय नम: पूर्वं शिरसे वह्निवल्लभा ।
शिखायै वषडित्युक्तं कवचाय हुमीरितम् ।।१२७।।
नेत्रत्रयाय वौषट् च अस्त्राय फडिति क्रमात् ।
षडङ्गानि विधायेत्थं पीठन्यासं समाचरेत् ।।१२८।।

पद्या–इसके पश्चात् 'हृदयाय नम:, शिरसे स्वाहा, शिखायै वषट् तथा कवचाय

हुं, नेत्रत्रयाय वौषट्, अस्त्राय फट् "इस प्रकार षडङ्गन्यास करके पीठन्यास करे। जैसे- **ह्रां हृदयाय नमः ह्रीं शिरसे स्वाहा, ह्रूं शिखायै वषट्, ह्रैं कवचाय हुं, ह्रौं नेत्रत्रयाय वौषट्। ह्रः अस्त्राय फट्** अथवा **ह्रीं श्रीं क्रीं परमेश्वरि स्वाहा हृदयाय नम, ह्रीं श्रीं क्रीं परमेश्वरि स्वाहा शिरसे स्वाहा। ह्रीं श्रीं क्रीं परमेश्वरि स्वाहा शिखायै वषट्, ह्रीं श्रीं क्रीं परमेश्वरि स्वाहा कवचाय हुं। ह्रीं श्रीं क्रीं परमेश्वरि स्वाहा नेत्रत्रयाय वौषट्। ह्रीं श्रीं क्रीं परमेश्वरि स्वाहा अस्त्राय।** इस प्रकार षडङ्गन्यास करे।

हरि०–अथ हृदयादिषडङ्गन्यासमाह हृदयाय नमः इत्यादिना। पूर्वं हृदयाय नमः। हृदयमुद्दिश्य नम इत्युक्तमित्यर्थः। एवमग्रेऽप्यन्वयः। वह्निवल्लभा स्वाहा। ह्रां हृदयाय नमः। ह्रीं शिरसे स्वाहा। ह्रूं शिखायै वषट्। ह्रैं कवचाय हुम्। ह्रौं नेत्रत्रयाय वौषट्। ह्रः अस्त्राय फट् इति। ह्रीं श्रीं क्रीं परमेश्वरि स्वाहा। हृदयाय नमः एवं वा क्रमात् सुधीर्हृदयादिषडङ्गेषु न्यासं कुर्यात्। इत्थमेव विधानेन षडङ्गानि प्रति न्यासं विधाय पीठन्यासं समाचरेत्॥१२७-१२८॥

आधारशक्तिं कूर्मञ्च शेषं पृथ्वीं तथैव च।
सुधाम्बुधिं मणिद्वीपं पारिजाततरुं ततः॥१२९॥
चिन्तामणिगृहञ्चैव मणिमाणिक्यवेदिकाम्।
तत्र पद्मासनं वीरो विन्यसेत् हृदयाम्बुजे॥१३०॥

पद्मा–इसके उपरान्त वीर साधक अपने हृदय कमल में आधारशक्ति, कूर्म, अनन्त पृथ्वी, सुधाम्बुधि, मणिद्वीप, परिजात वृक्ष, चिन्तामणि गृह, मणिमाणिक्यवेदिका तथा उस पर स्थित पद्मासन इन सभी का न्यास करे। जैसे हृदयाम्बुजे आधारशक्तो नमः। कूर्माय नमः, शेषाय नमः, पृथ्व्यै नमः। सुधाम्बुधये नमः, मणिद्वीपाय नमः, पारिजाततरवे नमः, चिन्तामणि गृहाय नमः। मणिमाणिक्यवेदिकायै नमः। पद्मासनाय नमः।

हरि०–पीठन्यासाचरणक्रममेव दर्शयन्नाह आधारशक्तिमित्यादि। वीरो हृदयाम्बुजे हृत्पद्मे आधारशक्तिं न्यसेत्। तत्रैव कूर्मादिकमपि न्यसेत्। तत्र मणिमाणिक्यवेदिकायाम्। यथा हृदयाम्बुजे आधारशक्तो नमः। कूर्माय नमः, शेषाय नमः, पृथ्व्यै नमः। सुधाम्बुधये नमः, मणिद्वीपाय नमः, पारिजाततरवे नमः, चिन्तामणि गृहाय नमः। मणिमाणिक्यवेदिकायै नमः। पद्मासनाय नमः इति॥१२९-१३०॥

दक्षवामांसयोर्वामकटौ दक्षकटौ तथा।
धर्मज्ञानं तथैश्वर्यं वैराग्यं क्रमतो न्यसेत्॥१३१॥

पद्मा–इसके पश्चात् दाहिने कन्धे में, बाये कन्धे में वाम (बायीं) कटि (कमर) में दक्षिण कटि में धर्म, ज्ञान, ऐश्वर्य तथा वैराग्य का क्रम में न्यास करे।

हरि०–दक्षेत्यादि। दक्षिणांसादिषु क्रमतो धर्मादिकं न्यसेत्। यथा दक्षस्कन्धे धर्माय नमः, वाम स्कन्धे ज्ञानाय नमः वामकटौ ऐश्वर्याय नमः दक्ष कटौ वैराग्याय नमः इति॥१३१॥

मुखपार्श्वे नाभिदक्षपार्श्वे साधकसत्तमः ।
नञ्पूर्वाणि च तान्येव धर्म्मादीनि यथाक्रमम् ।।१३२।।

पद्मा–श्रेष्ठ साधक मुख में वाम पार्श्व में दक्षिण पार्श्व में नञ् पूर्वक क्रमशः, उपरोक्त धर्मादि का न्यास करे जैसे-मुखे अधर्म्माय नमः। वामपार्श्वे अज्ञानाय नमः, नाभौ अनैश्वर्याय नमः, दक्षपार्श्वे अवैराग्याय नमः ।

हरि०–मुखेत्यादि। साधकसत्तमो मुखादिषु नञ् पूर्वाणि तान्येव धर्म्मादीनि यथाक्रमं क्रमेणैव न्यसेत् । यथा **मुखे अधर्म्मार्य नमः, वामपार्श्वे अज्ञानाय नमः नाभौ अनैश्वर्याय नम दक्षपार्श्वे अवैराग्याय नमः इति** ॥१३२॥

आनन्दकन्दं हृदये सूर्यं सोमं हुताशनम् ।
सत्त्वं रजस्तमश्चैव बिन्दुयुक्तादिमाक्षरैः ।
केशरान् कर्णिकाञ्चैव पत्रेषु पीठनायिकाः ।।१३३।।

पद्मा–तत्पश्चात् हृदय में आनन्द कन्द, सूर्य, सोम (चन्द्र) अग्नि तथा आद्याक्षर में अनुस्वार जोड़कर सत्त्व, रज तथा तम एवं इन सब का कर्णिका में न्यास कर हृदय पद्म के समस्त पत्रों में पीठ नायिकाओं का न्यास करे। जैसे-**हृदय आनन्द कन्दाय नमः। सूर्याय नमः। सोमाय नमः। अग्नये नमः। सं सत्त्वाय नमः। रं रजसे नमः। तं तमसे नमः। केसरेभ्यो नमः। कर्णिकायै नमः ।**

हरि०–आनन्देत्यादि। आनन्दकन्दादीन हृदये न्यसेत् । बिन्दुयुक्तादिमाक्षरैः सानुस्वरैरादिमक्षरैः सह सत्त्वं रजस्तमश्च तत्रैव न्यसेत् । यथा हृदय आनन्दकन्दाय नमः। सूर्याय नमः। सोमाय नमः। अग्नये नमः। सं सत्त्वाय नमः। रं रजसे नमः। तं तमसे नमः। केसरेभ्यो नमः। कर्णिकायै नमः॥१३३॥

मङ्गला विजया भद्रा जयन्ती चाऽपराजिता ।
नन्दिनी नारसिंही च वैष्णवीत्यष्टनायिकाः ।।१३४।।

पद्मा–मंगला, विजया, भद्रा, जयन्ती, अपराजिता, नन्दिनी, नारसिंही तथा वैष्णवी यह अष्टनायिकाएँ हैं।

हरि०–पत्रेषु याः पठनायिका न्यसेत्ता आह एकेन मङ्गलेत्यादि। यथा हृत्पद्मपत्रेषु क्रमतः मङ्गलायै नमः विजयायै नमः भद्रायै नमः जयन्त्यै नमः अपराजितायै नमः नन्दिन्यै नमः नारसिंह्यै नमः वैष्णव्यै नमः॥१३४॥

असिताङ्गो रुरुश्चण्डः क्रोधोन्मत्तो भयङ्करः ।
कपाली भीषणश्चैव संहारीत्यष्ट भैरवाः ।
दलाग्रेषु न्यसेदेतान् प्राणायामं ततश्चरेत् ।।१३५।।

पद्मा–असितांग, रुरु, चण्ड, क्रोधोन्मत्त, भयङ्कर, कपाली, भीषण तथा संहारी-इन आठ भैरवों का न्यास अष्टदल कमल के प्रत्येक दल के अग्र भाग में करे। जैसे-

पुस्तकालय परिग्रहण सं० 23121 दि० 26.3.57

असिताङ्गाय भैरवाय नमः, रुरवे भैरवाय नमः, चण्डाय भैरवाय नमः, क्रोधोन्मत्ताय भैरवाय नमः, भयङ्कराय भैरवाय नमः, कपालिने भैरवाय नमः, भीषणाय भैरवाय नमः संहारिणे भैरवाय नमः। तत्पश्चात् प्राणायाम करें।

हरि०–असिताङ्गइति। असिताङ्गादीनेतानष्ट भैरवान् दलाग्रेषु न्यसेत्। यथा हृत्पद्मपत्राग्रेषु क्रमतः असिताङ्गाय भैरवाय नमः, रुरवे भैरवाय नमः, चण्डाय भैरवाय नमः, क्रोधोन्मत्ताय भैरवाय नमः, भयङ्कराय भैरवाय नमः, कपालिने भैरवाय नमः, भीषणाय भैरवाय नमः संहारिणे भैरवाय नमः इति। एवं पीठन्यासं विधाय ततः प्राणायामञ्चरेत् ॥१३५॥

गन्धपुष्पे समादाय करकच्छपमुद्रया।
हृदि हस्तौ समाधाय ध्यायेद्देवीं सनातनीम् ॥१३६॥

पद्मा–इसके उपरान्त् कच्छप् मुद्रा बनाए हुए करतल में गन्ध तथा पुष्प लेकर हृदय पर दोनों हाथ स्थापित करके बाएँ हाथ के अंगूठे के साथ दाहिने हाथ की तर्जनी को मिलाकर, बाएँ हाथ की तर्जनी के साथ दाहिने हाथ की कनिष्ठा को मिलाकर शेष समस्त उंगलियों को दोनों करतलों के मध्य में बंधी हुई मुट्ठी के समान् स्थिर रखे–यही कच्छप मुद्रा है।

हरि०–गन्धेति। ततो गुरूपदिष्टया करकच्छपमुद्रया गन्धपुष्पे समादाय गृहीत्वा हृदि हस्तौ समाधाय संस्थाप्य सनातनीमाद्यन्तशून्यां देवीं ध्यायेत् ॥१३६॥

ध्यानं तु द्विविधं प्रोक्तं सरूपारूपभेदतः।
अरूपं तव यद्ध्यानमवाङ्मनसगोचरम् ॥१३७॥

पद्मा–ध्यान दो प्रकार का कहा गया है-साकार और निराकार। सरूप का तात्पर्य है साकार तथा अरूप का तात्पर्य है निराकार। हे देवि! तुम्हारा निराकार विषयक जो ध्यान है वह वाणी तथा मन के द्वारा अगोचर है।

हरि०–ध्यानमिति। हे देवि सरूपारूपभेदतः तव ध्यानन्तु द्विविधं प्रोक्तं तयोर्मध्ये अरूपं रूपरहितं तव यध्यानं ध्येयं, तत्तु अवाङ्मनसगोचरम् वाचो मनसश्चाविषयभूतम्। ध्यायते यत्तत् ध्यानम्। बाहुलकात् कर्म्मणि ल्युट् ॥१३७॥

अव्यक्तं सर्वतो व्याप्तमिदमित्थंविवर्ज्जितम्।
अगम्यं योगिभिर्गम्यं कृच्छ्रैर्बहुशमादिभिः ॥१३८॥

पद्मा–यह अव्यक्त एवं सर्वव्यापक है, यह ऐसा है या इस प्रकार है, ऐसा नहीं कहा जा सकता है। साधारण मनुष्यों के लिए वह अगम्य है, किन्तु योगीगण दीर्घकाल तक समाधि का आश्रय लेकर अत्यन्त ही कष्ट के साथ इसे प्राप्त कर पाते हैं।

हरि०–अव्यक्तमित्यादि। इदमित्थं विवर्जितम् इदमित्थमेवेति सिद्धान्तरहितम्। अगम्यम् अज्ञेयम्। कृच्छ्रैः प्राजापत्यादिभिर्व्रतैः। शमोऽन्तःकरणसंयमः स आदिर्येषां ते शमादयः। बहवश्च ते शमादयः तैः ॥१३८॥

मनसो धारणार्थाय शीघ्रं स्वाभीष्टसिद्धये ।
सूक्ष्मध्यानप्रबोधाय स्थूलध्यानं वदामि ते ।।१३९।।

पद्मा–मैं इस समय मन की धारणा हेतु शीघ्र अभीष्ट शीघ्र प्रदायक एवं सूक्ष्म ध्यान के ज्ञान हेतु तुम्हारा स्थूल ध्यान कहता हूँ ।

हरि०–मनस इति । शीघ्रमिति पूर्वान्वयि ।।१३९।।

अरूपायाः कालिकायाः कालमातुर्महाद्युतेः ।
गुणक्रियानुसारेण क्रियते रूपकल्पना ।।१४०।।

पद्मा–निराकार, काल की जननी, महाप्रकाशवती कालिकादेवी के गुण एवं क्रिया के अनुसार रूप की कल्पना की जाती है ।

हरि०–ननु रूपवत् एव पदार्थस्य स्थूलध्यानं सम्भवति मम त्वाद्यन्तशून्याया रूपरहितत्वात् कथं स्थूलध्यानं ब्रवीषीत्यत आह अरूपाया इत्यादि।।१४०।।

मेघाङ्गी शशिशेखरां त्रिनयनां रक्ताम्बरां बिभ्रतीं
पाणिभ्यामभयं वरञ्च विलसद्रक्तारविन्दस्थिताम् ।
नृत्यन्तं पुरतो निपीय मधुरं माध्वीकमद्यं महा -
कालं वीक्ष्य विकासिताननवरामाद्यां भजे कालिकाम् ।।१४१।।

पद्मा–जिनका अंग मेघ के समान है, जिसके ललाट पर चन्द्रमा शोभायमान है। तीन नेत्र तथा लाल वस्त्र धारण किए हुए है, जिनके दोनों हाथों में वर एवं अभय मुद्रा है, जो विकसित लाल कमल पर आसीन है। मधूक पुष्प से बनी हुई मुख प्रफुल्लित हो उठा है उन आद्याकालिका का मैं भजन करता हूँ ।

हरि०–स्थूलध्यानमेवाह मेघाङ्गीमिति । आद्यां कालिकामहं भजे इत्यन्वयः कथम्भूतां कालिकाम् मेघाङ्गीम् मेघ इवाङ्गं यस्यास्तथाभूताम् । पुनः कथम्भूताम् शशिशेखराम् शशी शेखरे शिरसि यस्याः ताम् । पुनः कीदृशीम् । त्रिनयनाम् त्रीणि नयनानि नेत्राणि यस्याः ताम्। पुनः कथम्भूताम् पाणिभ्यां हस्ताभ्यामभयं वरञ्च बिभ्रतीं दधतीम् । पुनः कीदृशीम् विकसद्रक्तारविन्दस्थितां विकसत् स्फुटद्रक्तारविन्दं लोहितं पद्मं तत्र स्थितामुपविष्टाम्ः। पुनः कथम्भूताम् मधुरं माध्वीकमद्यं मधूकपुष्पोद्भवं मद्यं निपीय पुरतोऽग्रे नृत्यन्तं महाकालं वीक्ष्य दृष्ट्वा विकसितमाननवरं मुखश्रेष्ठं यस्याः तथाभूताम् ।।१४१।।

एवं ध्यात्वा स्वशिरसि पुष्पं दत्त्वा तु साधकः ।
पूजयेत् परया भक्त्या मानसैरुपचारकैः ।।१४२।।

पद्मा–इस प्रकार ध्यान कर अपने सिर पर पुष्प रखकर साधक अत्यन्त भक्ति के साथ मानसोपचार के द्वारा पूजा करे ।

हरि०–एवमिति। एवममुना प्रकारेणाऽऽद्यां कालीं ध्यात्वा करकच्छपमुद्रया गृहीतं पुष्पं स्वशिरसि दत्त्वा साधकः परया भक्त्या मानसैरुपचारकैर्देवीं पूजयेत् ।।१४२।।

हृत्पद्मासनं दद्यात् सहस्रारच्युतामृतैः ।
पाद्यं चरणयोर्दद्यात् मनस्त्वर्घ्यं निवेदयेत् ।।१४३।।

पद्मा–मानस पूजा में आसन के रूप में हृदय कमल को प्रदान करे। सहस्रदलकमल से निकलते हुए अमृत के द्वारा दोनों चरणों में पाद्य समर्पित करे तथा मन को अर्घ्यस्वरूप में निवेदन करे ।

हरि०–मानसैरुपचारकैर्देव्याः पूजनमेव दर्शयति हृत्पद्ममित्यादिभिः। देव्यै हृत्पद्मासनं दद्यात् । सहस्रारच्युतामृतैः सहस्रदलपद्माद्गलितैरमृतैर्देव्याश्चरणयोः पाद्यं दद्यात् । एवमग्रेऽप्यन्वयः।।१४३।।

तेनाऽमृतेनाऽऽचमनं स्नानीयमपि कल्पयेत् ।
आकाशतत्त्वं वसनं गन्धन्तु गन्धतत्त्वकम् ।।१४४।।

पद्मा–सहस्रदल कमल से निकले हुए अमृत के द्वारा ही आचमनीय एवं स्नानीय जल प्रदान करे। वस्त्र के रूप में आकाश तत्त्व तथा गन्धतत्त्व के रूप में गन्ध की कल्पना करें।

हरि०–तेनेति। तेनामृतेन सहस्रारच्युतेन ।।१४४।।

चित्तं प्रकल्पयेत् पुष्पं धूपं प्राणान प्रकल्पयेत् ।
तेजस्तत्त्वन्तु दीपार्थे नैवेद्यञ्च सुधाम्बुधिम् ।।१४५।।
अनाहतध्वनिं घण्टां वायुतत्त्वञ्च चामरम् ।
नृत्यमिन्द्रियकर्म्माणि चाञ्चल्यं मनसस्तथा ।।१४६।।

पद्मा–चित्त को पुष्प के रूप में तथा प्राण को धूप के रूप में कल्पना करे। तेज तत्त्व को दीपक के रूप में तथा सुधाम्बुधि को नैवेद्य के रूप में कल्पना करे। अनाहत ध्वनि को घण्टा ध्वनि के रूप में वायु तत्त्व को चामर के रूप में एवं इन्द्रियों के समस्त कार्यों तथा मन की चंचलता को नृत्य रूप में कल्पना करे ।

हरि०–सुधाम्बुधिममृतसमुद्रम् ।।१४५-१४६।।

पुष्पं नानाविधं दद्यादात्मनो भावसिद्धये ।
अमायमनहङ्कारमरागममदं तथा ।।१४७।।

पद्मा–अपनी भाव शुद्धि के लिए साधक देवी को विविध प्रकार के पुष्प प्रदान करे। इनमें प्रथम पुष्प, अमाय अर्थात् माया का अभाव, द्वितीय पुष्प अनहङ्कार (अहंकार का अभाव) तृतीय पुष्प राग-साहित्य तथा चतुर्थ पुष्प मद राहित्य है ।

हरि०–**पुष्पमिति** । आत्मनो भावसिद्धये स्वाभिलप्रेतपदार्थनिष्पत्तये। काल्यै देयानि नानाविधानि पुष्पाण्यभिधत्ते अमायमित्यादिना सार्द्धद्वयेन। मायाया अभावोऽमायं प्रथमं पुष्पम्। अनहङ्कारम् अहङ्कार आत्मन्यतिपूज्यत्वाभिमानः तदभावोऽनहङ्कारं द्वितीय पुष्पम् । रागः क्रोधः तदभावोऽरागं तृतीयं पुष्पम् मदो धनविद्यादिनिमित्तकं चित्तस्योत्सुकत्वं तदभावोऽमदं चतुर्थ पुष्पम् ।।१४७।।

अमोहकमदम्भञ्च अद्वेषाक्षोभके तथा ।
अमात्सर्यमलोभञ्च दश पुष्पं प्रकीर्तितम् ।।१४८।।

पद्या–पञ्चम् पुष्प मोह राहित्य, षष्ठ पुष्प दम्भ राहित्य, सप्तम पुष्प द्वेष राहित्य, अष्टम पुष्प क्षोभराहित्य, नवम् पुष्प मात्सर्य राहित्य तथा दशम् पुष्प लोभराहित्य है।

हरि०–मोहोऽविवेक: तदभावोऽमोहं पञ्चमं पुष्पम् । दम्भ: कपट: तद्भावोऽदम्भं षष्ठ पुष्पम् । द्वेषोऽप्रीति: तदभावोऽद्वेषं सप्तमं पुष्पम् । क्षोभो व्यर्थमितस्तत: सञ्चलनम् तद्भावोऽक्षोभकमष्टमं पुष्पम् । मात्सर्यमन्य शुभद्वेष: तद्भावोऽमात्सर्यं नवमं पुष्पं। लोभो धनाद्यागमे बहुधा जायमानेऽपि पुनर्वर्द्धमानोऽभिलाश: तद्भावो अलोभं दशमं पुष्पम् । एवं दशपुष्पं प्रकीर्तितम् ॥१४८॥

अहिंसा परमं पुष्पं पुष्पमिन्द्रियनिग्रह: ।
दया क्षमा ज्ञानपुष्पं पञ्च पुष्पं तत: परम् ।
इति पञ्चदशै: पुष्पैर्भावरूपै: प्रपूजयेत् ।।१४९।।

पद्या–इसके पश्चात् अहिंसा रूपी परम पुष्प, इन्द्रिय निग्रह रूपी पुष्प, दयारूपी पुष्प क्षमा रूप पुष्प ज्ञान रूप पुष्प ये पाँच पुष्प प्रदान करे । इस प्रकार पन्द्रह भावरूप पुष्पों से पूजन करे ।

हरि०–अहिंसा परपीडानिवृत्ति:। इन्द्रिय निग्रह: विषयेषु चक्षुरादिसंयमनम् । दया निष्कारणपरदु:खविनाशेच्छा। क्षमा परेणापकारे कृते तस्य प्रत्युपकाराणां चरणम् । ज्ञानं सारासार विवेकनैपुण्यम् । भावरूपै: भाव्यन्ते चिन्त्यन्ते इति भावा: कर्म्मण्यच् । तद्रूपै: भाव्यमानैरित्यर्थ:।।१४९।।

सुधाम्बुधिं मांसशैलं भर्जितं मीनपर्वतम् ।
मुद्राराशिं सुभक्तञ्च घृताक्तं पायसं तथा ।।१५०।।

पद्या–तत्पश्चात् सुधा सागर, मांस पर्वत, भार्जित मत्स्य पर्वत, मुद्रा राशि, श्रेष्ठ अन्न घृताक्त पायस, प्रदान करे ।

हरि०–सुधाम्बुधिमिति। सुधाम्बुधिं मद्यसमुद्रम् । घृताक्तं घृतमिश्रितम् ।।१५०।।

कुलामृतञ्च तत्पुष्पं पीठक्षालनवारि च ।
कामक्रोधौ विघ्नकृतौ बलिं दत्त्वा जपं चरेत् ।।१५१।।

पद्या–शक्तिघटित अमृत विशेष (कुलामृत) स्त्रीपुष्प (कुलपुष्प) तथा स्त्री की योनि का धोया हुआ जल (पीठक्षालन वारि) ये सभी देवी को मन ही मन प्रदान करता हुआ विघ्नकारक काम तथा क्रोध की बलि देकर जप प्रारम्भ करे ।

हरि०–कुलामृतमिति। कुलामृतं शक्तिघटितममृतविशेषम् । तत्पुष्पम् कुलपुष्पं स्त्रीपुष्पमित्यर्थ:। पीठक्षालनवारि स्व्यङ्गविशेषधावनाम्भ:।।१५१।।

माला वर्णमयी प्रोक्ता कुण्डलीसूत्रयन्त्रिता ।।१५२।।

पद्या–कुण्डली सूत्र में गुथी हुई माला को जप माला कहा है ।

हरि०–नन्वाभ्यन्तरजपाचरणे कीदृशी माला जपविधानञ्च कीदृशं वर्तते इत्यपेक्षायामाह मालेत्यादि। कुण्डलीरूपेण सूत्रेण यन्त्रिता ग्रथिता वर्णमयी वर्णरूपा मालाऽभ्यन्तरजपे प्रोक्ता ॥१५२॥

सबिन्दुं मन्त्रमुच्चार्य मूलमन्त्रं समुच्चरेत् ।
अकारादिलकारान्तमनुलोम इति स्मृतः ॥१५३॥

पद्मा–सर्वप्रथम् बिन्दु सहित आकार से लेकर अन्तिम लकार तक के वर्णों का उच्चारण करके मूल मन्त्र का उच्चारण करके जप करे। यह जप **अं ह्रीं श्रीं क्रीं परमेश्वरि स्वाहा, आँ ह्रीं क्रीं** इत्यादि क्रम से करने पर अनुलोम जप कहा जाता है ।

हरि०–**सबिन्दुमिति** । सबिन्दुं सानुस्वारक्रमकारादिलकारान्तं वर्णमुच्चार्य मूलमन्त्रं समुच्चरेत् जपेत् । यथा अं ह्रीं श्रीं क्रीं परमेश्वरि स्वाहेति एवमेव जपेत् । जपेऽयमनुलोम इति स्मृतः॥१५३॥

पुनर्लकारमारभ्य श्रीकण्ठान्तं मनुं जपेत् ।
विलोम इति विख्यातः क्षकारो मेरुरुच्यते ॥१५४॥

पद्मा–तत्पश्चात् बिन्दुयुक्त लकार से अकार तक एवं प्रत्येक वर्ग के एक-एक वर्ण को लेकर आठ वर्णों को बिन्दुयुक्त जप करने से विलोम जप कहा जाता है। 'क्ष' इसका मेरु होगा ।

हरि०–**पुनरित्यादि** । पुनर्हकारस्यान्ते स्थितं लकारमारभ्यश्रीकण्ठान्तमकारान्तं सबिन्दुं वर्णमुच्चार्य मनुं जपेत् । यथा लं ह्रीं श्रीं क्रीं परमेश्वरि स्वाहा। हं ह्रीं श्रीं क्रीं परमेश्वरि स्वाहेति एवम् । अयञ्च विलोम इति विख्यातः। क्षकारो मालाया मेरुरुच्यते ॥१५४॥

अष्टवर्गान्तिमैर्वर्णैः सहमूलमथाष्टकम् ।
एवमष्टोत्तरशतं जप्त्वाऽनेन समर्पयेत् ॥१५५॥

पद्मा–इसके पश्चात् आठ वर्गो-स्वर वर्ण, ककारादि पञ्च, चकारादि पञ्च, टकारादि पञ्च, तकारादि पञ्च, पकारादि पञ्च, यकारादि चार वर्ण, शकारादि पञ्च वर्ण-के अन्तिम वर्ण के साथ मूलमन्त्र का योग कर एक सौ आठ बार जप कर देवी के हाथ में समर्पण करे।

अं आं इं ईं उं ऊं ऋं, ॠं लृं लॄं ऌं ३ एं ऐं ओं औं अं अः कं खं गं घं ङं चं छं जं झं ञं टं ठं डं ढं णं तं थं दं धं नं पं फं बं भं मं यं रं लं वं शं षं सं हं ळं क्षं ळं हं सं षं शं वं लं रं यं मं भं बं फं पं नं धं दं थं तं णं ढं डं ठं टं ञं झं जं छं जं ङं घं गं खं कं अः अं औं ओं ऐं एं ऌं ३ लृं ऋं ॠं ऊं उं ईं इं आं अं अनुलोम तथा विलोम इस एक सौ वर्ण रूप माला के एक सौ आठ बार जप करके पुनः अष्टकवर्ग के आठ बाद के अक्षरों में आठ बार जप करे। आठ अक्षर है-अं ङं ञं णं नं मं वं ळं। इस समस्त वर्णमाला के प्रत्येक वर्ण के सहित बीज मंत्र का जप करे। जैसे-**अं ह्रीं श्रीं क्रीं परमेश्वरि**

स्वाहा। आँ ह्रीं श्रीं क्रीं परमेश्वरि स्वाहा। इं ह्रीं श्रीं क्रीं परमेश्वरि स्वाहा। ओं ह्रीं श्रीं क्रीं परमेश्वरि स्वाहा। इं ह्रीं श्रीं क्रीं परमेश्वरि स्वाहा। इत्यादि वर्णमाला में बिना अनुस्वार के भी जप किया जा सकता है ।

हरि०-अष्टेत्यादि। अथानन्तरमष्टानाम् अकुचुटुतुपुयशानां वर्णानामन्तिमैः सबिन्दुभिः अः ङञणनमवळरूपैर्वर्णैः सहाष्टकमष्टपरिमाणकं मूलं मन्त्रं जपेत् । अनेन इतोऽनन्तरमेव वक्ष्यमाणेन मन्त्रेण ॥१५५॥

सर्वान्तरात्मनिलये स्वान्तर्ज्योतिः स्वरूपिणि ।
गृहाणान्तर्जपं मातराद्ये कालि नमोऽस्तु ते ।।१५६।।
समर्प्य जपमेतेन साष्टाङ्गं प्रणमेद्धिया ।
इत्यन्तर्यजनं कृत्वा वहिः पूजां समारभेत् ।।१५७।।

पद्या-सभी के अन्तःकरण में निवास करने वाली! हे अन्तरात्मा, ज्योतिस्वरूपे हे माता, हे आद्या कालिके मैं तुमको नमस्कार करता हूँ। मेरे इस मानस जप को स्वीकार करो। इस प्रकार जप समर्पित कर मन ही मन भगवती को साष्टांग प्रणाम कर बाह्य पूजा प्रारम्भ करे ।

हरि०-जपसमर्पणमन्त्रमेवाह सर्वान्तरात्मेति। सर्वान्तरात्मनिलये सर्वेषामन्तरात्मा हृदयं निलयो गृहं यस्याः तथाभूते ॥१५६-१५७॥

विशेषार्घ्यस्य संस्कारस्तत्रादौ कथ्यते शृणु ।
यस्य स्थापनमात्रेण देवता सुप्रसीदति ।।१५८।।
दृष्ट्वाऽर्घ्यपात्रं योगिन्यो ब्रह्माद्या देवतागणाः ।
भैरवा अपि नृत्यन्ति प्रीत्या सिद्धिं ददत्यपि ।।१५९।।

पद्या-अब सर्वप्रथम मैं विशेषार्घ्य संस्कार का वर्णन करता हूँ उसे सुनो। इसके स्थापित करते ही देवता प्रसन्न होते हैं । ब्रह्मादि देवगण, योगिनी गण तथा भैरव गण अर्घ्यपात्र का दर्शन कर नृत्य करते हैं तथा प्रसन्न होकर सिद्धि प्रदान करते हैं ।

हरि०-विशेषार्घ्यस्येति। तत्र वहिः पूजासमारम्भे ॥१५८-१५९॥

स्ववामे पुरतो भूमौ सामान्यार्घ्यस्य वारिणा ।
मायागर्भं त्रिकोणञ्च वृत्तञ्च चतुरस्रकम् ।।१६०।।
विलिख्य पूजयेत्तत्र मायाबीजपुरःसरम् ।
ङेन्तामाधारशक्तिञ्च नमः शब्दावसानिकाम् ।।१६१।।

पद्या-इसके पश्चात् अपनी बायीं ओर सामने की भूमि में अर्घ्य के जल से एक त्रिकोण मण्डल, उसके मध्य में माया बीज ह्रीं, तत्पश्चात् त्रिकोण मण्डल के बाहर एक गोलाकार मण्डल तथा उसके बाहर एक चतुष्कोण मण्डल लिखे। इस पर '**ह्रीं' आधारशक्तये नमः**'' इस मन्त्र से आधारशक्ति का पूजन करे ।

सामान्यार्घ्यस्थापनयन्त्र

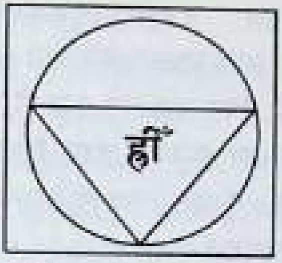

हरि०–विशेषार्घ्यस्य संस्कारमेवाह स्ववाम इत्यादिभि:। स्ववामे आत्मनो वामदेशे पुरतो भूमौ अग्रत: पृथ्व्यां सामान्यार्घ्यस्य वारिणा करणेन माया ह्रीं बीजं गर्भे यस्येदृशं त्रिकोणं मण्डलं पूर्वं विलिख्य तद्बहिरभितो वृत्तं वर्तुलं तद्बहि: चतुरस्रं चतुष्कोणं मण्डलं विलिख्य तत्र मण्डले मायाबीजं ह्रीं बीजं पुर:सरं यस्या एवम्भूतां ङेविभक्त्यन्तां नम: शब्दोऽवसानेऽन्ते यस्यास्तथाभूतामाधारशक्तिं पूजयेत्। ह्रीं आधारशक्त्ये नम: इति मन्त्रेणाधारभक्तिमर्चयेदित्यर्थ:॥१६०-१६१॥

तत: प्रक्षलिताधारं विन्यस्य मण्डलोपरि।
मं वह्निमण्डलं ङेऽन्तं दशकलात्मने तत:॥१६२॥
नमोऽन्तेन च सम्पूज्य क्षालयेदर्घ्यपात्रकम्।
अस्त्रेण स्थापयेत्तत्र आधारोपरि साधक:॥१६३॥

पद्मा–तत्पश्चात् मण्डल के ऊपर प्रक्षालित (धुला हुआ) आधार पात्र स्थापित करके उसमें ''**मं वह्निमण्डलाय दशकलात्मने नम:**'' इस मन्त्र के द्वारा पूजा करके 'फट्' मन्त्र से अर्घ्यपात्र को धोकर आधार पर स्थापित करे।

हरि०–तत इति। तत: आधारशक्तिपूजानादनन्तरं तन्मण्डलोपरि प्रक्षालिताधारं विन्यस्य संस्थाप्य पूर्वं ममित्युक्त्वा मम ङेऽन्तं वह्निमण्डलमुक्त्वा ततो दशकलात्मने इति वदेत्। योजनया मं वह्निमण्डलाय दशकलात्मने इति मन्त्रो जात:। नमोऽन्तेनानेन मन्त्रेण आधारे वह्निमण्डलं सम्पूज्य अस्त्रेण फडितिमन्त्रेणाऽर्घ्यपात्रं क्षालयेत्। साधकस्तस्मिन्नाधारोपरि क्षालितमर्घ्यपात्रंस्थापयेत्॥१६२-१६३॥

अमर्कमण्डलायोक्त्वा द्वादशान्तकलात्मने।
नमोऽन्तेन यजेत् पात्रं मूलेनैव प्रपूरयेत्॥१६४॥

पद्मा–तत्पश्चात् '**अं अर्कमण्डलाय द्वादशकलात्मने नम:**' इस मन्त्र के द्वारा अर्कमण्डल की पूजा करके मूलमन्त्र से अर्घ्यपात्र को पूरा करें।

हरि०–अमित्यादि। पूर्वम् अम् अर्कमण्डलायेत्युक्त्वा ततो द्वादशान्ते कलात्मने इति वदेत्। योजनया अम् अर्कमण्डलाय द्वादशकलात्मने इति मन्त्रो जात:। अनेनैव नमोऽन्तेन मन्त्रेण पात्रमर्घ्यपात्राधिष्ठातृदैवतमर्कमण्डलं येजत् पूजयेत् मूलेनैव मन्त्रेणाऽर्घ्यपात्रं प्रपूरयेत्॥१६४॥

त्रिभागमलिनाऽऽपूर्य शेषं तोयेन साधकः ।
गन्धपुष्पे तत्र दत्त्वा पूजयेदमुनाऽम्बिके ।।१६५।।

पद्मा–हे अम्बिके! साधक अर्घ्य पात्रका तीन भाग मद्य तथा एक भाग जल से पूरित कर उसमें गन्ध एवं पुष्प छोड़े, फिर कहे गये मन्त्र से पूजन करे ।

हरि०–ननु केन वस्तुना पात्रं प्रपूरयेत् तत्राह त्रिभागमिति। अलिना मद्येन पात्रस्य त्रिभागमापूर्य शेषं तोयेन साधकः पूरयेत् । तत्र तोये गन्धपुष्पे दत्त्वा मुना इतोऽनन्तरमेव वक्ष्यमाणेन मन्त्रेण तत्रैव शशिमण्डलं पूजयेत् ।।१६५।।

षष्ठस्वरं बिन्दुयुक्तं ङेऽन्तं वै चन्द्रमण्डलम् ।
षोडशान्ते कलाशब्दादात्मने नमः इत्यपि ।।१६६।।

पद्मा–षष्ठस्वर 'ऊ' मे बिन्दु मिलाकर 'चन्द्रमण्डलाय' सहित 'षोडशकलात्मने नमः अर्थात् **ऊं चन्द्रमण्डलाय षोडशकलात्मने नमः** से पूजा करे ।

हरि०–शशिमण्डलपूजनस्य मन्त्रमाह षष्ठत्यादिना। पूर्वं बिन्दुयुक्तमनुस्वारसहितं षष्ठस्वरम् कथयित्वा कलाशब्दात् परम् आत्मने नमः इत्यपि कथयेत् । योजनया ऊं चन्द्रमण्डलाय षोडशकलात्मने नम इति मन्त्रः शशिमण्डलार्च्चने जातः।।१६६।।

ततस्तु श्रैफले पत्रे रक्तचन्दनचर्च्चितम् ।
दूर्वापुष्पं साक्षातञ्च कृत्वा तत्र निधापयेत् ।।१६७।।

पद्मा–तत्पश्चात् श्रीफल पत्र (बेलपत्र) रक्त चन्दन, दूर्वादल, पुष्प और अक्षत एकत्र करके पात्र के अग्रभाग में स्थापित करें ।

हरि०–ततस्त्विति। ततस्तु परं श्रैफले बिल्वसम्बन्धिनि पत्रे रक्तचन्दनचर्चितं रक्तचन्दनेन लिप्तं साक्षतमक्षतैर्विशिष्ट च दूर्वासहितं पुष्पं कृत्वा वृत्र विशेषार्घ्यस्याग्रभागे निधापयेत् स्थापयेत् ।।१६७।।

मूलेन तीर्थमावाह्य तत्र देवीं विभाव्य च ।
पूजयेत् गन्ध पुष्पाभ्यां मूलं द्वादशधा जपेत् ।।१६८।।

पद्मा–इसके पश्चात् मूलमन्त्र के द्वारा तीर्थ आवाहन करके देवी का ध्यान करे तथा गन्धपुष्प के द्वारा पूजन करे और बारह बार मूल मन्त्र का जप करे ।

हरि०–मूलेनेति। तत्र विशेषार्घ्यतोये। विभाव्य विचिन्त्य ।।१६८।।

धेनुयोनी दर्शयित्वा धूपदीपौ प्रदर्शयेत् ।
तदम्बु प्रोक्षणीपात्रे किञ्चिन्निक्षिप्य साधकः ।।१६९।।

पद्मा–इसके उपरान्त साधक धेनु और योनिमुद्रा प्रदर्शित करके धूप दीप दिखाए तथा अर्घ्य का थोड़ा सा जल प्रोक्षणी पात्र में डाले ।

हरि०–धेन्विति। विशेषार्घ्यतोये धेनुयोनी मुद्रे दर्शयित्वा तत्रैव धूपदीपावपि प्रदर्शयेत्। तदम्बु विशेषार्घ्यजलम् ।।१६९।।

आत्मानं देयवस्तूनि प्रोक्षयेत्तेन मन्त्रवित् ।
पूजासमाप्तिपर्यन्तमर्घ्यपात्रं न चालयेत् ।।१७०।।

पद्मा–उस जल को अपने ऊपर एवं समस्त देय द्रव्यों के ऊपर छिड़के। पूजा की समाप्ति तक विशेषार्घ्य पात्र को हिलाए नहीं ।

हरि०–आत्मानमिति । प्रोक्षयेत् सिञ्चेत् । तेन प्रोक्षणीपात्रनिः क्षिप्त जलेन ॥१७०॥

विशेषार्घ्यस्य संस्कारः कथितोऽयं शुचिस्मिते ।
यन्त्रराजं प्रवक्ष्यामि समस्तपुरुषार्थदम् ।।१७१।।

पद्मा–हे पवित्र मुस्कान वाली! तुमसे यह विशेषार्घ्य संस्कार कहा। अब मैं समस्त पुरुषार्थ को प्रदान करने वाले यन्त्रराज को लिखने की विधि कहता हूँ।

हरि०–विशेषेति। समस्तपुरुषार्थदम् धमार्थकाममोक्षदायकमित्यर्थः॥१७१॥

मायागर्भं त्रिकोणञ्च तद्बाह्ये वृत्तयुग्मकम् ।
तयोर्मध्ये युग्मयुग्मक्रमात् षोडश केसरान् ।।१७२।।
तद्बाह्येऽष्टदलं पद्मं तद्बहिर्भूपुरं लिखेत् ।
चतुर्द्वारिसमायुक्तं सुरेखं सुमनोहरम् ।।१७३।।

पद्मा–सर्वप्रथम एक त्रिकोण मण्डल बनाकर उसके मध्य में माया बीज ह्रीं लिखे, उसके बाहर दो वृत्ताकार मण्डल लिखे। इन दोनों वृत्ताकार मण्डलों के मध्य में दो-दो के क्रम से सोलह केशर लिखे। इन दोनों वृत्तों के बाहर अष्टदल कमल लिखे। इस अष्टदल कमल के बाहर चारद्वार युक्त सुन्दर रेखा युक्त मनोहर भूपुर लिखे ।

श्री आद्या-पूजन यन्त्र

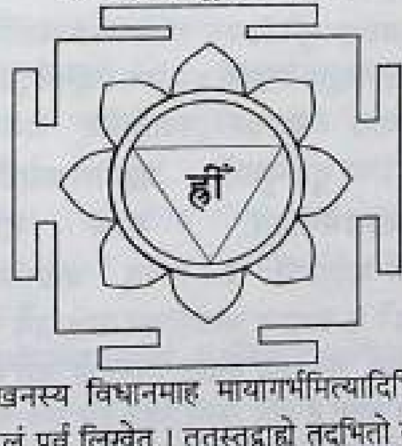

हरि०–यन्त्रराजलेखनस्य विधानमाह मायागर्भमित्यादिभिः । माया ह्रीँ बीजं गर्भे यस्यैवम्भूतं त्रिकोणं मण्डलं पूर्व लिखेत् । ततस्तद्बाह्ये तदभितो वृत्तयुग्मकं वर्त्तुलमण्डलद्वयं लिखेत् । तयोर्वृत्तमण्डलयोर्मध्ये युग्मयुग्मक्रमात् शोडश केसरान् लिखेत् । तद्बाह्ये वृत्त-मण्डलयोर्बहिरष्टदलं पद्मं लिखेत् । तद्बहिः पद्माद्बहिस्तदभितश्चतुर्द्वारसमायुक्तं सुरेखं शोभनरेखायुतं सुमनोहरमतिमनोरमं भूपूरं लिखेत् ॥१७२-१७३॥

स्वार्णे वा राजते ताम्रे कुण्डगोलविलेपिते ।
स्वयम्भुकुसमैर्युते चन्दनागुरुकुङ्कुमैः ।।१७४।।
कुशीदेनाथवा लिप्ते स्वर्णमय्या शलाकया ।
मालूरकण्टकेनापि मूलमन्त्रं समुच्चरन् ।
विलिखेत् यन्त्रराजन्तु देवताभावसिद्धये ।।१७५।।

पद्मा–शक्तिविशेष के पुष्प द्वारा या अन्यान्य शक्ति घटित विशेष पुष्प द्वारा लिप्त, चन्दन, अगरु और कुंकुम के द्वारा या केवल रक्तचन्दन द्वारा सुवर्ण, रजत या ताम्र पात्र में स्वर्णशलाका अथवा बिल्वकण्टक के द्वारा मूलमन्त्र का उच्चारण करते हुए देवताभाव सिद्धि के लिए यन्त्रराज को लिखे ।

हरि०–ननु यन्त्रमिदं कस्मिन्नाधारे केन वा करणेन लेखितव्यं तत्राह स्वार्णे इत्यादि। कुण्डगोलविलेपिते कुण्डैर्गोलैर्वा शक्तिविशेषघटितपुष्पविशेषैर्विलेपिते स्वयम्भुकुसुमैः शक्तिघटितैरेव पुष्पविशेषैर्युक्ते चन्दनागुरुकुङ्कुमैर्वालिप्ते केवलेन कुशीदेन रक्तचन्दनेन वा लिप्ते स्वार्णे सुवर्णनिर्मिते राजते रजतनिर्मिते ताम्रनिर्मिते वा पात्रे स्वर्णमय्या सुवर्णविकारभूतया शलाकया मालूरकण्टकेन बिल्वकण्टकेन वा मूलमन्त्रं समुच्चरन् सन् देवता भावसिद्धये देवताप्रीतिनिष्पत्तये यन्त्रराजं विलिखेत् ।।१७४-१७५।।

अथवोत्कीलरेखाभिः स्फाटिके विद्रुमेऽपि वा ।
वैदुर्ये कारयेत् यन्त्रं कारुकेण सुशिल्पिना ।।१७६।।

पद्मा–अथवा स्फटिक, प्रवाल या वैदूर्यनिर्मित पात्र में श्रेष्ठशिल्पी द्वारा रेखाएँ खुदवा कर यन्त्र का निर्माण कराए ।

हरि०–अथवेति। अथवा सुशिल्पिना स्वकर्मविषयकातिनैपुण्यशालिना कारुकेण शिल्पिना उत्कीलरेखाभिरुत्खानिताभिः रेखाभिः स्फाटिके विद्रुमे वैदुर्ये वा यन्त्रं कारयेत्।।१७६।।

शुभप्रतिष्ठितं कृत्वा स्थापयेद् भवनान्तरे ।
नश्यन्ति दुष्टभूतानि ग्रहरोगभयानि च ।।१७७।।
पुत्रपौत्रसुखैश्वर्यैर्मोदते तस्य मन्दिरम् ।
दाता भर्ता यशस्वी च भवेत् यन्त्रप्रसादतः ।।१७८।।

पद्मा–यन्त्र को खुदवाने के उपरान्त प्राणप्रतिष्ठा करके उसे घर के भीतर स्थापित करें। इसके प्रभाव से दुष्टभूत, ग्रह, रोग तथा भयादि शान्त हो जाते हैं तथा वह घर पुत्र, पौत्र, सुख और ऐश्वर्य से पूर्ण हो जाता है और व्यक्ति स्वयं इस यन्त्र के प्रसाद से, दाता, भरण-पोषण करने वाला तथा यशस्वी हो जाता है ।

हरि०–शुभेत्यादि। शुभप्रतिष्ठितम् शुभा प्रतिष्ठा सञ्जाताऽस्यैवम्भूतं यन्त्रराजं कृत्वा यो भवनान्तरे स्थापयेत् तस्य दुष्टभूतानि नश्यन्तीत्येवमन्वयः।।१७७-१७८।।

एवं यन्त्रं समालिख्य रत्नसिंहासने पुरः ।
संस्थाप्य पीठन्यासोक्तविधिनापीठदेवताः ।
सम्पूज्य कर्णिकामध्ये पूजयेन्मूलदेवताम् ।।१७९।।

पद्मा–इस प्रकार यन्त्र लिखकर अपने सम्मुख रत्नमयसिंहासन पर स्थापित करे। पीठन्यासोक्त विधि से पीठ देवताओं की पूजा कर कर्णिका के मध्य में मूल देवता की पूजा करे ।

हरि०–एवमित्यादि। एवं विधानेन यन्त्रं समालिख्य पुरोऽग्रे रत्नसिंहासने संस्थाप्य च पीठन्यासोक्तविधिना पीठ देवताः सम्पूज्य कर्णिकामध्ये पद्मबीजकोशमध्ये मूलदेवतां पूजयेत् ॥१७९॥

कलशस्थापनं वक्ष्ये चक्रानुष्ठानमेव च ।
येनानुष्ठानमात्रेण देवता सुप्रसीदति ।
मन्त्रसिद्धिर्भवेन्नूनमिच्छासिद्धिः प्रजायते ।।१८०।।

पद्मा–अब मैं कलशस्थापन और चक्रानुष्ठान का वर्णन करता हूँ जिसके अनुष्ठानमात्र से देवता प्रसन्न होते हैं तथा निश्चितरूप से मन्त्रसिद्धि और इच्छासिद्धि होती है।

हरि०–अथ मद्यादिभिः पञ्चतत्त्वैर्महादेव्याः पुजायाविधानं वक्तुमुपक्रमते कलशेत्यादि॥१८०॥

कलां कलां गृहीत्वा तु देवानां विश्वकर्म्मणा ।
निर्मितोऽयं स वै यस्मात् कलशस्तेन कथ्यते ।।१८१।।

पद्मा–विश्वकर्मा द्वारा देवताओं की एक-एक कला ग्रहण करके इसको बनाया गया है इसीलिए इसको कलश कहते हैं ।

हरि०–कलशं निर्वक्ति कलामित्यादिना॥१८१॥

षट्त्रिंशदङ्गुलायामं षोडशाङ्गुलमुच्चकैः ।
चतुरङ्गुलकं कण्ठं मुखं तस्य षडङ्गुलम् ।
पञ्चाङ्गुलमितं मूलं विधानं घटनिर्मितौ ।।१८२।।

पद्मा–यह छत्तीस अंगुल चौड़ा, सोलह अंगुल ऊँचा होता है, चार अंगुल परिमाण इसके कण्ठ का है, मुख का विस्तार छः अंगुल और तल का परिमाण पाँच अंगुल है, घट निर्माण की यही विधि है ।

हरि०–अथ घटनिर्माणविधानमाह षट्त्रिंशदित्यादिना । षट्त्रिंशदङ्गुलायामं षट्त्रिंशङ्गुलयः परिमाणं यस्य स षट्त्रिंशदङ्गुलः एवम्भूतः आयामोविस्तारो यस्य तथाभूतम् । षोडशाङ्गुलमुच्चकैं षोडशाङ्गुलयः परिमाणं यस्यैवम्भूतमुच्च घटं कारयेदिति शेषः। तस्य घटस्य कण्ठं चतुरङ्गुलकं चतुरङ्गुलिपरिमितं मुखं षडङ्गुलं षडङ्गुलिपरिमितं मूलमधोदेशं तु पञ्चाङ्गुलिमितं कारयेत् । घटनिर्मितौ विधानमेतदेव प्रोक्तम् ॥१८२॥

सौवर्णं राजतं ताम्रं कांस्यजं मृत्तिकोद्भवम् ।
पाषाणं काचजं वाऽपि घटयक्षतमव्रणम् ।
कारयेद्देवताप्रीत्यै वित्तशाठ्यं विवर्जयेत् ।।१८३।।

पद्मा–स्वर्ण, रजत, ताम्र, कांस्य, मिट्टी, पाषाण (पत्थर) या कांच का अक्षत तथा छिद्ररहित कलश देवता की प्रीति के लिए बनवाये। इसमें किसी भी प्रकार की कंजूसी न करे।

हरि०–ननु कस्य कस्य वस्तुनः कलश कारयितव्य इत्यपेक्षायामाह सौवर्णमित्यादि। अक्षतम् अभग्नम् । अव्रणम् छिद्रशून्यम् ।।१८३।।

सौवर्णं भोगदं प्रोक्तं राजतं मोक्षदायकम् ।
ताम्रं प्रीतिकरं ज्ञेयं कांस्यजं पुष्टिवर्द्धनम् ।।१८४।।
काचं वश्यकरं प्रोक्तं पाषाणं स्तम्भकर्म्मणि ।
मृण्मयं सर्वकार्येषु सुदृश्यं सुपरिष्कृतम् ।।१८५।।

पद्मा–स्वर्ण से निर्मित कलश भोग प्रदायक कहा गया है, रजत से निर्मित कलश मोक्षदायक, ताम्र से निर्मित कलश प्रीतिकर, कांस्य से निर्मित कलश पुष्टिवर्धक, कांच से निर्मित कलश वशीकारक, पाषाण से निर्मित कलश स्तम्भनकारक तथा मृण्मय (मिट्टी का) कलश सभी कर्मों में प्रशस्त कहा गया है। इन सभी से निर्मित कलश देखने में सुन्दर तथा सुपरिष्कृत होने चाहिए ।

हरि०–सौवर्णं सुवर्णजातं कलशमिति शेषः।।१८४-१८५।।

स्ववामभागे षट्कोणं तन्मध्ये ब्रह्मरन्ध्रकम् ।
तद्बहिर्वृत्तमालिख्य चतुरस्रं ततो बहिः ।।१८६।।

पद्मा–साधक अपनी बायीं ओर षट्कोणमण्डल, उसके मध्य में शून्य तथा षट्कोण के बाहर एक वृत्त तथा उसके बाहर एक चतुष्कोण मण्डल बनायें ।

हरि०–**स्ववामेत्यादि** । स्ववामभागे षट्कोण मण्डलमालिख्य तन्मध्ये षट्कोण-मण्डलमध्ये ब्रह्मरन्ध्रकं शून्यमेकमालिख्य तद्बहिः षट्कोणमण्डलस्य बहिर्वृत्तं मण्डलमालिख्य ततोऽपि बहिः चतुष्कोणं मण्डलमालिखेत् ।।१८६।।

सिन्दूररजसा वाऽपि रक्तचन्दनेन वा ।
निर्माय मण्डलं यत्र यजेदाधारदेवताम् ।
मायामाधारशक्तिञ्च ङेनमोऽन्तां समुद्धरेत् ।।१८७।।

पद्मा–सिन्दूररज या रक्तचन्दन के द्वारा मण्डल का निर्माण कर उसमें **ह्रीं आधारशक्तये नमः** मन्त्र से आधार देवता का पूजन करे ।

हरि०–नन्विदं मण्डलं के द्रव्येण लेखनीयं तत्राह सिन्दूरेत्यादि। तत्रमण्डले। ननु केन मन्त्रेणाऽऽधारदेवतां यजेत्तत्राह मायामिति । पूर्वं मायां ह्रीं बीजमुद्धरेत् ततो ङे-नमोऽन्ता-माधारशक्तिमुद्धरेत् । योजनाया ह्रीं आधारशक्तये नमः इति मन्त्र आधार देवतायजने जातः।।१८७।।

नमसा क्षालिताधारं स्थापयेन्मण्डलोपरि ।
अस्त्रेण क्षालितं कुम्भं तत्राऽऽधारे निवेशयेत् ।।१८८।।

पद्मा-नमः मन्त्र से धोकर आधार मण्डल के ऊपर स्थापित करे। फट् से कुम्भ को धोकर आधार के ऊपर स्थापित करे ।

हरि०-नमसेति । नमसा नम इति मनुना। अस्त्रेण फडिति मन्त्रेण॥१८८॥

क्षकाराद्यैरकान्तैर्वर्णैर्बिन्दुसमायुक्तैः ।
मूलं समुच्चरन् मन्त्री कारणेन प्रपूरयेत् ।।१८९।।

पद्मा-'क्ष' से लेकर 'अ' तक सभी वर्णों को विपरीतक्रम में बिन्दु युक्त करके उच्चारण कर मूलमन्त्र का उच्चारण करते हुए मद्य द्वारा कुम्भ को पूरा करे ।

हरि०-क्षकारेत्यादि। क्षकार आद्यो येषाम् अकारश्चान्त्यो येषान्तैर्विन्दुसमायुतै स्वार-सहितैर्वर्णैः सह मूलं समुच्चरन् क्षं ळं हं सं षं शं वं लं रं यं मं भं बं फं पं नं धं दं थं तं णं ढं डं ठं टं ञं झं जं छं चं ङं घं गं खं कं अः अं औं ओं ऐं एं ॡं ऌं ॠं ऋं ऊं उं ईं इं आं अं ह्रीं श्रीं क्रीं परमेश्वरि स्वाहेति मन्त्रं प्रजपन्मन्त्री साधकः कारणेन मद्येन कलशं प्रपूरयेत्॥१८९॥

आधारकुम्भतीर्थेषु वह्न्यर्कशक्तिमण्डलम् ।
पूर्ववत् पूजयेत् विद्वान् देवीभावपरायणः ।।१९०।।
रक्तचन्दनं सिन्दूरं रक्तमाल्यानुलेपनैः ।
भूषयित्वा तु कलशं पञ्चीकरणमाचरेत् ।।१९१।।

पद्मा-विद्वान् साधक देवीभावपरायण होकर आधार में अग्नि मण्डल, कुम्भ में सूर्यमण्डल का तथा कुम्भ में स्थित मद्य का चन्द्रमण्डल में पूर्ववत् पूजन करे। इसके बाद लालचन्दन, सिन्दूर, लालरंग की माला आदिसे कलशों को विभूषित कर पञ्चीकरण की क्रिया करे ।

हरि०-आधारेति। तीर्थम् मद्यम्। पूर्ववत् विशेषार्घ्यस्य संस्कारे इव॥१९०-१९१॥

फटा दर्भेण सन्ताड्य हूँ बीजेनावगुण्ठयेत् ।
ह्रीं दिव्यदृष्ट्या संवीक्ष्य नमसाऽभ्युक्षणं चरेत् ।।१९२।।
मूलेन गन्धं त्रिर्दद्यात् पञ्चीकरणमीरितम् ।
प्रणम्य कलशं रक्तपुष्पं दत्त्वा विशोधयेत् ।।१९३।।

पद्मा-'फट्' का उच्चारण करते हुए कुश द्वारा कलश पर 'ताड़ना' कर 'हं' का उच्चारण करके अवगुण्ठनमुद्रा द्वारा कलश को अवगुण्ठित करे।। तत्पश्चात् 'ह्रीं' का उच्चारण करते हुए अपलक दृष्टि से कलश को देखकर 'नमः' का उच्चारण करते हुए जल लेकर कलश पर छिड़के। मूल मंत्र से कलश में तीन बार गन्ध (चन्दन) लगाये। इसी को 'पञ्चीकरण' कहते हैं। इस के उपरान्त कलश को प्रणाम कर रक्तपुष्प प्रदान कर मंत्र के द्वारा सुधा को शुद्ध करे ।

हरि०–ननु पञ्चीकरणं किं नाम तत्राह फटेत्यादि। फटामन्त्रेण दर्भेण कुशेन कलशं सन्ताड्य हूमिति वीजेनावगुण्ठनमुद्रयाऽवगुण्ठयेद्वेष्टयेत्। ह्रीं बीजेन दिव्य दृष्ट्या कलशं संवीक्ष्य दृष्ट्वा नमसा मन्त्रेण कलशस्याभ्युखणमाभिषेकं चरेत् कुर्यात्। मूलेन मन्त्रेण कलशे त्रिर्वारत्रयं गन्धं दद्यात्। इदमेव पञ्चीकरणमीरितं कथितम्। विशोधयेत् मद्यमिति शेषः॥१९२-१९३॥

ॐ एकमेव परं ब्रह्म स्थूलसूक्ष्ममयं ध्रुवम्।
कचोद्भवां ब्रह्महत्यां तेन ते नाशयाम्यहम्॥१९४॥

पद्या–ॐ पर ब्रह्म अद्वितीय स्थूल, सूक्ष्म एवं नित्य है। मैं उसके द्वारा कच से उत्पन्न हुई ब्रह्महत्या का नाश करता हूँ।

हरि०–ननु केन-केन मन्त्रेण मद्यं शोधयेदित्यपेक्षायां तच्छोधनमन्त्रानेव क्रमात् आह एकमेवेति! हे सुधे देवि ध्रुवं नित्यं स्थूलसूक्ष्ममयं स्थूलसूक्ष्मस्वरूपं एकमेवाद्वैतमेव यत्परं ब्रह्म अस्ति तेन परब्रह्मणा ते तव कचोद्भवा ब्रह्महत्यामहं नाशयामीत्यन्वयः॥१९४॥

सूर्यमण्डलमध्यस्थे वरुणालयसम्भवे।
अमाबीजमये देवि! शुक्रशापाद्विमुच्यताम्॥१९५॥

पद्या–हे देवि! तुम सूर्यमण्डल के मध्य में स्थित हो, तुम्हारी उत्पत्ति समुद्र के गर्भ से हुई है, तुम अमाबीजमयी हो, तुम शुक्र शाप से मुक्त हो जाओ।

हरि०–**सूर्येत्यादि**। हे वरुणालयसम्भवे वरुणस्यालयो गृहं वरुणालयः समुद्रः तस्मात् सम्भव उत्पत्तिर्यस्याः तथाभुते। अतएव हे अमाबीजमये अमा अमृतमयी नित्याचान्द्री षोडशी कला तद्रूपं यच्चन्द्रमसे बीजं तत्स्वरूपे अतएव हे सूर्यमण्डलमध्यस्थे सूर्यमण्डलाभ्यन्तरस्थायिनि सुधे देवि शुक्रशापात्त्वया विमुच्यतां विमुत्तया भूयताम्॥१९५॥

वेदानां प्रणवो बीजं ब्रह्मानन्दमयं यदि।
तेन सत्येन ते देवि! ब्रह्महत्या व्यपोहतु॥१९६॥
ह्रीं हंसः शुचिसद् वसुरन्तरिक्षसद्धोता वेदिसदतिथिर्दुरोणसत्।
नृसद्वरसदृवसद्व्योमसदब्जा गोजा ऋतजा अद्रिजा ऋतं बृहत्॥१९७॥

पद्या–ब्रह्मानन्दमय प्रणव वेदों का बीज स्वरूप है। हे देवि! उस सत्य द्वारा तुम्हारी ब्रह्महत्या नष्ट हो जाय। इसके बाद **ह्रीं हंसः.....ऋतं बृहत्** मन्त्र का उच्चारण करे। इसका अर्थ-परमहंस प्रकाशमय स्वर्ग में निवास करता है, वसु के रूप में स्वर्ग तथा पृथ्वी के मध्य अन्तरिक्ष में वह भ्रमण करता रहता है। पृथ्वी पर वह वैदिक अग्नि तथा 'होता' के रूप में है। उसकी पूजा अतिथि के रूप में होती है। वह गृहस्थ की अग्नि में, मनुष्य की चेतनता में है तथा सत्यलोक में रहता है। सत्य एवं आकाश में वह स्थित है।

हरि०–**वेदानामिति**। हे देवि सुधे आनन्दमयमानन्दस्वरूपं यद् ब्रह्म तत्स्वरूपं यत् प्रणवरूपं वेदानां बीजं तेन सत्येन प्रणवरूपवेदबीजेन ते तव ब्रह्महत्या व्यपोहतु नश्यतु॥१९६-१९७॥

वारुणेन च बीजेन षड्दीर्घस्वरभाजिना ।
ब्रह्मशापविशब्दान्ते मोचितायै पदं वदेत् ।
सुधादेव्यै नमः पश्चात् सप्तधा ब्रह्मशापनुत् ।।१९८।।

पद्मा–वरुण बीज 'वं' में क्रमपूर्वक छः दीर्घ स्वर लगाकर **'ब्रह्मशाप'** शब्द के पश्चात् **''विमोचितायै''** पद का उच्चारण करे फिर **''सुधादेव्यै नमः''** का उच्चारण करे। इस प्रकार **वाँ वीँ वूँ वैँ वौँ वः ब्रह्मशापविमोचितायै सुधादेव्यै नमः** यह मन्त्र बनता है। इसका सात बार उच्चारण करने से ब्रह्मशाप दूर होता है ।

हरि०–वारुणेनेति। ब्रह्मशापविशब्दस्यान्ते केचितायै इति पदं वदेत् । पश्चात् सुधादेव्यै नमः इति वदेत् । योजनया ब्रह्मशापविमोचितायै सुधादेव्यै नमः इति मन्त्रो जातः। अयं मन्त्रः षड्दीर्घस्वरभाजिना वारुणेन बीजेन संयोज्य यथा वाँ वीँ वूँ, वैँ, वौँ, वंः ब्रह्मशापविमोचितायै सुधादेव्यै नमः इति सप्तधा सप्तवारं पठितोऽयं मन्त्रो ब्रह्मशापनुत् ब्रह्मशापमोचको भवति।।१९८।।

अङ्कुशं दीर्घषट्केन युतं श्रीमायया युतम् ।
सुधा पश्चाद् कृष्ण शापं मोचयेति पदं ततः ।
अमृतं स्रावयद्वन्द्वं द्विठान्तो मनुरीरितः ।।१९९।।

पद्मा–अंकुश-क्रों में छः दीर्घ स्वर लगाकर श्रीबीज ''श्रीं'' तथा मायाबीज ह्रीं को जोड़े। इसके बाद ''सुधा'' शब्द इसके उपरान्त कृष्णशापं मोचय'' का उच्चारण करे, फिर **'अमृतं स्रावय स्रावय स्वाहा'** का उच्चारण करे ।

विशेष–इस प्रकार **क्रां क्रीं क्रूं क्रैं क्रौं क्रः श्रीं ह्रीं सुधा कृष्णशापं मोचयामृतं स्रावय स्रावय स्वाहा''** मन्त्र बनता है। इसका दूसरा मन्त्र इस प्रकार है-ॐ **ह्रीं श्रीं क्रां क्रीं क्रूं क्रैं क्रौं क्रः कृष्णाशापं विमोचय अमृतं स्रावय स्रावय** इसका दश बार जप करे। अन्य तंत्रों में शुक्रशापमोचन मंत्र इस प्रकार कहा गया है-ॐ **शाँ शीँ शूँ शैँ शौँ शौँ शंँ शः शुक्रशापात् विमोचितायै सुधादेव्यै नमः ।।**

हरि०–अङ्कुशमिति। पूर्व दीर्घषट्केन युतमङ्कुशं क्रों वदेत् । पश्चात् श्रीमायया युतं श्रीं ह्रीं बीजयुक्तं सुधेति पदं वदेत् । पश्चात् कृष्ण शापमिति मोचयेति च पदं वदेत् । ततोऽमृतं वदेत् । तत स्रावयद्वन्द्वं वदेत् । योजनया क्रां क्रीं क्रूं क्रैं क्रौं क्रंः श्रीं ह्रीं सुधाकृष्णशापं मोचयामृतं स्रावय स्रावयेति मन्त्रो जातः। अयं मनुर्द्विठान्तः स्वाहान्त ईरितः कथितः।।१९९।।

एवं शापान्मोचयित्वा यजेत्तत्र समाहितः ।
आनन्दभैरवं देवीमानन्दभैरवीं तथा ।।२००।।

पद्मा–इस प्रकार शापमोचन कर एकाग्रचित्त से आनन्दभैरव तथा आनन्दभैरवी की पूजा करे ।

हरि०–एवमिति। एवमुक्तक्रमेण पूर्वोक्तैः षड्भिर्मन्त्रैर्ब्रह्मशापान्मोचयित्वा तत्र मध्ये आनन्दभैरवं देवं तथाऽऽनन्दभैरवीं देवीं समाहितः सावधानः सन् यजेत् ।।२००।।

हसक्षमलशब्दान्ते वरयूँ मिलितं वदेत् ।
आनन्दभैरवं ङेऽन्तं वषडन्तो मनुर्मतः ।।२०१।।

पद्मा–''हसक्षमल'' शब्द के बाद ''वरयूँ'' के साथ मिलाकर 'आनन्दभैरवाय' कहे तथा अन्त में वषट् रहेगा। यह आनन्दभैरव का मन्त्र है ।

हरि०–उभयोर्यजनस्य मन्त्रमाह द्वाभ्याम् हसेति। हसक्षमलशब्दस्यान्ते मिलितं वरयूमिति पदं वदेत् । ततो ङेऽन्तमानन्दभैरवं वदेत् । योजनया हसखमलवरयूँ आननदभैरवायेति मनुर्जातः। अयं मनुर्वषडन्तो वषट्शब्दान्तो मतः।।२०१।।

अस्याऽऽस्यं विपरीतञ्च श्रवणे वामलोचना ।
सुधादेव्यै वौषडन्तो मनुरस्याः प्रपूजने ।।२०२।।

पद्मा–आनन्द भैरवी की पूजा के समय **'टसक्षमलवरयूं'** इस मन्त्र के आस्य अर्थात् मुख के दो वर्णों का विपरीत अर्थात् **सह** पढ़े। श्रवण 'उ' के स्थान पर **वामलोचना (ई)** का पाठ करे। इसके उपरान्त **सुधादेव्यै वौषट्** पदों का प्रयोग करे ।

हरि०–अस्येत्यादि। अस्य हसक्षमलवरभूमित्यस्याऽऽस्यं मुखं विपरीतं पठनीयं श्रवणे ऊकारस्थाने वामलोचनमीकारः पठनीयः। ततः सुधादेव्यै इति पठनीयम् योजनया सहक्षमलवरयूँ आनन्दभैरव्यै सुधादेव्यै इति मनुर्जातः । अस्या आनन्दभैरव्याः प्रपूजने वौषडन्तो वौषट्शब्दान्तोऽयमेव मनुर्मतः। ध्यानं तूभयोऽग्रे वक्ष्यति।।२०२।।

सामरस्यां तयोस्तत्र ध्यात्वा तदमृतप्लुतम् ।
द्रव्यं विभाव्य तस्योर्द्धवे मूलं द्वादशधा जपेत् ।।२०३।।

पद्मा–इसके पश्चात् कलश में उक्त दोनों देवी देवता का सामरस्य (ऐक्य) का ध्यान कर यह भावना करे कि अमृत में सुरा संसिक्त हो गयी है तदुपरान्त उसमें बारह बार मूलमन्त्र का जप करे ।

आनन्दभैरव तथा आनन्दभैरवी का ध्यान अन्य तांत्रिक ग्रन्थों में इस प्रकार कहा गया है–

सूर्यकोटिप्रतीकाशं चन्द्रकोटिसुशीतलम् ।
अष्टादशभुजं देवं पञ्चवक्त्रं त्रिलोचनम् ।
अमृतार्णवमध्यस्थं ब्रह्मपद्मोपरिस्थितम् ।
वृषारूढं नीलकण्ठं सर्वाभरणभूषितम् ।
कपालखट्वाङ्गधरं घण्टाडमरुवादिनम् ।
पाशाङ्कुशधरं देवं गदामुसलधारिणम् ।
खड्गखेटकपट्टीशमुद्गरं शूलदण्डधृक् ।
विचित्रं खेटकं मुण्डं वरदाभयपाणिनम् ।
लोहितं देवदेवेशं भावयेत्साधकोत्तमः ।

भावयेच्च सुधां देवीं चन्द्रकोट्ययुतप्रभाम् ॥
हिमकुन्देन्दुधवलां पञ्चवक्त्रां त्रिलोचनाम् ।
अष्टादशभुजैर्युक्तां सर्वानन्दकरोद्यताम् ।
प्रहसन्तीं विशालाक्षीं देवदेवेश सम्मुखीम् ॥ इति॥

हरि०-सामरस्यमिति। तत्र मद्ये तयोरानन्दभैरव्यानन्दभैरवयोः सम्मुखीम् । इति ध्यात्वा तदमृतप्लुतं तत्सामरस्यरूपामृतप्लुतं द्रव्यं मद्य विभाव्य विचिन्त्य तस्य मद्यस्योर्द्धं द्वादशधा द्वादशवारं मूलं मन्त्रं जपेत् ॥२०३॥

मूलेन देवताबुद्ध्या दत्त्वा पुष्पाञ्जलिं ततः ।
दर्शयेद्धूपदीपौ च घण्टावादनपूर्वकम् ॥२०४॥
इत्थं तीर्थस्य संस्कारः सर्वदा देवपूजने ।
व्रते होमे विवाहे च तथैवोत्सकर्मणि ॥२०५॥

पद्मा-फिर देवताबुद्धि से उस मद्य के ऊपर मूलमन्त्र के द्वारा तीन बार पुष्पाञ्जलि प्रदान करे, फिर घण्टा बजाकर धूप दिखाए। देवपूजन, व्रत, होम, विवाह तथा अन्य उत्सवों में भी इसी प्रकार 'तीर्थ (मद्य) संस्कार करे ।

हरि०-मूलेनेति। ततो देवताबुद्ध्या मूलेन मन्त्रेण मद्ये पुष्पाञ्जलिं दत्त्वा घण्टावादनपूर्वकं तस्योपरि धूपदीपौ च दर्शयेत् । तीर्थस्य मद्यस्य ॥२०४-२०५॥

मांसमानीय पुरतस्त्रिकोणमण्डलोपरि ।
फटाऽभुक्ष्य वायुवह्निबीजाभ्यां मन्त्रयेत्त्रिधा ॥२०६॥

पद्मा-मांस लाकर उसे सम्मुख स्थित त्रिकोणमण्डल के ऊपर के भाग में स्थापित करे। '**फट्**' मन्त्र से अभ्युक्षित करके वायु बीज '**यँ**' तथा वह्निबीज '**रँ**' से तीन बार अभिमन्त्रित करे ।

हरि०-अथ मासंसंस्कारविधिमाह त्रिभिः मांसमिति। मांसमानीय पुरतोऽग्रे त्रिकोण-मण्डलोपरि संस्थाप्य फटा मन्त्रेणाऽभ्युक्ष्याऽभ्युक्ष्याऽभिषिच्य वायुवह्निबीजाभ्यां यँ रँ बीजाभ्यां त्रिधा त्रिवारं मन्त्रयेत् ॥२०६॥

कवचेनावगुण्ठ्याथ संरक्षेच्चास्त्रमन्त्रतः ।
धेन्वा वममृतीकृत्य मन्त्रमेतमुदीरयेत् ॥२०७॥'

पद्मा-कवच 'हुं' का पाठ करते हुए अवगुण्ठ्य मुद्रा द्वारा मांस को अभिमन्त्रित कर अस्त्र (फट्) से संरक्षण करें। फिर वँ'' मन्त्र का उच्चारण कर धेनु मुद्रा में अमृतीकरण करके इस मन्त्र का पाठ करे ।

हरि०-कवचेनेति। ततः कवचेन हुं बीजेन मांसमवगुण्ठ्यावगुण्ठनमुद्रयावेष्टयित्वा अस्त्रमन्त्रतः फट्मन्त्रेण संरक्षेत् । धेन्वा मुद्रया वँ बीजेन मांसममृतीकृत्य एतमितोऽनन्तरमेव वक्ष्यमाणं मन्त्रमुदीरयेदुच्चरेत् ॥२०७॥

विष्णोर्वक्षसि या देवी या देवी शङ्करस्य च ।
मांस मे पवित्रीकुरु कुरु तद्विष्णोः परमं पदम् ।।२०८।।

पद्या–जो देवी भगवान् विष्णु एवं भगवान शङ्कर के वक्षस्थल पर विराजमान है वे मेरे इस मांस को पवित्र करें तथा मेरे सम्बन्ध में विष्णु के परम पद निश्चित करें।

हरि०–**तमेव मन्त्रमाह विष्णोरिति।** विष्णोर्वक्षसि या देवी तिष्ठति या देवी शङ्करस्य च वक्षसि तिष्ठति सा त्वं मे मम मांसं पवित्रीकुरु। एवं शोधितमांससमर्पणात् मम तत्प्रधाने विष्णो पदं कुरु ।।२०८।।

इत्थं मीनं समानीय प्रोक्तमन्त्रेण संस्कृतम् ।
मन्त्रेणाऽनेन मतिमांस्तं मीनमभिमन्त्रयेत् ।।२०९।।

पद्या–बुद्धिमान साधक मत्स्य (मछली) को लाकर मांसशोधन मन्त्रों से शुद्ध कर इस मन्त्र से मत्स्य को अभिमंत्रित करे।

हरि०–अथ मीनसंस्कारविधिमाह इत्थमित्यादिना। प्रोक्तमन्त्रेण मांसशोधने कथितेन मन्त्रेण। अनेनान्तरोक्तेन।।२०९।।

ॐ त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पुष्टिवर्धनम् ।
उर्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय माऽमृतात् ।।२१०।।

पद्या–हम उस त्र्यम्बक (शिव) की पूजा करते हैं जो पुष्टिकारक तथा सुगन्धित है। उर्वारुक का फल जैसे स्वयं गिर जाता है, उसी प्रकार हम समस्त बन्धनों से छूट जायें तथा अन्त में मुक्त होकर परमात्मा में लीन हो जाएँ।

हरि०–तमेव मन्त्रमाह त्र्यम्बकं यजामह इति ।।२१०।।

तथैव मुद्रामादाय शोधयेदमुना प्रिये ।
ओं तद्विष्णोः परमं पदं सदा पश्यन्ति सूरयः ।
दिवीव चक्षुराततम् ।।२११।।
ओं तद्विप्रासो विपण्यवो जागृवांसः समिन्धते ।।
विष्णोर्यात् परमं पदम् ।।२१२।।

पद्या–हे प्रिये! फिर मुद्रा को लाकर उसी प्रकार शोधन कर श्लोक मन्त्रों से अभिमन्त्रित करे। अर्थात् जैसे सूर्य को देखते हैं उसी प्रकार विष्णु का परमपद सदैव दिखाई देता है, जो अपने मन को वश में रखता है तथा जागता रहता है वह विष्णु के परम पद का दर्शन करता है।

हरि०–मुद्राशोधनमन्त्रमेवाह तद्विष्णोरिति। सूरयो विद्वांसः परमत्युत्कृष्टं तत् अविदुषाम-प्रत्यक्षं विष्णोः पदं सदा पश्यन्ति। अत्र दृष्टान्तमाह दिवीत्यादि। आततं विस्तृतं चक्षुर्दिवि स्थितमन्धानामगोचरं सूर्यमिव ।।२११-२१२।।

अथवा सर्वतत्त्वानि मूलेनैव विशोधयेत् ।
मूले तु श्रद्दधानो यः किं तस्य दलशाखया ।।२१३।।

केवलं मूलमन्त्रेण यद्द्रव्यं शोधितं भवेत् ।
तदेव देवताप्रीत्यै सुप्रशस्तं मयोच्यते ।।२१४।।
यथा कालस्य संक्षेपात् साधकानवकाशतः ।
सर्वं मूलेन संशोध्य महादेव्यै निवेदयेत् ।।२१५।।

पद्मा–अथवा मूल मन्त्र के द्वारा ही सभी तत्त्वों का शोधन करे। जिसकी मूलमन्त्र में श्रद्धा है उसे शाखा पल्लव से क्या प्रयोजन है ? मैं कहता हूँ कि केवल मूलमन्त्र से जो द्रव्य शोधित है, वही देवता की प्रसन्नता के लिए सर्वाधिक प्रशस्त है। जिस समय साधक को अवसर न हो, तब समस्त द्रव्यों को मूलमन्त्र से ही शोधन करके महादेवी को प्रदान करे ।

हरि०–अथवेति। सर्वतत्त्वानि मद्यादीनि॥२१३-२१५॥

न चात्र प्रत्यवायोऽस्ति नाङ्गवैगुण्यदूषणम् ।
सत्यं सत्यं पुनः सत्यमिति शङ्करशासनम् ।।२१६।।

इति श्रीमहानिर्वाणतन्त्रे सर्वतन्त्रोत्तमोत्तमे सर्वधर्म्मनिर्णयसारे श्रीमदाद्या-सदाशिवसंवादे मन्त्रोद्धारकलशस्थापन-तत्त्वसंस्कारो नाम पञ्चमोल्लासः।।५।।

पद्मा–इससे किसी प्रकार का प्रत्यवाय या अंग की हानि नहीं होती है। यह सत्य है, सत्य है, सत्य है, यही भगवान शिव की आज्ञा है॥२१६॥

इस प्रकार श्रीमहानिर्वाणतन्त्र के मन्त्रोद्धारकलशस्थापन तत्त्वसंस्कार नामक पाँचवे पटल की अजय कुमार उत्तम रचित 'पद्मा' हिन्दी व्याख्या पूर्ण हुई।।

हरि०–नेति। अत्र मूलमन्त्रेणैव शोधितानां सर्वतत्त्वानां महादेव्यै समर्पणे॥२१६॥

इति श्रीमहानिर्वाणतन्त्रटीकायां पञ्चमोल्लासः।।५।।

षष्ठोल्लासः

श्री देव्युवाच

यत्त्वया कथितं पञ्चतत्त्वं पूजादिकर्म्मणि ।
विशिष्य कथ्यतां नाथ! यदि तेऽस्ति कृपामयि।।१।।

पद्या–श्रीदेवी ने पूछा-हे नाथ! आपने पूजादि कर्म के समय मुझसे 'पञ्चतत्त्व' कहा है। यदि आपकी मुझ पर कृपा हो तो उन्हें विशेष रूप से कहिए ।

हरि०–ॐ नमो ब्रह्मणे ।

मद्यादि पञ्चतत्त्वं विशेषत: श्रोतुमिच्छन्ती श्रीदेव्युवाच यत्त्वयेत्यादि॥१॥

श्री सदाशिव उवाच

गौड़ी पैष्टी तथा माध्वी त्रिविधा चोत्तमा सुरा ।
सैव नानाविधा प्रोक्ता तालखर्जूरसम्भवा ।।२।।
तथा देशविभेदेन नानाद्रव्य विभेदत: ।
बहुधेयं समाख्याता प्रशस्ता देवतार्चने ।।३।।

पद्या–श्रीसदाशिव ने कहा-गौड़ी, पैष्टी तथा माध्वी यह उत्तम सुरा के तीन भेद हैं। यह सुरा ताल तथा खूर्जर से बनने के कारण अनेक प्रकार की कही गयी है। देशभेद से तथा अनेक द्रव्यभेद से सुरा अनेक प्रकार की होती है। यह सभी प्रकार की सुरा देवी के पूजन के लिए प्रशस्त है ।

हरि०–देव्यैव प्रार्थित: सन् श्रीसदाशिव उवाच गौड़ीत्यादि। गोड़ी गुड़ोद्भवा। पैष्टी पिष्टोद्भवा । माध्वी मधूकपुष्पोद्भवा। इति त्रिविधा त्रि:प्रकारा सुरा उत्तमा श्रेष्ठा प्रोक्ता। सैव सुरैव। सुराया नानाविधत्वमेव दर्शयन्नाह तालखूर्जूरित्यादि। इयं सुरा। ॥२-३॥

येन केन समुत्पन्ना येन केनाऽऽहृताऽपि वा ।
नात्र जाति विभेदोऽस्ति शोधिता सर्वसिद्धिदा ।।४।।

पद्या–यह सुरा जिस किसी भी रूप में उत्पन्न हो या जिस किसी भी व्यक्ति द्वारा लाई गयी हो, इसमें किसी भी प्रकार का जातिभेद नहीं है। शोधन करने के उपरान्त प्रयोग करने पर सभी प्रकार की सिद्धियाँ प्रदान करती है ।

हरि०–येनेति। आहृता आनीता। अत्र सुराविषये ।।४।।

मांसन्तु त्रिविधं प्रोक्तं जलभूचरखेचरम् ।
यस्मात् तस्मात् समानीतं येन तेन विघातितम् ।
तत्सर्वं देवताप्रीत्यै भवेदेव न संशयः ।।५।।

पद्या–मांस तीन प्रकार का कहा गया है-जलचर (मछली, कछुआ आदि का) भूचर

(हिरण, बकरा आदि) खेचर (तीतर, कबूतरादि का)। यह तीनों प्रकार मांस चाहे जिस स्थान से, चाहे जिस प्रकार से, चाहे जो कोई पुरुष लाया हो, वह सभी देवता के लिए प्रसन्नताकारक होगा इसमें संशय नहीं है।

हरि०–**मांसस्य त्रिविधत्वमेव दर्शयति जलेत्यादिना**।जलचरं कूर्मादिमांसम्। भूचरं छागादिमांसम्। खेचरं तित्तिरिहारीतादिमांसम्। तत् सर्वम् मांसम् ॥५॥

साधकेच्छा बलवती देये वस्तुनि दैवते।
यद्यदात्मप्रियं द्रव्यं तत्तदिष्टाय कल्पयेत् ॥६॥

पद्मा–साधक की इच्छा जिस वस्तु को देवता को देने में अधिक हो, वही प्रदान करे। जो वस्तु या द्रव्य साधक को प्रिय हो, उसे वही द्रव्य या वस्तु प्रदान करे।

हरि०–कल्पयेत् समर्पयेत् ॥६॥

बलिदानविधौ देवि ! विहितः पुरुषः पशुः।
स्त्रीपशुर्न च हन्तव्यस्तत्र शाम्भवशासनात् ॥७॥

पद्मा–हे देवि! बलिदान विधि में पुरुष पशु ही प्रशस्त कहा गया है। भगवान शिव की आज्ञा है कि स्त्रीपशु का बलिदान न करे।

हरि०–**बलिदानेति**। पुरुषः पुंस्त्वावच्छिन्नः। तत्र बलिदानविधौ ॥७॥

उत्तमास्त्रिविधा मत्स्याः शालपाठीनरोहिताः।
मध्यमाः कण्टकैर्हीना अधमा बहुकण्टकाः।
तेऽपि देव्यै प्रदातव्या यदि सुष्ठु विभर्जिताः ॥८॥

पद्मा–तीन प्रकार की मत्स्य उत्तम कही गयी हैं-शाल, पाठीन (पाढ़िन) तथा रोहित (रोहू)। जो कण्टकहीन हों वे मध्यम तथा बहुत कण्टकवाली (काँटेवाली) हो, वे अधम हैं। अधिक काँटेवाली मछली को भी भून कर देवी को प्रदान कर सकते हैं।

हरि०–**उत्तमा इति**। तेऽति बहुकण्टका अपि मत्स्याः॥८॥

मुद्राऽपि त्रिविधा प्रोक्ता उत्तमादिविभेदतः।
चन्द्रबिम्बनिभं शुभ्रं शालितण्डुलसम्भवम्।
यवगोधूमजं वाऽपि घृतपक्वं मनोरमम् ॥९॥
मुद्रेयमुत्तमा मध्या भ्रष्टधान्यादिसम्भवा।
भर्जितान्यन्यबीजानि अधमा परिकीर्तिता ॥१०॥

पद्मा–उत्तम, मध्यम एवं अधम के भेद से मुद्रा भी तीन प्रकार की कही गयी है। जो चन्द्रबिम्ब के समान शुभ्र, जो शालितण्डुल से निर्मित अथवा गेहूँ के द्वारा बनी है तथा जो घी में पकी है और मनोरम है वही मुद्रा उत्तम है। जो भ्रष्टधान्यादि से बनी हो, वह मुद्रा अधम है। जो किसी प्रकार की वनस्पति या शाक द्वारा बनी हो वह मुद्रा अधम कही गयी है।

हरि०–**मुद्रेति**। चन्द्रबिम्बनिभम् चन्द्रमण्डलसदृशम् शुभ्रम् श्वेतम् शालितण्डुलसम्भवम् शष्कुल्यादि। भ्रष्टधान्यादिसम्भवा लाजादि॥९-१०॥

मांस मीनश्च मुद्रा च फलमूलानि यानि च ।
सुधादाने देवतायै संज्ञैषां शुद्धिरीरिता ।।११।।

पद्मा–मांस, मत्स्य, मुद्रा, फलमूलादि देवी को सुधा (सुरा) समर्पित करते हुए जो प्रदान किया जाता है उस सबको 'शुद्धि' कहते हैं ।

हरि०–मांसमित्यादि। देवतायै सुधादाने सुरासमर्पणे एषां मांसादीनां शुद्धिरिति संज्ञाईरिता कथिता ।।११।।

बिना शुद्ध्या हेतुदानं पूजनं तर्पणं तथा ।
निष्फलं जायते देवि देवता न प्रसीदति ।।१२।।

पद्मा–हे देवि! बिना शुद्धि के देवी को सुरा प्रदान करके पूजन तर्पण करने से सभी कर्म निष्फल हो जाते हैं तथा देवता भी प्रसन्न नहीं होते हैं ।

हरि०–मांसादीनां शुद्धिसंज्ञाविधाने प्रयोजनं दर्शयन्नाह बिना शुद्धयेत्यादि बिना शुद्धया मांसादिकं बिना हेतुदानम् सुरासमर्पणम् ।।१२।।

शुद्धिं बिना मद्यपानं केवलं विषभक्षणम् ।
चिररोगी भवेन्मन्त्री स्वल्पायुर्म्रियतेऽचिरात् ।।१३।।

पद्मा–शुद्धि के बिना मद्यपान केवल मात्र विषपान के समान है। शुद्धि के बिना सुरापान करने से साधक सदा रोगी रहता है तथा अल्पायु होकर शीघ्र ही कालकवलित हो जाता है।

हरि०–शुद्धिमिति। शुद्धिम् मांसादिकम् । अचिरात् अत्यल्पमेव कालमतीत्य।।१३।।

शेषतत्त्वं महेशानि ! निर्वीर्ये प्रबले कलौ ।
स्वकीया केवला ज्ञेया सर्वदोषविवर्जिता ।।१४।।

पद्मा–हे महेशानि ! निर्वीर्य कलियुग के प्रबल होने पर शेषतत्त्व मैथुन केवल सभी दोषों से रहित अपनी पत्नी से ही ज्ञात होगा ।

हरि०–शेषतत्त्वमिति। शेषतत्त्वम् निर्वीर्ये निस्तेजसि। स्वकीया आत्मीय शक्तिः।।१४।।

अथवाऽत्र स्वयम्भ्वादि कुसुमं प्राणवल्लभे !
कथितं तत्प्रतिनिधौ कुसीदं परिकीर्तितम् ।।१५।।

पद्मा–हे प्राणवल्लभे ! अथवा मैंने जो स्वयम्भू कुसुम का वर्णन किया, उसके प्रतिनिधि के रूप में रक्तचन्दन को कहा है ।

हरि०–अथवेत्यादि। अत्र शेष तत्त्वविधौ। तत्प्रतिनिधौ स्वयम्भवादि कुसुम प्रतिनिधौ। कुसीदम् रक्तचन्दनम् ।।१५।।

अशोधितानि तत्त्वानि पत्रपुष्पफलानि च ।
नैव दद्यान्महादेव्यै दत्त्वा वै नारकी भवेत् ।।१६।।

पद्मा–साधक महादेवी को अशुद्ध पञ्चमाकार, पत्र, पुष्प, फल आदि न प्रदान करें अशुद्ध मद्य, मांस तथा पत्र, पुष्प फल प्रदान करने वाला नरकगामी होता है ।

हरि०–अशोधितानि सुरामांसादीनि महादेव्यै ददतः साधकस्य नरकगामित्वाह अशोधितानीत्यादिना ॥१६॥

श्रीपात्रस्थापनं कुर्यात् स्वीयया गुणशीलया ।
अभिसिञ्चेत् कारणेन सामान्यार्घ्योदकेन वा ॥१७॥

पद्म–अपनी गुणशीला पत्नी से श्रीपात्र की स्थापना कराये तथा पत्नी को मद्य या सामान्यार्घ्य के जल से अभिषिक्त करे ।

हरि०–**श्रीपात्रेत्यादि**। स्वीयया शक्त्या सह। अभिषिञ्चेत् स्वीयां शक्तिमिति शेषः। कारणेन सुरया ॥१७॥

आदौ बालां समुच्चार्य त्रिपुरायै ततो वदेत् ।
नमः शब्दावसाने च इमां शक्तिमुदीरयेत् ॥१८॥
पवित्रीकुरुशब्दान्ते मम शक्तिं कुरु द्विठः ॥१९॥

पद्म–सर्वप्रथम बाला **ऐं क्लीं सौः** का उच्चारण करे फिर **त्रिपुरायै** का उच्चारण करे, इसके पश्चात् **नमः** कहे। तब **इमां शक्ति** कहकर **पवित्री कुरु** इस शब्द के बाद **मम शक्तिं कुरु स्वाहा** कहे। इस प्रकार **ऐं क्लीं सौः त्रिपुरायै नमः इमां शक्ति पवित्री कुरु स्वाहा**। यह अभिषेक मन्त्र है ।

हरि०–ननु केन मन्त्रेण स्वीया शक्तिरभिषेक्तव्येत्या काङ्क्षायां तदभिषेकमन्त्रमाह आदावित्यादिना सार्द्धेन । आदौ बालाम् ऐं क्लीं सौरिति समुच्चार्य ततस्त्रिपुरायै इति वदेत्। ततस्तदन्ते पठितस्य नमः शब्दस्यावसानेऽन्ते इमां शक्तिमुदीरयेदुच्चरेत् । तदन्ते च पठितस्य पवित्री कुरुशब्दस्यान्ते मम शक्तिं कुरु इति वदेत् । ततो द्विठः स्वाहेति वदेत् । योजनया ऐं क्लीं सौः त्रिपुरायै नमः इमां शक्तिं पवित्रीकुरु मम शक्तिं कुरु स्वाहेति स्वीयाभिषेकेमन्त्रो जातः॥१८-१९॥

अदीक्षिता यदा नारी कर्णे मायां समुच्चरेत् ।
शक्तयोऽन्याः पूजनीयाः नाऽर्ह्यास्ताडनकर्म्मणि ॥२०॥

पद्म–यदि नारी अदीक्षिता हो तो उसके कान में माया बीज **ह्रीं** का उच्चारण करे। मैथुनतत्त्व को पूर्ण करने के लिए अन्य जो परकीया शक्तियाँ हैं उनका भी पूजन करे ।

हरि०–**अदीक्षितेति**। मायाम् ह्रीं बीजम् । अन्याः तत्रोपविष्टा स्वीयाभिन्नाः ताडनकर्माणि मैथुनकर्मणि॥२०॥

अथात्मयन्त्रयोर्मध्ये मायागर्भं त्रिकोणकम् ।
वृत्तं षट्कोणमालिख्य चतुरस्रं लिखेद्बहिः ॥२१॥

पद्म–इसके पश्चात् अपने पहले कहे यन्त्र के मध्य में एक त्रिकोण मण्डल बनाकर उसके मध्य में मायाबीज **ह्रीं** लिखे। इसके त्रिकोणमण्डल के बाहर एक वृत्त तथा उसके बाहर एक षट्कोण मण्डल लिखकर उसके बाहर चतुष्कोण मण्डल ।

विशेषार्घ्य (श्री पात्र) स्थापन-यन्त्र

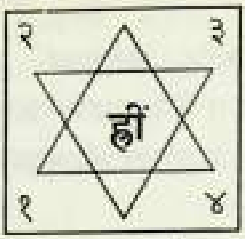

हरि०-अथेत्यादि। अथानन्तरमात्मयन्त्रयोरात्यन्ते यन्त्रराजस्य च मध्ये मायागर्भं माया ह्रीं बीजं गर्भे यस्यैवम्भूतं त्रिकोणकं तद्बहिर्वत्त तद्बहिश्च षट्कोणं मण्डलमालिख्य ततोऽपि बहिश्चतुरस्रं चतुष्कोणं मण्डलं लिखेत् ॥२१॥

अस्रकोणे पूर्णशैलमुड्डीयान्तथैव च ।
जालन्धरं कामरूपं सचतुर्थीनमोऽन्तकम् ।
निजनामादिबीजाढ्यं पूजयेत् साधकोत्तमः ॥२२॥

पद्मा-इसके उपरान्त श्रेष्ठसाधक चतुष्कोणमण्डल के चार कोणों में **पं पूर्णशैलाय पीठाय नमः, उं उड्डीयानाय पीठाय नमः, जां जालन्धराय पीठाय नमः, कां कामरूपाय पीठाय नमः** से क्रमपूर्वक पूर्णशैल, उड्डीयान, जालन्धर तथा कामरूप पीठों का पूजन करें।

हरि०-अस्रकोणे इति। ततो निजनामादिबीजाढ्यमात्मनामसम्बन्ध्यादिमाक्षररूपबीजसंयुक्तं सचतुर्थीनमोऽन्तकं सचतुर्थी चतुर्थीसहितं नमोऽन्तकं नमोऽन्ते यस्य तथाभूतं पूर्णशैलम् उड्डीयानं जालन्धरं वामरूपं कामरूपं चास्रकोणे चतुष्कोणे मण्डलस्य चतुर्षुकोणेषु साधकोत्तमः पूजयेत्। पूं पूर्णशैलाय पीठाय नमः इत्यनेन प्रथम कोणे पूर्णशैलम्। ऊँ उड्डीयानाय पीठाय नमः इत्यनेन द्वितीयकोणे उड्डीयानम्। जां जालन्धराय पीठाय नमः इत्यनेन तृतीयकोणे जालन्धरम्। कां कामरूपाय पीठाय नमः इत्यनेन चतुर्थकोणे कामरूपं पूजयेदित्यर्थः॥२२॥

षट्कोणेषु षडङ्गानि मूलेनैव त्रिकोणकम् ।
मायामाधारशक्तिञ्च नमोऽन्तेन प्रपूजयेत् ॥२३॥

पद्मा-इसके बाद षट्कोणमण्डल के छः कोणो में **ह्रां नमः, ह्रीं नमः, ह्रूं नमः, ह्रैं नमः, ह्रौं नमः, ह्रः नमः** इन मन्त्रों के द्वारा षट्कोण के अधिष्ठातृ देवताओं की पूजा करें। त्रिकोणमण्डल में ह्रीं **आधारशक्त्यै नमः** से आधार देवता की पूजा करे।

हरि०-षट्कोणेष्विति। ततः षट्कोणमण्डलस्य षट्कोणेषु ह्रां नमः ह्रीं नमः ह्रूं नमः ह्रैं नमः, ह्रौं नमः, ह्रः नमः इति मन्त्रै षडङ्गानि षट्कोणाधिष्ठातृदैवतानि प्रपूजयेत्। मायामित्यादि। पूर्व माया ह्रीं बीजं ततो नमोऽन्तेन नमसाऽन्तेन सहाधारशक्तिञ्च वदेत्। योजनया ह्रीं आधारशक्तये नम इति मन्त्रो जातः। अनेन मन्त्रेण मण्डले आधारदेवतां पूजयेत्॥२३॥

नमसा क्षलिताधारं संस्थाप्य तत्र पूर्ववत् ।
वृत्तोपरि यजेद्वह्नेः कलाः स्व स्वादिमाक्षरैः ।।२४।।
धूम्राऽर्चिर्ज्वलिनी सूक्ष्मा ज्वालिनी विष्फुलिङ्गिनी ।
सुश्रीः सुरूपा कपिला हव्यकव्यवहा तथा ।।२५।।
सचतुर्थीनमोऽन्तेन पूज्या वह्नेः कला दश ।।२६।।

पद्मा–इसके उपरान्त नमः से प्रक्षालित आधार को पूर्ववत् उस स्थान पर स्थापित कर उसमें आदि अक्षर के उच्चारण सहित अग्नि की दश कलाओं का पूजन करे। जैसे-**धूं धूम्रायै नमः, अं अर्चिषे नमः ज्वं ज्वलिन्यै नमः, सं सूक्ष्मायै नमः, ज्वां ज्वालिन्यै नमः, विं विस्फुलितङ्गिन्यै नमः, सं सुश्रियै नमः, सुं सुरूपायै नमः, कं कपिलायै नमः, हं हव्यकव्यवहायै नमः।**

हरि०–नमसेति। ततो नमसा नमोमन्त्रेण क्षालितमाधारं पूर्ववत् कलशस्थापने इव तत्र मण्डले संस्थाप्य वृत्तोपरि वर्तुलमण्डलोपरि संस्थापिताधारे वह्नेः कलाः यजेत्। वह्नेर्याः कलाः यजेत्ता आह। धूम्राया दशकलाः पूज्याः। यथा धूं धूम्रायै नमः इति धूम्रा। अं अर्चिषे नमः इत्यनेनार्चिः। ज्वं ज्वलिन्यै नमः इत ज्वालिनी। सुं सूक्ष्मायै नमः इत्यनेन सूक्ष्मा। ज्वां ज्वालिन्यै नमः इत्यनेन ज्वालिनी। विं विस्फुलिङ्गिन्यै नमः विष्फुलिङ्गिनी । सुं सुश्रिये नमः इति सुश्रीः। सुं सुरूपायै नमः इत्यनेन सुरूपा। कं कपिलायै नमः इति कपिला। हं हव्यकव्यवहायै नमः इत्यनेन हव्यकव्यवहा पूज्येति।।२४-२६।।

मं वह्निमण्डलायेति दशान्ते च कलात्मने ।
अवसाने नमो दत्त्वा पूजयेद्वह्निमण्डलम् ।।२७।।

पद्मा–मं वह्निमण्डलाय दश कलात्मने नमः मन्त्र से वह्नि (अग्नि) मण्डल की पूजा करे।

हरि०–ममित्यादि। पूर्वं मं वह्निमण्डलायेति दत्त्वा ततो दशान्ते कलात्मने इति दत्त्वा अवसाने तदन्ते च नमो दत्त्वा वह्निमण्डलं पूजयेत् । मं वह्निमण्डलाय दशकलात्मने नम इति मन्त्रेणाधारे वह्निमण्डलमर्चयेदित्यर्थः।।२७।।

ततोऽर्घ्यपात्रमानीय फट्कारेण विशोधितम् ।
आधारे स्थापयित्वा तु कलाः सूर्यस्य द्वादश ।
कभादिवर्णबीजेन ठडान्तेन प्रपूजयेत् ।।२८।।

पद्मा–इसके बाद अर्घ्यपात्र लाकर उसे '**फट्**' कार से शोधित कर आधार पर स्थापित कर '**क भ**' से '**ठ, ड** तक के वर्ण बीजों को सर्वप्रथम उच्चारण कर सूर्य की बारह कलाओं का पूजन करे ।

हरि०–तत इत्यादि। ततोऽनन्तरं फट्कारेण फटा मन्त्रेण विशोधितमर्घ्यपात्रमानीयाऽऽधारे स्थापयित्वा तत्र सूर्यस्य द्वादशकलाः सानुस्वारेण ठडान्तेन ठडौ अन्तौ यस्य कभादिवर्ण बीजस्य तत् ठडान्तं तेन कभादिवर्णबीजेन कादिभादि वर्णरूपेण बीजेन सहितेन सचतुर्थीनमोऽन्तेन नाममन्त्रेण प्रपूजयेत् ।।२८।।

तपिनी तापिनी धूम्रा मरीचिर्ज्वालिनी रुचिः ।
सुधूम्रा भोगदा विश्वा बोधिनी धारिणी क्षमा ।।२९।।

पद्या–तपिनी, तापिनी, धूम्रा, मरीचि, ज्वालिनी, रुचि, सुधूम्रा, भोगदा, विश्वा बोधिनी, धारिणी तथा क्षमा–इनका पूजन इस प्रकार करे-**कं भं तपिन्यै नमः, खं बं तापिन्यै नमः, गं फं धूम्रायै नमः, घं पं मरीच्यै नमः, ङं नं ज्वालिन्यै नमः, चं धं रुचये नमः, छं दं सुधूम्रायै नमः, जं थं भोगदायै नमः, झं तं विश्वायै नमः, जं णं बोधिन्यै नमः, टं ढं धारिण्यै नमः, ठं डं क्षमायै नमः।**

हरि०–याः सूर्यकलाः प्रपूजयेत्ता आह तपिनीत्याद्येकेन। यथा कं भं तपिन्यै नमः इति तपिनीम् खं बं तापिन्यै नमः इति तापिनीम् गं फं धूम्रायै नमः इति धूम्राम् घं पं मरीच्यै नमः इति मरीचिम् ङं नं ज्वालिन्यै नमः इति ज्वालिनीम् चं धं रुचये नमः इति रुचिम् छं दं सुधूम्रायै नमः इति सुधूम्राम जं थं भोगदायै नमः इति भोगदाम् झं तं विश्वायै नमः। इति विश्वाम् ञं णं बोधिन्यै नमः इति बोधिमा टं ढं धारिण्यै नमः इति धारिणीम् ठं डं क्षमायै नमः इति क्षमां प्रपूजयेदिति ॥२९॥

अं सूर्यमण्डलायेति द्वादशान्ते कलात्मने ।
नमोऽन्तेनार्घ्यपात्रे तु पुजयेत् सूर्यमण्डलम् ।।३०।।

पद्या–अं सूर्यमण्डलाय द्वादशकलात्मने नमः इस मन्त्र से अर्घ्यपात्र में सूर्यमण्डल की पूजा करे ।

हरि०–अमित्यादि। पूर्वं अं सूर्यमण्डलायेत्युक्त्वा ततो द्वादशान्ते कलात्मने इति वदेत्। योजनया अं सूर्यमण्डलाय द्वादशकलात्मने इति आसीत् नमोऽन्तेनानेन मन्त्रेणार्घ्यपात्रे सूर्यमण्डलं पूजयेत् ॥३०॥

[1]विलोममातृकां तद्वन्मूलमन्त्रं समुच्चरन् ।
त्रिभागं पूरयेन्मन्त्री कलशस्थेन हेतुना ।।३१।।

पद्या–साधक विलोममातृका 'क्ष' कार से 'अं' कार तक और उनके अन्त में मूलमन्त्र का उच्चारण करते हुए कलश में रखी सुरा से अर्घ्यपात्र के तीन भाग को पूर्ण करे ।

हरि०–विलोमेत्यादि। ततो मन्त्री साधकस्तद्वत् कलशपूरणे इव विलोममातृकां सानुस्वारान् क्षकारादीनकारान्तान् वर्णान् समुच्चरन् तेषामन्ते मूलमन्त्रञ्च समुच्चरन् कलशस्थेन हेतुना सुरयाऽर्घ्यपात्रस्य त्रिभागं पूरयेत् ॥३१॥

विशेषार्घ्यजलै शेषं पूरयित्वा समाहितः ।
षोडशस्वरबीजेन नाममन्त्रेण पूजयेत् ।

१. 'क्षं ह्रीं श्रीं क्रीं परमेश्वरि स्वाहा, ळं ह्रीं श्रीं क्रीं परमेश्वरि स्वाहाः, हं ह्रीं श्रीं क्रीं परमेश्वरि स्वाहा' इस प्रकार 'सं षं शं वं लं रं यं मं भं बं फं पं नं धं दं थं तं णं ढं डं ठं टं ञं झं जं छं चं ङं घं गं खं कं अः अं औं ओं ऐं एं ॡं लृं ॠं ऋं ऊं उं ईं इं आं अं' इनमें से प्रत्येक वर्ण के अन्त में 'ह्रीं श्रीं क्रीं परमेश्वरि स्वाहा' यह जोड़ ले।

सचतुर्थीनमोऽन्तेन कलाः सोमस्य षोडश ।।३२।।

पद्मा–इसके उपरान्त एकाग्रचित्त से विशेषार्घ्य के जल द्वारा शेष भाग को पूर्णकर सोलह स्वरबीजों के अन्त में चतुर्थ्यन्त नाम का उच्चारण करके अन्त में 'नमः' शब्द लगाकर चन्द्रमा की सोलह कलाओं का पूजन करे ।

हरि०–विशेषेत्यादि। समाहितः सावधानः सन् अर्घ्यपात्रस्य शेषञ्चचतुर्थ भागं विशेषार्घ्यजलैः पूरयित्वा सानुस्वारेण षोडशस्वर बीजेन सहितेन चतुर्थीनमोऽन्तेन नाममन्त्रेण सोमस्य षोडशकलाः अर्घ्यपात्रस्य तोये पूजयेत् ॥३२॥

अमृता मानदा पूषा[1] तुष्टि पुष्टीरतिर्धृतिः ।
शशिनी चन्द्रिका कान्तिर्ज्योत्स्ना श्रीः प्रीतिरङ्गदा ।
पूर्णा पूर्णामृता कामदायिन्यः शशिनः कलाः ।।३३।।

पद्मा–अमृता, मानदा, पूषा, तुष्टि, पुष्टि, रति, धृति, शशिनी, चन्द्रिका, कान्ति ज्योत्स्ना, श्री, प्रीति, अंगदा, पूर्णा, पूर्णामृता ये चन्द्रमा की सोलह कामदायिनी कलाएँ हैं। इनका पूजन इस प्रकार करनी चाहिए-**अं अमृतायै नम, आं मानदायै नमः, इं पूजायै नमः, ईं तुष्ट्यै नमः, उं पुष्ट्यै नमः, ऊं रतये नमः, ॠं धृतये नमः, ॠं शशिन्यै नमः, लं चन्द्रिकायै नमः, लॄं कान्तये नमः, एं ज्योत्स्नायै नमः, ऐं श्रियै नमः, ओं प्रीतये नमः, औं अङ्गदायै नमः, अं पूर्णायै नमः, अः पूर्णामृतायै नमः।**

हरि०–याः सोमस्य कलाः पूजयेत्ता आह अमृतेत्यादिना सार्द्धेन। यथा अं अमृतायै नमः, आं मानदायै नमः, इति मानदाम्, इं पूजायै नमः, ईं तुष्ट्यै नमः, उं पुष्ट्यै नमः, ऊं रतये नमः, ॠं धृतये नमः, ॠं शशिन्यै नमः, लं चन्द्रिकायै नमः, लॄं कान्तये नमः, एं ज्योत्स्नायै नमः, ऐं श्रियै नमः, ओं प्रीतये नमः, औं अङ्गदायै नमः, अं पूर्णायै नमः, अः पूर्णामृतायै नमः इत्यनेन पूर्णामृता पूजयेदिति ॥३३॥

ॐ सोममण्डलायेति षोडशान्ते कलात्मने ।
नमोऽन्तेन यजेन्मन्त्री पूर्ववत् सोममण्डलम् ।।३४।।

पद्मा–ॐ सोममण्डलाय षोडश कलात्मने नमः–यह मंत्र पढ़कर अर्घ्यपात्र के जल से सोममण्डल की पूजा करे ।

हरि०–उमित्यादि। पूर्वं ॐ सोममण्डलायेत्युक्त्वा ततः षोडशान्ते कलात्मने इति वदेत्। योजनया ऊं सोममण्डलाय षोडशकलात्मने इत्यासीत् । नमोऽन्तेनानेन मन्त्रेण मन्त्री साधकः पूर्ववत् कलशतोय इवार्घ्यपात्रतोये सोममण्डलं यजेत् ॥३४॥

दूर्वाक्षतं रक्तपुष्पं बर्वरामपराजिताम् ।
मायया प्रक्षिपेत् पात्रे तीर्थमावाहयेदपि ।।३५।।

पद्मा–दूब (दूर्वा) अक्षत, लाल रंग के पुष्प, श्यामा घास (बर्वरा पत्र) अपराजिता

---

१. पूजेति पाठान्तरम् ।

पुष्प–इन सभी को ग्रहण कर '**ह्रीं**' मन्त्र से पात्र में डालकर उसमें तीर्थों का आवाहन करे।

हरि०–दूर्वेत्यादि। ततो दूर्वया सहितानक्षतान् रक्तं पुष्पं बर्वरा बर्वरापत्रमपराजिताञ्च पुष्पं मायया ह्रीं बीजेन पात्रे प्रक्षिपेत् तत्रैव तीर्थमप्यावाहयेत् ॥३५॥

कवचेनाऽवगुण्ठ्याऽस्त्रमुद्रया रक्षणञ्चरेत्।
धेन्वा चैवामृतीकृत्य छादयेन्मत्स्यमुद्रया ॥३६॥

पद्या–'हूँ' बीज मन्त्र पढ़कर अवगुण्ठन मुद्रा द्वारा अर्घ्यपात्र की सुरा को अवगुण्ठित कर अस्त्रमुद्रा द्वारा उसकी रक्षा करे। इसके बाद धेनुमुद्रा से अमृतीकृत करके उसको मत्स्यमुद्रा के द्वारा आच्छादित करे।

हरि०–कवचेनेति। ततः कवचेन हूँ बीजेनावगुण्ठ्यावगुठनमुद्रयार्घ्यपात्रस्थं सुधातोयं वेष्टयित्वाऽस्त्रमुद्रया तस्यैव रक्षणञ्चरेत् कुर्यात्। धेन्वा मुद्रया च तदेवामृतीकृत्य मत्स्यमुद्रयाच्छादयेत् ॥३६॥

मूलं सञ्जप्य दशधा देवतावाहनञ्चरेत्।
आवाह्य पुष्पाञ्जलिना पूजयेदिष्टदेवताम्॥
अखण्डाद्यैः पञ्चमन्त्रैर्मन्त्रयेत्तदनन्तरम् ॥३७॥

पद्या–इसके उपरान्त अर्घ्यपात्र में रखी हुई सुरा के ऊपर मूलमंत्र का दश बार जप करें, इसमें इष्टदेवता का आवाहन करके पुष्पाञ्जलि प्रदान करे। तदनन्तर अखण्डादि पाँच मन्त्रों (श्लोक संख्या ३८ से लेकर श्लोक संख्या ४२ तक) से सुरा को अभिमंत्रित करें।

हरि०–मूलमिति। ततोऽर्घ्यपात्रस्थसुधातोयस्योपरि मूलं मन्त्रं दशधा दशवारं संजप्य तत्रैव देवतावाहनञ्चरेत्। इष्टेवतामावाह्य च पुष्पाञ्जलिना पूजयेत्। तदनन्तरमखण्डाद्यैः पञ्चमन्त्रैस्तदेव सुधातोयं मन्त्रयेत् मन्त्रितं कुर्यात् ॥३७॥

अखण्डैकरसानन्दाकरे परसुधात्मनि।
स्वच्छन्दस्फुरणामत्र निधेहि कुलरूपिणि ॥३८॥

पद्या–हे कुलरूपिणि! तुम इस परमसुधामयी वस्तु से अखण्ड केवल सान्द्ररस और सान्द्र आनन्द की प्रदाता हो। तुम स्वाधीन स्फूर्ति प्रदान करो।

हरि०–तानेवाखण्डादीन् पञ्चमन्त्रान् क्रमतो दर्शयति अखण्डैकेत्यादि। हे कुलरूपिणि अखण्डैकरसानन्दाकरे पूर्णप्रधानानुरागानन्दजनके परसुधात्मनि श्रेष्ठसुरास्वरूपेऽत्र वस्तुनि स्वच्छन्दस्फुरणां स्वतन्त्रां विस्फूर्तिं निधेहि स्थापय। "गुणे रागे द्रवे रस" इत्यमरः॥३८॥

अनङ्गस्यामृताकारे शुद्धज्ञानकलेवरे।
अमृतत्वं निधेह्यस्मिन् वस्तुनि क्लिन्नरूपिणि ॥३९॥

पद्या–तुम अनङ्ग की अमृतस्वरूपा हो, विशुद्ध ज्ञान ही तुम्हारा शरीर है। तुम क्लिन्नरूप इस वस्तु (सुरा) में अमृतत्व स्थापित करो।

हरि०–अनङ्गेत्यादि। हे अनङ्गास्थामृताकारे कामस्थामृतस्वरूपे हे शुद्धज्ञान कलेवरे शुद्धज्ञानरूपशरीरे त्वं क्लिन्नरूपिणि स्तिमितरूपिण्यस्मिन् सुरारूपे वस्तुनि अमृतत्वं निधेहि स्थापय॥३९॥

तद्रूपेणैकरस्यञ्च कृत्वाऽर्घ्यं तत्त्वरूपिणि ।
भूत्वा कुलामृताकारं मयि विस्फुरणं कुरु ॥४०॥

पद्मा–हे सुरास्वरूपिणि ! तुम प्रधान मधुरता के रस-रूप से इस मद्य को माधुर्य युक्त करके कुलामृत स्वरूप होकर हमें स्फूर्ति प्रदान करो ।

हरि०–तद्रूपेणेत्यादि। हे तत्त्वरूपिणि तत्तत् स्वरूपशालिनि त्वं तद्रूपेण प्रधानं माधुर्यरसरूपेणार्घ्यं आचार्यं मद्यमैकरस्य प्रधान माधुर्यरसवैशिष्ट्यम् कृत्वा कुलामृताकारं सुधारूपं वस्तु च भूत्वा मयि स्फुरण विस्फूर्तिं कुरु ॥४०॥

ब्रह्माण्डरससम्भूतमशेष रससम्भवम् ।
आपूरितं महापात्रं पीयूषरसमावह ॥४१॥

पद्मा–सुधा से परिपूर्ण यह महापात्र ब्रह्माण्ड के रस से युक्त, अशेष रस से उत्पन्न है। इसे अमृतरसयुक्त करो ।

हरि०–ब्रह्माण्डेत्यादि। हे देवि! सुरया पूरितं महापात्रं प्रति ब्रह्माण्डरससम्भूतं ब्रह्माण्डे ये रसास्तेभ्यः सञ्जातमतएवाशेषरससम्भवम् अशेषस्य सर्वस्य रसस्य सम्भवो यत्र तथाभूतं पीयूषरसमावहाऽऽनय ॥४१॥

अहन्तापात्रभरितमिदन्तापरमामृतम् ।
पराहन्तामये वह्नौ होमस्वीकारलक्षणम् ॥४२॥

पद्मा–आत्मभावस्वरूप पात्र में पूरित इदंभावरूप परम अमृत को परात्मरूप अग्नि में अहन्तादि पात्र को इदन्तादि के सहित स्वीकार करने के लक्षण वाली होम की आहुति प्रदान करो ।

हरि०–अहन्तेत्यादि। अहन्ताऽहम्भावः तद्रूपे पात्रे भरितं धारितं यदिदन्तापरमामृतम् इदन्ता मदीयमिदं मदीयमिदमित्येतद्भावः तद्रूपं यत् परमममृतं तस्य पराहन्तामये पराया-ऽन्ताऽहम्भावस्तद्रूपे वह्नौ होमस्वीकारलक्षणं कुर्यात् । अहन्तारूपपात्रसहितं तत्स्था-पितेदन्तारूपपरमामृतं पराहन्तारूपे वह्नौ जुहुयादित्यर्थः॥४२॥

इत्यामन्त्र्य ततस्तस्मिन् शिवयोः सामरस्यकम् ।
विभाव्य पूजयेद् धूपदीपावपि च दर्शयेत् ॥४३॥

पद्मा–इस प्रकार सुरा को अभिमन्त्रित कर उसमें शिवशिवा की समरसता का ध्यान तथा पूजन करने के उपरान्त धूपदीप दिखाए ।

हरि०–इतीति। इति एतैः पञ्चभिर्मन्त्रैर्मद्यमामन्त्र्य ततोऽनन्तरं तस्मिन्मद्ये शिवयोः शिवायाः शिवस्य च सामरस्यं वैकरस्यं विभाव्य विचिन्त्य तन्मद्यं पूजयेत् तस्योपरि धूपदीपावपि च दर्शयेत् ॥४३॥

इति श्रीपात्रसंस्कारः कथितः कुलपूजने ।
अकृत्वा पापभाङ्मन्त्रीपूजा च विफला भवेत् ।।४४।।

पद्मा–इस प्रकार मैंने कुलपूजन से सम्बन्धित श्रीपात्रसंस्कार का वर्णन किया। जो पात्र का संस्कार नहीं करता, वह पाप का भागी होता है तथा उसकी पूजा विफल होती है।

हरि०–इतीति। अकृत्वा श्रीपात्रसंस्कारमिति शेषः।।४४।।

घटश्रीपात्रयोर्मध्ये पात्राणि स्थापयेद्बुधः ।
गुरुपात्रं भोगपात्रं शक्तिपात्रमतः परम् ।।४५।।

पद्मा–बुद्धिमान साधक घट तथा श्रीपात्र के मध्य में गुरुपात्र, भोगपात्र तथा शक्तिपात्र स्थापित करे।

हरि०–ननु घटश्रीपात्रयोर्मध्ये किंकिं पात्रं स्थापयेत् तत्राह गुरुपात्रमितयादि।।४५।।

योगिनीवीरपात्रे च बलिपात्रं ततः परम् ।
पाद्याचमनयोः पात्रं श्रीपात्रेण नव क्रमात् ।
सामान्यर्घ्यस्य विधिना पात्राणां स्थापनञ्चरेत् ।।४६।।

पद्मा–योगिनीपात्र, वीरपात्र, बलिपात्र, आचमन पात्र, पाद्यपात्र, श्रीपात्र सहित समस्त नौ पात्र साधारण अर्घ्य स्थापन की विधि के अनुसार स्थापित करे।

हरि०–श्रीपात्रेण सह नव पात्राणि क्रमात् स्थापयेत्। ननु केन विधिना पात्राणि स्थापेत् तत्राह सामान्यार्घ्यस्येत्यादि।।४६।।

कलशस्यामृतेनैव त्रिभागं परिपूर्य्य च ।
माषप्रमाणं पात्रेषु शुद्धिखण्डं नियोजयेत् ।।४७।।

पद्मा–फिर इन समस्त पात्रों का तीन भाग कलश में रखी हुई सुधा (सुरा) से भर कर इन समस्त पात्रों में माष बराबर (एक माशा) मांसादिखण्ड डाले।

हरि०–मूलमिति। ततोऽर्घ्यपात्रस्थसुधातोयस्योपरि मूलं मन्त्रं दशधा दशवारं ऐजेप्य तत्रैव देवतावाहनञ्चरेत्। इष्टदेवतामावाह्य च पुष्पाञ्जलिना पूजयेत्। तदनन्तरमखण्डाद्यैः पञ्चमन्त्रैस्तदेव सुधातोयं मन्त्रयेत् मन्त्रितं कुर्यात् ।।४७।।

वामाङ्गुष्ठनामिकाभ्याममृतं पात्रसंस्थितम् ।
गृहीत्वा शुद्धिखण्डेन दक्षया तत्त्वमुद्रया ।
सर्वत्र तर्पणं कुर्यात् विधिरेष प्रकीर्तितः ।।४८।।

पद्मा–तत्पश्चात् बायें हाथ के अगूंठे तथा अनामिका के द्वारा पात्र में रखा हुआ अमृत (मद्य) तथा मांसादिग्रहण करके दाहिने हाथ से तत्त्वमुद्रा के द्वारा समस्त पात्रों में तर्पण करे। तर्पण की विधि आगे कही जा रही है।

हरि०–वामेत्यादि। वामाङ्गुष्ठनामिकाभ्यां दक्षया च तत्त्वमुद्रया शुद्धिखण्डेन सहितं

पात्रसंस्थितममृतं गृहीत्वा सर्वत्र तर्पणं कुर्यात्। सर्वत्र तर्पणे एष विधिः प्रकीर्त्तितः।।४८।।

श्रीपात्रात् परमं बिन्दुं गृहीत्वा शुद्धिसंयुतम्।
आनन्दभैरवं देवं भैरवीञ्च प्रतर्पयेत्।।४९।।

पद्मा–सर्वप्रथम श्रीपात्र से मांसादिखण्डसहित एक बिन्दु सुधा ग्रहण कर **हसक्षमलवरयूम् आनन्दभैरवाय वषट् आनन्दभैरवं तर्पयामि नमः** इस यन्त्र से तर्पण करे तथा **सहक्षमलवरयीम् आनन्दभैरव्यै वौषट् आनन्दभैरवीं तर्पयामि स्वाहा** इस मन्त्र से आनन्द भैरवी का तर्पण करे।

हरि–श्रीपात्रादिति। श्रीपात्राच्छुद्धिसंयुतं परमं बिन्दु गृहीत्वा **हसक्षमलवरयूम् आनन्दभैरवाय वषट् आनन्दभैरवं तर्पयामि नमः** इत्यनेनानन्दभैरवं देव **सहक्षमलवरयीम् आनन्दभैरव्यै वौषट् आनन्दभैरवीं तर्पयामि स्वाहेत्यनेनानन्दभैरवीञ्च प्रतर्पयेत्।।४९।।**

गुरुपात्रामृतेनैव तर्पयेद् गुरुसन्ततिम्।
सहस्रारे निजगुरुं सपत्नीकं प्रतर्प्य च।
वाग्भवाद्यस्वस्वनाम्ना तद् वद्गुरुचतुष्टयम्।।५०।।

पद्मा–तत्पश्चात् गुरूपात्र में रखे हुए अमृत से गुरुसमूह का तर्पण करे। सहस्रदलकमल में पत्नी के साथ अपने गुरु का तर्पण करके वाग्भव बीज 'ऐं' जोड़कर गुरुचतुष्टय-गुरु, परमगुरु, परत्पर गुरु तथा परमेष्ठी गुरु-के नामों का उच्चारण करते तर्पण करे।

हरि०–गुर्वित्यादि गुरुपात्रामृतेनैव गुरुसन्ततिं गुरुसमूहं तर्पयेत्। ननु केन मन्त्रेण कुत्र वा स्थाने गुरुसन्ततिं तर्पयेत्तत्राह सहस्रारे इत्यादि। सहस्रारे पद्मे सपत्नीकं निजगुरुं प्रतर्प्य वाग्भवम् ऐं बीजमाद्यं यस्य तथा भूतेन स्वस्वनाम्ना निजगुरुणा सहगुरुचतुष्टं तद्वन्निजगुरुवत् प्रतर्पयेत्। तथा ऐं सपत्नीकममुकानन्दनाथं श्रीगुरुं तर्पयामि नमः इत्यनेन् निजगुरुम् ऐं सपत्नीकं परमगुरुन्तर्पयामि नम इति। परमम् ऐं सपत्नीकं परापर गुरुन्तर्पयामि नमः इति परापर गुरुम् ऐं सपत्नीकं परमेष्टि गुरुंतर्पयामि नम इति परमेष्टि गुरुं प्रतर्पयेदिति।।५०।।

ततः स्वहृदयाम्भोजे भोगपात्रामृतेन च।
आद्यां काली तपर्यामि निजबीजापुरः सरम्।।५१।।
स्वाहान्तेन त्रिधा मन्त्री तर्पयेदिष्टदेवताम्।
शक्तिपात्रामृतैस्तद्वदङ्गावरण तर्पणम्।।५२।।

पद्मा–इसके उपरान्त मन्त्र साधक अपने हृदय कमल में भोगपात्र के अमृत से स्वबीज **ह्रीं श्रीं क्रीं परमेश्वरि स्वाहा तदुपरान्त आद्या कालीं तर्पयामि** तथा अन्त में स्वाहा इस मन्त्र से तीन बार इष्ट देवता का तर्पण करे। इसी प्रकार शक्तिपात्र के अमृत से अङ्गदेवताओं तथा आवरण देवताओं का तर्पण करे, जैसे-**अङ्गदेवतास्तर्पयामि स्वाहा** यह अंगदवेता का तर्पण मन्त्र है। **आवरणदेवतास्तर्पयामि स्वाहा** यह आवरण देवता का तर्पण मन्त्र है।

हरि०–तत इत्यादि। ततोऽनन्तरं निजबीजपुरःसरं यथास्यात्तथा स्वाहान्तेन स्वाहारूपेणान्तेन सहाद्यां काली त्रिवारं तर्पयेत्। ह्रीं श्रीं क्रीं परमेश्वरि स्वाहा आद्या काली तर्पयामि स्वाहेति मन्त्रेण तर्पयेदित्यर्थः। ततः शक्तिपात्रामृतैस्तद्वदेवाङ्गावरण तर्पणं कुर्यात्। अङ्गदेवतास्तर्पयामि स्वाहेत्यनेनाङ्गदेवताः आवरणदेवतास्तर्पयामिस्वाहेत्यनेनावरणदेवताश्च तर्पयेदित्यर्थः॥५१-५२॥

योगिनीपात्रसंस्थेन सायुधां सपरीकराम्।
सन्तर्प्य कालिकामाद्या बटुकेभ्यो बलिं हरेत्॥५३॥

पद्या–योगिनीपात्र में स्थित अमृत से अस्त्र एवं परिवार के सहित **ह्रीं श्रीं क्रीं परमेश्वरि स्वाहा** मन्त्र से आद्या कालिका तर्पण करके बटुकों को बलि प्रदान करे।

हरि०–योगिनीत्यादि योगिनीपात्रसंस्थेनामृतेन ह्रीं श्रीं क्रीं परमेश्वरि स्वाहा सायुधां सपरीकरामाद्यां काली तर्पयामि स्वाहेति मन्त्रेण सायुधामायुधविशिष्टां सपरीकरां परिवारसहितामाद्या कालिकां सन्तर्प्य बटुकेभ्यो बलि हरेत् दद्यात्॥५३॥

स्ववामभागे सामान्यं मण्डलं रचयेत् सुधीः।
सम्पूज्य स्थापयेत्तत्र सामिषान्नं सुधान्वितम्॥५४॥

पद्या–ज्ञानीसाधक अपने बायें भाग में एक साधारण चतुष्कोण मण्डल का निर्माण करे, फिर उसकी पूजाकर उस पर मद्ययुक्त मांसादि अन्न स्थापित करे।

हरि०–बटुकादिभ्यो बलिदानस्य विधिमाह स्ववामभागे इत्यादि। सुधीःधीरः स्ववामभागे सामान्यञ्चतुष्कोणं मण्डलं रचयेत्। तन्मण्डलं सम्पूज्य तत्र मण्डले चतुर्दिक्षु तन्मध्ये च सुधान्वितं सुरासंयुक्तं सामिषान्नं मांसादिसहितमन्नं स्थापयेत्॥५४॥

वाङ्मायाकमलावञ्च बटुकाय नमः पदम्।
सम्पूज्य पूर्वभागे च बटुकस्य बलिं हरेत्॥५५॥

पद्या–वाक ऐं- माया-ह्रीं, कमला-श्रीं तथा 'वँ' के पश्चात् बटुकाय नमः अर्थात्- ऐं ह्रीं श्रीं वँ बटुकाय नमः मन्त्र से मण्डल के पूर्वभाग में बटुक को बलि प्रदान करे।

हरि०–वाङ्मायेत्यादि। वाङ्मायाकमलवञ्च ऐं ह्रीं श्रीं सहितं वँ चेति बीजमुक्ता बटुकाय नमः इति पदं वदेत्। योजनया ऐं ह्रीं श्रीं वँ वटुकाय नमः इति मन्त्रो जातः। अनेनैव मन्त्रेण मण्डलस्य पूर्वभागे बटुकं सम्पूज्य तत्रैव एषः सुधामिषान्वितान्नबलिः ऐं ह्रीं श्रीं वँ बटुकाय नम इति मन्त्रेण बटुकस्य बलि हरेत् दद्यात्॥५५॥

ततस्तु यां योगिनीभ्यः स्वाहा याम्यां हरेद्बलिम्॥५६॥

पद्या–तत्पश्चात् **एषा सुधामिषान्वितान्नवलिर्या योगिनीभ्यां स्वाहा** इस मन्त्र से मण्डल के दक्षिण भाग में बलि प्रदान करे।

हरि०–ततस्त्विवति। ततोऽनन्तरम् एषः सुधामिषान्वितान्नवलिर्यो योगिनीभ्यः स्वाहेति मन्त्रेण याम्यां मण्डलस्य दक्षिणे भागे योगिनीभ्यो बलिं हरेत्॥५६॥

षड्दीर्घयुक्तं सम्वर्त्त क्षेत्रपालाय हृन्मनुः ।
अनेन क्षेत्रपालाय बलिं दद्यात्तु पश्चिमे ।।५७।।

पद्मा–फिर छः दीर्घयुक्त सम्वर्त्त-क्ष-अर्थात् क्षां क्षीं क्षूं, क्षैं क्षौं क्षः के बाद **क्षेत्रपालाय नमः** इस मन्त्र से अर्थात् **एष सुधामिषान्वितान्नबलिः क्षां क्षीं क्षूं क्षैं क्षौं क्षः क्षेत्रपालाय नमः** से मण्डल से पश्चिम भाग में क्षेत्रपाल को बलि प्रदान करे।

हरि०–षड्दित्यादि। षड्दीर्घयुक्तं सम्वर्त्तं क्षकारमुक्त्वा ततः क्षेत्रपालायेत्युक्त्वा ततो हृत् नमः इति वदेत्। सर्वपदयोजनया क्षां क्षीं क्षूं क्षैं क्षौं क्षः क्षेत्रपालाय नम इति मनुर्जातः। एषः सुधा- मिषान्वितान्नबलिरित्यद्येनानेनैव मनुना मण्डलस्य पश्चिमे भागे क्षेत्रपालाय बलिं दद्यात्॥५७॥

खान्तबीजं समुद्धृत्य षड्दीर्घ स्वरसंयुतम् ।
ङेऽन्तं गणपतिं चोक्त्वा वह्निजाया ततो वदेत् ।।५८।।
उत्तरस्यां गणेशाय बलिमेतेन कल्पयेत् ।
मध्ये तथा सर्वभूतबलिं दद्याद् यथाविधि ।।५९।।

पद्मा–इसके पश्चात् 'ख' वर्ण का अन्त्यबीजं 'ग' का उद्धार करके छः दीर्घस्वर गां गीं गूं गैं गौं गं मिलाकर चतुर्थी का एकवचन गणपति शब्द 'गणपतये' पढ़कर उसके अन्त में स्वाहा पद का उच्चारण करके **एष सुधामिषान्वितान्नबलिः गां गीं गूं गैं गौं गः गणपतये स्वाहा** इस मन्त्र से मण्डल की उत्तर दिशा में गणेश को बलि प्रदान करे तथा मण्डल के मध्य में विधानपूर्वक सभी भूतों को बलि प्रदान करे।

हरि०–खान्तेत्यादिं । षड्दीर्घस्वरसंयुतं खान्तबीजं खस्यान्तो गकारस्तद्रूपं बीजं समुद्धृत्यं ततोङेऽन्तं गणपतिञ्चोक्त्वा ततो वह्निजायां स्वाहेति वदेति। योजनया गाँ गीँ गूँ गैँ गौँ गँ गणपतये स्वाहेति मन्त्रो जातः। एषः सुधाभिषान्वितान्नबलिरित्याद्येनानेनैव मन्त्रेण उत्तरस्या मण्डलस्योत्तरे भागे गणेशाय बलिं कल्पयेद्दद्यात् । तथैव मण्डलस्य मध्ये यथाविधि विधिवत् सर्वभूतबलि दद्यात् ॥५८-५९॥

ह्रीं श्रीं सर्वपदञ्चोक्त्वा विघ्नकृद्भ्यस्ततो वदेत् ।
सर्वभूतेभ्य इत्युक्त्वा हूं फट् स्वाहा मनुर्म्मतः ।।६०।।

पद्मा–ह्रीं श्रीं सर्व इस पद का उच्चारण कर विघ्नकृद्भ्यः पद का उच्चारण करे तदुपरान्त सर्वभूतेभ्य यह पद उच्चारण कर हूँ फट् स्वाहा का उच्चारण करे। यही अर्थात् **एष सुधामिषान्वितान्नि बलिः ह्रीं श्रीं सर्वध्विघ्नकृदभ्यः सर्वभूतेभ्यो फट् स्वाहा ।** सर्वभूतबलि का मन्त्र है।

हरि०–सर्वभूतेभ्यो बलिदानस्य मन्त्रमाह एकेन ह्रीमिति। ह्रीं श्रीं सर्वपदमुक्त्वा ततो विघ्नकृद्भ्य इति वदेत् । ततः सर्वभूतेभ्य, इत्युक्त्वा हूं फट् स्वाहेति वदेत योजनया ह्रीं श्रीं सर्वविघ्नकृद्भ्यः सर्वभूतेभ्यो हूं फट् स्वाहेति मनुर्जातः। एष सुधामिषान्वितान्न बलिरित्याद्योऽयमेव मनुः सर्वभूतेभ्यो बलिदाने मतः॥६०॥

ततः शिवायै विधिवद्बलिमेकं प्रकल्पयेत् ।
गृह्ण देवि! महाभागे ! शिवे! कालाग्निरूपिणि ।।६१।।
शुभाशुभं फलं व्यक्तं ब्रूहि गृह्ण बलिं तव ।
मूलमेष बलिः पश्चात् शिवायै नमः इत्यपि ।
चक्रानुष्ठनमेतत्तु तवाग्रे कथितं शिवे ! ।।६२।।

पद्या–इसे पश्चात् शिवा को विधिपूर्वक एक बलि प्रदान करे। हे देवि! हे महाभागे! हे शिवे! हे कालाग्नि रूपिणि! यह बलि ग्रहण करो, मेरे शुभ-अशुभ फल को स्पष्टरूप से कहो। यह बलि शिवा को प्रदान करता हूँ। **गृह्ण देवि! महाभागे! शिवे! कालाग्निरूपिणि शुभाशुभं फलं व्यक्तं ब्रूहि गृह्ण बलिं तव मूलं (ह्रीं श्रीं इत्यादि) एष बलिः शिवायै नमः।** इस मन्त्र के द्वारा बलि प्रदान करे। हे शिवे! यह चक्र का अनुष्ठान मैंने तुमसे कहा है।

हरि०–तत इति। ततोऽनन्तरं शिवायै फेत्कारिकायै विधिवदेकं बलिं प्रकल्पयेत् दद्यात् । शिवायै बलिदानस्य मन्त्रमाह सार्द्धेन। गृह्णेति। गृह्णदेवि महाभागे इत्याद्युक्त्वा एलमन्त्रं वदेत् । ततः एष बलिरित्युक्त्वा पश्चात् शिवायै नम इत्यपि वदेत् । सकलपदयोजनया **गृह्ण देवि महाभागे शिवे कालाग्निरूपिणि शुभाशुभफलं व्यक्तं ब्रूहि गृह्ण बलिं तव ह्रीं श्रीं क्रीं परमेस्वाहा एष वलिः शिवायै नमः** इति मन्त्री जातः। अनेनैव शिवायै बलिं दद्यात् ।।६१-६२।।

चन्दनागुरुकस्तूरिवसितं सुमनोहरम् ।
पुष्पं गृहीत्वा पाणिभ्यां करकच्छपमुद्रया ।।६३।।
नीत्वा स्वहृदयाम्भोजे ध्यायेदाद्यां परात्पराम् ।।६४।।

पद्या–इसके उपरान्त चन्दन, अगरु, कस्तूरी तथा अत्यन्त सुगन्धित मनोहर पुष्प को कच्छपमुद्रा से युक्त दोनों हाथों में लेकर अपने हृदय कमल में आद्या काली का ध्यान करे।

हरि०–चन्दनेत्यादि। ततश्चन्दनागुरुकस्तूरिवासितं सुमनोहरं पुष्पं पाणिभ्यां गृहीत्वा करकच्छपमुद्रया हृदि नीत्वा च स्वहृदयाम्भोजे परात्परामाद्या कालीं ध्यायेत् ।।६३-६४।।

सहस्रारे महापद्म सुषुम्नाब्रह्मवर्त्मना ।
नीत्वा सानन्दितां कृत्वा बृहन्निश्वासवर्त्मना ।
दीपाद्दीपान्तरमिव तत्र पुष्पे नियोज्य ।।६५।।
यन्त्रे निधापायेन्मन्त्री दृढभक्तिसमन्वितः ।
कृताञ्जलिपुटो भूत्वा प्रार्थयेदिष्टदेवताम् ।।६६।।

पद्या–इसके पश्चात् सुषुम्नानाड़ी रूपी ब्रह्ममार्ग द्वारा भगवती आद्या काली को सहस्रार नामक सहस्रदल महापद्म में ले जाकर निर्मलसुधा से उनको आनन्दित कर गहरे निःश्वासरूप मार्ग के द्वारा जिस प्रकार एक दीप दूसरे दीप से प्रज्वलित होता है, उसी प्रकार

भगवती आद्या काली को अपने हाथों में स्थित उक्त पुष्पों को संस्थापित करते हुए उस यन्त्र में स्थापित कर मन्त्रसाधक गहन भक्ति के साथ हाथ जोड़कर इष्ट देवता से प्रार्थना करे।

हरि०–सहस्रारे इति। स्वहृदयाम्भोजे ध्यात्वा चाद्यां कालीं ततः सुषुम्ना या नाडी तद्रूपेण ब्रह्मवर्त्मना सहस्रारे महापद्मे नीत्वा प्रापय्य सुधापायनया सानन्दितमानन्दयुताञ्च कृत्वा दीपाद्दीपान्तरमिवान्यं दीपिव तस्या एवं काल्याः सकाशादपरामाद्यां काली वृहत्रिश्वासवर्त्मना नासापुटेन वहिरानीय तत्र पाणिसंस्थे पुष्पे नियोज्य संस्थाप्य च दृढ़भक्तिसमन्वितो मन्त्री हस्तस्थपुष्पस्थापितां देवी यन्त्रे निधापयेत् स्थापयेत्। ततः कृताञ्जलिपुटो भूत्वेष्ट देवतां प्रार्थयेत् ॥६५-६६॥

देवेशि! भक्तिसुलभे! परिवारसमन्विते ।
यावत् त्वां पूजयिष्यामि तावत् त्वं सुस्थिरा भव॥६७॥

पद्मा–हे देवेशि! हे भक्तिसुलभे! हे परिवारसमन्विते! मैं जब तक तुम्हारी पूजा करूँ तब तक तुम सुस्थिर हो कर रहो।

हरि०–किं प्रार्थयेत्तत्राह देवेशीत्यादि॥६७॥

क्रीमाद्ये कालिके देवि! परिवारादिभिः सह ।
इहागच्छ द्विधा प्रोक्त्वा इह तिष्ठद्विधा पुनः ॥६८॥
इह शब्दात् सन्निधेहि इह सन्निपदात्ततः ।
रुध्यस्व पद्माभाष्य मम पूजां गृहाण च ॥६९॥
इत्थमावाहनं कृत्वा देव्याः प्राणान्तप्रतिष्ठयेत् ॥७०॥

पद्मा–सर्वप्रथम 'क्रीं' बीज का उच्चारण करके **''आद्ये कालिके देवि! परिवारादिभिः सह इहागच्छ इहागच्छ''** यह उच्चारण करके **''इह तिष्ठ इह तिष्ठ''** पाठ करे। फिर **''इह सन्निधेहि''** यह पद उच्चारित करके **''इह सन्निरुध्यस्व''** पद का उच्चारण करे। इसके उपरान्त **''मम पूजां गृहाण''** इस पद का उच्चारण करे। इस प्रकार **''क्रीं आद्येकालिके देवि परिवारादिभिः सह इहागच्छ इह तिष्ठ इह सन्निधेहि इह सन्निरुध्यस्व मम पूजां गृहाण''** मन्त्र से भगवती का आवाहन करके प्राणप्रतिष्ठा करे।

हरि०–क्रीमाद्ये इत्यादि। क्रीमाद्ये कालिके देवि परिवारादिभिः सहेति प्रोच्य ततोद्विधा द्विवारमिहागच्छेति च प्रोच्य ततः पुनर्द्विधा इह तिष्ठति प्रोच्य ततः पुनरिह शब्दात् सन्निधेहीति प्रोच्य तत इह सन्नीतिपात् रुध्यस्वेतिपदमाभाष्य ततो मम पूजां गृहाणेति वदेत्। सकलपदयोजनयां क्रीमाद्ये कालिके देवि परिवारादिभिः सहेहागच्छेहागच्छेह तिष्ठेह तिष्ठेह सन्निधेहि इह सन्निरुध्यस्व मम पूजां गृहाणेति मन्त्रो जातः। इत्थमनेन प्रकारेणानेन मन्त्रेण देव्या आवाहनं कृत्वा तस्या एवं प्राणान् प्रतिष्ठयेत् प्राणप्रतिष्ठां कुर्यादित्यर्थः॥६८-७०॥

आँ ह्रीं क्रों श्रीं वह्निजायाप्रतिष्ठामत्र ईरितः ।
अमुष्या देवतायाश्च प्राणा इह ततः परम् ।
प्राणा इति ततः पञ्चबीजानि तदनन्तरम् ॥७१॥

अमुष्या जीव इह च स्थित इत्युच्चरेत् पुनः ।
पञ्चबीजान्यमुष्याश्च सर्वेन्द्रियाणि कीर्तयेत् ।।७२।।
पुनस्तत्पञ्चबीजानि अमुष्यावचनात्ततः ।
वाङ्मनोनयनघ्राणश्रोत्रत्वक्पदतो वदेत् ।।७३।।
प्राणा इहागत्य सुखं चिरंतिष्ठन्तु ठद्वयम् ।।७४।।

पद्मा–प्राण प्रतिष्ठा मन्त्र इस प्रकार है-**आँ ह्रीं क्रौं श्रीं स्वाहा आद्याकालीदेवतायाः प्राणा इह प्राणाः आँ ह्रीं क्रौं श्रीं स्वाहा आद्याकाली देवतायाः जीवइह स्थितः आँ ह्रीं क्रौं श्रीं स्वाहा आद्याकालीदेवतायाः सर्वेन्द्रियाणि आँ ह्रीं क्रौं स्वाहा आद्याकालीदेवतायाः वाङ्मनोनयन घ्राणश्रोत्वक्प्राणा इहागत्य सुखं चिरं तिष्ठन्तु स्वाहा।** अर्थात् आद्या काली के प्राण इस स्थान में प्राण, आद्या काली की जीवात्मा इस स्थान में रहे। आद्या काली की समस्त इन्द्रियाँ, आद्याकाली के वाक्य, मन, नेत्र, नासिका, कान त्वचा तथा प्राण यहाँ आकर बहुतकाल तक सुख से रहें ।

हरि०–ननुकेन मन्त्रेण देव्याः प्राणान् प्रतिष्ठयेदित्यपेक्षायां प्राणप्रतिष्ठामन्त्रमाह चतुर्भिःआमित्यादि। आँ ह्रीं क्रौं श्रीमित्युक्कत्वा वह्निजाया स्वाहा वक्तव्या। ततोऽमुष्या देवतायाः प्राणा इहेत्युक्त्वा ततः परं प्राणा इत्युच्चरेत् । ततः आँ ह्रीमित्यादीनि पञ्चबीजानि वदेत् । तदनन्तरममुष्या जीव इह स्थित इत्युच्चरेत् । पुनः तान्येव पञ्चबीजानि वदेत्। ततोऽमुष्याः सर्वेन्द्रियाणीति वदेत् । पुनस्तानि पञ्चबीजानि वदेत् । ततोऽमुष्यावचनात् कथनात् परं वाङ्मनोनयन घ्राण श्रोत्रत्वक्पदं वदेत् । तस्माच्च पदात् प्राणा इहागत्य सुखं चिरन्तिष्ठान्विति वदेत् । ततः ठद्वयं स्वाहेति वदेत। ततः ठद्वयं स्वाहेति वदे् । सकलपदयोजना आँ ह्रीं क्रौं श्रीं स्वाहा आद्या कालीदेवतायाः प्राणा इह प्राणाः आँ ह्रीं क्रौं श्रीं स्वाहा आद्याकाली देवताया जीव इह स्थितः आँ ह्रीं क्रौं श्रीं स्वाहा आद्याकालीदेवताया सर्वेन्द्रियाणि आँ ह्रीं क्रौं श्रीं स्वाहा आद्याकाली देवताया वाङ्मनोनयनघ्राणश्रोत्रत्वकप्राणाः इहागत्य सुखं चिरन्तिष्ठन्तु स्वाहेति प्राणप्रतिष्ठामन्त्र ईरितः।।७१-७४।।

इति त्रिधा यन्त्रमध्ये लेलिहानाख्यमुद्रया ।
संस्थाप्य विधिवत् प्राणान् कृताञ्जलिपुटो वदेत् ।।७५।।

पद्मा–इस प्रकार तीन बार प्राणप्रतिष्ठामन्त्र का उच्चारण कर लेलिहान मुद्रा से यन्त्र के मध्य में देवी की प्राणप्रतिष्ठा कर हाथ जोड़कर कहे ।। (आगे श्लोक देखें)।

हरि०–**इतीति।** इत्यनेनैव प्राणप्रतिष्ठामन्त्रेण त्रिधा वारत्रयं गुरूपदिष्टया लेलिहानाख्यमुद्रया यन्त्रमध्ये देव्याः प्राणान् विधिवत् संस्थाप्य कृताञ्जलिपुटः सन् वदेत् । लेलिहानाख्यमुद्राय दक्षिणामूर्ति संहितायाम् –

तर्जनीमध्यमानामाः समं कुर्यादधोमुखम् ।
अनामायां क्षिपेद्वृद्धामृजुं कृत्वा कनिष्ठिकाम् ।
लेलिहानाख्यमुद्रेयं जीवन्यासे प्रकीर्तितेति ।।७५।।

आद्ये कालि स्वागतं ते सुस्वागतमिदं तव ।
आसनञ्चेदमत्र त्वयाऽऽस्यतां परमेश्वरि ।।७६।।

पद्मा–हे आद्ये कालि! तुम्हारा स्वागत है, यह तुम्हारा स्वागत है। यह तुम्हारा आसन है। हे परमेश्वरि! तुम यहाँ पर आसीन हो ।

हरि०–किं वदेदित्यपेक्षायामाह आद्ये इत्यादि। सुष्ठु आगतं स्वागतम् ।।७६।।

ततो विशेषार्घ्य जलैस्त्रिधा मूलं समुच्चरन् ।
प्रोक्षयेद्देवशुद्ध्यर्थं षडङ्गैः सकलीकृतिः ।
ततः सम्पूजयेद्देविं षोडशैरुपचारकैः ।।७७।।

पद्मा–तत्पश्चात् देवता की शुद्धि के लिए मूल मन्त्र का उच्चारण कर विशेषार्घ्यजल से देवी को तीन बार स्नान कराए, फिर देवी के अंग में सकलीकरण करे। देवता के अंगों में षडङ्गन्यास करना ही सकलीकरण है। इसके बाद सोलह उपचारों से देवी का पूजन करे।

हरि०–तत इत्यादि। ततो मूलं मन्त्रं त्रिधा समुच्चरन् देवशुद्ध्यर्थं विशेषार्घ्यजलैर्देवीं प्रोक्षयेत् अभिषिञ्चेत् । षडङ्गैं ह्रां हृदयाय नमः, ह्रीं शिरसे स्वाहा, ह्रूं शिखायै वषट्, ह्रैं कवचाय हुम्, ह्रौं नेत्रत्रयाय वौषट् ह्रः अस्त्राय फट् इति मन्त्रैर्देव्याः सकलीकृतिः समस्तीकरणं विधेयम् । सकलीकरणं यथा —

देवताङ्गे षडङ्गानी न्यासः स्यात् सकलीकृतिरिति ।।७७।।

पाद्यार्घ्याचमनीयञ्च स्नानं वसनभूषणे ।
गन्धपुष्पे धूपदीपौ नैवेद्याचमने तथा ।।७८।।
अमृतञ्चैव ताम्बूलं तर्पणञ्च नतिक्रिया ।
प्रयोजयेर्च्चनायामुपचारांश्च षोडश ।।७९।।

पद्मा–पाद्य, अर्घ्य, आचमनीय, स्नान, वसन (वस्त्र) आभूषण, गन्ध, धूप, दीप, नैवेद्य, पुनराचमनीय, अमृत, ताम्बूल (पान), तर्पण तथा नमस्कार। देवी पूजा के समय यही षोडश उपचार प्रयोग किये जाते हैं ।

हरि०–तानेव षोडशोपचारान् दर्शयति पाद्येत्यादिना।।७८।। अमृत मद्यम् प्रयोजयेत् निवेदयेत् ।।७९।।

आद्याबीजमिदं पाद्यं देवतायै नमः पदम् ।
पाद्यञ्चरणयोर्दद्यात् शिरस्यर्घ्यं निवेदयेत् ।।८०।।

पद्मा–आद्याबीज-ह्रीं श्रीं क्रीं परमेश्वरि स्वाहा'-इदं पाद्यं आद्यायै काल्यै नमः इस मन्त्र से दोनों चरणों में पाद्य प्रदान करे। तत्पश्चात् इसी प्रकार अन्त में स्वाहा (आगे श्लोक देखें) लगाकर मस्तक पर अर्घ्य निवेदित करे ।

हरि०–अथ क्रमतः पाद्यादिषोडशोपचारसमर्पणविधिमाह आद्याबीजमित्यादिभिः। आद्याबीजमुक्त्वा इदं पाद्यं देवतायै नम इति पदं वदेत् । योजनया ह्रीं श्रीं क्रीं परमेश्वरि स्वाहेदं पाद्यमाद्या कालीदेवतायै नमः इति मन्त्रो जातः। अनेन मन्त्रेण देव्याश्चरणयोः पाद्यं दद्यात्

स्वाहापदेन स्वाहापदघटितने ह्रीं श्रीं क्रीं परमेश्वरि स्वाहेदमर्घ्यमाद्यायै काल्यै स्वाहेति मन्त्रेण देव्याः शिरस्यर्घ्यं निवेदयेत् ॥८०॥

स्वाहापदेन मतिमान् स्वधेत्याचमनीयकम् ।
मुखे नियोजयेन्मन्त्री मधुपर्कं मुखाम्बुजे ॥
वंस्वधेति समुच्चार्य पुनराचमनीयकम् ॥८१॥

पद्मा–बुद्धिमान् साधक इसी प्रकार अन्त में स्वधा योजित कर मुख में आचमनीय प्रदान करे। साधक उक्त मन्त्र से देवी के मुख कमल में मधुपर्क दे। इसके उपरान्त इस मन्त्र के अन्त में अर्थात् **ह्रीं श्रीं क्रीं परमेश्वरि स्वाहा एष मधुपर्क आद्यायै काल्यै स्वधा** के अन्त में वं स्वधा उच्चारण कर देवी के मुख कमल में पुनराचमनीय प्रदान करे। मन्त्र इस प्रकार होगा–**ह्रीं श्रीं क्रीं परमेश्वरि स्वाहा एष मधुपर्क आद्यायै काल्यै वं स्वधा**॥

हरि०–स्वाहेत्यादि। स्वाहापदेनेति पूर्वान्वयि । मतिमान्मन्त्री स्वधेतिपदघटितेन ह्रीं श्रीं क्रीं परमेश्वरि स्वाहेदमाचमनीयमाद्यायै काल्यै स्वधेति मन्त्रेण देव्या मुखे आचमनीयकं नियोजयेद्दद्यात् । ह्रीं श्रीं क्रीं परमेश्वरि स्वाहा एष मधुपर्क आद्यायै काल्यै स्वधेति मन्त्रेण देव्या मुखाम्बुजे मधुपर्कं नियोजयेत् । ह्रीं श्रीं क्रीं परमेश्वरि स्वाहेदमाचमनीयमाद्यायै काल्यै वंशस्वधेति समुच्चार्य पुनर्देवीमुखे आचमनीयकं नियोजयेत् ॥८१॥

स्नानीयं सर्वगात्रेषु वसनं भूषणानि च ।
निवेदयामि मनुना दद्यादेतानि देशिकः ॥८२॥

पद्मा–ह्रीं श्रीं क्रीं परमेश्वरि स्वाहा-इदं स्नानीयमाद्यायै कालिकायै निवेदयामि इस मन्त्र से देवी के समस्त शरीर में स्नानीय जल छिड़के। **ह्रीं श्रीं क्रीं परमेश्वरि स्वाहा इदं वसनामाद्यायै कालिकायै निवेदयामि** मन्त्र से देवी को वस्त्र पहनाए। **ह्रीं श्रीं क्रीं परमेश्वरि स्वाहा एतानि भूषणानि आद्यायै कालिकायै निवेदयामि** मन्त्र से देवी को आभूषण पहनाए।

हरि०–स्नानीमित्यादि। ह्रीं श्रीं क्रीं परमेश्वरि स्वाहेदं स्नानीयमिदं वसनमेतानि भूषणानि चाद्यायै कालिकायै निवेदयामीति मनुना एतानि स्नानीयादीनि देव्या सर्वगात्रेषु देशिकः साधको दद्यात् ॥८२॥

मध्यमानामिकाभ्यान्त्र गन्धन्दद्याद्धृम्बुजे ।
नमोऽन्तेन च मन्त्रेण वौषडन्तेन पुष्पकम् ॥८३॥

पद्मा–ह्रीं श्रीं क्रीं परमेश्वरि स्वाहा एष गन्ध आद्यायै काल्यै नमः यह मन्त्र पढ़कर मध्यमा तथा अनामिका अंगुली से देवी के हृदय कमल में गन्ध प्रदान करे। **ह्रीं श्रीं क्रीं परमेश्वरि स्वाहा इदं पुष्पमाद्यायै कालिकायै वौषट्** मन्त्र से देवी को पुष्प प्रदान करे ।

हरि०–मध्यमेत्यादि। नमोऽन्तेन ह्रीं श्रीं क्रीं परमेश्वरि स्वाहा एष गन्ध आद्यायै काल्यै

नमः इति मन्त्रेण देव्या हृदम्बुजे मध्यमानामिकाभ्याङ्गुलिभ्यां गन्धं दद्यात् वौषडन्तेन ह्रीं श्रीं। परमेश्वरि स्वाहेदं पुष्पमाद्यायै काल्यै वौषडिति मन्त्रेण देव्यै: पुष्पं दद्यात् ॥८३॥

धूपदीपौ च पुरतः संस्थाप्य प्रोक्षणादिभिः
निवेदयामि मन्त्रेण उत्सृज्य तदनन्तरम् ।।८४।।
जयध्वनिमन्त्रमातः स्वाहेति मन्त्रपूर्वकम् ।
सम्पूज्य घण्टां वामेन वादयन् दक्षिणेन तु ।।८५।।
धूपं गृहीत्वा मतिमान् नासिकाधो नियोजयेत् ।
दीपन्तु दृष्टिपर्य्यन्तं दशधा भ्रामयेत् पुरः ।।८६।।

पद्मा–इसके उपरान्त धूप, दीप को मुख स्थापित कर प्रज्ज्वलित करे। इसके उपरान्त प्रोक्षणादि से उन्हें शुद्ध करे । **ह्रीं श्रीं क्रीं परमेश्वरि स्वाहा एतौ धूपदीपौ आद्यायै काल्यै निवेदयामि** मन्त्र से उत्सर्ग कर देवी को धूप दीप प्रदान करे। फिर **जयध्वनिमन्त्रमातः स्वाहा** से घण्टा की पूजा करे। इसके पश्चात् बाएँ हाथ से घण्टा बजाते हुए दाहिने हाथ से धूप लेकर देवी का निवेदन करे। दीप के ग्रहण करके देवी के समक्ष चरण से लेकर नेत्र तक दश बार घुमाए ।

हरि०–**धूपेत्यादि**। पुरतो देव्यग्रे धूपदीपौ संस्थाप्यं प्रोक्षणादिभिः संशोध्य च ह्रीं श्रीं क्रीं परमेश्वरि स्वाहा एतौ धूपदीपावाद्यायै काल्यै निवेदयामिति मन्त्रेणोत्सृज्य देव्यै समर्प्य च तदनन्तरम् एते गन्धपुष्पे जयध्वनिमन्त्रमातः स्वाहेति मन्त्रपूर्वकं घण्टां सम्पूज्य वामेन हस्तेन तां घण्टां वादयन् सन् दक्षिणेन हस्तेन धूपं गृहीत्वा मतिमान् साधको देव्या नासिकाया अधोनियोजयेन्निवेदयेत् । दीपन्तु पुरो देव्यग्रे पादमारभ्य दृष्टिपर्यन्तं दशधा दशवारं भ्रामयेत् ॥८४-८६॥

ततः पात्रञ्च शुद्धिञ्च समादाय करद्वये ।
मूलं समुच्चरन् मन्त्री यन्त्रमध्ये निवेदयेत् ।।८७।।

पद्मा–इसके पश्चात् साधक पानपात्र एवं शुद्धि अर्थात् मांसादि दोनों हाथों में लेकर मूलमंत्र **ह्रीं श्रीं क्रीं परमेश्वरि स्वाहां इदं मद्यं इमां शुद्धिं च आद्यायै कालिकायै निवेदयामि** का उच्चारण कर यन्त्र के मध्य में निवेदित करे ।

हरि०–**तत इत्यादि**। ततोऽनन्तरं पानपात्र शुद्धिं मांसादिकञ्च करद्वये समादाय गृहीत्वा मूलं मन्त्रं तदन्ते इदं मद्यमिमां शुद्धिञ्चाद्यायै काल्यै निवेदयामीति च समुच्चरन् मन्त्री यन्त्रमध्ये देव्यै निवेदयेत् ॥८७॥

परमं वारुणीकल्पं कोटिकल्पान्तकारिणि ।
गृहाण शुद्धिसहितं देहि मे मोक्षमव्ययम् ।।८८।।

पद्मा–हे करोड़ो कल्पों का अन्त करने वाली। इस श्रेष्ठ वारुणी कल्प (मद्य) को शुद्धि के साथ ग्रहण करो और मुझे अक्षय मुक्ति प्रदान करो ।

हरि०–ततः प्रार्थनावाक्यमाह परममित्यादि। वारुणीकल्पम् मद्यम् ।।८८।।

ततः सामान्यविधिना पुरतो मण्डलं लिखेत् ।
तस्योपरि न्यसेत् पात्रं नैवेद्यपरिपूरितम् ।।८९।।

पद्मा–इसके उपरान्त सामान्य विधि से अपने समक्ष मण्डल लिखकर उस पर नैवेद्य से पूर्ण पात्र को स्थापित करे ।

हरि०–तत इति। ततोऽनन्तरं सामान्य विधिना साधरणविधानेन पुरतोऽग्रे त्रिकोणञ्चतुष्कोणं वा मण्डलं लिखेत् । तस्य मण्डलस्योपरि नैवेद्यपरिपूरितं पात्रं न्यसेत् स्थापयेत् ॥८९॥

प्रोक्षणञ्चावगुण्ठञ्च रक्षणञ्चामृतीकृतम् ।
मूलेन सप्तधाऽऽमन्त्र्य अर्घ्याद्भिर्विनिवेदयेत् ।।९०।।

पद्मा–तत्पश्चात् "फट्" से नैवेद्य का प्रोक्षण, फट् से रक्षाकरण, वं से अमृतीकरण कर मूलमन्त्र के द्वारा उसे सात बार अभिमन्त्रित कर अर्घ्यजल से निवेदित करे।

हरि०–प्रोक्षणमिति। तत्पात्रस्थस्य नैवेद्यस्य फटा प्रोक्षणं हूँ बीजेनागुण्ठनं वेष्टनं फटैव रक्षणं धेनुमुद्रया वं बीजेनामृतीकृतममृतीकरणञ्च विदध्यात् । ततो मूलमन्त्रेण सप्तधा तन्नैवेद्यमामन्त्र्याध्याद्भिरर्घ्यजलैर्देव्यै निवेदयेत् ॥९०॥

मूलमेतत्तु सिद्धान्नं सर्वोपकरणान्वितम् ।
निवेदयामीष्टदेव्यै जुषाणेदं हवि शिवे ! ।।९१।।

पद्मा–समस्त सामग्रियों से युक्त पके हुए अन्न को इष्ट देवता के लिए निवेदित करता हूँ। हे शिवे! इस भोज्य प्रदार्थ को ग्रहण करो ।

मन्त्र इस प्रकार होगा-**ह्रीं श्रीं क्रीं परमेश्वरि स्वाहा एतत्सर्वोपकरणान्वितं सिद्धान्नमिष्टदेवतायै निवेदयामि शिवे हविरिदं जुषाण ।**

हरि०–नैवेद्यनिवेदनमन्त्रमाहैकेन मूलमिति। पूर्वं मूलं वदेत् । तत एतत् सर्वोपकरणान्वितं सिद्धान्नमिष्टेवतायै निवेदयामीति वदेत् । ततः शिवे हविरिदं जुषाणेति वदेत् योजनया ह्रीं श्रीं क्रीं परमेश्वरि स्वाहा एतत् सर्वोपकरणान्वितं सिद्धान्नमिष्टदेवतायै निवेदयामि शिवे हविरिदं जुषाणेति मन्त्रोनैवेद्यसमर्पणायासीत् । सिद्धान्नमित्यामात्रस्याप्युपलक्षणम् ॥९१॥

ततः प्राणादिमुद्राभिः पञ्चभिः प्राशयेद्धविः ।।९२।।

पद्मा–इसके उपरान्त **प्राणाय स्वाहा, अपानाय स्वाहा, समानाय स्वाहा, उदानाय स्वाहा** तथा **व्यानाय स्वाहा** मन्त्र का उच्चारण कर गुरु के द्वारा उपदेशित प्राणादि पांच मुद्राएँ प्रदर्शित कर देवी को हवि प्रदान करे ।

हरि०–तत इत्यादि। ततोऽनन्तरम्प्राणाय स्वाहा। अपानाय स्वाहा, समानाय स्वाहा उदानाय स्वाहा, व्यानाय स्वाहेति मन्त्रैर्गुरूपदिष्टाभिः पञ्चभिःप्राणादिमुद्राभिर्देवीं हविः प्राशयेत् भोजयेत् ॥९२॥

वामे नैवेद्यमुद्राञ्च विकचोत्पलसन्निभम् ।
दर्शयेन्मूलमन्त्रेण पानार्थं तीर्थपूरितम् ।।९३।।

कलशं विनिवेद्याथ पुनराचमनीयकम् ।
ततः श्रीपात्रसंस्थेनामृतेन तर्पयेत् त्रिधा ।।९४।।

पद्मा–बायें हाथ से खिले हुए कमल की आकृति वाली नैवेद्य मुद्रा दिखाएँ। मूलमन्त्र का उच्चारण करते हुए पीने के लिए सुरा से पूर्ण कलश एवं पुनराचमनीय निवेदन कर श्रीपात्र के अमृत द्वारा तीन बार तर्पण करे ।

हरि०–वाम इति। वामे हस्ते विकचोत्पलसन्निभां प्रफुल्लपङ्कजतुल्यां नैवेद्यमुद्राञ्च देवीं दर्शयेत् । ततो मूलमन्त्रेण तीर्थपूरितं मद्येन पूरितं कलशं पानार्थं देव्यै निवेद्य पुनराचमनीयकं दद्यात् । ततोऽनन्तरं श्रीपात्रसंस्थेनामृतेन त्रिधा त्रिवारं पूर्ववद्देवीं तर्पयेत् ।।९३-९४।।

उत्तमाङ्ग हृदाधारपादसर्वाङ्गिकेषु च ।
पञ्च पुष्पाञ्जलीन्दत्त्वा मूलमन्त्रेण देशिकः ।।९५।।
कृताञ्जलिपुटो भूत्वा प्रार्थयेदिष्टदेवताम् ।
तवावरणदेवांश्च पूजयामि नमो वदेत् ।।९६।।

पद्मा–साधक मूलमन्त्र के द्वारा देवी के मस्तक, हृदय, मूलाधार, दोनों चरण तथा सर्वांग में पांच पुष्पाञ्जलियाँ प्रदान कर हाथ जोड़कर प्रार्थना करे **इष्टदेवते तव आवरणदेवान् पूजयामि नमः** अर्थात् तुम्हारे आवरण देवताओं की पूजा करता हूँ ।

हरि०–उत्तमाङ्गेत्यादि। ततो देशिकः साधको देव्याः उत्तमाङ्गे मस्तके हृदये आधारदेशे पादयोः सर्वाङ्गेषु च मूलमन्त्रेण पञ्च पुष्पाञ्जलीन् दत्त्वा कृताञ्जलिपुटो भूत्वेष्टेवतां प्रार्थयेत्। यत् प्रार्थयेत्तदाहार्द्धेन तवेति। तवावरणदेवानित्युक्त्वा पूजयामि नमः इति पदं वदेत् योजनया इष्टदेवते तवावरणदेवान् पूजयामि नम इति प्रार्थना वाक्यमासीत् ।।९५-९६।।

अग्निनिर्ऋतिवाय्वीशपुरतः पृष्ठतः क्रमात् ।
षडङ्गानि च सम्पूज्य गुरुपङ्क्तीः समर्चयेत् ।।९७।।

पद्मा–यन्त्र के अग्नि कोण, नैर्ऋत्यकोण, वायुकोण ईशानकोण, सामने तथा पीछे के भाग में क्रमपूर्वक षडङ्गपूजा तथा गुरुपंक्ति की अर्चना करे यथा-**ह्रां नमः, ह्रीं नमः, ह्रूं नमः, ह्रैं नमः, ह्रौं नमः, ह्रः नमः ।**

हरि०–आवरणदेवानां पूजायाः प्रकारं दर्शयति अग्नीत्यादिभिः। अग्निनिर्ऋति वाय्वीशपुरतः पृष्ठतः यन्त्रस्याग्निकोणे नैर्ऋतकोणे वायुकोणे ईशानकोणे पुरतोऽग्रे पृष्ठतः पश्चाद्भागे च क्रमतः ह्रां नमः ह्रीं नमः, ह्रूं नमः, ह्रैं नमः, ह्रैं नमः, ह्रौं नमः, ह्रं नमः। इति मन्त्रैः षडङ्गानि षडङ्गानि षडङ्गदैवतानि संपूज्य तथा गुरुपंक्तिर्गुरुश्रेणीः समर्च्चयेत् ।।९७।।

गुरुञ्च परमादिञ्च परापरगुरुन्तथा ।
परमेष्ठिगुरुञ्चैव यजेत् कुलगुरूनिमान् ।।९८।।

पद्मा–गुरु, परमगुरु, परापरगुरु, परमेष्ठिगुरु-इन समस्त कुल गुरुओं की पूजा करे।। यथा **ऊँ गुरवे नमः, ऊँ परमगुरवे नमः, ऊँ परापर गुरवे नमः, ॐ परमेष्ठिगुरवे नमः**। गन्ध पुष्पादि से यन्त्र के मध्य पूजन करें ।

हरि०–गुरुपङ्क्तीरेव दर्शयन्नाह गुरुञ्चेत्यादि। ॐ गुरवे नमः, ॐ परमगुरवे नमः, ॐ परापर गुरवे नमः, ॐ परमेष्ठिगुरुवे नमः इति मन्त्रैर्गन्धपुष्पादिभिर्यन्त्रमध्ये गुरुं परमादिं परम आदिर्यस्य तभाभूतं गुरुं तथैव परापरगुरुं परमेष्टिगुरुञ्चापीमान् कुलगुरुन् क्रमतो यजेत् ॥९८॥

गुरुपात्रामृतेनैव त्रिस्त्रितर्पणमाचरेत् ।
ततोऽष्टदलमध्ये तु पूजयेदष्टनायिकाः ॥९९॥

पद्मा–गुरुपात्र के अमृत से तीन-तीन बार इनका तर्पण करे। ॐ गुरुं तर्पयामि नमः, ॐ परमगुरु तर्पयामि नमः, ॐ परापरगुरुतर्पयामि नमः, ॐ परमेष्ठिगुरुं तर्पयामि नमः यह तर्पणमंत्र है। यन्त्र के अष्ट दलों के मध्य अष्टनायिकाओं की पूजा करें ।

हरि०–गुर्वित्यादि। गुरुपात्रामृतेनैव त्रिस्त्रिवारं त्रिवारं क्रमतो गुरुणां तर्पणमाचरेत् कुर्यात् । ततोऽनन्तरमष्टदलमध्येऽष्टपत्राणामभ्यन्तरे ओं मङ्गलायै नमः इत्येवं प्रणवादिनमोऽन्तन नाममन्त्रेण गन्धपुष्पादिभिरष्टनायिकाः पूजयेत् ॥९९॥

मङ्गला विजया भद्रा जयन्ती चाऽपराजिता ।
नन्दिनी नारसिंही च कौमारीत्यष्टमातरः ॥१००॥

पद्मा–मंगला, विजया, भद्रा, जयन्ती, अपराजिता, नन्दिनी, नारसिंही तथा कौमारी यह आठ मातायें है । इनकी पूजा **ॐ मङ्गलायै नमः** इत्यादि क्रम से करे ।

हरि०–पूज्या अष्टनायिका आह मङ्गलेत्याद्येकेन ॥१००॥

दलाग्रेषु यजेष्टभैरवान् साधकोत्तमः ॥१०१॥

पद्मा–साधक श्रेष्ठ दलों के अग्र भाग में अष्ट भैरवों की पूजा करे। यथा **ॐ असिताङ्ग भैरवाय नमः ॐ रुरु भैरवाय नमः** इत्यादि ।

हरि०–दलेत्यादि। दलाग्रेषु पत्राग्रेषु ओं असिताङ्ग भैरवाय नमः इत्येवं प्रणवादिनमोऽन्तेन नाममन्त्रेण गन्धपुष्पादिभिरष्टभैरवान् साधकोत्तमो यजेत् ॥१०१॥

असिताङ्गो रुरुश्चण्डः क्रोधोन्मत्तो भयङ्करः ।
कपाली भीषणश्चैव संहारोऽष्टौ च भैरवाः ॥१०२॥

पद्मा–असिताङ्ग, रुरु, चण्ड, क्रोधोऽन्मत्त, भयंकर, कपाली-भीषण तथा संहार यह आठ भैरव हैं ।

हरि०–पूज्यानष्टभैरवानाह असिताङ्ग इत्याद्येकेन ॥१०२॥

इन्द्रादिदशदिक्पालान् भूपुरान्तः प्रपूजयेत् ।
तेषामस्त्राणि तद्बाह्ये पूजयेत् तर्पयेत्ततः ॥१०३॥

पद्मा–इन्द्रादि दश दिक्पालों की पूजा भूपुर में करे तथा भूपुर के बाहर उनके अस्त्रों की पूजा करे । इसके बाद दिक्पालों का तर्पण करे ।

हरि०–इन्द्रेत्यादि। ततः प्रणवादिनमोऽन्तेन नाममन्त्रेण गन्धपुष्पादिभिरिन्द्रादिदश-

दिक्पालान् भूपुराभ्यन्तरे प्रपूजयेत् । तेषामिन्द्रादीनामस्त्राणि वज्रादीनि प्रणदिनमोऽन्तनाममन्त्रेण तद्वाह्ये भूपुराद्बहिः पूजयेत् । ततः परम् ओं इन्द्रतर्पयामि नमः इत्येवं प्रणवादिना तर्पयामि नमः इत्यन्तेन नाममन्त्रेण इन्द्रादिदशदिक्पालांस्तर्पयेत् ॥१०३॥

सर्वोपचारैः सम्पूज्य बलिं दद्यात् समाहितः ॥१०४॥

पद्मा–पाद्यादि समस्त उपाचारों से देवी का पूजन कर एकाग्रचित्त से बलि प्रदान करे।

हरि०–सर्वेत्यादि। पाद्यादिभिः सर्वोपचारैर्देवीं सम्पूज्य समाहितः सावधानो भूत्वा देव्यै बलिं दद्यात् ॥१०४॥

मृगश्छागश्च मेषश्च लुलापः शूकरस्तथा ।
शल्लकी शशको गोधा कूर्मः खड्गी दश स्मृताः ॥१०५॥

पद्मा–मृग, छाग, (बकरा), मेष (भेड़ा), महिष (भैंसा) शूकर (सुअर), शल्लकी (साही), शशक (खरगोश), गोध (गोह), कूर्म (कछुआ), तथा खड्गी (गन्डार)–ये दश पशु बलि के लिए प्रशस्त कहे गये है ।

हरि०–ननु बलिदानविधौ कः कः पशुः प्रशस्तः स्यात्तत्राह मृग इत्यादि। लुलापो महिषः। मृगादयो दशबलिदानविधौ प्रशस्ताः स्मृताः ॥१०५॥

अन्यानपि पशून् दद्यात् साधकेच्छानुसारतः ॥१०६॥

पद्मा–साधक अपनी इच्छानुसार अन्य पशुओं की भी बलि प्रदान कर सकता है।

हरि०–अन्यानपीति। न तु मृगादय एव बलिदानविधौ प्रशस्ताः किन्तु साधकेच्छअनुसारतोऽन्यानापि पशून् देव्यै दद्यात् ॥१०६॥

सुलक्षणं पशु देव्या अग्रे संस्थाप्य मन्त्रवित् ।
अर्घ्योदकेन सम्प्रोक्ष्य धेनुमुद्रामृतीकृतम् ॥१०७॥
कृत्वा छागाय पशवे नमः इत्यमुना सुधीः ।
सम्पूज्य गन्धसिन्दूरपुष्पनैवेद्यपाथसा ।
गायत्रीं दक्षिणे कर्णे जपेत् पाशविमोचनम् ॥१०८॥

पद्मा–बुद्धिमान साधक सुन्दर लक्षणों से युक्त पशु को देवी के समक्ष रख कर "फट्" मंत्र के द्वारा अर्घ्य के जल से प्रोक्षित करे तथा धेनुमुद्रा के द्वारा अमृतीकरण कर **छागाय पशवे नमः** (अथवा **मेषाय पशवे नमः**) मंत्र से गंध, सिन्दुर, पुष्प, नैवेद्य तथा जल से उसकी पुजा कर पशु के दाहिने कान में पाशुपाश विमोचनी गायत्री मंत्र (पशु गायत्री) का जप करें ।

हरि०–साधक बलिदानविधिमाह सुलक्षणमित्यादिभिः। मन्त्रवित् मन्त्रज्ञः सुधीः धीरः साधकः सुलक्षणं रोगादिशून्यं पशुं देव्या अग्रे संस्थाप्य विशेषार्घ्योदकेन फट् मन्त्रेण संप्रोक्ष्याभिषिच्य धेनुमुद्रया वं बीजेनामृतीकृतं कृत्वा छागाय पशवे नमः इत्यमुना मन्त्रेण गन्धसिन्दूरपुष्पनैवेद्य पाथसा संपूज्य च छागस्य दक्षिणे कर्णे पशुपाशविमोचनीं गायत्रीं जपेत्। छागायेति मृगादीनामप्युपलक्षणं। पाथो जलम् ॥१०७-१०८॥

पशुपाशाय शब्दान्ते विद्महे पदमुच्चरेत् ।
विश्वकर्म्मणि च पदात् धीमहीति पदं वदेत् ।।१०९।।
ततश्चोदीरयेन् मन्त्री तन्नो जीवः प्रचोदयात् ।
एषा तु पशुगायत्री पशुपाशविमोचनी ।।११०।।

पद्मा–पशुपाशविमोचनी पशु गायत्री इस प्रकार है। सर्वप्रथम साधक 'पशुपाशाय' शब्द का उच्चारण करे। इसके पश्चात् "विद्महे" का उच्चारण करे। फिर 'विश्वकर्मणे' पद का उच्चारण करके 'धीमहि' पद का उच्चारण करे। इसके उपरान्त "तन्नो जीवः प्रचोदयात्" का उच्चारण करे। इस प्रकार **पशुपाशाय विद्महे विश्वकर्मणे धीमहि तन्नो जीवः प्रचोदयात्** यह पशुपाशविमोचनी गायत्री है ।

हरि०–पशुपाशविमोचनीं गायत्रीमाह पशुपाशेत्यादिना। मन्त्री साधकः पशुपाशायेति शब्दस्यान्ते विद्महे इति पदमुच्चरेत् । ततो विश्वकर्मणे इति पदात् धीमहीति पदं वदेत् ततः परं तन्नो जीवः प्रचोदयात् इत्युदीरयेदुच्चरेत् । योजनया पशुपाशाय विद्महे विश्वकर्मणे धीमहि तन्नो जीवः प्रचोदयात् इति गायत्री जाता।।१०९-११०।।

ततः खड्गं समादाय कूर्चबीजेन पूजयेत् ।
तदग्रमध्यमूलेषु क्रमतः पूजयेदिमान् ।।१११।।

पद्मा–इसके पश्चात् साधक हाथ में खड्ग लेकर कूर्चबीज (हूँ) का उच्चारण कर खड्ग के आगे, मध्य तथा मूल भाग में क्रमशः पूजन करे ।

हरि०–तत इत्यादि। कूर्चबीजेन हूमिति बीजेन। तदग्रमध्यमूलेषु खड्गाग्रमध्य मूलेषु ।।१११।।

वागीश्वरीञ्च ब्रह्माणं लक्ष्मीनारायणौ ततः ।
उमामहेश्वरौ मूले पूजयेत् साधकोत्तमः ।।११२।।

पद्मा–खड्ग के अग्रभाग में वागीश्वरी तथा ब्रह्मा की, खड्ग के मध्यभाग में लक्ष्मीनारायण की तथा खड्ग के मूल में साधक श्रेष्ठ उमामाहेश्वर की पूजा करे ।

हरि०–खड्गाग्रमयमूलेषु पान् पूजयेत्तानाहैकेन वागीश्वरीमिति। ओं वागीश्वरीब्रह्माभ्यां नमः इत्येवं प्रणवादिनमोऽन्तनाममन्त्रेण गन्धपुष्पादिभिः खड्गाग्रे वागीश्वरीं सरस्वतीं ब्रह्माणञ्च ततः खड्गमध्ये लक्ष्मीनारायणौ ततः खड्गमूले उमामहेश्वरौ साधकोत्तमः पूजयेत् ।।११२।।

अनन्तरं ब्रह्मविष्णुशिवशक्तियुताय च ।
खड्गाय नमः इत्यन्तमनुना खड्गपूजनम् ।।११३।।

पद्मा–साधक इसके पश्चात् **ब्रह्मविष्णुशिवशक्तियुताय खड्गाय नमः** इस मन्त्र से खड्ग का पूजन करे ।

हरि०–अनन्तरमिति । ततोऽनन्तरं ब्रह्मविष्णुशक्तियुताय खड्गाय नमः इत्यन्तमनुना खड्गपूजनं कुर्यात् ।।११३।।

महावाक्येन चोत्सृज्य कृताञ्जलिपुटो वदेत् ।
यथोक्तेन विधानेन तुभ्यमस्तु समर्पितम् ।।११४।।

पद्मा–महावाक्य **विष्णु ॐ तत्सत् ॐ अद्यामुकमास्यमुकपक्षेऽमुकतिथावमुकराशि स्थिते भास्करे समस्ताभीप्सितपदार्थसिद्धिकामोऽमुकगोत्रोऽमुकशर्माऽहमिष्टदेवतायै पशुमिमं सम्प्रददे** के द्वारा पशु का उत्सर्ग कर हाथ जोड़कर प्रार्थना करे-यथोक्तेन विधानेन तुभ्यमस्तु समर्पितम् ।

हरि०–महावाक्येनेति। ततो महावाक्येन **विष्णु ॐ तत्सत् ॐ अद्यामुकमास्यमुकपक्षेऽमुक तिथावमुकराशि स्थिते भास्करे समस्ताभीप्सितपदार्थसिद्धिकामोऽमुकगोत्रोऽमुकशर्माऽहमिष्टदेवतायै पशुमिमं सम्प्रददे** इति महता वाक्येन छागमुत्सृज्य देव्यै समर्प्य कृताञ्जलिपुटो भूत्वा वदेत् । किं वदेत्तत्राह यथेत्यादि।।१४।।

इत्थं निवेद्य च पशुं भूमिसंस्थन्तु कारयेत् ।
देवीभावपरो भूत्वा हन्यात्तीव्रप्रहारतः ।।११५।।
स्वयं वा भ्रातृपुत्रैर्वा भ्रात्रा वा सुहृदैव वा ।
सपिण्डेनाथ वा छेद्यो नारिपक्षं नियोजयेत् ।।११६।।

पद्मा–इस प्रकार विधिपूर्वक निवेदन करके पशु को भूमि पर खड़ा करे। देवी की भक्ति में लीन होकर तीक्ष्ण प्रहार से पशु का वध करे। भाई, भतीजे, सुहृद अथवा सपिण्ड पुरुष के द्वारा पशु का वध कराये अथवा स्वयं करे। शत्रु के पक्ष के व्यक्तियों से पशु का कदापि वध न कराये ।

हरि०–इत्थमिति। पशुं छागादिम् । स्वयं वा आत्मनैव व। पशुहननेऽरिपक्षं न नियोयेत् प्रर्त्तयेत् ।।११५-११६।।

ततः कवोष्णं रुधिरं बटुकेभ्यो बलिं हरेत् ।
सप्रदीपशीर्षबलिर्नमो देव्यै निवेदयेत् ।।११७।।

पद्मा–इसके उपरान्त एष **कवोष्णरुधिरबलिः ॐ बटुकेभ्यो नमः** इस मन्त्र को पढ़कर बटुकगणों को कुछ उष्ण रुधिर बलि दे और **एष सप्रदीपशीर्षबलि ॐ ह्रीं देव्यै नमः** यह कहकर देवी को शीर्ष बलि प्रदान करें ।

हरि०–तत इति। ततः परं एष कवोष्णरुधिरबलिः ओं बटुकेभ्यो नमः इति मन्त्रेण कवोष्णमीमदुष्णं रुधिरबलिं निवेदयेत् ।।११७।।

एवं बलिविधिः प्रोक्तः कौलिकानां कुलार्चने ।
अन्यथा देवताप्रीतिर्जायते न कदाचन् ।।११८।।

पद्मा–इस प्रकार कौलिकों के कुलार्चन की विधि कही गयी है। कुलार्चन इसी प्रकार से करना चाहिए अन्यथा देवता की प्रसन्नता नही होते हैं ।

हरि०–एवमिति। अन्यथा बलिविधेरभावात् ।।११८।।

ततो होमं प्रकुर्वीत तद्विधानं शृणु प्रिये! ।
स्वदक्षिणे बालुकाभिर्मण्डलं चतुरस्त्रकम् ।।११९।।
चतुर्हस्तपरिमितं कृत्वा मूलेन वीक्षणम् ।
अस्त्रेण ताडयित्वा च तेनैव प्रोक्षणं चरेत् ।।१२०।।

पद्या–हे प्रिये! इसके पश्चात् साधक होम करे। होम का विधान कहता हूँ, सुनो! साधक अपने दाहिने भाग में बालु के चार हाथ का मण्डल बनाकर उसका मूलमन्त्र के द्वारा वीक्षण करे तथा फट् मन्त्र को पढ़कर कुश से ताड़न करके उस मन्त्र से ही प्रोक्षित करे।

हरि०–अनन्तरकर्त्तव्यमाह तत इति द्वाभ्याम् । अथ होमविधानमाह स्वदक्षिणे इत्यादिभिः। स्वदक्षिणे देशे बालुकाभिश्चतुर्हस्तपरिमितं चतुरस्त्रकश्चतुष्कोणं मण्डलं कृत्वा मूलेन मन्त्रेण तस्य वीक्षणं विलोकनञ्च कृत्वा अस्त्रेणफटा । मन्त्रेण कुशेन ताडयित्वा च तेनैव फटैव मन्त्रेण मण्डलस्य प्रोक्षणं सेकञ्चरेत् ।।११९-१२०।।

कूर्चबीजेनावगुण्ठ्य देवतानामपूर्वकम् ।
स्थाण्डिलाय नमः इति यजेत् साधकसत्तमः ।।१२१।।

पद्या–साधक श्रेष्ठ कूर्च बीज हूँ के द्वारा मण्डल को घेरकर देवता के नाम का उच्चारण करते हुए **स्थाण्डिलाय नमः** से स्थण्डिल की पूजा गन्ध पुष्प से करे।

हरि०–**कूर्चेत्यादि।** कूर्चबीजेन हूमिति बीजेन तन्मण्डलमवगुण्ठ्य वेष्टयित्वा देवतानामपूर्वकं स्थाण्डिलाय नमः इत्युच्चरन् साधकसत्तमो यजेत् अमुकदेवता स्थण्डिलाय नमः इति मन्त्रेण गन्धपुष्पादिभिः स्थाण्डिलं पूजयेदित्यर्थः।।१२१।।

प्रागग्रा उदग्राश्च रेखाः प्रादेशसम्मिताः ।
तिस्रस्तिस्रो विधातव्यास्तत्र सम्पूजयेदिमान् ।।१२२।।

पद्या–इसके पश्चात् स्थाण्डिल में प्रादेश के परिमाणानुसार तीन पूर्वाग्र और तीन उत्तराग्र रेखाएँ बनाकर विधान के अनुसार वहाँ देवताओं की पूजा करे।

हरि०–**प्रागग्रा इति।** प्राक् प्राच्यां दिश्यग्राणि यासां ताः प्रागग्राः । उदक् उदीच्यां दिश्यग्राणि यासा ता उदगग्राश्च। प्रादेशसम्मिता प्रादेशेन परिमितास्तिस्त्रस्तिस्रो रेखाः स्थण्डिले विधातव्याः । तत्र तासु रेखासु इमान् संपूजयेत् । तर्जनी युक्ते विस्तृतेऽगुष्ठे प्रादेशः स्यात् । तथैवामरसिंहः –

प्रादेशतालगोकर्णास्तर्जन्यादियुते तते ।
अङ्गुष्ठे सकनिष्ठे स्याद्वितस्तिर्द्वादशोङ्गुल इति ।

प्रागग्रासु च रेखासु मुकुन्देशपुरन्दरान् ।
ब्रह्मवैवस्वतेन्दूंश्च उत्तराग्रासु पूजयेत् ।।१२३।।

पद्या–पूर्वाग्र की तीन रेखाओं पर क्रमानुसार, विष्णु, शिव तथा इन्द्र की और उत्तराग्र की तीन रेखाओं पर ब्रह्मा, यम एवं चन्द्रमा की पूजा करे।

हरि०–तासु रेखासु यान् पूजयेत्तान् दर्शयन्नाह प्रागग्रास्विति। प्रागग्रासु रेखासु प्रणवादिनमोऽन्तनाममन्त्रेण गन्धपुष्पादिभिः मुकुन्देशपुरन्दरान् विष्णुशिवेन्द्रान् क्रमतः पूजयेत्। उत्तराग्रासु रेखासु तु ब्रह्मवैवस्वतेन्दून् ब्रह्मयमचन्द्रान् पूजयेत् ॥१२३॥

ततः स्थण्डिलमध्ये तु हसौः गर्भं त्रिकोणकम् ।
षट्कोणं तद्बहिर्वृत्तं ततोऽष्टदलपङ्कजम् ।।
भूपुरं तद्बहिर्विद्वान् विलिखेद्यन्त्रमुत्तमम् ।।१२४।।

पद्मा–इसके पश्चात् साधक स्थण्डिल के मध्य में त्रिकोण मण्डल बनाकर उसके गर्भ में **हसौः** लिखे। त्रिकोणमण्डल के बाहर षट्कोण, इसके बाहर वृत्त तथा इसके बाहर अष्टदल कमल लिखे। अष्टदल के बाहर विद्वान् साधक भूपुर का निर्माण कर श्रेष्ठयन्त्र बनाये।

हरि०–**तत इति**। ततोऽनन्तरं स्थण्डिलमध्ये हसौः मिलिता एव हकारसकारौकाररविसर्गा गर्भे यस्य तथाभूतं त्रिकोणकं तद्बहिः षट्कोणं तद्बहिर्वृत्तं च मण्डलं ततो बहिरष्टदलपङ्कजं ततोऽपि बहिश्चतुष्कोणञ्चतुर्द्वारं भूपुरञ्च विद्वान विलिखेत् ॥१२४॥

मूलेन पुष्पाञ्जलिना संपूज्य प्रणवेन तु ।
होमद्रव्याणि संप्रोक्ष्य कर्णिकायां यजेत् सुधीः ।
मायामाधारशक्त्यादीन् प्रत्येकं वा प्रपूजयेत् ।।१२५।।

पद्मा–इसके पश्चात् मूलमन्त्र से पुष्पाञ्जलि प्रदान कर यन्त्र की पूजा करे तथा प्रणव (ॐ) से होम द्रव्य का प्रोक्षण करे। अष्टदल की कर्णिका में मायाबीज **ह्रीं** से आधारशक्तियों की एक बार अथवा पृथक् पृथक् पूजा करे।

हरि०–**मूलेनेति**। एवं लिखितमुत्तमं यन्त्रं मूलेन यन्त्रेण पुष्पाञ्जलिनां संपूज्य प्रणवेन होमद्रव्याणि च संप्रोक्ष्याष्टदलपङ्कजस्य कर्णिकायां बीजकोशे समुदितनेवाधारशक्त्यादीन् माया ह्री बीजमुच्चरन् सुधीः साधको यजेत्। ह्रीं आधारशक्त्यादिभ्यो नमः इति मन्त्रेण गन्धपुष्पादिभिः पूजयेदित्यर्थः। अथवा आधारशक्त्यादिकं प्रत्येकमेव प्रपूजयेत् ॥१२५॥

अग्न्यादिकोणे धर्म्मञ्च ज्ञानं वैराग्यमेव च ।
ऐश्वर्यं पूजयित्वा तु पूर्वादिषु दिशां क्रमात् ।।१२६।।
अधर्म्ममज्ञानमिति अवैराग्यमनन्तरम् ।
अनैश्वर्यं यजेन्मन्त्री मध्येऽनन्तञ्च पद्मकम् ।।१२७।।

पद्मा–यन्त्र के अग्नि आदि चार कोणों में धर्म, ज्ञान, वैराग्य तथा ऐश्वर्य की और पूर्व से क्रमानुसार चारों ओर अधर्म, अज्ञान, अवैराग्य तथा अनैश्वर्य की पूजा करके मध्यस्थल में अनन्त तथा पद्म की पूजा करे।

हरि०–**अग्नीत्यादि**। प्रणवादिनमोऽन्तनाममन्त्रेण गन्धपुष्पादिभिर्यन्तस्याग्न्यादि कोणे क्रमतो धर्म ज्ञानं वैराग्यमैश्वर्यञ्च पूजयित्वा दिशां क्रमात् पूर्वादिषु दिक्षु अधर्मज्ञानवैराग्यं एतदनन्तरमनैश्वर्यञ्च मन्त्री यजेत्। यन्त्रस्य मध्येऽनन्तं पद्मकञ्च यजेत् ॥१२६-१२७॥

कलासहितसूर्यस्य तथा सोमस्य मण्डलम् ।
प्रागादिकेशरेष्वेषु मध्ये चैताः प्रपूजयेत् ।।१२८।।

पद्मा–यन्त्र में **ॐ सूर्यमण्डलाय द्वादशकलात्मने नमः** से कलासहित सूर्य का एवं **ॐ सोममण्डलाय षोडशकलात्मने नमः** से कला सहित चन्द्रमा का पूजन करे।

हरि०–कलेत्यादि। पूर्वोक्ताभ्यामेव मन्त्राभ्यां गन्धपुष्पादिभिः। कलासहित सूर्यस्य तथा कलासहितस्य सोमस्य च मण्डलं यन्त्रमध्ये एवं प्रपूजयेत्। एषु प्रागादि केशरेषु मध्ये च क्रमेणैताः प्रपूजयेत ॥१२८॥

पीता श्वेताऽरुणा कृष्णा धूम्रा तीव्रा तथैव च ।
स्फुलिङ्गिनी च रुचिरा ज्वलिनीति तथा क्रमात् ।।१२९।।

पद्मा–पीता, श्वेता, अरुणा, कृष्णा, धूम्रा, तीव्रा, स्फुलिङ्गिनी, रुचिरा तथा ज्वलिनी–इन अग्नि की जिह्वाओं का प्रागादि केशर में क्रमशः पूजन करे।

हरि०–या प्रपूजयेत्ता आह पीतेत्याद्येकेन। पीताश्वेतादीनां मध्ये ज्वलिनीं मध्ये पूजयेत् ॥१२९॥

प्रणवादिनमोऽन्तेन सर्वत्र पूजनं चरेत् ।
रं वह्नेरासनायेति नमोऽन्तेन प्रपूजयेत् ।।१३०।।

पद्मा–सर्वत्र देवताओं के नाम के आदि में प्रणव (ॐ) तथा अन्त में **नमः** लगाकर पूजन करे।

हरि०–प्रणवादीत्यादि। सर्वत्र देशोनमोऽन्तेन रं वह्नेरासनायेति मन्त्रेण यन्त्रमध्ये वह्नेरासनं प्रपूजयेत् ॥१३०॥

वागीश्वरीमृतुस्नातां नीलेन्दीवरलोचनाम् ।
वागीश्वरेण संयुक्तां ध्यात्वा मन्त्री तदासने ।।१३१।।
मायया तौ प्रपूज्याथ विधिवद्वह्निमानयेत् ।
मूलेन वीक्षणं कृत्वा फटाऽऽवाहनमाचरेत् ।।१३२।।

पद्मा–इसके उपरान्त साधक ऋतुस्नाता नीलकमल के समान नेत्रवाली वागीश्वरी का ध्यान करके अग्नि आसन में मायाबीज 'ह्रीं' द्वारा वागीश्वर तथा वागीश्वरी का पूजन करे। इसके उपरान्त विधिपूर्वक अग्नि को ला करके मूलमन्त्र से वीक्षण एवं फट् से आवाहन करे। पूजन इस प्रकार करके-**ॐ ह्रीं ब्रह्मणे नमः ॐ ह्रीं वागीश्वर्यै नमः।**

हरि०–वागीश्वरीमिति। ततो वागीश्वरेण ब्रह्मणा संयुक्तां नीलेन्दीवरलोचनां श्यामपङ्कजनेत्राम् ऋतुस्नातां वागीश्वरीं ध्यात्वा मन्त्री साधकस्तदासने तस्मिन् वह्निपीठे तौ वागीश्वरी ब्रह्माणौ मायया ह्रीं बीजाद्येन नमोऽन्तेन नाममन्त्रेण प्रपूज्याथानन्तरं, विधिवत् शरावेण कांस्यपात्रेण वा शुद्धमग्निमानयेत्। मूलेन मन्त्रेण वह्नेर्वीक्षणं कृत्वा फटा मन्त्रेण तस्यैवावाहनञ्चरेत् ॥१३१-१३२॥

प्रणवं च ततो वह्नेर्योगपीठाय हृन्मनुः ।
यन्त्रे पीठं पूजयित्वा दिक्षु चैताः प्रपूजयेत् ।
वामा ज्येष्ठ तथा रौद्री अम्बिकेति यथाक्रमात् ।।१३३।।

पद्या–आवाहन के अन्त में प्रणव 'ॐ' का उच्चारण करके 'वह्नेर्योगपीठाय नमः' इस मन्त्र को पढ़कर वह्निपीठ की पूजा करे। इसके पश्चात् पीठ की पूर्व की ओर क्रमपूर्वक चारों ओर वामा, ज्येष्ठा, रौद्री तथा अम्बिका की पूजा करे ।

हरि०–**प्रणवमिति।** पूर्वं प्रणवं वदेत् ततो वह्नेर्योगपीठायेति वदेत् । ततो हृत् नमः इति वदेत् । योजनया ओं वह्नेर्योगपीठाय नमः इति मनुर्जातः। अनेनैव मनुना यन्त्रे वह्नेः पीठं पूजयित्वा पीठात् पूर्वादिषु चतसृषु दिक्षु प्रणवादिनोऽन्त नाममन्त्रेण गन्धपुष्पादिभिरेताश्च प्रपूजयेत् । पूर्वादि दिक्षु याः प्रपूजयेत्ता आह वामेत्याद्यर्द्धेन॥१३३॥

ततोऽमुक्त्या देवतायाः स्थण्डिलाय नमः पदम् ।
इति स्थण्डिलमापूज्य तन्मध्ये मूलरूपिणीम् ।।१३४।।
ध्यात्वा वागीश्वरी देवीं वह्निबीजपुरः सरम् ।
वह्निमुद्धृत्य मूलान्ते कूर्चमस्त्रं समुच्चरन् ।।१३५।।
क्रव्यादेभ्यो वह्निजायां क्रव्यादांशं परित्यजेत् ।
अस्त्रेण वह्निं संवीक्ष्य कूर्च्चेनैवावगुण्ठयेत् ।।१३६।।

पद्या–इसके पश्चात् **अमुक्या देवतायाः स्थण्डिलाय नमः** इस मन्त्र के द्वारा स्थण्डिल की पूजा कर उसके मध्य में मूलरूपिणी वागीश्वरी देवी का ध्यान कर अग्निबीज 'रं' का उच्चारण कर अग्नि को उठाकर **मूलं हूं फट् क्रव्यादेभ्यो स्वाहा** से राक्षसगण को प्रदान करने योग्य अंश को दक्षिण दिशा में फेंक दे। इसके उपरान्त अस्त्र बीज फट् से अग्नि का वीक्षण कर, कूर्चबीज 'हूँ' से अवगुण्ठन करे अर्थात् तर्जनी घुमाकर वेष्ठित करें ।

हरि०–**तत इति।** ततोऽनन्तरम् अमुक्या देवतायाः स्थण्डिलाय नमः इति सर्व मन्त्र पदमुच्चरन् गन्धपुष्पादिभिः स्थण्डिलमापूज्य तन्मध्ये मूलदेवतारूपिणीं वागीश्वरी देवीं ध्यात्वा वह्निबीजं पुरः सरं यत्र वह्निबीजपुरःसरं यथास्यात्तथा वह्निमुद्धृत्य रं बीजेन वह्नि-मुत्थाप्येत्यर्थः। मूलान्ते कूर्च हूँ बीजमस्त्रं फडिति या बीजं समुच्चरन् तदन्ते क्रव्यादेभ्यः इत्युच्चरन् तदन्ते वह्निजाया स्वाहेत्युच्चरेत् । योजनया ह्रीं श्रीं क्रीं परमेश्वरि स्वाहा हूँ। फट् क्रव्यादेभ्यः स्वाहेति मन्त्रो जातः। अनेनैव मन्त्रेण वह्नितो ज्वलदाहरुपं क्रव्यादांशं राक्षसभागं दक्षिणस्यां दिशि परित्यजेत् । ततोऽस्त्रेण फट्वह्निं संवीक्ष्य दृष्ट्वा कूर्चेनैव हूँ बीजेनैवावगुण्ठ-येद्वह्निं वेष्टयेत् ॥१३४-१३६॥

धेन्वा चैवामृतीकृत्य हस्ताभ्याममग्निमुद्धरेत् ।
प्रादक्षिण्यक्रमेणाग्निं भ्रामयन् स्थण्डिलोपरि ।।१३७।।

त्रिधा जानुस्पृष्टभूमिः शिवबीजं विचिन्तयन् ।
आत्मनोऽभिमुखीकृत्य योनियन्त्रे नियोजयेत् ।।१३८।।

पद्मा–धेनमुद्रा के द्वारा अमृतीकरण कर दोनों हाथों से अग्नि को उठाकर प्रदक्षिणा क्रम से स्थण्डिल के ऊपर उसे तीन बार घुमा कर अग्नि को शिववीर्य जानते हुए घुटनों से भूमि का स्पर्श करते हुए अपने मुख की ओर योनियन्त्र के ऊपर स्थापित करे।

हरि०–धेन्वेति! धेन्वा मुद्रया चामृतीकृत्य हस्ताभ्यां पुनरग्निमुद्धरेत् उत्थापयेत्। उत्थाप्य च प्रादक्षिण्यक्रमेण स्थण्डिलोपरि त्रिधा निवाराग्निंभ्रामयाम् शिवबीजं शम्भुवीर्यमरूपमग्निं विचिन्तमंश्च साधको जानुस्पृष्टभूमिः सन्नात्मनोऽभिमुखीकृत्य योनियन्त्रे त्रिकोणमण्डले नियोजयेत् स्थापयेत् ।।१३७-१३८।।

ततो मायां समुच्चार्य वह्निमूर्तिञ्च ङेयुताम् ।
नमोऽन्तेन प्रपूज्याथ रं वह्निपरतः सुधीः ।
चैतन्याय नमो वह्नेश्चैतन्यं परिपूजयेत् ।।१३९।।

पद्मा–इसके पश्चात् बुद्धिमान् साधक मायाबीज ह्रीं का उच्चारण करके अन्त में नमः शब्द लगाकर चतुर्थी विभक्ति का एकवचनान्त वह्निमूर्ति शब्द का उचरण करके वह्नि मूर्ति की पूजा करे। **ह्रीं वह्निमूर्तये नमः** मन्त्र से पूजन करे। **रं वह्नि चैतन्याय नमः** से वह्नि चैतन्य की पूजा करे।

हरि०–तत इति। ततोऽनन्तरं मायां ह्रीं बीजं समुच्चार्य नमोऽन्तेन नमसाऽन्तेन सहङेयुता वह्निमूर्ति समुच्चरेत्। योजनया ह्रीं वह्निमूर्त्तये नमः इति मन्त्रो जातः। अनेन मन्त्रेण वह्निमूर्त्ति प्रपूज्याथानन्तरं सुधीः साधको रं वह्नेः परतः चैतन्याय नमः इति वदेत्। योजनया रं वह्निचैतन्याय नमः इति मनुजातः। अनेनैव मनुना वह्नेः चैतन्यं परिपूजयेत् ।।१३९।।

नमसा वह्निमूर्तिञ्च चैतन्यं परिकल्प्य च ।
प्रज्वालयेत्ततो वह्निं मन्त्रेणानेन मन्त्रवित् ।।१४०।।

पद्मा–नमः मन्त्र से वह्निमूर्ति और वह्निचैतन्य की भावना मन ही मन करते हुए आगे कहे गये मन्त्र से प्रज्वलित करे।

हरि०–नमसेति। नमसा मन्त्रेण वह्निमूर्ति वह्नेः चैतन्यञ्च मनसा विरच्य ततोऽनेनानन्तरमेव वक्ष्यमाणेन मन्त्रेण मन्त्रवित् साधको वह्निं प्रज्वालयेदुद्दीपयेत् ।।१४०।।

प्रणवं पूर्वमुद्धृत्य चित्पिङ्गलपदं तथा ।
हनद्वयं दह दह पच पचेति ततो वदेत् ।।१४१।।
सर्वज्ञाज्ञापय स्वाहा वह्निप्रज्वालने मनुः ।
ततः कृताञ्जलिर्भूत्वा प्रकुर्यादग्निवन्दनम् ।।१४२।।

पद्मा–सर्व प्रथम 'ॐ' का उच्चारण करके चित्पिङ्गल पद इसके पश्चात् 'हन हन' फिर 'दह' तथा 'दह पच पच' का उच्चारण करे 'सर्वज्ञाज्ञापय स्वाहा' का उच्चारण करे।

इस प्रकार **ॐ चित्पिङ्गल हन हन दह दह पच पच सर्वज्ञाज्ञापय स्वाहा** मन्त्र से अग्नि जलायें तथा हाथ जोड़कर अग्नि की वन्दना करे।

हरि०–वह्निप्रज्वालनमन्त्रमेवाह प्रणवमित्यादिनासार्द्धेन। पूर्वं प्रणवमुद्धृत्य उक्त्वा ततः परं चित्पिङ्गलपदं वदेत्। ततो हनद्वयं ततो दहदहेति ततः पचपचेति च वदेत्। ततः सर्वज्ञाज्ञापय स्वाहेति वदेत् योजनया ओं चित्पिङ्गल हन हन दह दह पच पच सर्वज्ञाज्ञापय स्वाहेति मन्त्रो जातः। अयं मनुर्वह्निप्रज्वालने स्मृतः॥१४१-१४२॥

अग्निं प्रज्वलितं वन्दे जातवेदं हुताशनम्।
सुवर्णवर्णममलं समिद्धं सर्वतोमुखम्॥१४३॥

पद्मा–प्रज्वलितत अग्नि, सोने के समान स्वच्छ, प्रदीप्त तथा सर्वतोमुख, जातवेद, हुताशन की मैं वन्दना करता हूँ।

हरि०–अग्निवन्दनमन्त्रमाह अग्निं प्रज्वलितं वन्दे इत्यादि॥१४३॥

इत्युपस्थाप्य दहनं छादयेत् स्थण्डिलं कुशैः।
स्वेष्टनाम्ना वह्निनाम् कृत्वाऽभ्यर्चनमाचरेत्॥१४४॥

पद्मा–इस प्रकार अग्नि की वन्दना करके कुशों से स्थण्डिल को ढक दे। इसके पश्चात् अपने इष्ट देवता का नाम लेकर वह्निनाम का उच्चारण कर अभ्यर्थना करे।

हरि०–**इतीति**। इत्यनेनैव मन्त्रेण दहनं वह्निमुपस्थाप्याभिवन्द्य स्थण्डिलं छादयेत्। ततः स्वेष्टनाम्ना वह्निनाम कृत्वा इतोऽनन्तरमेव वक्ष्यमाणेन मन्त्रेण वह्नेरभ्यर्चनमाचरेत्॥१४४॥

तारो वैश्वानरपदात् जातवेदपदं वदेत्।
इहावहावहेत्युक्त्वा लोहिताक्षपदान्तरम्॥१४५॥
सर्वकर्माणि पदतः साधयान्तेऽग्निवल्लभा।
इत्यर्ध्यर्च्य हिरण्यादिसप्तजिह्वाः प्रपूजयेत्॥१४६॥

पद्मा–सर्वप्रथम प्रणव ॐ' का उच्चारण करे। इसके बाद 'इहावहावह' कहकर लोहिताक्ष पद का उच्चारण करे। इसके पश्चात् 'वैश्वानर' पद इसके उपरान्त जातवेद पद का उच्चारण करे। इसके बाद सर्वकर्माणि पद का तथा उसके उपरान्त साधय और स्वाहा का उच्चारण करे। इस प्रकार **ॐ वैश्वानर जातवेद इहावहावह लोहिताक्ष सर्वकर्माणि साधय स्वाहा** मन्त्र बनता है। इसके बाद अग्नि की हिरण्यादि सात जिह्वाओं का पूजन करे।

हरि०–वह्न्यभ्यर्थनयन्त्रमेवाह तार इत्यादिना सार्द्धेन। पूर्वं तारः प्रणवो वाच्यः ततो वैश्वानरपदात् परं जातवेदपदं वदेत्। तत इहावहावहेत्युक्त्वा लोहिताक्ष रूपपदान्तरं वदेत्। ततः सर्वकर्माणि पदात्परं साधयेति पदं वदेत्। तदन्ते चाग्निवल्लभा स्वाहा वाच्या। योजनया ओं वैश्वानर जातवेद इहावहावह लोहिताक्ष सर्वकर्म्माणि साधय स्वाहेति मनुरासीत्।

इत्यनेनैव मनुना स्वेष्टदेवतानामानं वह्निमभ्यर्च्य ओं वह्नेर्हिरण्यादिसप्तजिह्वाभ्यो नमः इति मन्त्रेण वह्नेर्हिरण्यादि सप्तजिह्वा गन्ध पुष्पादिभिः पूजयेत् ॥१४५-१४६॥

सहस्रार्च्चि पदं ङेऽन्तं हृदयाय नमो वदन् ।
षडङ्गं पूजयेद्वह्नेस्ततो मूर्त्तीर्यजेत् सुधीः ॥१४७॥

पद्मा–बुद्धिमान साधक **सहस्रार्चिषे हृदयाय नमः** मन्त्र से वह्नि हृदय की पूजा करे। **ॐ वह्नेः षडङ्गेभ्यो नमः** मन्त्र से अग्नि के हृदयादि षडङ्ग की पूजा करे तथा **ॐ वह्निमूर्तिभ्यो नमः** मन्त्र से अग्नि मूर्तियों की पूजा करे ।

हरि०–सहस्रेत्यादि। ङेऽन्तं सहस्रार्च्चिः पदं ताते हृदयाय नम इति च पदं वदन् सहस्रार्च्चिणे हृदयाय नमः इति मन्त्रं समुच्चरन् साधको वह्नेर्हृदयं पूजयेत् ततो वह्नेः षडङ्गेभ्यो नम इति मन्त्रेण गन्धपुष्पादिभिर्वह्नेः षडङ्गपूजयेत् । **ततो वह्निमूर्त्तिभ्यो नमः** इति मन्त्रेण वह्नेमूर्त्तीः सुधीर्यजेत् ॥१४७॥

जातवेदप्रभृतयो मूर्त्तयोऽष्टौ प्रकीर्त्तिताः ॥१४८॥

पद्मा–'जातवेद' आदि अग्नि की अष्टमूर्तियों को पहले ही कहा जा चुका है ।

हरि०–ननु वह्नेः कति मूर्त्तयः सन्तीत्यपेक्षायामाह जातवेदेत्यादि। जातवेदप्रभृतयो वह्निरष्टौ मूत्तर्यः प्रकीर्तिताः पूर्वमुक्तः॥१४८॥

ततो यजेदष्टशक्तीर्ब्राह्म्याद्यास्तदनन्तरम् ।
पद्माद्यष्टनिधीनिष्ट्वा यजेदिन्द्रादिदिक्पतीन् ॥१४९॥

पद्मा–इसके उपरान्त ब्राह्मी इत्यादि अष्ट शक्तियों की पूजा **ॐ ब्राह्म्यदिभ्योऽष्टशक्तिभ्यो नमः** मन्त्र से करे तथा **ॐ पद्माष्टनिधिभ्यां नमः** मन्त्र से पद्मादि आठ निधियों की गन्धपुष्पादि से पूजा करे । इसके पश्चात् इन्द्रादि दस दिक्पालों की पूजा करे ।

हरि०–तत इति । ततोऽनन्तरं ब्राह्म्यादिभ्योऽष्टशक्तिभ्यों नमः इति मन्त्रेण गन्धपुष्पादिभिर्ब्राह्म्याद्याः अष्ट शक्तीर्यजेत् । तदनन्तरं पद्माद्यष्टनिधिभ्यो नमः इति मन्त्रेण गन्धपुष्पादिभिः पद्माद्यष्टनिधीनिष्टवा सम्पूज्य इन्द्रादिदिक्पतीन् यजेत् ॥१४९॥

वज्राद्यस्त्राणि सम्पूज्य प्रादेशपरिमाणकम् ।
कुशपत्रद्वयं नीत्वा घृतमध्ये निधापयेत् ॥१५०॥

पद्मा–इसी प्रकार दिक्पालों के वज्र, शक्ति, दण्ड, खड्ग, पाश, अंकुश, गदा, त्रिशूल चक्र तथा पद्म की पूजा कर प्रादेश (अंगूठे और तर्जनी के बीच का स्थान) के परिमाण वाले दो कुश का पत्र लेकर घी के मध्य में स्थापित करे ।

हरि०–वज्रत्यादि। तत इन्द्रादीनाञ्च वज्राद्यस्त्राणि सम्पूज्य प्रादेशपरिमाणकं कुशपत्र नीत्वा गृहीत्वा घृतमध्ये वामे दक्षिणे निधापयेत् स्थापयेत् ॥१५०॥

वामे ध्यायेदिडा नाडी दक्षिणे पिङ्गलां तथा ।
मध्ये सुषुम्नां सञ्चिन्त्य दक्षभागात् समाहितः ॥१५१॥

आज्यं गृहीत्वा मतिमान् दक्षनेत्रे हुताशितुः ।
मन्त्रेणानेन जुहुयात् प्रणवान्तेऽग्न्ये पदम् ।।१५२।।
स्वाहान्तो मनुराख्यातो वामभागद्धर्विर्हरेत् ।
वामनेत्रे हुनेद्वह्नेः ओं सोमाय द्विठो मनुः ।।१५३।।

पद्मा–घृत के बायीं ओर इडा, दाहिनी ओर पिंगला तथा मध्य में सुषुम्ना नाड़ी का ध्यान करे तथा एकाग्रचित्त से दाहिनी ओर से घी ग्रहण कर **ॐ अग्नये स्वाहा** मन्त्र से अग्नि के दाहिने नेत्र में आहुति प्रदान करे। फिर बायीं ओर से घी लेकर **ॐ सोमाय स्वाहा** मन्त्र से अग्नि के बायें नेत्र में आहुति दे ।

हरि०–वामे इत्यादि। घृतस्य वामे भागे इडा नाडीं ध्यायेत् । दक्षिणे भागे पिङ्गलां नाडीं ध्यायेत् । मध्ये च सुषुम्ना नाडीं सञ्चिन्त्य समाहितः सन् दक्षभागादाज्यं घृतं गृहीत्वा हुताशितुरग्नेर्दक्षनेत्रेऽनेनान्तरमेव वक्ष्यमाणेन मन्त्रेण मतिमान् साधको जुहुयात् । दक्षनेत्रे हवनस्य मन्त्रमाह प्रणवान्ते इत्यादिना। प्रणवस्यान्तेऽग्नये इति पदं वाच्यम् । योजनया ओं अग्नये इति मनुर्जातः। अयञ्च मनुः स्वाहान्त आख्यातः। ततो वामभागाद्धविर्हवनीयं घृतं हरेत् गृह्णीयात् । गृहीत्वा च हविर्वह्नेर्वामनेत्रे वक्ष्यमाणमन्त्रेण हुनेत् जुहुयात् । वामनेत्रे हवनस्य मन्त्रमाह। ओं सोमाय द्विठः ओं। सोमाय स्वाहेति मनुः प्रोक्त इति।।१५१-१५३।।

मध्यादाज्यं समानीय ललाटे हवनं चरेत् ।
अग्नीषोमौ सप्रणवौ तुर्यद्विवचनान्वितौ ।।१५४।।
स्वाहान्तोऽयं मनुः प्रोक्तः पुनर्दक्षिणतो हविः ।
गृहीत्वा नमसा मन्त्री प्रणवं पूर्वमुद्धरेत् ।।१५५।।
अग्नये च स्विष्टकृते वह्निकान्तां ततो वदेत् ।
अनेन वह्निवदने जुहुयात् साधकोत्तमः ।
भूभुर्वः स्वर्द्विठान्तेन व्याहृत्या होममाचरेत् ।।१५६।।

पद्मा–मध्यभाग से घी लेकर **ॐ अग्नीषोमाभ्यां स्वाहा** मन्त्र से अग्नि के ललाट में आहुति प्रदान करे। साधक इसके पश्चात् नमः से दायें भाग से पुनः घी ग्रहण कर अग्नि के मुख में **ॐ अग्नये स्विष्टकृते स्वाहा** मन्त्र से होम करे। फिर **ॐ भूः स्वाहा, ॐ भुवः स्वाहा, ॐ स्वः स्वाहा** इन तीन व्याहृतियों से होम करे ।

हरि०–मध्यादिति। ततो मध्यदाज्यं समानीय गृहीत्वा वक्ष्यमाणमन्त्रेण वह्नेर्ललाटे हवनं चरेत् । ललाटे हवनस्य मन्त्रमाह अग्नीत्यादिना । तुर्यद्विवचनान्वितौ चतुर्थीद्विवचनयुक्तौ सप्रणवौ ओंकारसहितौ अग्नीषोमौ वक्तव्यौ। ततश्च ओं अग्नीषोमाभ्यामिति मनुर्जातः। अयं मनुः स्वाहान्तः प्रोक्तः। मन्त्री साधकोनमसा मन्त्रेण पुनर्दक्षिणतो हविः गृहीत्वा पूर्वं प्रणवमुद्धरेत् वदेत् । ततोऽग्नये इति ततः स्विष्टकृते इति ततो वह्निकान्ताञ्च वदेत् । योजनया ओं अग्नये स्विष्टकृते स्वाहेति मनुर्जातः । अनने मनुना साधकोत्तमो वह्निवदनेऽग्निमुखे जुहुयात्।

शोभनेष्टिः स्विष्टः तां करोतीति स्विष्टिकृत् क्विप् तस्मै। ततो द्विठान्तेन स्वाहान्तेन भूरिति भुवारिति स्वारिति च व्याहृत्या होममाचरेत् ॥१५४-१५६॥

तारो वैश्वानारपदात् जातवेद इहावहा ।
वहलोहिपदान्ते च ताक्षसर्वपदं वदेत् ।
कर्माणि साधय स्वाहा त्रिधाऽनेनाहुतीर्हरेत् ।।१५७।।

पद्या–सर्वप्रथम तार 'ॐ' का उच्चारण करे। इसके पश्चात् 'वैश्वानर' पद का उच्चारण करे। तत्पश्चात् "जातवेद इहावहावहलोहि' इसके पश्चात् "ताक्षसर्व" पद का उच्चारण करे। तदनन्तर कर्माणि साधय स्वाहा" का उच्चारण करे। इस प्रकार **ॐ वैश्वानर जातवेद इहावहावह लोहिताक्ष सर्व कर्माणि साधय स्वाहा** मन्त्र का उद्धार होता है। इस मन्त्र से तीन आहुतियाँ प्रदान करे ।

हरि०–तार इत्यादि। पूर्वं तारः प्रणवो वक्तव्यः। ततो वैश्वानरेति पदात् परं जातवेद इहावहावह लोहि इति वदेत् । तत्पदान्ते च ताक्षसर्वेति पदं वदेत् । ततः कर्म्माणि साधय स्वाहेति वदेत् । योजनया ओं वैश्वानर जातवेद इहावहावह लोहिताक्ष सर्वकर्म्माणि साधय स्वाहेति मनुर्जातः। अनेन मनुना त्रिधा वारत्रयमाहुतीर्हरेद्दद्यात् ॥१५७॥

ततोऽग्नौ स्वेष्टमावाह्य पीठाद्यैः सह पूजनम् ।
कृत्वा स्वाहान्तमनुना मूलेन पञ्चविंशतीः ।।१५८।।
हुत्वा वह्न्यात्मनोर्देव्या ऐक्यं सम्भावयन् धिया ।
एकादशाहुतीर्हुत्वामूलेनैवाङ्गदेवताः ।।१५९।।
हुत्वा स्वकाममुद्दिश्य तिलाज्यमधुमिश्रितैः ।।१६०।।
पुष्पैर्विल्वदलैर्वापि यथाविहितवस्तुभिः ।
यथाशक्त्याहुतिं दद्यान्नाष्टन्यूनां प्रकल्पयेत् ।।१६१।।

पद्या–इसके पश्चात् अग्नि में अपने इष्ट देवता का आवाह्न कर पीठादि सहित उसकी पूजा करे तथा मूल मंत्र के अन्त में "स्वाहा" लगाकर अग्नि के मध्य में पचीस आहुतियाँ प्रदान करे तथा अपने मन में अग्नि, देवी तथा स्वयं की आत्मा इन तीनों की एकता का चिन्तन करे तथा मूलमंत्र से ग्यारह आहुतियाँ अंग देवता के उद्देश्य से प्रदान करे। **ॐ अङ्गदेवताभ्यः स्वाहा** मन्त्र आहुतियाँ दे। इसके पश्चात् स्वयं की कामनापूर्ति के लिए **विष्णुरों तत्सत् ओं अद्यामुकमास्यमुकपक्षेऽमुकतिथावमुकराशिस्थिते भास्करेऽमुकाभीष्टार्थसिद्धिकामोऽमुकगोत्रः श्रीमदमुकशर्मातिलाज्यादिमिश्रितैः पुष्पैर्विल्वपत्रादिभिर्वा सार्द्धं वह्नावाहुतिमहं ददे** इस वाक्य के अन्त में **स्वाहा** लगाकर तिल, आज्य, मधु, पुष्प, बेलपत्र तथा यथाविहित वस्तु से अपनी क्षमता के अनुसार आहुति प्रदान करे। आठ से कम आहुतियाँ न दे ।

हरि०–तत इत्यादि। ततोऽनन्तरमग्नौ स्वेष्ट देवतामावाह्य पूर्वोक्तमन्त्रेण पीठाद्यैः सह

तस्य पूजनञ्च कृत्वा मूलरूपेण स्वाहान्तमनुना पञ्चविंशतिमाहुतीर्वह्नौ हुत्वा प्रक्षिप्य वह्न्यात्मनो: वह्नेरात्मनश्च देव्याश्चैक्यं धिया सम्भाव्यंश्चिन्तयन् मूलेनैवैकादशाहुती: हुत्वा ओं अङ्गदेवताभ्य: स्वाहेति मन्त्रेणाङ्गदेवताश्चोद्दिश्य हुत्वा विष्णुरों तत्सत ओं अद्यामुकमास्यमुकपक्षेऽमुकतिथावमुकराशिस्थिते भास्करेऽमुकाभीष्टार्थसिद्धिकामोऽमुकगोत्र: श्रीमदमुकशर्मा तिलाज्यादिमिश्रितै: पुष्पैर्विल्वपत्रादिभिर्वा सार्द्धं वह्नावाहुतिमहं ददे इति वाक्येन स्वकाममुद्दिश्य स्वाहान्तमूलमन्त्रेण तिलाज्यमधुमिश्रितै: पुष्पैरथवा विल्वदलैर्यथाविहितवस्तुभिर्वा सह यथाशक्ति वह्नावाहुतिं दद्यात्। अष्टयूनामाहुतिं न प्रकल्पयेत् ॥१५८-१६१॥

ततः पूर्णाहुतिं दद्यात् फलपत्रसमन्विताम् ।
स्वाहान्तमूलमन्त्रेण ततः संहारमुद्रया ।
तस्माद्देवीं समानीय स्थापयेत् हृदयाम्बुजे ।।१६२।।

पद्मा–अन्त में 'स्वाहा' पद मिलाकर मूलमंत्र पढ़कर अग्नि में फल तथा ताम्बूल से युक्त पूर्णाहुति प्रदान करे, फिर संहारमुद्रा के द्वारा देवी को अग्नि से लाकर हृदय कमल में स्थापित करे ।

हरि०–तत् इति। ततोऽनन्तरं स्वाहान्तमूलमन्त्रेण फलपत्रसमन्वितां फलताम्बूलयुतां पूर्णाहुतिं वह्नौ दद्यात्। ततः परं संहारमुद्रया तस्माद्वह्नेर्देवीं समानीय हृदयाम्बुजे स्थापयेत्॥१६२॥

क्षमस्वेति च मन्त्रेण विसृजेत्तं हुताशनम् ।
कृतदक्षिणको मन्त्री अच्छिद्रमवधारयेत् ।।१६३।।
हुतशेषं भ्रुवोर्मध्ये धारयेत् साधकोत्तमः ।।१६४।।
एष होमविधिः प्रोक्तः सर्वत्रागमकर्मणि ।
होमकर्म समाप्यैवं साधको जपमाचरेत् ।।१६५।।

पद्मा–इसके पश्चात् साधक **अग्नये क्षमस्व** मन्त्र पढ़कर अग्नि को विसर्जित करे। फिर दक्षिणा प्रदान कर **कृतमिदं होमकर्माच्छिद्रमस्तु** कहकर अच्छिद्रावधारण करे, फिर साधकश्रेष्ठ होम से बची हुई सामग्री को भ्रूयुगल (दोनों भौंहों) के मध्य में धारण करे अर्थात् तिलक लगाये। समस्त आगम कर्मों में यही होम विधि कही गयी है। होम कर्म समाप्त कर साधक जप कर्म करे ।

हरि०–क्षमस्वेति । ततः अग्ने क्षमस्वेति मन्त्रेण तं हुताशनमग्निं विसृजेत्तस्य विसर्जनं कुर्यात्। ततः कृता दक्षिणा येन सकृतदक्षिणको मन्त्री साधकः कृतमिदं होमकर्माच्छिद्रमस्त्वित्यवधारयेत्। ततो हुतशेषं भ्रुवोर्मध्यदेशे धारयेत् ॥१६३-१६५॥

विधानं शृणु देवेशि! येन विद्या प्रसीदति ।
देवतागुरुमन्त्राणामैक्यं सम्भावयेद्धिया ।।१६६।।

पद्मा–हे देवेशि! जिससे विद्या प्रसन्न होती है मैं उस विधान को कहता हूँ। सुनो! बुद्धिमान साधक अपने मन में देवता, गुरु तथा मन्त्र की एकता का चिन्तन करे ।

हरि०–विधानमिति। जपाचरणविधानमेवाह देवतेत्यादिभि:। सम्भावयेत् सम्यक् विचि-न्तयेत् ॥१६६॥

मन्त्राणां देवता प्रोक्ता देवता गुरुरूपिणी ।
अभेदेन यजेद्यस्तु तस्य सिद्धिरनुत्तमा ।।१६७।।

पद्मा–मन्त्र वर्ण को देवता कहा गया है और देवता गुरुरूपिणी है । जो साधक इन तीनों को एक जानता है उसे ही श्रेष्ठ सिद्धि प्राप्त होती है ।

हरि०–देवताद्यैक्यसम्भावनप्रकारन्तत्फलञ्च दर्शयति मन्त्रेत्यादिना। मन्त्राणां मन्त्रवर्णाः। अभेदेन ऐक्यभावेन ॥१६७॥

गुरुं शिरसि सञ्चिन्त्य देवतां हृदयाम्बुजे ।
रसनायां मूलविद्यां तेजोरूपां विचिन्त्य च ।
त्रयणान्तेजसाऽऽत्मानमेकीभूतं विचिन्त्येत् ।।१६८।।

पद्मा–शिर में गुरु का ध्यान कर हृदय कमल में देवता तथा जिह्वा में तेजोरूपा मूलमन्त्रात्मिका विद्या का ध्यान कर गुरु, देवता तथा मूलमन्त्र इन तीनों के तेज द्वारा एकीभूत आत्मा का ध्यान करे ।

हरि०–मूलविद्याम् मूलमन्त्रात्मिका विद्याम् । त्रयाणाम् गुरुदेवतामूलमन्त्राणाम् ॥१६८॥

तारेण सम्पुटीकृत्य मूलमन्त्रञ्च सप्तधा ।
जप्त्वा तु साधकः पश्चान्मातृकापुटितं स्मरेत् ।।१६९।।

पद्मा–मूल मन्त्र को 'ॐ' से सम्पुटित कर सात बार जप करें यथा-ॐ श्रीं ह्रीं क्रीं आद्ये कालिके स्वाहा। फिर मातृका से पुटित कर सात बार स्मरण करे- यथा-अं आं इं ईं उं ऊं ऋं ॠं लृं लॄं एं ऐं ओं औं अं अः कं खं गं घं ङं चं छं जं झं ञं टं ठं डं ढं णं तं थं दं धं नं पं फं बं भं मं यं रं लं वं शं षं सं हं ळं क्षं ह्रीं श्रीं क्रीं परमेश्वरि स्वाहा क्षं ळं हं सं षं शं वं लं रं यं मं भं बं फं पं नं धं दं थं तं णं ढं डं ठं टं ञं झं जं छं चं ङं घं गं खं कं अः अं औं ओं ऐं एं लॄं लृं ॠं ऋं ऊं उं ईं इं आं अं ।

हरि०–तारेणेत्यादि। तारेण सम्पुटीकृत्य आदावन्ते च आकारादिक्षकारान्तैरेकाञ्चाशता वर्णैः संयुक्तं मूलमन्त्रं सप्तधा स्मरेत् जपेत् । आगमजस्यानित्यत्वात् जप्त्वेत्यत्र नेडागमः॥१६९॥

मायाबीजं स्वशिरसि दशधा प्रजपेत् सुधीः ।
वदने प्रणवं तद्वत् पुनर्मायां हृदम्बुजे ।
प्रजप्य सप्तधा मन्त्री प्राणायामं समाचारेत् ।।१७०।।

पद्मा–साधक मायाबीज ह्रीं का अपने शिर से दस बार जप करे। अपने मुख में दस बार प्रणव 'ॐ' का जप करे। पुनः हृदय कमल में सात बार मायाबीज 'ह्रीं' का जप कर प्राणायाम करे ।

हरि०–मायेति। ततः सुधीः साधकः स्वशिरसि मायाबीजं ह्रीं बीजं दशधा प्रजपेत्

ततो वदने स्वमुखे प्रणवं तद्वद्दशधा जपेत्। हृदम्बुजे पुनर्माया ह्रीं बीजं सप्तधा प्रजप्य मन्त्री प्राणायामं पूर्ववत् समाचरेत् कुर्यात् ॥१७०॥

ततो मालां समादाय प्रवालादिसमुद्भवाम् ।
माले ! माले ! महाभागे सर्वशक्तिस्वरूपिणी ।।१७१।।
चतुर्वर्गस्त्वयि न्यस्तस्तस्मान्मे सिद्धिदा भव ।
इति सम्पूज्य मालां तां श्रीपात्रस्थामृतेन च ।।१७२।।
त्रिधा मूलेन सन्तर्प्य स्थिरचित्तोजपञ्चरेत् ।
अष्टोत्तरसहस्रं वाऽप्यथवाऽष्टोत्तरं शतम् ।।१७३।।

पद्मा–इसके उपरान्त मूंगादि से बनी माला लेकर माले ! माले! महाभागे! **सर्वशक्तिस्वरूपिणि! चतुर्वर्गस्त्वयि न्यस्तस्तस्मान्मे सिद्धिदा भव** (अर्थात् माले ! हे माले! हे महाभागे! हे सर्वशक्तिस्वरूपिणि! धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष यह चारों वर्ग तुमको अर्पित करता हूँ। तुम मुझे सिद्धि प्रदान करो। इस मन्त्र से माला की पूजा कर मूल मन्त्र का उच्चारण कर श्रीपात्र के अमृत से तीन बार माला का मूल मन्त्र का उच्चारण करके **''मालां सन्तपर्यामि स्वाहा''** कहकर तर्पण करे। फिर साधक एकाग्रचित्त होकर १००८ अथवा १०८ बार मूलमन्त्र का जप करे ।

हरि०–तत इति । ततोऽनन्तरं प्रवालादिसमुद्भवां विद्रुमादिसञ्जातां मालां समादाय गृहीत्वा माले माले इत्यादिना सिद्धिदा भेवत्यनेन मन्त्रेण तां मालां सम्पूज्य श्रीपात्रस्थामृतेन मालां सन्तपर्यामि स्वाहेत्यनेन मूलमन्त्रेण त्रिधा सन्तर्प्य च स्थिर चित्तो भूत्वाऽष्टोत्तरसहस्रशतं का मूलमन्त्रस्य जपञ्चरेत् कुर्यात् ॥१७१-१७३॥

प्राणायामं ततः कृत्वा श्रीपात्रजलपुष्पकैः ।
गुह्यातिगुह्यगोप्त्री त्वं गृहाणास्मत्कृतं जपम् ।।१७४।।
सिद्धिर्भवतु मे देवि! त्वत्प्रसादान्महेश्वरि !
इति मन्त्रेण मतिमान् देव्या वामकराम्बुजे ।।१७५।।
तेजोरूपं जपफलं समर्प्य प्रणमेद्भुवि ।
ततः कृताञ्जलिर्भूत्वा स्तोत्रञ्च कवचं पठेत् ।।१७६।।

पद्मा–इसके उपरान्त प्राणायाम कर श्रीपात्र में जल तथा पुष्प द्वारा देवी के बायें कर कमल में गुह्यातिगुह्यगोप्त्री त्वं गृहाणास्मत्कृतं जपम् । सिद्धिर्भवतु मे देवि! त्वत्प्रसादान्महेश्वरि! (अर्थात् हे देवि! हे महेश्वरि! तुम गुह्य अतिगुह्य तथा रक्षाकर्त्री हो। तुम मेरे द्वारा किये गये जप को ग्रहण करो। तुम्हारी कृपा से मुझे सिद्धि प्राप्त हो) इस मन्त्र से तेजोरूप जप फल समर्पित करे । इस प्रकार जप समर्पण कर पृथ्वी में दण्ड के समान समर्पित होकर प्रणाम कर हाथ जोड़कर स्तोत्र एवं कवच का पाठ करे ।

हरि०–प्राणायामेत्यादि। ततः परं प्राणायामं कृत्वा श्रीपात्रजलपुष्पकैः गुह्यातिगुह्येत्यादिना

महेश्वरि इत्यन्तेन मन्त्रेण मतिमान् साधकस्तेजोरूपं जपफलं देव्या वामकराम्बुजे समर्प्य भुवि दण्डवन्निपत्य देवीं प्रणमेत् ॥१७४-१७६॥

ततः प्रदक्षिणीकृत्य विशेषार्घ्येण साधकः ।
विलोमार्घ्यप्रदानेन कुर्यादात्मसमर्पणम् ।।१७७।।
इतः पूर्वं प्राणबुद्धिदेहधर्म्माधिकारतः ।
जाग्रत्स्वप्नसुषुप्त्यन्ते अवस्थासु प्रकीर्तयेत् ।।१७८।।
मनसाऽन्ते वदेद्वाचा कर्म्मणा तदनन्तरम् ।
हस्ताभ्यां पदतः पद्भ्यामुदरेण ततः परम् ।।१७९।।
शिश्नया यत् कृतञ्चोक्तवा यत् स्मृतं पदतो वदेत्।
यदुक्तं तत् सर्वमिति ब्रह्मार्पणामुदीरयेत् ।
भवत्वन्ते मां मदीयं सकलं तदनन्तरम् ।।१८०।।
आद्याकालीपदाम्भोजे अर्पयामि पदं वदेत् ।
प्रणवं तत्सदित्युक्त्वा कुर्यादात्मसमर्पणम् ।।१८१।।

पद्मा–इसके पश्चात् साधक प्रदक्षिणा करके विलोममंत्र का उच्चारण करते हुए संस्थापित विशेषार्घ्य से विलोमार्घ्य प्रदान कर **इतः पूर्वं प्राणबुद्धिदेहधर्माधिकारतः जाग्रत् स्वप्नसुषुप्त्यवस्थासु मनसा वाचा कर्मेणा हस्ताभ्यां पद्भ्यां उदरेण शिश्नया यत् कृतं, यत् स्मृतं, यदुक्तं, तत् सर्वं ब्रह्मार्पणं भवतु मां मदीयं सकलं आद्याकाली पदाम्भोजे अर्पयामि ॐ तत् सत्** मन्त्र से आत्मसमर्पण करे। (मन्त्रार्थ-इसके पूर्व प्राणबुद्धिदेह धर्म के अधिकार में जाग्रत, स्वप्न और सुषुप्ति इन तीनों अवस्थाओं में मन, वाक्य, कर्म, दोनों हाथो, दोनों पैरों, उदर तथा उपस्थ द्वारा यथासम्भव जो कुछ किया गया, स्मरण हुआ तथा कहा गया, वह सभी ब्रह्म को अर्पित हो। मैं तथा वह सभी वस्तु जो मेरी कहकर अभिमान होता है आद्या काली के श्रीचरण कमलों में समर्पित करता हूँ।)

हरि०–आत्मसमर्पणमन्त्रमाह तत इत्यादिभिः सार्द्धैश्चतुर्भिः। इतः पूर्वं प्राणबुद्धिदेहधर्म्माधिकारतः जाग्रत्स्वप्नसुषुप्त्यन्तेऽवस्थास्विति प्रकीर्तयेत् । ततो मनसाऽन्ते वाचा तदनन्तरं कर्म्मणा तदनन्तरं हस्ताभ्यामिति वदेत् । तस्माच्च पदात् पद्भ्याम् ततः परमुदरेणेति च वदेत् । ततः परं शिश्नया यत् कृतञ्चोक्तवायत् स्मृतमिति वदेत् । ततश्च पदात् परं यदुक्तं तत्सर्वमिति वदेत् । ततो ब्रह्मार्पणमुदीरयेत् । ततो भवत्वित्यन्ते मां मदीयं सकलमित्युदीरयेत्। तदनन्तरमाद्याकालीपदाम्भोजेऽर्पयामीति पदं वदेत् । ततः प्रणवं तत्सदिति च वेदत् । सकलपदयोजनया इतः पूर्वं प्राणबुद्धिदेहधर्म्माधिकारतो जाग्रत्स्वप्न-सुषुप्त्यवस्थासु मनसा वाचा कर्मणा हस्ताभ्यां पद्भ्यासमुदरेण शिश्नया यत् कृतं यत् स्मृतं यदुक्तं तत् सर्वं ब्रह्मार्पण भवतु मां मदीयं च सकलमाद्याकालीपदाम्भोजेऽपर्यामि ओं तत्सदिति मन्त्रो जातः। इमं मन्त्रमुक्तवा काल्यै आत्मसमर्पणं कुर्यात् ॥१७७-१८१॥

ततः कृताञ्जलिर्भूत्वा प्रार्थयेदिष्टदेवताम् ।
मायाबीजं समुच्चार्य श्री आद्ये कालिके वदेत् ।।१८२।।
पूजिताऽसि यथाशक्त्या क्षमस्वेति विसृज्य च ।
संहारमुद्रया पुष्पमाघ्राय स्थापयेत् हृदि ।।१८३।।

पद्मा–इसके पश्चात् हाथ जोड़कर इष्टदेवता से प्रार्थना करे **ह्रीं श्रीं आद्ये कालिके यथाशक्ति पूजितासि क्षमस्व**। इस प्रकार विसर्जन कर संहार मुद्रा से गृहीत पुष्प को सूंघ कर इष्ट देवता को अपने हृदय में स्थापित करें ।

हरि०–तत इत्यादि। ततः परं कृताञ्जलिर्भूत्वेष्टदेवतां प्रार्थयेत् । किं प्रार्थयेदित्यपेक्षायामाह मायाबीज मित्यादि। मायाबीजं ह्रीं बीजं समुच्चार्य श्री आद्ये कालिके इत वदेत्। ततो यथाशक्त्या पूजितासि समस्वेति प्रार्थनावाक्यमासीत् अनेनैव वाक्येनेष्टदेवता विसृज्य च संहारमुद्रया पुष्पमादाय आघ्राय च स्वहृदि स्थापयेत् ॥१८२-१८३॥

ऐशान्यां मण्डलं कृत्वा त्रिकोणं सुपरिष्कृतम् ।
तत्र संपूजयेद्देवी निर्माल्यपुष्पवारिणा ।
ह्रीं निर्माल्यपदञ्चोक्त्वा वासिन्यै नमइत्यपि ।।१८४।।

पद्मा–ईशान कोण में एक परिष्कृत त्रिकोण बनाकर उसके ऊपर निर्माल्य पुष्प और जल द्वारा **ह्रीं निर्माल्यवासिन्यै नमः** मन्त्र से निर्माल्य वासिनी देवी की पूजा करे ।

हरि०–ऐशान्यामिति। तत ऐशान्यां दिशि सुपरिष्कृतं त्रिकोणं मण्डलं कृत्वा तप्त मण्डले वक्ष्यमाणमन्त्रेण निर्माल्यपुष्पवारिणा निर्माल्यवासिनीं देव संपूजयेत् । निर्माल्यवासिन्याः पूजनस्य मन्त्रमाह ह्रीमित्याद्यर्द्धेन। ह्रीं निर्माल्यपदमुक्त्वा वासिन्ये नम इति वदेत् । योजनया ह्रीं निर्माल्यवासिन्यै नम इति मनुर्जातः॥१८४॥

ब्रह्मविष्णुशिवादिभ्यः सर्वदेवेभ्य एव च ।
नैवेद्यं वितरेत् पश्चात् गृह्णीयात् शक्तिसाधकः ।।१८५।।

पद्मा–इसके पश्चात् शक्ति साधक, ब्रह्मा, विष्णु तथा शिवादि को नैवेद्य अर्पित कर बाद में स्वयं ग्रहण करे ।

हरि०–ब्रह्मेत्यदि। नैवेद्यं देव्यर्पितान्नादि। वितरेत् दद्याद् । शक्तिसाधकः शक्ति सहितः साधक॥१८५॥

स्वीयशक्तिं वामभागे संस्थाप्य पृथगासने ।
एकासनोपविष्टो वा पात्रं कुर्यात् मनोरमम् ।।१८६।।

पद्मा–अपने बायें भाग में पृथक् आसन पर अपनी शक्ति को बैठाकर अथवा उसके साथ एक ही आसन पर बैठकर रमणीय पान पात्र स्थापित करे ।

हरि०–देवीनैवेद्यग्रहणविधानमाह स्वीयशक्तिमित्यादिभिः। वामभागे पृथगासने स्वीयां शक्तिं संस्थाप्य स्वीयशक्त्या सहैकासने एवोपविष्टे वा साधक पानभोजनार्थं मनोरमं रम्यं पात्रं कुर्यात् ।।१८६॥

पानपात्रं प्रकुर्वीत न पञ्चतोलकाधिकम् ।
तोलकत्रितयान्न्यूनं स्वार्णं राजतमेव च ।।१८७।।
अथवा काचजनितं नारिकेलोद्भवञ्च वा ।
आधारोपरि संस्थाप्य शुद्धिपात्रस्य दक्षिणे ।।१८८।।
महाप्रसाद माननीय पात्रेषु परिवेशयेत् ।
स्वयं वा भ्रातृपुत्रैर्वा ज्येष्ठाक्रमतः सुधीः ।।१८९।।

पद्मा–पानपात्र का परिणाम पांच तोले से अधिक न हो और न ही तीन तोले से कम हो। स्वर्ण, रजत (चाँदी) काँच अथवा नारियल से बना हुआ पात्र ही श्रेष्ठ है। पानपात्र को शुद्धिपात्र के दाहिनी ओर आधार के ऊपर स्थापित कर साधक महाप्रसाद को लाकर स्वयं, भाई या पुत्र द्वारा वरिष्ठता क्रम से पात्र में रखवाये ।

हरि०–पानेत्यादि। पञ्चतोलकादधिकं तोलकत्रितपात् न्यूनञ्च पानपात्रं न प्रकुर्वीत। तच्च स्वार्णं सुवर्णोद्भवं राजतं रजतोद्भवमथवा काचजनितं नारिकेलोद्भवं वा पानपात्रं शुद्धिपात्रस्य दक्षिणे देशे आधारोपरि संस्थाप्य सुधीः धीरः साधको महाप्रसादमानीय स्वयं वा भ्रातृपुत्रैर्वा ज्येष्ठानुक्रमत एवं पात्रेषु परिवेशयेत् । जन्मतोऽत्र ज्यैष्ठ्यं न ग्राह्यं किन्त्वभिषेकत इति बोध्यम् ।।१८७-१८९।।

पानपात्रे सुधा देया शौद्धये शुद्ध्यादि कानि च ।
ततः सामयिकैः सार्द्धं पानभोजनमाचरेत् ।।१९०।।

पद्मा–पानपात्र में मदिरा तथा शुद्धिपात्र में मांसमत्स्यादि प्रदान करे। फिर भी देवी की सामयिक पूजा में आये हुए समस्त मनुष्यों के साथ पान एवं भोजन करे ।

हरि०–पानेत्यादि। पानपात्रे सुधा मदिरा देया शौद्धये शुद्धिपात्रे शुद्ध्यादिकानि मांस मत्स्यादीनि च देवानि। ततः परं सामयिकैर्देव्यर्चनसमयाधिगतैर्जनैः सार्द्धं पानभोजनमाचरेत् ।।१९०।।

आदावास्तरणार्थाय गृह्णीयात् शुद्धिमुत्तमाम् ।
ततोऽतिहृष्टमनसा समस्तः कुलसाधकः ।।१९१।।
स्वस्वपात्रं समादाय परमामृतपूरितम् ।
मूलाधारादिजिह्वान्तां चिद्रूपां कुलकुण्डलीम् ।।१९२।।
विभाव्य तन्मुखाम्भोजे मूलमन्त्रं समुच्चरन् ।
परस्पराज्ञामादाय जुहुयात् कुण्डलीमुखे ।।१९३।।

पद्मा–सर्वप्रथम मद्य के आस्तरण के लिए मासांदि उत्तम शुद्धि ग्रहण करे, फिर सभी कुलसाधक आनन्दित हृदय से उत्तम मद्य से परिपूर्ण अपने अपने पात्र को ग्रहण कर मूलाधार से जिह्वा तक व्याप्त चैतन्य स्वरूपा कुलकुण्डलिनी का ध्यान करके उसके मुख

कमल में मूलमन्त्र का उच्चारण करते हुए एक दूसरे से अनुमति लेकर परमामृत (मद्य) का होम करे।

हरि०–आदाविति। आदौ प्रथमतो मद्यस्थापनार्थायास्तरणार्थायोत्तमां शुद्धि गृह्णीयात्। ततोऽतिहृष्टमनसा समस्तः सर्वः कुलसाधकः परमामृतपूरिमुत्तममद्यपूरितं स्वस्वपात्रं समादाय गृहीत्वा मूलाधारादिजिह्वान्तं व्याप्या स्थितां चिद्रूपाञ्चैतन्यस्वरूपां कुलकुण्डलिनीं विभाव्य विचिन्त्य तन्मुखाम्भोजे मूलमन्त्रसमुच्चरन् सन् परस्परस्याज्ञामादाय कुण्डलीमुखे जुहुयात् परमामृतं दद्यात् ॥१९१-१९३॥

अलिपानं कुलस्त्रीणां गन्धस्वीकारलक्षणम् ।
साधकानां गृहस्थानां पञ्चपात्रं प्रकीर्तितम् ।।१९४।।
अतिपानात् कुलीनानां सिद्धिहानिः प्रजायते ।।१९५।।

पद्मा–कुलस्त्रियों के लिए मद्य की गन्ध को ग्रहण करना ही मद्यपान कहा गया है। गृहस्थ साधकों के लिए पञ्चपात्र तक मद्यपान करना मद्यपान कहा गया है। कुल साधकों के लिए अधिक मद्यपान से सिद्धि की हानि होती है।

हरि०–अलीत्यादि। कुलस्त्रीणां गन्धस्वीकारलक्षणं मद्यसम्बन्धिगन्धाङ्गीकरण-स्वरूपमेवालिपानं मद्यपानं प्रकीर्तितुम्। गृहस्थानां साधकानां पञ्चपात्रं पञ्चपात्रपरिमाणकम-लिपानं प्रकीर्तितं गृहस्थैः साधकैः पञ्चपात्रपरिमितमैव मद्यं पातव्यमित्यर्थः। गृहस्थानामित्यनेन पञ्च पात्रपरिमितादधिकमपि मद्यं पिबतां गृहस्थसाधकानां को दोषस्तत्राह अति-पानादित्यादि॥१९४-१९५॥

यावन्न चालयेद् दृष्टिं यावन्न चालयेन्मनः ।
तावत् पानं प्रकुर्वीत पशुपानमतः परम् ।।१९६।।

पद्मा–जब तक चित्त तथा दृष्टि में चञ्चलता न हो, तभी तक पान करना चाहिए। इससे अधिक पान करना पशुपान के समान है।

हरि०–यावदिति। चालयेत् घूर्णयेत् ॥१९६॥

पाने भ्रान्तिर्भवेद्यस्य घृणा च शक्तिसाधके ।
स पापिष्ठः कथं ब्रूयादाद्यां कालीं भजाम्यहम् ।।१९७।।
यथा ब्रह्मार्पितेऽन्नादौ स्पृष्टदोषो न विद्यते ।
तथा तव प्रसादेऽपि जातिभेदं विवर्जयेत् ।।१९८।।

पद्मा–मद्यपान करने से जिसके मन में व्याकुलता हो और जो शक्तिसाधक से घृणा करते हो, वह किस प्रकार कह सकता है कि "मैं आद्या काली का भजन करता हूँ" जिस प्रकार ब्रह्मा को समर्पित अन्नादि से स्पर्श में दोष नहीं है उसी प्रकार तुम्हारे प्रसाद में भी जातिभेद का विचार न करे।

हरि०–पान इति। घृणी। जुगुप्सावान्। जुगुप्साकरणे घृणेत्यमरः॥१९७-१९८॥

एवमेव विधानेन कुर्यात् पानञ्च भोजनम् ।
हस्तप्रक्षालनं नास्ति तव नैवेद्यसेवने ।।
लेपावनोदनं कुर्याद्वस्त्रेण पाथसाऽपि वा ।।१९९।।

पद्म–इस प्रकार विधिपूर्वक पान एवं भोजन करे। तुम्हारे नैवेद्य के सेवन में हाथ धोने का विधान नहीं है। वस्त्र या जल से हाथ जल से हाथ का लेप छुड़ाना चाहिए।

हरि०–एवमिति। लेपावनोदनम् हस्तलेपापनयनम् ।।१९९।।

ततो निर्माल्य कुसुमं विधृत्य शिरसा सुधीः।
यन्त्रलेपं कूर्चदेशे विहरेद्देववद्भुविः ।।२००।।

इति श्रीमहानिर्वाणतन्त्रे सर्वतन्त्रोत्तमोत्तमे सर्वधर्म्मनिर्णयसारे
श्रीमदाद्यासदा-शिवसंवादे श्रीपात्रस्थापनहोमचक्रा-
नुष्ठानकथनं नाम षष्ठोल्लासः।।६।।

पद्म–इसके पश्चात् बुद्धिमान साधक मस्तक पर निर्माल्य पुष्प धारण कर यन्त्र में के विशेष पदार्थ को ललाट पर तिलक लगाये और देवता के समान होकर पृथ्वी पर विचरण करे।

इस महानिर्वाण तन्त्र के षष्ठ उल्लास की अजय कुमार उत्तम
रचित पद्म हिन्दी व्याख्यापूर्ण हुई।।६।।

हरि०–तत इति। कूर्चदेशे भ्रुवोर्मध्यदेशे। कूर्चमस्त्रीभुवोर्मध्यमित्यम् ।।२००।।

इति महानिर्वाणतन्त्रटीकायां षष्ठोल्लासः।।

सप्तमोल्लासः

श्रुत्वाऽऽद्याकालिकादेव्या मन्त्रोद्धारं महाफलम् ।
सौभाग्यमोक्षजननं ब्रह्मज्ञानैकसाधनम् ।।१।।
प्रातः कृत्यं तथा स्नानं सन्ध्यां सम्विद्विशोधनम् ।
न्यासपूजाविधानञ्च बाह्याभ्यन्तरभेदतः ।।२।।
बलिप्रदानं होमञ्च चक्रानुष्ठानमेव च ।
महाप्रसादस्वीकारं पार्वती हृष्टमानसा ।
विनयावनता देवी प्रोवाच शङ्करं प्रति ।।३।।

पद्मा–महाफल प्रदान करने वाला, सौभाग्य एवं मोक्ष को प्रदान करने वाला, ब्रह्म ज्ञान के लाभ का कारणस्वरूप आद्या काली का मन्त्रोद्धार, प्रातः कृत्य, स्नान, सन्ध्या, सम्विदाशोधन, बाह्य तथा अन्तरभेद से न्यास एवं पूजाविधान, बलिदान होम, भैरवीचक्रानुष्ठान, महाप्रसादग्रहण आदि क्रियाओं को सुनकर प्रसन्नचित्त वाली भगवती पार्वती ने विनयावनत होकर भगवान् शिव से कहा ।

हरि०–ॐ नमो ब्रह्मणे ।

श्रुत्वेत्यादि। महाफलम् महत् फलं यस्य तथाभूतम् ॥१-३॥

श्रीदेव्युवाच

सदाशिव! जगन्नाथ! जगतां हितकारकः ।
कृपया कथितं देवं पराप्रकृतिसाधनम् ।।४।।
सर्वप्राणिहितकरं भोगमोक्षैककारणम् ।
विशेषतः कलियुगे जीवानामाशु सिद्धिदम् ।।५।।

पद्मा–श्रीदेवी ने कहा-हे सदाशिव! हे जगन्नाथ! हे जगत् के हितकारक! हे देव! आपने मेरे प्रति कृपा कर मुझसे पराप्रकृति का साधन कहा। यह साधन सभी प्राणियों के लिए हितकारक एवं भोग तथा मोक्ष की प्राप्ति का साधन है। विशेष रूप से कलियुग में प्राणियों के लिए यह साधन शीघ्रसिद्धि प्रदान करने वाला होगा ।

हरि०–पार्वती शङ्करं प्रति किं प्रोवाचेत्यपेक्षायामाह सदाशिवेत्यादि।।४-५।।

तव वागमृताम्भोधौ निमज्जन्मम मानसम् ।
नोत्थातुमीहते स्वैरं भूयः प्रार्थयतेऽचिरात् ।।६।।
पूजाविधा महादेव्याः सूचितं न प्रकाशितम् ।
स्तोत्रञ्च कवचं देव तदिदानीं प्रकाशय ।।७।।

पद्मा–आपके वचनरूपी अमृतसागर में डूबा हुआ मेरा मन उसमें से निकलने के लिए

चेष्टा नहीं करता है अपितु उस वचनामृत को पुनः प्राप्त करने के लिए प्रार्थना करता है। आपने महादेवी की पूजाविधि में स्तोत्र तथा कवच पाठ करने को कहा है, किन्तु उसे प्रकाशित नहीं किया है। कृपया आप उसे इस समय प्रकट करें ।

हरि०–**तवेत्यादि**। तव वागमृताम्मोधौ त्वदीयवाग्रूपसुधासमुद्रे निमज्जत् मम मानसं हृदयन्ततः स्वैरं स्वच्छन्दमुत्थातुं नेहते न वाञ्छति किन्तु भूयः पुनरप्यचिरादतिशीघ्रमेव त्वद्वागतमृतं प्रार्थयेते॥६-७॥

श्रीसदाशिव उवाच

शृणु देवि! जगद्वन्द्ये! स्तोत्रमेतदनुत्तमम् ।
पठनात् श्रवणाद्यस्य सर्वसिद्धिश्वरो भवेत् ।।८।।
असौभाग्यप्रशमनं सुखसम्पद्धिवर्द्धनम् ।
अकालमृत्युहरणं सर्वापद्धिनिवारणम् ।।९।।

पद्या–श्रीसदाशिव ने कहा-हे जगद्वन्द्ये! हे देवी! यह श्रेष्ठतम स्तोत्र कहता हूँ, उसे सुनो ! जिसका पाठ करने अथवा सुनने से व्यक्ति समस्त सिद्धियों का स्वामी होता है, यह दुर्भाग्य का नाश कर सुख सम्पत्ति प्रदान करता है। यह अकालमृत्यु को हरता है तथा सभी आपत्तियों का निवारण करता है ।

हरि०–पार्वत्यैवं प्रार्थितः सन् श्रीसदाशिव उवाच शृण्वित्यादि। अनुत्तमम् न उत्तमं यस्मात्तथाभूतम् ॥८-९॥

श्रीमदाद्याकालिकायाः सुखसान्निध्यकारणम् ।
स्तवस्यास्य प्रसादेन त्रिपुरारिरहं शिवे !।।१०।।

पद्या–हे शिवे! इस स्तोत्र से आद्याकालिका देवी का सुखप्रद सान्निध्य प्राप्त होता है। इस स्तोत्र के फलस्वरूप ही मैं त्रिपुरारि हुआ हूँ ।

हरि०–त्रिपुरारिः त्रीणि स्वर्गभूमिपातालात्मकानि पुराणि यस्य सः त्रिपुरोऽसुरविशेषः तस्यारिः शत्रुः॥१०॥

स्तोत्रस्यास्य ऋषिर्देवि सदाशिव उदाहृतः ।
छन्दोऽनुष्टुब्देवताऽऽद्या कालिका परिकीर्त्तिता ।
धर्मकामार्थमोक्षेषु विनियोगः प्रकीर्त्तितः ।।११।।

पद्या–हे देवि! इस स्तोत्र के ऋषि सदाशिव कहे गये हैं, छन्द अनुष्टुप् है आद्या कालिका देवता है तथा धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्ष के लिए इसका विनियोग है ।

हरि०–अथास्य स्तोत्रस्य ऋष्यादिकमाह स्तोत्रस्येत्यादिना सार्द्धेन॥११॥

ह्रीं काली श्रीं कराली च क्रीं कल्याणी कलावती।
कमला कलिदर्पघ्नी कपर्दीशकृपान्विता ।।१२।।

पद्या–अब भगवती आद्या का स्तोत्र कहा जाता है-तुम ''ह्रीं'' रूपा काली हो, ''श्रीं''

रूपा कराली हो, क्रीं स्वरूपा कल्याणी हो। तुम कलावती, कमला, कलिदर्पघ्नी कपर्दीशकृपान्विता (शिव पर कृपा करने वाली) हो।

हरि०–अथाद्याकाली स्वरूपाख्यां शतनामस्तोत्रं कथयति ह्रीं कालीत्यादि। कपर्दीशकृत्वान्विता कपर्दो जटाजुटोऽस्यास्तीति कपर्दी स चासावीशो जगत् प्रभुश्चेति कपर्दीशस्तत्र या कृपा तयान्विता युक्ता ॥१२॥

कालिका कालमाता च कालानलसमद्युतिः ।
कपर्दिनी करालास्या करुणामृतसागरा ।।१३।।

पद्मा–तुम ही कालिका, कालमाता तथा कालानल के समान तेजवाली हो, तुम ही कपर्दिनी तथा कराला (करालवदना) हो, तुम ही करुणामृतसागर हो ।

हरि०–करालास्या करालं दन्तुरमास्यं मुखं यस्याः सा। "करालो दन्तुरेतुङ्गे" इत्यमरः॥१३॥

कृपामयी कृपाधारा कृपापारा कृपागमा ।
कृशानुः कपिला कृष्णा कृष्णानन्दविवर्द्धिनी ।।१४।।
कालरात्रिः कामरूपा कामपाशविमोचनी ।
कादम्बिनी कलाधारा कलिकल्मषनाशिनी ।।१५।।
कुमारीपूजनप्रीता कुमारीपूजकालया ।
कुमारी भोजनानन्दा कुमारीरूपधारिणी ।।१६।।
कदम्बवनसञ्चारा कदम्बवनवासिनी ।
कदम्बपुष्पसन्तोषा कदम्बपुष्पमालिनी ।।१७।।

पद्मा–तुम ही कृपामयी, कृपाधारा, कृपापारा और कृपागमा हो। तुम कृशानु, कपिला कृष्णा तथा कृष्णानन्दविवर्द्धिनी हो। तुम ही कालरात्रि, कामरूपा, कामपाश से मुक्त करने वाली, कादम्बिनी, कलाधारा तथा कलियुग के पाप का नाश करने वाली हो, तुम ही कुमारी पूजन में प्रीति रखने वाली हो, कुमारी पूजन में काली हो, कुमारी भोजन में आनन्द हो तथा कुमारीरूप धारिणी हो। तुम ही कदम्ब वन में भ्रमण करने वाली, कदम्ब के वन में निवास करने वाली, कदम्ब के पुष्प से सन्तोष करने वाली तथा कदम्ब की माला धारण करने वाली हो ।

हरि०–कृपागमा कृपया स्वकारुण्येनैव गम्यते ज्ञायते या सा तथा। ग्रहदृनिश्चिगम इति कर्मण्यच् ॥१४-१७॥

किशोरी कलकण्ठा च कलनादनिनादिनी ।
कादम्बरीपानरता तथा कादम्बरी प्रिया ।।१८।।

पद्मा–तुम किशोरी हो, तुम्हारे कण्ठ का स्वर अत्यन्त गम्भीर है। तुम कलनाद निनादिनी हो। तुम ही कादम्बरी के पान में रत रहती हो, कादम्बरी तुमको अत्यन्त प्रिय है।

हरि०—कलकण्ठा कलो गम्भीरशब्दयुक्तः कण्ठो यस्याः सा ॥१८॥

कपालपात्रनिरता कङ्कालमाल्यधारिणी ।
कमलासनसन्तुष्टा कमलासनवासिनी ॥१९॥
कमलालयमध्यस्था कमलामोदमोदिनी ।
कलहंसगतिः क्लैव्यनाशिनी कामरूपिणी ॥२०॥
कामरूपकृतावासा कामपीठविलासिनी ।
कमनीया कल्पलता कमनीयविभूषणा ॥२१॥
कमनीयगुणाराध्या कोमलाङ्गी कृशोदरी ।
कारणामृतसन्तोषा कारणानन्दसिद्धिदा ॥२२॥
कारणानन्दजापेष्टा कारणार्चनहर्षिता ।
कारणार्णवसम्मग्ना कस्तूरीतिलकोज्ज्वला ।
कस्तूरी पूजनरता कस्तूरीपूजक प्रिया ॥२४॥
कस्तूरीदाह जननी कस्तूरीमृगतोषिणी ।
कस्तूरीभोजनप्रीता कर्पूरामोदमोदिता ।
कर्पूरमालाभरणा कर्पूरचन्दनोक्षिता ॥२५॥
कर्पूरकारणाह्लादा कर्पूरामृतवासिनी ।
कर्पूरसागरस्नाता कर्पूरसागरालया ॥२६॥

पद्या—तुम कपालपात्र मे रत तथा कपाल की माला धारण करती हो, तुम कमलासन से सन्तुष्ट होने वाली हो, तुम कमलासन में वास करती हो। तुम कमल के मध्य में स्थित रहती हो, कमल से तुमको प्रसन्नता होती है। तुम कलहंस के समान मन्थर गति वाली हो, तुम भक्तों का दुःख दूर करती हो। तुम इच्छानुसार रूप धारण करने वाली हो। तुम कामरूपकृतावासा, कामपीठविलासिनी, कमनीया, कल्पलता एवं कमनीयविभूषणा हो। तुम्हारी आराधना कमनीय गुणों के द्वारा ही की जाती है। तुम कोमल अंगों वाली, पतली कमर वाली, मद्य द्वारा सन्तुष्ट होने वाली हो, तुम कारण द्वारा आनन्द और सिद्धि प्रदान करती हो। तुम कारणानन्दजापेष्टता तथा कारणार्चनहर्षिता हो। तुम कारणरूपी सागर में मग्न हो तथा कारणव्रत पालिनी है। तुम कस्तूरी की गन्ध से प्रसन्न होती हो । तुम कस्तूरी का तिलक धारण कर अद्भुत दीप्ति प्राप्त करती हो, तुम कस्तूरीपूजनरता तथा कस्तूरी से जो तुम्हारी पूजा करता है उसपर स्नेह रखती हो। तुम कस्तूरीदाह की जननी, कस्तूरी मृगतोषिणी, कस्तूरीभोजनप्रीता तथा कर्पूरचन्दनोक्षिता हो। तुम कर्पूरकारण से प्रसन्न रहने वाली, कर्पूरामृतपायिनी, कर्पूरसागर में स्नान करने वाली तथा कर्पूरसागरालया हो ।

हरि०—कङ्कालमाल्यधारिणी शरीरास्थिमालाधारणशीला। स्याच्छरीरास्थि कङ्काल इत्यमरः॥१९-२६॥

कूर्चबीजजपप्रीता कूर्चजापपरायणा ।
कुलीना कौलिकाराध्य कौलिकप्रियकारिणी ।।२७।।
कुलाचारा कौतुकिनी कुलमार्गप्रदर्शिनी ।
काशीश्वरी कष्टहर्त्री काशीशवरदायिनी ।।२८।।
काशीश्वरकृतामोदा काशीश्वरमनोरमा ।।२९।।

पद्मा–तुम कूर्चबीज (हूं) के जप में प्रसन्न तथा कूर्चजापपरायणा हो। तुम कुलीना, कौलिकाराध्या और कौलिकप्रियकारिणी हो। तुम कुलाचारा, कौतुकिनी, कुलमार्ग को प्रदर्शित करने वाली, काशीश्वरी, कष्ट हरने वाली, तथा भगवान शंकर की वरदायिनी हो। तुम काशीश्वर को आनंद देने वाली तथा काशीश्वर के मन को मोहने वाली हो ।

हरि०–कूर्चजापपरायणा हूं जपतत्परा ॥२७-२९॥

कलमञ्जीरचरणा क्वणत्काञ्चीविभूषणा ।
काञ्चनाद्रिकृतागारा काञ्चनाचलकौमुदी ।।३०।।

पद्मा–तुम्हारे दोनों चरणों के मञ्जीर गंभीर शब्द से पूर्ण हैं। तुम क्वणत्कांची से विभूषित हो, काञ्चनगिरि पर तुम्हारा वास है । तुम काञ्चनाचल की चन्द्रिका के समान हो।

हरि०–कलमञ्जीरचरणा कलौ गम्भीरशब्दयुतौ मञ्जीरौ चरणोर्यस्या: सा॥३०॥

कामबीजजपानन्दा कामबीजस्वरूपिणी ।
कुमतिघ्नी कुलीनार्त्तिनाशिनी कुलकामिनी।।३१।।
क्रीं ह्रीं श्रीं मन्त्रवर्णेन कालकण्टकघातिनी।
इत्याद्याकालिकादेव्याः शतनाम प्रकीर्तितम् ।।३२।।

पद्मा–तुम कामबीज क्लीं के जप से प्रसन्न होती हो। तुम कामबीज स्वरूपा हो। तुम कुमति और कुलीनार्ति का नाश करती हो। तुम कुलकामिनी हो। तुम क्रीं ह्रीं श्रीं स्वरूपा हो। तुम कालकण्टकघातिनी हो। इस प्रकार कालिका देवी का शतनाम तुमसे कहा ।

हरि०–कामबीज जपानन्दा कामबीजस्य क्लींमित्यस्य जपे आनन्दो यस्या: ॥३१-३२॥

ककारकूटघटितं कालीरूपस्वरूपकम् ।।३३।।

पद्मा–ककारराशि से घटित कालीरूप के समान आद्याकालिका देवी का शतनाम स्तोत्र कहा गया ॥३३॥

हरि०–ककारकूटघटितम् ककारराशिसम्मिलितम् ॥३३॥

पूजाकाले पठेद्यस्तु कालिकाकृतमानसः ।
मन्त्रसिद्धिर्भवेदाशु तस्य काली प्रसीदति ।।३४।।
बुद्धिं विद्याञ्च लभते गुरोरादेशमात्रतः ।
धनवान् कीर्त्तिमान् भूयाद्दानशीलो दयान्वितः ।।३५।।
पुत्रपौत्रसुखैश्वर्यैर्मोदते साधको भुवि ।।३६।।

पद्मा–जो साधक पूजा के समय कालिका देवी में चित्त लगाकर इस शतनाम का पाठ

करता है उसे शीघ्र ही मन्त्रसिद्धि होती है और भगवती काली उस पर प्रसन्न रहती है। गुरु के आदेश मात्र से उसे विद्या एवं बुद्धि की प्राप्ति होती है। वह धनी, यशस्वी, दानशील तथा दयावान होता है। इस स्तोत्र का पाठ करने वाला साधक पृथ्वी पर पुत्र, पौत्र, सुख, ऐश्वर्य के साथ आनन्दभोग करता है।

हरि०–अथैतत्स्तोत्रपाठस्य फलमाह पूजाकाले इत्यादिभिः ॥३४-३६॥

भौमावास्यानिशाभागे मपञ्चकसमन्वितः।
पूजयित्वा महाकालीमाद्यां त्रिभुवनेश्वरीम् ॥३७॥
पठित्वा शतनामानि साक्षात् कालीमयो भवेत्।
नासाध्यं विद्यते तस्य त्रिषु लोकेषु किञ्चन ॥३८॥
विद्यायां वाक्पतिः साक्षात् धने धनपतिर्भवेत्।
समुद्र इव गाम्भीर्ये बले च पवनोपमः ॥३९॥

पद्मा–जो मनुष्य मंगलवार की अमावास्या की रात्रि में मैथुन मद्य मदिरादि पञ्चतत्त्वों के सहित त्रिभुवनेश्वरी आद्या महाकाली की पूजा करके शतनाम स्तोत्र का पाठ करता है वह साक्षात् कालीमय हो जाता है। त्रिभुवन में उसके लिये कुछ भी असाध्य नहीं रहता है। विद्या में वह साक्षात् वृहस्पति के समान, धन में कुबेर के समान, गंभीरता में समुद्र के समान तथा बल में वायु के समान हो जाता है।

हरि०–**भौमेत्यादि**। भौमावास्यानिशाभागे मङ्गलवारयुक्तामावास्या सम्बन्धिमहानिशायामित्यर्थः। पृषोदरादित्वाद्भौमावास्येत्यत्रमालोपः। मपञ्चकसमन्वितः मद्यादिपञ्चकयुक्तः ॥३७-३९॥

तिग्मांशुरिवः दुष्प्रेक्ष्यः शशिवत् शुभदर्शनः।
रूपे मूर्त्तिधरः कामो योषितां हृदयङ्गमः ॥४०॥
सर्वत्र जयमाप्नोति स्तवस्यास्य प्रसादतः।
यं यं कामं पुरस्कृत्य स्तोत्रमेतदुदीरयेत् ॥४१॥
तं तं काममवाप्नोति श्रीमदाद्याप्रसादतः।
रणे राजकुले द्यूते विवादे प्राणसङ्कटे ॥४२॥
दस्युग्रस्ते ग्रामदाहे सिंहव्याघ्राकृते तथा ॥४३॥
अरण्ये प्रान्तरे दुर्गे ग्रहराजभयेऽपि वा।
ज्वरदाहे चिरव्याधौ महारोगादिसङ्कुले ॥४४॥
बालग्रहादिरोगे च तथा दुःस्वप्नदर्शने।
दुस्तरे सलिले वापि पोते वातविपद्गते ॥४५॥
विचिन्त्य परमां मायामाद्यां कालीं परात्पराम्।
यः पठत्छेतनामानि दृढभक्तिसमन्वितः ॥४६॥

सर्वापद्भ्यो विमुच्येत् देवि सत्यं न संशयः ।
न पापेभ्यो भयं तस्य न रोगेभ्यो भयं क्वचित् ।।४७।।
सर्वत्र विजयस्तस्य न कुत्रापि पराभव ।
तस्य दर्शनमात्रेण पलायन्ते विपद्गणाः ।।४८।।
स वक्ता सर्वशास्त्राणां स भोक्ता सर्वसम्पदाम् ।
स कर्ता जातिधर्माणां ज्ञातीनां प्रभुरेव सः ।।४९।।
वाणी तस्ये वसेद्वक्त्रे कमला निश्चला गृहे ।
तन्नाम्ना मानवाः सर्वे प्रणमन्ति ससम्भ्रमाः ।।५०।।
दृष्ट्या तस्य तृणायन्ते ह्यणिमाद्यष्टसिद्धयः ।
आद्याकालीस्वरूपाख्यं शतनाम प्रकीर्तितम् ।।५१।।
अष्टोत्तरशतावृत्त्या पुरश्चर्याऽस्य गीयते ।
पुरस्क्रियान्वितं स्तोत्रं सर्वाभीष्टफलप्रदम् ।।५२।।
शतनामस्तुतिमिमाद्याकालीस्वरूपिणीम् ।
पठेद्वा पाठयेद्वापि श्रृणुयाच्छ्रावयेदपि ।।५३।।
सर्वपापविनिर्मुक्तो ब्रह्मसायुज्यमाप्नुयात् ।।५४।।

पद्मा–वह सूर्य के समान दुष्प्रेक्ष्य तथा चन्द्रमा के समान सौम्यदर्शन हो जाता है तथा मूर्तिमान् कामदेव के समान रूपवान होकर स्त्रियों के हृदय को चुराता है। इस स्तोत्र की कृपा से सर्वत्र विजय प्राप्त होती है। जिस जिस इच्छा के लिए इस स्तोत्र का पाठ किया जाता है श्री आद्या कालिका की कृपा से वह इच्छापूर्ण होती है। युद्ध में, राजसभा में, द्यूत (जुआ खेलने में), विवाद में, प्राणों के संकट के समय, दस्युओं से पूर्ण स्थान में, ग्राम दाह में, सिंह व्याघ्रादि हिंसक जन्तुओं से पूर्ण वन में, वृक्ष लतादि से विहीन मैदान में, दुर्ग में, ग्रहभय तथा राजभय होने पर, ज्वरदाह में, पुरानी व्याधि महारोगादि का आक्रमण होने पर, बालग्रहादि के योग में, दुःस्वप्न के दर्शन में, दुष्पार समुद्र में अथवा प्रबल आँधी से आयी विपत्ति से ग्रस्त जलयान में इत्यादि विपत्तियों में जो मनुष्य परात्परा, परमा, माया, आद्या काली का ध्यान कर सुदृढ़भक्ति के साथ इस शतनाम् स्तोत का पाठ करता है उसकी सभी विपत्तियाँ दूर हो जाती हैं इसमें सन्देह नहीं है। न उसको पाप का भय रहता है और नहीं रोग का भय रहता है। उसकी सर्वत्र विजय होती है तथा विपत्तियाँ दूर हो जाती हैं। इस स्तोत्र के प्रभाव से साधक सभी शास्त्रों का वक्ता तथा सभी सम्पदाओं का भोक्ता हो जाता है। वह जातिधर्म का कर्ता तथा जातियों का स्वामी हो जाता है। उसके मुख में सरस्वती तथा घर में लक्ष्मी निवास करने लगती है। समस्त मनुष्य उसके नाम को सुनकर आदरपूर्वक प्रणाम करने लगते हैं। अणिमादि सिद्धियाँ उसके दर्शन मात्र से ही तृण के समान प्रतीत होने लगती है। "आद्या काली, स्वरूप" नामक शतनाम स्तोत्र कहा गया है ।

इस स्तोत्र के पुरश्चरण के लिए एक सौ आठ (१०८) बार पाठ करना चाहिए। पुरश्चरण करने से यह स्तोत्र अभीष्ट फल प्रदान करता है।

जो मनुष्य आद्या कालिकास्वरूपिणी शतनाम स्तोत्र का पाठ करता है या कराता है, सुनता है या सुनाता है, वह समस्त पापों से मुक्त होकर ब्रह्मसायुज्य को प्राप्त हो जाता है।

हरि०–तिग्मांशुरिव सूर्य्य इव दुष्प्रेक्ष्यो दुःखेन द्रष्टव्यः। प्रान्तरे तरुजलादिशून्ये ग्रामतो दूरेऽध्वनि। ससम्भ्रमाः सभयाः सादरा वा। अस्य शतनामस्तोत्रस्य ॥४०-५४॥

श्रीसदाशिव उवाच

कथितं परमं ब्रह्मप्रकृतेः स्तवनं महत् ।
आद्यायाः श्रीकालिकायाः कवचं शृणु साम्प्रतम् ॥५५॥
त्रैलोक्यविजयस्यास्य कवचस्य ऋषिः शिवः ।
छन्दोऽनुष्टुब्देवता च आद्या काली प्रकीर्तितः ॥५६॥

पद्या–श्रीसदाशिव ने कहा-हे शिवे! तुमसे परब्रह्मस्वरूप प्रकृति का स्तोत्र कहा। अब आद्या श्री कालिका का कवच कहता हूँ उसे सुनो। इस त्रिलोक विजय कवच के ऋषि शिव, छन्द अनुष्टुप् तथा देवता आद्या कालिका कही गयी हैं।

हरि०–कवचं कथयितुं पार्वत्या पूर्वमेव प्रेरितः श्रीसदाशिव उवाच कथितमित्यादि ॥५५-५६॥

मायाबीजं बीजमिति रमा शक्तिरुदाहृता ।
क्रीं कीलकं काम्यसिद्धौ विनियोगः प्रकीर्तितः॥५७॥
ह्रीमाद्या मे शिरः पातु श्रीं काली वदनं मम् ।
हृदय क्रीं पराशक्तिः पायात् कण्ठं परात्परा॥५८॥
नेत्रे पातु जगद्धात्री कर्णौ रक्षतु शङ्करी ।
घ्राणं पातु महामाया रसनां सर्वमङ्गला ॥५९॥

पद्या–मायाबीज ह्रीं इसका बीज है, श्रीं इसकी शक्ति है, क्रीं इसका कीलक तथा काम्यसिद्धि के लिए इसका विनियोग कहा गया है। 'ह्रीं' स्वरूपा आद्या मेरे सिर की तथा "श्रीं" स्वरूपा काली मेरे मुख की रक्षा करें। क्रीं स्वरूपा पराशक्ति मेरे हृदय की तथा तत्परा मेरे कण्ठ की रक्षा करें। जगद्धात्री मेरे नेत्रों तथा दोनों कानों की रक्षा शंकरी करे। महामाया मेरी नासिका की तथा सर्वमंगला मेरी जिह्वा की रक्षा करें।

विशेष–अस्य कवचस्य सदाशिवः ऋषिः अनुष्टुपछन्दः आद्याकाली देवता ह्रीं बीजं रीं शक्तिः क्रीं कीलकं काम्यसिद्ध्यर्थे कवच पाठे विनियोगः।

शिरसि ॐ सदाशिवाय ऋषये नमः। मुखे ॐ अनुष्टुपछन्दसेः नमः हृदि। ॐ आद्याकालिकायै देवतायै नमः गुह्ये। ॐ ह्रीं बीजाय नमः पादयोः। ॐ श्रीं शक्तये नमः सर्वाङ्गे। ॐ ह्रीं बीजाय नमः पादयोः। ॐ श्रीं शक्तये नमः सर्वाङ्गे। ॐ क्रीं कीलकायै नमः। काम्यसिद्धे अर्थे कवचपाठे विनियोगः।

हरि०–मायाबीजं ह्रीमिति बीजम्। रमा श्री बीजम् ॥५७-५९॥

दन्तान् रक्षतु कौमारी कपोलौ कमलालया।
ओष्ठाधरौ क्षमा रक्षेत् चिबुकं चारुहासिनी ॥६०॥
ग्रीवां पायात् कुलेशानी ककुत् पातु कृपामयी।
द्वौ बाहू बाहुदा रक्षेत् करौ कैवल्यदायिनी ॥६१॥
स्कन्धौ कपर्दिनी पातु पृष्ठं त्रैलोक्यतारिणी।
पार्श्वे पायादपर्णा मे कटिं मे कमठासना ॥६२॥

पद्या–कौमारी दन्तपंक्तियों की तथा कमलालया मेरे दोनों कपोलों की रक्षा करें। क्षमा मेरे ओष्ठ एवं अधर की तथा चारुहासिनी मेरी ठोढ़ी की रक्षा करें। कुलेशानी मेरी ग्रीवा (गर्दन) की तथा कृपामयी ककुद की रक्षा करें। बाहुदा दोनों बाहुओं की तथा कैवल्यदायिनी मेरे दोनों हाथों की रक्षा करे। कपर्दिनी मेरे दोनो कन्धों की तथा त्रैलोक्यतारिणी पीठ की रक्षा करें। अपर्णा मेरे दोनों पार्श्वों की तथा कमठासना मेरी कटि की रक्षा करें।

हरि०–चिबुकम् ओष्ठाधारोभागम् ॥६०-६२॥

नाभौ पातु विशालाक्षी प्रजास्थानं प्रभावती।
उरू रक्षतु कल्याणी पादौ मे पातु पार्वती ॥६३॥
जयदुर्गाऽवतु प्राणान् सर्वाङ्गं सर्वसिद्धिदा।
रक्षाहीनन्तु यत् स्थानं वर्जितं कवचेन च ॥६४॥
तत् सर्वं मे सदा रक्षेदाद्या काली सनातनी।
इति ते कथितं दिव्य त्रैलोक्यविजयाभिधम् ॥६५॥
कवचं कालिकादेव्या आद्यायाः परमाद्भुतम् ॥६६॥

पद्या–विशालाक्षी नाभि की रक्षा करें तथा प्रभावती उपस्थ की रक्षा करें। कल्याणी दोनों उरूओं की तथा पार्वती दोनों पैरों की रक्षा करें। जय दुर्गा प्राणों की तथा सर्वसिद्धिदा सर्वाङ्ग की रक्षा करे। जो स्थान इस कवच में वर्जित तथा रक्षाहीन है। मेरे उन सभी अंगों की रक्षा सनातनी काली करें। इस प्रकार त्रैलोक्य विजय नामक आद्या कालिका देवी का दिव्य एवं परम् अद्भुत कवच कहा।

हरि०–प्रजास्थानम् उपस्थम् ॥६३-६६॥

पूजाकाले पठेद्यस्तु आद्याधिकृतमानसः।
सर्वान् कामानवाप्नोति तस्याद्या सुप्रसीदति।
मन्त्रसिद्धिर्भवेदाशु किङ्कराः क्षुद्रसिद्धयः ॥६७॥
अपुत्रो लभते पुत्रं धनार्थी प्राप्नुयाद्धनम्।
विद्यार्थी लभते विद्यां कामी कामानवाप्नुयात् ॥६८॥

पद्या–जो मनुष्य पूजाकाल में आद्या भगवती का ध्यान कर इस कवच का पाठ करता

है उसकी समस्त इच्छाएं पूर्ण हो जाती हैं तथा भगवती कालिका उससे प्रसन्न रहती है। वह शीघ्र ही समस्त सिद्धियों को प्राप्त कर लेता है तथा क्षुद्र सिद्धियां उसका किंकर हो जाती हैं। इस कवच के प्रसाद से पुत्रहीन भी पुत्रवान हो जाता है। धनार्थी को धन तथा विद्यार्थी को विद्या की प्राप्ति होती है तथा कामी व्यक्ति की कामना पूर्ण होती है।

हरि०–अथ त्रैलोक्यविजयाभिधकवचपाठस्य फलमाह पूजाकाल इत्यादिभिः ॥६७-६८॥

सहस्रावृत्तपाठेन वर्मणोऽस्य पुरस्क्रिया ।
पुरश्चरणसम्पन्नं यथोक्तफलदं भवेत् ॥६९॥
चन्दनागरुकस्तूरीकुङ्कुमै रक्तचन्दनैः ।
भूर्जे विलिख्य गुटिकां स्वर्णस्थां धारयेद् यदि ॥७०॥

पद्म–एक हजार बार इस स्तोत्र का पाठ करने से पुरश्चरण होता है। पुरश्चरण सम्पन्न होने पर यह स्तोत्र यथोक्त फल प्रदान करता है। जो साधक चन्दन, अगर, कस्तूरी, कुंकुम तथा रक्तचन्दन से भोजपत्र पर लिखकर सुवर्ण की गुटिका में यदि धारण करता है।

हरि०–वर्मणः कवचस्य ॥६९-७०॥

शिखायां दक्षिणे बाहौ कण्ठे वा साधकः कटौ ।
तस्याऽऽद्या कालिका वश्या वाञ्छितार्थं प्रयच्छति ॥७१॥
न कुत्रापि भयं तस्य सर्वत्र विजयी कविः ।
अरोगी चिरंजीवी स्यात् बलवान् धारणक्षमः ॥७२॥
सर्वविद्यासु निपुणः सर्वशास्त्रार्थतत्त्ववित् ।
वशे तस्य महीपाला भोगमोक्षौ करस्थितौ ॥७३॥
कलिकल्मषयुक्तानां निःश्रेयसकरं परम् ॥७४॥

पद्म–इस कवच को शिखा में, दाहिनी भुजा में, कण्ठ में या कटि में धारण करने पर आद्या कालिका उसके वश में होकर उसको मनोवांछित फल प्रदान करती हैं। वह सभी स्थानों में विजयी, कवि, अरोग, बलवान, धारणक्षम, चिरंजीवी, सभी विद्याओं में निपुण तथा सर्वशास्त्रार्थ तत्त्व का ज्ञाता होता है। राजा उसके वशीभूत होते हैं तथा भोगमोक्ष उसके हाथ में रहते हैं। यह कवच कलियुग में पापी मनुष्यों के लिए निःसन्देह रूप से मोक्षदायक है।

हरि०–**प्रयच्छति ददाति**। निपुणः प्रवीणः॥७१-७४॥

श्रीदेव्युवाच

कथितं कृपया नाथ स्तोत्रं कवचमेव च ।
अधुना श्रोतुमिच्छामि पुरश्चर्याविधिं विभो ॥७५॥

पद्म–श्रीदेवी ने कहा-हे नाथ! आपने कृपा करके स्तोत्र तथा कवच कहा। हे विभो! अब मेरी इच्छा पुरश्चरण विधि सुनने की है।

हरि०–आद्याकालीमन्त्राणां पुरश्चरणविधिं शुश्रूषुः श्री देव्युवाच कथितमित्यादि॥७५॥

श्रीसदाशिव उवाच

यो विधिर्ब्रह्ममन्त्राणां पुरश्चरणकर्मणि ।
स एवाऽऽद्याकालिकाया मन्त्राणां विधिरिष्यते ।।७६।।

पद्मा–श्रीसदाशिव ने कहा–ब्रह्ममन्त्र के पुरश्चरण की जो विधि है वही आद्या कालिका के मन्त्र की भी है ।

हरि०–श्रीदेव्यैव प्रेरितं सन् श्रीसदाशिव उवाच यो विधिरित्यादि॥७६॥

अशक्ते साधके: देवि! जपपूजाहुतादिषु ।
पूजा संक्षेपतः कार्या पुरश्चरणमेव च ।।७७।।

पद्मा–हे देवि! साधक जप, पूजा होमादि करने में असमर्थ हो, तो संक्षिप्त रूप से पूजा और पुरश्चरण कर्म करे ।

हरि०–पुरश्चरणमेव च पुरश्चरणमपि च संक्षेपतः कार्य्यम् ॥७७॥

यतोहि निरनुष्ठानात् स्वल्पानुष्ठनमुत्तमम् ।
संक्षेपपूजनं भद्रे तत्रादौ श्रणु कथ्यते ।।७८।।

पद्मा–क्योंकि कुछ भी अनुष्ठान न करने की अपेक्षा थोड़ा भी अनुष्ठान करना उत्तम है । हे भद्रे ! सर्वप्रथम संक्षिप्त पूजन की विधि कहता हूँ सुनो ।

हरि०–संक्षेपपूजादिकरणे हेतुमाह यतो हीति ॥७८॥

आचम्य मूलमन्त्रेण ऋषिन्यासं समाचरेत् ।
करशुद्धिं ततः कुर्यात् न्यासञ्च करदेहयोः ।।७९।।

पद्मा–साधक सर्वप्रथम मूलमंत्र के द्वारा आचमन करके ऋषिन्यास करे। इसके उपरान्त करशुद्धि करके करन्यास एवं अंगन्यास करे ।

हरि०–संक्षेपपूजनमेवाह आचम्येत्यादिभिः॥७९॥

सर्वाङ्गव्यापकं कृत्वा प्राणायामं चरेत् सुधीः ।
ध्यानं पूजां जपञ्चेति संक्षेपपूजने विधिः ।।८०।।

पद्मा–सर्वागव्यापकन्यास करके प्राणायाम, ध्यान, पूजा तथा जप करे । यही संक्षिप्त पूजन की विधि है ।

हरि०–सर्वाङ्गव्यापकन्यासम् ॥८०॥

पुरस्क्रियायां मन्त्राणां यत्र यो विहितो जपः ।
तस्माच्चतुर्गुणजपात् पुरश्चर्या विधीयते ।।८१।।
अथवाऽन्यप्रकारेण पुरश्चरणमुच्यते ।।
कृष्णां चतुर्दशीं प्राप्य कौजे वा शनिवासरे ।
पञ्चतत्त्वं समानीय पूजयित्वा जगन्मयीम् ।।८२।।

पद्मा–मन्त्र के पुरश्चरण में जिस मन्त्र की जितनी संख्या कही गयी है होमादि न करने

पर उसका चौगुना जप करने से ही पुरश्चरण कर्म सम्पन्न होता है अथवा अन्य प्रकार से पुरश्चरण विधि कहता हूँ। कृष्णपक्ष में मंगलवार की या शनिवार की चतुर्दशी को रात्रि के समय पञ्चतत्त्व को लाकर जगन्मयी की पूजा करे ।

हरि०–अथ संक्षेपपुरश्चरणमाह पुरस्क्रियायामित्यादिभिः। मन्त्राणां यत्र पुरस्क्रियायां यो जपो विहितस्तस्माच्चतुर्गुणजपात् होमादिकं विनैव पुरश्चर्य्या विधीयते।।८१-८२।।

महानिशायामयुतं जपेन्मन्त्रमनन्यधीः ।
भोजयित्वा ब्रह्मनिष्ठान् पुरश्चरणकृद्भवेत् ।।८३।।

पद्मा–साधक महानिशा में एकाग्रचित्त होकर मन्त्र का १०००० जप करे। जप के उपरान्त ब्रह्मनिष्ठ ब्राह्मणों को भोजन कराकर पुरश्चरण कार्य पूर्ण करे ।

हरि०–अयुतम् दशसहस्रकम् ।।८३।।

कुजवासरमारभ्य यावन्मङ्गलवासरम् ।
प्रत्यहं प्रजपेन्मन्त्रं सहस्रपरिसंख्यया ।।८४।।
वसुसंख्याजपेनैव भवेन्मन्त्रपुरस्क्रिया ।।८५।।
श्रीआद्याकालिकामन्त्राः सिद्धमन्त्राः सुसिद्धिदाः।
सदा सर्वयुगे देवि! कलिकाले विशेषतः ।।८६।।

पद्मा–एक मंगलवार से आरंभ कर लगातार दूसरे मंगलवार तक प्रतिदिन एक हजार मन्त्र का जप करे। इस प्रकार आठ हजार जप करने से मन्त्र का पुरश्चरण होता है। हे देवी! आद्या कालिका के सभी मन्त्र सभी समयों में, सभी युगों में, विशेषकर कलियुग में "सिद्धमन्त्र" है। यह सभी मन्त्र सुसिद्धि प्रदान करते हैं ।

हरि०–अथ तृतीयं पुरश्चरणमाह कुजेत्यादिना सार्द्धेन। यावन्मङ्गलवासरम् द्वितीयमङ्गलवारपर्य्यन्तमित्यर्थः ।

कालीरूपाणि बहुधा कलौ जाग्रति पार्वति !
प्रबले कलिकाले तु रूपमेतज्जगद्धितम् ।।८७।।

पद्मा–हे पार्वति ! कलियुग में अनेक प्रकार के कालीरूप जाग्रत हैं। कलियुग के प्रबल होने पर यह कालीरूप ही जगत् के लिए हितकारी होगा ।

हरि०–एतद्रूपम् आद्यायाः काल्या रूपम् ।।८७।।

नात्र सिद्धयाद्यपेक्षास्ति नारि मित्रादिदूषणम् ।
नियमानियमेनापि जपन्नाद्यां प्रसादयेत् ।।८८।।
ब्रह्मज्ञानमवाप्नोति श्रीमदाद्याप्रसादतः ।
ब्रह्मज्ञानयुतो मर्त्यो जीवन्मुक्तो न संशयः ।।८९।।
न च प्रयासबाहुल्यं कायक्लेशोऽपि न प्रिये ।
आद्याकालीसाधकानां साधनं सुखसाधनम् ।।९०।।

चित्तसंशुद्धिरेवात्र मन्त्रिणां फलदायिनी ।।९१।।

पद्मा–इस मन्त्र में सिद्धादि चक्र गणना की अपेक्षा नहीं है। अरिमित्रादि का दोष भी नहीं है। इस मन्त्र में विशेष नियमानियम की आवश्यकता नहीं है। साधक इस मन्त्र का जप कर आद्या काली को प्रसन्न करे। इस मन्त्र के जप से श्रीमदाद्या काली के प्रसाद से ब्रह्मज्ञान की प्राप्ति होती है। ब्रह्मज्ञान से सम्पन्न मनुष्य जीवन्मुक्त है इसमें संशय नहीं है। हे प्रिये! इस मन्त्र की साधना में विशेष प्रयास नहीं करना पड़ता है तथा शरीर को कष्ट भी नहीं होता। आद्या काली के साधकों की साधना सुख साध्य है। इसमें चित्त की शुद्धि ही साधकों के लिए फलदायिनी होती है ।

हरि०–अत्र आद्याकालीमन्त्रे।।८८-९१।।

यावन्न चित्तकलिलं हातुमुत्सहते व्रती ।
तावत् कर्म प्रकुर्वीत कुलभक्तिसमन्वितः ।।९२।।
यथावद्विहितं कर्म चित्तशुद्धेर्हि कारणम् ।
आदौ मन्त्रं गुरोर्वक्त्राद् गृह्णीयाद् ब्रह्ममन्त्रवत् ।।९३।।
प्रातः कृत्यादिनियमान् कृत्वा कुर्यात् पुरस्क्रियाम् ।
चित्ते शुद्धे महेशानि! ब्रह्मज्ञानं प्रजायते ।
ब्रह्मज्ञाने समुत्पन्ने कृत्याकृत्य न विद्यते ।।९४।।

पद्मा–साधक जब तक चित्त की कलुषता दूर करने में समर्थ न हो, तब तक कुलभक्ति से युक्त होकर कर्म करे; क्योंकि यथाविधि कम का अनुष्ठान ही चित्त की शुद्धि का कारण है। ब्रह्ममन्त्र के समान इस मन्त्र को सर्वप्रथम गुरुमुख से प्राप्त करे। प्रातः कृत्यादि नियम अनुष्ठान के साथ पुरश्चरण कर्म करे। हे महेशानि! चित्त की शुद्धि होने पर ही ब्रह्मज्ञान उत्पन्न होता है। ब्रह्मज्ञान के उत्पन्न होने पर कृत्य अकृत्य की आवश्यकता नहीं रहती है ।

हरि–**यावदिति**। यावत् कालपर्य्यन्तं चित्तकलिलश्चेतसः कालुष्यं हातुं त्यक्तुं नोत्सहते न शक्नोति तावदेव कुलभक्तिसमन्वितो भूत्वा व्रती नियमवान् साधकः कर्म प्रकुर्वीत न तु ततः परम् । तत्र कारणमाह यथावदिति । हि यतः ।।९२-९४।।

श्रीपार्वत्युवाच

कुलं किं परमेशान ! कुलाचारश्च किं विभो!
लक्षणं पञ्चतत्त्वस्य श्रोतुमिच्छामितत्त्वतः ।।९५।।

पद्मा–श्रीपार्वती ने कहा-हे परमेशान! हे विभो! कुल क्या है? कुलाचार क्या है ? यह सभी तथा पञ्चतत्त्व के लक्षण वास्तविक रूप में मेरी सुनने की इच्छा है ।

हरि०–कुलकुलाचारादिकं जिज्ञासुः श्रीपार्वत्युवाच कुलं किमित्यादि।।९५।।

श्रीसदाशिव उवाच

सम्यक् पृष्टं कुलेशानि! साधकानां हितैषिणी ।
कथयामि तव प्रीत्यै यथावदवधारय ।।९६।।

पद्या–श्रीसदाशिव ने कहा-हे कुलेशानि! तुमने अच्छा प्रश्न किया है। तुम साधकों की हितैषिणी हो। तुम्हारी प्रसन्नता के लिये मैं सभी कुछ यथार्थ रूप में कहता हूँ।

हरि०–एवं प्रेरितः सन् श्रीसदाशिव उवाच सम्यक् पृष्टमित्यादि ।।९६।।

जीवः प्रकृतितत्त्वञ्च दिक्कालाकाशमेव च ।
क्षित्यप्तेजोवायवश्च कुलमित्यभिधीयते ।।९७।।

पद्या–जीव, प्रकृति तत्त्व, दिक्, काल, आकाश, क्षिति (पृथ्वी), जल, तेज तथा वायु–ये नौ कुल नाम से कहे गये हैं।

हरि०–प्रथमतस्तत्र कुलं निर्वक्ति जीव इत्याद्येकेन। जीवादयो नव कुलमित्यभिधीयते कथ्यते।।९७।।

ब्रह्मबुद्ध्या निर्विकल्पमेतेष्वाचरणञ्च यत् ।
कुलाचारः स एवाद्ये धर्मकामार्थमोक्षदः।।९८।।

पद्या–हे आद्ये ! इन नौ कुलों में ब्रह्मबुद्धि से जो निर्विकल्प शून्य आचरण होता है वही कुलाचार है तथा यही कुलाचार धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्ष का प्रदाता है।

हरि०–अथैकेन कुलाचारं निर्वक्ति ब्रह्मबुद्ध्येति । हे आद्ये एतेषु जीवप्रकृत्यादिषु ब्रह्मबुद्ध्या निर्विकल्पं नानाविधकल्पनाशून्यं पदाचरणं स एव धर्मकामार्थमोक्षदः कुलाचारोऽभिधीयते।।९८।।

बहुजन्मार्जितैः पुण्यैस्तपोदानदृढव्रतैः।
क्षीणाघानां साधकानां कुलाचारे मतिर्भवेत् ।।९९।।

पद्या–अनेक जन्मों के अर्जित पुण्य, तपस्या, दान तथा दृढ़ व्रत से शुद्ध एवं निष्पाप हुए साधकों की ही कुलाचार में प्रवृत्ति होती है।

हरि०–अथ कुलाचारस्य सुदुर्लभत्वमाह बहुजन्मार्जितैरित्यादिना।।९९।।

कुलाचारगता बुद्धिर्भवेदाशु सुनिर्मला ।
तदाद्याचरणाम्भोजे मतिस्तेषां प्रजायते ।।१००।।
सद्गुरोः सेवया प्राप्य विद्यामेनां परात्पराम् ।
कुलाचाररता भूत्वा पञ्चतत्त्वैः कुलेश्वरीम् ।।१०१।।

पद्या–कुलचार में लगे रहने पर बुद्धि शीघ्र ही निर्मल हो जाती है। बुद्धि की निर्मलता होने पर मन श्री आद्या काली के चरण कमलों में लग जाता है। जो साधक सद्गुरु की सेवा करके इस परात्परा मन्त्रविद्या को प्राप्त कर कुलाचार में तत्पर होकर पंचतत्त्व से कुलेश्वरी।

हरि०–अथ कुलाचारस्य अत्युत्तमफलत्वमाह कुलाचारगतेत्यादिभिः। विद्यामेनाम् मन्त्रस्वरूपाम् ॥१००-१०१॥

यजन्त कालिकामाद्यां कुलज्ञाः साधकोत्तमाः ।
इह भुक्त्वाऽखिलान् भोगान् व्रजन्त्यन्ते निरामयम् ॥१०२॥

पद्मा–आद्या कालिका की पूजा करता है वही कुलज्ञ है तथा वही साधकों में श्रेष्ठ है। वह इस लोक में समस्त सुखों को भोग कर अन्त में मोक्ष को प्राप्त करता है ।

हरि०–निरामयम् सर्वोपद्रवरहितं मोक्षपदम् ॥१०२॥

महौषधं यज्जीवानां दुःखविस्मारकं महत् ।
आनन्दजनकं यच्च तदाद्यतत्त्वलक्षणम् ॥१०३॥

पद्मा–समस्त जीवों के लिये जो दुःख दूर करने में महौषधस्वरूप तथा आनन्दजनक है वही आदितत्त्व का लक्षण है ।

हरि०–अथ क्रमतो मद्यादिपञ्चतत्त्वानां लक्षणमाह महौषधमित्यादिभिः॥१०३॥

असंस्कृतञ्च यत्तत्त्व मोहदं भ्रमकारणम् ।
विवादरोगजननन्त्याज्यं कौलैः सदा प्रिये॥१०४॥

पद्मा–आदि.तत्त्व के शोधित न होने पर केवल मोहप्रदायक भ्रमोत्पादक, विषाद एवं रोग का कारण होता है। हे प्रिये! इसलिए कौलिकगण असंस्कारित तत्त्व को सदैव त्याग दें।

हरि०–तत्त्वम् आद्यतत्त्वम् ॥१०४॥

ग्राम्यवायव्यवन्यानामुद्भूतं पुष्टिवर्द्धनम् ।
बुद्धितेजोबलकरं द्वितीयतत्त्वलक्षणम् ॥१०५॥

पद्मा–ग्राम्य (छागादि) वायव्य (तीतर, हारीतादि पक्षी) मन्य (मृगादि) जिनके शरीर से उत्पन्न तत्त्व पुष्टिवर्धक और बुद्धि, बल एवं तेज प्रदायक है वही द्वितीय तत्त्व का लक्षण है।

हरि०–**ग्राम्येत्यादि।** ग्राम्या ग्रामोद्भवाश्छागादयश्च वायव्या वायूद्भवास्तित्तिरि हारीतादयश्च वन्या वनोद्भवा हरिणादयश्च ते तेषाम् ॥१०५॥

जलोद्भवं यत् कल्याणि! कमनीयं सुखप्रदम् ।
प्रजावृद्धिकरञ्चाऽपि तृतीयतत्त्वलक्षणम् ॥१०६॥
सुलभं भूमिजातञ्च जीवानां जीवनञ्च यत् ।
आयुर्मूलं त्रिजगतां चतुर्थतत्त्वलक्षणम् ॥१०७॥
महानन्दकरं देवि! प्राणिनां सृष्टिकारणम् ॥
अनाद्यन्त जगन्मूलं शेषतत्त्वस्य लक्षणम् ॥१०८॥
आद्यतत्त्वं विद्धि तेजो द्वितीयं पवनं प्रिये !
अपस्तृतीयं जानीहि चतुर्थं पृथिवी शिवे!॥१०९॥

पञ्चमं जगदाधारा वियद्विद्धि वरानने!।।११०।।
इत्थं ज्ञात्वा कुलेशानि! कुलन्तत्त्वानि पञ्च च।
आचारं कुलधर्म्मस्य जीवन्मुक्तो भवेन्नरः।।१११।।

इति श्रीमहानिर्वाणतन्त्रे सर्वतन्त्रोत्तमोत्तमे सर्वधर्मनिर्णयसारे श्रीमदाद्यासदा-शिवसंवादे स्तोत्रकवचकुलतत्त्व-लक्षणकथनं नाम सप्तमोल्लासः।।७।।

पद्मा–हे कल्याणि! जो जल से उत्पन्न कमनीय, सुखप्रद, प्रजावृद्धिकर है वही तृतीय तत्त्व है। जो तत्त्व सुलभ, भूमि से उत्पन्न, जीवों का जीवनस्वरूप तथा त्रिभुवन की आयु का मूल कारण है वही चतुर्थ तत्त्व का लक्षण है। हे देवि! अत्यन्त आनन्द प्रदान करने वाला, प्राणियों की सृष्टि का कारण, आदि तथा अन्तरहित जगत् का मूल कारण है यह शेष पञ्चम् तत्त्व का लक्षण है। हे प्रिये! आद्या तत्त्व को तेज, द्वितीय तत्त्व को पवन, तृतीय तत्त्व को जल, चतुर्थ तत्त्व को पृथ्वी तथा पञ्चम तत्त्व को जगत् का आधार नवों मण्डल (आकाशमण्डल) जानना चाहिए। हे कुलेश्वरि! जो मनुष्य इसी प्रकार कुल, पञ्चतत्त्व तथा कुलधर्म के आचार को जानकर उसके अनुसार कर्मानुष्ठान करता है वही जीवन्मुक्त होता है।

इस प्रकार महानिर्वाणतन्त्र के स्तोत्रकवच कुलतत्त्वलक्षण कथन नामक सातवें उल्लास की अजयकुमार उत्तम रचित पद्मा हिन्दी व्याख्या पूर्ण हुई ।

हरि०–कमनीयमाकाङ्क्षणीयम् ।।१०६-१११।।

इति श्रीमाहनिर्वाणतन्त्रटीकायां सप्तमोल्लासः।।७।।

अष्टमोल्लासः

श्रुत्वा धर्मान् बहुविधान् भवानी भवमोचनी।
हिताय जगतां माता भूयं शङ्करमब्रवीत् ।।१।।

पद्मा–इसके पश्चात् भवपाशविमोचिनी भवानी (पार्वती) ने इस प्रकार बहुत प्रकार से धर्मविषय सुनकर जगत् के हित के लिये भगवान् शिव से कहा ।

हरि०–ॐ नमो ब्रह्मणे ।

श्रुत्वेत्यादि। भवमोचनी भक्तसंसारमञ्जनशीला। जगतामिति काकाक्षिगा-लकन्यायेन पूर्वोत्तराभ्यां पदाभ्यां सम्बध्यते ।।१।।

श्रीदेव्युवाच

श्रुतं बहुविधं धर्ममिहमूत्र सुखप्रदम् ।
धर्मार्थकामदं विघ्नहरं निर्वाणकारणम् ।।२।।

पद्मा–श्रीदेवी ने कहा-इस लोक एवं परलोक में भी सुख को प्रदान करने वाली, धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्षजनक, विघ्ननाशक धर्म की कथा सुनना चाहती हूँ ।।२।।

हरि०–किमब्रवीदित्यपेक्षायामाह श्रुतमित्यादि ।।२।।

साम्प्रतं श्रोतुमिच्छामि ब्रूहि वर्णाश्रमान् विभो!
तत्र ये विहिताचाराः कृपया वद तानपि।।३।।

पद्मा–हे विभो! अब मैं वर्ण तथा आश्रम एवं उन-उन वर्णों तथा आश्रमों में जो आचारविहित है उन्हें मैं सुनना चाहती हूँ कृपया आप वह सब कुछ मुझसे कहिए ।

हरि०–तत्र वर्णाश्रमेषु।।३।।

श्रीसदाशिव उवाच

चत्वारः कथिता वर्णा आश्रमा अपि सुव्रते !
आचाराश्चापि वर्णानामाश्रमाणां पृथक् पृथक् ।।४।।
कृतादौ कलिकाले तु वर्णाः पञ्च प्रकीर्तिताः।
ब्राह्मणः क्षत्रियो वैश्यः शूद्र! सामान्य एव च ।।५।।

पद्मा–श्रीसदाशिव ने कहा-हे सुव्रते ! सत्य आदि चार युगों में चार वर्ण चार आश्रम तथा उन वर्णों एवं आश्रमों के आचार पृथक् पृथक् कहे गये हैं किन्तु कलियुग में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र एवं सामान्य यह पाँच प्रकार के वर्ण कहे गये हैं ।

हरि०–एवं प्रेरितः सन् श्रीसदाशिव उवाच चत्वारः इत्यादि।। हे सुव्रते कृतादौ सत्यत्रेतादौ वर्णा आश्रमा अपि चत्वारः कथिताः। वर्णानामा श्रमाणाञ्चारश्चापि पृथक-पृथक् कथिताः। कलिकाले तु वर्णाः पञ्चप्रकीर्तिताः। तान् दर्शयति ब्राह्मण इत्याद्यर्द्धेन। सामान्यो वर्णसङ्करः।।४-५।।

एतेषां सर्ववर्णानामाश्रमौ द्वौ महेश्वरि !
तेषामाचार धर्मांश्च शृणुष्वाद्ये वदामि ते ।।६।।

पद्मा–हे महेश्वरि! इन सभी वर्णों के लिए आश्रम दो प्रकार के हैं। हे आद्ये! तुम से उन सभी वर्णों तथा आश्रमों के आचार एवं धर्म को कहता हूँ। सुनो ।

हरि०–एतेषामिति। हे आद्ये महेश्वरि एतेषां ब्राह्मणादीनां सर्ववर्णानां द्वावाश्रमौ तेषां वर्णाश्रमाणामाचाररूपान् धर्म्मांश्च ते तवाग्रेऽहं वदामि त्वं शृणुष्वेत्यन्वयः।।६।।

पुरैव कथितं तावत् कलिसम्भव चेष्टितम् ।
तपः स्वाध्यायहीनानां नृणामल्पायुषामपि।
क्लेशप्रयासाशक्तानां कुतो देहपरिश्रमः।।७।।

पद्मा–कलियुग में उत्पन्न मनुष्यों की कथा पहले ही कह चुका हूँ। तप वेदपाठ से रहित मनुष्य अल्पायु होंगे। वे क्लेश और प्रयास से अशक्त रहेंगे। उनके लिए शारीरिक परिश्रम असम्भव होगा ।

हरि०–कलियुगे वर्त्तमानौ द्वावाश्रमावभिधास्यन्नमहादेवः पूर्वमाश्रमद्वयाभावे हेतुं दर्शयति पुरैवेत्यादिना सार्द्धेन। कलौ सम्भव उत्पत्तिर्येषां ते कलिसम्भवाः तेषां चेष्टितं पुरैव कथितम् तावदित्यवधारणे। किञ्च तप इत्यादि। तपः स्वध्यायहीनानां तपः कृच्छ्रादिकर्म्म स्वाध्यायो वेदपाठः ताभ्यां रहितानां। क्लेशप्रयासाशक्तानां क्लेशः उपतापः प्रयासः परिश्रमः तयोर्निर्वलत्वादसमर्थानाम् । नत्वेतादृशानामेव किंत्वल्पायुषामपि। एवंभूतानां नृणां देहपरिश्रमः कुतो भवेत् न केनापि प्रकारेण भवेदित्यर्थः।।७।।

ब्रह्मचर्याश्रमो नास्ति वानप्रस्थोऽपि न प्रिये !
गार्हस्थ्यौ भैक्षुकश्चैव आश्रमो द्वौ कलौ युगे ।।८।।

पद्मा–हे प्रिये! कलियुग में ब्रह्मचर्य आश्रम नहीं है और वानप्रस्थ आश्रम भी नहीं है। गार्हस्थ्य और भैक्षुक यह दो ही आश्रम कलियुग में निरूपित किये गये हैं ।

हरि०–ब्रह्मचर्येत्यादि। हे प्रिये अतःकलौ युगे ब्रह्मचर्याश्रमो नास्ति वानप्रस्थोऽपि नास्ति किन्तु गार्हस्थ्यभैक्षुकरूपौ द्वावेवाश्रमौ कलौ स्तः।।८।।

गृहस्थस्य क्रिया सर्वा आगमोक्ताः कलौ शिवे!
नान्यमार्गैः क्रियासिद्धिः कदापि गृहमेधिनाम् ।।९।।

पद्मा–हे शिवे ! कलियुग में गृहस्थों की सभी क्रियाएं तन्त्रशास्त्र के अनुसार होंगी। अन्य किसी भी विधि से गृहस्थों को कभी भी क्रियासिद्धि नहीं होगी ।

हरि०–न केवलं कलौ युगे द्वयोराश्रमयोरेवाभावोऽस्ति किन्तु सर्वाषां वैदिकक्रियाणामपीत्याह गृहस्थस्येत्यादिना। गृहमेधिनाम् गृहसङ्गमवतां गृहस्थानामित्यर्थः।।९।।

भैक्षुकेऽप्याश्रमे देवि! वेदोक्तं दण्डधारणम् ।
कलौ नास्त्येव तत्त्वज्ञे ! यतस्तत् श्रौतसंस्कृतिः।।१०।।

पद्मा–हे देवि! हे तत्वज्ञे ! कलियुग में भैक्षुकाश्रम में भी वेदोक्तदण्डधारण का विधान नहीं है; क्योंकि वह वैदिक-संस्कार है ।

हरि०–कलौ युगे गार्हस्थ्याश्रम एव वैदिक्यः सर्वाः क्रिया निषिद्धा न सन्त्यपि तु भैक्षुकाश्रमेऽपीत्याह भैक्षुकेऽपीत्यादि। तत् वेदोक्तं दण्डधारणम् । श्रौतसंस्कृतिः वैदिकः संस्कारः॥१०॥

शैवसंस्कारविधिनाऽवधूताश्रमधारणम् ।
तदेव कथितं भद्रे ! सन्न्यासग्रहणं कलौ ॥११॥

पद्मा–हे भद्रे ! कलियुग में शैवसंस्कार की विधि से अवधूत आश्रम धारण करने को ही सन्यास ग्रहण करना कहते हैं ।

हरि०–यद्येवं तर्हि कलौ किन्नाम सन्यासग्रहणं तत्राह शैवेत्यादि। हे भ्रदे ! शैवसंस्कारविधिना शिवप्रोक्तेन संस्कारविधानेनावभूताश्रमधारणं यत्तदेव कलौ युगे सन्न्यासग्रहणं कथितं ॥११॥

विप्राणामितरेषाञ्च वर्णानां प्रबले कलौ ।
उभयत्राश्रमे देवि ! सर्वेषामधिकारिता ॥१२॥

पद्मा–हे देवि! प्रबल कलियुग में ब्राह्मणादि सभी वर्ण इन दोनों आश्रमों के अधिकारी होंगे ।

हरि०–ननु कलौ युगे ब्राह्मणादीनां सर्वेषामपि वर्णानां सन्न्यासाश्रमाधिकारित्वं सत्यादाविव ब्राह्मणक्षत्रियविशामेव वा तत्राह विप्राणामित्यादि ॥१२॥

सर्वेषामेव संस्काराः कर्माणि शैववर्त्मना ।
विप्राणामितरेषाञ्चं कर्म्मलिङ्ग पृथक् पृथक् ॥१३॥

पद्मा–शैवविधि से ही सभी संस्कार तथा कर्म होंगे। किन्तु ब्राह्मण एवं अन्य वर्णों की कर्मविधि पृथक् पृथक् होगी ।

हरि०–**ननु प्रबले** । कलौ किं ब्राह्मणादयः सर्वे वर्णा एकाचारा एव भवेयुः पृथक् पृथगाचारा वा तत्राह सर्वेषामेवेत्यादि। विप्रादीनां सर्वेषामेव वर्णानां सर्वे संस्काराः अन्यानि च सर्वाणि कर्माणि एकेन शैववर्त्मनैव साधनीयानि। शाम्भवैकवर्त्मसाध्यत्वेन सर्वेषामेव वर्णानां सर्वाणि कर्माणि कलौ सामानान्येवेत्यर्थ । किन्तु विप्राणामितरेषां विप्रभिन्नानाञ्च कर्मलिङ्गं कर्मचिह्नं कलावपि पृथक् पृथगेवास्ति ॥१३॥

जातमात्रो गृहस्थः स्यात् संस्कारादाश्रमी भवेत् ।
गार्हस्थ्यं प्रथमं कुर्यात् यथाविधि महेश्वरि ॥१४॥

पद्मा–हे महेश्वरि ! मनुष्य जन्म से गृहस्थ होता है तथा संस्कार होने पर आश्रमी होता है। इसलिए सर्वप्रथम गृहस्थाश्रम का पालन करना चाहिए ।

हरि०–ननु गार्हस्थ्याश्रमशीलत्वं कि जन्मनैव भवेत् संस्कारेण वा तत्राह जातमात्र इत्यादि। ननु गार्हस्थ्यभैक्षुकयोर्मध्ये प्रथमं कमाश्रममाश्रयेत्तत्राह गार्हस्थ्यमित्यादि ॥१४॥

तत्त्वज्ञाने समुत्पन्ने वैराग्यं जायते यदा ।
सदा सर्वं परित्यज्य सन्न्यासाश्रममाचरेत् ।।१५।।

पद्मा–इसके उपरान्त तत्त्वज्ञान अर्थात् संसार में निश्चित दुःखादि ज्ञान के उत्पन्न होने पर जब वैराग्य उत्पन्न हो तब सब कुछ त्यागकर संन्यास आश्रम का पालन करे।

हरि०–तत्त्वज्ञाने ब्रह्मज्ञाने।।१५।।

विद्यामुपार्जयेत् बाल्ये धनं दारांश्च यौवने ।
प्रौढ़े धर्म्याणि कर्माणि चतुर्थे प्रव्रजेत् सुधीः ।।१६।।
मातरं पितरं वृद्धं भार्यांञ्चैव पतिव्रताम् ।
शिशुञ्च तनयं हित्वा नावधूताश्रमं व्रजेत् ।।१७।।

पद्मा–बाल्यकाल में विद्यार्जन, यौवनावस्था में धनोपार्जन एवं विवाह तथा प्रौढ़ावस्था में धर्म-कर्म का अनुष्ठान करे। इसके पश्चात् सुधी मनुष्य सन्न्यासाश्रम को ग्रहण करे। वृद्ध माता-पिता, पतिव्रता पत्नी, बाल्यावस्था युक्त शिशु इनको त्यागकर कभी भी अवधूताश्रम ग्रहण न करे।

हरि०–ननु कस्यामवस्थायां गार्हस्थाश्रम आश्रयणीयः सन्न्यासश्च कस्यामवस्थायां ग्रहणीयस्तत्राह विद्यामित्यादि। बाल्ये शैशवे विद्यामुपार्जयेत्। यौवने धनं वित्तं दारान् भार्याचोपार्जयेत्। प्रौढ़े तृतीये वयसि धर्म्याणि धर्मादनपेतानि कर्माणि कुर्यात्। सुधीर्विद्वांश्चतुर्थे वयसि प्रव्रजेत् संन्यसेत् ॥१६-१७॥

मातॄः पितॄन् शिशून् दारान् स्वजानान् बान्धवानपि।
यः प्रव्रजति हित्वैतान् स महापातकी भवेत् ।।१८।।
मातृहा पितृहा स स्यात् स्त्रीवधी ब्रह्मघातकः।
असन्तर्प्य स्वपित्रादीन् यो गच्छेद् भिक्षुकाश्रमे ।।१९।।
ब्राह्मणो विप्रभिन्नश्च स्वस्ववर्णोक्तसंस्क्रियाम् ।
शैवेन वर्त्मना कुर्यादेष धर्मः कलौ युगे ।।२०।।

पद्मा–जो मनुष्य माता-पिता, शिशु पुत्र, पत्नी तथा साथ के बन्धु-बान्धवों को छोड़कर संन्यास ग्रहण करता है वह महापातकी होता है। जो मनुष्य अपने माता-पिता को संतुष्ट किये बिना हो भिक्षुकाश्रम में गमन करता है उसे स्त्रीहत्या एवं माता-पिता के हत्या का पाप लगता है। उसे ब्रह्महत्या का पाप भी लगता है। ब्राह्मण अवं अन्य वर्ण शैवमार्ग के अनुसार ही अपने वर्ण की क्रिया का अनुष्ठान करें। यही कलियुग का धर्म है।

हरि०–मात्रादीन् परित्यज्य प्रव्रजतो मनुष्यस्य महापातकं भवेदित्याह मातॄरित्यादिद्वाभ्याम्। बहुवचनस्य बहूपलक्षकत्वात् पितॄन् पित्रादीनित्यर्थः। स्वजनान् स्वेनैव भर्त्तव्यानात्मीयान् जनान्। बान्धवान् असमर्थात् भ्रात्रादीन् ।।१८-२०।।

श्रीदेव्युवाच

को वा धर्मो गृहस्थस्य भिक्षुकस्य च किं विभो !
विप्रस्य विप्रभिन्नानां संस्कारादीनि मे वद ।।२१।।

पद्मा–श्रीदेवी ने कहा-हे विभो! गृहस्थ का धर्म क्या है ? अथवा भिक्षुक का धर्म क्या है ? यह सब कुछ तथा विप्र एवं विप्र से भिन्न अन्य सभी के संस्कारादि मुझसे कहिए।

हरि०–ब्राह्मणादीन् पञ्चवर्णान् तेषां द्वावाश्रमौ सामान्यं धर्मञ्च श्रुत्वेदानीं तेषामशेषान् विशेषान् धर्मान् श्रोतुमिच्छन्ती श्रीदेव्युवाच को वा इत्यादि। किं धर्मम् ।।२१।।

श्रीसदाशिव उवाच

गार्हस्थ्यं प्रथमं धर्मं सर्वेषां मनुजन्मनाम् ।
तदेव कथयाम्यादौ शृणु कौलिनि ! तत्त्वतः ।।२२।।

पद्मा–श्रीसदाशिव ने कहा-हे कौलिनि! गार्हस्थ्य धर्म ही सभी मनुष्यों का प्रथम धर्म है। इसलिए सर्वप्रथम उसे ही कहता हूँ सुनो ।

हरि०–श्रीदेव्यैवं प्रेरितः सन् श्रीसदाशिव उवाच गार्हस्थ्यमित्यादि। हे कौलिनि यतः सर्वेषां मनुजन्मनां मनुष्याणां गार्हस्थ्यं कर्म प्रथमं धर्म्म भवत्यस्तदेव धर्ममादौ कथयामि त्वं तत्त्वतः शृणु इत्यन्वयः।।२२।।

ब्रह्मनिष्ठो गृहस्थः स्यात् ब्रह्मज्ञानपरायणः।
यद्यत् कर्म प्रकुर्वीत तद्ब्रह्मणि समर्पयेत् ।।२३।।

पद्मा–गृहस्थ ब्रह्मनिष्ठ हो तथा ब्रह्मज्ञानपरायण होकर रहे । जो भी कर्म करे, उन सभी को ब्रह्म को समर्पित कर दे ।

हरि०–गार्हस्थ्यं धर्ममेवाह ब्रह्मनिष्ठ इत्यादिभिः। ब्रह्मणि निष्ठा यस्य स ब्रह्मनिष्ठः।२३।।

न मिथ्याभाषणं कुर्यात् न च शाठ्यं समाचरेत् ।
देवतातिथिपूजासु गृहस्थो निरतो भवेत् ।।२४।।
मातरं पितरञ्चैव साक्षात् प्रत्यक्षदेवताम् ।
मत्वा गृही निषेवेत सदा सर्वप्रयत्नतः।।२५।।
तुष्टायां मातरि शिवे ! तुष्टे पितरि पार्वति !
तव प्रीतिर्भवेद्देवि परब्रह्म प्रसीदति ।।२६।।

पद्मा–गृहस्थ मनुष्य झूठ न बोले और न ही दुष्टतापूर्ण आचरण करे। देवता एवं अतिथि के पूजन में तत्पर रहे। हे शिवे! गृहस्थ माता-पिता को साक्षात् प्रत्यक्ष देवता मानकर सदैव सभी प्रकार से प्रयत्नपूर्वक उनकी सेवा करे। हे पार्वति ! जो गृहस्थ अपने कर्मों से माता-पिता को संतुष्ट करता है उससे तुम प्रसन्न रहती हो। हे देवि! तुम्हारी प्रसन्नता होने पर परब्रह्म भी प्रसन्न होते हैं ।

हरि०–शाठ्यं अनार्जवम् ।।२४-२६।।

त्वमाद्ये जगतां माता-पिता ब्रह्म परात्परम् ।
युवयोः प्रीणनं यस्मात् तस्मात् किं गृहिणांतपः।।२७।।

पद्मा–हे आद्ये ! तुम ही जगत् की माता और परात्पर ब्रह्म ही जगत् के पिता है। इसलिए जिन कार्यों से गृहस्थ तुम्हें प्रसन्न करते हैं, उनके अतिरिक्त अन्य कौन-सी तपस्या है ? अर्थात् अन्य कोई तपस्या नहीं है ।

हरि०–यस्मात् मातुः पितुश्च तोषणात् ।।२७।।

आसनं शयनं वस्त्रं पानं भोजनमेव च।
तत्तत्समयमाज्ञाय मात्रे पित्रे नियोजयेत् ।।२८।।
श्रावयेन्मृदुलां वाणीं सर्वदाप्रियमाचरेत् ।
पित्रोराज्ञानु स्यात् सत्पुत्रः कुलपावनः।।२९।।

पद्मा–सुअवसर जानकर माता-पिता को आसन, शय्या, वस्त्र, पेय पदार्थ तथा भोज्य पदार्थ प्रदान करे, कुल को पवित्र करने वाला पुत्र उनसे मधुर वाणी में बोले। सदा वही कार्य करे, जो माता-पिता को अच्छा लगे तथा सदा ही उनकी आज्ञा का पालन करे ।

हरि०–आसनमित्यादि। शय्यतेऽस्मिन्निति शयनम् शय्याम् । पीयते यत्तत् पानम् पेयं जलादिकमित्यर्थः। भोजनम् भोज्यं वस्तु। तत्तत्समयम् आसनादिसमर्पणसमयम् । नियोजयेत् समर्पयेत् ।।२८-२९।।

औद्धत्यं परिहासञ्च तर्जनं परिभाषणम् ।
पित्रोरग्रे न कुर्वीत यदीच्छेदात्मनो हितम् ।।३०।।

पद्मा–जो अपना हित चाहता हो, वह कभी भी माता-पिता के समक्ष अविनय भाव प्रकट न करे और नहीं उनके समक्ष परिहास करे तथा न ही सेवकों को डाँटे ।

हरि०–**औद्धत्यम् अविनीतत्वम्** । तर्जनम् भृत्यादीनां भर्त्सनम् ।।३०।।

मातरं पितरं वीक्ष्य नत्वोत्तिष्ठेत् ससम्भ्रमः।
विनाऽऽज्ञया नोपविशेत् संस्थितः पितृशासने।।३१।।

पद्मा–माता-पिता को देखते ही साधक उनको प्रणाम करके आदरपूर्वक उठकर खड़ा हो जाये तथा उनकी आज्ञा के बिना आसन पर न बैठे ।

हरि०–ससम्भ्रमः सादरः।।३१।।

विद्याधनमदोन्मत्तो यः कुर्यात् पितृहेलनम् ।
स याति नरकं घोरं सर्वधर्मबहिष्कृतः।।३२।।
मातरं पितरं पुत्र दारानतिथिसोदरान् ।
हित्वा गृही न भुञ्जीयात् प्राणैः कण्ठगतैरपि।।३३।।

पद्मा–जो साधक या मनुष्य विद्या एवं धन के अभिमान में चूर होकर माता-पिता की अवहेलना करता है वह इस लोक में सभी धर्मों का अनधिकारी होकर अन्त में घोर नरक

में जाता है। गृहस्थों को चाहिए कि यदि प्राण भी संकट में हो तो माता, पिता, पुत्र, पत्नी, अतिथि, भाई, हितैषी इनको त्याग कर भोजन न करे।

हरि०–पितृहेलनम् मातापित्रोस्तिरस्कारम् ॥३२-३३॥

वञ्चयित्वा गुरून् बन्धून् यो भुङ्क्ते स्वोदरम्भरः।
इहैव लोकगर्ह्योऽसौ परत्र नारकी भवेत् ॥३४॥
गृहस्थो गोपयेद्दारान् विद्यामभ्यासयेत् सुतान्।
पोषयेत् स्वजनान् बन्धूनेष धर्मः सनातनः॥३५॥

पद्मा–जो गृहस्थ माता-पिता, भाई-बन्धु बान्धवादि स्वजनों की उपेक्षा कर अपना ही पृथक् भोजन करता है वह पेट भरने वाला इस लोक में तो निन्दित होता ही है परलोक में भी घोर नरक में जाता है। गृहस्थों को अपनी पत्नी की रक्षा करनी चाहिए, पुत्रों को विद्या का अभ्यास कराये, स्वजनों एवं बन्धुबान्धवों का भरण-पोषण करना चाहिए। यही सनातन धर्म है।

हरि०–गुरून् पित्रादीन्। लोकगर्ह्यः जननिन्द्यः॥३४-३५॥

जनन्या वर्द्धितो देहो जनकेन प्रपोषितः।
स्वजनैः शिक्षितः प्रीत्या सोऽधमस्तान् परित्यजेत् ॥३६॥

पद्मा–माता से देह की वृद्धि होती है तथा पिता से देह प्रपोषित होती है। अपने स्वजनों से प्रीतिपूर्वक शिक्षा प्राप्त होती है। इसलिए उनका त्याग करने वाला नराधम होता है।

हरि०–स्वजनैः बन्धुभिः॥३६॥

एषामर्थे महेशानि! कृत्वा कष्टशतान्यपि।
प्रीणयेत् सततं शक्त्या धर्मो ह्येष सनातनः॥३७॥

पद्मा–हे महेशानि! इन सभी के लिए सैकड़ो कष्ट उठाकर यथा शक्ति इन्हें सदैव प्रसन्न रखे, यही सनातन धर्म है।

हरि०–एषां जनन्यादीनाम। प्रीणयेत् जनन्यादीन् तोषयेत् ॥३७॥

स धन्यः पुरुषो लोके स कृती परमार्थवित्।
ब्रह्मनिष्ठः सत्यसन्धो यो भवेद्भुवि मानवः॥३८॥
न भार्यां ताडयेत् क्वापि मातृवत् पालयेत् सदा।
न त्यजेत् घोरकष्टेऽपि यदि साध्वी पतिव्रता॥३९॥

पद्मा–जो मनुष्य ब्रह्मनिष्ठ एवं सत्यप्रतिज्ञ होकर अपना कर्म करता है वही महापुरुष इस लोक में धन्य है। वही पुरुष परमार्थ का ज्ञाता है। अपनी भार्या को कभी भी ताड़ना न करे। सदैव माता के समान उसका पालन करे। चाहे कितना भी घोर कष्ट हो सती एवं साध्वी भार्या का परित्याग कभी न करें।

हरि०–धन्यः सुकृती। कृती विचक्षणः। सत्यसन्धः सत्यप्रतिज्ञः॥३८-३९॥

स्थितेषु स्वीयदारेषु स्त्रियमन्यां न संस्पृशेत् ।
दुष्टेन चेतसा विद्वानन्यथा नारकी भवेत् ।।४०।।

पद्मा–बुद्धिमान मनुष्य अपनी पत्नी के रहते हुए अन्य स्त्री का स्पर्श भी न करे। कामभाव से अन्य स्त्री को न तो देखे और न ही स्पर्श करे। अन्यथा वह मनुष्य नरक में जाता है।

हरि०–दुष्ट चेतसा विकृतेन मनसा।।४०।।

विरले शयनं वासं त्यजेत् प्राज्ञः परस्त्रिया ।
अयुक्तभाषणञ्चैव स्त्रियं शौर्यन्न दर्शयेत् ।।४१।।
धनेन वाससा प्रेम्णा श्रद्धया मृदुभाषणैः ।
सततं तोषयेद्दारान् नाप्रियं क्वचिदाचरेत् ।।४२।।

पद्मा–बुद्धिमान पुरुष एकान्त में पर स्त्री के साथ वास या शयन न करे। किसी भी स्त्री से अश्लीलतापूर्वक या असभ्यता से वार्तालाप न करे और न ही स्त्रियों को अपनी वीरता दिखाये। धन, वस्त्र, प्रेम, श्रद्धा, मधुर वचनों से अपनी पत्नी को सदैव सन्तुष्ट रखे। उसके साथ कभी भी अप्रिय आचरण न करे।

हरि०–विरले निर्जनस्थाने।।४१-४२।।

उत्सवे लोकयात्रायां तीर्थेष्वन्यनिकेतने।
न पत्नीं प्रेषयेत् प्राज्ञः पुत्रामात्यविवर्जिताम् ।।४३।।
यस्मिन्नरे महेशानि ! तुष्टा भार्या पतिव्रता ।
सर्वो धर्मः कृतस्तेन भवतीप्रिय एव सः।।४४।।

पद्मा–बुद्धिमान मनुष्य उत्सव, लोकयात्रा, तीर्थ एवं अन्य पुरुष के घर में पुत्र अथवा सहयोगी के बिना पत्नी को न भेजे। हे महेशानि ! पतिव्रता पत्नी जिस पुरुष से सन्तुष्ट रहती है, वह समस्त धर्मों से उत्पन्न फल को प्राप्त करता है और तुम्हारा प्रिय होता है।

हरि०–अन्यनिकेतन परगृह ।।४३-४४।।

चतुर्वर्षावधि सुतान् लालयेत् पालयेत् पिता।
ततः षोडशपर्यन्तं गुणान् विद्याञ्च शिक्षयेत् ।।४५।।

पद्मा–पिता चार वर्ष तक पुत्र का लालन-पालन करे। इसके पश्चात् सोलह वर्ष तक उसे विद्या एवं सभी गुणों की शिक्षा दे।

हरि०–ततः चतुर्भ्यो वर्षेभ्य उर्द्ध्व।।४५।।

विंशत्यब्दाधिकान् पुत्रान् प्रेरयेद् गृहकर्मसु ।
ततस्तांस्तुल्यभावेन मत्वा स्नेहं प्रदर्शयेत् ।।४६।।

पद्मा–इसके पश्चात् बीस वर्ष से अधिक आयु वाले पुत्रादि को गृहकर्म में लगाये। गृहकार्य के उपयुक्त होने पर अपने तुल्य उसे जानकर उससे स्नेह प्रकट करे।

हरि०–प्रेरयेत् प्रवर्त्तयेत्। तान् विंशत्यब्दाधिकान् पुत्रान् ॥४६॥

कन्याऽप्येवं पालनीया शिक्षणीयाऽति यत्नतः।
देव वराय विदुषे धनरत्नसमन्विता।।४७।।

पद्मा–कन्या का भी इसी प्रकार पालन करे तथा उसे यत्नपूर्वक शिक्षा प्रदान करे। कन्या को धनरत्न से युक्त कर ज्ञानवान वर को प्रदान करे।

हरि०–एवम् पुत्रवत् ॥४७॥

एवं क्रमेण भ्रातृंश्च स्वसृभ्रातृसुतानपि।
ज्ञातीन् मित्राणि भृत्यांश्च पालयेत्तोषयेद् गृही।।४८।।
ततः स्वधर्मनिरतानेकग्रामनिवासिनः।
अभ्यागतानुदासीनान् गृहस्थः परिपालयेत् ।।४९।।

पद्मा–इस प्रकार गृहस्थ भाई, बहन, भांजे, भतीजे, जाति, मित्र तथा भृत्यों का पालन कर उन्हें सन्तुष्ट करे। तदुपरान्त भाई आदि के पालन में समर्थ होने के उपरान्त गृहस्थ स्वधर्म में तत्पर ग्रामवासियों, अभ्यागतों एवं उदासीन लोगों का भी पालन करे।

हरि०–ततः भ्रात्रादीनां पालनतोषणाच्चोर्द्धम्। उदासीनान् मित्रामित्रभिन्नान् ॥४८-४९॥

यद्येव नाचरेद्देवि ! गृहस्थो विभवे सति ।
पशुरेव स विज्ञेयः स पापी लोकगर्हितः ।।५०।।

पद्मा–हे देवि! वैभव होने पर भी गृहस्थ यदि इस प्रकार का आचरण नहीं करता तो उसे पशु जानना चाहिए। ऐसा पापी लोकसमाज में निन्दित होता है।

हरि०–धने सत्येमेवमकुर्वतो गृहस्थस्य पातकाश्रयत्वं लोकगर्हितत्वञ्च स्यादित्य यदीत्यादिना ॥५०॥

निद्रालस्यं देहयत्नं केशविन्यासमेव च ।
आसक्तिमशने वस्त्रे नातिरिक्तं समाचरेत् ।।५१।।

पद्मा–निद्रा, आलस्य, शरीर की चेष्टा, केश विन्यास (बाल संवारना) भोजन एवं वस्त्रों में आसक्ति, यह सब आवश्यकता से अधिक न करें।

हरि०–आसक्तिम् आसङ्गम्। अतिरिक्तम् अधिकम् ॥५१॥

युक्ताहारो युक्तनिद्रो मितवाङ्मितमैथुनः ।
स्वच्छोनम्रः शुचिर्दक्षो युक्तः स्यात् सर्वकर्मसु ।।५२।।

पद्मा–गृहस्थों को परिमित भोजन, परिमित निद्रा, मितभाषी, सन्तुलित सम्भोग करना चाहिए। कपटरहित, नम्र, पवित्र, आलस्य रहित एवं सभी कर्मों में तत्पर रहे।

हरि०–युक्ताहारः परिमित भोजनः। स्वच्छः कपटादिशून्यः। शुचिः बाह्याभ्यन्तरशौच-सम्पन्नः। दक्षः निरालयः। युक्तः उद्योगवान् ॥५२॥

शूरः शत्रौ विनीतः स्यात् बान्धवे गुरुसन्निधौ ।
जुगुप्सितान् न मन्येत् नावमन्येत मानिनः ।।५३।।

पद्मा–शत्रु के सम्मुख शूर तथा बान्धव एवं गुरु के समीप विनीत रहे। निन्दित मनुष्य का आदर न करे। सम्मानित मनुष्यों की अवज्ञा न करे ।

हरि०–**शूरः विक्रान्तः** । नावमन्येत न अनाद्रियेत् ।।५३।।

सौहार्दं व्यवहारांश्च प्रवृत्तिं प्रकृतिं नृणाम् ।
सहवासेन तर्कैश्च विदित्वा विश्वसेत्ततः ।।५४।।

पद्मा–साथ में रहकर और विचार द्वारा मनुष्य का स्वभाव, सौहार्द, व्यवहार, प्रवृति और उसकी प्रकृति जानकर ही उसपर विश्वास करे।

हरि०–**तर्कैः** पर्यालोचनैः।।५४।।

त्रसेद्द्वेष्टुरपि क्षुद्रात् समयं वीक्ष्य बुद्धिमान् ।
प्रदर्शयेदात्मभावान्नैव धर्मं विलङ्घयेत् ।।५५।
स्वीयं यशः पौरुषञ्च गुप्तये कथितञ्च यत् ।
कृतं यदुपकाराय धर्मज्ञो न प्रकाशयेत् ।।५६।।
जुगुप्सितप्रवृत्तौ च निश्चितेऽपि पराजये ।
गुरुणा लघुना चापि यशस्वी न विवादयेत् ।।५७।।

पद्मा–बुद्धिमान् मनुष्य छोटे शत्रु से भी शंकित रहे तथा अवसर देखकर ही अपना भाव प्रकट करे, किन्तु धर्म का मार्ग कदापि न छोड़े। धर्मवान् मनुष्य परोपकार करके उसे प्रकाशित न करे। अपने यश और पुरुषार्थ का बखान न करे। दूसरे की गुप्त बात और किसी से न कहे। यशस्वी पुरुष जय की सम्भावना होने पर भी कभी लोकनिन्दित कार्य न करे। अपने से बड़े और छोटे मनुष्यों के साथ लड़ाई-झगड़ा न करे ।

हरि०–त्रसेत् विभीयात् द्वेष्टुः शत्रोः। क्षुद्रात् लघोः। आत्भावान् स्वप्रभावान् आत्मनः कोशदण्डजानि तेजांसि। स प्रतापः प्रभावश्च यत्तेजः कोशदण्डज मित्यमरः।।५५-५७।।

विद्याधनयशोधर्मान् यतमान् उपार्जयेत् ।
व्यसनञ्चासतां सङ्गं मिथ्याद्रोहं परित्यजेत् ।।५८।।
अवस्थानुगताश्चेष्टाः समयानुगताः क्रिया ।
तस्मादवस्थां समयं वीक्ष्य कर्म समाचरेत् ।।५९।।

पद्मा–मनुष्य यत्नपूर्वक विद्या, धन, यश और धर्म का उपार्जन करे। व्यसन, दुर्जनों का संग, मिथ्यालाप तथा परद्रोह का त्याग करे। अवस्था के अनुसार चेष्टा तथा समय के अनुसार क्रिया होती है। इसीलिए अवस्था तथा समय का विचार कर कर्म करे।।५८-५९।।

हरि०–यतमानः यत्नं कुर्वाणः।।५८-५९।।

योगक्षेमरतो दक्षो धार्मिकः प्रियबान्धवः।
मितवाङ्मितहासः स्यान्मान्याग्रे तु विशेषतः।।६०।।

पद्म–गृहस्थ व्यक्ति को चाहिए कि वह योगक्षेम (अनुपलब्ध वस्तु के अर्जन तथा उपलब्ध वस्तु के रक्षण) में लगा रहे। उसे चतुर धार्मिक के समान आचरण करना चाहिए तथा प्रिय बन्धुओं से सौहार्द रखना चाहिए। उसे सम्मान्य व्यक्तियों के सामने न तो अधिक हँसना चाहिए और न ही अधिक बोलना चाहिए।

हरि०–योगक्षेमरतः योगोऽप्राप्तस्वीकारः प्राप्तस्य परिपालनं क्षेमः तयोनुरक्ताः।।६०।।

जितेन्द्रियः प्रसन्नात्मा सुचिन्त्यः स्याद् दृढव्रतः।
अप्रमत्तो दीर्घदर्शी मात्रास्पर्शान् विचारयेत् ।।६१।।
सत्यं मृदु प्रियं धीरो वाक्यं हितकरं वदेत् ।
आत्मौत्कर्ष्यं तथा निन्दां परेषां परिवर्जयेत् ।।६२।।
जलाशयाश्च वृक्षाश्च विश्रामगृहमध्वनि ।
सेतुः प्रतिष्ठितो येन तेन लोकत्रयं जितम् ।।६३।।
सन्तुष्टो पितरौ यस्मिन्ननुरक्ताः सुहृद्गणाः।
गायन्ति यद्यशो लोकास्तेन लोकत्रयं जितम् ।।६४।।
सत्यमेव व्रतं यस्य दया दीनेषु सर्वथा ।
कामक्रोधौ वशे यस्य तेन लोकत्रयं जितम् ।।६५।।

पद्म–जितेन्द्रिय, प्रसन्नात्मा, सुचिन्त्य, दृढ़व्रती, आलस्यरहित एवं दूरदर्शी होकर विषयों के उपभोग में कर्तव्य अकर्त्तव्य का विचार करे। धीर मनुष्य को सदैव, सत्य, मधुर प्रिय तथा हितकारी वचन बोलना चाहिए। अपनी प्रशंसा तथा अन्य की निन्दा का सदैव त्याग करे। जो मनुष्य मार्ग में जलाशय खुदवाता, वृक्ष लगवाता है, सराय बनवाता है, तथा पुल का निर्माण करवाता है, वह अपने यश से त्रिभुवन को भी जीत लेता है। जिसके माता-पिता उससे सन्तुष्ट हैं, जिससे उसके सुहृद्गण अनुराग रखते है तथा लोग जिसका यशोगान करते हैं वह अपने पुण्यफल से त्रिभुवन को भी जीत लेता है। जिस मनुष्य का सत्य ही व्रत है जो पुरुष दरिद्र पर दया दिखाता है, काम एवं क्रोध जिसके वश में हैं वह पुरुष अपने पुण्य के फल से त्रिभुवन को भी जीत लेता है।

हरि०–जितेन्द्रिय इत्यादि। सुचिन्त्यः सुष्ठु चिन्त्यं स्मरणीयं शास्त्रादि यस्य सः। मात्रास्पर्शान् मीयन्ते। विषया एताभिरिति मात्रा इन्द्रियवृत्तयः तासां स्पर्शान् विषयेषु सम्बन्धान् ।।६१-६५।।

विरक्तः परदारेषु निष्पृहः परवस्तुषु ।
दम्भमात्सर्यहीनो यस्तेन लोकत्रयं जितम् ।।६६।।
न बिभेति रणाद्यो वै संग्रामेऽप्यपराङ्मुखः।
धर्मयुद्धे मृतो वाऽपि तेन लोकत्रयं जितम् ।।६७।।

असंशयात्मा सुश्रद्धः शाम्भवाचारतत्परः।
मच्छासने हितो यश्च तेन लोकत्रयं जितम् ।।६८।।

पद्मा–जो पुरुष परनारी से विरक्त रहता है, पराये द्रव्य की इच्छा नहीं करता, दम्भ एवं मात्सर्य से रहित है वही अपने पुण्यकाल से त्रिभुवन को जीतता है। जो पुरुष युद्धादि से नहीं डरता, संग्राम से विमुख नहीं होता तथा जो पुरुष धर्मयुद्ध में प्राणोत्सर्ग करता है वही त्रिभुवन को विजित करता है। जिस पुरुष की आत्मा असंदिग्ध है, जो श्रद्धावान् और शैवाचार में रत रहकर मेरे शासन में रहता है वही त्रिभुवन को जीतने में समर्थ होता है।

हरि०–निस्सपृह: निराकाङक्ष:।।६६-६८।।

ज्ञानिना लोकयात्रायै सर्वत्र समदृष्टिना ।
क्रियन्ते येन कर्माणि तेन लोकत्रयं जितम् ।।६९।।
शौचन्तु द्विविधं देवि ! बाह्याभ्यन्तरभेदतः ।
ब्रह्मण्यात्मार्पणं यत्तत् शौचमान्तरिकं स्मृतम् ।।७०।।

पद्मा–जो ज्ञानी मनुष्य शत्रु तथा मित्र के प्रति समदृष्टि रखकर केवल संसार यात्रा के निर्वाह के लिये विहित कर्मो का अनुष्ठान करता है वही त्रिभुवन को विजित करता है। हे देवि! शौच दो प्रकार के हैं, बाह्य एवं अभ्यन्तर! ब्रह्म में आत्मसमर्पण अर्थात् परमात्मा में मन की एकाग्रता ही आन्तरिक शौच कहा गया है ।

हरि०–सर्वत्र शत्रुमित्रादौ ।।६९-७०।।

अद्भिर्वा भस्मना वाऽपि मलानामपकर्षणम् ।
देहशुद्धिर्भवेद्येन बहिः शौचं तदुच्यते ।।७१।।

पद्मा–जल या भस्म द्वारा शरीर के मैल को दूर करने से जो देहशुद्धि होती है उसे वाह्य शौच कहते हैं ।

हरि०–**अद्भिरिति** । अद्भिर्जलैर्वा भस्मना वा येन देहशुद्धिर्भवेत्तेन मृत्तिकावस्त्रचर्म तृणादिरूपवस्तुना वापि मलानामपकर्षणं दूरीकरणं यत्तत् वहिः शौचमुच्यते इत्यन्वयः।।७१।।

गङ्गा नद्यो ह्रदा वाप्यस्तथा कूपाश्च क्षुल्लुकाः ।
सर्वं पवित्रजननं स्वर्णदी क्रमतः प्रिये ।।७२।।

पद्मा–हे प्रिये ! गंगा, नदी, ह्रद, वापी, कूप तथा क्षुद्रजलाशय एवं स्वर्ण ये यथाक्रम देह को पवित्र करने वाली हैं ।

हरि०–क्षुल्लुका: स्वल्पजलाशया:। स्वल्पेऽपि क्षुल्लकस्त्रिष्वित्यमर:। सर्वम् गङ्गाजलादि ।।७२।।

भस्माऽत्र याज्ञिकं श्रेष्ठं मृत्स्ना तु मलवर्जिता ।
वासोऽजिनतृणादीनि मृद्वज्जानीहि सुव्रते ! ।।७३।।
किमत्र बहुनोक्तेन शौचाशौचविधौ शिवे ! ।
मनःपूतं भवेद्येन गृहस्थस्तत्तदाचरेत् ।।७४।।

निद्रान्ते मैथुनस्यान्ते त्यागान्ते मलमूत्रयोः।
भोजान्ते मले स्पृष्टे बहिः शौचं विधीयते ।।७५।।
सन्ध्या त्रैकालिकी कार्या वैदिकी तान्त्रिकी क्रमात् ।
उपासनाया भेदेन पूजां कुर्याद् यथाविधि ।।७६।।

पद्मा–हे सुव्रते ! वाह्य शौच के विषय में याज्ञिक भस्म के द्वारा ही स्नान श्रेष्ठ है। निर्मल मिट्टी के द्वारा भी ऐसा स्नान किया जा सकता है। वस्त्र, मृगचर्म, तृणादि तथा मृत्तिका यह समान रूप से पवित्र है। हे शिवे ! इस शौच अशौच के विषय में अधिक कहना आवश्यक नहीं है। जिससे मन पवित्र हो गृहस्थ को वही आचरण करना चाहिए। निद्रा के पश्चात् मैथुन, मैथुन (सम्भोग) के पश्चात् मल-मूत्र का त्याग, मल-मूत्र त्याग के पश्चात् एवं मल के स्पर्श हो जाने पर उपरोक्त प्रकार से वाह्य शौच की विधि करे। तीनो कालों में अर्थात् प्रातः, मध्याह्न और अपराह्न में वैदिकी तथा तान्त्रिकी सन्ध्या क्रमशः सम्पन्न करे तथा उपासनादि से यथाविधान पूजा करे ।

हरि०–**भस्मेत्यादि**। अत्र बहिः शौचविधौ। हे सुव्रते वासोऽजिनतृणादीन्यपि मृद्वन्मृत्तिकावन्मल वर्जितान्येव श्रेष्ठानि जानीहि ॥७३-७६॥

ब्रह्ममन्त्रोपासकानां गायत्रीजपनात् प्रिये ! ।
ज्ञानात् ब्रह्मेति तद्वाच्यं सन्ध्या भवति वैदिकी ।।७७।।

पद्मा–हे प्रिये ! जो ब्रह्ममन्त्र के उपासक हैं वे गायत्री के जपकाल में गायत्री के प्रतिपाद्य ब्रह्म हैं, इस प्रकार की भावना करे। ऐसा करने पर वैदिक सन्ध्या सम्पन्न होगी।

हरि०–उपासनाभेददर्शनपूर्वकं सन्ध्याभेदं दर्शयति द्वाभ्याम् ब्रह्मेत्यादि। ब्रह्ममन्त्रोपासकानां गायत्र्या जपनात् तद्वाच्यं गायत्रीप्रतिपाद्यं ब्रह्म भवतीति ज्ञानाञ्च वैदिकी सन्ध्या भवति॥७७॥

अन्येषा वैदिकी सन्ध्या सूर्योपस्थानपूर्वकम् ।
अर्घ्यदानं दिनेशाय गायत्रीजपनं तथा ।।७८।।

पद्मा–जो मनुष्य ब्रह्म के उपासक नहीं हैं उन को सन्ध्योपासना के समय सूर्य की उपासना कर अर्घ्य प्रदान करना चाहिए तथा गायत्री मन्त्र का जप करना चाहिए ।

हरि०–**अन्येषामिति**। अन्येषां ब्रह्ममन्त्रोपासकभिन्नानान्तु सूर्योपस्थानपूर्वकं दिनेशाय सूर्यायार्घ्यदानं तथा गायत्रीजपनं वैदिकी सन्ध्या भवति ॥७८॥

अष्टोत्तरसहस्रं वा शतं वा दशधाऽपि वा ।
जपानां नियमो भद्रे सर्वत्राह्निककर्मणि ।।७९।।

पद्मा–हे भद्रे ! समस्त कर्म करते समय १००८ अथवा १०८ अथवा दस बार जप करने का नियम है ।

हरि०–अथाऽह्निककर्मणि मन्त्रजपानां नियममाह अष्टोत्तरमित्यादिना । शतमपि अष्टोत्तरमेव। सर्वत्र वैदिक तान्त्रिके च ॥७९॥

शूद्रसामान्यजातीनामधिकारोऽस्ति केवलम् ।
आगमोक्तविधौ देवि ! सर्वसिद्धिस्ततो भवेत् ।।८०।।

पद्मा–हे देवि! शूद्र जाति एवं अन्य सामान्य जाति को केवल तंत्रशास्त्र में कहे हुए विधान में ही केवल अधिकार है। इससे ही उनको सभी प्रकार की सिद्धि प्राप्त हो जाती है।

हरि०–तत: आगमोक्तविधित:।।८०।।

प्रात: सूर्योदय: कालो मध्याह्नस्तदनन्तरम् ।
सायं सूर्यास्तसमयस्त्रिकालानामयं क्रम: ।।८१।।

पद्मा–साधक प्रात: सन्ध्या सूर्योदय के समय, मध्याह्न संध्या दोपहर को तथा सायं सन्ध्या सूर्यास्त के समय करे । यही त्रिकाल संध्या का निर्दिष्ट ।

हरि०–अथ सन्ध्याविध्यपेक्षित त्रिकालक्रममाह प्रातरित्यादिना। सूर्यस्योदयो यत्र स सूर्योदय: काल:।।८१।।

श्रीदेव्युवाच

विप्रादिसर्ववर्णानां विहिता तान्त्रिकी क्रिया ।
त्वयैव कथिता नाथ ! सम्प्राप्तेप्रबले कलौ ।।८२।।

पद्मा–श्रीदेवी ने कहा-हे नाथ! तुमने स्वयं ही कहा है कि कलियुग के प्रबल होने पर ब्रह्मणादि सभी वर्णों के लिए एकमात्र तान्त्रिक क्रिया ही विहित है।

हरि०–पूर्व श्रीसदाशिवेन सर्वेषां ब्राह्मणादिवर्णानां प्रबले कलौ युगेतान्त्रिक एवं कर्मण्यधिकारोऽस्तीत्युक्तम् । सम्प्रति तु ब्राह्मणक्षत्रियवैश्यानां वैदिक्यामपि सन्ध्यामाधिकारोऽस्तीत्युच्यते एतदयुक्तं मन्वानां श्रीदेव्युवाच विप्रादीत्यादि।।८२।।

तदिदानीं कथं देवं विप्रान् वैदिककर्मणि ।
नियोजयसि तत्सर्वं विशेषाद्वक्तुमर्हसि ।।८३।।

पद्मा–हे देव ! इस समय किस कारण से आप ब्राह्मणों को वैदिक कर्म में लगाते हैं ? इसका विशेष रूप से मुझसे वर्णन कीजिए ।

हरि०–नियोजयसि प्रवर्त्तयसि ।।८३।।

श्रीसदाशिव उवाच

सत्यं ब्रवीषि तत्त्वज्ञे ! सर्वेषां तान्त्रिकी क्रिया ।
लोकानां भोगमोक्षाय सर्वकर्मसु सिद्धिदा ।।८४।।
इयन्तु ब्रह्मसावित्री यथा भवति वैदिकी ।
तथैव तान्त्रिकी ज्ञेया प्रशस्तोभय कर्मणि ।।८५।।
अतोऽत्र कथितं देवि ! द्विजानां प्रबले कलौ ।
गायत्र्यामधिकारोऽस्ति नान्यमन्त्रेषु कर्हिचित् ।।८६।।

पद्मा–श्रीसदाशिव ने कहा-हे तत्त्वज्ञे ! तुमने सत्य ही कहा है। कलियुग में सभी

मनुष्यों के लिए केवल तान्त्रिक क्रिया ही श्रेष्ठ है; क्योंकि यह तान्त्रिक क्रिया मनुष्यों को भोग मोक्ष एवं सभी कर्मों में सिद्धि प्रदान करती है। यह ब्रह्मसावित्री जिस प्रकार वैदिकी है उसी प्रकार तान्त्रिकी भी है। इसलिए दोनों ही कर्मों में प्रशस्त है। हे देवि! इसीलिए मैंने यहाँ कहा है कि कलियुग के प्रबल होने पर ब्राह्मणों का गायत्री में ही अधिकार होगा, अन्य किसी वैदिक मन्त्र में उनका अधिकार नहीं होगा।

हरि०–अत्रोत्तरं श्रीसदाशिव उवाच सत्यमित्यादिभिः॥८४-८६॥

ताराद्या कमलाद्या च वाग्भवाद्या यथाक्रमात् ।
ब्राह्मणक्षत्रियविशां सावित्री कथिता कलौ ।।८७।।

पद्मा–कलियुग में ब्राह्मण, क्षत्रिय तथा वैश्य की गायत्री क्रमशः ॐ श्रीं तथा ऐं पूर्विका होगी अर्थात् ब्राह्मण गायत्री मन्त्र के आदि में ॐ, क्षत्रिय श्रीं तथा वेश्य ऐं लगाएगा।

हरि०–**ताराद्येत्यादि**। कलौ युगे यथाक्रमात् क्रमेणैव ब्राह्मणक्षत्रियविशानतराद्या प्रणवाद्या कमलाद्या श्रीं बीजाद्या वाग्भवाद्या ऐं बीजाद्या सावित्री गायत्री कथिता ॥८७॥

द्विजादीनां प्रभेदार्थं शूद्रेभ्यः परमेश्वरि ।
सन्ध्येयं वैदिकी प्रोक्ता प्रागेवाह्निक कर्म्मणाम् ।।८८।।
अन्यथा शाम्भवैर्मार्गैः केवलैः सिद्धिभाग्भवेत् ।
सत्यं सत्यं पुनः सत्यं सत्यमेतन्न संशयः।।८९।।

पद्मा–हे परमेश्वरि! शूद्रों को द्विजों से पृथक् करने के लिए आह्निक के पूर्व काल में वैदिक सन्ध्या की विधि मैंने कही है। अन्यथा वैदिक संध्या न करने से भी केवल शैवमार्ग द्वारा सिद्धि प्राप्त होगी है। यह सत्य है, सत्य है, विशेष रूप से सत्य है इसमें संशय नहीं है।

हरि०–**द्विजादीनामिति** । हे परमेश्वरि द्विजादीनां ब्राह्मणादीनां शूद्रेभ्यः प्रभेदार्थन्तान्त्रिकाणामह्निककर्मणां प्रागेवेयं वैदिकी सन्ध्या करणीया प्रोक्ता ॥८८-८९॥

कालात्ययेऽपि सन्ध्येयं कर्तव्या देववन्दिते ।
ओं तत्सत् ब्रह्म चोच्चार्य मोक्षेच्छुभिरनातुरैः।।९०।।

पद्मा–हे देववन्दिते ! अनातुर मोक्ष का आकांक्षी मनुष्य संन्ध्या का समय बीत जाने पर ''ॐ तत् सत् ब्रह्म'' का उच्चारण कर वैदिकी एवं तांत्रिकी संध्या करे ।

हरि०–**कालेत्यादि**। हे देववन्दिते! कालात्ययेऽपि सन्ध्याविधानकालव्यत्ययेऽपि अना-तुरैर्जरादिनिमित्तकेनाऽपटुत्वेन शून्यैर्मोक्षेच्छुभिर्मोक्षाकाङ्क्षिभिर्जनैः ओं तत्सद्ब्रह्मेति समु-च्चार्येयं वैदिकी तान्त्रिकी च सन्ध्या कर्तव्या ॥९०॥

आसनं वसनं पात्रं शय्या यानं निकेतनम् ।
गृह्यकं वस्तुजातं च स्वच्छात् स्वच्छं प्रशस्यते।।९१।।

पद्मा–आसन, वस्त्र, पात्र, शय्या, यान, गृह तथा गृहसामग्री जितना ही स्वच्छ एवं निर्मल हो उतना ही अच्छा है ।

हरि०–गृह्यकं वस्तुजातम् गृहसम्बन्धि सर्ववस्तु ॥९१॥

समाप्याह्निककर्माणि स्वाध्यायं गृहकर्म वा ।
गृहस्थो नियतं कुर्यान्नैव तिष्ठेन्निरुद्यमः ॥९२॥
पुण्यतीर्थे पुण्यतिथौ ग्रहणे चन्द्रसूर्ययोः ।
जपं दानं प्रकुर्वाणः श्रेयसां निलयो भवेत् ॥९३॥
कलावन्नगतप्राणा नोपवासः प्रशस्यते ।
उपवासप्रतिनिधावेकं दानं विधीयते ॥९४॥
कलौ दानं महेशानि ! सर्वसिद्धिकरं भवेत् ।
तत्पात्रं केवलं ज्ञेयो दरिद्रः सत्क्रियान्वितः ॥९५॥

पद्या–गृहस्थ आह्निक कार्य पूर्ण कर स्वाध्याय या गृहकर्म करे। उद्यम विहीन न बैठा रहे। पुण्यतीर्थ में, पुण्य तिथि में, चन्द्रग्रहण में तथा सूर्यग्रहण काल में जप एवं दान करने से कल्याण होता है। कलियुग में मनुष्यों के प्राण अन्न में रहते हैं। इसलिए इस युग में उपवास करना उचित नहीं है। कलियुग में उपवास के प्रतिनिधि दान को ले अर्थात् गृहस्थ दान करे। हे महेशानि! कलियुग में दान सभी प्रकार की सिद्धियों को प्रदान करने वाला है। सत्क्रिया करने वाले दरिद्र मनुष्य ही दान के पात्र होते हैं ।

हरि०–स्वाध्यायम् वेदाध्ययनम् ॥९२-९५॥

मासवत्सरपक्षाणामारम्भदिनमम्बिके ।
चतुर्दश्याष्टमी शुक्ला तथैवैकादशी कुहूः ॥९६॥
निजजन्मदिनञ्चैव पित्रोर्मरणवासरः ।
वैधोत्सवदिनञ्चैव पुण्यकालः प्रकीर्तितः ॥९७॥
गङ्गानदी महानद्यो गुरोः सदनमेव च ।
प्रसिद्धं देवताक्षेत्रं पुण्यतीर्थं प्रकीर्तितम् ॥९८॥
त्यक्त्वा स्वाध्यायनं पित्रोः शुश्रूषान्दाररक्षणम् ।
नरकाय भवेत्तीर्थं तीर्थाय व्रजतां नृणाम् ॥९९॥

पद्या–हे अम्बिके ! महीने, वर्ष, तथा पक्ष के आरम्भिक दिनों में, चतुर्दशी, अष्टमी शुक्ल पक्ष की एकादशी, अमावस्या, स्वयं का जन्मदिन, माता-पिता की मृत्युतिथि, उत्सव के दिन, यह भी पुण्यकाल कहे गये हैं। गंगा नदी, महानदी, गुरु का घर, प्रसिद्ध देवताक्षेत्र पुण्यक्षेत्र कहे गये हैं। अध्ययन, माता-पिता की सेवा, पत्नी की रक्षा को त्यागकर तीर्थ करने से गृहस्थ नरक में जाता है ।

हरि०–अथ जपदानविधावपेक्षितं पुण्यकालं पुण्यतीर्थञ्च क्रमत आह मासेत्यादिभिः। कुहूः नष्टचन्द्रकलाऽमावास्या॥९६-९९॥

न तीर्थसेवा नारीणां नोपवासादिकाः क्रियाः।
नैव व्रतानां नियमो भर्तुः शुश्रूषणां विना ।।१००।।

पद्मा–स्त्रियों के लिये पति की सेवा से बढ़कर कोई तीर्थ नहीं है। उन्हें न तो उपवास करना चाहिए और न व्रतादि। इन सब का फल पति की सेवा से ही प्राप्त हो जाता है।

हरि०–अथ स्त्रीधर्मानाह न तीर्थेत्यादिभिः सप्तभिः।।१००।।

भर्तैव योषितां तीर्थं तपो दानं व्रतं गुरुः।
तस्मात् सर्वात्मना नारी पतिसेवां समाचरेत् ।।१०१।।

पद्मा–स्त्रियों के लिए पति ही तीर्थ, तपस्या, दान, व्रत तथा गुरु है। इसलिए स्त्री सम्पूर्ण अंतःकरण से पति की सेवा करे ।

हरि०–सर्वात्मना सर्वप्रयत्नेन।।१०१।।

पत्युः प्रियं सदा कुर्यात् वचसा परिचर्यया ।
तदाज्ञानुचरी भूत्वा तोषयेत् पतिबान्धवान् ।।१०२।।
नेक्षेत् पतिं क्रूरदृष्ट्या श्रावयेन्नैव दुर्वचः ।
नाप्रियं मनसा वापि चरेद्भर्तुः पतिव्रता ।।१०३।।
कायेन मनसा वाचा सर्वदा प्रिय कर्मभिः ।
या प्रीणयति भर्तारं सैव ब्रह्मपदं लभेत् ।।१०४।।
नान्यवक्त्रं निरीक्षेत नान्यैः सम्भाषणञ्चरेत् ।
न चाङ्गं दर्शयेदन्यान् भर्तुराज्ञानुसारिणी ।।१०५।।

पद्मा–स्त्री वचनों और सेवा से सदैव पति का प्रिय कार्य करे। उससे मधुरता से बात करें । उनकी आज्ञा के अनुसार ही चलती हुई उनके भाई-बन्धुओं को सन्तुष्ट करे । पतिव्रता नारी पति को कठोर दृष्टि से न देखे। पति को कठोर वचन न सुनाये। मन से भी पति को अप्रिय लगने वाला कार्य न करे। जो स्त्री शरीर मन तथा वचन से सदैव प्रिय कार्य कर पति को संतुष्ट करती है वही ब्रह्मपद को प्राप्त करती है। पति की आज्ञाकारिणी नारी अन्य पुरुष का न मुख देखे, न बातचीत करे, न ही अपने शरीर के अंग ही अन्य पुरुष को दिखाये ।

हरि०–परिचर्यया सेवा ।।१०२-१०५।।

तिष्ठेत् पित्रोर्वशे बाल्ये भर्तुः सम्प्राप्त यौवने ।
वार्द्धक्ये पतिबन्धूनां न स्वतन्त्रता भवेत् क्वचित् ।।१०६।।
अज्ञातपतिमर्यादामज्ञातपतिसेवनाम् ।
नोद्वाहयेत् पिता बालामज्ञातधर्मशासनम् ।।१०७।।

पद्मा–स्त्री बाल्यावस्था में पिता के अधीन, यौवनावस्था में पति के अधीन तथा वृद्धावस्था में पति के बंधु-बान्धवों के अधीन रहे। किसी भी अवस्था में वह स्वाधीन न

रहे। पिता एवं पति की मर्यादा, पति सेवा तथा धर्म-शासन को न जानने वाली बालिका कन्या का विवाह न करे।

हरि०–स्वतन्त्रा स्वाधीना ॥१०६-१०७॥

नरमांसं न भुञ्जीयात् नराकृतिपशूंस्तथा ।
बहूपकारकान् गाश्च मांसादान् रसवर्जितान् ॥१०८॥
फलानि ग्राम्यवन्यानि मूलानि विविधानि च ।
भूमिजातानि सर्वाणि भोज्यानि स्वेच्छया शिवे! ॥१०९॥

पद्मा–नरमांस, नराकृति पशु का मांस, बहूपकारक गाय की जाति का मांस, गृध्रादिमांसभोजी प्राणियों का रस हीन माँस का मनुष्य सेवन न करे। हे शिवे! भूमि से उत्पन्न, ग्राम्य एवं अरण्य (वन) के विभिन्न प्रकार के फल-मूल का अपनी इच्छनुसार भक्षण करे।

हरि०–बहूपकारकानिति गोविशेषणेन तद्भोजननिषेधे हेतुर्दर्शितः। मांसादान् मांसभक्षकान् गृध्रादीन। रसवर्जितान् अस्वादशून्यान् ॥१०८-१०९॥

अध्यापनं याजनञ्च विप्राणां व्रतमुत्तमम् ।
अशक्तौ क्षत्रियविशां वृत्तैर्निर्वाहमाचरेत् ॥११०॥

पद्मा–अध्यापन तथा याजन यही दो वृत्तियाँ ब्राह्मण के लिए उत्तम है। इनमें यदि अशक्त हो तो क्षत्रिय वृत्ति और यदि इसमें भी अशक्त हो तो वैश्यवृत्ति से अपना निर्वाह करे।

हरि०–अथ ब्राह्मणवृत्तमाह अध्यापनमित्यादि॥११०॥

राजन्यानाञ्च सद्वृत्तं संग्रामो भूमिशासनम् ।
अत्राशक्तौ वणिग्वृत्तं शूद्रवृत्तमथाश्रयेत् ॥१११॥

पद्मा–संग्राम तथा प्रजा-पालन क्षत्रिय के लिए यही दो सद्वृत्तियाँ है। यदि इनमें अशक्त हो, तो वैश्यवृत्ति और उसमें भी अशक्त हो तो शूद्रवृत्ति का आश्रय ले।

हरि०–अथ क्षत्रियवृत्तमाह राजन्यानामित्याद्येकेन। अत्र संग्रामभूमिशासन रूपे सद्वृत्ते॥१११॥

वाणिज्याशक्तवैश्यानां शूद्रवृत्तमदूषणम् ।
शूद्राणां परमेशानि ! सेवावृत्तिं विधीयते ॥११२॥

पद्मा–हे परमेशानि ! वैश्य यदि वाणिज्य कर्म में असमर्थ हो तो शूद्रवृत्ति का आश्रय ले। शूद्र के लिये सेवावृत्ति ही उचित है।

हरि०–अथ वैश्यानां शूद्राणाञ्च वृत्तमाह वाणिज्येत्यादिनैकेन। वैश्यानामपि वाणिज्यमुत्तमं वृत्तम् ॥११२॥

सामान्यानां तु वर्णानां विप्रवृत्त्यन्यवृत्तिषु ।
अधिकारोऽस्ति देवेशि! देहयात्राप्रसिद्धये ॥११३॥

पद्मा–हे देवेशि! जो साधारण जातियाँ हैं उनके जीवन निर्वाह के लिये ब्राह्मण वृत्ति के अतिरिक्त और सभी वृत्तियों पर अधिकार है ।

हरि०–अथ वर्णसङ्कराणां वृत्तमाह सामान्यानामित्यादिनैकेन॥११३॥

अद्वेष्टा निर्ममः शान्तः सत्यवादी जितेन्द्रियः ।
निर्मत्सरो निष्कपटः स्ववृत्तौ ब्राह्मणो भवेत् ।।११४।।
अध्यापयेत् पुत्रबुद्ध्या शिष्यान् सन्मार्गवर्त्तिनः ।
सर्वलोकहितैषी स्यात् पक्षपातविनिर्मुखः ।।११५।।

पद्मा–ब्राह्मणों को चाहिए कि वे द्वेषरहित, निर्मम, शान्त, सत्यवादी, जितेन्द्रिय, मात्सर्यरहित और निष्कपट होकर अपनी वृत्ति का अनुसरण करे। अपने शिष्यों को पुत्र के समान अध्यापन कराये, सभी लोगों का हित करे तथा सभी के साथ निष्पक्ष व्यवहार करे।

हरि०–अथ ब्राह्मणधर्मानाह अद्वेष्टेत्यादिभिः। निर्ममः देहादिविषयकममताशून्यः। शान्तः संयतचित्तः॥११४-११५॥

मिथ्यालापमसूयाञ्च व्यसनाप्रियभाषणम् ।
नीचैः प्रसक्तिं दम्भञ्च सर्वथा ब्राह्मणस्त्यजेत् ।।११६।।

पद्मा–ब्राह्मण को चाहिए कि मिथ्यावचन, दूसरों की निन्दा, व्यसन, अप्रियभाषण, नीच मनुष्यों का संग तथा घमण्ड इन सभी का परित्याग कर दे ।

हरि०–**मिथ्येत्यादि**। असूयाम् गुणेषु सत्स्वपि परस्मिन् दोषारोपणम् । व्यसनम् धूतादिकर्म । दम्भम् स्वनिष्ठबहुमान्यत्वनिमित्तकचित्तसमुन्नतिम् ॥११६॥

युयुत्सा गर्हिता सन्धौ सम्मानैः सन्धिरुत्तमा।
मृत्युर्जयो वा युद्धेषु राजन्यानां वरानने।।११७।।
अलोभी स्यात् प्रजावित्ते गृह्णीयात् सम्मितं करम् ।
रक्षन्नङ्गीकृतं धर्मं पुत्रवत् पालयेत् प्रजाः।।११८।।
न्यायं युद्धं तथा सन्धिं कर्माण्यन्यानि यानि च।
मन्त्रिभिः सह कुर्वीत विचार्य सर्वथा नृपः।।११९।।

पद्मा–हे वरानने ! क्षत्रियों का कर्तव्य है कि सन्धि स्थिर हो जाने पर पुनः युद्ध की इच्छा न करे। सम्मान की रक्षा करके सन्धि को स्थिर रखे। युद्ध में विजय हो या मृत्यु हो दोनों ही श्रेष्ठ हैं। क्षत्रिय शासक प्रजा के धन का लोभ न करे। निश्चित समय से ही कर ग्रहण करे। स्वीकृत धर्म की रक्षा करते हुए प्रजा का पुत्र के समान पालन करे। न्याय, युद्ध, सन्धि तथा समस्त राजकार्यों को मंत्रियों के साथ विचार कर करे ।

हरि०–अथ राजन्यधर्मानाह युयुत्सेत्यादिभिः। हे वरानने! अति प्रशंसनीयवदने राजन्यानां क्षत्रियाणां सन्धौ सम्मेलने सति युयुत्सा युद्धेच्छा गर्हिता निन्दिता भवेत् । सन्धिस्तु तेषां सम्मानैरेवोत्तमो भवेत् । तेषां युद्धेषु तु मृत्युरेव वा जय एव वा उत्तमो भवेत् । नतु पलायनादिकमित्यर्थः ॥११७-११९॥

धर्मयुद्धेन योद्धव्यं न्यायदण्डपुरस्क्रियाः ।
करणीया यथाशास्त्रं सन्धिं कुर्याद् यथाबलम् ।।१२०।।
उपायैः साधयेत् कार्यं युद्धं सन्धिञ्च शत्रुभिः ।
उपायानुगताः सर्वा जयक्षेमविभूतयः ।।१२१।।

पद्या-क्षत्रिय शासक धर्म के अनुसार युद्ध लड़े और न्याय के अनुसार दण्ड दे। अपनी शक्ति को देखकर शास्त्रानुसार सन्धि करे। उपाय करके कार्यसिद्धि करे तथा उपाय से ही शत्रुओं के साथ युद्ध एवं सन्धि करे। उपाय से ही विजय, ऐश्वर्य एवं मंगल प्राप्त होता है।

हरि०-पुरस्क्रिया सत्कारः। यथाबलम् बलमनतिक्रम्यबलपूर्वकमित्यर्थः ।।१२०-१२१।।

स्यान्नीचसङ्गाद्विरतः सदा विद्वज्जनप्रियः ।
धीरो विपत्तौ दक्षश्च शीलवान् मितव्ययी ।।१२२।।

पद्या-क्षत्रियों को नीच मनुष्यों का साथ नहीं करना चाहिए, सदैव विद्वानों का प्रिय होकर रहे। विपत्तिकाल में भी अपने स्वभाव को सुशील तथा मितव्ययी रखे। विपत्ति के समय में भी धैर्य एवं दक्षता प्रकट करे ।

हरि०-विरतः, विरक्तः। धीरो धैर्यवान् । दक्षोऽनलसः।।१२२।।

निपुणो दुर्गसंस्कारे शास्त्रशिक्षाविचक्षणः।
स्वसैन्यभावान्वेषी स्यात् शिक्षयेद्रणकौशलम् ।।१२३।।
न हन्यान्मूर्च्छितान् युद्धे त्यक्तशस्त्रान् पराङ्मुखान् ।
बलानीतान् रिपून् देवि ! रिपुदारशिशूनपि ।।१२४।।

पद्या-दुर्ग के संस्कार में निपुण तथा शस्त्र की शिक्षा में चतुर अपने सैनिकों के भाव का ज्ञाता हो तथा उन्हें युद्ध कौशल सिखाए। हे देवि! युद्ध में मूर्च्छित, शस्त्रहीन, रण से भागे हुए, युद्ध से विमुख, बलपूर्वक लाये गये शत्रु को एवं शत्रु की स्त्री एवं शिशु को नही मारे ।

हरि०-निपुण इत्यदि । दुर्गसंस्कारे दुःखेन गच्छति विपक्षो यत्र तद्दुर्गम पर्वत परिखाप्राकारादिभिः दुर्गमं नगरम् तस्य संस्कारे ।।१२३-१२४।।

जयलब्धानि वस्तूति सन्धि प्राप्तानि यानि च ।
वितरेत्तानि सैन्येभ्यो यथायोग्यविभागतः ।।१२५।।
शौर्यं वृत्तञ्च योद्धृणां ज्ञेयं राज्ञा पृथक् पृथक् ।
बहुसैन्याधिपं नैकं कुर्यादात्महिते रतः ।।१२६।।
नैकस्मिन् विश्वसेद्राजा नैकं न्याये नियोजयेत् ।
साम्यं क्रीडोपहासञ्च नीचैः सह विवर्जयेत् ।।१२७।।

पद्या-जो वस्तुएं जयद्वारा या सन्धि द्वारा प्राप्त हो जाय उन सभी का यथायोग्य विभाग करके सेना को वितरित कर दे। योद्धाओं की वीरता एवं चरित्र को राजा पृथक-पृथक जाने।

अपना हित चाहने वाला राजा कभी भी एक व्यक्ति को बहुत सी सेना का अधिपति न बनाये। राजा एक ही व्यक्ति पर पूरा विश्वास न करे। एक ही व्यक्ति को विचार करने में नियुक्त न करे। नीच मनुष्यों के साथ राजा समताभाव न दिखाये, न ही उनके साथ क्रीड़ा या परिहास करे।

हरि०–वितरेत् दद्यात् ॥१२४-१२७॥

बहुश्रुतः स्वल्पभाषी जिज्ञासुर्ज्ञानवानपि ।
बहुमानोऽपि निर्दम्भो धीरो दण्डप्रसादयोः ॥१२८॥

पद्मा–राजा अनेक शास्त्रों का ज्ञानी होकर भी अल्पभाषी, जिज्ञासु एवं स्वाभिमानी व दम्भ शून्य रहे। राजा को दण्ड देने के समय या प्रसन्नता के समय दोनों में समभाव व धीर होना चाहिए।

हरि०–**बहुश्रुत इत्यादि**। बहुमानोऽपि भूरिसम्मानोऽपि राजा निर्दम्भो भूरिसम्मान निमित्तकचित्तसमुन्नतिशून्यो भवेत् ॥१२८॥

स्वयं वा चरदृष्ट्या वा प्रजाभावान् विलोकयेत् ।
एवं स्वजनभृत्यानां भावान् पश्येन्नराधिपः॥१२९॥

पद्मा–राजा स्वयं या गुप्तचरों के द्वारा प्रजा के भावों को जानता रहे। सेवक व बन्धुबान्धवों के भाव को भी जाने।

हरि०–**स्वयंवेत्यादि**। चरदृष्ट्या अन्यतत्त्वानुसन्धानप्रवीणो गूढ़पुरुषश्चरः तद्रूपया दृष्ट्या। प्रजाभावान् प्रजानामभिप्रायान् चेष्टा वा ॥१२९॥

क्रोधदम्भात् प्रमादाद्वा सम्मानं शासनं तथा ।
सहसा नैव कर्तव्यं स्वामिन तत्त्वदर्शिना ॥१३०॥
सैन्यसेनाधिपामात्यवनितापत्यसेवकाः ।
पालनीयाः सदोषाश्चेत् दण्ड्या राज्ञा यथाविधि ॥१३१॥

पद्मा–तत्त्वदर्शी राजा क्रोध, दम्भ या प्रमाद के वश में होकर सहसा किसी का सम्मान या अपमान न करे। सेनाओं के सेनापति तथा मन्त्रियों की स्त्री, कन्या, पुत्र व सेवकों का पालन राजा करे। यदि इन जनों में कोई दोषी हो तो यथाविधि उन्हें दण्डित करे।

हरि०–दम्भात् राज्यादिनिमित्तकाच्चित्तौत्सुक्यात् ॥१३०-१३१॥

उन्मत्तानसमर्थांश्च बालांश्च मृतबान्धवान् ।
ज्वराभिभूतान् वृद्धांश्च रक्षयेत् पितृवन्नृपः॥१३२॥

पद्मा–उन्मत्त, असमर्थ, बालक, मृतबान्धव, ज्वर से पीड़ित वृद्धों का पालन राजा को पिता के समान करना चाहिए।

हरि०–मृतबान्धवान् मृता बान्धवा येषां तथाभूतान् ॥१३२॥

वैश्यानां कृषिवाणिज्यं वृत्तं विद्धि सनातनम् ।
येनोपायेन लोकानां देहयात्रा प्रसिद्धति ॥१३३॥

पद्मा–कृषि एवं वाणिज्य को ही वैश्यों की सनातन वृत्ति माना गया है तथा उसके द्वारा सभी लोगों के शरीर की रक्षा होती है।

हरि०–वैश्याचारान् वक्तुमुपक्रमते वैश्यानामित्यादिभिः। येन कृषिवाणिज्यकर्मरूपेणोपायेन देहयात्रा शरीरनिर्वाहः॥१३३॥

अतः सर्वात्मना देवि! वाणिज्यकृषिकर्मसु।
प्रमादव्यसनालस्यं मिथ्याशाठ्यं विवर्जयेत्॥१३४॥

पद्मा–हे देवि! इसीलिए वाणिज्य एवं कृषि कर्म में प्रमाद, व्यसन, आलस्य, मिथ्या व्यवहार, एवं दुष्टता कभी भी किसी प्रकार न करे।

हरि०–सर्वात्मना सर्वप्रकारेण ॥१३४॥

निश्चित्य वस्तु तन्मूल्यमुभयो सम्मतौ शिवे!
परस्पराङ्गीकरणं क्रयसिद्धिस्ततो भवेत्॥१३५॥
मत्तविक्षिप्तबालानामरिग्रस्तनृणां प्रिये!।
रोगविभ्रान्तबुद्धीनामसिद्धौ दानविक्रयौ॥१३६॥

पद्मा–हे शिवे! क्रेता तथा विक्रेता दोनों की सम्मति से वस्तु तथा उसका मूल्य निश्चित हो जाय और दोनों उसे स्वीकार कर लें तब क्रय सिद्ध होगा। हे प्रिये! मत्त, विक्षिप्त, शोकार्त्त, विशेष उत्कण्ठित, बालक, शत्रु के द्वारा बन्धक तथा रोग से भ्रान्ति बुद्धि युक्त ऐसे लोगों को किया गया दान तथा विक्रय असिद्ध हो जाता है।

हरि०–**निश्चित्येत्यादि**। निश्चित्य निर्णीय। तन्मूल्यम् निश्चितवस्तुमूल्यमपि निश्चित्य। उभयोः विक्रेतृक्रयकारकयोः॥१३५-१३६॥

क्रयसिद्धिरदृष्टानां गुणश्रवणतो भवेत्।
विपर्यये तद्गुणानामन्यथा भवति क्रयः॥१३७॥
कुञ्जरोष्ट्रतुरङ्गाणां गुप्तदोषप्रकाशनात्।
वर्षातीतेऽपि तत्क्रेयमन्यथा कर्तुमर्हति॥१३८॥

पद्मा–न देखी हुई वस्तु का गुण सुनकर ही क्रय सिद्ध होता है किन्तु उस गुण से विपर्यय होने से विक्रय असिद्ध हो जाता है। हाथी, ऊँट, घोड़ा आदि के गुण सुनकर क्रय सिद्धि होती है किन्तु यदि उनमें वर्णित गुण न हो, तो वह क्रय असिद्ध होता है। हाथी ऊँट, घोड़े आदि का गुप्त दोष प्रकट होने पर एक वर्ष के उपरान्त भी क्रय अन्यथा हो सकता है।

हरि०–**अदृष्टानाम्** वस्तूनाम्। विपर्यये वैपरीत्ये॥१३७-१३८॥

धर्मार्थकाममोक्षाणां भाजनं मानवं वपुः।
अतः कुलेशि! तत्क्रेयो न सिद्धेन्मम शासनात्॥१३९॥

पद्मा–हे कुलेशि! मानव शरीर धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्ष का साधन है। इसलिए

मेरी आज्ञा के अनुसार इस शरीर का क्रय-विक्रय सिद्ध नहीं होगा।

हरि–तत्क्रेय: मानववपु: क्रेय:॥१३९॥

यवगोधूमधान्यानां लाभे वर्षे गते प्रिये! ।
युक्तश्चतुर्थो धातूनामष्टम: परिकीर्तित: ॥१४०॥
ऋणे कृषौ च वाणिज्ये तथा सर्वेषु कर्मसु ।
यद्यदङ्गीकृतं मर्त्यैस्तत्कार्यं शास्त्रसम्मतम् ॥१४१॥

पद्मा–हे प्रिये ! जौ, गेहूँ तथा धान्य का वर्ष के अन्त में ऋण देने पर मूल का चौथाई अंश मात्र लाभ होता है। धातु द्रव्य में उधार लेने पर एक वर्ष में मूल का आठवाँ भाग लेने का निर्देश है। ऋण, कृषिकार्य, वाणिज्य एवं अन्य समस्त कार्यों में शास्त्र के द्वारा स्वीकृत नियमानुसार ही मनुष्य कार्य करे।

हरि०–उत्तमर्णेन मूलधनादधिकं ग्राह्यं लाभ:॥१४०-१४१॥

दक्ष: शुचि: सत्यभाषी जितनिद्रो जितेन्द्रिय: ।
अप्रमत्तो निरालस्य: सेवावृत्तौ भवेन्नर: ॥१४२॥
प्रभुर्विष्णुसमो मान्यस्तज्जाया जननीसमा ।
मान्यास्तद्बान्धवा भृत्यैरिहामुत्र सुखेप्सुभि: ॥१४३॥
भर्तुर्मित्राणि मित्राणि जानीयात्तदरीनरीन् ।
सभीति: सर्वदा तिष्ठेत् प्रभोराज्ञां प्रतीक्षयन् ॥१४४॥
अपमानं गृहच्छिद्रं गुप्त्यर्थं कथितञ्च यत् ।
भर्तुर्ग्लानिकरं यच्च गोपयेदतियत्नत: ॥१४५॥
अलोभ: स्यात् स्वामिधने सदा स्वामिहिते रत: ।
तत्सन्निधावसद्वाक्यं क्रीड़ा हास्यं परित्यजेत् ॥१४६॥

पद्मा–सेवा कर्म में लगे व्यक्ति कार्यकुशल, पवित्र, सत्यवादी, जितनिद्र, जितेन्द्रिय, सावधान तथा निरालस्य रहे। इस लोक एवं परलोक में सुख चाहने वाले सेवक स्वामी को विष्णु के समान, उनकी पत्नी को माँ के समान एवं उनके बन्धु-बाँधवों को देवता की भाँति सम्मान दे। स्वामी के मित्रों को अपना मित्र तथा उनके शत्रुओं को अपना शत्रु समझे। सभी समय स्वामी की आज्ञा की प्रतीक्षा करते हुए भयपूर्वक उपस्थित रहे। अपमान, गृहच्छिद्र, गोपनीय बातें तथा जिससे स्वामी को ग्लानि होती हो ऐसी बातों के अतियत्नपूर्वक गोपनीय रखे। स्वामी के धन का लोभ न करे तथा सदैव स्वामी के हित में लगा रहे। उनके निकट असत् वाक्य, क्रीड़ा तथा हँसी को त्याग दे।

हरि०–अथ सेवकधर्मानाह दक्ष इत्यादिभि:। दक्ष: आत्मकार्येषु चतुर:। शुचि: स्वच्छ: अप्रमत्त: निजकार्येषु सावधान:॥१४२-१४६॥

न पापमनसा पश्येदपि तद्गृहकिङ्करी: ।
विविक्तशय्यां हास्यञ्च ताभि: सह विवर्जयेत् ॥१४७॥

प्रभोः शय्यासनं यानं वसनं भाजनानि च ।
उपानाद्भूषणं शस्त्रं नात्मार्थे विनियोजयेत् ।।१४८।।

पद्मा–स्वामी की दासियों को पापी दृष्टि से न देखे। उनके दासियों के साथ एकान्त में न सोये और न ही हास-परिहास करे। स्वामी की शय्या, वाहन (सवारी) वस्त्र, पानादिपत्र, पादुका, भूषण तथा शस्त्रों को स्वयं अपने व्यवहार में न लाये ।

हरि०–**न पायेत्यादि।** पमनसा तस्य स्वामिनो गृहकिङ्करीरपि न पश्येत् का वार्त्ता तत्पत्नीपुत्र्यादीनाम् । विविक्तशय्याम् रहः शयनम् । ताभिः स्वामिगृहकिङ्करीभिः।

क्षमां कृतापराधश्चेत् प्रार्थयेदयत्नतः प्रभोः ।
प्रागल्भ्यं प्रौढ़वादञ्च साम्याचारं विवर्जयेत् ।।१४९।।

पद्मा–यदि सेवक से कोई अपराध हो जाता है तो उसे अपनी स्वामी से क्षमा मांगनी चाहिए। स्वामी के समीप धृष्टता, प्रौढ़वाद तथा प्रभुत्व न दिखाये ।

हरि०–प्रागम्भ्यम् धाष्टर्यम् ।।१४९।।

सर्वे वर्णा स्वस्ववर्णैर्ब्राह्मोद्वाहं तथाऽशनम् ।
कुर्वीरन् भैरवीचक्रात्त्वचक्रादृते शिवे ! ।।१५०।।

पद्मा–हे शिवे! यदि तत्त्वचक्र का अनुष्ठान न हो तो सभी जातियों के मनुष्य अपने-अपने वर्ण के साथ ब्रह्मविवाह तथा भोजन भैरवीचक्र के द्वारा करे ।

हरि०–**अशनम् भोजनम्** ।। ऋते विना।।१५०।।

उभयत्र महेशानि! शैवाद्वाहः प्रकीर्तितः ।
तथाऽऽदाने च पाने च वर्णभेदा न विद्यते ।।१५१।।

पद्मा–हे महेशानि! तत्त्वचक्र एवं भैरवीचक्र दोनों के विधान में शैवविवाह कहा गया है। इन दोनो चक्रों में भोजन एवं पान के समय वर्णभेद का विचार नहीं होता है ।

हरि०–उभयत्र भैरवीचक्रे तत्त्वचक्रे च।।१५१।।

श्रीदेव्युवाच

किमिदं भैरवीचक्रं तत्त्वचक्रञ्च कीदृशम् ।
तत्सर्वं श्रोतुमिच्छामि कृपया वक्तुमर्हसि ।।१५२।।

पद्मा–श्रीदेवी ने कहा-यह भैरवी चक्र क्या है ? तत्त्वचक्र किस प्रकार का है? यह सब मैं सुनना चाहती हूँ कृपया मुझसे कहिए ।

हरि०–अथ भैरवीचक्र चत्त्वचक्रयोर्विधानं श्रोतुमिच्छन्ती श्रीदेव्युवाच किमिदमित्यादि ।।१५२।।

श्रीसदाशिव उवाच

कुलपूजाविधौ देवि! चक्रानुष्ठानमीरितम् ।
विशेषपूजासमये तत्कार्यं साधकोत्तमैः।।१५३।।

भैरवीचक्रविषये न तादृङ्नियमः प्रिये !।
यथासमयमासाद्य कुर्याच्चक्रमिदं शुभम् ।।१५४।।

पद्मा–श्रीसदाशिव ने कहा-हे देवि! कुलपूजा की विधि से चक्र का अनुष्ठान होता है। हे प्रिये! भैरवीचक्र के विषय में समयादि का कोई नियम नहीं है। यह शुभ भैरवीचक्र किसी भी समय किया जा सकता है ।

हरि०–एवं प्रार्थितः सन् श्रीसदाशिव उवाच कुलपूजेत्यादि। तत्कुलपूजाविधावुक्तं चक्रानुष्ठानम् ।।१५३-१५४।।

विधानमस्य वक्ष्यामि साधकानां शुभावहम् ।
आराधिता येन देवी तूर्णं यच्छति वाञ्छितम् ।।१५५।।

पद्मा–साधकों के लिए शुभकारी भैरवीचक्र का विधान कहता हूँ। इस भैरवीचक्र में देवी की आराधना करने पर वह शीघ्रता से अभीष्ट फल प्रदान करती हैं ।

हरि०–**अस्य भैरवीचक्रस्य**। येन भैरवीचक्रविधानेन। यच्छति ददाति ।।१५५।।

कुलाचार्यो रम्यभूमावास्तीर्याऽऽसनमुत्तमम् ।
कामाद्येनास्त्रबीजेन संशोध्योपविशेत्ततः ।।१५६।।

पद्मा–कुलाचार्य सुन्दर एवं रमणीय स्थान में उत्तम आसन बिछा कर **क्लीं फट्** मन्त्र से उस आसन को शुद्ध कर उस पर बैठे ।

हरि०–भैरवीचक्रानुष्ठानमेवाह कुलाचार्य इत्यादिभिः। कुलाचार्यः कुलगुरुः। रम्यभूमौ रमणीयायां भूम्युत्तममासनमास्तीर्याऽऽच्छाद्य कामाद्येन क्लीं बीजाद्येनाऽस्त्रबीजेन फट् संशोध्य च ततस्तत्राऽऽसने उपविशेत् ।।१५६।।

सिन्दूरेण कुसीदेन केवलेन जलेन वा ।
त्रिकोणञ्चतुरस्रञ्च मण्डलं रचयेत् सुधीः ।।१५७।।

पद्मा–बुद्धिमान साधक सिन्दूर, लालचन्दन अथवा केवल जल से त्रिकोण और चतुष्कोण मण्डल का निर्माण करे ।

हरि०–ततः सुधीः कोविदः सिन्दूरेण कुसीदेन रक्तचन्दनेन केवलेन जलेन वा त्रिकोणं मण्डलं तद्बहिश्चतुरस्रञ्चतुष्कोणञ्च मण्डलं रचयेत् ।।१५७।।

विचित्रघटमानीय दध्यक्षतविमृक्षितम् ।
फलपल्लवसंयुक्तं सिन्दूरतिलकान्वितम् ।।१५८।।
सुवासितजलैः पूर्णं मण्डलं तत्र साधकः।
प्रणवेन तु संस्थाप्य धूपदीपौ प्रदर्शयेत् ।।१५९।।

पदमा–इसके पश्चात् एक सुन्दर व विचित्र घड़ा लेकर उसे क्रमशः दही, अक्षत, फल, पल्लव, सिन्दूर व तिलक से युक्त कर सुगन्धित जल से भरे तथा प्रणव (ॐ) का उच्चारण कर उसे मण्डल पर स्थापित कर उसे धूप दीप प्रदान करे ।

हरि०-विचित्रेत्यादि। ततः परं विचित्रं विविधानि चित्राण्यालेख्यानि यत्रैवम्भूत घटमानीय दध्यक्षतविमृखितं दध्नाऽक्षतैश्च सम्पृक्तं फलैः पल्लवैश्च संयुक्तं सिन्दूरतिलकैरन्वितं संयुतं कर्पूरादिभिः सुवासितैर्जलैः पूर्णञ्च कृत्वा प्रणवेन ओंकारेण तत्र मण्डले संस्थाप्य च साधको धूपदीपौ तं प्रदर्शयेत् ॥१५८-१५९॥

सम्पूज्य गन्धपुष्पाभ्यां चिन्तयेदिष्टदेवताम् ।
संक्षेपपूजाविधिना तत्र पूजां समाचरेत् ॥१६०॥
विशेषमत्र वक्ष्यामि शृणुष्वाऽमरवन्दिते ।
गुर्वादिनवपात्राणां नात्र स्थापनमिष्यते ॥१६१॥

पद्मा-गन्ध, पुष्प से पूजन कर उसमें इष्ट देवता का ध्यान करे तथा संक्षिप्त विधि के अनुसार उसमें पूजा करे। हे सुरवन्दिते (अमरवन्दिते) ! इसमें जो कुछ विशेष है । उसे कहता हूँ, सुनो! इस भैरवीचक्र में गुरु आदि नौ पात्र स्थापित करने की आवश्यकता नहीं है।

हरि०-सम्पूज्येति। ततो गन्धपुष्पाभ्यां घटं सम्पूज्यं तत्रेष्टदेवतां चिन्तयेत् । सञ्चिन्त्य च पूर्वोक्तेन संक्षेपपूजाविधिना तत्र कलशे इष्टदेवतायाः पूजां समाचरेत् कुर्यात् ॥१६०-१६१॥

यथेष्टं तत्त्वमादाय संस्थाप्य पुरतो व्रती ।
प्रोक्षयेदस्त्रमन्त्रेण दिव्यदृष्ट्याऽवलोकयेत् ॥१६२॥

पद्मा-साधक इस पूजा के समय यथेष्ट तत्त्व रखकर 'फट्' मन्त्र से उन्हें प्रोक्षित कर दिव्यदृष्टि (एकाग्र दृष्टि) से देखे ।

हरि०-यथेष्टमिति । ततो व्रती साधको यथेष्टं तत्त्वं मद्यादिमादाय पुरतोऽग्रे संस्थाप्य चाऽस्त्रमन्त्रेण फटा प्रोक्षयेत् जलेन सिञ्चेत् दिव्यदृष्ट्याऽवलोकयेच्च॥१६२॥

अलियन्त्रे गन्धपुष्पं दत्त्वा तत्र विचिन्तयेत् ।
आनन्दभैरवीं देवीं आनन्दभैरवं तथा ॥१६३॥

पद्मा-इसके पश्चात् अलियन्त्र (मद्यपात्र) में गन्ध पुष्प प्रदान कर उसमें आनन्द भैरवी देवी तथा आनन्द भैरव का ध्यान करे ।

हरि०-अलियन्त्रे इति। ततोऽलियन्त्रे मद्यपात्रे गन्धपुष्पं दत्त्वा तत्राऽलियन्त्रे एवा-ऽऽनन्दभैरवीं देवीन्तथाऽऽनन्दभैरव देवं विचिन्तयेत् ॥१६३॥

नवयौवनासम्पन्नां तरुणारुणविग्रहाम् ।
चारुहासामृताभाषोल्लासद्वदनपङ्कजाम् ॥१६४॥
नृत्यगीतकृतामोदां नानाभरणभूषिताम् ।
विचित्रवसनां ध्यायेत् वराभयकराम्बुजाम् ॥१६५॥
इत्यानन्दमयीं ध्यात्वा स्मरेदानन्दभैरवम् ॥१६६॥

पद्मा-आनन्दभैरवी का शरीर नवयौवन युक्त है, उनका शरीर लाल बाल सूर्य के

समान कान्तिमान है। मनोहर हास्यामृत की कमनीय कान्ति से मुख कमल शोभायमान है। वे नृत्य गीत से सदा आनन्दित होती हैं। विभिन्न प्रकार के अलंकारो से सुसज्जित है। वे विलक्षण वस्त्र पहने हुए हैं। उनके हाथों में वर एवं अभय मुद्राए हैं। इस प्रकार आनन्दभैरवी का ध्यान कर आनन्दभैरवी का ध्यान करे।

हरि०–आनन्दभैरव्या ध्यानमेवाह नवयौवनसम्पन्नामिति। नवयौवनसम्पन्नां नवीनतारुण्यं सम्प्राप्ताम्। तरुणारुणविग्रहाम् नवीनसूर्यसदृशदेहाम्। चारुहासामृताभाषोल्लसद्वदनपङ्कजाम् चारुहासेन मनोहरहसननामृतभाषया सुधातुल्य भाषणेन चोल्लसद्देदीप्यमानं वदनपङ्कजं मुखकमलं यस्यास्तथाभूताम्। नृत्यगीतकृतामोदाम् नृत्यगीताभ्यां कृत आमोद आनन्दो ययाताम्। नानाभरणभूषिताम् अनेकविधभूषणालङ्कृताम्। विचित्रवसनाम् विचित्रमद्भुतं वसनं वस्त्रं यस्यास्ताम्। वराभयकराम्बुजाम् वरोऽभयञ्च कराम्बुजयोर्यस्यास्ताम्। एवम्भूतामानन्दभैरवी ध्यायेत्। इत्येवामानन्दभैरवीं ध्यात्वा आनन्दभैरवं स्मरेत् ॥१६४-१६६॥

कर्पूरपूरधवलं कमलायताक्षम्
दिव्याम्बराभरणभूषितदेहकान्तिम्।
वामेन पाणिकमलेन सुधाढ्यपात्रम्
दक्षेण शुद्धिगुटिकां दधतं स्मरामि॥१६७॥

पद्मा–आनन्दभैरव कर्पूरराशि के समान श्वेत वर्ण के हैं। कमल के समान उनके बड़े-बड़े नेत्र हैं। दिव्य वस्त्र एवं अलंकारों से उनके शरीर की कान्ति शोभायमान है। बायें हाथ में सुधापूर्ण पात्र तथा दाहिने हाथ में शुद्धि की गुटिका लिए हुए आनन्दभैरव का साधक ध्यान करे।

हरि०–आनन्दभैरवध्यानमेवाहैकेन कर्पूरपूर धवलमिति। कर्पूरपूर धवलं कर्पूरप्रवाह वच्छुभ्रम्। कमलायताक्षम् कमलवदायते विस्तृते अक्षिणी तम् दिव्याम्बराभरणभूषितदेहकान्तिम् दिव्यैरम्बराभरणैर्वस्त्रविभूषणैर्भूषितोऽलङ्कृतो यो देहस्तत्र कान्तिरधिका दीप्तिर्यस्य तथाभूतम्। वामेन पाणिकमलेन सुधाढ्यपात्रं मद्यसमन्वितं पात्रं दक्षेण पाणिकमलेन शुद्धिगुटिकाञ्च दधतमानन्दभैरवी स्मरामि चिन्तयामि ॥१६७॥

ध्यात्वैवमुभयोस्तत्र सामरस्यं विचिन्तयन्।
प्रणवादिनमोऽन्तेन नाममन्त्रेण देशिकः।
सम्पूज्य गन्धपुष्पाभ्यां शोधयेत् कारणं ततः॥१६८॥

पद्मा–इस प्रकार साधक आनन्दभैरव का ध्यान कर उस सुरापात्र में दोनों की समरसता का विचार का आदि में प्रणव (ॐ) तथा अन्त में 'नमः' जोड़कर नाममन्त्र का पाठ कर गन्धपुष्प से पूजन करने के बाद सुरा का शोधन करे।

हरि०–ध्यात्वेति। एवमुभौध्यात्वा तत्राऽलियन्ते उभयोर्भैरवीभैरवयोः सामरस्यमैकरस्यं विचिन्तयन् देशिकः साधकः प्रणवादिनमोऽन्तेन नाममन्त्रेण गन्धपुष्पाभ्यां तौ संपूज्य ततः कारणं मद्यं शोधयेत् ॥१६८॥

पाशादित्रिकबीजेन स्वाहान्तेन कुलार्चकः ।
अष्टोत्तरशतावृत्त्या जपन् हेतुं विशोधयेत् ।।१६९।।
गृहकाम्यैकचित्तानां गृहिणां प्रबले कलौ ।
आद्यतत्त्वप्रतिनिधौ विधेयं मधुरत्रयम् ।।१७०।।

पद्मा–कुलपूजक आँ ह्रीं क्रों स्वाहा का १०८ बार जप कर सुरा का शोधन करे। प्रबल कलियुग में गृहस्थ केवल गृहकार्य की इच्छा से एकाग्रचित होकर पूजन करे। गृहस्थ के लिये आद्यतत्त्व मद्य के प्रतिनिधि मधुरत्रय का विधान है ।

हरि०–ननु केन मन्त्रेण मद्यं शोधयेत् तत्राह पाशादीत्यादि। स्वाहान्तेन स्वाहाऽन्तो यस्यैवम्भूतेन पाशादित्रिकबीजेन आँ ह्रीं क्रोमिति बीजत्रयेण अष्टोत्तर शतावृत्या इममेव मन्त्रं जपन् कुलार्चको हेतुं मद्यं विशोधेयेत् ॥१६९-१७०॥

दुग्धं सिता माक्षिकञ्च विज्ञेयं मधुरत्रयम् ।
अलिरूपमिदं मत्वा देवतायै निवेदयेत् ।।१७१।।

पद्मा–दूध, शक्कर तथा मधु यह तीन द्रव्य मधुरत्रय के नाम से जाने जाते हैं। इस मधुरत्रय को मद्यरूप जानकर देवता को प्रदान करें ।

हरि०–मधुरत्रयमेवाह दुग्धमित्यादि। अलिरूपं मद्यस्वरूपम्। इदं मधुरत्रयम् ॥१७१॥

स्वभावात् कलिजन्मान् कामविभ्रान्तचेतसः ।
तद्रूपेण न जानन्ति शक्तिं सामान्यबुद्धयः ।।१७२।।

पद्मा–कलियुग के समस्त मनुष्य स्वभाव से काम द्वारा भ्रान्ति चित्तवाले है। इसलिए वे सामान्य बुद्धि के होते हैं। इसलिए वे नारी को शक्तिस्वरूपा नहीं समझते ।

हरि०–शक्तिं स्त्रियम् ॥१७२॥

अतस्तेषां प्रतिनिधौ शेषतत्त्वस्य पार्वति! ।
ध्यानं देव्याः पदाम्भोजे स्वेष्टमन्त्रजपस्तथा ।।१७३।।

पद्मा–हे पार्वति ! इसलिए कलियुग के मनुष्यों के लिये शेष तत्त्व (मैथुन) के अनुकल्प रूप में देवी के चरणकमलो का ध्यान तथा इष्टमन्त्र का जप निर्दिष्ट किया गया है ।

हरि०–अत इत्यादि। हे पार्वति अतो हेतोः तेषां कलिजन्मनां शेषतत्त्वस्य मैथुनस्य प्रतिनिधौ देव्याः पदाम्भोजेध्यानं विधेयम् तथा स्वेष्ट मन्त्रस्य जपो निधेयः॥१७३॥

ततस्तु प्राप्त तत्त्वानि पललादीनि पानि च ।
प्रत्येकं शतधाऽनेन मनुना चाभिमन्त्रयेत् ।।१७४।।

पद्मा–मासादि जो तत्त्व प्राप्त हो उनमें से प्रत्येक को एक सौ बार **'आँ ह्रीं क्रों स्वाहा'** मन्त्र से अभिमन्त्रित करें ।

हरि०–ततस्त्विति। ततः परं पललादीनि मांसादीनि यानि प्राप्ततत्त्वानि तानि प्रत्येकं शतधा जप्यमानेनानेन आँ ह्रीं क्रों स्वाहेति मनुनाऽभिमन्त्रयेत् शोधयेदित्यर्थः॥१७४॥

सर्वं ब्रह्ममयं ध्यात्वा निमील्यनयनद्वयम् ।
निवेद्य पूर्ववत् काल्यै पानभोजनमाचरेत् ।।१७५।।

पद्मा–इसके उपरान्त लाई हुई सभी वस्तुओं को ब्रह्ममय समझते हुए दोनों आँखों को बन्द कर उन्हें भगवती को निवेदित करे। इसके पश्चात् स्वयं पान एवं भोजन करे ।

हरि०–सर्वमिति। ततो नयनद्वयं निमील्य सर्वं मद्यादितत्त्वं ब्रह्ममयं ब्रह्मस्वरूपं ध्यात्वा पूर्ववत् काल्यै निवेद्य च पूर्ववदेव पानभोजनमाचरेत् ॥१७५॥

इदन्तु भैरवीचक्रं सर्वतन्त्रेषु गोपितम् ।
तवाग्रे कथितं भद्रे! सारात्सारं परात्परम् ।।१७६।।
विवाहो भैरवीचक्र तत्त्वचक्रेऽपि पार्वति! ।
सर्वथा साधकेन्द्रेण कर्तव्यः शैववर्त्मना ।।१७७।।

पद्मा–हे भद्रे! यह भैरवीचक्र सार का भी सार है। श्रेष्ठ से भी बेहतर है। यह सभी तन्त्रों में गोपनीय है। इसे मैंने तुम्हारे समक्ष कहा है। हे पार्वति! श्रेष्ठसाधकों को भैरवीचक्र तथा तत्त्वचक्र में शैवपद्धति से विवाह करना कर्त्तव्य है ।

हरि०–अथ भैरवीचक्रस्य माहात्म्यं वर्णयितुमुपक्रमते इदन्त्वित्यादि॥१७६-१७७॥

विना परिणयं वीरः शक्तिसेवां समाचरन् ।
परस्त्रीगामिनां पापं प्राप्नुयान्नात्र संशयः ।।१७८।।
सम्प्राप्ते भैरवीचक्रे सर्वे वर्णाः द्विजोत्तमाः ।
निवृत्ते भैरवीचक्रे सर्वे वर्णाः पृथक् पृथक् ।।१७९।।

पद्मा–यदि कोई वीर साधक बिना विवाह किये शक्ति की सेवा करता है तो उसे परस्त्रीगमन का पाप लगता है इसमें संशय नहीं है। भैरवीचक्र के आरम्भ होने पर सभी जातियों के साधक श्रेष्ठ द्विज हो जाते हैं। भैरवीचक्र निवृत्त होने पर सभी वर्ण पृथक-पृथक् हो जाते हैं ।

हरि०–परिणयम् विवाहम् ॥१७८-१७९॥

नात्र जातिविचारोऽस्ति नोच्छिष्टादिविवेचनम् ।
चक्रमध्यागता वीरा मम रूपा नराख्यया ।।१८०।।

पद्मा–इस भैरवीचक्र में जाति का विचार नहीं है जूठे आदि का भी विचार नहीं है। चक्र में उपस्थित वीर साधक मेरे ही रूप होते हैं अन्य किसी का नहीं ।

हरि०–अत्र भैरवीचक्रे॥१८०॥

न देशकालनियमो न वा पात्रविचारणम् ।
येन केनाऽऽहृतं द्रव्यं चक्रेऽस्मिन् विनियोजयेत् ।।१८१।।
दूरदेशात् समानीतं पक्वं वाऽपक्वमेव वा ।
वीरेणपशुना वापि चक्रमध्यगतं शुचि ।।१८२।।

चक्रारम्भे महेशानि ! विघ्नाः सर्वेभयाकुलाः ।
विभीतास्ते पलायन्ते वीराणां ब्रह्मतेजसा ।।१८३।।

पद्मा–इस भैरवीचक्र में देशकाल का नियम नहीं है तथा पात्र का विचार भी नहीं है। इस चक्र में किसी भी मनुष्य द्वारा लाए गये द्रव्य का प्रयोग किया जा सकता है। वीराचारी या पशवाचारी कोई भी दूर देश से लाया हो, पका या कच्चा हो भैरवीचक्र में रखने से ही पवित्र हो जाता है। हे महेशानि! चक्र के प्रारम्भ में वीरसाधकों के ब्रह्मतेज से भयभीत होकर सभी विघ्न बाधायें पलायन कर जाती है ।

हरि०–द्रव्यं मद्यादि॥१८१-१८३॥

पिशाचा गुह्यका यक्षा वेतालाः क्रूरजातयः ।
श्रुत्वात्र भैरवीचक्रं दूरं गच्छन्ति साध्वसम् ।।१८४।।

पद्मा–पिशाच, गुह्यक, यक्ष, बेताल तथा क्रूर जातियाँ भैरवी चक्र का नाम सुनते ही भैरवीचक्र स्थान से दूर चले जाते हैं ।

हरि०–साध्वसं सभयम् ॥१८४॥

तत्र तीर्थानि महातीर्थादिकानि च ।
सेन्द्रामरगणाः सर्वे तत्रागच्छन्ति सादरम् ।।१८५।।
चक्रस्थानं महातीर्थं सर्वतीर्थाधिकं शिवे !
त्रिदशा यत्र वाञ्छन्ति तव नैवेद्यमुत्तमम्।।१८६।।

पद्मा–हे शिवे ! जहां पर भैरवीचक्र होता है उस स्थान में सभी तीर्थ, महातीर्थ और इन्द्र सहित देवता आदरपूर्वक आ जाते हैं। चक्र का स्थान महातीर्थ है। तथा समस्त तीर्थों से श्रेष्ठ है। इस चक्र में देवता भी तुम्हारे उत्तम नैवेद्य की कामना करते हैं ।

हरि०–तत्र चक्रस्थाने॥१८५-१८६॥

म्लेच्छेन श्वपचेनापि किरातेनापि हूणुना ।
आमं पक्वं यदानीतं वीरहस्तार्पितं शुचि ।।१८७।।
दृष्ट्वा तु भैरवीचक्रं मम रूपांश्च साधकान् ।
मुच्यन्ते पशुपाशेभ्यः कलिकल्मषदूषिताः।।१८८।।
प्रबले कलिकाले तु न कुर्याच्चक्रगोपनम् ।
सर्वत्र सर्वदा वीरः साधयेत् कुलसाधनम्।।१८९।।
चक्रमध्ये वृथालापं चाञ्चल्यं बहुभाषणम् ।
निष्ठीवनमधोवायुं वर्णभेदं विवर्जयेत् ।।१९०।।
क्रूरान् खलान् पशून् पापान् नास्तिकान् कुलदूषकान् ।
निन्दकान् कुलशास्त्राणां चक्राद्दूरतरं त्यजेत् ।।१९१।।

पद्मा–म्लेच्छ, श्वपच, किरात तथा हूण कोई भी जाति कच्चा अथवा पका यदि द्रव्य लाकर वीर के हाथ में प्रदान करे तो वह पवित्र हो जाता है जो मनुष्य कलियुग के पाप से दूषित हैं वे भैरवी चक्र तथा मेरे स्वरूप साधकों का दर्शन करते ही पाप के पाश से छूट जाते हैं। कलियुग के प्रबल होने पर भैरवीचक्र को गोपनीय न रखे। वीराचारी सभी स्थानों सभी समयों में कुल साधना करे। चक्र के मध्य में निरर्थक वार्तालाप, चञ्चलता, वाचालता, छींकना, अधोवायु निकालना तथा वर्णभेद करना वर्जित है। क्रूर, दुष्ट, पश्वाचारी, पापी, नास्तिक, कुलदूषक, तथा कुलशास्त्रों के निन्दकों को चक्र से दूर ही छोड़ दे।

हरि०–हूणुना जातिविशेषेण। आमम् अपक्वम् ॥१८७-१९१॥

स्नेहाद्भयादानुरक्त्या पशूंश्चक्र प्रवेशयन्।
कुलधर्मात् परिभ्रष्टो वीरोऽपि नरकं व्रजेत्।।१९२।।
ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः शूद्राः सामान्यजातयः।
कुलधर्माश्रिता ये वै पूज्यास्ते देववत् सदा।।१९३।।
वर्णाभिमानाच्चक्रे तु वर्णभेदं करोति यः।
स याति घोरनिरयमपि वेदान्तपारगः।।१९४।।
चक्रान्तर्गतकौलानां साधूनां शुद्धचेतसाम्।
साक्षाच्छिवस्वरूपाणां पापशङ्काभवेत् कुतः।।१९५।।

पद्मा–स्नेह, भय या अनुरागवश पश्वाचारी को चक्र में प्रवेश देने से वीराचारी स्वयं भी कुलधर्म से भ्रष्ट होकर नरक में जाता है। जो ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र तथा सामान्य जाति वाली कुलधर्मी हो, उसे सदैव देवता की भाँति पूजें। भैरवी चक्र में जो वर्णाभिमान या वर्णभेद करता है वह वेदान्त ज्ञाता होने पर भी घोर नरक में जाता है। चक्र के भीतर पवित्रात्मा, साधु एवं साक्षात् शिवस्वरूप कौलिकों के सम्बन्ध में पाप की शंका कैसे हो सकती है।

हरि०–भयादानुरक्त्या भयहेतुकेनानुरागेण॥१९२-१९५॥

यावद्वसन्ति चक्रेषु विप्राद्याः शैवमार्गिणः।
तावत्तु शाम्भवाचारांश्चरेयुः शिवशासनात्।।१९६।।
चक्राद्विनिःसृताः सर्वे स्वस्ववर्णाश्रमोदितम्।
लोकयात्राप्रसिद्ध्यर्थं कुर्युः कर्म पृथक् पृथक्।।१९७।।

पद्मा–शैवमार्गी विप्रादिगण जब तक चक्र में रहें, तब तक शिव की आज्ञानुसार शाम्भवाचार का पालन करे। चक्र के बाहर निकलते ही सभी लोकयात्रा निर्वाह के लिए अपने अपने वर्ण एवं आश्रम के अनुसार पृथक्-पृथक् निर्दिष्ट कार्यों को करे।

हरि०–चरेयुः कुर्युः॥१९६-१९७॥

पुरश्चर्याशतेनापि शवमुण्डचितासनात् ।
चक्रमध्ये सकृत् जप्त्वा तत् फलं लभते सुधीः ।।१९८।।
भैरवीचक्रमाहात्म्यं को वा वक्तुं क्षमो भवेत् ।
सकृदेतत् प्रकुर्वाणः सर्वैः पापैः प्रमुच्यते ।।१९९।।

पद्मा–शवासन, मुण्डासन, चितासन पर बैठकर सौ पुरश्चरण करने से जो फल प्राप्त होता है वह बुद्धिमान साधक चक्र के मध्य में एकबार जप करने से ही प्राप्त कर लेता है। भैरवी चक्र का माहात्म्य कहने में कोई भी व्यक्ति समर्थ नहीं है। भैरवीचक्र एक बार करने से वह समस्त पापों से छुटकारा पा जाता है ।

हरि०–**पुरश्चर्येत्यादि**। शवमुण्डचितासनात् शवासनात् मुण्डासनात् चितासनाञ्च यत् फलं लभते ॥१९८-१९९॥

षण्मासं भूमिपालः स्यात् वर्षं मृत्युञ्जयः स्वयम् ।
नित्यं समाचरन् मर्त्यो ब्रह्मनिर्वाणमाप्नुयात् ।।२००।।
बहुना किमिहोक्तेन सत्यं जानीहि कालिके! ।
इहामुत्र सुखावाप्त्यै कुलमार्गो हि नापरः ।।२०१।।
कलेः प्राबल्यसमये सर्वधर्मविवर्ज्जिते ।
गोपनात् कुलधर्मस्य कौलोऽपि नारकी भवेत् ।।२०२।।
कथितं भैरवीचक्रं भोगमोक्षैकसाधनम् ।
तत्त्वचक्रं कुलेशानि ! साम्प्रतं वच्मि तत् शृणु ।।२०३।।

पद्मा–छः महीने तक भैरवीचक्र करने से राजा होता है। एक वर्ष तक भैरवी चक्र का अभ्यास करने वाला साधक मृत्युञ्जय होता है। नित्य भैरवी का अभ्यास करने वाला निर्वाण-मुक्ति प्राप्त करता है। हे कालिके ! अधिक कहने से क्या प्रयोजन ! इसे सत्य ही जानो। इस मार्ग के अतिरिक्त दूसरा कोई अन्य उपाय भौतिक तथा पारलौकिक सुख प्राप्त करने का नहीं है। सभी धर्मों से शून्य प्रबल कलियुग में कुलधर्म को छिपाने वाला कौल भी नरक में जाता है। हे कुलेशानि ! भोग-मोक्ष प्रदायक भैरवीचक्र को मैंने कहा। अब मैं तत्त्वचक्र को कहता हूँ सुनो ! ।

हरि०–**षण्मासमिति**। भैरवीचक्रं षण्मासं समाचरन् मर्त्यो भूमिपाल ! स्यादित्येव-मन्वयः ॥२००-२००३॥

तत्त्वचक्रं चक्रराजं दिव्यचक्रं तदुच्यते।
नात्राधिकारः सर्वेषां ब्रह्मज्ञान साधकान् विना ।।२०४।।

पद्मा–तत्त्वचक्र को चक्रराज तथा दिव्यचक्र कहा गया है। यह सभी चक्रों का राजा है। ब्रह्मज्ञानी साधक के अतिरिक्त अन्य किसी का इसमें अधिकार नहीं है ।

हरि०–अत्र चक्रराजे तत्त्वचक्रे-॥२०४॥

परब्रह्मोपासका ये ब्रह्मज्ञा ब्रह्मतत्परा: ।
शुद्धान्त: करणा: शान्ता: सर्वप्राणिहिते रता: ।।२०५।।

पद्मा–जो मनुष्य परब्रह्म के उपासक हैं, ब्रह्मज्ञानी हैं, ब्रह्म की प्राप्ति के लिये प्रयत्नशील हैं, शुद्धअन्त:करण वाले, शान्त (रागद्वेषरहित) एवं सभी प्राणियों के हित में लगे रहने वाले हैं ।

हरि०–रागद्वेषादिशून्या:।।२०५।।

निर्विकारा निर्विकल्पा दयाशीला दृढव्रता: ।
सत्यसङ्कल्पका ब्राह्मस्तएवात्राऽधिकारिण: ।।२०६।।
ब्रह्मभावेन तत्त्वज्ञे । ये पश्यन्ति चराचरम् ।
तेषां तत्त्वविदां पुंसा तत्त्वचक्रेऽधिकारिता ।।२०७।।

पद्मा–विकारहीन, विकल्परहित, दयावान, दृढ़व्रती, सत्यसङ्कल्प तथा जो ब्रह्म हैं वही इस तत्त्वचक्र के अधिकारी हैं। हे तत्त्वज्ञे! जो इस चराचर जगत् को ब्रह्ममय देखते हैं, उस तत्त्वज्ञान से सम्पन्न मनुष्यों को ही इस चक्र में अधिकार है ।

हरि०–तत्र तत्त्वचक्रे ।।२०६-२०७।।

सर्वं ब्रह्ममयं भावश्चक्रेऽस्मिंस्तत्तवसंज्ञके ! ।
येषामुत्पद्यते देवि ! त एवं तत्त्वचक्रिण: ।।२०८।।

पद्मा–सभी कुछ ब्रह्म ही है, वही तत्त्वचक्री है, हे देवि! जिनका इस प्रकार का भाव है वही तत्त्वचक्र करने के अधिकारी हैं ।

हरि०–वाणो भावना विचिन्तने त्मार्ग:।।२०८।।

न घटस्थापनाऽत्रास्ति न बाहुल्येन पूजनम् ।
सर्वत्र ब्रह्मभावेन साधयेत् तत्त्वसाधनम् ।।२०९।।
ब्रह्ममन्त्री ब्रह्मनिष्ठे भवेच्चक्रेश्वर: प्रिये! ।
ब्रह्मज्ञै: साधकै: सार्द्ध तत्त्वचक्र समारभेत् ।।२१०।।

पद्मा–इसमें घट की स्थापना नहीं होती है और न ही विस्तृत पूजा करनी होती है। सभी स्थानों में ब्रह्मभाव से तत्त्वसाधन करे। हे प्रिये ! ब्रहममन्त्रोपासक तथा ब्रह्मनिष्ठ व्यक्ति चक्रेश्वर बने। ब्रह्मज्ञानी साधकों के साथ तत्त्वचक्र का प्रारम्भ करे ।

हरि०–तत्त्वसाधनम् तत्त्वचक्रसाधनम् ।।२०९-२१०।।

रम्ये सुनिर्मले देशे साधकानां सुखावहे ।
विचित्रासनमानीय कल्पयेद्विमलासनम् ।।२११।।

पद्मा–रमणीय, अत्यन्त ही निर्मल तथा साधकों के लिए सुखदायक स्थान में विचित्र आसन लाकर विमलासन की कल्पना करे ।

हरि०–अथ तत्त्वचक्रस्य विधानमाह रम्ये इत्यादिभि: ।।२११।।

तत्रोपविश्य चक्रेशः सहितो ब्रह्मसाधकैः ।
आसादयेत्तु तत्त्वानि स्थापयेदग्रतः शिवे !।।२१२।।

पद्मा–हे शिवे ! ऐसे स्थान में चक्रेश्वर ब्रह्मसाधकों के साथ बैठकर समस्त तत्त्वों को मँगाकर उन्हें अपने सम्मुख स्थापित करे ।

हरि०–तत्र कल्पिते विमलासने आसादयेत् आनयेत् तत्त्वानि मद्यादीनि।।२१२।।

तारादिप्राणबीजान्तं शतावृत्त्या जपन् मनुम् ।
सर्वतत्त्वेषु चक्रेश इमं मन्त्रमुदीरयेत् ।।२१३।।

पद्मा-चक्रेश्वर समस्त तत्त्वों पर तार-प्राण अर्थात् ॐ **हंसः** मन्त्र का सौ बार जप कर यह (आगे कहा जा रहा है) मंत्र पढ़े ।

हरि०–तारादीत्यादि। ततो मद्यादिषु सर्वतत्त्वेषु तारादिप्राणबीजान्तं तारः प्रणव आदिर्यस्य स तारादिः प्राणबीजं हंस इति बीजमन्तो यस्य सः प्राणबीजान्तः तारादिश्चासौ प्राणबीजान्तश्च तारादिप्राणबीजान्तस्तं मनुम् ओं हंसः इति मन्त्रं शतावृत्त्या जपन् चक्रेश इमं वक्ष्यमाणं मन्त्रमुदीरयेत् ।।२१३।।

ब्रह्मार्पणं ब्रह्मवृविर्ब्रह्माग्नौ ब्रह्मणा हुतम् ।
ब्रह्मैव तेन गन्तव्यं ब्रह्मकर्मसमाधिना ।।२१४।।

पद्मा–जिसके द्वारा (स्रुवा आदि) अर्पण करता हूँ वह ब्रह्म है, जिसमें अर्पण करता हूँ वह भी ब्रह्म है, जो अर्पण है वह भी ब्रह्म है। इस प्रकार ब्रह्म कर्म में जिसका चित्त एकाग्र हो जाता है, वही ब्रह्म को प्राप्त करता है ।

हरि०–मन्त्रमेवाह ब्रह्मार्पणमिति ।।२१४।।

सप्तधा व त्रिधा जप्त्वा तानि सर्वाणि शोधयेत् ।।२१५।।

पद्मा–इस मन्त्र का तीन बार अथवा सात बार जप कर मद्यादि सभी तत्त्वों का शोधन करे।

हरि०–**सप्तधेति**। इस इमं त्रिधा वा जप्त्वा सर्वाणि तानि मद्यादीनि शोधयेत् ।।२१५।।

ततो ब्राह्मेण मनुना समर्प्य परमात्मने ।
ब्रह्मज्ञैः साधकैः सार्द्धं विदध्यात् पानभोजनम् ।।२१६।।

पद्मा–इसके पश्चात् ''**ॐ सच्चिदेकं ब्रह्म**'' इस ब्रह्म मन्त्र से उन समस्त तत्त्वों को परमात्मा को समर्पित कर ब्रह्मज्ञानी साधकों के सहित एक साथ भोजन पान करे।।२१६।।

हरि०–ब्राह्मेण मनना ओं सच्चिदेकं ब्रह्मेति मन्त्रेण।।२१६।।

ब्रह्मचक्रे महेशानि ! वर्णभेदः विवर्जयेत् ।
न देशकालनियमो न पात्रनियमस्तथा ।।२१७।।
ये कुर्वन्ति नरा मूढा दिव्यचक्रे प्रमादतः ।
कुलभेदं वर्णभेदं ते गच्छन्त्यधमां गतिम् ।।२१८।।

अतः सर्वप्रयत्नेन ब्रह्मज्ञैः साधकोत्तमैः ।।
तत्त्वचक्रमनुष्ठेयं धर्मकामार्थमुक्तये ।।२१९।।

पद्मा–हे महेशानि ! इस ब्रह्मचक्र मे वर्णभेद को त्याग दे। इसमें न तो देशकाल का नियम है और नहीं पात्र का नियम है। जो मूढ़ व्यक्ति इस दिव्यचक्र में प्रमादवश कुलभेद तथा वर्णभेद करते हैं उन्हें अत्यन्त ही अधम गति प्राप्त होती है। इसलिए ब्रह्मज्ञ तथा श्रेष्ठ साधक धर्म, अर्थ, काम व मोक्ष के लिए सभी प्रयत्न करके तत्त्वचक्र का अनुष्ठान करे।

हरि०–ब्रह्मचक्रे तत्त्वचक्रे ।।२१७-२१९।।

श्री देव्युवाच

गृहस्थानामशेषेण धर्मानकथयत् प्रभो ।
संन्यासविहितात् धर्मान् कृपया वक्तुमर्हसि ।।२२०।।

पद्मा–श्रीदेवी ने कहा-हे प्रभो ! आपने गृहस्थों के धर्म को विस्तार से बताया है। अब कृपया संन्यास धर्म के विषय में कहिए।

हरि०–एवमशेषान् गृहस्थ धर्मान् श्रुत्वा अधुना सन्यासिधर्मान् श्रोतुमिच्छन्ती श्रीदेव्युवाच गृहस्थानामित्यादि।।२२०।।

श्रीसदाशिव उवाच

अवधूताश्रमौ देवि ! कलौ संन्यास उच्यते ।
विधिना येन कर्तव्यस्तत् सर्वं शृणु साम्प्रतम् ।।२२१।।

पद्मा–श्रीसदाशिव ने कहा-हे देवि! कलियुग मे अवधूताश्रम को ही संन्यास कहते हैं। जिस विधि से संन्यासाश्रम का कर्तव्य करना चाहिए, वह सब सुनो।

हरि०–एवं प्रेरितः सन् श्रीसदाशिव उवाच अवधूतेत्यादि। तत् विधानम् साम्प्रतमिदानीम् ।।२२१।।

ब्रह्मज्ञाने समुत्पन्ने विरते सर्वकर्मणि ।
अध्यात्मविद्यानिपुणः संन्यासाश्रममाश्रयेत् ।।२२२।।
विहाय वृद्धौ पितरौ शिशुं भार्यां पतिव्रताम् ।
त्यक्त्वाऽसमर्थान् बन्धूंश्च प्रव्रजन्नारकी भवेत् ।।२२३।।
ब्राह्मणः क्षत्रियो वैश्यः शूद्रः सामान्य एव च ।
कुलावधूतसंस्कारे पञ्चानामधिकारिता ।।२२४।।

पद्मा–जब ब्रह्मज्ञान उत्पन्न हो जाय तो सभी काम्य कर्मों को त्याग कर अध्यात्मविद्यानिपुण मनुष्य सन्यासाश्रम को स्वीकार करें। वृद्ध माता-पिता शिशु, पतिव्रता, पत्नी, असमर्थ बन्धुओं को त्याग कर जो संन्यास ग्रहण करता है, वह नरकगामी होता है। कुलावधूत संस्कार में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र तथा सामान्य जाति इन सभी पाँचों वर्णों को अधिकार है।

हरि०–सन्यासग्रहणविधानमेत्राह ब्रह्मज्ञाने इत्यादिभि:। अध्यात्मविद्यानिपुण: आत्मविद्याभिज्ञ:।।२२२-२२४।।

सम्पाद्य गृहकर्माणि परितोष्याऽपरानपि ।
निर्ममो निलयाद्गच्छेन्निष्कामो विजितेन्द्रिय: ।।२२५।।

पद्मा–साधक गृहस्थी के सभी कर्म कर आत्मीय स्वजनों को सन्तुष्ट कर, ममता एवं कामना रहित तथा जितेन्द्रिय होकर घर से बाहर निकले ।

हरि०–**सम्पाद्य साधयित्वा** । अपरान् पित्रादिभिन्नान् । निर्मम: गृहादिविषयममताशून्य: निलयात् गृहात् ।।२२५।।

आहूय स्वजनान् बन्धून् ग्रामस्थान् प्रतिवासिन: ।
प्रीत्याऽनुमतिमन्विच्छेत् गृहाज्जिगमिषुर्जन: ।।२२६।।

पद्मा–जो मनुष्य गृहस्थाश्रम को छोड़कर जाना चाहे, वह अपने स्वजन बन्धुओं तथा गाँव के निवासियों को बुलाकर प्रेमपूर्ण मन से अनुमति देने की प्रार्थना करे ।

हरि०–अनुमतिमन्विच्छेत् अनुज्ञामादद्यात् ।।२२६।।

तेषामनुज्ञामादाय प्रणम्य परदेवताम् ।
ग्रामं प्रदक्षिणीकृत्य निरपेक्षो गृहादियात् ।।२२७।।

पद्मा–फिर उन सभी की आज्ञा लेकर अभीष्ट देवता को प्रणाम कर ग्राम की प्रदक्षिणा कर निरपेक्ष भाव से घर से निकले ।

हरि०–**निरपेक्ष: निष्पृह:**। इयात् गच्छेत् ।।२२७।।

मुक्त: संसार पाशेभ्य: परमानन्दनिर्वृत: ।
कुलावधूतं ब्रह्मज्ञं गत्वा संप्रार्थयेदिदम् ।।२२८।।

पद्मा–संसार बन्धन से मुक्त होकर परमानन्द से सुखी होकर कुलावधूत ब्रह्मज्ञ पुरुष के समीप जाकर प्रार्थना करे ।।२२८।।

हरि०–परमानन्दनिर्वृत: परमानन्दे निमग्न:।।२२८।।

गृहाश्रमे परब्रह्मन्! ममैतद्विगतं वय: ।
प्रसादं कुरु मे नाथ संन्यासग्रहणं प्रति ।।२२९।।

पद्मा–हे परब्रह्मन् ! गृहस्थाश्रम में मेरी इतनी आयु बीती है। हे नाथ ! मैं इस समय संन्यासग्रहण करने के लिए उपस्थित हुआ हूँ, मुझ पर प्रसन्न हों ।

हरि०–यत् प्रार्थयेत् तदाह गृहाश्रमे इत्यादिना।।२२९।।

निवृत्तगृहकर्माणं विचार्य विधिवद्गुरु: ।
शान्तं विवेकिनं वीक्ष्य द्वितीयाश्रममादिशेत् ।।२३०।।

पद्मा–श्रीगुरुदेव विचार कर गृहस्थाश्रम से निवृत्त उस व्यक्ति को शास्त्र व विवेक युक्त देखकर द्वितीयाश्रम (सन्यासाश्रम) में प्रवेश का आदेश दें ।

हरि०–शान्तम् उपरतचित्तम् ॥२३०॥

ततः शिष्यः कृतस्नानो यतात्मा विहिताह्निकः ।
ऋणत्रयविमुक्त्यर्थं देवर्षीनर्चयेत् पितॄन् ॥२३१॥

पद्मा–तब शिष्य स्नान कर संयातमा होकर आह्निक कर्म कर तीन ऋणों से मुक्त होने के लिये देवताओं, ऋषियों तथा पितरों का तर्पण करे ।

हरि०–तत इति। ततः परं यतात्मा संयतमनाः शिष्यः कृतस्नानो विहिताह्निकश्च भूत्वा ऋणत्रयविमुक्त्यर्थं देवर्षीन् देवान ऋषीन् पितॄंश्चार्चयेत् पूजयेत् ॥२३१॥

देवा ब्रह्मा च विष्णुश्च रुद्रश्च स्वगणैः सह ।
ऋषयः सनकाद्याश्च देवब्रह्मर्षयस्तथा ॥२३२॥

पद्मा–देवतागण, ब्रह्मा, विष्णु, अनुचरों सहित रुद्र, सनक, सनन्दन, सनातनादि ऋषिगण, नारदादि देवर्षिगण, भृगु आदि ब्रह्मर्षिगण ।

हरि०–ऋणविमुक्त्यर्थं ये देवा ऋषयश्च पूज्यास्तानाह देवा इत्यादिना। ब्रह्मा च विष्णुश्च स्वगणैः सह रुद्रश्चैते देवाः सन्यासकर्मणि पूज्याः। सनक आद्यो येषां ते सनकाद्याः सनकसनन्दनसनातनाद्याः सनकसजातीया ऋणयः तथा देवर्षयो नारदादयो ब्रह्मर्षयो भृग्वादयश्च पूज्याः॥२३२॥

अत्र ये पितरः पूज्या वक्ष्यामि शृणु तानपि ॥२३३॥

पद्मा–यहाँ जो पितर सन्यास ग्रहण करते समय पूज्य है। उन सबको कहता हूँ। सुनो।

हरि०–अत्र संन्यासकर्मणि॥२३३॥

पिता पितामहश्चैव प्रपितामह एव च ।
माता पितामही देवि! तथैव प्रपितामही ।
मातामहादयोऽप्येवं मातामह्यादयोऽपि च ॥२३४॥

पद्मा–हे देवि! पिता, पितामह (दादा) पितामही (दादी) प्रपितामह (परदादा) प्रपितामही (परदादी) मातामह (नाना) मातामही (नानी) प्रमातामह (परनाना) प्रमातामही (परनानी) वृद्धप्रमातामह (सरनाना) वृद्धप्रमातामही (सरनामी) की पूजा करे ।

हरि०–ऋणविमुक्त्यर्थं पूज्यान् पितॄनेवाह पितेत्यादिना सार्द्धेना। एवं पित्रादिवन्मातामहादयोऽपि पूज्याः एवमन्वयः। आदिना प्रमातामहवृद्धप्रमातामहयोः प्रमातामहीवृद्धप्रमातामह्योश्च ग्रहणम् ॥२३४॥

प्राच्यामृषीन् यजेद्देवान् दक्षिणस्यां पितॄन् यजेत् ।
मातामहान् प्रतीच्याञ्च पूजयेन्न्यासकर्मणि ॥२३५॥

पद्मा–संन्यास लेने के समय पूर्व दिशा में देवगण एवं ऋषिगणों की पूजा करे॥ दक्षिण दिशा में पितृगणों की पूजा करे और पश्चिम दिशा में मातामहादि की पूजा करे ।

हरि०–ननु कस्यां कस्यां दिशि देवानृषीन् पितॄंश्च पूजयेदित्यपेक्षायामाह प्राच्यामित्यादि।

संन्यासकर्मणि देवानृषींश्च प्राच्यां पूर्वस्यां दिशि यजेत् । प्रतीच्यां पश्चिमायां दिशि मातामहान्मातामहप्रभृतीन् यजेत् पूजयेत् ॥२३५॥

पूर्वादि क्रमतो दद्यादासनानां द्वयं द्वयम् ।
देवादीन् क्रमतस्तत्राऽऽवाह्यपूजां समाचरेत् ।।२३६।।

पद्मा–पूर्वदिशा से प्रारम्भ कर सभी के लिए दो-दो आसन स्थापित करें। इन आसनों पर क्रमपूर्वक देवादि का आवाहन कर पूजन प्रारम्भ करे ।

हरि०–अथ संक्षेपतो देवादीनां पूजाया विधानमाह पूर्वादिक्रमत इत्यादिभिः। पूर्वादिक्रमतः पूर्वादिक्रमेण तिसृषु दिक्ष्वासानानां द्वयं द्वयं दद्यात् तत्रासनानां द्वये द्वये क्रमतो देवादीनावाह्य तेषां पूजां समाचरेत् कुर्यात् ॥२३६॥

समर्च्य विधिवत्तेभ्यः पिण्डान् दद्यात् पृथक्-पृथक् ।
पिण्डप्रदानविधिना दत्त्वा पिण्डं यथाक्रमम् ।
कृताञ्जलिपुटो भूत्वा प्रार्थयेत् पितृदेवताः ।।२३७।।

पद्मा–फिर विधिवत् सभी की पूजा कर पृथक् पृथक् पिण्डदान करे। पिण्डदान की विधि के अनुसार क्रमपूर्वक पिण्डदान कर पितृगण एवं देवगण से हाथ जोड़कर प्रार्थना करे।

हरि०–समर्च्येत्यादि। देवर्षि पितृन् विधिवत् समर्च्य तेभ्यो देवर्षिपितृभ्यः पृथक् पृथक् पिण्डान् विधिवद्दद्यात् । वक्ष्यमाणेन पिण्डप्रदानविधिना देवादिभ्यो यथाक्रमं पिण्डं दत्त्वा कृताञ्जलिपुटो भूत्वा पितृदेवताः प्रार्थयेत् ॥२३७॥

तृप्यध्वं पितरो देवा देवर्षिमातृका गणाः ।
गुणातीतपदे यूयमनृणीकुरुताऽचिरात् ।।२३८।।
इत्यानृण्यमर्थयित्वा प्रणम्य च पुनः पुनः ।।
ऋणत्रयविनिर्मुक्त आत्मश्राद्धं प्रकल्पयेत् ।।२३९।।

पद्मा–हे पितृगण ! हे मातृगण ! हे देवर्षिगण ! मैं गुणातीत पद को जा रहा हूँ। आप मुझे ऋण से मुक्त कर दें। इस प्रकार देव, ऋषि, पितृ तथा मातृगण को बारम्बार प्रणाम कर उनसे अपनी ऋणमुक्ति की प्रार्थना कर तीन ऋण से छूट कर साधक अपना श्राद्ध करे ।

हरि०–किं प्रार्थयेत्तत्राह तृप्यध्वमित्यादि। हे पितरो देवा देवर्षयो मातृगणाश्च यूयं तृप्यध्वं गुणातीत पदे अतिक्रान्तगुणे पदे व्रजन्त मामचिरादतिशीघ्रमेव यूयमनृणी कुरुत॥२३८-२३९॥

पिता ह्यात्मैव सर्वेषां तत्पिता प्रपितामहः ।
आत्मन्यात्मार्पणार्थाय कुर्यादात्मक्रियां सुधीः ।।२४०।।

पद्मा–आत्मा ही सबकी माता, पितामह तथा प्रपितामह है। इसलिए बुद्धिमान् व्यक्ति परमात्मा को आत्म-समर्पण करने के लिए स्वयं का श्राद्ध करे ।

हरि०–आत्मश्राद्ध करणे हेतुं दर्शयन्नाह पिता हीत्यादि। हि यतः सर्वेषामात्मैव पिता तत्पिता पितामहः प्रपितामहश्च स्यात् अतः आत्मनि परमात्मनि आत्मनोऽर्पणार्थाय सुधीर्विद्वान् आत्मक्रियां कुर्यात् ॥२४०॥

उत्तराभिमुखो भूत्वा पूर्ववत् कल्पितासने ।
आवाह्याऽऽत्मपितृन् देवि ! दद्यात् पिण्डं समर्चयन् ।।२४१।।

पद्मा–हे देवि! पूर्ववत् कल्पित आसन पर उत्तर की ओर मुख कर बैठे। अपने पितृगण का आवाहन एवं अर्चन कर पिण्डदान करे ।

हरि०–संक्षेपतः आत्मनश्च श्राद्धस्य विधानमाह उत्तराभिमुख इत्यादिना। आत्मपितृन् आत्मस्वरूपान् पित्रादीन् ॥२४१॥

प्रागग्रान दक्षिणाग्रांश्च पश्चिमाग्रान् यथाक्रमात् ।
पिण्डार्थमास्तरेद्दर्भानुदगग्रान स्वकर्मणि ।।२४२।।
समाप्य श्राद्धकर्माणि गुरुदर्शितवर्त्मना ।
युयुक्षश्चित्तशुद्ध्यर्थमिमं मन्त्रं शतं जपेत् ।।२४३।।

पद्मा–देवगण, ऋषिगण तथा पितृगण के लिए पिण्डदान हेतु यथाक्रमपूर्वक पूर्वाग्र दक्षिणाग्र, पश्चिमाग्र तथा अपने पिण्डदान हेतु कुशों का उत्तर की ओर मुख कर बिछाये। मोक्ष के इच्छुक व्यक्ति गुरु द्वारा बतायी गई पद्धति के अनुसार श्राद्धकर्म कर चित्त शुद्धि के लिये सौ बार त्र्यम्बक मन्त्र (आगे का श्लोक देखें) का जप करें ।

हरि०–**प्रागग्रानिति**। पिण्डार्थे देवर्षिपितृद्देश्यकपिण्डानार्थं यथाक्रमात् क्रमेणैव प्राक् प्राच्यां दिश्यग्राणि येषां तान् प्रागग्रान् दक्षिणाग्रान् पश्चिमाग्रांश्च दर्भान् कुशानास्तरेदाच्छादयेत्। स्वकर्मणि आत्मश्राद्धक्रियायां तु उदक् उदीच्यामग्राणि येषां तथाभूतान् दर्भानास्तरेत् ॥२४२-२४३॥

ह्रीं त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पुष्टिवर्द्धनम् ।
उर्वारुकमिव बन्धनान् मृत्योर्मुक्षीयमाऽमृतात् ।।२४४।।

पद्मा–हम उस त्र्यम्बक शिव की पूजा करते हैं जो पुष्टिकारक एवं सुगन्धि वाला है। जैसे–उर्वारुक (खरबूजा) का फल पक कर अपने आप गिर जाता है उसी प्रकार हम सभी बन्धनों से छूट जाँय तथा अन्त में मुक्त हो कर परमात्मा में लय हो जाय ।

हरि०–तमेवमन्त्रमाह ह्रीं त्र्यम्बकमित्यादिकम् ॥२४४॥

उपासनानुसारेण वेद्यां मण्डलपूर्वकम् ।
संस्थाप्य कलशं तत्र गुरुः पूजां समारभेत् ।।२४५।।

पद्मा–इसके पश्चात् श्रीगुरुदेव उपासना के अनुसार वेदी पर मण्डल बना कर उसके ऊपर कलश स्थापित करे। इसके साथ ही पूजा का प्रारम्भ करे ।

हरि०–**उपासनेत्यादि**। ततः उपासनाया अनुसारेण रचितायां वेद्यां मण्डलपूर्वकं कलशं संस्थाप्य तत्र कलशे शिष्यस्येष्टदेवतायाः पूजां गुरुः समारभेत् ॥२४५॥

ततस्तु परमं ब्रह्म ध्यात्वा शाम्भववर्त्मना ।
विधाय पूजां ब्रह्मज्ञो वह्निस्थापनमाचरेत् ।।२४६।।

पद्मा–इसके पश्चात् ब्रह्मज्ञानी मनुष्य परब्रह्म का ध्यान कर शिव के बताये गये विधान के अनुसार पूजा कर अग्नि स्थापन करे।

हरि०–ततस्त्विति। ततस्तु शिष्येष्टदेवतापूजनादनन्तरं तु ब्रह्मज्ञो गुरुः परमं ब्रह्मध्यात्वा शाम्भववर्त्मना तस्य पूजां च विधाय वेद्या वह्निस्थापनमाचरेत् कुर्यात् ।।२४६।।

प्रागुक्तसंस्कृते वह्नौ स्वकल्पोक्ताहुतिं गुरुः।
दत्त्वा शिष्यं समाहूय साकल्यं हावयेत्तु तम् ।।२४७।।

पद्मा–इसके पश्चात् श्रीगुरुदेव पूर्वोक्त संस्कार की गयी अग्नि में स्वकल्पोक्त आहुतियाँ प्रदान कर शिष्य को बुलाकर साकल्य होम कराये।

हरि०–प्रागुक्तेत्यादि। ततः प्रागुक्तेन विधिना संस्कृते वह्नौ स्वकल्पोक्ताहुतिं स्वस्वकल्पे उक्तामाहुतिं दत्त्वा गुरुस्तं शिष्यं समाहूय तेन साकल्यमग्नौ हावयेत् ।।२४७।।

आदौ व्याहृतिभिर्हुत्वा प्राणहोमं प्रकल्पयेत् ।
प्राणापानौ समानश्चोदानव्यानौ च वायवः ।।२४८।।

पद्मा–सर्वप्रथम महाव्याहृति होम कर प्राणादि पञ्चवायु का होम करे। प्राण, अपान, समान, उदान, व्यान-यही पञ्च प्राणवायु हैं।

हरि०–आदाविति। आदौ प्रथमतो भूरादिभिर्व्याहृतिभिः साकल्यं हुत्वा ततः प्राणहोमं शरीरस्थप्राणादिपञ्चवायुहोमं प्रकल्पयेत् कुर्यात्। होतव्यान् प्राणादीन् पञ्चवायूनाह प्राणेत्याधर्द्धेन ।।२४८।।

तत्त्वहोमं ततः कुर्याद्देहात्माध्यासमुक्तये ।
पृथिवी सलिलं वह्निर्वायुराकाशमेव च ।।२४९।।

पद्मा–इसके पश्चात् देह को आत्मा समझने का जो भ्रम है उसे हटाने के लिए तत्त्वहोम करे। पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु तथा आकाश।

हरि०–तत्त्वेति । ततः परं देहात्माध्यासमुक्तये शरीरनिष्ठात्मत्वज्ञानविमुक्त्यर्थं यथाक्रमं तत्त्वहोमं पृथ्वीजलादिचतुर्विंशतितत्त्वहवनं कुर्यात्। क्रमणैव हवनीयानि चतुर्विंशतितत्त्वान्येवाह पृथिवीत्यादिनाऽहङ्कार इत्यन्तेन किञ्चिदधिकेन सपादद्वयेन ।।२४९।।

गन्धो रसश्च रूपश्च स्पर्शः शब्दोयथाक्रमात ।
ततो वाक्पणिपादाश्च पायूपस्थौ ततःपरम् ।।२५०।।
श्रोतं त्वङ्नयनं जिह्वा घ्राणं बुद्धीन्द्रियाणि च ।
मनो बुद्धिश्च चित्तञ्चाहङ्कारो देहजाः क्रियाः ।।२५१।।

पद्मा–गन्ध, रस, रूप, स्पर्श, शब्द,वाक् पाणि, पाद, वायु, उपस्थ, कान, त्वक्

नयन, जिह्वा, घ्राण यह सभी ज्ञानेन्द्रिय हैं। मन, बुद्धि एवं अहंकार देह के सभी कार्य हैं।

हरि०–गन्ध इत्यादि। पृथिव्यादिपञ्चतत्त्वहवनानन्तरं गन्धादिपञ्चतत्त्वानि यथाक्रमात् होतव्यानि। ततो वागादिपञ्चकर्मेन्द्रियाणि हवनीयानि। तत परं श्रोत्रादीनि पञ्चबुद्धीन्द्रियाणि होतव्यानि । ततोमन आदीनि चत्वारि तत्त्वानि हवनीयानि। ततो देहजा: क्रिया: होतव्या: ।

सर्वाणीन्द्रियकर्माणि प्राणकर्माणि यानि च ।।२५२।।

पद्मा–सभी इन्द्रियों के समस्त कर्म तथा प्राणों के समस्त कार्य ।

हरि०–सर्वाणीति । ततः सर्वाणीन्द्रियकर्माणि यानि च प्राण कर्माणि तान्यपि हवनीयानि।।२५२।।

एतानि मे पदान्ते च शुद्धयन्तां पदमुच्चरेत् ।
ह्रीं ज्योतिरहं विरजा विपाप्मा भूयासमित्यपि ।।२५३।।

पद्मा–इन सभी पदों का उच्चारण कर 'मे शुद्धयन्तां (मेरे शुद्ध हों)' पद का उच्चारण करे। तत्पश्चात् **ह्रीं ज्योतिरहं विरजा विपाप्मा भूयासम् स्वाहा** (मैं ज्योतिस्वरूप होऊं, रज एवं पापरहित होऊं) का उच्चारण करे ।

सम्पूर्ण मन्त्र इस प्रकार होगा–**प्राणापानसमानोदानव्याना मे शुद्धयन्तां ह्रीं ज्योतिरहं विरजाविपाप्मा भूयांस स्वाहा** । इसी प्रकार सभी स्थानों पर योजना करे ।

हरि०–प्राणादिपञ्चवायूनां पृथिव्यादिचतुर्विंशतितत्त्वानां देहजक्रियाणां सर्वेन्द्रिय कर्मणां प्राणादिवायुकर्मणाञ्च होमस्य मन्त्रमाह एतानीत्यादिना। पूर्व एतानि मे इत्युच्चरेत्। तत्पदान्ते च शुद्धयन्तामिति पदमुच्चरेत् । ततो ह्रीं ज्योतिरहं विरजा विपाप्मा भूयासमित्युच्चरेत् । ततो द्विठः स्वाहेत्युच्चरेत् । योजनया एतानि मे शुद्धयन्ता ह्रीं ज्योतिरहं विरजा विपाप्मा भूयासं स्वाहेति मन्त्रो जातः। अनेनैव प्राणादीनि प्राणकर्मपर्यन्तानि सर्वाणि जुहुयात् । यथा प्राणावानसमानोदानत्याना मे शुद्धयन्तां ह्रीं विरजा विपाप्मा भूयांस स्वाहेति प्राणादीन् जुहुयादिति। एवं सर्वत्र योजना।।२५३।।

चतुर्विंशतितत्त्वानि कर्माणि दैहिकानि च ।
हुत्वाऽग्नौ निष्क्रियो देहं मृतवच्चिन्तयेत्ततः ।।२५४।।

पद्मा–इस प्रकार से साधक २४ तत्त्वों तथा दैहिक कर्मों को अग्नि में होमकर निष्क्रिय होकर अपने शरीर को मरा हुआ जाने ।

हरि०–चतुर्विंशतीत्यादि। एवं चतुर्विंशतितत्त्वानि दैहिकानि कर्माणि चाग्नौ हुत्वा निष्क्रियः क्रियाभ्यश्च निष्क्रान्तो भूत्वा ततो देहं मृतवच्चिन्तयेत् ।।२५४।।

विभाव्य मृतवत् कायं रहितं सर्वकर्मणा ।
स्मरंस्तत् परमं ब्रह्म यज्ञसूत्रं समुद्धरेत् ।।२५५।।

पद्मा–अपनी देह को मृतवत् तथा सभी कर्मरहित भावना कर परमब्रह्म को स्मरण करता हुआ गले के यज्ञसूत्र को निकाल ले ।

हरि०–विभाव्येति। सर्वकर्मणा रहितं मृतवच्च स्वायं देहं विभाव्य विचिन्त्य तत् जगत्कारणत्वेनातिप्रसिद्धं परमं ब्रह्म स्मरन् सन् यज्ञसूत्रं यज्ञोपवीतं समुद्धरेत् उरः स्थलात् स्कन्धनयेत् ॥२५५॥

ऐं क्ली हूं इति मन्त्रेण स्कन्धादुत्तार्य तत्त्ववित् ।
यज्ञसूत्रं करे कृत्वा पठित्वा व्याहृतित्रयम् ।
वह्निजायां समुच्चार्य घृताक्तमनले क्षिपेत् ।।२५६।।

पद्या–इसके उपरान्त तत्त्वज्ञ पुरुष ऐं क्ली हूं मन्त्र को पढ़ता हुआ यज्ञसूत्रको कन्धे से उतारकर अपने हाथों में धारण करे तथा व्याहृतित्रय के अन्त में स्वाहा का उच्चारण करते हुए उस यज्ञोपवीत को घी से लिप्त कर अग्नि में डाल दे ।

हरि०–ऐमित्यादि। ततः तत्त्ववित् ब्रह्मविज्जनः ऐं क्लीं हूमिति मन्त्रेण यज्ञसूत्रं स्कन्धादुत्तार्य करे हस्ते च कृत्वा व्याहृतित्रयं पठित्वा व्याहृतित्रयान्ते च वह्निजायां स्वाहेति पदं समुच्चार्य घृताक्तं घृतसंयुक्तं यज्ञसूत्रमनलेऽग्नौ क्षिपेत् ॥२५६॥

हुत्वैवमुपवीतञ्च कामबीजं समुच्चरन् ।
छित्वा शिखां करे कृत्वा घृतमध्ये नियोजयेत् ।।२५७।।

पद्या–इसी प्रकार यज्ञोपवीत का होम कर काम बीज क्लीं का उच्चारण करते हुए शिखा को हाथ में लेकर घी के बीच में स्थापित करे ।

हरि०–हुत्वेति। एवं प्रकारेणोपवीतं यज्ञसूत्रमग्नौ हुत्वा कामबीजं क्लीमिति बीजं समुच्चरन् सन् शिखां छित्वा करे च कृत्वा घृतमध्ये नियोजयेत् स्थापयेत् ॥२५७॥

ब्रह्मपुत्रि शिखे त्वं हि बालरूपा तपस्विनी ।
दीयते पावके स्थानं गच्छ देवि नमोऽस्तुते ।।२५८।।
कामं मायां कूर्चमन्त्रं वह्निजायामुदीरयन् ।
तस्मिन् सुसंस्कृते वह्नौ शिखाहोमं समाचरेत् ।।२५९।।
शिखामाश्रित्य पितरो देवा देवर्षयस्तथा ।
सर्वाण्याश्रमकर्माणि निवसन्ति शिखोपरि ।।२६०।।

पद्या–फिर यह मन्त्र पढ़ें–हे ब्रह्मपुत्रि ! हे शिखे ! तुम केशरूपा तपस्विनी हो। हे देवि! तुम्हें अग्नि में स्थान देता हूँ। तुम जाओ तुम्हें नमस्कार है। **क्लीं ह्रीं हूं फट् स्वाहा** मंत्र पढ़कर संस्कारित अग्नि में शिखा का होम करो, पितृगण, देवगण तथा देवर्षिगण एवं समस्त आश्रमों के सम्पूर्ण कर्म शिखा पर ही आधारित हैं ।

हरि०–ब्रह्मेति। ततो ब्रह्मपुत्रि इत्याद्यं नमोऽस्तुते इत्यन्तं मन्त्रमुदीरयन् एतन्मन्त्रान्ते च कामं क्लीमितिमायां ह्रीमिति कूर्चं हूमिति अस्त्रं फडिति वह्निजायां स्वाहेति च बीजं कीर्त्तयन् तस्मिन् सुसंस्कृते वह्नौ शिखाया होमंसमाचरेत् कुर्यात् ॥२५८-२६०॥

अतः सन्तर्प्य ताः सर्वा देवर्षि पितृदेवताः ।
शिखासूत्रपरित्यागाद्देही ब्रह्ममयो भवेत् ।।२६१।।

पद्मा–इसलिए देव, ऋषि, पितृ, देवगण, सब का तर्पण करके देही शिखा तथा यज्ञोपवीत को त्यागते ही ब्रह्ममय हो जाता है ।

हरि०–ब्रह्ममयो ब्रह्मस्वरूपः ।।२६१।।

यज्ञसूत्रशिखात्यागात् संन्यासः स्यात् द्विजन्मनाम् ।
शूद्राणामितरेषाञ्च शिखा हुत्वैव संस्क्रियाः ।।२६२।।
ततो मुक्तशिखासूत्रः प्रणमेत् दण्डवद्गुरुम् ।
गुरुरुत्थाप्य तं शिष्यं दक्षकर्णे वदेदिदम् ।।२६३।।

पद्मा–यज्ञसूत्र एवं शिखा के त्याग से ही द्विजों का संन्यास होता है। शूद्र एवं अन्य जातियों का संन्यास संस्कार केवल शिखा के होम से होता है। शिखासूत्र को त्यागने के उपरान्त गुरुदेव को दण्डवत् प्रणाम करे। शिष्य को उठाकर गुरु उसके कान में इस मन्त्र को कहे ।

हरि०–द्विजन्मनाम् ब्राह्मणक्षत्रियवैश्यानाम् इतरेषाम् वर्णसङ्कराणाम् ।।२६२-२६३।।

तत्त्वमसि महाप्राज्ञः हंसः सोऽहं विभावय ।
निर्ममो निरहङ्कारः स्वभावेन सुखं चर ।।२६४।।

पद्मा–हे महाप्राज्ञ! वह ब्रह्म तुम ही हो। तुम हंसः और सोऽहं की भावना करो। तुम अहंकार तथा ममतारहित होकर अपने शुद्धभाव में सुख से विचरण करो ।

हरि०–ननु गुरुः शिष्यस्य दक्षिणे कर्णे किं वदेदित्यपेक्षायामाह तत्त्वमसीत्यादिं हे महाप्राज्ञ महामनीषिन् तत् जगत्कारणत्वेनातिप्रसिद्धं परं ब्रह्म त्वमेवासि अतोऽहमेव स परमात्मा स एवाहमस्मीति त्वं विभाव्य विचिन्त्य किञ्च निर्ममः पुत्रादिविषयकममताशून्यो निरहङ्कारो विधादिविषयनिमित्तकचित्तसमुन्नतिशून्यश्च सन् स्वभावेन सुखं यथा स्यात्तथा चर इतस्ततो गच्छ। अहमित्यास्यादेर्लोपस्त्वार्षः ।।२६४।।

ततो घटञ्च वह्निञ्च विसृज्य ब्रह्मतत्त्ववित् ।
आत्मस्वरूपं तं मत्वा प्रणमेच्छिरसा गुरुः ।।२६५।।

पद्मा–इसके पश्चात् ब्रह्मज्ञानी गुरुदेव घट एवं अग्नि का विसर्जन कर शिष्य को आत्मस्वरूप मानकर उसे सिर झुकाकर प्रणाम करे ।

हरि०–**तत इति**। ततः परं घटं वह्निञ्च विसृज्य ब्रह्मतत्त्वविद् गुरुस्तं शिष्यमात्मस्वरूपं मत्वा वक्ष्यमाणमन्त्रेण शिरसा प्रणमेत् ।।२६५।।

नमस्तुभ्यं नमो मह्यं तुभ्यं मह्यं नमो नमः ।
त्वमेव तत् तत्त्वमेव विश्वरूपं नमोऽस्तु ते ।।२६६।।

पद्मा–तुम्हें नमस्कार है, मुझे नमस्कार है। तुम्हें तथा मुझे बारम्बार नमस्कार है। हे

विश्वरूप ! तुम ही यह जगत् हो तथा यह जगत् ही तुम हो, तुम्हें नमस्कार है ।

हरि०–येन मन्त्रेण प्रणमेत तमेव मन्त्रमाह नमस्तुभ्यमित्यादिकम् ॥२६६॥

ब्रह्ममन्त्रोपासकानां तत्त्वज्ञानां जितात्मनाम् ।
स्वमन्त्रेण शिखाच्छेदात् संन्यासग्रहणं भवेत् ॥२६७॥

पद्मा–ब्रह्ममंत्र के उपासक तत्त्वज्ञानयुक्त तथा जितेन्द्रिय साधक अपने मन्त्र का पाठ कर शिखा को काटें तो यह उनका संन्यास ग्रहण करना होगा ।

हरि०–ब्रह्ममन्त्रोपासकानां तु संन्यासग्रहणे विशेषविधिमाह ब्रह्ममन्त्रेत्यादिना। तत्त्वज्ञानां ब्रह्मज्ञानिनां जितमनसां ब्रह्ममन्त्रोपासकानां स्वमन्त्रेण शिखाच्छेदादेव संन्यासग्रहणं भवेत् ॥२६७॥

ब्रह्मज्ञानविशुद्धानां किं यज्ञैः श्राद्धपूजनैः ।
स्वेच्छाचारपराणां तु प्रत्यवायो न विद्यते ॥२६८॥

पद्मा–जो मनुष्य ब्रह्मज्ञान से शुद्ध हुए हैं, उनको यज्ञ, पूजा तथा श्राद्धादि करने की कोई आवश्यकता नहीं है। यदि स्वेच्छापरायण भी हो तो कोई अनुचित नहीं है ।

हरि०–ननु यज्ञश्राद्धादिकमकृत्वैव संन्यासं गृह्णतां ब्रह्ममन्त्रोपासकानां प्रत्यवायभागित्वं स्यात्तत्राह ब्रह्मज्ञानेत्यादि॥२६८॥

ततो निर्द्वन्द्वरूपोऽसौ निष्कामस्थिरमानसः ।
विहरेत् स्वेच्छया शिष्यः साक्षाद् ब्रह्ममयो भुवि ॥२६९॥

पद्मा–इसके उपरान्त शिष्य सुखदुःखादि रूप द्वन्द्वों से रहित, कामनाविहीन स्थिरचित्त तथा साक्षात् ब्रह्ममय होकर स्वेच्छापूर्वक पृथिवीलोक में विचरण करे ।

हरि०–निर्द्वन्द्वरूपः सुखदुःखादियुगलानि द्वन्द्वानि तद्रहितो निर्द्वन्द्वस्तत्स्वरूपः॥२६९॥

आब्रह्मस्तम्बपर्यन्तं सद्रूपेण विभावयन् ।
विस्मरन्नामरूपाणि ध्यायन्नात्मानमात्मनि ॥२७०॥

पद्मा–वह ब्रह्मसे तृणगुच्छ तक समस्त विश्व को सत् स्वरूप समझे। नामरूप को भूलकर आत्मा से आत्मा में ध्यान करे ।

हरि०–आब्रह्मस्तम्बपर्यन्तं ब्रह्मारभ्य तृणादिगुच्छपर्यन्तं सद्रूपेण सत्यरूपेण विभावयन् विचिन्तयन् ॥२७०॥

अनिकेतः क्षमावृत्तो निःशङ्कः सङ्गवर्जितः ।
निर्ममो निरहङ्कारः संन्यासी विहरेत् क्षितौ ॥२७१॥

पद्मा–आवासरहित, क्षमाशील, शंकारहित, किसी का साथ किये बिना, ममताहीन अहंकाररहित होकर संन्यासी भूमण्डल में विचरण करे ।

हरि०–**अनिकेत इत्यादि**। अनिकेतः नियतवासशून्यः। क्षमावृत्तः क्षमैव वृत्तं यस्य सः। निःशङ्कः उद्वेगरहितः। सङ्गवर्जितः क्वचिदप्यनासक्तः॥२७१॥

मुक्तो विधिनिषेधेभ्यो निर्योगक्षेम आत्मवित् ।
सुखदुःखसमो धीरो जिवात्मा विगतस्पृहः ।।२७२।।

पद्मा–वह शास्त्रीय विधि-विधानों तथा निषेधों से रहित होगा। वह प्राप्त विषय की रक्षा तथा अप्राप्य विषय के पाने की चेष्टा नहीं करेगा। वह सुख-दुख में समान, धैर्यशील, जितेन्द्रिय तथा इच्छाहीन रहे ।

हरि०–मुक्त इत्यादि। निर्योगक्षेमः अप्राप्तस्वीकारो योगः प्राप्तपरिरक्षणं क्षेमः ताभ्यां रहितः। सुखदुःखसम, सुख-दुःख समे य यस्य सः। जितात्मा जितदेहः। विगतस्पृहः उच्चावचेषु दृष्टमात्रेषु वस्तुषु इतस्ततो जिघृक्षास्पृहाः विगता स्पृहा यस्य सः॥२७२॥

स्थिरात्मा प्राप्तदुःखोऽपि सुखे प्राप्तेऽपि निष्पृहः।
सदानन्दः शुचिः शान्तो निरपेक्षो निराकुलः ।।२७३।।

पद्मा–दुःख होने पर भी अपना अन्तःकरण स्थिर रखे। सुख होने पर भोगों की इच्छा न करे। सदा आनन्दयुक्त, पवित्र, शान्त, निरपेक्ष तथा आकुलतारहित रहे।

हरि०–स्थिरेत्यादि। स्थिरात्मा स्थिरचित्तः स्थिरस्वभावो वा। निष्पृहः भोगाकाङ्क्षाशून्यः शुचि। ब्राह्याभ्यन्तरशौचसम्पन्नः। शान्तः संयतान्तः करणः । निरपेक्षः परापेक्षारहितः । निराकुलः आकुलताशून्यः॥२७३॥

नोद्वेजकः स्याज्जीवानां सदा प्राणिहिते रतः ।
विगतामर्षभीर्दान्तो निःसङ्कल्पो निरुद्यमः ।।२७४।।

पद्मा–किसी भी मनुष्य को भयभीत न करे। सदैव समस्त प्राणियों के कल्याण में लगा रहे। क्रोध, भय, सङ्कल्प तथा उद्यम शून्य रहे ।

हरि०–नेत्यादि नोद्वेजकः न भीतिजनकः। विगतामर्षभीः अपगतक्रोधभयः दान्तः संयतवाह्येन्द्रियः। निरुद्यमः स्वदेह निर्वाहार्थव्यापार शून्यः॥२७४॥

शोकद्वेषविमुक्तः स्यात् शत्रौ मित्रे समो भवेत् ।
शीतवातातपसहः समो मानापमानयोः ।।२७५।।

पद्मा–शोकद्वेष से शून्य रहे। शत्रुमित्र को समान समझे। शीत, वात, आतप आदि के कष्ट सहने में सामर्थ्यवान बने ।

हरि०–शोकेत्यादि। शत्रौ मित्रे च समः एकरूपः मानापमानयोरपि समः हर्षविषादः शून्य इत्यर्थः॥२७५॥

समः शुभाशुभे तुष्टेयदृच्छाप्राप्तवस्तुना ।
निस्त्रैगुण्यो निर्विकल्पो निर्लोभःस्यादसञ्चयी ।।२७६।।

पद्मा–शुभ अशुभ में सम रहे। अपने आप प्राप्त होने वाली वस्तुओं से सन्तुष्ट रहे। त्रिगुणातीत (सत्त्व रज, तमादि) से दूर रहे। निर्विकल्प लोभरहित एवं सञ्चयरहित रहे।

हरि०–सम इत्यादि। निस्त्रैगुण्यः त्रयो गुणा यस्मिन् स त्रिगुणः सकामः तस्य

भावस्त्रैगुण्यम् तस्मान्निष्क्रान्तो निस्त्रैगुण्य: निष्काम: इत्यर्थ:। निर्विकल्प: नानाविधकल्पनाशून्य:। निर्लोभ: धनाद्यागमे बहुधा जायमानोऽपि पुनर्वर्द्धमानोऽभिलाषो लोभ: तद्रहित: । असञ्चयी तत्तद्वस्तुसञ्चयाभाववान् ॥२७६॥

यथा सत्यमुपाश्रित्य मृषा विश्वं प्रतिष्ठति ।
आत्माश्रितस्तथा देहो जानन्नेवं सुखी भवेत् ।।२७७।।

पद्मा–संसार मिथ्यास्वरूप होने पर भी जिस प्रकार एकमात्र सत्य स्वरूप परमात्मा का आश्रय लेकर सत्य प्रतीत होता है उसी प्रकार आत्मा का आश्रम लेकर मिथ्याभूत यह शरीर आत्मवत् प्रतीत होता है इसे अनुभव कर संन्यासी सुखी हो ।

हरि०–यथेत्यादि। यथा सत्यं परमात्मानमेवोपश्रित्यावलम्बयमृषा मिथ्याभूतमपि विश्वं प्रतिष्ठति सत्यवदास्ते तथैवात्मानमाश्रितो मिथ्याभूत एव देह: प्रतिष्ठति एवं जानन् संन्यासी सुखी भवेत् ॥२७७॥

इन्द्रियाण्येव कुर्वन्ति स्वं स्वं कर्म पृथक् पृथक् ।
आत्मा साक्षी विनिर्लिप्तो ज्ञात्वैवं मोक्षभाग् भवेत् ।।२७८।।

पद्मा-इन्द्रियाँ ही पृथक् पृथक् अपने-अपने कार्य को करती हैं। आत्मा साक्षी तथा निर्लिप्त है इसे ही जानकर संन्यासी मोक्ष को प्राप्त होता है ।

हरि०–इन्द्रियाणीति । इन्द्रियाण्येव पृथक् पृथक् स्वं स्वं कर्म कुर्वन्ति । आत्मा तु साक्षी केवलं शुभाशुभकर्मणां द्रष्टा भवति। अतएव निर्लिप्त: तत्तत्कर्मभिर्बद्धो न भवति। एवं ज्ञात्वैव संन्यासीमोक्षभाग् भवेत् ॥२७८॥

धातुप्रतिग्रहं निन्दामनृतं क्रीड़नं स्त्रिया ।
रेतस्त्यागमसूयाञ्च संन्यासी परिवर्जयेत् ।।२७९।।
सर्वत्र समदृष्टि: स्यात् कीटे देवे तथा नरे ।
सर्वं ब्रह्मेति जानीयात् परिव्राट् सर्वकर्मसु ।।२८०।।
विप्रान्नं श्वपचान्नं वा यस्मात्तस्मात् समागतम ।
देशं कालं तथा पात्रमश्नीयादविचारयन् ।।२८१।।

पद्मा–संन्यासी धातु द्रव का ग्रहण करना, परनिन्दा, मिथ्या व्यवहार, स्त्रियों के साथ क्रीड़ा, वीर्य का त्याग तथा असूया (ईर्ष्या) को त्याग दे। वह देवता, मनुष्य, एवं कीटादि में सब के प्रति समदर्शी हो। समस्त कर्म समूहरूप संसार को ब्रह्म ही जाने। ब्राह्मण का अन्न हो या चाण्डाल का अन्न हो, जिस किसी भी मनुष्य से प्राप्त हो या कहीं से भी आया हो, उस अन्न को देश, काल तथा पात्रादि का विचार न कर भोजन करे ।

हरि०–अनृतम् अयथार्थ भाषणम् । असूयाम् सत्स्वपि गुणेषु दोषारोपणम् ॥२७९-२८१॥

अध्यात्मशास्त्राध्ययनै: सदा तत्त्वविचारणै: ।
अवधूतो नयेत् कालं स्वेच्छाचारपरायण: ।।२८२।।

पद्मा–अवधूत पुरुष स्वेच्छाचारी होकर भी वेदान्त शास्त्र के अध्ययन तथा आत्मतत्त्व के चिन्तन में सदा अपना समय व्यतीत करे।

हरि०–अध्यात्मशास्त्राध्ययनै वेदान्तशास्त्रपाठैः। तत्त्वविचारणैः ब्रह्मतत्त्वनिर्वेचनैः॥२८२॥

संन्यासिना मृतं कायं दाहयेन्न कदाचन।
सम्पूज्य गन्धपुष्पाद्यैर्निखनेद्वाप्सु मज्जयेत्॥२८३॥

पद्मा–संन्यासियों की मृत देह को कभी जलाए नहीं। इस देह को गन्धपुष्पादि से पूजित कर पृथ्वी में समाहित करे या जल में डूबा दे।

हरि०–निखनेत् शुचौ भूमौ गर्त्तं विधाय तत्रैव निदध्यात्। अप्सु जलेषु॥२८३॥

अप्राप्तयोगमर्त्यानां सदा कामाभिलाषिणाम्।
स्वभावाज्जायते देवि! प्रवृत्तिः कर्मसङ्कुले॥२८४॥

पद्मा–हे देवि! जो मनुष्य योग एवं ब्रह्मज्ञान को प्राप्त कर नहीं पाये है ऐसे कामाभिलाषी लागों की स्वभावतः कर्मकाण्ड में रुचि होती है।

हरि०–अप्राप्तयोगमर्त्यानाम् न प्राप्तो योगो ब्रह्मज्ञानसंवन्धो यैस्तथाभूतानाम् कर्मसङ्कुले कर्मसमूहे॥२८४॥

तत्रापि ते सानुरक्ता ध्यानार्चाजपसाधने।
श्रेयस्तदेव जानन्तु यत्रैव दृढनिश्चयाः॥२८५॥

पद्मा–वे लोग कर्मकाण्ड में अनुरक्त होकर ध्यान, पूजा, जप आदि साधनों में दृढ़ होकर उन्हीं को कल्याणकारी मानते हैं।

हरि०–तत्रापि तत्रैवापि। अप्राप्तयोगमर्त्याः। सानुरक्ताः अनुरागवन्तः। तदेव अर्च्चादिकर्मैव॥२८५॥

अतः कर्मविधानानि प्रोक्तानि चित्तशुद्धये।
नामरूपं बहुविधं तदर्थं कल्पितं मया॥२८६॥
ब्रह्मज्ञानादृते देवि! कर्मसंन्यासनं विना।
कुर्वन् कल्पशतं कर्म न भवेन्मुक्तिभाग जनः॥२८७॥
कुलावधूतस्तत्त्वज्ञो जीवन्मुक्तो नराकृतिः।
साक्षान्नारायणं मत्वा गृहस्थस्तं प्रपूजयेत्॥२८८॥
यतेर्दर्शनमात्रेण विमुक्तः सर्वपातकात्।
तीर्थव्रततपोदानसर्वयज्ञफलं लभेत्॥२८९॥

इति श्रीमहानिर्वाणतन्त्रे सर्वतन्त्रोत्तमोत्तमे सर्वधर्मनिर्णयसारे श्रीमदाद्यासदा-शिवसंवादे वर्णाश्रमाचार-धर्मकथनं नामाष्टमोल्लासः॥८॥

पद्मा–इसलिए मैंने चित्तकी शुद्धि के लिए कर्मकाण्ड का विधान कहा है और मैंने अनेक प्रकार के नाम रूपों की कल्पना की है। हे देवि! ब्रह्मज्ञान तथा कर्मसंन्यास के बिना सौ कल्पों तक भी कर्म करने पर कोई मनुष्य मुक्ति को नहीं प्राप्त कर सकता। ब्रह्मज्ञान सम्पन्न कुलावधूत मनुष्याकार होकर भी जीवन्मुक्त है। गृहस्थ उसको नारायण रूप समझ कर पूजा करते हैं। यति के दर्शन करने मात्र से मनुष्य के सभी पाप दूर हो जाते हैं। दर्शन करने वाले को तीर्थ, तपस्या, व्रत, दान तथा समस्त यज्ञानुष्ठानों का फल प्राप्त होता है।

इस प्रकार महानिर्वाणतन्त्र के वर्णाश्रमाचार धर्मकथन नामक आठवें उल्लास की अजय कुमार उत्तम विरचित पद्मा हिन्दी व्याख्या पूर्ण हुई ।।८।।

हरि०–तदर्थम् अप्राख्योगमर्त्यार्थम् ॥२८६-२८९॥

इति महानिर्वाणतन्त्र टीकायां अष्टमोल्लासः।।८।।

नवमोल्लासः

श्रीसदाशिव उवाच

वर्णाश्रमाचारधर्माः कथितास्तव सुव्रते ।
संस्कारान् सर्ववर्णानां शृणुष्व गदतो ममः ।।१।।
संस्कारेण विना देवि ! देहशुद्धिर्न जायते ।
नासंस्कृतोऽधिकारी स्याद् दैवे पैत्रे च कर्मणि ।।२।।
अतो विप्रादिभिर्वर्णैः स्वस्ववर्णोक्त संस्क्रिया ।
कर्त्तव्या सर्वथा यत्नैरिहामुत्र हितेप्सुभिः ।।३।।

पद्मा–श्रीसदाशिव ने कहा-हे सुव्रते ! सभी वर्णों तथा आश्रमों में आचार तथा धर्म को मैंने तुमसे कहा ।अब सभी वर्णों के संस्कार का वर्णन करता हूँ। उसे सुनो। हे देवि! संस्कार के बिना देह की शुद्धि नहीं होती है। असंस्कृत पुरुष कभी भी दैव तथा पैत्र्य कर्म का अधिकारी नहीं होता। इसलिए विप्रादि सभी वर्णों का कर्तव्य है कि वे यदि लोक-परलोक में हित की कामना करते हैं तो उनको सभी प्रकार से सभी प्रयत्न करके अपने-अपने वर्णों के संस्कार अवश्य करे ।

हरि०– **ॐ नमो ब्रह्मणे।**

श्रीश्रीनाथपदाम्भोजे नियतं मतिरस्तु मे ।

एवमशेषान् वर्णाश्रमाचारधर्मान् कथयित्वेदानीं सर्ववर्णानामखिलान् संस्कारान् विवक्षन् श्रीसदाशिव उवाच वर्णाश्रमेत्यादि गदतो मम कथयन्तो मत्तः।।१-३।।

जीवसेकः पुंसवनं सीमन्तोन्नयनं तथा ।
जातनाम्नी निष्क्रमणमन्नाशनमतः परम् ।
चूडोपनयनोद्वाहाः संस्काराः कथिता दश ।।४।।

पद्मा–गर्भाधन, पुंसवन, सीमन्तोन्नयन, जातकर्म, नामकरण, निष्क्रमण अन्नप्राशन, चूड़ाकरण, उपनयन तथा विवाह–ये दस संस्कार कहे गये हैं ।

हरि०–ब्राह्मणक्षत्रियवैश्यानां जीवसेकादय उद्वाहान्ता दश संस्काराः सन्ति शूद्राणां वर्णसङ्कराणां चोपनयनाख्यसंस्कारवर्जिता जीवसेकादयो नवैव संस्काराः सन्तीत्याह जीवसेक इत्यादिना सार्द्धद्वयेन।।४।।

शूद्राणां शूद्रभिन्नानामुपवीतं न विद्यते ।
तेषां नवैव संस्कारा द्विजातीनां दश स्मृता ।।५।।
नित्यानि सर्वकर्माणि तथा नैमित्तिकानि च ।
काम्यान्यपि वरारोहे ! कुर्याच्छाम्भववर्त्मना ।।६।।

पद्मा–शूद्र तथा शूद्र से भिन्न अन्य साधारण जातियों का उपनयन संस्कार नहीं होता। इसीलिए उनके नौ संस्कार तथा द्विजातियों के दश संस्कार कहे गये हैं। हे वरारोहे!! सभी नित्य, नैमित्तिक तथा काम्य कर्म शैवविधि (शम्भु मार्ग) से करे।

हरि०–शूद्रभिन्नानां वर्णसङ्कराणां। तेषां शूद्राणां शूद्रभिन्नानाञ्च। द्विजातीनां ब्राह्मणक्षत्रिय वैश्यानाम् ॥५-६॥

यानि यानि विधानानि येषु येषु च कर्मसु।
पुरैव ब्रह्मरूपेण तान्युक्तानि मया प्रिये! ॥७॥
संस्कारेषु च सर्वेषु तथैवान्येषु कर्मसु।
विप्रादिवर्णभेदेन क्रमान्मन्त्राश्च दर्शिताः ॥८॥
सत्यत्रेताद्वापरेषु तत्तत्कर्मसु कालिके!।
प्रणवाद्यास्तु तान् मन्त्रान् प्रयोगेषु नियोजयेत् ॥९॥

पद्मा–हे प्रिये! जिस-जिस कर्म में जो जो विधान निर्दिष्ट है वह सब ब्रह्मारूप से मैंने पहले ही प्रकट कर दिये हैं। समस्त संस्कार तथा ब्राह्मणादि वर्णभेदानुसार अन्यान्य मन्त्र मैंने प्रकाशित किए हैं। हे कालिके सत्य-युग, त्रेता और द्वापरयुग में उन-उन सभी कर्मों के अनुष्ठान काल में सर्वप्रथम प्रणव (ॐ) लगाकर मन्त्रों का प्रयोग करे।

हरि०–विधानानि आकाङ्क्षितानीति शेषः॥७-९॥

कलौ तु परमेशानि। तैरेव मनुभिर्नराः।
मायाद्यैः सर्वकर्माणि कुर्युः शङ्करशासनात् ॥१०॥
निगमागमतन्त्रेषु वेदेषु संहितासु च।
सर्वे मन्त्रा मयैवोक्ताः प्रयोगो युगभेदतः ॥११॥
कलावन्नगतप्राणाः मानवा हीनतेजसः।
तेषां हिताय कल्याणि! कुलधर्मो निरूपितः ॥१२॥
कलिदुर्बलजीवानां प्रयासाशक्तचेतसाम्।
संस्कारादिक्रियास्तेषां संक्षेपेणापि वच्मि ते ॥१३॥

पद्मा–हे परमेशानि! शङ्कर के निर्देशानुसार कलियुग में पहले ॐकार के स्थान पर मायाबीज ह्रीं लगाए तथा उन मन्त्रों के द्वारा सभी कर्म करे। निगम, आगम, तन्त्र, वेद तथा संहिता के सभी मन्त्र मेरे द्वारा ही कहे गये हैं। युग भेद से उनके प्रयोग में भेद है। हे कल्याणि! कलियुग के मनुष्यों के प्राण अन्न में रहते हैं इसीलिए वे तेजहीन होंगे। उनके हित के लिए कुलधर्म का निरूपण किया गया है। कलियुग के जीव दुर्बल एवं परिश्रम करने में असमर्थ होंगे। उनके लिए संस्कारादि की क्रिया संक्षेप में तुमसे कहता हूँ।

हरि०–मायाद्यैः माया ह्रीमिति बीजं आद्यं येषां मनूनाम ते तैः॥१०-१३॥

सर्वेषां शुभकार्याणामादिभूता कुशण्डिका ।
तस्मादौ प्रवक्ष्यामि शृणु तां देववन्दिते ! ।।१४।।

पद्मा–हे देववन्दिते ! सभी शुभ कर्मों के प्रारम्भ में कुशकण्डिका की जाती है। इसलिए सर्वप्रथम उसे ही बताता हूँ! सुनो ।।

हरि०–ताम कुशण्डिकाम् ।।१४।।

रम्ये परिष्कृते देशे तुषाङ्गारादिवर्जिते ।
हस्तमात्रप्रमाणेन स्थण्डिलं रचयेत् सुधीः ।।१५।।

पद्मा–तुष अंगारादि से रहित, रमणीय, परिष्कृत स्थान में एक हाथ के परिमाण का स्थण्डिल बनाये ।

हरि०–कुशकण्डिका मेवाह रम्ये इत्यादिभिः। स्थण्डिलम् चत्वरम् ।।१५।।

तिस्रो रेखा विधातव्या प्रागग्रास्तत्र मण्डले ।
कूर्चेनाभ्युक्ष्य ताः सर्वा वह्निना वह्निमाहरेत् ।।१६।।

पद्मा–इसके उपरान्त उस मण्डल के उपरी भाग में तीन रेखाएँ खींचे। उन्हें कूर्च मन्त्र- **'हूँ'** यन्त्र से अभ्युक्षित कर वह्निबीज (रं) से अग्नि लाए ।

हरि०–तिस्र इत्यादि। तत्र मण्डले हस्तमात्र प्रमाणेन रचिते स्थण्डिले प्रागग्रतिस्रो रेखा विधातव्याः। ततः कूर्चेन हूमिति मन्त्रेण ताःरेखा अभ्युक्ष्य जलेनाभिषिच्य वह्निना रमिति मन्त्रेण वह्निमाहरेत् आनयेत् ।।१६।।

आनीय वह्निं तत्पार्श्वे स्थापयेद्वाग्भवं स्मरन् ।।१७।।

पद्मा–वाग्भव–ऐं-मन्त्र का स्मरण करते हुए मण्डल के पार्श्व में अग्नि को स्थापित करें।

हरि०–आनीयेत्यादि। वह्निमानीय वाग्भवम् ऐमिति मन्त्र स्मरन् सन् तत्पार्श्वे स्थण्डिलस्य पार्श्वे स्थापयेत् ।।१७।।

ततस्तस्मात् ज्वलद्दारु गृहीत्वा दक्षपाणिना ।
ह्रीं क्रव्यादेभ्यो नमः स्वाहा क्रव्यादांश परित्यजेत् ।।१८।।

पद्मा–इसके उपरान्त दाहिने हाथ से उसमें जलती हुई लकड़ी लेकर **ह्रीं क्रव्यादेभ्यो नमः स्वाहा** मन्त्र का उच्चारण करते हुए दक्षिण दिशा में राक्षस का अंश छोड़ दे ।

हरि०–तत इत्यादि। ततः परंतस्माद्वह्नेरेकं ज्वलद्दारु प्रज्वलत्काष्ठं दक्षपाणिना गृहीत्वा ह्रीं क्रव्यादेभ्यो नमः स्वाहेति मन्त्रेण क्रव्यादांश राक्षसभागं दक्षिणस्या दिशि परित्यजेत् ।।१८।।

इत्थं प्रतिष्ठितं वह्निं पाणिभ्यामात्मसम्मुखम् ।
उद्धृत्य तासु रेखासु मायाद्यां व्याहृतिं स्मरन् ।।१९।।
संस्थाप्य तृणदारुभ्यां प्रबलीकृत्य पावकम् ।

समिधे द्वे घृताक्ते च हुत्वा तस्मिन् हुताशने ।
स्वकर्म विहितं नाम कृत्वा ध्यायेद्धनञ्जम् ।।२०।।

पद्मा–इस प्रकार प्रतिष्ठित अग्नि को दोनों हाथों से उठाकर आदि में मायाबीज ह्रीं लगाकर व्याहृति को स्मरण करते हुए अपने सम्मुख अंकित तीन रेखाओं पर स्थापित तृणकाष्ठ द्वारा उस अग्नि को प्रज्वलित करे तथा इसी अग्नि में दो घृताक्त समिधाओं की आहुति प्रदान कर कर्म के अनुसार अग्नि का विहित नामकरण करके धनञ्जय नामक अग्नि का ध्यान करे।

हरि०–**इत्थमित्यादि**। इत्थमनेन प्रकारेण प्रतिष्ठितं संस्कृतं वह्निं पाणिभ्यामुद्धृत्योत्थाप्य मायाद्या ह्रीं बीजाद्यां व्याहृति स्मरन् सन् आत्मनः सम्मुखं यथा स्यात्तथा तासु रेखासु संस्थाप्य तृणदारुभ्यां पावकमग्निं प्रबलीकृत्य च तस्मिन् हुताशनेऽग्नौ घृताक्ते घृतसंयुक्ते द्वे समिधौ काष्ठे हुत्वा प्रक्षिप्य वह्नेः स्वकर्मनिहितं नाम च कृत्वा धनञ्जयमग्नि ध्यायेत् ॥१९-२०॥

बालार्कारुणसङ्काशं सप्तजिह्वं द्विमस्तकम् ।
अजारूढं शक्तिधरं जटामुकुटमण्डिताम् ।।२१।।

पद्मा–जो बालसूर्य के समान अरुण वर्ण के हैं, सात जिह्वाओं वाले, दो मस्तकों से युक्त; बकरे पर सवार, शक्ति धारण किए हुए, जटा तथा मुकुट से शोभायुक्त धनञ्जय नामक अग्निदेव का मैं ध्यान करता हूँ।

हरि०–वह्नेर्ध्यानमेवाह बालार्कारुणसङ्काशमित्यादि। बालोयोऽर्कः सूर्यस्तद्वदरुणो लोहितवर्णः सङ्काशो दीप्तिर्यस्य तथाभूतम् ॥२१॥

ध्यात्वैवं प्राञ्जलिर्भूत्वाऽऽवाहयेद्धव्यवाहनम् ।।२२।।

पद्मा–इस प्रकार ध्यान कर हाथ जोड़कर अग्नि का आवाहन करे।

हरि०–**ध्यात्वेत्यादि**। एवं हव्यवाहनमग्निं ध्यात्वा ततः प्राञ्जलिर्भूत्वा वक्ष्यमाणमन्त्रेण हव्यवाहनमावाहयेत् ॥२२॥

मायामेह्येहि पदतः सर्वामर वदेत् प्रिये ! ।
हव्यवाहपदान्ते च मुनिभिः स्वगणैः सह ।
अध्वरं रक्ष रक्षेति नमः स्वाहा ततो वदेत् ।।२३।।

पद्मा–हे प्रिये ! साधक सर्वप्रथम मायाबीज '**ह्रीं**' का उच्चारण करे। इसके पश्चात् 'एह्येहि' पद का उच्चारण कर 'सर्वामर' पद का उच्चारण करे। फिर 'हव्यवाह' पद के पश्चात् **'मुनिभिः स्वगणैः सह अध्वरं रक्ष रक्ष नमः'** स्वाहा इन पदों का उच्चारण करे। इस प्रकार मन्त्रोद्धार होगा-**ह्रीं एह्येहि सर्वामरहव्यवाह मुनिभिः स्वगणैः सह अध्वरं रक्ष रक्ष नमः स्वाहा।**

हरि०–वह्नयावाहनमन्त्रमेवाह मायामित्यादिना सार्द्धेन। हे प्रिये पूर्व मायां ह्रीं मिति बीजं वदेत् ततः परमेह्येहीत्युक्तवा तत् पदतः परं सर्वामरेति पदं वदेत्। ततो हव्यवाहेति

वदेत्। सकलपदयोजनया ह्रीं एह्येहि सर्वामरहव्यवाह मुनिभिः स्वगणैः सह अध्वरं रक्ष रक्ष नमः स्वाहेति मन्त्रो जातः॥२३॥

इत्यावाह्य हव्यवाहमयं ते योनिरुच्चरन्।
यथोपचारैः सम्पूज्य सप्तजिह्वाः प्रपूजयेत्॥२४॥

पद्मा–इस प्रकार अग्नि का आवाहन करके वह्नि **अयं ते योनिः** पद का उच्चारण करके पाद्यादि उपचारों से पूजन कर सप्तजिह्वाओं की पूजा करे।

हरि०–इतीति। इत्यनेन मन्त्रेण हव्यवाहनमग्नि मावाह्य वह्नि ते तवायं योनि-रित्युच्चरन् सन् प्रणवादिनमोऽन्तेन नाममन्त्रेणोपचारैः पाद्यादिभिर्वह्नि यथावत् सम्पूज्य प्रणवादिनमोऽन्तनाममन्त्रेण गन्धपुष्पादिभिर्वह्नेः सप्त जिह्वाः प्रपूजयेत्॥२४॥

काली कराली च मनोजवा च
सुलोहिता चैव सुधूम्रवर्णा।
स्फुलिङ्गिनी विश्वनिरूपिणि च।
लेलायमनेति च सप्तजिह्वा॥२५॥

पद्मा–काली, कराली, मनोजवा, सुलोहिता, सुधूम्रवर्णा, स्फुलिङ्गिनी तथा विश्वनिरूपिणि यह अग्नि की सात जिह्वाएँ हैं। ये सभी लपलपाती हुई उज्ज्वल हैं।

हरि०–वह्नेः सप्तजिह्वा ऐवाह कालीत्यादिनैकेन। काल्याद्या विश्वनिरूपिण्यन्ता लेलायमाना अग्नेर्हविर्ग्रहणार्था एताः सप्तजिह्वाः॥२५॥

ततोऽग्नेः पूर्वमारभ्य सह कीलालपाणिना।
उत्तरान्तं महेशानि! त्रिधा प्रोक्षणमाचरेत्॥२६॥

पद्मा–हे महेशानि! इसके पश्चात् अग्नि की पूर्व दिशा से प्रारम्भ कर उत्तर दिशा तक तीन बार अग्नि को प्रेक्षित करे।

हरि०–तत इति। हे महेशानि ततः परं सह कीलालपाणिना सजलेन हस्तेन पूर्वमारभ्योत्तरानतमुत्तरपर्यन्तमग्नेस्त्रिधा त्रिवारं प्रोक्षणमाचरेत्॥२६॥

तथैव याम्यमारभ्य कौबेरान्तं हुताशितुः।
त्रिधा पर्युक्षणं कुर्यात्ततो यज्ञीयवस्तुनः॥२७॥

पद्मा–इसके उपरान्त अग्नि की दक्षिण दिशा से प्रारम्भ कर उत्तर दिशा तक तीन बार प्रोक्षित कर समस्त उपकरणों को भी तीन बार प्रेक्षित करे।

हरि०–तथैवेत्यादि। ततस्तथैव सह कीलालपाणिनैव याम्यं दक्षिणमारभ्य कौबेरान्त-मुत्तरपर्यन्तं हुताशितुर्वह्नेस्त्रिधा पर्युक्षणमभिषेचनं कुर्यात्। ततः परं यज्ञीयवस्तुनोऽपि त्रिधैव पर्युक्षणं कुर्यात्॥२७॥

परिस्तरेत्ततो दर्भैः पूर्वस्मादुत्तरावधि।
उदक्संस्थैरुत्तराग्रैः प्रागग्रैरन्यादिक्स्थितैः॥२८॥

पद्मा–इसके पश्चात् मण्डल की पूर्वदिशा से प्रारम्भ कर उत्तर दिशा तक कुश द्वारा

आच्छादित करे। उत्तरदिशा के कुशों का मुख उत्तर की ओर करे तथा अन्य दिशाओं के कुशों का मुख पूर्व की ओर रखे।

हरि०-परिस्तरेदिति। ततः परं पूर्वस्मात् पूर्वमारभ्य उत्तरावधि, उत्तरपर्यन्तमुदक्संस्थैरुत्तरदिक्स्थितैरुत्तराग्रैरन्यदिक्स्थितैः प्रागग्रैर्दर्भैः कुशैः स्थण्डिलं परिस्तरेदाच्छादयेत्॥२८॥

अग्निं दक्षिणतः कृत्वा गत्वा ब्रह्मासनान्तिकम्।
वामाङ्गुष्ठकनिष्ठाभ्यां ब्रह्मणः कल्पितासनात्॥२९॥
गृहीत्वा कुशपत्रैकं ह्रीं निरस्तः परावसुः।
इत्युक्त्वाग्नेर्दक्षिणस्यां निक्षिपेदुत्करादिना॥३०॥

पद्मा-इसके उपरान्त अग्नि को दक्षिण दिशा में रख ब्रह्मासन के समीप जाकर बाएँ हाथ अंगुष्ठ-कनिष्ठ अंगुलियों से ब्रह्मा के कल्पित-आसन से एक कुश पत्र लेकर **ह्रीं** निरस्तः परावसः मन्त्र का उच्चारण करते हुए अग्नि की दक्षिण दिशा में फेंक दे।

हरि०-अग्निमित्यादि। ततोऽग्निं दक्षिणतः कृत्वा ब्रह्मासनान्तिकं गत्वा वामाङ्गुष्ठकनिष्ठाभ्याङ्गुलिभ्यां ब्रह्मणः कल्पितादासनात् कुशपत्रैकमेकं कुशपत्रं गृहीत्वा ह्रीं निरस्तः परावसुरितिमन्त्रमुक्त्वा उत्करादिना सह तदेव कुशपत्रमग्नेर्दक्षिणस्यां दिशि निक्षिपेत्॥२९-३०॥

सीद यज्ञपते ब्रह्मन्निदं ते कल्पितासनम्।
सीदामीति वदन् ब्रह्मा विशेत्तत्रोरामुखः॥३१॥

पद्मा-हे यज्ञपते! हे ब्रह्मन! तुम्हारे लिये यह आसन प्रस्तुत है इस पर बैठिये। ब्रह्मा कहे 'ब्रह्मा के प्रतिनिधिरूप कोई न हो, तो स्वयं करे', सीदामि अर्थात् बैठता हूँ। यह कहकर ब्रह्मा उत्तर की ओर मुख करके बैठे।

हरि०-सीदेति। हे यज्ञपते ब्रह्मन् इदं ते त्वदर्थं कल्पितासनं वर्त्तते त्वं सीद अत्रोपविशेति ब्रह्माणं यज्ञकर्ता ब्रूयात् ततोऽहं सीदामीति वदन् ब्रह्मा उत्तरामुखो भूत्वा तत्रासने विशेत्॥३१॥

सम्पूज्य गन्धपुष्पाद्यैर्ब्रह्माणं प्रार्थयेदिदम्॥३२॥

पद्मा-गन्ध पुष्पादि से ब्रह्मा की पूजा कर उनसे यह प्रार्थना करे।

हरि०-सम्पूज्येत्यादि। ततो गन्धपुष्पादिभिर्ब्रह्माणं सम्पूज्य तमेवेदं प्रार्थयेत॥३२॥

गोपाय यज्ञं यज्ञेश यज्ञं पाहि बृहस्पते!
माञ्च यज्ञपतिं पाहि कर्मसाक्षिन्नमोऽस्तुते॥३३॥

पद्मा-हे यज्ञेश्वर! यज्ञ की रक्षा करो। हे! बृहस्पते! यज्ञ की रक्षा करो। मैं यज्ञपति हूँ, मेरी भी रक्षा करो। हे कर्मसाक्षिन्! तुम्हें नमस्कार है।

हरि०-इदं किं प्रार्थयेदित्यपेक्षायामाह गोपाय यज्ञमित्यादि। गोपाय रक्ष॥३३॥

गोपयामि वदेत् ब्रह्मा ब्रह्मभागे स्वयं वदेत्।
तत्र दर्भमयं विप्रं कल्पयेत् यज्ञसिद्धये॥३४॥

पद्मा-इसके उत्तर में ब्रह्मा कहें-गोपयामि अर्थात् मैं रक्षा करता हूँ। ब्रह्मा के न होने

पर स्वयं यह वचन कहे। यज्ञ की सिद्धि के लिये वहाँ दर्भमय ब्राह्मण की कल्पना करे।

हरि०-गोपयामीति । यज्ञकर्त्रैव प्रार्थितो ब्रह्मा गोपयामीति वदेत् । ब्रह्माभावे तु गोपयामीति स्वयमेव वदेत् । तत्र ब्रह्माभावे सति यज्ञसिद्धिये दर्भमयं विप्रं कल्पयेत् ॥३४॥

ततो ब्रह्मन्निहागच्छागच्छेत्यावाह्य साधकः ।
पाद्यादिभिश्च सम्पूज्य यावद् यज्ञसमापनम् ।
तावद्भवद्भिः स्थातव्यमिति प्रार्थय नमेत्ततः ।।३५।।

पद्मा-इसके उपरान्त साधक आवाहन करे-'**ब्रह्मन् इहागच्छागच्छ**' अर्थात् ब्रह्मन् इस स्थान पर आइए, इस स्थान पर आइए। इसके पश्चात् पाद्यादि से उनकी पूजा कर प्रार्थना करे **यावद् यज्ञसमापनम् तावदभवद्भिः स्यातव्यम्** अर्थात् जब तक यज्ञ समाप्त न हो, तब तक आप यहाँ स्थित रहें'' इस प्रकार प्रार्थना कर उन्हें नमस्कार करे ।

हरि०-तत इत्यादि। ततः परं साधको यज्ञकर्त्ता ब्रह्मन्निहागच्छागच्छेति मन्त्रेण ब्रह्माणमावाह्य पाद्यादिभिः सम्पूज्य च यावद्यज्ञसमापनं भवेत्तावद्भवद्भिरिह स्थातव्यमिति प्रार्थय ततो ब्राह्मणं नयेत् ॥३५॥

सोदकेन करेणाग्नेरीशानाद् ब्रह्मणोऽन्तिकम् ।
त्रिधा पर्युक्ष्य वह्निञ्च त्रिः प्रोक्ष्य तदनन्तरम् ।।३६।।
आगत्य वर्त्मना तेन सूपविश्य निजासने ।
स्थाण्डिलस्योत्तरे दर्भानुदगग्रान परिस्तरेत् ।।३७।।

पद्मा-इसके पश्चात् साधक हाथ में जल लेकर अग्नि के ईशान कोण से प्रारम्भ करके ब्रह्मा के समीप तीन बार जल छिड़के। इस प्रकार तीन बार अग्नि को प्रोक्षित करे। इसके उपरान्त सर्वप्रथम जिस मार्ग से ब्रह्मा के आसन के समीप गये थे, उसी मार्ग से लौटकर अपने आसन पर बैठ जाय। इसके पश्चात् मण्डल की उत्तर दिशा में थोड़े से कुश उत्तर दिशा की ओर मुखकरके फैलाये या बिछाये ।

हरि०-सोदकेनेति। ततः सोदकेन करेण सजलेन हस्तेनाग्नेरीशानादीशानकोणमारभ्य ब्रह्मणोन्तिकं ब्रह्मसमीपपर्यन्तं त्रिधा वारत्रयं पर्युक्ष्याभिषिञ्च वह्निञ्च त्रिर्वारत्रयं प्रोक्षय तदनन्तरं येन वार्त्मना ब्रह्मासन्नान्तिकं गतवानासीत्तेनैव वर्त्मनाऽऽगत्य निजासने सूपविश्य च यज्ञकर्ता स्थण्डिलस्योत्तरे देशे उदगग्रान् दर्भान् कुशान् आस्तरेत् ॥३६-३७॥

तेषु यज्ञीयवस्तूनि सर्वाण्यासादयेत् सुधीः ।
सोदकं प्रोक्षणीपात्रमाज्यस्थालीसमित्कुशान् ।।३८।।

पद्मा-विद्वान् साधक उसी पर जल सहित प्रोक्षणी पात्र, आज्यस्थाली तथा समिधा सहित कुश आदि समस्त यज्ञीय वस्तुओं को रखे ।

हरि०-तेष्विति। सुधीर्यज्ञसाधकस्तेषु दर्भेषु सर्वाणि यज्ञीयवस्तून्यासादयेत् स्थापयेत्। दर्भेषु यानि यज्ञीयवस्तूनि आसादयेत्तान्याह सोदकमित्यादिना ॥३८॥

आसाद्य स्रुक्स्रुवादीनि हाँ ह्रीं हूमिति मन्त्रकैः ।
दिव्यदृष्ट्या प्रोक्षणेन संस्कृत्य तदनन्तरम् ।।३९।।
पृथिव्यां दक्षिणं जानु पातयित्वा स्रुवेस्रुचा ।
घृतमादाय मतिमांश्चिन्तयन् हितमात्मनः ।
ह्रीं विष्णवे द्विठान्तेन प्रदद्यादाहुतित्रयम् ।।४०।।

पद्मा–इसके उपरान्त स्रुक् स्रुवा आदि यज्ञ के समस्त पात्र कुश के आसन पर स्थापित करके हाँ ह्रीं हूँ इस मन्त्र को पढ़कर दिव्य दृष्टि (एकाग्र दृष्टि से बिना पलक झपकाये देखना) से तथा प्रोक्षण से उन सभी को शुद्ध करे। इसके पश्चात् ज्ञानी साधक पृथ्वी में दाहिने घुटने के बल बैठक स्रुक् नामक यज्ञ पात्र में रखे घी को स्रुवा से लेकर स्वयं की मंगल कामना करते हुए **ह्रीं विष्णवे स्वाहा** मन्त्र से तीन आहुतियाँ प्रदान करे ।

हरि०–**आसाद्येति** । दर्भेषु सोदक प्रोक्षणीपात्रादीनि वस्तूनि स्रुक्स्रुवादीनि यज्ञीयानि पात्राणि चासाद्य संस्थाप्य हाँ, ह्रीं हूमिति मन्त्रकैर्दिव्य दृष्ट्या प्रोक्षेण च तानि संस्कृत्य तदनन्तरं पृथिव्यां दक्षिणं जानु पातयित्वा स्रुचा स्रुवे यज्ञीये पात्रे घृतमादाय गृहीत्वा मतिमान् यज्ञसाधक आत्मनो हित चिन्तयन् सन् द्विठान्तेन स्वाहान्तेन ह्रीं विष्णवे इति मन्त्रेण विष्णुमुद्दिश्याहुतित्रयं प्रदद्यात् ।।३९-४०।।

तथैव घृतमादाय ध्यायन् देवं प्रजापतिम् ।
वायव्यादग्निकोणान्तं जुहुयादाज्यधारया ।।४१।।

पद्मा–इसी प्रकार स्रुक् के द्वारा स्रुवा नामक यज्ञीय पात्र में रखे घी को लेकर प्रजापति देव का ध्यान करते हुए वायुकोण से प्रारम्भकर अग्निकोण तक **ह्रीं प्रजापतये स्वाहा'** मन्त्र का जप करते हुए होम करे ।

हरि०–**तथैवेत्यादि**। तथैव स्रुचा स्रुवे एव घृतमादाय ह्रीं बीजाद्येन सचतुर्थीस्वाहान्तेन नाममन्त्रेण प्रजापतिं देवं ध्यायन् सन् तमुद्दिश्य वायव्यात् वायव्यं कोणमारभ्याग्निकोणान्तं घृतधारया जुहुयात् ।।४१।।

पुनराज्यं समादाय ध्यायन्देवं पुरन्दरम् ।
नैर्ऋतादीशकोणान्तं जुहुयादाज्यधारया ।।४२।।

पद्मा–पुनः घी लेकर पुरन्दर देव का ध्यान करते हुए **ह्रीं पुरन्दराय स्वाहा** इस मन्त्र को पढ़कर नैर्ऋत कोण से प्रारम्भ कर ईशान कोण तक घी से आहुति प्रदान करे ।

हरि०–**पुनरित्यादि**। पुनः स्रुचा स्रुवे आज्यं घृतं समादाय पुरन्दरं देव ध्यायन् सन् तमुद्दिश्य ह्रीं बीजाद्येन सचतुर्थीस्वाहान्तेन नाममन्त्रेण नैर्ऋतानैर्ऋतं कोणमारभ्येशकोणानतमीशान कोणपर्यन्तमाज्य धारया जुहुयात् ।।४२।।

ततोऽग्नेरुत्तरे याम्ये मध्ये च परमेश्वरि ! ।
अग्निं सोमं अग्निषोमौ समुल्लिख्य यथाक्रमात् ।।४३।।

सचतुर्थीनमोऽन्तेन मायाद्येनाहुतित्रयम् ।
हुत्वा विधेयकर्मोक्तं होमं कुर्याद्विचक्षणम् ।।४४।।

पद्मा–हे परमेश्वरि ! इसके उपरान्त पुन: ऐसे ही घी को ग्रहण करके अग्नि के उत्तर, दक्षिण तथा मध्य में क्रमानुसार अग्नि, सोम तथा अग्निषोम को **ह्रीं अग्नये नमः, ह्रीं सोमाय नमः, ह्रीं अग्नीषोमाभ्यां नमः** मन्त्र से तीन आहुतियाँ प्रदान करे–इस प्रकार धारा होम करके ऋतुसंस्कारादि कर्म का होम करे ।

हरि०–तत इत्यादि। हे परमेश्वरि ततः परम् अग्नेरुत्तरे भागे याम्ये दक्षिणे भागे मध्ये च यथाक्रमात् क्रमेणैवाग्निं सोमम् अग्नीषोमौ च समुद्दिश्य मायाद्येन ह्रीं बीजाद्येन सचतुर्थीनमोऽन्तेन नाममन्त्रेणाहुतित्रयं हुत्वा विचक्षणः सुधीर्यज्ञसाधको विधेयकर्मोक्तं ऋतुसंस्कारादौ कर्मण्युक्तं होमं कुर्यात् ।।४२-४३।।

आहुतित्रयदानान्तं धाराहोमं प्रचक्षते ।।४५।।

पद्मा–तीन आहुति प्रदान करने को धारा होम कहते हैं।।४५।।

हरि०–आहुतीत्यादि। विष्णूद्देश्यकाहुतित्रयदानम् आरभ्य अग्न्याद्युद्देश्यकाहुति त्रयदानान्तं धाराहोमं प्रचक्षते प्रवदन्ति ।

यदुद्दिश्याहुतिं दद्यात् देयोद्देशोऽपि तत्कृते ।
समाप्य प्रकृतं कर्म स्विष्टकृद्धोममाचरेत् ।।४६।।

पद्मा–जिस देवता के लिए आहुति प्रदान करे, उसी देवता के उद्देश्य से देयवस्तु का उल्लेख करे जैसे–**ह्रीं विष्णवे स्वाहा हविरिदं विष्णवे** । इस प्रकार होम कर्म करके उत्तम अभीष्ट प्रदायक (स्विष्टकृत) होम करें ।

हरि०–यदित्यादि । (यद्दैवतमुद्दिश्याहुतिं दद्यात् तत्कृते तदर्थं देयोद्देशोऽपि देयरूप वस्तुन उद्देश्य उल्लेखोऽपि कर्त्तव्यः । यथा ह्रीं विष्णवे स्वाहा हविरिदं विष्णवे एवमेवेति विधेयकर्माङ्गभूतं प्रकृतं कर्म होमकर्मैवं समाप्य स्विष्टकृद्धोमं शोभनाभीष्टकारकं होममाचरेत्।।४६।।

प्रायश्चितात्मको होमः कलौ नास्ति वरानने ! ।
स्विष्टिकृता व्याहृतिभिः प्रायश्चितं विधीयते ।।४७।।

पद्मा–हे वरानने ! कलियुग में प्रायश्चित होम का अनुष्ठान नहीं किया जाता । इसलिए **स्विष्टिकृत** एवं व्याहृति होम से प्रायश्चित होता है ।

हरि०–प्रायश्चित्तेत्यादि । कलौ युगे प्रायश्चित्तात्मकहोमाभावात् **स्विष्टिकृता** होमेन व्याहृतिभिर्होमेन च प्रायश्चितं विधीयते ।।४७।।

पूर्ववद्धविरादाय ब्रह्माणं मनसा स्मरन् ।
अस्मिन्कर्मणि देवेश प्रमादाद् भ्रमतोऽपि वा ।।४८।।
न्यूनाधिकं कृतं यच्च सर्वं स्विष्टकृतं कुरु ।
मायाद्येनामुना देवि ! स्वाहान्तेनाहुतिं हुनेत् ।।४९।।

पद्मा–इसके पश्चात् स्रुवा नामक यज्ञपात्र में पूर्व की भाँति घी को लेकर मन ही मन

ब्रह्माजी को स्मरण कर, **ह्रीं अस्मिन् कर्मणि देवेश ! प्रमादाद् भ्रमतोऽपि वा न्यूनाधिकं कृतं यच्च सर्वं स्विष्टकृतं कुरु स्वाहा** अर्थात् हे देवेश ! प्रमाद या भ्रमवश इस कार्य में जो कुछ कम या अधिक हुआ हो उस सबको मेरे लिये उत्तम फलदायक करो। इस मन्त्र को पढ़े। हे देवि ! यह मन्त्र पढ़कर स्वाहा पद का उच्चारण करके आहुति दे।

हरि०–अथ स्विष्टकृद्धोमाचरणविधिमाह पूर्ववदित्यादिभिः। पूर्ववत् स्त्रुचा स्त्रुवे हविर्घृतमादाय ब्रह्माणं प्रजापतिं मनसा स्मरन् सन् तमुदिश्य मायाद्येन ह्रीं बीजाद्येन स्वाहान्तेन-

अस्मिन् कर्मणि देवेश प्रमादाद् भ्रमतोऽपि वा ।
न्यूनाधिकं कृतं यच्च सर्वं स्विष्टकृतं कुरु ॥

इत्यमुना मन्त्रेणाहुतिं हुनेत् दद्यात् ॥४८-४९॥

त्वमग्ने!सर्वलोकानां पावनः स्विष्टकृत् प्रभुः ।
यज्ञसाक्षी क्षेमकर्त्ता सर्वान् कामान् प्रपूरय ।
अनेन हवनं कुर्यात् मायया वह्निजायया ।।५०।।

पद्या–हे अग्ने ! तुम समस्त लोकों को पवित्र करने वाले, अभीष्ट फल प्रदान करने वाले प्रभु, यज्ञ के साक्षी तथा मंगलकारी हो। तुम मेरी समस्त कामनाओं को पूर्ण करो। सर्वप्रथम मायाबीज 'ह्रीं' तदुपरान्त 'स्वाहा' पद का उच्चारण करके इस मंत्र से आहुति प्रदान करे । यथा–**ह्रीं त्वमग्ने सर्वलोकानां पावनः स्विष्टकृत्प्रभुः । यज्ञसाक्षी क्षेमकर्त्ता सर्व्वान् कामान् प्रपूरय स्वाहा।**

हरि०–त्वमित्यादि। ततोऽग्निमुदिश्याऽऽदिभूतया मायया ह्रीं बीजेनान्तभूतया वह्निजायया स्वाहया च संयुक्तेन–

त्वमग्ने सर्वलोकानां पावनः स्विष्टकृत प्रभुः ।
यज्ञसाक्षी क्षेमकर्ता सर्वान् कामान् प्रपूरय ।
इत्यनेन मन्त्रेण हवनं कुर्यात् ॥५०॥

इत्थं स्विष्टकृतं होमं समाप्य क्रतुसाधकः ।
कर्मणोऽस्य परब्रह्मन्नयुक्तं विहितञ्च यत् ।।५१।।
तच्छान्त्यै यज्ञसम्पत्त्यै व्याहृत्या हूयते विभौ ।
मायादिवह्निजायान्तैर्भूर्भुवः स्वरिति त्रिभिः ।।५२।।
आहुतित्रितयं दद्यात् त्रितयेन तथैव च ।
हुत्वाग्नौ यजमानेन दद्यात् पूर्णाहुतिं बुधः ।।५३।।

पद्या–इस प्रकार स्विष्टकृत होम को सम्पन्न करने के पश्चात् साधक प्रार्थना करे–हे परब्रह्मन् ! इस यज्ञ में जो कुछ आयुक्त कर्म हुआ है उसकी शान्ति हेतु तथा यज्ञसम्पत्ति के लिए मैं व्याहृति द्वारा होम करता हूँ। इस प्रकार प्रार्थना कर **ह्रीं भूः स्वाहा ह्रीं भुवः स्वाहा, ह्रीं स्वः स्वाहा** इन तीन मन्त्रों से तीन बार आहुति प्रदान करे। इसके पश्चात् **ह्रीं**

भूर्भुवः स्वः स्वाहा मन्त्र से एक बार आहुति प्रदान कर यज्ञकर्त्ता यजमान के साथ पूर्णाहुति प्रदान करे।

हरि०–इत्थमित्यादि। इत्थमनेन प्रकारणे स्विष्टकृतं होमं समाप्य क्रतसाधको यज्ञकर्त्ता-

कर्मणोऽस्य परब्रह्मन्नयुक्तं विहितञ्च यत्।
तच्छान्त्यै यज्ञसम्पत्त्यै व्याहृत्या हूयते विभो॥

इति परं ब्रह्म सम्प्रार्थय परब्रह्मैवोद्दिश्य च मायादिवह्निजायान्तैः ह्रीं बीजादिभिः स्वाहान्तैर्भूर्भुवः स्वरिति त्रिभिर्मन्त्रैराहुतित्रितयं दद्यात्। तथैव ह्रीं बीजाद्येन स्वाहान्तेन भूरादित्रितयेनैकथाहुतिं दद्यात्। बुधो यज्ञसाधकं एवं हुत्वा यजमानेन सह विष्णुमुद्दिश्य वक्ष्यमाणमन्त्रेणाग्नौ पूर्णाहुतिं दद्यात्॥५१-५३॥

स्वयं चेत् कर्मवर्ता स्यात् स्वयमेवाहुतिं क्षिपेत्।
अभिषेकविधानादावेवमेव विधिः स्मृतः॥५४॥

पद्मा–यदि कर्म करने वाला स्वयं ही यजमान हो, तो स्वयं ही आहुति प्रदान करे। अभिषेक आदि विधानों में इसी प्रकार की विधि कही गयी है॥५४॥

हरि०–स्वयञ्चेदित्यादिश्लोकस्तु स्पष्टार्थः॥५४॥

आदौ मायां समुच्चार्य ततो यज्ञपते वदेत्।
पूर्णो भवतु यज्ञो मे हृष्यन्तु यज्ञदेवताः।
फलानि सम्यक् यच्छन्तु वह्निकान्तावधिर्मनुः॥५५॥

पद्मा–साधक सर्वप्रथम मायाबीज **ह्रीं** का उच्चारण करके यज्ञपते पद का उच्चारण करे फिर **पूर्णो भवतु यज्ञो में हृष्यन्तु यज्ञदेवताः। फलानि सम्यग् गच्छन्तु स्वाहा** अर्थात् 'मेरा यह यज्ञ पूर्ण हो, यज्ञ के देवता प्रसन्न हों, इस यज्ञ का सम्पूर्ण फल प्रदान करें' का उच्चारण करे।

हरि०–येन मन्त्रेण पूर्णाहुतिं दद्यात् तमेव मन्त्रमाह आदावित्यादिना सार्द्धेन। आदौ मायां ह्रीं बीजं समुच्चार्य ततो यज्ञपते इति वदेत् ततः पूर्णो भवतु यज्ञो मे हृष्यन्तु यज्ञदेवताः फलानि सम्यग्यच्छन्तु इति वदेत्। योजनया ह्रीं यज्ञपते पूर्णो भवतु यज्ञो म हृष्यन्तु यज्ञदेवताः फलानि सम्यग् यच्छन्तस्वाहेति मनुर्जातः अयं मनुर्वह्निकान्तावधिः स्वाहान्तः प्रोक्तः॥५५॥

मन्त्रेणानेन मतिमानुत्थाय सुसमाहितः।
फलताम्बूलसहिताहुतिं दद्याद्धुताशने॥५६॥

पद्मा–बुद्धिमान् मनुष्य खड़ा होकर एकाग्रचित्त से उपरोक्त मन्त्र (श्लोक ५५) से फल एवं ताम्बूल (पान) के साथ अग्नि में आहुति प्रदान करे।

हरि०–मन्त्रेणेत्यादि। मतिमान् यज्ञसाधको यजमानेन सहोत्थाय सुसमाहितः अतिसावधानः सन् अनेन मन्त्रेण फलताम्बूलसहिताहुतिं हुताशनेऽग्नौ दद्यात्॥५६॥

दत्तापूर्णाहुतिर्विद्वान् शान्तिकर्म समाचरेत् ।
प्रोक्षणीपात्रतोयेन कुशैः सम्मार्जयेच्छिरः ।।५७।।

पद्मा–साधक पूर्णाहुतिप्रदान कर शान्ति कर्म करे। सर्वप्रथम प्रोक्षणीपात्र से कुश द्वारा गृहीत जल से अपने मस्तक को अच्छी प्रकार से मार्जित करे ।

हरि०–दत्तेत्यादि एवं दत्तपूर्णाहुति: सन् विद्वान् यज्ञसाधक: शान्तिकर्म समाचरेत्। शान्तिकर्माचरणस्यैव विधिमाह प्रोक्षणीपात्रेत्यादिभि:।।५७।।

आप: सुमित्रिया: सन्तु भवन्त्वोषधयो मम ।
आपो रक्षन्तु मां नित्यमापो नारायणः स्वयम् ।।५८।।

पद्मा–जल मेरा उत्तम मित्रस्वरूप हो, जल मेरे लिए औषधिस्वरूप हो, जल मेरी नित्य रक्षा करें। जल स्वयं नारायण हैं ।

हरि०–शिर: सम्मार्जनार्थमाप इत्यादिकं मन्त्रद्वयमाह आप इति। हे आपो भवत्यो मम सुमित्रिया: सन्तु ओषधयश्च भवन्तु इत्येवमन्वय:। सुमित्राण्येव सुमित्रिया: स्वार्थेष्णय: तस्येयादेश:।।५८।।

आपो हिष्ठा मयोभुवस्ता न ऊर्जे दधातनः ।
इत्याभ्यां मार्जनं कृत्वा भूमौ बिन्दून् विनिक्षिपेत् ।।५९।।

पद्मा–हे जल ! तुम सुख प्रदान करते हो। तुम मुझे ऐहिक (सांसारिक लौकिक) सुख प्रदान करो। उक्त दोनों मन्त्रों (श्लोक ५८, ५९) से क्रमानुसार मस्तक को गीला कर कुश द्वारा ईशानकोण में भूमि पर जल बिन्दु छोड़े। (मन्त्र अग्रिम श्लोक में देखें) ।

हरि०–**आप इत्यादेरर्थोविक्ष्यते** । इत्याभ्यां मन्त्राभ्यां शिरसो मार्जनं कृत्वा भूमौ कुशैर्बिन्दून् विनि:क्षिपेन् ।।५९।।

ये द्विषन्ति च मां नित्य यांश्च द्विष्मो नरान् वयम् ।
आपो दुर्भित्रियास्तेषां सन्तु भक्षन्तु तानपि ।।६०।।

पद्मा– जो नित्य मुझसे द्वेष करते है, हम जिन लोगों से द्वेष रखते हैं, उनके लिये जल शत्रु स्वरूप होकर उनका भक्षण करे।। यह श्लोक मन्त्रस्वरूप है ।

हरि०–भूमौ बिन्दूनां निक्षेपणस्य मन्त्रमाह ये द्विषन्तीति।।६०।।

अनेनेशानदिग्भागे बिन्दून् प्रक्षिप्य तान् कुशान् ।
हित्वा कृताञ्जलिर्भूत्वा प्रार्थयेद्धव्यवाहनम् ।।६१।।

पद्मा–इस मन्त्र को पढ़कर कुश से ईशान कोण में जल की बूंदे डालकर कुशों को छोड़ दे तत्पश्चात् हाथ जोड़कर अग्नि के समीप प्रार्थना करे ।

हरि०–**अनेनेत्यादि**। अनेन मन्त्रेणेशानदिग्भागे कुशैर्बिन्दून् प्रक्षिप्य तान् कुशानपि तत्रैव हित्वा त्यक्त्वा कृताञ्जलिर्भूत्वा हव्यवाहनमग्निं प्रार्थयेत् ।।६१।।

बुद्धिं विद्यां बलं मेधां प्रज्ञां श्रद्धां यशः श्रियम् ।
आरोग्यं तेज आयुष्यं देहि मे हव्यवाहन ।।६२।।

पद्मा–हे हव्यवाहन ! (अग्नि) मुझे बुद्धि (शास्त्रादि तत्त्व ज्ञान) बल (शक्ति) मेधा (धारणशक्ति) प्रज्ञा (सारासारविवेक की निपुणता) श्रद्धा, यश, श्री, आरोग्य, तेज, तथा आयु यह सब प्रदान करो ।

हरि०–अग्निं किं प्रार्थयेदित्यपेक्षायामाह बुद्धिमित्यादि। बुद्धि शास्त्रादितत्त्वज्ञानम् । विद्याम् आत्मज्ञानम् । मेधाम् धारणावतीं धियम् । प्रज्ञाम् सारविवेकनैपुण्यम् ।।६२।।

इति प्रार्थ्य वीतिहोत्रं विसृजेदमुना शिवे ।।६३।।

पद्मा–हे शिवे ! अग्नि के समीप इस प्रकार प्रार्थना कर आगे उल्लिखित मन्त्र से विसर्जन करे ।

हरि०–इतीति। हे शिवे । इति वीतिहोत्रमग्निं प्रार्थ्याऽमुना वक्ष्यमाणेन मन्त्रेण तयेव विसृजेत् ।।६३।।

यज्ञ यज्ञपतिं गच्छ यज्ञं गच्छ हुताशन ।
स्वां योनिं गच्छ यज्ञेश पूरयास्मन्मोरथम् ।।६४।।
अग्ने क्षमस्व स्वाहेति मन्त्रेणाग्नेरुदग्दिशि ।
दत्वा दध्नाऽऽहुतिं वह्निं दक्षिणस्यां विचालयेत् ।।६५।।

पद्मा–हे यज्ञ! तुम यज्ञपति विष्णु के समीप जाओ । हे हुताशन ! तुम यज्ञ में प्रवेश करो। हे यज्ञेश ! तुम अपने स्थान को जाओ तथा मेरी सभी इच्छाएं पूरी करो। हे अग्ने! क्षमा करो। इस मन्त्र को पढ़ते हुए अग्नि की उत्तर दिशा में दही की आहुति प्रदान कर अग्नि को दक्षिण दिशा की ओर चालित करे ।

हरि०–अग्नि विसर्जनस्यैव मन्त्रमाह यज्ञेति। हे यज्ञ त्वं यज्ञपतिं विष्णुं गच्छ प्राप्नुहि। हे हुताशन त्वं यज्ञं गच्छ। हे यज्ञेश यज्ञकर्त्तस्त्वं स्वां योनिमात्मीयस्थानं गच्छ। हे यज्ञादिक त्वम स्मन्मनोरथमस्माकं कामं पूरय। यज्ञयज्ञपतिमित्यादिनाऽग्ने क्षमस्व स्वाहेत्यन्तेनानेन मन्त्रेणाग्नेदग्दिशि दध्नाहुतिं दत्वा दक्षिणरूपां दिशि वह्निमनेनैव मन्त्रेण विचालयेत्।।६४-६५।।

ब्रह्मणे दक्षिणां दत्त्वा भक्त्या नत्वा विसर्जयेत् ।
ततस्तु तिलकं कुर्यात् स्रुवसंलग्नाभस्मना ।।६६।।

पद्मा–इसके उपरान्त ब्राह्मण को दक्षिणा प्रदान कर भक्तिपूर्वक नमस्कार करके विसर्जन करे। इसके पश्चात् स्रुव नामक यज्ञपात्र में लगी हुई भस्म से तिलक करे ।

हरि०–ब्रह्मणे इत्यादिस्तु स्पष्टार्थः।।६६।।

मायां कामं समुच्चार्य सर्वशान्तिकरो भव ।
ललाटे तिलकं कुर्यात् मन्त्रेणानेन यज्ञिकः ।।६७।।

पद्मा–**ह्रीं क्लीं सर्वशान्तिकरो भव** इस मन्त्र से यज्ञकर्त्ता ललाट में तिलक लगाये।

हरि०–ननु केन मन्त्रेण ललाटे तिलकं कर्तव्यं तत्राह मायामित्यादि। मायां ह्रीं बीजं

कामं क्लीं बीजं समुच्चार्य सर्वशान्तिकरो भवेति वदेत्। योजनया ह्रीं क्लीं सर्वशान्तिकरो भवेति मन्त्रो जातः। याज्ञिको यज्ञाकर्त्ताऽनेन मन्त्रेण ललाटे तिलकं कुर्यात् ॥६७॥

शान्तिरस्तु शिवं चास्तु वासवाग्निप्रसादः ।
मरुतां ब्रह्मणश्चैव वसुरुद्रप्रजापतेः ॥६८॥

पद्मा–इन्द्र, अग्नि, ब्रह्मा, प्रजापति, वसुगण, रुद्रगण तथ मरुद्गणों के प्रसाद से शान्ति एवं कल्याण हो ।

हरि०–शान्तिरित्यादि। शिवम् कल्याणम् । मरुतामित्यादावपि प्रसादत इत्यस्य योजनाया कर्त्तव्या॥६८॥

अनेन मनुना पुष्पं धारयेन्मस्तकोपरि ।
स्वशक्त्या दक्षिणां दद्यात् होमप्रकृतकर्मणोः ॥६९॥
इति ते कथिता देवि! सर्वकर्मकुशकण्डिका ।
प्रयोज्या शुभकर्मादौ यत्नतः कुलसाधकै ॥७०॥

पद्मा–इस मंत्र को पढ़कर माथे के ऊपर आयुवृद्धिकारक तिलक लगाकर होम तथा प्रकृत कर्म की दक्षिणा प्रदान करे। हे देवि ! मैंने तुमसे सभी सत्कर्मों में की जाने वाली कुशकण्डिका कही, जो कुलसाधक हैं उनको शुभकर्म करने से पूर्व प्रयत्नपूर्वक इसका अनुष्ठान करें ।

हरि०–अनेनेति। अनेन शान्तिरस्त्वित्यादिना प्रजापतेरित्यन्तेन मनुना मस्तकोपरि पुष्पं धारयेत् । ततो होमप्रकृतकर्मणोः स्वशक्त्या दक्षिणां यज्ञसाधकाय ब्राह्मणाय दद्यात् ॥६९-७०॥

प्रकृते कर्मणि शिवे ! चरुर्येषां कुलागमः ।
सिद्ध्यर्थं कर्मणान्तेषां चरुकर्म निगद्यते ॥७१॥

पद्मा–हे शिवे ! कुलपरम्परा के अनुसार जिन्हे प्रकृते कर्म में चरु करने का नियम है, उनकी कर्मसिद्धि के लिये चरु कर्म कहता हूँ ।

हरि०–प्रकृत इत्यादि। प्रकृते कर्मणि ऋतुसंस्कारे। चरुः देवतार्थ परमान्नम् । कुले आगम आगमनं यस्य चरोः स कुलागमः॥७१॥

चरुस्थाली प्रकर्तव्या ताम्री वा मृत्तिकोद्भवा ॥७२॥

पद्मा–साधक सर्वप्रथम ताँबे की या मिट्टी की चरुस्थली बनाये ।

हरि०–चरुकर्मैवाह चरुस्थालीत्यादिभिः॥७२॥

कुशण्डिकोक्तविधिना द्रव्यसंस्करणावधि ।
कृत्वा कर्म चरुस्थालीमानयेदात्मसम्मुखे ॥७३॥

पद्मा–इसके उपरान्त कुशकण्डिका में कही हुई विधि के अनुसार द्रव्य का संस्कार करे तथा सभी कर्म करके अपने सम्मुख चरुस्थाली को लाये ।

हरि०–कुशण्डिकेत्यादि। कुशण्डिकोक्तविधिना द्रव्यसंस्करणावधि द्रव्यसंस्कारपर्यन्तं सर्वं कर्म कृत्वा चरुस्थालीमात्मसम्मुखे देशे आनयेत् ॥७३॥

अक्षतामव्रणां दृष्ट्वा प्रादेशपरिमाणकम् ।
पवित्रकुशमेकञ्च स्थालीमध्ये नियोजयेत् ॥७४॥

पद्मा–इसक चरुस्थाली को अक्षत एवं छिद्ररहित देखकर प्रादेश बराबर एक पवित्र कुश थाली के मध्य रखे ।

हरि०–अक्षतामिति! ततोऽक्षतामभग्नामव्रणामच्छिद्रां चरुस्थालीं दृष्ट्वा प्रादेशपरिमाणकमेकं पवित्रकुशं स्थालीयमध्ये नियोजपेत् स्थापयेत् ॥७४॥

आनीय तण्डुलांस्तत्र संथाप्य स्थण्डिलान्तिके ।
यस्मिन् कर्मणि ये देवाः पूजनीयाः सुरार्चिते ॥७५॥
तत्तन्नाम चतुर्थ्यन्तमुक्त्वा त्वाजुष्टमीरयन् ।
गृह्णामि निर्वपामीति प्रोक्षामीति क्रमाद्वदन् ॥७६॥
गृहीत्वा निर्वपेत् स्थाल्यां प्रोक्षयेज्जलबिन्दुना ।
प्रत्येकञ्चतुरो मुष्टीन् देवमुद्दिश्य तण्डुलान् ॥७७॥

पद्मा–हे सुरार्चिते ! इसके उपरान्त यज्ञस्थल में चावल लाकर स्थण्डिल के समीप रखे। जिस कर्म में जिस देवता की पूजा करने की प्रथा है उसके नाम में चतुर्थी विभक्ति लगाकर उसका नाम उल्लेखकर **त्वां जुष्टम्** (प्रीतिपूर्वक) कहे तथा क्रमशः **गृह्णामि** (स्वीकार करता हूँ) निर्वपामि (स्थाली में रखता हूँ) प्रोक्षामि (जल छिड़कता हूँ) कहक प्रत्येक देवता के लिये चार-चार मुट्ठी चावल लेकर स्थाली पर रखे तथा जल छिड़के ।

विमर्श–अमुकदेवाय त्वां जुष्टं गृह्णामि इस मन्त्र से चावल ग्रहण करके **अमुकदेवाय त्वां जुष्टं निर्वयामि** इस मंत्र से उस स्थाली में स्थापित करे। तदुपरान्त **अमुकदेवाय त्वां जुष्टं प्रोक्षामि** मन्त्र पढ़कर इन चावलों में जल डाले ।

हरि०–आनीयेत्यादि। ततस्तत्र यज्ञस्थाने तण्डुलानानीय स्थण्डिलान्तिके संस्थाप्य च यस्मिन् ऋतुसंस्कारादौ कर्मणि ये देवाः पूजनीयास्तत्तन्नाम चतुर्थ्यन्तमुक्त्वा ततः परं त्वांजुष्टमितीरयन् वदन् ततः परं क्रमादेव गृह्णामीति निर्वपामीति स्तण्डुलान् गृहीत्वा स्थाल्यां निर्वयेत् जलबिन्दुना प्रोक्षयेच्च। अमुकदेवाय त्वाजुष्टं गृह्णामीति मन्त्रेण तण्डुलानादायामुकदेवाय त्वांजुष्टं निर्वपामीति मन्त्रेण स्थाल्या निःक्षिपेत् । अमुक देवाय त्वांजुष्टं प्रोक्षामीति मन्त्रेण जलबिन्दुना तानभिषिञ्चेच्चेत्यर्थः। तु आजुष्टमिति छेदः। आजुष्टम् प्रीतिः। आजुष्टमिति क्रियाविशेषणम् ॥७५-७७॥

ततो दुग्धं सिताञ्चैव दत्त्वा पाकविधानतः ।
सुपचेत् संस्कृते वह्नौ सावधानेन सुव्रते ! ॥७८॥

पद्मा–हे सुव्रते ! उन चावलों में दूध एवं शक्कर डालकर एकाग्रचित्त से पाक विधान से सुसंस्कृत अग्नि में पकाये ।

हरि०–तत इति। हे सुव्रते ! ततः परं क्रमेण दुग्धं सिताज्ञ स्थाल्यां दत्त्वा सावधानेन मनसा संस्कृते वह्नौ पाकविधानतश्चरुं सुपचेत् ।।७८।।

सुपक्वं कोमलं ज्ञात्वा दद्यात् तत्र घृतस्रुवम् ।।७९।।

पद्मा–साधक जब समझे कि अन्न पक गया है तथा कोमल हो गया है तब उसमें स्रुवा से घी डाले ।

हरि०–सुपक्वमिति। ततः सुपक्वं कोमल चरुं घृतस्रुवं घृतपूर्णस्रुवं दद्यात् ।।७९।।

अग्नेरुत्तरतः पात्रं विनिधाय कुशोपरि ।
पुनस्त्रिधा घृतं दत्त्वा स्थालीमाच्छादयेत् कुशैः ।।८०।।

पद्मा–अग्नि की उत्तर दिशा में कुश के ऊपर चरुपात्र स्थापित कर उसमें पुनः तीन बार घी डालकर कुश द्वारा चरुस्थाली को ढक दे ।

हरि०–अग्नेरिति। ततश्चरुपात्रमग्नेरुत्तार्याग्नेरुत्तरतो देशे कुशोपरि विनिधाय संस्थाप्य च पुनस्त्रिधा त्रिवारं तत्र घृतं दत्त्वा कुशैः स्थालीमाच्छादयेत् ।।८०।।

ततः स्रुवे चरुस्थाल्या घृताधारणपूर्वकम् ।
किञ्चिच्चरुं समादाय जानुहोमं समाचरेत् ।।८१।।

पद्मा–तत्पश्चात् चरुस्थली से स्रुव नामक यज्ञ पात्र में कुछ चरु लेकर उसमें घी डालकर जानुहोम करे ।

हरि०–तत इति। ततः परं घृताधारणपूर्वकं घृतसेचनपूर्वकं चरुस्थाल्याः सकाशात् किञ्चिच्चरुं स्रुवे समादाय गृहीत्वा जानुहोमं समाचरेत् कुर्यात् । पृथिव्यां दक्षिणं जानु पातयित्वा यो होमो विधीयते स एव जानुहोम ज्ञातव्यः।।८१।।

धाराहोमं ततः कृत्वा प्रधानीभूतकर्मणि ।
यत्र ये विहिता देवास्तन्मन्त्रैराहुतीर्हुनेत् ।।८२।।

पद्मा–इसके पश्चात् धारा होम करके प्रधान कर्म में यहाँ जो देवता पूजनीय हो, उन्हीं देवताओं को मन्त्र द्वारा आहुति प्रदान करे।

हरि०–धारयेत्यादि। ततो धाराहोम कृत्वा यत्र यस्मिन् प्रधानीभूतकर्मणि ये देव्याः पूज्या विहितास्तन्मन्त्रैस्तेषां देवानां मन्त्रैराहुतीर्हुनेदद्यात् ।।८२।।

समाप्य प्रकृतं होमं स्विष्टिकृद्धोमपूर्वकम् ।
प्रायश्चित्तात्मकं हुत्वा कुर्यात् कर्मसमपनम् ।।८३।।
संस्कारेषु प्रतिष्ठासु विधिरेषः प्रकीर्तितः ।
विधेयः शुभकर्मादौ कर्मसंसिद्धिहेतवे ।।८४।।
अथोच्यते महामाये ! गर्भादानादिकाः क्रियाः ।
तत्रादावृतुसंस्कारः कथ्यते क्रमतः शृणु ।।८५।।

पद्मा–इस प्रकार प्रकृत होम कर्म समाप्त करके स्विष्टकृत् होम को पूर्ण कर प्रायश्चित् होम करके कर्म समापन करे। दशविध संस्कार के समय तथा प्रतिष्ठा के समय इसी प्रकार

की विधि कही गयी है। शुभकर्म के प्रारम्भ में कर्मसिद्धि के लिये इस प्रकारकी विधि के अनुसार अनुष्ठान करे। हे महामाये ! अब मैं गर्भाधान आदि समस्त क्रियाओं का वर्णन करता हूँ। उसमें प्रथम ऋतु संस्कार कहता हूँ उसे तुम सुनो ।

हरि०–समाप्येति । एवं प्रकृत होमं समाप्य स्विष्टिकृद्धोमपूर्वकं प्रायश्चित्तात्मकं हुत्वा होमं कृत्वा कर्मसमापनं होमकर्मणः समाप्तिः कुर्यात् ॥८३-८५॥

कृतनित्यक्रियाः शुद्धः पञ्चदेवान् समर्चयेत् ।
ब्रह्मा दुर्गा गणेशश्च ग्रहा दिक्पतयस्तथा ।।८६।।

पद्मा–साधक नित्यकर्म समाप्त कर, शुद्ध शरीर होकर सर्वप्रथम पञ्च देवताओं की की पूजा करे। यह पञ्च देवता ब्रह्मा, दुर्गा, गणेश, ग्रहसमूह तथा दिक्पाल गण हैं ।

हरि०–ऋतुसंस्कारविधिमाह कृतनित्यक्रिया इत्यादिभिः। ननु कान् पञ्चदेवान् समर्चयेदित्यपेक्षायामाह ब्रह्मेत्यादि॥८६॥

स्थण्डिलस्येन्द्रदिग्भागे घटेष्वेतान् प्रपूजयेत् ।
ततस्तु मातृकाः पूज्या गौर्याद्याः षोडश क्रमात् ।।८७।।

पद्मा–स्थण्डिल की पूर्व दिशा में घट के ऊपर इन समस्त देवताओं की पूजा कर क्रमशः गौरी आदि सोलह मातृकाओं का पूजन करें ।

हरि०–स्थण्डिलस्येत्यादि। स्थण्डिलस्य चत्वरस्येन्द्रदिग्भागे पूर्वभागे संस्थापितेषु पञ्चसु घटेष्वेतान् ब्रह्मादीन् देवान् गन्धपुष्पादिभिः प्रपूजयेत् ॥८७॥

गौरी पद्मा शची मेधा सावित्री विजया जया ।
देवसेना स्वधा स्वाहा शान्तिः पुष्टिर्धृतिः क्षमा ।
आत्मनो देवता चैव तथैव कुलदेवताः ।।८८।।

पद्मा–गौरी, पद्मा, शची, मेधा, सावित्री, विजया, जया, देवसेना, स्वधा, स्वाहा, शान्ति, पुष्टि, धृति, क्षमा आत्मदेवता तथा कुलदेवता ।

हरि०–पूज्या गौर्याद्याः षोडशमातृका एव दर्शयति गौरीत्यादिना सार्द्धेन॥८८॥

आयान्तु मातरः सर्वास्त्रिदशानन्द कारिकाः ।
विवाहव्रतयज्ञानां सर्वाभीष्टं प्रकल्प्यताम् ।।८९।।
यानशक्तिसमारूढाः सौम्यमूर्तिधराः सदा ।
आयान्तु मातरः सर्वा यज्ञोत्सवसमृद्धये ।।९०।।

पद्मा–हे देवगण को आनन्द प्रदान करने वाली सभी माताओ ! आप सभी आयें ! विवाह, व्रत तथा यज्ञों के सभी अभीष्टफल को प्रदान करें। हे सभी माताओ ! आप भी अपने अपने यान और शक्ति पर सवार होकर सदैव सौम्यमूर्ति धारण कर, यज्ञोत्सव की समृद्धि के लिये आयें ।

हरि०–अथ गौर्यादिषोड्मातृका वाहनार्थं मन्त्रद्वयमाह आयान्तु मातरः **सर्वास** इत्यादि ॥८९-९०॥

इत्यावाह्य मातृगणान् स्वशक्त्या परिपूज्य च ।
देहल्यां नाभिमात्रायां प्रादेशपरिमाणतः ।
सप्त वा पञ्च वा बिन्दून् दद्यात् सिन्दूरचन्दनैः ।।९१।।

पद्मा–इस प्रकार मातृकागणों का आवाहन कर यथाशक्ति उनका पूजन करके नाभि तक ऊँची देहली से प्रदेश तक स्थान में सिन्दूर तथा चन्दन द्वारा सात अथवा पाँच बिन्दु अंकित करे ।

हरि०–इतीत्यादि। इत्याभ्यां मन्त्राभ्यं मातृगणानावाह्य स्वशक्त्या गन्धपुष्पादिभिः परिपूज्य च नाभिमात्रायां नाभिपरिमितायां देहल्यां प्रोदशपरिमाणतः प्रादेशपरिमिते देशे सप्त वा पञ्च वा बिन्दून् सिन्दूरचन्दनैर्दद्यात् ।।९१।।

प्रत्येकबिन्दुं मतिमान् कामं मायां रमां स्मरन् ।
घृतधारामविच्छिन्नां दत्त्वा तत्र वसुं यजेत् ।।९२।।

पद्मा–बुद्धिमान व्यक्ति काम, माया, रमा अर्थात् क्लीं ह्रीं श्रीं इन तीनों बीजों का स्मरण करते हुए प्रत्येक बिन्दु के ऊपर की ओर लगातार घी की धारा प्रदान कर उसमें गन्धपुष्पादि से वसु नामक देवता की पूजा करे ।

हरि०–प्रत्येकेत्यादि। मतिमान् कर्मसाधकः कामं क्लीमिति मायां ह्रीमिति रमां श्रीमिति च बीजं स्मरन् प्रत्येकबिन्दुमविच्छिन्नां घृतधारा दत्त्वा तत्रैव वसु देवं गन्धपुष्पादिभिर्यजेत् ।।९२।।

वसुधारां प्रकल्प्यैवं मयोक्तेनैव वर्त्मना ।
विरच्य स्थण्डिलं धीरो वह्निस्थापनपूर्वकम् ।
होमद्रव्याणि संस्कृत्य पचेच्चरुमनुत्तमम् ।।९३।।

पद्मा–धीर पुरुष, मेरे द्वारा कही गयी पद्धति से इस प्रकार वसुधारा की रचना कर स्थण्डिल को बनाकर उसमें वह्नि (अग्नि) को स्थापित करे, फिर होमद्रव्य का संस्कार कर श्रेष्ठ चरुपाक बनाये ।

हरि०–वसुधारामित्यादि। मयोक्तेनैव वर्त्मनैवमनेन प्रकारेण वसुधारां प्रकल्प्यसम्पाद्य धीरो विचक्षणः कर्मसाधकः स्थण्डिलं चत्वरं विरच्य तत्र वह्निस्थापनपूर्वकं होमद्रव्याणि संस्कृत्य च अनुत्तमं न विद्यते उत्तमो यस्मादेवं भूतं चरु पचेत् ।।९३।।

प्राजापत्यश्चरुश्चात्र वायुनामा हुताशनः ।
समाप्य धाराहोमान्तं कृत्यमार्त्तवमारभेत् ।।९४।।

पद्मा–इस ऋतुसंस्कार में जो चरु बनाया जाता है उसका नाम प्राजापत्य है तथा इसमें स्थापित अग्नि का नाम वायु है। धारा होम तक सभी कार्यों को करके ऋतु कर्म का प्रारम्भ करे।

हरि०–प्रजापत्य इत्यादि। अत्र ऋतुसंस्कारकर्मणि यश्चरुः पच्यते स प्राजापत्यः प्रजापतिदेवताको भवति। हुताशनोऽग्निश्च वायुनामा भवति। ततः पूर्वोक्तेन विधिना धाराहोमान्तं कर्म समाप्य कृत्यं कर्त्तव्यं आर्त्तवमृतुसंस्कारकर्मारभेत् ।।९४।।

ह्रीं प्रजापतये स्वाहा चरुणैवाहुतित्रयम् ।
प्रदायैकाहुतिं दद्यादिमं मन्त्रमुदीरयन् ।।९५।।

पद्मा–**ह्रीं प्रजापतये स्वाहा** इस मन्त्र को पढते हुए चरु द्वारा अग्नि को तीन आहुतियाँ प्रदान करे, फिर इस मन्त्र (श्लोक ९६ देखें) से एक आहुति प्रदान करें।

हरि०–**ह्रींमित्यादि।** ह्रीं प्रजापतये स्वाहेति मन्त्रेण प्रजापतिमुद्दिश्य चरुणैवाहुतित्रयं प्रदाय इयं वक्ष्यमाणं मन्त्रमुदीरयन् सन् एकाहुतिं दद्यात् ॥९५॥

विष्णुर्योनिं कल्पयतु त्वष्टा रूपाणि पिंशतु ।
आसिञ्चतु प्रजापतिर्धाता गर्भं दधातु ते ।।९६।।

पद्मा–विष्णु योनि की रचना करें त्वष्टा रूप को दीपित करें। प्रजापति अभिषेक करें। धाता तुम्हारे गर्भ का पोषण करें।

हरि०–एकाहुतिदानार्थं मन्त्रमाह विष्णुर्योनिमिति। पिंशतु दीपयतु ॥९६॥

आज्येन चरुणा वापि साज्येन चरुणापि वा ।
सूर्यं प्रजापतिं विष्णुं ध्यायन्नाहुतिमुत्सृजेत् ।।९७।।
गर्भं देहि शिनीवाली गर्भं देहि सरस्वती ।
गर्भं ते अश्विनौ देवावाधत्तां पुष्करस्रजौ ।।९८।।

पद्मा–इसके पश्चात् सूर्य, प्रजापति और विष्णु का ध्यान करके घी द्वारा, चरु द्वारा या घीसहित चरु द्वारा आहुति प्रदान करें। तुम शिनीवालीस्वरूपा होकर गर्भधारण करो। तुम सरस्वतीस्वरूप होकर गर्भधारण करो। कमल पुष्प की माला धारण किये हुए दोनों अश्विनीकुमार तुम्हारा गर्भाधान करें।

हरि०–**आज्येनेत्यादि।** विष्णुर्योनिमित्यादिना मन्त्रेणाज्येन घृतेन वा चरुणैव वा साज्येन सघृतेन चरुणा वा सूर्यं प्रजापतिं विष्णुञ्चध्यायन् सन् तानेवोद्दिश्यैकामाहुतिमुत्सृजेद्दद्यात् ॥९७-९८॥

ध्यात्वा देवीं शिनीवालीं सरस्वत्यश्विनौ तथा ।
स्वाहान्तमनुनाऽनेन दद्यादाहुतिमुत्तमाम् ।।९९।।

पद्मा–देवी शिनीवाली, सरस्वती तथा अश्विनीकुमारों को स्मरण करके **ह्रीं गर्भं देहि शिनीवाली गर्भं देहि सरस्वती । गर्भं ते अश्विनौ देवावाधत्तां पुष्कर स्रजौ ।** स्वाहा। मन्त्र का उच्चारण कर आहुति दे।

हरि०–**ध्यात्वेत्यादि।** अनेन गर्भं देहि शिनीवालीत्यादिना स्वाहान्तेन मनुना शिनीवाली देवीं तथा सरस्वत्यश्विनौ सरस्वतीसहिताविश्विनौ देवौ च ध्यात्वा उत्तमायाहुतिं दद्यात् ॥९९॥

ततः कामं वधूं मायां रमां कूर्च्चं समुच्चरन् ।
अमुष्यै पुत्रकामायै गर्भमाधेहि सद्विठम् ।
उक्त्वा ध्यात्वा रविं विष्णुं जुहुयात् संस्कृतेऽनले ।।१००।।

पद्मा–इसके पश्चात् काम (क्लीँ) वधू (स्त्रीँ) माया (ह्रीँ) रमा (श्रीँ) कूर्च्च (हूँ) का उच्चारण करके **'अमुष्यै पुत्र कामायै गर्भमाधेहि स्वाहा'** इस मन्त्र का उच्चारण कर सूर्य एवं विष्णु का ध्यान करके संस्कारित अग्नि में आहुति प्रदान करे।

हरि०–तत इत्यादि। ततः परं कामं क्लीमिति वधूं स्त्रीमिति मायां ह्रीमिति रमां श्रीमिति कूर्च्चं हूमिति च बीजं समुच्चरन् सद्विठं स्वाहासहितममुष्यै पुत्रकामायै गर्भमाधेहीत्युक्त्वा क्लीँ स्त्रीँ ह्रीँ श्रीँ हूँ अमुष्यै पुत्रकामायै गर्भमाधेहि स्वाहेति मन्त्रमुच्चार्य रविं विष्णुञ्च रविं विष्णुञ्च ध्यात्वा संस्कृतेऽनले जुहुयात् ॥१००॥

यथेयं पृथिवीं देवी ह्युताना गर्भमादधे।
तथा त्वं गर्भमाधेहि दशमे मासि सूतये।
स्वाहान्तेनाऽमुना विष्णुं ध्यायन्नाहुतिमाहरेत् ॥१०१॥

पद्मा–यह विस्तारवाली पृथ्वीदेवी जिस प्रकार से गर्भधारण करती है वैसे ही दशवें माह में प्रसव के लिये तुम गर्भधारण करो, इस मन्त्र को पढ़कर 'स्वाहा' पद का उच्चारण करे तथा भगवान् विष्णु का ध्यान कर आहुति प्रदान करे।

हरि०–यथेयमिति। सूतये प्रसवाय। स्वाहान्तेनामुना यथेयं पृथिवीत्यादिना मन्त्रेण विष्णुं ध्यायंस्तमेवोद्दिश्याहुतिमाहरेद्वह्नौ दद्यात् ॥१०१॥

पुनराज्यं समादाय ध्यात्वा विष्णुं परात्परम्।
विष्णो ज्येष्ठेन रूपेण नार्यामस्यां वरीयसम्।
सुतमाधेहि ठद्वन्द्वमुक्त्वा वह्नौ हविस्त्यजेत् ॥१०२॥

पद्मा–पुनः घी लेकर परात्पर विष्णु का ध्यान करके विष्णो! **ज्येष्ठेन रूपेण नार्यामस्यां वरीयसम्।** सुतमाधेहि स्वाहा। (अर्थात् हे विष्णो! तुम श्रेष्ठ रूप द्वारा इस नारी में श्रेष्ठ सन्तान का आधान करो) यह मन्त्र पढ़कर अग्नि में आहुति प्रदान करे।

हरि०–पुनरित्यादि। पुनराज्यं घृतं समादाय गृहीत्वा परादपि परं श्रेष्ठं विष्णुं ध्यात्वा तमेवोद्दिश्य विष्णो ज्येष्ठेन रूपेण नार्यामस्यां वरीयसं सुतमाधेहि स्वाहेति मन्त्रमुक्त्वा वह्नौ हविर्घृतं त्यजेदित्यन्वयः। ज्येष्ठेन श्रेष्ठेन रूपेण विशिष्टम् वरीयसमतिवरमतिश्रेष्ठमित्यर्थः। ठद्वन्द्वं स्वाहा॥१०२॥

कामेन पुटितां मायां मायया पुटितां वधूम्।
पुनः कामञ्च मायाञ्च पठित्वाऽस्याः शिरः स्पृशेत् ॥१०३॥

पद्मा–इसके पश्चात् कामबीजपुटितमाया (**क्लीँ ह्रीँ क्ली**) तथा माया पुटित वधू (**ह्रींस्त्रीं ह्रीं**) तथा पुनः काम **क्लीँ** मायाबीज **ह्रीँ** का पाठ कर अपनी पत्नी के मस्तक का स्पर्श करें।

हरि०–कामेनेति। ततः कामेन क्लीमिति बीजेन पुटितामादावन्ते च संयुक्तां मायां ह्रीँ बीजं तथैव मायया ह्रीँ बीजेन पुटितां वधूं स्त्रीँ बीजं पुनः कामं क्लीँ बीजं च मायां ह्रीँ बीजं च पठित्वा योजनया क्लीँ ह्रीँ क्लीँ ह्रीँ स्त्रीँ ह्रीँ क्लीँ ह्रीमिति मन्त्रं पठित्वा अस्याः भार्यायाः शिरः स्पृशेत् ॥१०३॥

पतिपुत्रवतीभिश्च नारीभिः परिवेष्टितः ।
शिरश्चालाभ्य हस्ताभ्यां बध्वाः क्रोडाञ्चले पतिः।।१०४।।
विष्णुं दुर्गां विधिं सूर्यं ध्यात्वा दद्यात् फलत्रयम् ।
ततः स्विष्टिकृतं हुत्वा प्रायश्चित्या समापयेत् ।।१०५।।

पद्मा–इसके पश्चात् पतिपुत्रवती स्त्रियों के साथ पति अपने दोनों हाथों से पति के माथे को स्पर्श कर विष्णु, दुर्गा, विधि तथा सूर्य का ध्यान करने के उपरान्त उसकी गोदी के आञ्चल में तीन फल प्रदान कर स्विष्टकृत होम कर प्रायश्चित्त होम द्वारा कर्म को समाप्त करे।

हरि०–पतीत्यादि। पतिपुत्रवतीभिनारीभिः परिवेष्टितः पतिर्हस्ताभ्यां बध्वाः शिरश्चालभ्य स्पृष्ट्वा तस्या एव क्रोडाञ्चले हस्ताभ्यां विष्णुं दुर्गां विधिं प्रजापतिं सूर्यञ्च ध्यात्वा फलत्रयं दद्यात् । समापयेत् आर्त्तवं कर्मेति शेषः ।।१०४-१०५।।

यद्वा प्रदोषसमये गौरीशङ्करपूजनात् ।
भास्करार्घ्यप्रदानाच्च दम्पत्योः शोधनं भवेत् ।।१०६।।
आर्त्तवं कथितं कर्म गर्भाधानमथो शृणु ।।१०७।।

पद्मा–अथवा सायंकाल में गौरीशंकर की पूजा कर सूर्यार्घ्य प्रदान कर दम्पत्ति का शोधन करे। यह तुमसे ऋतुशोधन कर्म कहा अब गर्भाधान कर्म सुनो ।

हरि०–अथान्यदृतुसंस्कारस्य विधानमाह यद्वेत्यर्धेकेन । प्रदोषसमये रात्र्यारम्भ समये ।।१०६-१०७।।

तद्रात्रावन्यरात्रौ वा युग्मायां निशि भार्यया ।
सदनाभ्यन्तरं गत्वा ध्यात्वा देवं प्रजापतिम् ।।१०८।।
स्पृशन् पत्नीं पठेद्भर्ता मायाबीजपुरःसरम् ।
आवयोः सुप्रजायै त्वं शय्ये शुभकरी भव ।।१०९।।

पद्मा–उसी ऋतुसंस्कार की रात्रि में या किसी अन्य युग्म रात्रि में पत्नी के साथ घर के भीतर जाकर प्रजापति देव का ध्यान कर पत्नी को स्पर्श करते हुए मायाबीज ह्रीं का उच्चारण कर **आवयोः सुप्रजायै त्वं शय्ये शुभकरी भव** (हे शय्ये ! हम दोनों की उत्तम सन्तान के लिये तुम शुभकारी बनो) मन्त्र पढ़े ।

हरि०–अथ गर्भाधान क्रियाविधिमेवाह तद्रात्रवित्यादिभि। तद्रात्रावृतुसंस्कार रात्रावन्यरात्रौ वा युग्मायामेव निशि भार्यया सह सदानाभ्यन्तरं गत्वा प्रजापतिं देवं ध्यात्वा च पत्नीं स्पृशन् भर्त्ता मायाबीजपुरःसरं मायाबीजं ह्रीमिति पुरःसरमग्रे सरं यत्रैवम्भूतं आवयोः सुप्रजायै त्वं शय्ये शुभकरी भवेति मन्त्र पठेत् ।।१०८-१०९।।

आरुह्य भार्यया शय्यां प्राङ्मुखो वाप्युदङ्मुखः ।
उपविश्य स्त्रियं पश्यन् हस्तमाधाय मस्तके ।
वामेन पाणिनाऽऽलिङ्ग्य स्थाने स्थाने मनुं जपेत् ।।११०।।

पद्मा–तदुपरान्त पत्नी के साथ शय्या पर चढ़कर पूर्व की ओर मुख करके या उत्तर

की ओर मुख करके बैठे तथा पत्नी की ओर देखते हुए उसके माथे पर हाथ रखकर बायें हाथ से आलिङ्गन करने के उपरान्त स्थान-स्थान पर मन्त्र का जप करे।

हरि०-आरुह्येति। ततो भार्यया भर्त्ता तस्या मस्तके दक्षिणं हस्तमाधाय वामेन पाणिना तामालिङ्ग्य च स्थाने स्थाने मनुं जपेत् ॥११०॥

शीर्षे कामं शतं जप्त्वा चिबुके वाग्भवं शतम् ।
कण्ठे रमां विंशतिधा स्तनद्वन्द्वे शतं शतम् ।।१११।।

पद्या-पुरुष अपनी पत्नी के माथे पर कामबीज **क्लीं** का सौ बार, चिबुक पर वाग्भव बीज ऐं का सौ बार, कण्ठ पर रमाबीज **श्रीं** का २० बार, दोनों स्तनों पर **श्रीं** बीज को सौ-सौ बार जप करे।

हरि०-ननु कस्मिन् कस्मिन् स्थाने कं कं मन्त्रं जपेदित्यपेक्षायामाह शीर्षे काममित्यादि। शीर्षे मस्तके कामं क्लीमिति मन्त्रं शतवारं जप्त्वा चिबुके ओष्ठाधराभागे च वाग्भवम् ऐमिति मन्त्रं शतवारं जप्त्वा कण्ठे च रमां श्रीमिति मन्त्रं विंशतिधा विंशतिवारं जप्त्वा स्तनद्वन्द्वे च श्रीमिति मन्त्रं शतं शतं जपेत् ॥१११॥

हृदये दशधा मायां नाभौ तां पञ्चविंशतिम् ।
जप्त्वा योनौ करं दत्त्वा कामेन सह वाग्भवम् ।।११२।।
शतमष्टोत्तरं जप्त्वा लिङ्गेऽप्येवं समचरन् ।
विकाश्य मायया योनिं स्त्रियं गच्छेत् सुताप्तये ।।११३।।

पद्या-हृदय पर मायाबीज ह्रीं का दसबार, नाभि में मायाबीज **ह्रीं** का पच्चीस बार (२५) बार जप कर पुरुष अपने हाथ को अपनी स्त्री की योनि में रखकर कामबीज सहित वाग्भव **क्ली ऐं** का १०८ बार जप कर अपने लिङ्ग पर भी **क्ली ऐं** मन्त्र का जप करे। **ह्रीं** मन्त्र का जप कर योनि को विकसित कर सन्तान की इच्छा के साथ सम्भोग करे।

हरि०-हृदये इत्यादि। ततोभार्याया हृदये मायां ह्रीमिति मन्त्रं दशधा जप्त्वा नाभौ च तां माया ह्रीमिति मन्त्रं पञ्चविंशतिवारं जप्त्वा योनौ च दत्त्वा कामेन क्लीमिति बीजने सह वाग्भवं ऐमिति मन्त्रमष्टोत्तर शतं जप्त्वा लिङ्गेऽप्येवं क्लीं ऐमिति मन्त्रस्य जपं समाचरन् पतिभार्यया ह्रीमिति मन्त्रेण योनिं विकाश्य ध्यादाय सुताप्तये पुत्रप्राप्तये स्त्रियं गच्छेत् ॥११२-११३॥

रेतः सम्पातसमये ध्यात्वा विश्वकृतं पतिः ।
नाभेरधस्तात् चित्कुण्डे रक्तिकायां प्रपातयेत् ।।११४।।
शुक्रसेकान्तरे विद्वानिमं मन्त्रमुदीरयेत् ।।११५।।

पद्या-वीर्यपात के समय पुरुष प्रजापति का ध्यान कर नाभि के नीचे चित्कुण्ड (योनि) में रक्तिका नाड़ी में वीर्य डाले। वीर्यपात के समय निम्न मन्त्र का उच्चारण करे। (११६ वाँ श्लोक मन्त्ररूप में है)।

हरि०-रेतः सम्पातेत्यादि। रेतः सम्पातसमये वीजसम्पातन काले पतिर्विश्वकृतं प्रजापतिं ध्यात्वा नाभेरधस्ताच्चित्कुण्डे रक्तिकायां नाड्यां बीजं प्रपातयेत ॥११४-११५॥

यथाऽग्निना सगर्भा भूर्द्यौर्यथा वज्रधारिणा ।
वायुना दिग्गर्भवती तथा गर्भवती भव ।।११६।।
जाते गर्भे ऋतौ तस्मिन्नन्यस्मिन् वा महेश्वरि ।
तृतीये गर्भमासे तु चरेत् पुंसवनं गृही ।।११७।।

पद्मा–जैसे पृथ्वी, अग्नि द्वारा गर्भवती होती है। अमरावती इन्द्र को धारण कर गर्भवती होती है, दिशा जिस प्रकार वायु द्वारा गर्भवती होती है उसी प्रकार तुम भी गर्भवती हो। हे महेश्वरि ! उसी ऋतु में अथवा अन्य ऋतु में गर्भ ठहरने पर गर्भाधान के तीसरे महीने में गृहस्थ पुंसवन संस्कार करे ।

हरि०–बीजसेकान्तरे यं मन्त्रं भर्ता पठेत्तमेव मन्त्रमाह यथाग्निवेति। भूः पृथ्वी द्यौः स्वर्गः। वज्रधारिणा इन्द्रेण॥११६-११७॥

कृतनित्यक्रियो भर्त्ता पञ्च देवान् समर्चयेत् ।
गौर्यादिमातृकाश्चैव वसोर्धारां प्रकल्पयेत् ।।११८।।
वृद्धिश्राद्धं ततः कृत्वा पूर्वोक्तविधिना सुधीः ।
धाराहोमान्तमापाद्य कुर्यात् पुंसवनक्रियाम् ।।११९।।

पद्मा–पुंसवन संस्कार के समय पति नित्यकर्म समाप्त कर पञ्चदेवताओं की पूजा करे। इसके उपरान्त गौरी आदि सोलह मातृकागणों की पूजा कर वसोर्धारा प्रदान करे। सुधी मनुष्य वृद्धिश्राद्ध करके पूर्वोक्त विधि के अनुसार धारा होम तक कर्म सम्पन्न कर पुंसवन क्रिया करे ।

हरि०–पुंसवनक्रियाविधिमेवाह कृतनित्यक्रिया इत्यादिभिः। कृतनित्यक्रियो भर्त्ता पूर्वोक्तान् ब्रह्मादीन् पञ्च देवान् समर्चयेत् ॥११८-११९॥

प्राजापत्यश्चरुस्तत्र चन्द्रनामा हुताशनः ।।१२०।।

पद्मा–पुंसवन संस्कार में प्राजापत्य नामक चरु तथा इन्द्र नामक अग्नि होते हैं।

हरि०–तत्र पुंसवनक्रियायाम् ॥१२०॥

गव्ये दध्नि यवञ्चैकं द्वौ माषावपि निक्षिपेत् ।
पतिः पृच्छेत् स्त्रियं भद्रे किं त्वं पिबसि त्रिःकृतम् ।।१२१।।

पद्मा–पति गाय के दही में एक जौ (यव) तथा दो उड़द (माष) डालकर पत्नी से तीन बार पूछे भद्रे ! किं त्वं पिबसि ? अर्थात् हे भद्रे ! तुम क्या पीती हो ।

हरि०–**गव्ये इत्यादि**। गव्ये गोसम्बन्धिनि दध्नि एकं यवं द्वौ माषावपि निःक्षिपेत् ततो हे भद्रेऽपत्नि त्वं किं पिबसीति पतिस्त्रिं कृतं त्रिवारं स्त्रियं पृच्छेत् ॥१२१॥

ततः सीमन्तिनी ब्रूयात् मायापुंसवनं त्रिधा ।
प्रसृतींस्त्रीन पिबेन्नारी यवमाषयुतं दधि ।।१२२।।

पद्मा–उत्तर में पत्नी तीन बार कहे–ह्रीं पुंसवनम् (पुत्र प्रसव की कारणभूत वस्तु पीती हूँ)। फिर पत्नी तीन प्रसृति जौ तथा उड़दयुक्त दही को तीन बार पिये ।

हरि०-तत इति। ततः परं मायापुंसवनं ह्रीं पुसंवनमिति सीमन्तिनी स्त्री त्रिधा त्रिवारं ब्रूयात्। ततो नारी यागस्थानादन्यत्र त्रीन् प्रसृतीन् पवमाषयुक्तं दधि पिबेत् ॥१२२॥

जीवत्सुताभिर्वनितां यागस्थानं समानयेत्।
संस्थाप्य वामभागे तां चरुहोमं समाचरेत् ॥१२३॥

पद्मा-इसके पश्चात् जीवित पुत्रों वाली नारियों के साथ पत्नी को पति यागस्थान में लाए तथा अपनी बायीं ओर उसे बैठाकर चरुहोम प्रारम्भ करे।

हरि०-जीवदित्यादि। ततो जीवन्तः सुताः पुत्रा यासान्ता जीवत्सुतास्ताभिः स्त्रीभिः सह वनितां स्त्रियं यागस्थानं समानयेत्। तां वनितां वामभागे संस्थाप्य चरुहोमं समाचरेत् ॥१२३॥

पूर्ववच्चरुमादाय मायां कूर्च्चं समुच्चरन्।
ये गर्भविघ्नकर्त्तारो ये च गर्भविनाशकाः ॥१२४॥
भूताः प्रेताः पिशाचाश्च वेताला बालघातकाः।
तान् सर्वान् नाशय द्वन्द्वं गर्भरक्षां कुरु द्विठः ॥१२५॥
मन्त्रेणानेन रक्षोघ्नं चिन्तयित्वा हुताशनम्।
रुद्रं प्रजापतिं ध्यायन् प्रदद्यात् द्वादशाहुतीः ॥१२६॥

पद्मा-पूर्व की भाँति चरु लेकर रक्षोघ्न अग्नि का ध्यान करके रुद्र एवं प्रजापति का ध्यान करते हुए ह्रीं हू। **ये गर्भविघ्नकर्त्तारो ये च गर्भविनाशकाः। भूताः प्रेता पिशाचाश्च वेताला वेताला बालघातकाः।। तान् सर्वान् नाशय नाशय गर्भरक्षा कुरु कुरु स्वाहा।।** (गर्भ में विघ्न करने वाले और गर्भ का नाश करने वाले जो भी भूत-प्रेत पिशाच वेताल तथा बालघाती हैं उनका नाश करो, गर्भ की रक्षा करो)। मन्त्र से बारह आहुतियाँ प्रदान करे।

हरि०-पूर्ववदिति। पूर्ववत् स्त्रुवे चरुमादाय गृहीत्वा मायां ह्रीमिति कूर्च्चं हूमिति च बीजं समुच्चरन् ये गर्भेत्यादि तान् सर्वानित्यन्तं वाक्यमुच्चरेत्। ततो नाशय द्वन्द्वमुच्चरेत। ततो गर्भरक्षां कुर्विति वदेत्। ततो द्विठः स्वाहेति वदेत्। सकलपदयोजनया ह्रीं हूं ये गर्भविघ्नकर्त्तारो ये च गर्भ विनाशका भूताः प्रेताः पिशाचाश्च वेताला बालाघातकास्तान् सर्वान्नाशय नाशय गर्भरक्षां कुरु स्वाहेति मन्त्रो जातः। अनेन मन्त्रेण रक्षोघ्न रक्षोघ्ननामानं हुताशनमग्निं चिन्तयित्वा रुद्रं प्रजापतिञ्च ध्यायन् द्वादशाहुतीः प्रदद्यात् ॥१२४-१२६॥

ततो माया चन्द्रमसे स्वाहेत्याहुतिपञ्चकम्।
दत्त्वा भार्याहृदि स्पृष्ट्वा मायां लक्ष्मीं शतं जपेत् ॥१२७॥

पद्मा-इसके पश्चात् **ह्रीं चन्द्रमसे स्वाहा** मन्त्र से पाँच आहुतियाँ प्रदान करे। तब पत्नी के हृदय को स्पर्श कर ह्रीं श्रीं मन्त्र का एक सौ बार जप करे।

हरि०-तत इत्यादि। ततः परं ह्रीं चन्दमसे स्वाहेति मन्त्रेणाहुतिपञ्चकं दत्त्वा भार्याहृदि स्पृष्ट्वा मायां लक्ष्मी ह्रीं श्रीमिति मन्त्रं शतवारं जपेत् ॥१२७॥

ततः स्विष्टिकृतं हुत्वा प्रायश्चित्या समापयेत् ।
ततस्तु पञ्चमे मासि दद्यात् पञ्चामृतं स्त्रियै ।।१२८।।

पद्मा–इसके अनन्तर स्विष्टकृत होम करके प्रायश्चित् होम द्वारा पुंसवन कर्म समाप्त करे। पुरुष पाँचवे महीने में पत्नी को पञ्चामृत प्रदान करे ।

हरि०–समापयेत् पुंसवन् कर्मेति शेषः॥१२८॥

शर्करा मधु दुग्धञ्च घृतं दधि समांशकम् ।
पञ्चामृतमिदं प्रोक्तं देहशुद्धौ विधीयते ।।१२९।।

पद्मा–शक्कर, मधु (शहद) दुध, घी, दही–इन पाँचों को बराबर मात्रा में लेकर एक में मिलाये। यही पञ्चामृत जो देहशुद्धि के लिए उपयोगी है देना चाहिये ।

हरि०–ननु किन्नाम पञ्चामृतमत आह शर्करेत्यादि। समांशकम् तुल्यभागम् ॥१२९॥

वाग्भवं मदनं लक्ष्मीं मायां कूर्च्चं पुरन्दरम् ।
पञ्चद्रव्योपरि शिवे ! प्रजप्य पञ्च पञ्चधा ।
एकीकृत्याऽमृतान्यत्र प्राशयेद्दयितां पतिः ।।१३०।।
सीमन्तोन्नयनं कुर्यान्मासि षष्ठेऽष्टमेऽपि वा ।
यावन्न जायतेऽपत्यं तावत् सीमन्तनक्रिया ।।१३१।।

पद्मा–हे शिवे ! पति इन पाँच द्रव्यों में से प्रत्येक प्रत्येक द्रव्य के ऊपर **वाग्भव ऐं, मदन क्लीं, लक्ष्मी श्रीं, माया ह्रीं, कूर्च्च हूँ** तथा **इन्द्र लं-अर्थात् ऐं क्लीं श्रीं ह्रीं हूँ लं**–इन बीजों का पाँच-पाँच बार जप कर पञ्चामृत बनाकर पत्नी को गर्भ के पाँचवे महीने में पिलाये। छठे या आठवें महीने में सीमन्तोन्नयन संस्कार करे। जब तक सन्तान का जन्म न हो, तब तक की अवधि के बीच में सीमन्तोन्नयन संस्कार करे ।

हरि०–वाग्भवमित्यादि। वाग्भवं ऐमिति मदनं क्लीमिति लक्ष्मीं श्रीमिति मायां ह्रीमिति कूर्च्चं हूमिति पुरन्दरं लमिति च बीजं शर्करादिपञ्चद्रव्योपरि पञ्च पञ्चधा पञ्चपञ्च-वारान् प्रजप्य शर्करादीनि अमृतानि एकीकृत्य पतिर्दयितां भार्याम् अत्र पञ्चमे मासि प्रशयेत् ॥१३०-१३१॥

पूर्वोक्तधाराहोमान्तं कर्म कृत्वा स्त्रिया सह ।
उपविश्याऽऽसने प्राज्ञः प्रदद्यादाहुतित्रयम् ।
विष्णवे भास्वते धात्रे वह्निजायां समुच्चरन् ।।१३२।।
ततश्चन्द्रमसं ध्यात्वा शिवनाम्नि हुताशने ।
सप्तधा हवनं कुर्यात् सोममुद्दिश्य मानवः।।१३३।।
अश्विनौ वासवं विष्णुं शिवं दुर्गां प्रजापतिम् ।
ध्यात्वा प्रत्येकतो दद्यादाहुतीः पञ्चधा शिवे ।।१३४।।

पद्मा–बुद्धिमान् पति पूर्वोक्त धाराहोम तक के समस्त कर्म कर पत्नी सहित आसन पर बैठकर क्रमपूर्वक तीन आहुतियाँ **विष्णवे स्वाहा, भास्वते स्वाहा; धात्रे स्वाहा** से

प्रदान करे। इसके उपरान्त चन्द्रमा का ध्यान कर 'शिव' नामक अग्नि में चन्द्रमा के लिये सात आहुतियाँ प्रदान करे। हे शिवे ! दोनो अश्विनीकुमारों, इन्द्र, विष्णु शिव, दुर्गा, प्रजापति इन सभी का ध्यान कर प्रत्येक को पाँच पाँच आहुतियाँ प्रदान करे।

हरि०–सीमन्तोन्नयनक्रियाविधिमेवाह पूर्वोक्तेत्यादिभिः। प्राज्ञो विद्वान् पुरुषः स्त्रियाँ सहासने उपविश्य पूर्वोक्तधाराहोमान्तं कर्म कृत्वापूर्व विष्णवे इति भास्वते इति धात्रे इति समुच्चरन् ततो वह्निजायां स्वाहा समुच्चरन् विष्णवे स्वाहा सूर्याय स्वाहा प्रजापतये स्वाहेति च मन्त्रं प्रकीर्तयन् सन् विष्णुं सूर्यं प्रजापतिं चोद्दिश्याहुतित्रयं प्रदद्यात् ॥१२-१३४॥

स्वर्णकङ्कतिकां भर्ता गृहीत्वा दक्षिणे करे ।
सीमान्तद्बद्धकेशान्तः केशपाशे निवेशयेत् ।।१३५।।
शिवं विष्णु विधिं ध्यायन् मायाबीजंसमुच्चरन् ।।१३६।।
भार्ये कल्याणि सुभगे ! दशमे मासि सुव्रते ।
सुप्रसूता भव प्रीता प्रसादाद्विश्वकर्मणः ।।१३७।।
आयुष्मती कङ्कतिका वर्च्चस्वी ते शुभं कुरु ।
ततः समापयेत् कर्म स्विष्टकृद्धवनादिभिः ।।१३८।।

पद्मा–पति अपने दाहिने हाथ में सोने की कंघी (स्वर्ण कङ्कतिका) लेकर उसे सीमान्त (माँग) से लेकर बँधे हुए केशपाश (जूड़े) में प्रविष्ट कराये। शिव, विष्णु तथा ब्रह्मा का ध्यान कर **ह्रीं कल्याणि ! शुभगे ! दशमे मासि! सुव्रते ! सुप्रसूता भव प्रीता प्रसादाद् विश्वकर्मणः।। आयुष्मती कङ्कतिका वर्चस्वी ते शुभं कुरु** । (हे आर्ये) ! हे कल्याणि! हे सुभगे ! हे सुव्रते ! तुम दसवें मास में श्रेष्ठ संतान की जन्म देकर विश्वकर्मा की कृपा से प्रसन्न एवं आयुष्मती हो, कंघी तुम्हारे तेज को बढ़ाये। तुम शुभकर्म का अनुष्ठान करो। यह मन्त्र पढ़कर सीमन्तोन्नयन कर्म करके स्विष्टकृत् होमादि के द्वारा कर्म को समाप्त करें ।

हरि०–**स्वर्णेत्यादि**। ततो भर्त्ता दक्षिणे करे स्वर्णकङ्कतिकां सुवर्णमयीं प्रसाधनीं गृहीत्वा पूर्व मायाबीजं ह्रीमिति बीजं समुच्चरन् ततो–

भार्ये कल्याणि सुभगे दशमे मासि सुव्रते ।
सुप्रसूता भव प्रीता प्रसादाद्विश्वकर्मणः ।
आयुष्मती कङ्कतिका वर्च्चस्वी ते शुभं कुरु ।

इति मन्त्रं समुच्चरन् शिवं विष्णु विधिं प्रजापतिञ्च ध्यायन् सन् सीमन्तात् सकाशात् बद्धकेशान्तः केशपाशे बद्धकेशाभ्यन्तर केशसमूहे निवेशयेत् । आयुष्मतीत्यस्य भवेत्यनेनान्वयो विधेयः। ते इत्यस्य कङ्कतिकेत्यनेनान्वयः॥१३५-१३८॥

जातमात्रं सुतं दृष्ट्वा दत्त्वा स्वर्णं गृहान्तरे ।
पूर्वोक्तविधिना धीरो धाराहोमं समापयेत् ।।१३९।।

ततः पञ्चाहुतीर्दद्यात् अग्निमिन्द्रं प्रजापतिम् ।
विश्वान् देवांश्च ब्रह्माणमुद्दिश्य तदनन्तरम् ।।१४०।।

पद्मा–ज्ञानी पुरुष सन्तान उत्पन्न होते ही स्वर्ण प्रदान कर पुत्र का मुख देखकर सूतिकागृह से भिन्न किसी अन्य गृह में पूर्वोक्त विधि से धारा होम करे। फिर अग्नि, इन्द्र, प्रजापति, विश्वदेवगण तथा ब्रह्मा इनके लिये पाँच आहुतियाँ दें।

हरि०–अथ जातकर्म विधिमाह जातमात्रमित्यादिभिः। दत्त्वा सुतायेति शेषः गृहान्तरे सूतिकागृहादन्यस्मिन् गृहे। तत इत्यादिस्तु स्पष्टार्थः॥१३९-१४०॥

मधुसर्पिः कांस्यपात्रे समानीयाऽसमांशकम् ।
वाग्भवं शतधा जप्त्वा प्राशयेत्तनयं पिता ।।१४१।।
दक्षहस्तानामिकया मन्त्रमेनं समुच्चरन् ।
आयुर्वर्च्चो बलं मेधा वर्द्धतां ते सदा शिशो ।।१४२।।

पद्मा–इसके पश्चात् पिता कांसे के पात्र में मधु तथा घी असमान मात्रा में लेकर उसके ऊपर ऐं एक सौ बार जप कर पुत्र को **आयुर्वर्चो बलं मेधा वर्द्धतां ते सदा शिशो** इस मन्त्र को पढ़ते हुए दाहिने हाथ की अनामिका अंगुली से शिशु को चखाये।

हरि०–**मध्विति**। तदनन्तरं पञ्चाहुतिदानानन्तरं कांस्यपात्रेसमाशकं मधुसर्पिश्च समानीय तदुपरि वाग्भवम् ऐंमिति मन्त्रं शतधा जप्त्वा आयुर्वर्च्चो बलं मेधा वर्द्धतां ते सदा शिशो इत्येनं मन्त्रं समुच्चरन् पिता दक्षहस्तानामिकयाङ्गुल्यामधुसर्पिस्तनयं प्राशयेत्॥१४१-१४२॥

इत्यायुर्जननं कृत्वा गुप्तं नाम प्रकल्पयेत् ।
कृतोपनयने पुत्रे तेन नाम्ना समाह्वयेत् ।।१४३।।
प्रायश्चित्तादिकं कृत्वा जातकर्म समापयेत् ।
नालच्छेदं ततो धात्री कुर्यादुत्साहपूर्वकम् ।।१४४।।
यावन्न छिद्यते नालं तावच्छौचं न बाधते ।
प्रागेव नाडिकाच्छेदाद्दैवीं पैत्रीं क्रियाञ्चरेत् ।।१४५।।

पद्मा–इस प्रकार आयुष्यर कर्म कर शिशु का एक गुप्त नाम रखे। पुत्र के लाये जाने पर उसे उसी गुप्त नाम से बुलाये। इसके पश्चात् प्रायश्चित्तादि होम करके जातकर्म पूर्ण करे। इसके उपरान्त धात्री उत्साहपूर्वक नालछेदन करे। जब तक नालछेदन नहीं होता, तब तक अशौच नहीं रहता। इसलिए नाल-छेदन के पूर्व दैवी एवं पैत्री क्रिया करता रहे।

हरि०–इत्यायुर्जननमित्यादयस्तु स्पष्टार्थाः॥१४३-१४५॥

कुमार्याश्चापि कर्त्तव्यमेवमेवममन्त्रकम् ।
षष्ठे वा चाष्टमे मासि नाम कुर्यात् प्रकाशतः ।।१४६।।

पद्मा–कन्या के भी यही सब कर्म बिना मन्त्र के करे। छठे या छठे या आठवें मास में प्रगट भाव से नामकरण करे।

हरि०–**कुमार्या इत्यादि**। कुमार्याश्चाप्यमन्त्रकं मन्त्रहीनमेव जातकर्मैवमेव कर्तव्यम् ॥१४६॥

स्नापयित्वा शिशु माता परिधाप्याम्बरे शुभे ।
भर्त्तुः पार्श्व समागत्य प्राङ्मुखं स्थापयेत् सुतम् ।।१४७।।

पद्मा–नामकरण के समय शिशु की माता शिशु को स्नान करा कर उत्तम वस्त्रयुगल धारण करा कर पति के समीप लाए तथा उसे पूर्व दिशा की ओर मुख करके बैठाये।

हरि०–अथ नामकरणस्य विधिमाह स्नापयित्वेत्यादिभिः। माता शिशु स्नापयित्वा शुभे अम्बरे वस्त्रे परिधाप्य भर्तुः पार्श्वं समागत्य सुत प्राङ्मुखं स्थापयेत् ॥१४७॥

अभिषिञ्चेत् शिशोर्मूर्ध्नि सहिरण्यकुशोदकैः ।
जाह्नवी यमुना रेवा सुपवित्रा सरस्वती ।।१४८।।
नर्मदा वरदा कुन्ती सागराश्च सरांसि च ।
एते त्वामभिषिञ्चन्तु धर्मकामार्थसिद्धये ।।१४९।।

पद्मा–इसके पश्चात् पिता स्वर्ण सहित कुशोदक के द्वारा शिशु के मस्तक पर जल डाले तथा इस मन्त्र को पढ़े-गंगा, यमुना, रेवा, सुपवित्रा सरस्वती, नर्मदा, वरदा, कुन्ती समस्त सागर व सरोवर यह भी धर्म, काम, अर्थ की सिद्धि के लिये तुम्हारा अभिषेक करें।

हरि०–अभिषिञ्चेदित्यादि। ततः पिता जाह्नवीत्यादिभिर्मन्त्रैः सहिरण्यकुशोदकैः शिशोः मूर्धन्यभिषिञ्चेत् ॥१४८-१४९॥

ह्रीं आपो हि ष्ठा मयोभुवस्ता न ऊर्ज्जे दधातन
महे रणाय चक्षुषे ।।१५०।।

पद्मा–हे जल ! तुम सभी प्रकार के सुख देते हो । अतः हमारे लिये इस समय अन्न की व्यवस्था करो तथा परकाल में हमारा मिलन पर ब्रह्म से कराओ ।

हरि०–आप इत्यादि। हे आपो हि यस्मात् नोस्मान् ऊर्जेऽन्नाय दधातन स्थापयत। किञ्च महे महते रणाय रमणीयाय चक्षुषे दर्शनीयाय दधातन स्थापयत । अयमर्थः हे आपो यस्माद्यूयं सुखं प्रापयथ तस्मादस्मान् ऐहिकेनाऽननादिनाऽमुष्मिकेन च महारमणीयदर्शनीकेन ब्रह्मणा संयोजयतेति। हिष्ठा इति अस्तेर्लोट् मध्यमपुरुषवहुवचनम् । दधातनेत्यपि। दधातेर्लोट मध्यमपुरुष बहुवचनं छन्दसि बहुलमित्यनेन सिद्धम् । मह इति महते इति पदस्य छान्दसत्वादकारतकारयोर्लोप सति महे इति भवति। रणायेति रमणीयशब्दस्य छन्दसि रणादेशः। चक्षुषे इति उस् प्रत्ययान्ताच्चतुर्थी॥१५०॥

ह्रीं यो वः शिवतमो रसस्तस्य भाजयतेह नः ।
ऊशतीरिव मातरः ।।१५१।।
ह्रीं तस्मा अरं गमाम वो यस्य क्षयाय जिन्वथ।
आपो जनयथा च नः ।।१५२।।

पद्मा–हे जल ! माता के समान स्नेहयुक्त तुम हम लोगों को कल्याणकारी रस का अधिकारी बनाओ। हे समस्त जल ! तुमने जिस रस के द्वारा भूमण्डल को सन्तुष्ट करते हो। उससे हम तृप्त हों हमें उसका भोग कराओ ।

हरि०-यो व इत्यादि। हे आपो वो युष्माकं शिवतमोऽत्यन्तकल्याणरूपो यो रसो निर्यासो मधुरस्तस्य रसस्येह नोऽस्मान् भाजयत भागिनः कुरुत तेन रसेन सम्बद्धानस्मान् कुरुतेत्यर्थः। किम्भूता यूयम् ऊशतीरिच्छावत्यः स्नेहेन मातर इव। अयमर्थः यथा स्नेहेन मातरः पुत्रान् तुल्यरसभागिनः कुर्वन्ति तथा यूयमप्यस्मान् कल्याणकारिसम्बन्धान् कुरुतेति। ऊशतीरिति वश कान्तौ शतृप्रत्ययः तदन्तादीप्प्रत्ययः ततो जसि कृते निपातनात् पूर्वसवर्णदीर्घः। हे आपो वो युष्माकं तस्मै तस्मिन् रसेऽरमलं पर्याप्तं गमाम गच्छामेत्यर्थः किञ्च वः तत्र रसे नोऽस्माकं भोग यूयं जनयथ। यस्य रसस्य क्षयाय क्षये स्थाने जिन्वथ प्रीणयथ आब्रह्मस्तम्बपर्यन्तं जगदिति शेषः। अयमर्थः हे आपो युष्माकं यस्य रसस्य स्थाने जगद् यूयं प्रीणयथ तस्य विषये वयं तृप्तिं गच्छाम् यूयञ्च नः तत्र सम्भोग जनयथेति। तस्मै क्षयायेत्युभयत्रापि सप्तम्यर्थे चतुर्थी। जगाम इति लोटुत्तम पुरुषबहुवचनं गच्छादेशाभावश्छान्दसः। जनयथा इति छन्दसि दीर्घः। जिन्वथ इति छन्दसि सिद्धम् ॥१५१-१५२॥

अभिषिच्य त्रिभिर्मन्त्रै पूर्ववद्वह्निसंस्क्रियाम् ।
कृत्वा सम्पाद्य धारान्तं दद्यात् पञ्चाहुतीः सुधीः ॥१५३॥

पद्मा-इसके उपरान्त सुधी पिता पूर्व की भाँति अग्नि संस्कार कर धारा होम तक सभी कार्य कर पाँच आहुतियाँ प्रदान करे।

हरि०-अभिषिच्येत्यादि। एतैस्त्रिभिर्मन्त्रैः। शिशोर्मूर्ध्न्यभिषिच्य पूर्ववत् वह्निसंस्क्रिया कृत्वा धारान्तं धाराहोमान्तं कर्म च सम्पाद्य सुधीः पिता पञ्चाहुतीर्दद्यात् ॥१५३॥

अग्नये प्रथमां दत्त्वा वासवाय ततः परम् ।
ततः प्रजानाम्पतये विश्वदेवेभ्य एव च ।
ब्रह्मणे चाहुतिं दद्याद्वह्नौ पार्थिवसंज्ञके ॥१५४॥

पद्मा-पार्थिव नामक अग्नि में पूर्वोक्त पाँच आहुतियों को देते समय सर्वप्रथम अग्नि को, फिर वासव को, इसके उपरान्त प्रजापति को, तदुपरान्त विश्वदेवगण और फिर ब्रह्मा को आहुति प्रदान करें।

हरि०-ननु कान्देवानुदिश्य पञ्चाहुतीर्दद्यादित्यपेक्षायामाह अग्नये इत्यादि॥१५४॥

ततोऽङ्के पुत्रमादाय श्रावयेत् दक्षिणश्रुतौ ।
स्वल्पाक्षरं सुखोच्चार्य शुभं नाम विचक्षणः ॥१५५॥
श्रावयित्वा त्रिधा नाम ब्राह्मणेभ्यो निवेद्य च ।
ततः समापयेत् कर्म कृत्वा स्विष्टकृदादिकम् ॥१५६॥
कन्याया निष्क्रमोनास्ति वृद्धिश्राद्धं न विद्यते ।
नामान्नप्राशनं चूडा कुर्याद्धीमानमन्त्रकम् ॥१५७॥
चतुर्थे मासि षष्ठे वा कुर्यान्निष्क्रमणं शिशोः ॥१५८॥

पद्मा-इसके उपरान्त पिता पुत्र को गोद में लेकर उसके दाहिने कान में कम अक्षरों

का सुगमतापूर्वक उच्चरित होने वाला उसका नाम सुनाये। इस प्रकार तीन बार नाम सुनाकर स्विष्टकृत होम आदि सम्पन्न कर ब्राह्मणों को निवेदित कर कर्म पूर्ण करे। कन्यासन्तान का निष्क्रमण का वृद्धि श्राद्ध नहीं है। उसका नामकरण, अन्नप्राशन तथा चूडाकर बिना मन्त्र के करे। चौथे या छठे महीने में शिशु का निष्क्रमण करे।

हरि०–**तत इत्यादि**। ततोऽङ्के क्रोडेपुत्र मादाय गृहीत्वा विचक्षणः पिता पुत्रस्य दक्षिण-श्रुतौ दक्षिणे कर्णे स्वल्पाक्षरं सुखोच्चार्यं शुभं मंगवाचकं नाम श्रावयेत् ॥१५५-१५८॥

कृतनित्यक्रियास्ततः सम्पूज्य गणनायकम्।
स्नापयित्वा तु तनयं वस्त्रालङ्कारभूषितम्।
संस्थाप्य पुरतो विद्वानिमं मन्त्रमुदीरयेत्॥१५९॥

पद्मा–इस संस्कार के समय पिता स्नान व नित्यकर्म करके गणेश की पूजा करे। गणपति पूजन के उपरान्त शिशु को स्नान करा कर वस्त्र एवं आभूषण से विभूषित कर अपने समक्ष बैठाये तथा इस मन्त्र को पढ़े।

हरि०–अथ शिशुनिष्क्रमणक्रियाविधिमाह कृतनित्यक्रिया इत्यादिभिः ॥१५९॥

ब्रह्मा विष्णुः शिवो दुर्गाः गणेशो भास्करस्तथा।
इन्द्रो वायुः कुबेरश्च वरुणोऽग्निर्बृहस्पतिः।
शिशोः शुभं प्रकुर्वन्तु रक्षन्तु पथि सर्वदा॥१६०॥

पद्मा–यह मन्त्र है-ब्रह्मा, विष्णु, शिव, दुर्गा, गणेश, सूर्य, इन्द्र, वायु, कुबेर, वरुण, अग्नि एवं वृहस्पति–ये सभी शिशु का कल्याण करें तथा मार्ग में सदैव रक्षा करें।

हरि०–यं मन्त्रमुदीरयेत्तमेव मन्त्रमाह ब्रह्मा विष्णुरिति॥१६०॥

इत्युक्त्वाऽङ्के समादाय गीतवाद्यपुरःसरम्।
बहिर्निष्क्रामयेद्बालं सानन्दैः स्वजनैः सह॥१६१॥

पद्मा–पिता मन्त्र को पढ़कर पुत्र को गोद में लेकर आनन्दपूर्वक स्वजनों के साथ गीतवाद्य के साथ उसे बाहर लाये।

हरि०–**इतीत्यादि**। इति मन्त्रमुक्त्वाऽङ्के क्रोडे बालं समादाय गृहीत्वा सानन्दैः स्वजनैः सह गीतवाद्यपुरः सरं बालं बहिर्निष्क्रमयेत् ॥१६१॥

गत्वाऽध्वनि कियद्दूरं शिशुं सूर्य्यं निरीक्षयेत्॥१६२॥

पद्मा–मार्ग में कुछ दूरी पर जाकर शिशु को सूर्य के दर्शन कराये तथा आगे कहे जा रहे मन्त्र का पाठ करें।

हरि०–**गत्वेत्यादि**। अध्वनि मार्गे कियद्दूरं गत्वा पिता शिशुं बाल सूर्य निरीक्षयेद्दर्शयेत् ॥१६२॥

ह्रीं तच्चक्षुर्देवहितं पुरस्ताच्छुक्रमुच्चरत्।
पश्येद शरद! शतं जीवेम शरदः शतम्॥१६३॥

इत्यादित्यं दर्शयित्वा समागत्य निजालयम् ।
अर्घ्यं दत्त्वा दिनेशाय स्वजनान् भोजयेत् पिता ।।१६४।।
षष्ठे माषि कुमारस्य मासि वाप्यष्टमे शिवे ।
पितृभ्राता पिता वापि कुर्यादन्नाशनक्रियाम् ।।१६५।।

पद्मा–शुक्र का अतिक्रमण कर जो देवगण के लिये भी हितकारी सूर्यरूप नेत्र वर्तमान है उसको हम एक सौ वर्ष तक देखें तथा एक सौ वर्ष तक जीवित रहें। इस प्रकार पिता पुत्र को सूर्य दिखाकर अपने घर लाकर सूर्य को अर्घ्य प्रदान कर स्वजनों को भोजन कराये। हे शिवे ! पुत्र के जन्मकाल से छः महीने में या आठवें महीने में पिता या चाचा उसका अन्नप्राशन संस्कार करे ।

हरि०–येन मन्त्रेण शिशु सूर्य दर्शयेत्तं मन्त्रमाह ह्रीं तच्चक्षुरिति । पुरस्तादग्रतः शुक्रमुच्चरत् । शुक्रमुल्लङ्घ्य गच्छत् तत्सूर्यरूपं देवहितं चक्षुर्वर्त्तते यद्वयं शतं शरदो वर्षाणि पश्येम यच्च पश्यन्तो वयं शतं शरदो जीवेम् ॥१६३-१६५॥

पूर्ववद्देवपूजादि वह्निसंस्करणं तथा ।
एवं धारान्तकर्माणि सम्पाद्य विधिवत् पिता ।।१६६।।

पद्मा–पिता या चाचा पहले के समान देवपूजादि तथा अग्नि संस्कार कर विधिपूर्वक धाराहोम तक कर्म करे ।

हरि०–अन्न प्राशन क्रियाविधिमाह पूर्ववदित्यादिभिः॥१६६॥

दद्यात् पञ्चाहुतीस्तत्र शुचिनाम्नि हुताशने ।
अग्निमुद्दिश्य प्रथमां द्वितीयां वासवं स्मरन् ।।१६७।।
ततः प्रजापतिं देवं विश्वान् देवान् ततः परम् ।
ब्रह्माणञ्च समुद्दिश्य पञ्चमीमाहुतिं त्यजेत् ।।१६८।।

पद्मा–इसके पश्चात् शुचि नामक अग्नि में पाँच आहुतियाँ दे। अग्नि के लिये प्रथम, इन्द्र के लिए द्वितीय आहुति, तृतीय आहुति प्रजापति के लिये चतुर्थ आहुति विश्वदेवगण के लिये तथा पञ्चम आहुति ब्रह्मा के लिये प्रदान करे ।

हरि०–**तत्र अन्न प्राशनक्रियाम्** । ननु कान्देवानुद्दिश्य पञ्चाहुतीर्दद्यादित्यपेक्षायामाह अग्निमित्यादि॥१६७-१६८॥

ततोऽग्नवन्नदां ध्यात्वा दत्तपञ्चाहुतिः। पिता ।
तत्राथवा गृहेऽन्यस्मिन् वस्त्रालङ्कारशोभितम् ।
क्रोडेनिधाय तनयं प्राशयेत् पायसामृतम् ।।१६९।।

पद्माः–इसके पश्चात् पिता अग्नि में अन्नदा देवी का ध्यान कर उनके लिये पाँच आहुतियाँ प्रदान करे। उसी घर या दूसरे घर में वस्त्र एवं अलंकारों से विभूषित पुत्र को गोद में लेकर खीर स्वरूप अमृतपान कराये ।

हरि०–**तत इत्यादि**। ततः परमन्नदां देवीं ध्यात्वा तामुद्दिश्याग्नौ दत्ताः पञ्चाहुतीर्येन

स दत्तपञ्चाहुतिः पिता तत्राथवाऽन्यस्मिन् गृहे वस्त्रालङ्कारशोभितं तनयं क्रोडे निधाय संस्थाप्य पापसामृतं परमान्नरूपममृतं प्राशयेत् भोजयेत् ॥१६९॥

पञ्चप्राणाहुतेर्मन्त्रैर्भोजयित्वा तु पञ्चधा ।
ततोऽन्नव्यञ्जनादीनां दत्त्वा किञ्चित् शिशोर्मुखे ।।१७०।।
शङ्खतूर्यादिघोषेण प्रायश्चित्त्या समापयेत् ।
इत्यन्नप्राशनं प्रोक्तं चूडाविधिमतः शृणु ।।१७१।।

पद्मा–**प्राणाय स्वाहा, अपानाय स्वाहा, समानाय स्वाहा, उदानाय स्वाहा, व्यानाय स्वाहा** यह पञ्चप्राण मन्त्र पढ़कर पुत्र के मुख में पाँच बार खीर स्वरूप अमृत प्रदान करे। इसके पश्चात् अन्नव्यञ्जनादि के सभी पदार्थों में से थोड़ा-थोड़ा लेकर बालक के मुख में दे। फिर शंख, तुरही आदि की ध्वनि कर प्रायश्चित्त होम कर क्रिया समाप्त करे॥ यह तुमसे अन्नप्राशन की विधि कही । अब मैं चूड़ाकरण की विधि कहता हूँ उसे सुनो।

हरि०–पञ्चेत्यादि। प्राणाय स्वाहा। अपानाय स्वाहा समानाय स्वाहा उदानाय स्वाहा व्यानाय स्वाहेत्यात्मकैः पञ्चप्राणाहुतेर्मन्त्रैः पुत्रं पायसं पञ्चधा भोजयित्वा ततोऽन्नव्यञ्जनादीनां किञ्चित् शिशोर्मुखे दत्त्वा शङ्खतूर्यादिघोषेण प्रायश्चित्त्या चान्नप्राशनंक्रिया समापयेत् ॥१७०-१७१॥

तृतीये पञ्चमे वर्षे कुलाचारानुसारतः ।
चूडाकर्म शिशोः कुर्याद्बालकसंस्कारसिद्धये ।।१७२।।
देवपूजादिधारान्तं कर्म निष्पाद्य साधकः ।
सत्याग्नेरुत्तरे देशे वृषगोमयपूरितम् ।।१७३।।
तिलगोधूमसंयुक्तं शरावं स्थापयेद् बुधः ।
कवोष्णं सलिलं चापि क्षुरमेकं सुशाणितम् ।।१७४।।

पद्मा–जन्म के तीसरे या पाँचवे वर्ष में संस्कार की सिद्धि के लिये बालक का चूड़ाकर्म कुलाचार के अनुसार करे। साधक देवपूजा से धारा होम तक के समस्त कर्म समाप्त कर सत्य नामक अग्नि की उत्तर दिशा में बैल के गोबर से पूरित तिल तथा गेहूँ युक्त एक नपी सरैया (शराब) में थोड़ा सा गर्म जल तथा एक तेज छुरी रखे।

हरि०–अथ चूडाकर्मविधिमाह तृतीय इत्यादिभिः। बुधो विचक्षणः साधकः कर्मनिष्पादकः पिता पूर्ववद्देवपूजादि धारान्तं कर्म निष्पाद्य सत्याग्नेः सत्यनाम्नो वह्नेरुत्तरे देशे वृषगोमयपूरितं तिलगोधूमसंयुक्तं शरावं कवोष्णमीषदुष्णं सलिलं जलं सुशाणितमेकं क्षुरञ्चापि स्थापयेत् ॥१७२-१७४॥

आसनाद्य तनयं तत्र जनकः स्वीयवामतः ।
संस्थाप्य जननीक्रोडे कवोष्णसलिलैश्च तैः ।।१७५।।
वारुणं दशधा जप्त्वा सम्मार्ज्य शिशुमूर्द्धजान् ।
मायया कुशपत्राभ्यां जुष्टिमेकां प्रकल्पयेत् ।।१७६।।

पद्या–तदुपरान्त पिता उसी स्थान में अपनी बायीं ओर बालक की माता को गोद में बैठाकर उस गरम जल से वरुण बीज 'वँ' का दश बार जप करते हुये उसके केशों को मार्जित करे। मायाबीज 'ह्रीँ' का जप करते हुए दो कुश पत्रों से उसके माथे में एक चोटी बनाये।

हरि०–आसनेद्येत्यादि। ततो जनकः पिता तनयं पुत्रं तत्र सत्यनाम्नो वह्नेः समीपे आसाद्याऽऽनीय स्वीयवामतः आत्मनो वामे देशे जननीक्रोडे संस्थाप्य तैर्वह्नेरुत्तरे देशे स्थापितैः कवोष्णसलिलैर्वारुणं वरुणसम्बन्धि वमिति बीजं दशधा जप्त्वा शिशुमूर्द्धजान् बालककेशान् सम्मार्ज्य मायया ह्रीँ बीजेन कुशपात्राभ्यामेकां जुष्टिं प्रकल्पयेत् ॥१७५-१७६॥

मायां लक्ष्मीं त्रिधा जप्त्वा गृहीत्वा लौहजं क्षुरम्।
छित्वा तु जुष्टिकामूलं मातृहस्ते निवेशयेत् ॥१७७॥

पद्या–माया ह्रीँ तथा लक्ष्मी श्रीँ का तीन बार जप कर लोहे की तेज छूरी लेकर उस चोटी को काटकर उसके माँ के हाथ में रखे।

हरि०–मायामित्यादि। ततो मायां ह्रीँ बीजं लक्ष्मीं श्रीँ बीजञ्च त्रिधा जप्त्वा लौहजं क्षुरं गृहीत्वा जुष्टिकामूलं छित्वा मातृहस्ते जुष्टिकां निवेशयेत् स्थापयेत् ॥१७७॥

कुमारमाता हस्ताभ्यामादाय गोमयान्विते।
शरावे स्थापयेत् जुष्टिं नापिताय पिता वदेत् ॥१७८॥

पद्या–बालक की माता उस चोटी को अपने दोनों हाथों में लेकर बैल के गोबर से युक्त शराब में रखे तथा पिता नाई से कहे।

हरि०–कुमारेत्यादि। कुमारमाता हस्ताभ्यां जुष्टिकामादाय गृहीत्वा गोमयान्विते शरावे स्थापयेत्। ततो नापिताय पिता शिशुजनको वदेत् ॥१७८॥

क्षुरमुण्डिन्! शिशोः क्षौरं सुखं साधय ठद्वयम्।
पठित्वा नापितं पश्यन् सत्यनामनि पावके।
प्रजापतिं समुद्दिश्य प्रदद्यादाहुतित्रयम् ॥१७९॥

पद्या–क्षुरमुण्डिन्! **शिशोः क्षौरं सुखं साधय स्वाहा**। (हे नापित! तुम सुखपूर्वक इस शिशु का मुण्डन करो।) मन्त्र पढ़कर पिता नाई को देखता हुआ प्रजापति के लिये सत्य नामक अग्नि में तीन आहुतियाँ प्रदान करे।

हरि०–शिशोः पिता नापिताय किं वदेदित्यपेक्षायामाह क्षुरमुण्डिन्नित्यादि। हे क्षुरमुण्डिन्नापित शिशोः क्षौरं सुखं यथा स्यात्तथा त्वं साधय ठद्वयं स्वाहा। क्षुरमुण्डिन्नित्याद्यं साधय स्वाहेत्यन्तं मनुं पठित्वा नापितं पश्यन् शिशुजनकः प्रजापतिं समुद्दिश्य सत्यनामनि पावकेऽग्नावाहुतित्रयं प्रदद्यात् ॥१७९॥

नापितेन कृतक्षौरं स्नापयित्वा शिशु ततः।
वस्त्रालङ्कारमाल्येन भूषयित्वाऽग्निसन्निधौ ॥१८०॥

स्ववामभागे संस्थाप्य स्विष्टकृद्धोहोममाचरेत् ।
प्रायश्चित्तं ततः कृत्वा दद्यात् पूर्णाहुतिं पिता ।।१८१।।

पद्मा–इसके पश्चात् नाई बालक का मुण्डन करे तथा पिता उस बालक को नहलाकर वस्त्राभूषण तथा माला से विभूषित करे और अग्नि के निकट अपनी बायीं ओर उसे बैठाकर स्विष्टकृत होम करे। इसके पश्चात् पिता प्रायश्चित्त होम कर पूर्णाहुति प्रदान करे।

हरि०–नापितेनेति। ततो नापितेन कृतं क्षौरं यस्य तथाभूतं शिशु स्नापयित्वा ततो वस्त्रालङ्कारमाल्येन भूषयित्वाऽग्निसन्निधौ स्ववामभागे संस्थाप्य च स्विष्टकृतं होममाचरेत् कुर्यात् ॥१८०-१८१॥

माया शिशो ते कुशलं कुरुतां विश्वकृद्विभुः ।
पठित्वैनं शिशोः कर्णे स्वर्णमय्या शलाकया ।
राजत्या लौहमय्या वा कर्णवेधं प्रकल्पयेत् ।।१८२।।
आपोहिष्ठेति मन्त्रेण अभिषिच्य सुतं ततः ।
शान्त्यादिदक्षिणां कृत्वा चूडाकर्म समापयेत् ।।१८३।।
गर्भाधानादिचूडान्तं समानं सर्वजातिषु ।
शूद्रसामान्यजातीनां सर्वमेतदमन्त्रकम् ।।१८४।।
जातकर्मादिचूडान्तं कुमार्यश्चाप्यमन्त्रकम् ।
कर्तव्यं पञ्चभिर्वर्णैरिकंनिष्क्रमणं विना ।।१८५।।

पद्मा–**ह्रीं शिशो ! ते कुशलं कुरुतां विश्वकृद् विभुः** (हे शिशो ! विश्वसृष्टा विभु तुम्हारा कल्याण करें।) मन्त्र को पढ़ते हुए स्वर्ण, रजत या लोहे की शलाका से शिशु का कर्णवेध करें। फिर **आपोहिष्ठा मयो भुव** मन्त्र द्वारा पुत्र का अभिषेक कर शान्तिकर्म करेतथा दक्षिणा प्रदान कर चूड़ाकर्म सम्पन्न करे। गर्भाधान से चूड़ाकरण तक के सम्पूर्ण संस्कार सभी जातियों में एक समान है। शूद्र एवं सामान्य जाति के यह सभी संस्कार मन्त्रहीन होते हैं। ब्राह्मणादि पाँचों वर्ण कन्या के उत्पन्न होने पर जातकर्म से लेकर चूड़ाकरण तक के सभी संस्कार निष्क्रमण को छोड़कर बिना मन्त्र के करना चाहिए ।

हरि०–**मायेत्यादि**। माया ह्रीं बीजम् । एनं ह्रीं शिशो इत्याद्यं विश्वकृद्विभुरित्यन्तं मन्त्रं शिशोः कर्णे पठित्वा स्वर्णमय्या सुवर्ण विकारभूतया राजत्या रजतोद्भूतया लौहमय्या वा शलाकया शिशोः कर्णवेधं प्रकल्पयेत् कुर्यात् ॥१८२-१८५॥

अथोच्यते द्विजातीनामुपवीत क्रिया विधिः ।
यस्मिन् कृते द्विजन्मानो दैव पैत्राधिकारिणः ।।१८६।।

पद्मा–अब द्विजातियों के लिये उपनयन कर्म की विधि कहता हूँ। जिसके करने से वे दैव कर्म तथा पैत्र कर्म (पितृ-कर्म) करने के अधिकारी होते हैं ।

हरि०–**अथेत्यादि**। द्विजातीनाम् ब्राह्मणक्षत्रिय वैश्यानाम् ॥१८६॥

गर्भाष्टमेऽष्टमे वाऽब्दे कुर्यादुपनयं शिशोः ।
षोडशाब्दाधिको नोपनेतव्यो निष्क्रियोऽपि सः ।।१८७।।

पद्म–गर्भ से आठवें या आठवें वर्ष की आयु से आठ वर्ष के भीतर बालक का उपनयन संस्कार करे। जिसके सोलह वर्ष बीत चुके हैं उसका उपनयन संस्कार नहीं हो सकता। उपनयन संस्कार से हीन बालक दैव तथा पितृ कर्म करने का अधिकारी नहीं है।

हरि०–गर्भेत्यादि। गर्भादष्टमे जननाद्वाष्टमेऽब्दे वर्षे शिशोर्बालस्योपनमुपनयनं कुर्यात् ।।१८६-१८७।।

कृतनित्यक्रियो विद्वान् पञ्च देवान् समर्चयेत् ।
गौर्यादिमातृकाश्चैव वसुधारां प्रकल्पयेत् ।।१८८।।
वृद्धिश्राद्धं ततः कुर्यात् देवतापितृतृप्तये ।
कुशण्डिकोक्तविधिना धाराहोमान्तमाचरेत् ।।१८९।।

पद्म–विद्वान पिता सभी नित्यक्रिया करके पञ्चदेवताओं का पूजन करे। गौरी आदि सोलह मातृकागणों की पूजा करे, तदुपरान्त वसुधारा दे। फिर देवताओं तथा पितरों की तृप्ति के लिये वृद्धि श्राद्ध करे। कुशण्डिका में कही गयी विधि के अनुसार धारा होम तक समस्त कर्म करे ।

हरि०–अथोपवीतक्रियाविधिमाह कृतनित्यक्रिय इत्यादिभिः । पञ्च देवान् ब्रह्मादीन् ।।१८८-१८९।।

प्रातः कृताशनं बालं सुस्नातं समलङ्कृतम् ।
शिखां विना कृतक्षौरं क्षौमाम्बरविभूषितम् ।।१९०।।
छायामण्डपमानीय समुद्भवहुताशितः ।
समीपे चात्मनो वामे संस्थाप्य विमलासने ।।१९१।।
शिष्यं वदेद्ब्रह्मचर्यं कुरु वत्स ततः शिशुः ।
ब्रह्मचर्यं करोमीति गुरवे विनिवेदयेत् ।।१९२।।

पद्म–प्रातःकाल विधिवत शिशु को स्नान एवं भोजन कराये। उसे उत्तम अलंकारों से विभूषित करे। शिखा के अतिरिक्त पूर्ण रूप से मुण्डित, रेशमी, वस्त्र धारण कराकर शिशु को छायामण्डप में लाकर समुद्भव नामक अग्नि के समीप अपनी बायीं ओर सुन्दर स्वच्छ आसन पर बैठाये। फिर गुरु उस शिष्य से कहे **ब्रह्मचर्यं कुरु वत्स** अर्थात् हे पुत्र! ब्रह्मचर्य का पालन करो । उत्तर में शिष्य गुरु से निवेदन करे ब्रह्मचर्यं करोमि अर्थात् ब्रह्मचर्य का पालन करता हूँ ।

हरि०–प्रातरित्यादि। ततः प्रातः कृताशनं भोजनं येन तथाभूतं शिखां विना कृतं क्षौरं यस्य तथाभूतं सुस्नातं सुष्ठु कृतस्नानं भूषणादिभिः समलङ्कृतं क्षौमाम्बरविभूषितं दुकूल वस्त्राभ्यालङ्कृतं बालं छायमण्डमानीय समुद्भहुताशितः समुद्भनाम्नो वह्नेः समीपे आत्मनो

वामे देशे विमलासने संस्थाप्य च ब्रह्मचर्यं कुरु वत्सेति गुरुः शिष्यं वदेत्। ततः परं शिशुः ब्रह्मचर्यं करोमीति गुरवे विनिवेदयेत् ॥१९०-१९२॥

ततो गुरुः प्रसन्नात्मा शिशवे शान्तचेतसे ।
काषायवाससी दद्यात् दीर्घायुष्ट्वाय वर्चसे ॥१९३॥

पद्मा–तब गुरु प्रसन्न ह्रदय से शान्तचित्त शिशु के दीर्घायु एवं तेज की वृद्धि के लिये कषाय रंग के वस्त्र उसे प्रदान करे ।

हरि०–तत इत्यादि। ततः परं प्रसन्नात्माः शिशवे शान्तचेतसे शिशवे शिष्याय दीर्घायुक्तश्चाव्य दीर्घमायुर्यस्य स दीर्घायुस्तस्य भावो दीर्घायुष्ट्वे तस्मै वर्चसे तेजसे च कषायवाससी कषायेण रक्ते वस्त्रे दद्यात् ॥१९३॥

मौञ्जीं कुशमयीं वापि त्रिवृतां ग्रन्थिसंयुताम् ।
तूष्णीं च मेखलां दद्यात् काषायम्बरधारिणे ॥१९४॥

पद्मा–काषायवस्त्र धारण किये हुये इस शिशु को गुरु मूँज या कुश की बनी, गाँठ लगी, तीन लट वाली मेखला मौन होकर दे ।

हरि०–मौञ्जीमिति। मौञ्जीं मुञ्जमयीं कुशमयी वा त्रिवृता ग्रन्थिसंयुतां मेखलामपि काषायाम्बरधारिणे शिशवे तूष्णीमेव दद्यात् ॥१९४॥

मायामुच्चार्य सुभगा मेखलां स्यात् शुभप्रदा ।
इत्युक्त्वा मेखला बद्ध्वा मौनी तिष्ठेत् गुरोः परः॥१९५॥
यज्ञोपवीतं परमं पवित्रं बृहस्पतिर्यत् सहजं पुरस्तात् ।
आयुष्मग्र्यं प्रतिमुञ्च शुभ्रं यज्ञोपवीतं बलमस्तु तेजः॥१९६॥

पद्मा–बालक **ह्रीं सुभगा मेखला स्यात् शुभप्रदा।** (यह सुन्दर मेखला मेरे लिये मंगलकारी हो) मन्त्र का उच्चारण कर मेखला को अपनी कटि (कमर) में बाँधे। फिर मौन होकर बालक गुरु के सामने खड़ा हो। अब गुरु 'यह यज्ञोपवीत परम पवित्र है जो पूर्वकाल में प्रजापति का स्वाभाविक था अर्थात् उन्होंने इसे धारण किया था। आयुष्कर श्रेष्ठ एवं शुभ्र यज्ञोपवीत को तुम धारण करे। तुम्हारा बल एवं तेज बढ़े 'मन्त्र पढ़े' ।

हरि०–मायामिति। पूर्वं मायां ह्रीमिति बीजमुच्चार्य ततः सुभगा मेखला स्याच्छुभप्रदेति मन्त्रमुक्त्वा कट्यां मेखलां बद्ध्वां मौनी सन् गुरोः पुरस्तिष्ठेत् ॥१९५-१९६॥

मन्त्रेणानेन शिशवे दद्यात् कृष्णाजिनान्वितम् ।
यज्ञोपवीतं दण्डञ्च वैणवं खादिरञ्च वा ।
पालाशमथवा दद्यात् क्षीरवृक्षसमुद्भवम् ॥१९७॥

पद्मा–गुरू यह मन्त्र पढ़कर बालक को काले मृगचर्म का यज्ञोपवीत तथा बाँस खैर (खदिर), पलाश अथवा क्षीरवृक्ष की लकड़ी का बना हुआ दण्ड प्रदान करें ।

हरि०–मन्त्रेणेत्यादि । अनेन यज्ञोपवीतमित्यादिना बलमस्तु तेज इत्यन्तेन मन्त्रेण

कृष्णाजिनान्वितं कृष्णवर्णं मृगचर्मसंयुक्तं यज्ञोपवीतं शिशवे दद्यात् वैणवं वेणुसमुद्भवं खादिरं खादिरसमुद्भवं पालाशं पलाशसमुद्भवं क्षीरवृक्षसमुद्भवं वा दण्डमपि शिशवे दद्यात् ।।१९७।।

आपो हिष्ठेति मन्त्रेण मायया पुटितेन च ।
त्रिरावृत्त्या कुशाम्भोभिर्धृतदण्डोपवीतिनम् ।
अभिषिच्य ततस्तोयैः पूरयेद्बालकाञ्जलिम् ।।१९८।।

पद्मा–इसके पश्चात् बालक जब दण्ड एवं उपवीत धारण कर ले, तब माया पुटित अर्थात् ह्रीं बीज से पुटित **ह्रीं अपोहिष्ठा श्रीं** मन्त्र को तीन बार उच्चारण कर कुश से जल लेकर बालक को अभिषिक्त करे। फिर पात्र में रखे हुए जल से उपनीत बालक की अञ्जलि भरे ।

हरि०–आपोहिष्ठेत्यादि। ततो मायया ह्रीं बीजेनादावन्ते च पुटितेन संयुक्तेनापो हिष्ठेति मन्त्रेण कुशाम्भोभिर्धृतदण्डोपवीतिनं धृतदण्डमुपवीतवन्तं शिशुं त्रिरावृत्त्याऽभिषिच्य ततः परं तोयैर्जलैर्बालकाञ्जलिं पूरयेत् ।।१९८।।

तदञ्जलिं दिनेशाय दातारं ब्रह्मचारिणम् ।
तच्चक्षुरिति मन्त्रेण दर्शयेद्भास्करं गुरुः ।।१९९।।

पद्मा–इसके बाद जब ब्रह्मचारी वह जल की अञ्जलि से सूर्य को अर्घ्य प्रदान करे, तब गुरुदेव तच्चक्षुर्देवहितम् मन्त्र का उच्चारण करते हुये शिष्य को दर्शन कराये ।

हरि०–तदञ्जलिमित्यादि। दिनेशाय सूर्याय तदञ्जलिं दातारं ब्रह्मचारिणं बालकं तच्चक्षुरिति मन्त्रेण भास्करं गुरुर्दर्शयेत् । दातारमित्यत्र शीले तृन्प्रत्ययः। अतएव तदञ्जलिमित्यत्र कर्तृकर्मणोः कृतीत्यनेन कर्मणि प्राप्तायाः षष्ठ्या न लोकाव्ययनिष्ठा खलर्थतृणमित्यनेन प्रतिषेधो जातः।।१९९।।

दृष्टभास्करमाचार्य्यो वदेन्माणवकं ततः ।
मम व्रते मनो धेहि मम चित्तं ददामि ते ।
जुषस्वैकमना वत्स मम वाचोऽस्तु ते शिवम् ।।२००।।

पद्मा–जब शिशु सूर्य का दर्शन कर चुके, तब आचार्य उससे कहे मैं तुमको अपना चित्त देता हूँ। तुम मेरे व्रत में अपने मन को लगाओ। हे पुत्र! तुम एकाग्र होकर मेरे व्रत का आचरण करो। मेरी वाणी से तुम्हारा कल्याण हो ।

हरि०–दृष्टभास्करमित्यादि। ततः परमाचार्यो गुरुः दृष्टभास्करं दृष्टो भास्करो येन तथाभूतं माणवकं शिशुं वदेत् । आचार्यो बालकं किं वदेदित्यपेक्षायामाह मम व्रते इत्यादि। जुषस्व मम व्रतं सेवस्व। शिवं कल्याणम् ।।२००।।

हृदि स्पृष्ट्वा पठित्वैनं किन्नामाऽसीति तं वदेत् ।
शिष्यस्त्वमुकशर्माऽहं भवन्तमभिवादये ।।२०१।।

पद्मा–गुरु इस मन्त्र को पढ़कर बालक के हृदय को स्पर्श करके पूछे "हे वत्स !

तुम्हारा नाम क्या है ? उत्तर में शिष्य कहे-'मैं अमुक शर्मा आपका अभिवादन करता हूँ।'

हरि०-हृदीति। गुरुरेनं मम व्रतमित्यादिकं शिवमित्यन्तं मन्त्रं पठित्वा शिशोर्हृदि पृष्ट्वा वत्स त्वं किं नामासीति तं शिष्यं वदेत् । गुरुणैवमुक्तः शिष्यस्तु अमुकदेवशर्माहं भवन्तमभिवादये इति ब्रूयात् ॥२०१॥

कस्य त्वं ब्रह्मचारीति गुरौ पृच्छति पार्वति !
शिष्यः सावहितो ब्रूयाद्भवतो ब्रह्मचर्याहम् ॥२०२॥

पद्या-हे पार्वति ! तब गुरु शिष्य से पूछे "तुम किसके ब्रह्मचारी हो।" शिष्य सावधान होकर कहे-मैं आपका ब्रह्मचारी हूँ ।

हरि०-कस्येत्यादि। हे वत्स त्वं कस्य ब्रह्मचर्यासीति गुरौ पृच्छति सति शिष्यः सावहितः सावधानः सन् भवतो ब्रह्मचर्याहमिति ब्रूयात् ॥२०२॥

इन्द्रस्य ब्रह्मचारी त्वमाचार्यस्ते हुताशनेः ।
इत्युक्त्वा सद्गुरुः पश्चाद्देवेभ्यस्तं समर्पयेत् ॥२०३॥

पद्या-फिर सद्गुरु शिष्य से कहे **"तुम इन्द्र के ब्रह्मचारी हो, अग्नि तुम्हारे आचार्य हैं।"** यह कहकर गुरु शिष्य को देवताओं को समर्पित करे ।

हरि०-इन्द्रस्येत्यादि। हे वत्स त्वमिन्द्रस्य ब्रह्मचार्यसि ते तव हुताशनोऽग्निराचार्यो गुरुर्भवति इति शिष्यमुक्त्वा सद्गुरुः पश्चात् तं शिष्यं देवेभ्यः समर्पयेत् ॥२०३॥

त्वां प्रजापतये वत्स सवित्रे वरुणाय च ।
पृथिव्यै विश्वदेवेभ्यः सर्वदेवेभ्य एव च ।
समर्पयामि ते सर्वे रक्षन्तु त्वां निरन्तरम् ॥२०४॥

पद्या-इस मन्त्र को पढ़ते हुए गुरु शिष्य को देवताओं के समीप समर्पित करे-हे प्रजापति तुमको प्रजापति के लिये, सविता के लिये, वरुण के लिए, पृथिवी के लिये, विश्वदेवों के लिये और समस्त देवताओं के लिये समर्पित करता हूँ। वे सभी तुम्हारी निरन्तर रक्षा करें ।

हरि०-ननु केभ्यो देवभ्यो गुरुः शिष्यं समर्पयेदित्याकाङ्क्षायामाह त्वं प्रजापतये वत्सेत्यादि ॥२०४॥

ततो माणवको वह्निं दक्षिणावर्तयोगतः ।
गुरुं प्रदक्षिणीकृत्य स्वासने पुनराविशेत् ॥२०५॥

पद्या-इसके पश्चात् ब्रह्मचारी दक्षिणावर्त क्रम से अग्नि की तथा गुरु की प्रदक्षिणा कर पुनः अपने आसन पर बैठे ।

हरि०-तत इत्यादि। ततः परं माणवको बालको दक्षिणावर्तयोगतो वह्निं गुरुञ्च प्रदक्षिणीकृत्य पुनः स्वासने आविशेत् ॥२०५॥

गुरुः शिष्येण संस्पृष्टः समुद्भवहुताशने ।
पञ्चदेवान् समुद्दिश्य दद्यात् पञ्चाहुतीः प्रिये! ।।२०६।।

पद्मा–हे प्रिये ! गुरु शिष्य के द्वारा स्पृष्ट होकर "समुद्भव" नामक अग्नि में पाँच देवों को पाँच आहुतियाँ प्रदान करे ।

हरि०–गुरुमिति । गुरुः शिष्येण संस्पृष्टः सन् समुद्भवहुताशने समुद्भवसंज्ञके अग्नौ पञ्चदेवान् समुद्दिश्य पञ्चाहुतीर्दद्यात् ।।२०६।।

प्रजापतिस्तथा शक्रो विष्णुर्ब्रह्मा शिवस्तथा ।।२०७।।

पद्मा–प्रजापति, इन्द्र, विष्णु, ब्रह्मा तथा शिव ये पञ्चदेव हैं ।

हरि०–ननु कान् पञ्चदेवान् समुद्दिश्य पञ्चाहुतीर्दद्यादित्यपेक्षायां तान् पञ्च देवान् दर्शयति प्रजापतिरित्याद्यर्द्धेन ।।२०७।।

मायादिवह्निजायान्तैर्जुहुयात् स्वस्वनामभिः ।
अनुक्तमन्त्रे सर्वत्र विधिरेषः प्रकीर्तितः ।।२०८।।

पद्मा–इन पञ्चदेवों में से प्रत्येक के नाम के आदि में माया बीज ह्रीं तथा अन्त में वह्निजाया-स्वाहा लगाये और आहुति प्रदान करे। यथा–**ह्रीं प्रजापतये स्वाहा, ह्रीं शक्राये स्वाहा, ह्रीं विष्णवे स्वाहा, ह्रीं ब्रह्मणे स्वाहा, ह्रीं शिवाय स्वाहा**। इसी प्रकार जिस किसी भी मन्त्र की कोई विधि न कही गयी हो, उसके आदि में ह्रीं तथा अन्त में स्वाहा फट् लगाये ।

हरि०–ननु कैर्मन्त्रैः पञ्चदेवतानुदिश्याहुतीर्दद्यात्तत्राह मायादीत्यादि। मायादिवह्निजायान्तैः ह्रीं बीजादिभिः स्वाहान्तैः स्वस्वनामभिः प्रजापत्यादीन् पञ्चदेवानुदिश्य जुहुयात् । ननु प्रजापत्यादिपञ्चदेवोद्देश्यक एव होमो मायादिवह्निजायान्तैः स्वस्वनामभिर्विधातव्यस्तदन्य देवोद्देश्यकोऽपि वा तत्राह अनुक्तमन्त्रे इत्यादि ।।२०८।।

ततो दुर्गा महालक्ष्मीः सुन्दरी भुवनेश्वरी ।
इन्द्रादिदशदिक्पाला भास्करादिनवग्रहाः ।।२०९।।
प्रत्येकनाम्ना हुत्वैतान् वाससाऽऽच्छाय बालकम् ।
पृच्छेन्माणवकं प्राज्ञो ब्रह्मचर्याभिमानिनम् ।।
को वाऽऽश्रमस्ते तनय ब्रूहि किं ते मनोगतम् ।।२१०।।

पद्मा–इसके पश्चात् दुर्गा, महालक्ष्मी, सुन्दरी, (त्रिपुरसुन्दरी) भुवनेश्वरी, इन्द्रादि दश दिक्पाल, सूर्यादि नवग्रह इनमें से प्रत्येक का नाम लेकर आहुतियाँ दे। इसके उपरान्त बालक को वस्त्र से ढककर गुरु उस ब्रह्मचर्याभिमानी से पूछे-"हे पुत्र! तुम्हारा आश्रम क्या है ? तुम्हारे मन के भाव क्या हैं ? कहो ।

हरि०–तत इत्यादि। ततो ह्रीं बीजाद्येन स्वाहान्तेन प्रत्येकनाम्ना एतान् दुर्गामहालक्ष्म्यादीन् हुत्वा वाससा वस्त्रेण बालकमाच्छाद्य हे तनय के तवाश्रमः कः ते मनोगतः वा किं वर्तते त्वं ब्रूहि इति प्राज्ञो धीमान् गुरुर्ब्रह्मचर्याभिमानिनं माणवकं बालकं पृच्छेत् ।।२०९-२१०।।

ततः शिष्यः सावहितो धृत्वा गुरुपदद्वयम् ।
करोतु मामाश्रमिणं ब्रह्मविद्योपदेशतः ।।२११।।

पद्मा–इस पर शिष्य सावधान होकर गुरु के दोनों चरणों को पकड़कर कहे–ब्रह्मविद्या का उपदेश देकर मुझे आश्रमी बनाइए ।

हरि०–तत इत्यादि। ततः परं शिष्य सावहितः सावधान् सन् गुरुपदद्वयं धृत्वा हे गुरो ब्रह्मविद्योपदेशतः सावित्र्या उपदेशेन मामाश्रमिणं भवान् करोत्विति प्रार्थयेत् ॥२११॥

एवं प्रार्थयमानस्य दशकर्णे शिशोस्तदा ।
श्रावयित्वा त्रिधा तारं सर्वमन्त्रमयं शिवे ।
व्याहृतित्रयमुच्चार्य सावित्री श्रावयेद्गुरुः ।।२१२।।

पद्मा–हे शिवे! इस प्रकार प्रार्थना करने वाले शिष्य के दाहिने कान में सद्गुरु सर्वमन्त्रमय प्रणवः ॐ को तीन बार सुनाकर **भूर्भुवः स्वः** इन तीन व्याहृतियों का उच्चारण कर गायत्रीमन्त्र को सुनाये ।

हरि०–एवमित्यादि। तदा तस्मिन् काले एवं प्रार्थयमानस्य शिशोर्दक्षकर्णे सर्वमन्त्रमयं सकलमन्त्रप्रधानं वा तारं प्रणवं त्रिधा श्रावयित्वा ततो भूरादिव्याहृतित्रयमुच्चार्य गुरुः सावित्रीं गायत्रीं श्रावयेत् ॥२१२॥

ऋषि सदाशिवः प्रोक्तः छन्दस्त्रिष्टुबुदाहृतम् ।
अधिष्ठात्री तु सावित्री मोक्षार्थे विनियोगिता ।।२१३।।

पद्मा–इस गायत्री के ऋषि सदाशिव कहे गये हैं। त्रिष्टुप् छन्द हैं। सावित्री अधिष्ठात्री देवी कही गयी हैं। मोक्ष के लिये विनियोग कहा गया है ।

हरि०–अथ गायत्र्या ऋष्यादिकमाह ऋषिरित्यादिना। अस्या गायत्र्याः सदाशिव ऋषि-स्त्रिष्टुप्छन्दः सावित्र्यधिष्ठात्री देवता मोक्षार्थे विनियोगः। शिरसि सदाशिवाय ऋषये नमः मुखे त्रिष्टुप्छन्दसे नमः हृदये सावित्र्यै अधिष्ठात्र्यै देवतायै नमः इति ऋषिन्यासं विधाय सावित्र्या जपो विधेयः ॥२१३॥

आदौ तत्सवितुः पश्चाद्वरेण्यं पदमुच्चरेत् ।
भर्गः पदान्ते देवस्य धीमहीति पदं वदेत् ।।२१४।।
ततस्तु परमेशानि! धियो यो नः प्रचोदयात् ।
पुनः प्रणवमुच्चार्य सावित्र्यर्थं गुरुर्वदेत् ।।२१५।।

पद्मा–सर्वप्रथम **तत्सवितुः** इसके पश्चात् **वरेण्यं** पद का उच्चारण करे। इसके उपरान्त भर्ग इस पद के पश्चात् **देवस्य धीमहि** इस पद का उच्चारण करे। हे परमेशानि! उसके उपरान्त **धियो योनः प्रचोदयात्** तथा पुन प्रणव ॐ का उच्चारण कर शिष्य को सावित्री (गायत्री) मन्त्र का अर्थ बताये ।

हरि०–सावित्रीमेवाह आदावित्यादिना सार्द्धेन। आदौ तत्सवितुरिति वदेत् । पश्चात् वरेण्यं पदमुच्चरेदुद्धरेत्। ततो भर्ग इति पदं वदेत् । तत्पदान्ते देवस्येति पदं वदेत् । तदन्ते

धीमहीति पदं वदेत्। ततस्तु धियो योनः प्रचोदयादिति वदेत्। सकल पदयोजनया तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात् इत्याकारिका सावित्री जाता। सावित्र्यन्ते पुनः प्रणवामोङ्कारमुच्चार्य गुरुः सावित्र्यर्थं वदेत्। सावित्र्यर्थमिति प्रणवार्थस्य व्याहृत्यर्थस्य चाप्युपलक्षणम् ॥२१४-११५॥

त्र्यक्षरात्मकतारेण परेशः प्रतिपाद्यते।
पाता हर्त्ता च संस्रष्टा यो देवः प्रकृतेः परः ॥२१६॥
असौ देवस्त्रिलोकात्मा त्रिगुणं व्याप्य तिष्ठति।
अतो विश्वमयं ब्रह्म वाच्यं व्याहृतिभिस्त्रिभिः ॥२१७॥

पद्मा–त्र्यक्षरात्मक प्रणव (ॐ) द्वारा परमेश्वर का प्रतिपादन होता है। सृष्टि, स्थिति एवं प्रलय कर्ता जो देव प्रकृति से भी श्रेष्ठ है वही तीनों लोकों की आत्मा है। वह तीनों गुणों में व्याप्त रहता है। इसलिये '**भूर्भुव स्वः**' इन तीन व्याहृतियों से विश्व में ब्रह्म कहा जाता है।

हरि०–प्रथमतः प्रणवार्थं व्याहृत्यर्थं चाभिदधाति द्वाभ्यां त्र्यक्षरात्मेकेत्यादि। पाता जगतः पालको हर्त्ता तस्य संहारकः संस्रष्टा तस्यैवोत्पादकश्च प्रकृतेः परो दूर उत्तमो वा यः परेशः परमात्मा देवो दीप्त्यादि क्रियाश्रमोऽस्ति असौ परेशो देवः त्र्यक्षरात्मकतारेण अकारादित्रिवर्णात्मकेन प्रणवेन प्रतिपाद्यते बोध्यते। प्रणवप्रतिपाद्यो यो देवः असौ देवो यतस्त्रिलोकात्मा त्रिलोकस्वरूपो भवति त्रिगुणं सत्वादिकं व्याप्त तिष्ठति च अतो हेतोर्विश्वमयं विश्वरूपं ब्रह्मलोकत्रयाभिधायिभिर्भूरादिभिस्त्रिभिर्व्याहृतिभिर्वाच्यं भवति॥२१६-२१७॥

तारव्याहृतिवाच्यो यः सावित्र्या ज्ञेय एव सः।
जगद्रूपस्य सवितुः संस्रष्टुर्दीव्यतो विभोः ॥२१८॥
अन्तर्गतं महद्वर्चो वरणीयं यतात्मभिः।
ध्यायेम तत् परं सत्यं सर्वव्यापि सनातनम् ॥२१९॥
यो भर्गः सर्वसाक्षीशो मनोबुद्धीन्द्रियाणि नः।
धर्मार्थकाममोक्षेषु प्रेरयेद्विनियोजयेत् ॥२२०॥

पद्मा–जो प्रणव एवं तीन व्याहृति से वाच्य है सावित्री से वही जाना जाता है। जो जगद् रूप वस्तु का सृष्टि, दीत्यादि क्रियाश्रय विभु है। उसी के अन्तर्गत योगियों के वरणीय, सर्वव्यापी, सनातन तथा सत्य उस महाज्योति का ध्यान करता हूँ। यह महाज्योति सर्वसाक्षी एवं ईश्वर है। वह हम सबकी मन, बुद्धि व समस्त इन्द्रियों को धर्म, अर्थ काम, मोक्ष में लगाये।

हरि०–एवं प्रणवार्थं व्याहृत्यर्थं च द्वाभ्यामभिधायेदानीं तार इत्यादिभिस्त्रिभिः सवित्र्यर्थंमभिधत्ते तारेत्यादि। तारव्याहृतिवाच्यो यः परमात्मा स एव सवित्र्या अपि वाच्यो ज्ञेयः। परमात्मन एव यथा सावित्रीकल्पत्वं भवेत्तथैव व्याख्यायति जगद्रूपस्येत्यादि। सवितुरित्यस्य विवरणं जगद्रूपस्य संस्रष्टुरिति। देवस्येत्यस्य विवरणं दीव्यतो विभोरिति। भर्गपदार्थमाह अन्तर्गतं महद्वर्च्च इति। वरेण्यमित्यस्यार्थमाह यतात्मभिर्वरणीयमिति। धीमहीत्यस्य विवरणं ध्यायेमेति।

तत्पदार्थमाह परं सत्यं सर्वव्यापि सनातनमिति। य इत्यस्य विवरणसर्वसाक्षीश इति। धिय इत्यस्य विवरणं मनोबुद्धीन्द्रियाणीति। प्रचोदयादित्यस्य विवरणं धर्मार्थ काममोक्षेषु प्रेरयेदिति। प्रेरयेदित्यस्य च विवरणं विनियोजयेदिति। तदेवं वाक्यार्थः। सवितुर्जगद्रूपस्य वस्तुनः संस्त्रष्टुर्देवस्य दीव्यतो विभोर्वरेण्यं यतात्मभिः संयतान्तः करणैर्वरणीयमुपासनीयं तत् परमुत्तमं सत्यं यथार्थभूतं सर्वव्यापि सकलपदार्थव्यापनशीलं सनातनमाद्यन्तशून्यम् अन्तर्गतं महद्वर्चस्तेजो वयं धीमहि ध्यायेम् । यः सर्वसाक्षीशः सर्वेषां शुभाशुभकर्मणां द्रष्टा नियन्ता च भर्गो नोऽस्माकं धियो मनोबुद्धीन्द्रियाणि प्रचोदयात् धर्मार्थकाममोक्षेषु प्रेरयेत् विनियोजयेदिति। अत्र यद्यपि सर्वितुर्भर्ग इति सवितृभर्गयोर्भेदः प्रतीयते तथापि परमार्थ चिन्तायामभेद एवेति बोद्धव्यम् ॥२१८-२२०॥

इत्थमर्थयुतां ब्रह्मविद्यामादिश्य सद्गुरुः ।
शिष्यं नियोजयेद्देवि गृहस्थाश्रमकर्मसु ।।२२१।।

पद्मा–हे देवि! सद्गुरु इसी प्रकार ब्रह्मविद्या गायत्री का अर्थ सहित उपदेश कर शिष्य को गृहस्थाश्रम के कार्य में लगाये ।

हरि०–इत्थमित्यादि। हे देवि इत्थमनेन प्रकारेणार्थयुतां ब्रह्मविद्यां गायत्रीमादिश्य भिक्षार्थमितस्ततो गमयित्वा च सद्गुरुः शिष्यं गृहस्थाश्रमकर्मसु नियोजयेत् प्रवर्त्तयेत् ॥२२१॥

ब्रह्मचर्योचितं वेशं वत्सेदानीं परित्यज ।
शाम्भवोदितमार्गेण देवान् पितृन् समर्चय ।।२२२।।

पद्मा–गुरु शिष्य से कहे-हे पुत्र ! अब तुम ब्रह्मचारी के वेश का परित्याग कर दो। शिव द्वारा बताये गये मार्ग के अनुसार देवताओं तथा पितरों का अर्चन करो ।

हरि०–गृहस्थाश्रमकर्मसु शिष्यस्य प्रवर्त्तनमाह ब्रह्मचर्येत्यादिभिः। हे वत्स त्वमिदानीं ब्रह्मचर्योचितं वेशं परित्यज शाम्भवोदितमार्गेण शम्भुप्रोक्तेन वर्त्मना देवान् पितृंश्च समर्चय सम्यक् पूजय॥२२२॥

ब्रह्मविद्योपदेशेन पवित्रं ते कलेवरम् ।
प्राप्ता गृहस्थाश्रमिता तदुक्तं कर्म कल्पय ।।२२३।।

पद्मा–ब्रह्मविद्या के आदेश से तुम्हारा यह शरीर पवित्र हो गया है। तुम इस समय गृहस्थाश्रम को प्राप्त हो गये हो, इसलिए तुम गृहस्थाश्रम के कहे हुए कर्मों का निष्पादन करो ।

हरि०–ब्रह्मेत्यादि। हे वत्स ब्रह्मविद्योपदेशेन् ते तव कलेवरं शरीरं पवित्रमासीत् । इदानीं प्राप्ता या गृहस्थाश्रमिता तदुक्तं कर्म कल्पय कुरुः ॥२२३॥

उपवीतद्वयं दिव्यवस्त्रालङ्करणानि च ।
गृहाण पादुकाछत्रं गन्धमाल्यानुलेपनम् ।।२२४।।

पद्मा–दो उपवीत (यज्ञोपवीत) दिव्य वस्त्र, अलङ्कार, पादुका, छत्र, गन्ध, माला, एवं अनुलेपन ग्रहण करो ।

हरि०–उपवीतेत्यादि। हे वत्स त्वमिदानीमुपवीतद्वयं द्वे उपवीते दिव्यानि वस्त्रालङ्करणानि च पादुकाछत्रमुपानहं छत्रं च गन्धमाल्यानुलेपनमपि गृहाण॥२२४॥

ततः काषायवसनं कृष्णाजिनसमन्वितम्।
यज्ञसूत्रं मेखलाञ्च दण्डं भिक्षाकरण्डकम्॥२२५॥
आचारादर्जितं भिक्षां समर्प्य गुरवे शिवे।
शुद्धोपवीतयुगलं परिधायाम्बरे शुभे॥२२६॥
गन्धमाल्यधरस्तूष्णीं तिष्ठदाचार्यसन्निधौ।
ततो गृहस्थाश्रमिणं शिष्यमेतद्वदेद्गुरुः॥२२७॥

पद्या–हे शिवे ! इसके पश्चात् शिष्य गेरुआ रंग के वस्त्र, काले मृग का चर्म, यज्ञोपवीत, मेखला, दण्ड, भिक्षापात्र, आचार के अनुसार प्राप्त भिक्षा–ये सभी गुरुदेव को अर्पित करे। शिष्य दो शुद्ध यज्ञोपवीत तथा दो उत्तम वस्त्रों को धारण करे। गन्ध एवं माला को धारण कर आचार्य के समीप मौन होकर बैठे। आचार्य गृहस्थाश्रमी शिष्य से कहे।

हरि०–तत इत्यादि। गुरुणैवमाज्ञपितः शिष्यः ततः परं काषायवसनं कषायेण रक्तं वस्त्रं कृष्णाजिन समन्वितं यज्ञसूत्रं मेखलां दण्डं भिक्षाकरण्डकं भिक्षापात्रमाचारादर्जितां भिक्षाञ्च गुरवे समर्प्य दत्त्वा शुद्धोपवीतयुगलं शुभे अम्बरे वस्त्रे च परिधाय गन्धमाल्यधरः सन् तूष्णीमाचार्यसन्निधौ गुरुसमीपे तिष्ठेत्। ततो गृहस्थाश्रमिणं शिष्यं गुरुरेतद्वदेत्॥२२५-२२७॥

जितेन्द्रियः सत्यवादी ब्रह्मज्ञानपरो भव।
स्वाध्यायाऽऽश्रमकर्माणि यथाधर्मेण साधय॥२२८॥

पद्या–तुम जितेन्द्रिय, सत्यवादी एवं ब्रह्मज्ञान परायण हो। धर्मशास्त्र की विधि के अनुसार अध्ययन एवं गृहस्थाश्रम के समस्त कर्मों को करो।

हरि०–ननु गृहस्थाश्रमिणं शिष्यं गुरुः किं वदेदित्यपेक्षायामाह जितेन्द्रिय इत्यदि॥२२८॥

इत्यादिश्य द्विजं पश्चात् समुद्भवहुताशने।
मायादिप्रणवान्तेन भूर्भुवः स्वस्त्रयेण च॥२२९॥
हावयित्वा त्रिधाऽऽचार्यः स्विष्टकृद्धोममाचरन्।
दत्त्वा पूर्णाहुतिं भद्रे! व्रतकर्म समापयेत्॥२३०॥
जीवसेकादिसंस्कार व्रतान्ताः पितृतो नव।
उद्वाहः पितृतो वापि स्वतोऽपि सिध्यति प्रिये!॥२३१॥

पद्या–गुरु द्विज शिष्य को इस प्रकार का आदेश देकर सर्वप्रथम मायाबीज ह्रीं और सबसे अन्त में प्रणव ॐ का उच्चारण करे तथा भूःभुव स्वः इन तीन मन्त्रों के द्वारा समुद्भव नामक अग्नि में तीन बार होम कराकर स्विष्टकृत होम करे। हे भद्रे ! पूर्णाहुति के पश्चात् उपनयन क्रिया को समाप्त करे। हे प्रिये! जीवसेक से लेकर उपनयन तक के नौ संस्कार पिता के ही द्वारा सम्पन्न होते हैं। किन्तु विवाह संस्कार पिता के द्वारा अथवा स्वयं द्वारा करे।

हरि०-इतीत्यादि। द्विजं द्विजत्वशालिनं शिष्यमित्यादिश्य आज्ञाप्य पश्चात् समुद्भवहुताशने समुद्भवाख्ये वह्नौ मायादिप्रणवान्तेन ह्रीं बीजादिना ओंकारान्तेन भूर्भुवः स्वस्त्रयेण मन्त्रेण त्रिधा त्रिवारं शिष्येण हावयित्वा च स्विष्टकृतं होममाचरन्नाचार्यः पूर्णाहुतिं दत्त्वा व्रतकर्म यज्ञोपवीतक्रियां समापयेत् ।।२२९-२३१।।

विवाहाह्नि कृतस्नानः कृतनित्यक्रियः कृती ।
पञ्चदेवान् समभ्यर्च्य गौर्यादिमातृकास्तथा ।
वसोर्धारां कल्पयित्वा वृद्धिश्राद्धं समाचरेत् ।।२३२।।

पद्या-कार्यकुशल मनुष्य विवाह के दिन स्नान करने के बाद नित्यक्रिया करके पञ्चदेवों की पुजा कर गौरी आदि सोलह मातृकाओं की पूजा करे। इसके उपरान्त वसुधारा देकर वृद्धिश्राद्ध करे ।

हरि०-अथोद्वाहक्रियविधिमाह विवाहाह्नीत्यादिभिः।।२३२।।

रात्रौ प्रतिश्रुतं पात्रं गीतवाद्यपुरःसरम् ।
छायामण्डपमानीय उपवेश्य वरासने ।।२३३।।
वासवाभिमुखं दाता पश्चिमाभिमुखो विशेत् ।
आचम्य स्वस्तिमृद्धिञ्च कथयेद्ब्राह्मणैः सह ।।२३४।।

पद्या-सर्वप्रथम जिस वर को कन्यादान के लिये वचन दिया था, जब वह गीतवाद्य के साथ रात्रि के समय में आये, तो उसे छायामण्डप में लाकर वर के आसन पर पूर्व की ओर मुख करके बैठाये। कन्यादाता पश्चिम की ओर मुख करके बैठे। कन्यादाता सर्वप्रथम आचमन कर ब्राह्मणों के साथ स्वस्ति तथा ऋद्धि का पाठ करे ।

हरि०-रात्रावित्यादि। ततः प्रतिश्रुतमङ्गीकृतं पात्रं वरं गीतवाद्यपुरः सरं यथा स्यात्तथा रात्रौ छायामण्डपमानीय वरासने श्रेष्ठे पीठे वासवाभिमुखं पूर्वाभिमुखमुपवेश्य च कन्याया दाता पश्चिमोभिमुखो भूत्वा विशेत् । पश्चिमाभिमुख उपविष्टो दाता आचम्याचमनं कृत्वा कर्तव्येऽस्मिन् शुभविवाहकर्म्मणि स्वस्ति भवन्तो ब्रुवन्त्वित्युक्त्वा ब्राह्मणैः सह स्वस्ति न इन्द्रो वृद्धश्रवा इत्यादि स्वस्तिं कथयेत् । ततः कर्त्तव्येऽस्मिन् शुभविवाहकर्मणि ऋद्धिभवन्तोऽधिब्रुवन्तित्युक्त्वा तैरेव सह ऋध्यताम् ऋध्यताम् ऋध्यताम् इत्यृद्धिञ्चकथयेत् वाचयेत् ।।२३३-२३४।।

साधुप्रश्नं वरं पृच्छेदर्चनाप्रश्नमेव च ।
वरात् प्रश्नोत्तरं नीत्वा पाद्याद्यैर्वरमर्चयेत् ।।२३५।।

पद्या-इसके उपरान्त वर से कुशल प्रश्न तथा अर्चना प्रश्न करके प्रश्न का उत्तर प्राप्त कर पाद्यादि द्वारा वर का अचमन करे ।

हरि०-साध्वित्यादि। ततो दाता साधु भवानास्तमिति साधु प्रश्नं भवन्तमर्चयिष्यामि इत्यर्चनाप्रश्नञ्च वरं पृच्छेत् । ततो वरात् साध्वहमासे इति ओमर्चयेति च प्रश्नोत्तरं नीत्वा समादाय पाद्यैर्वरमर्चयेत् पूजयेत् पाद्यादीनि वराय समर्पयेदित्यर्थः।।२३५।।

समर्पयामि वाक्येन देयद्रव्यं समर्पयेत् ।
पादयोरर्पयेत् पाद्यं शिरस्यर्घ्यं निवेदयेत् ।।२३६।।
आचम्यं वदने दद्यात् गन्धं माल्यं सुवाससी ।
दिव्याभरणरत्नानि यज्ञसूत्रं समर्पयेत् ।।२३७।।

पद्मा–''समर्पयामि'' वाक्य द्वारा देय द्रव्य समर्पित करे। दोनों चरणों पर पाद्य तथा शिर पर अर्घ्य समर्पित करे। मुख में आचमनीय प्रदान कर दो उत्तम वस्त्र गन्ध, माला, उत्तम आभूषण, रत्न तथा यज्ञसूत्र समर्पित करे ।

हरि०–ननु केन वाक्येन कुत्र कुत्र वा अङ्गे पाद्यादिकं समर्पयेदित्यकाङ्क्षायामाह समर्पयामीत्यादि। तुभ्यमिदं समर्पयामीति वाक्येन पाद्यादिदेयद्रव्यं वराय समर्पयेत् ।।२३६-२३७।।

ततस्तु भाजने कांस्ये कृत्वा दधि घृतं मधु ।
समर्पयामि वाक्येन मधुपर्कं करेऽर्पयेत् ।।२३८।।

पद्मा–इसके पश्चात् कांसे के पात्र में दही, घी तथा मधु रखकर **मधुपर्कं समर्पयामि** कहकर वर के हाथ में प्रदान करे ।

हरि०–**ततस्त्वित्यादि**। ततस्तु कांस्ये भाजने दधि घृतं मधु च कृत्वा तुभ्यं समर्पयामीति वाक्येन मधुपर्कं वरस्य करे दक्षिणे हस्ते समर्पयेत् ।।२३८।।

वरोऽपि पात्रमादाय वामे पाणौ निधाय च ।
दक्षाङ्गुष्ठानामिकाभ्यां प्राणाहुत्युक्तमन्त्रकैः ।।२३९।।
पञ्चधाघ्राय तत्पात्रमुदीच्यां दिशि धारयेत् ।
मधुपर्कं समर्प्यैवं पुनराचामयेद्वरम् ।।२४०।।

पद्मा–उस मधुपर्क पात्र को वर भी बायें हाथ में रखकर प्राणाहुतिमन्त्र **प्राणाय स्वाहा अपानाय स्वाहा, समानाय स्वाहा, उदानाय स्वाहा, व्यानाय स्वाहा** को पढ़कर दाहिने हाथ के अंगूठे तथा अनामिका द्वारा पाँच बार सूँघकर उस पात्र को उत्तर दिशा में रख दे। इस प्रकार मधुपर्क समर्पित कर वर को पुनः आचमन कराये ।

हरि०–**वरोऽपीत्यादि**। वरोऽपि मधुपर्कपात्रमादाय गृहीत्वा वामे पाणौ निधाय संस्थाप्य च दक्षाङ्गुष्ठानामिकाभ्याङ्गुलिभ्यां प्राणाय स्वाहेत्यादिकैः प्राणाहुत्युक्तमन्त्रैः पञ्चधा पञ्चवारं मधुपर्कमाघ्राय तत्पात्रं मधुपर्कपात्रमुदीच्यामुत्तरस्यां दिशि धारयेत् । एवं वराय मधुपर्कं समर्प्य पुनर्वरमाचामयेत् ।।२३९-२४०।।

दूर्वाक्षताभ्यां जामातुर्विधृत्य जानु दक्षिणम् ।
स्मृत्वा विष्णुं तत्सदिति मासपक्षतिथीस्ततः ।।२४१।।
समुल्लिख्य निमित्तानि वृणुयाद्वरमुत्तमम् ।
गोत्रप्रवरनामानि प्रत्येकं प्रपितामहात् ।।२४२।।

षष्ठ्यन्तानि समुच्चार्य वरस्य जनकावधि ।
द्वितीयान्तं वरं ब्रूयात् गोत्रप्रवरनामभिः ।।२४३।।
तथैव कन्यामुल्लिख्य ब्राह्मोद्वाहेन पण्डितः ।
दातुं भवन्तमित्युक्त्वा वृणेऽहमिति कीर्त्तयेत् ।।२४४।।

पद्या–इसके बाद दूब तथा अक्षत हाथ में लेकर जामाता (दामाद) की दाहिनी जाँघ को पकड़कर भगवान् विष्णु को स्मरण करते हुए तत् सत् इस वाक्य का उच्चारण कर माह, तिथि एवं पक्ष का उल्लेख कर वर के प्रपितामह से पिता तक के प्रत्येक के गोत्र प्रवर सहित षष्ठयन्त नाम का उच्चारण करे। इसी प्रकार गोत्रप्रवरादि सहित द्वितीयान्त वर के नाम का उल्लेख कर उत्तम वर का वरण करे। तत्पश्चात् इसी प्रकार कन्या के प्रपितामह से पिता तक के तीन पुरुषों के षष्ठयन्त नाम, गोत्र तथा प्रवर के सहित उच्चारण करे। इसी प्रकार गोत्र प्रवर सहित द्वितीयान्त कन्या नाम का उल्लेख कर कन्यादाता कहे–ब्रह्मविवाह द्वारा कन्या दान करने के लिए मैं तुम्हारा वरण करता हूँ।

हरि०–दूर्वेत्यादि। ततो जामातुर्वरस्य दक्षिणं जानु विधृत्य प्रथमतो विष्णुं स्मृत्वा ततस्तत्सदिति समुल्लिख्योच्चार्य ततो मास प्रभृतीनि निमित्तानि समुल्लिख्य ततो वरस्य प्रपितामहात् प्रपितामहमारभ्य जनकावधेर्जनकपर्यन्तस्य त्रिपुरुषस्य प्रत्येकं षष्ठ्यन्तानि गोत्रप्रवरनामानि समुच्चार्य ततो गोत्रप्रवरनामभिर्विशिष्टं द्वितीयान्तं वरं ब्रूयात्। ततस्तथैव कन्यायाः प्रपितामहादेर्जनकपर्यन्तस्य त्रिपुरुषस्य षष्ठ्यन्तानि गोत्रप्रवरनामान्युल्लिख्य ततो गोत्रप्रवरनामाभिर्विशिष्टां द्वितीयान्तां कन्यामुल्लिख्य ततो ब्राह्मोद्वाहेन दातुं भवन्तमित्युक्त्वा पण्डितः सम्प्रदाता वृणेऽहमिति कीर्त्तयेत्। योजनया विष्णुरों तत्सत्ओं अद्यामुकमास्यमुकपक्षेऽमुकतिथावमुकराशिस्थिते भास्करेऽमुकगोत्र श्रीमदमुकदेवशर्मा अमुकगोत्रममुकप्रवरस्य श्रीमन्तममुकदेवशर्माणः वरम् अमुकगोत्रस्यामुकप्रवरस्य श्रीमदमुकदेवशर्मणः प्रपौत्रीम् अमुकगोत्रस्यामुकप्रवरस्य श्रीमदमुकदेवशर्मणः पौत्रीममुकगोत्रस्यामुकप्रवरस्य श्रीमदमुकदेवशर्मणः पुत्रीम् अमुकगोत्राममुकप्रवराममुकीं देवीं कन्यां ब्राह्मोद्वाहेन दातुं भवन्तमहं वृणे इति वाक्यं जातम्। अनेन वाक्येन दूर्वाक्षताभ्यामुत्तममं वरं वृणुयात् ।।२४१-२४४।।

वृतोऽस्मीति वरो ब्रूयात् ततो दाता वदेद्वरम् ।
यथाविहितमित्युक्त्वा विवाहकर्म कुर्विति ।
वरो ब्रूयात् यथाज्ञानं करवाणि तदुत्तरम् ।।२४५।।

पद्या–इसके उपरान्त वर कहे "मैं वृत्त होता हूँ"। फिर कन्यादाता वर से कहे "विधि के अनुसार विवाह कर्म करो।" वर उत्तर में कहे "मुझे जिस प्रकार का ज्ञान है उसी के अनुसार कर्म करता हूँ।

हरि०–वृत्त इत्यादि। ततो वृतोऽस्मीति वरो ब्रूयात्। ततो दाता यथाविहितमित्युक्त्वा विवाहकर्म कुरु इति वरं वदेत् यथाविहितं विवाहकर्म कुर्विति जामातरं ब्रूयादित्यर्थः। ततो यथाज्ञानं विवाहकर्म करवाणीति तदुत्तरं वरो ब्रूयात् ।।२४५।।

ततः कन्यां समानीय वस्त्रालङ्कारभूषिताम् ।
वस्त्रान्तरेण संच्छाद्य स्थापयेद्वरसम्मुखम् ।।२४६।।

पद्मा–इसके पश्चात् वस्त्र तथा अलङ्कार से विभूषित कन्या को लाकर अन्य वस्त्र द्वारा ढके । उसे वर के सामने बैठाये ।

हरि०–तत इत्यादि। ततः परं वस्त्रालङ्कारभूषितां कन्यां वस्त्रान्तरेण संच्छाद्य गृहात् समानीय वरसम्मुखं स्थापयेत् ।।२४६।।

पुनर्वरं समभ्यर्च्य वासोऽलङ्करणादिभिः ।
वरस्य दक्षिणे पाणौ कन्यापाणिं नियोजयेत् ।।२४७।।

पद्मा–फिर कन्यादाता दुबारा वस्त्र तथा अलंकार आदि द्वारा वर की पूजा कर वर के दाएँ हाथ में कन्या का हाथ रखे ।

हरि०–पुनरित्यादि। ततो दाता वासोऽलङ्करणादिभिर्वरं पुनः समभ्यर्च्य वरस्य दक्षिणे पाणौ कन्यापाणिं कन्याया दक्षिणं हस्तं नियोजयेत् स्थापयेत् ।।२४७।।

तन्मध्ये पञ्चरत्नानि फलताम्बूलमेव वा ।
दत्त्वाऽर्चयित्वा तनयां वराय विदुषेऽर्पयेत् ।।२४८।।

पद्मा–फिर उसके हाथ में फल, ताम्बूल, (पान) एवं पञ्चरत्न प्रदान कर पूजन कर वर को कन्या समर्पित करे ।

हरि०–तन्मध्ये इत्यादि। ततस्तन्मध्ये पाणिमध्ये पञ्चरत्नानि फलताम्बूलमेव वा दत्त्वा तनयां पुत्रीमर्चयित्वा विदुषे धीमते वरार्पयेत् दद्यात् ।।२४८।।

प्राग्वत्त्रिपुरुषाख्यानं निमित्ताख्यानमेव च ।
आत्मनः काममुद्दिश्य चतुर्थ्यन्तं वरं वदेत् ।।२४९।।
कन्याभिधां द्वितीयान्तामर्चितं समलङ्कृताम् ।
साच्छादनां प्रजापतिदेवताकामुदीरयन् ।।२५०।।
तुभ्यमहमिति प्रोच्य दद्यात् सम्प्रददे वदन् ।
वरः स्वस्तीति स्वीकुर्यात् सम्प्रदाता वरं वदेत् ।।२५१।।

पद्मा–कन्या समर्पित करते समय सर्वप्रथम अपनी मनोकामना का उल्लेख कर तीन पुरुषो का नाम लेकर कारण का वर्णन कर चतुर्थी विभक्ति वर के नाम के अन्त में लगाकर उसका उच्चारण करे। फिर तीन पुरुषों का नाम लेकर कन्या का द्वितीयान्त नाम उच्चारण करने के समय **''अर्चिता' समलङ्कृतां साच्छादनां प्रजापति देवताकां तुभ्यमहं सम्प्रददे''** पद का उच्चारण कर कन्यादान करे। उत्तर में वर स्वस्ति कह कर कन्या को स्वीकार करे। कन्यादाता वर से कहे ।

हरि०–ननु केन वाक्येन वराय कन्या समर्पयितव्येत्याकाङ्क्षायामाह प्राग्वदित्यादि। प्राग्वत् पूर्ववत् त्रिपुरुषाख्यानं निमित्ताख्यानञ्च कृत्वाऽऽत्मनः काममप्युद्दिश्य ततश्चतुर्थ्यन्तं

वरं वदेत्। ततो द्वितीयान्तामर्चितां समलङ्कृतां साच्छादनां प्रजापतिदेवताकां कन्याभिधामुदीरयंस्तुभ्यमहमिति प्रोच्य ततः सम्प्रददे इति वदंस्तनया दद्यात्। योजनया विष्णुरों तत्सत् ओं अद्यामुकमास्यमुकपक्षेऽमुकतिथावमुकराशिस्थित भास्करेऽमुकाभीष्टसिद्धिकामोऽमुकगोत्रः श्रीमदमुकदेवशर्मणः प्रपौत्राय अमुकगोत्रस्याऽमुकप्रवरस्य श्रीमदमुकदेवशर्मणः श्रीमदमुकशर्माऽमुकगोत्रस्याऽमुकप्रवरस्य पौत्राय अमुकगोत्रस्यामुकप्रवरस्य श्रीमदमुकदेव शर्मणः पुत्राया अमुकगोत्रस्याऽमुकप्रवरस्य श्रीमतेऽमुकदेवशर्मणे वराय अमुकगोत्रस्याऽमुकप्रवरस्य श्रीमदमुकदेवशर्मणः प्रपौत्रीममुकगोत्रस्यामुकप्रवरस्य श्रीमदमुकदेवश-र्मणः पौत्रीममुकगोत्रस्यामुकप्रवरस्य श्रीमदमुकदेव शर्मणपुत्रीममुकगोत्राममुक प्रवरामर्चितां समलङ्कृता साच्छादनां प्रजापतिदेवता काममुकीं देवीमेनां कन्यां तुभ्यमहं सम्प्रददे इति वाक्येन विदुषे वराय तनयां समर्पयेदित्यर्थः। वरः स्वस्तीत्युत्त्वा भार्या स्वीकुर्यात्। ततः सम्प्रदातां वरं वदेत् ॥२४९-२५१॥

धर्मे चार्थे च कामे च भवता भार्यया सह।
वर्तितव्यं वरो बाढमुक्त्वा कामस्तुतिं पठेत् ॥२५२॥

पद्मा–तुम, धर्म, अर्थ एवं काम के विषय में अपनी पत्नी के साथ मिलकर कार्य करना, वर उत्तर दे "मैं ऐसा ही करूँगा।" इसके पश्चात् कामस्तुति का पाठ करे।

हरि०–सम्प्रदाता वरं प्रति किं वदेदित्यपेक्षायामाह धर्मे चेत्यादि। हे जामातः धर्मेचार्थे च कामे च भार्यया सह भवता वर्तितव्यम्। ततो वरो बाढमित्युक्त्वा कामस्तुतिं पठेत् बाढमङ्गीकरणम्। भृशप्रतिज्ञयोबाढमित्यमरः॥२५२॥

दाता कामो गृहीताऽपि कामायाऽदाच्चकामिनीम्।
कामेन त्वां प्रगृह्णामि कामः पूर्णोऽस्तु चावयोः ॥२५३॥

पद्मा–काम सम्प्रदान करता है, काम ही प्रतिग्रह करता है काम ही काम के लिये सुन्दर स्त्री (कामिनी) को ग्रहण करता है। हे भार्ये! मैं काम के लिये तुम्हें ग्रहण करता हूँ। हमदोनों के काम पूर्ण हों।

हरि०–कामस्तुतिमेवाह दाता काम इति। कामो दाता भवति काम एव गृहीता भवति कामः। कामाय कामिनीमदात् हे भार्ये त्वामहं प्रगृह्णामि आवयोः कामः पूर्णोऽस्तु॥२५३॥

ततो वदेत् सम्प्रदाता कन्यां जामातरं प्रति।
प्रजापतिप्रसादेन युवयोरभिवाञ्छितम्।
पूर्णमस्तु शिवाञ्चास्तु धर्मं पालयतं युवाम् ॥२५४॥

पद्मा–फिर कन्यादाता कन्या और जामाता से कहे "प्रजापति की कृपा से तुम्हारी मनोकामना पूर्ण हो। तुम दोनों का कल्याण हो। तुम दोनों मिलकर धर्म का पालन करो।

हरि०–**तत इत्यादि**। ततः कामस्तुतिपठनादनन्तरं सम्प्रदाता कन्यां जामातरं वरञ्च प्रति वदेत्। किं वदेदित्यपेक्षायामाह प्रजापतिप्रसादेनेत्यादि ॥२५४॥

तत आच्छाद्य वस्त्रेण सम्प्रदाता सुमङ्गलैः ।
परस्परशुभालोकं कारयेद्वरकन्ययोः ।।२५५।।

पद्मा–इसके पश्चात् कन्यादाता मंगलकारी गीत वाद्यादि बजाकर कन्या तथा वर को वस्त्र से आच्छादित कर आपस में शुभदृष्टि कराये ।

हरि०–तत इत्यादि। ततः सम्प्रदाता वस्त्रेण वरकन्ये आच्छाद्य सुमङ्गलैर्गीतवाद्यादिभिर्वरकन्ययोः परस्परशुभालोकं कारयेत् ॥२५५॥

ततो हिरण्यरत्नानि यथाशक्त्यनुसारतः ।
जामात्रे दक्षिणां दद्यादच्छिद्रमवधारयेत् ।।२५६।।

पद्मा–तदुपरान्त वर (जामाता) को अपनी सामर्थ्यानुसार स्वर्ण एवं रत्न की दक्षिणा प्रदान कर ''**कृतमिदं शुभविवाहकर्माच्छिद्रमस्तु**'' कहकर अच्छिद्रावधारण करे ।

हरि०–तत इत्यादि। तत ॐ अद्येत्यादि कृतस्यास्य शुभविवाहकर्मणः साङ्गत्वार्थं हिरण्यादिदक्षिणाममुकगोत्राया मुकदेवशर्मणे वराय तुभ्यमहं सम्प्रददे इति वाक्येन सम्प्रदाता जामात्रे यथा शक्त्यनुसारतो हिरण्यरत्नानि दक्षिणां दद्यात् । ततः कृतमिदं शुभविवाहकर्माऽच्छिद्रमस्तु इत्यवधारयेत् ॥२५६॥

वरस्तु भार्यया सार्द्धं तद्रात्रौ दिवसेऽपि वा ।
कुशण्डिकोक्तविधिना वह्निस्थापनमाचरेत् ।।२५७।।
योजकाख्यः पावकोऽत्र प्राजापत्यश्चरुः स्मृतः ।
धारान्तं कर्म सम्पाद्य दद्यात् पञ्चाहुतीर्वरः ।।२५८।।

पद्मा–तदनन्तर उस रात्रि में या दूसरे दिन पत्नी के साथ कुशण्डिका में कही हुई विधि के अनुसार अग्नि की स्थापना करे। इस कुशण्डिका में 'योजक' नामक अग्नि तथा ''प्राजापत्य'' नामक चरु कहा गया है। धारा होम तक समस्त कर्म कर वर को पाँच आहुतियाँ देनी चाहिए ।

हरि०–वरस्त्वित्यादि। तदनन्तरमिति शेषः। दिवसेऽपि वा तस्या एव रात्रेः परस्मिन् दिने वा। अत्र विवाहकर्मणि॥२५७-२५८॥

शिवं दुर्गां तथा विष्णुं ब्रह्माणं वज्रधारिणम् ।
ध्यात्वैकैकं समुद्दिश्य जुहुयात् संस्कृतेऽनले ।।२५९।।

पद्मा–शिव, दुर्गा, ब्रह्मा तथा इन्द्र का ध्यान कर प्रत्येक के लिये एक-एक आहुति संस्कारित अग्नि में दे ।

हरि०–ननु कान्देवानुद्दिश्य सभार्यो वरः पञ्चाहुतीर्दद्यात्यपेक्षायामाह शिवमित्यादि॥२५९॥

भार्यायाः पाणियुगलं गृह्णीयादित्युदीरयन् ।
पाणिं गृह्णामि सुभगे गुरुदेवरता भव ।
गार्हस्थ्यं कर्म धर्मेण यथावदनुशीलय ।।२६०।।

पद्मा–वर अपनी पत्नी के दोनों हाथों को पकड़ कर कहे-हे सुभगे ! मैं तुम्हारा

पाणिग्रहण करता हूँ। तुम गुरु एवं देवता की भक्त होकर धर्मानुसार विधिवत् गृहस्थाश्रम के कार्य करो।

हरि०-भार्याया इति । ततो वर इति वक्ष्यमाणं मन्त्रमुदीरयन् कीर्त्तयन् भायार्या: पाणियुगलं गृह्णीयात् । तमेव मन्त्रमाह पाणिं गृह्णामि सुभगे इत्यादि ॥२६०॥

घृतेन स्वामिदत्तेन लाजैर्भ्रात्राहृतैः शिवे! ।
प्रजापतिं समुद्दिश्यं दद्यात् वेदाहुतीर्वधूः ॥२६१॥

पद्मा-हे शिवे! इसके पश्चात् वधू स्वामी के दिये हुए घी से तथा भाई के दिये हुए लाजा (लावा) से प्रजापति को चार बार आहुतियाँ प्रदान करे।

हरि०-घृतेनेत्यादि। हे शिवे ततो वधूर्भार्या स्वामिदत्तेन घृतेन भ्रात्राहृतैर्दत्तैर्लाजैश्च प्रजापतिं समुद्दिश्य वेदाहुतीश्चतस्र आहुतीर्दद्यात् ॥२६१॥

प्रदक्षिणीकृत्य वह्निमुत्थाय भार्यया सह ।
दुर्गां शिवं रमां विष्णुं ब्राह्मीं ब्रह्माणमेव च ।
युग्मं युग्मं समुद्दिश्य त्रिस्त्रिधा हवनं चरेत् ॥२६२॥

पद्मा-फिर पत्नी के साथ वर खड़ा होकर अग्नि को प्रदक्षिणा करे तथा दुर्गा शिव रमा, विष्णु, ब्राह्मी, ब्रह्मा इनमें से प्रत्येक दम्पत्ति के लिये तीन-तीन बार आहुतियाँ प्रदान करे।

हरि०-प्रदक्षिणीकृत्येत्यादि। ततो वरो भार्यया सहोत्थाय वह्निं प्रदक्षिणीकृत्य दुर्गां शिवञ्च रमा विष्णुञ्च ब्राह्मीं ब्रह्माणमेव च युग्मं युग्मं समुच्चार्य त्रिस्त्रिधा त्रिवारं त्रिवारं हवनं चरेत् कुर्यात् ॥२६२॥

अश्ममण्डलिकासप्तरोहौ कुर्यादमन्त्रकम् ।
निशायां चेत तदा स्त्रीभिः पश्येद् ध्रुवमरुन्धतीम् ॥२६३॥

पद्मा-इसके पश्चात् बिना मन्त्र पढे शिलारोहण तथा सप्तपदीगमन करे। यदि विवाह की रात्रि में ही कुशण्डिका हो तो वर-वधू स्त्रियों के साथ अरुधन्ती नक्षत्र का दर्शन करे।

हरि०-अश्ममण्डलिकेत्यादि। ततः सभार्यो वरोऽमन्त्रकं मन्त्रवर्जितमेवाश्मण्डलिकासप्तरोहौ पाषणारोहणं सप्तमण्डलिकारोहञ्च कुर्यात् । चेत् यदि निशायां तदारोहौ कुर्यात्तदा स्त्रीभिः परिवृतः सभार्यो वरो ध्रुवमरुन्धतीञ्च पश्येत् ॥२६३॥

प्रत्यावृत्यासने सम्यगुपविश्य वरस्तदा ।
स्विष्टकृद्धोमतः पूर्णाहुत्यन्तेन समापयेत् ॥२६४॥
ब्राह्मो विवाहो विहितो दोषहीनः सवर्णया ।
कुलधर्मानुसारेण गोत्रभिन्नासपिण्डया ॥२६५॥
ब्राह्मोद्वाहेन या ग्राह्या सैव पत्नी गृहेश्वरी ।
तदनुज्ञां विना ब्राह्मविवाहं नाचरेत् पुनः ॥२६६॥

पद्मा-वर पुनः लौटकर विधिवत् अपने आसन पर बैठे तथा स्विष्टकृत होम से लेकर

पूर्णाहुति तक समस्त कार्य करे। भिन्न गोत्र की, असपिण्डा, सवर्णा के साथ कुलधर्म के अनुसार विवाह करना निर्दोष ब्राह्मविवाह है। जो पत्नी ब्रह्मविवाह से ग्रहण की जाती है वही पत्नी और गृहेश्वरी होती है। विना उसकी अनुमति के कोई भी व्यक्ति पुनः ब्रह्मविवाह नहीं कर सकता।

हरि०–समापयेत् विवाहकर्मेति शेषः ॥२६४-२६६॥

तस्या अपत्ये तद्वंशे विद्यमाने कुलेश्वरि! ।
शैवोद्भवान्यपत्यानि दायार्हाणि भवन्ति न ॥२६७॥

पद्मा–हे कुलेश्वरि ! ब्रह्मविवाह से विवाहिता पत्नी के गर्भ से उत्पन्न संतान या उसके वंश का कोई भी रहते हुए शैवविवाह के द्वारा विवाहित पत्नी के गर्भ से पुत्र या सन्तान धन की अधिकारिणी नहीं होगी। अर्थात् ब्रह्मविवाह से विवाहित स्त्री की सन्तान ही प्रथम रूप से अधिकारिणी होगी।

हरि०–**तस्या इत्यादि**। तस्या ब्राह्मोद्वाहेन गृहीतायाः पत्न्याः अपत्ये आत्मजे आत्मजायां वा॥२६७॥

शैवा तदन्वयाश्चैव लभेरन् धनभाजिनः ।
यथाविभवमाच्छादं ग्रासञ्च परमेश्वरि! ॥२६८॥
शैवो विवाहो द्विविधः कुलचक्रे विधीयते ।
चक्रस्य नियमेनैको द्वितीयो जीवनावधि ॥२६९॥

पद्मा–हे परमेश्वरि ! शैवविवाह के द्वारा विवाहित स्त्री के गर्भ से उत्पन्न सन्तान धनाधिकारी व्यक्ति की सम्पत्ति के अनुसार उससे भोजन एवं वस्त्रादि प्राप्त कर सकते हैं। शैव विवाह दो प्रकार का कहा गया है-पहले प्रकार का विवाह भैरवीचक्र की निवृत्ति तक रहता है तथा दूसरे प्रकार का विवाह जन्म भर तक स्थायी रहता है।

हरि०–**धनभाजिनो** जनात् ॥२६८-२६९॥

चक्रानुष्ठानसमये स्वगणैः शक्तिसाधकैः ।
परस्परेच्छयोद्वाहं कुर्याद्वीरः समाहितः ॥२७०॥
भैरवीवीरवृन्देषु स्वाभिप्रायं निवेदयेत् ।
आवयोः शाम्भवोद्वाहे भवद्भिरनुमन्यताम् ॥२७१॥

पद्मा–वीर साधक भैरवी चक्र के अनुष्ठान के समय सावधान (एकाग्र) चित्त से शक्तिसाधकों एवं स्वजनों के साथ मिलकर परस्पर इच्छानुसार विवाह करे। इसके लिये सर्वप्रथम भैरवियों और वीराचारी साधकों से अपनी इच्छा का निवेदन करे और उनसे कहे हम दोनों के शैव विवाह के विषय में आपलोग अनुमति प्रदान करें।

हरि०–अथ शाम्भवोद्वाहविधिमाह चक्रानुष्ठानेत्यादिभिः। स्वगणैः शक्तिसाधकैः सह चक्रानुष्ठानसमये परस्परेच्छया परस्परस्य भैरव्या वीरस्य चाकाङ्क्षया समाहितः सावधानः सन् वीर उद्वाहं कुर्यात् ॥२७०-२७१॥

तेषामनुज्ञामादाय जप्त्वा सप्ताक्षरं मनुम् ।
अष्टोत्तरशतावृत्त्या प्रणमेत् कालिकां पराम् ।।२७२।।

पद्मा–उनकी आज्ञा लेकर सप्ताक्षर मन्त्र परमेश्वरि स्वाहा मन्त्र का एक सौ आठ बार जप कर परमा शक्ति कालिका को प्रणाम करे ।

हरि०–तेषामित्यादि। तेषां भैरवीवीरवृन्दानामनुज्ञामनुमतिमादाय गृहीत्वा सप्ताक्षरं परमेश्वरि स्वाहेति मनुमष्टोत्तरशतावृत्त्या जप्त्वा वीरः परमामुत्तमां कालिकां प्रणमेत् ॥२७२॥

ततो वदेत् तां रमणीं कौलानां सन्निधौ शिवे ।
अकैतवेन चित्तेन पतिभावेन मां वृणु ।।२७३।।

पद्मा–हे शिवे! फिर कौलसाधकों के समक्ष उस रमणी से कहे ''मन में कोई कपट न रखकर पति भाव से मुझे वरण करो ।

हरि०–तत इत्यादि। हे शिवे! पार्वति ततो वीरः कौलानां सन्निधौ समीपे हे रमणि त्वमकैतवेन व्याजशून्येन चित्तेन पतिभावेन मां वृण्विति तां रमणीं वदेत् ॥२७३॥

गन्धपुष्पाक्षतैर्वृत्वा सा कौला दयितं ततः ।
सुश्रद्दधाना देवेशि ! करौ दद्यात् करोपरि ।।२७४।।

पद्मा–हे देवेशि! तब वह कौलकामिनी अत्यन्त श्रद्धायुक्त हृदय से गन्ध, पुष्प, अक्षत द्वारा प्रियतम पति का वरण कर उसके हाथ में अपना हाथ रखे ।

हरि०–गन्धेत्यादि। हे देवेशि ततः सा कौला सुश्रद्दधाना सती गन्धपुष्पाक्षतैर्दयितं प्रियं वृत्वातस्य करोपरि स्वकीयौ करौ दद्यात् ॥२७४॥

ततोऽभिषिञ्चेत् चक्रेशो मन्त्रेणानेन दम्पती ।
तदा चक्रस्थिताः कौला ब्रूयुः स्वस्तीति सादरम् ।।२७५।।

पद्मा–तदुपरान्त चक्रेश्वर आगे के श्लोक में कहे गये मन्त्र के द्वारा नवदम्पत्ति का अभिषेक करे। उस समय चक्र में उपस्थित सभी वीरसाधक आदर के साथ स्वस्ति कहे।

हरि०–तत इत्यादि। ततः परं चक्रेशोऽनेन वक्ष्यमाणेन मन्त्रेण तौ दम्पत्ती जायापती अभिषिञ्चेत् । तदा तस्मिन् काले चक्रस्थिताः कौलाः सादरं यथा स्यात्तथा स्वस्तीति ब्रूयुर्वदेयुः ॥२७५॥

राजराजेश्वरी काली तारिणी भुवनेश्वरी ।
बगला कमला नित्या युवां रक्षन्तु भैरवी ।।२७६।।

पद्मा–राजराजेश्वरी, काली, तारिणी (तारा), भुवनेश्वरी, बगला, कमला, नित्या तथा भैरवी-ये तुम दोनों की रक्षा करे ।

हरि०–ननु केन मन्त्रेण चक्रेशो दम्पत्ती अभिषिञ्चेदित्यपेक्षायामाह राजराजेश्वरीत्यादि ॥२७६॥

अभिषिञ्चेत् द्वादशधा मधुना वाऽर्घ्यपायसा ।
ततस्तौ प्रणतौ विद्वान् श्रावयेद्वाग्भवं रमाम् ।।२७७।।

पद्मा–उपरोक्त मन्त्र को पढ़ते हुए मद्य अथवा अर्घ्यजल के द्वारा बारह बार दोनों का अभिषेक करे । फिर दम्पत्ति भूमिष्ठ होकर प्रणाम करे तथा ज्ञानी चक्रेश्वर उन्हें वाग्भव बीज ऐं तथा रमाबीज **श्रीं** को सुनाये ।

हरि०–अभिषिञ्चेदित्यादि। चक्रेशोऽनेन मन्त्रेण मधुना मद्येन वा वाऽर्घ्यपायसाऽर्घ्यजलेन वा द्वादशधा द्वादशवारं दम्पती अभिषिञ्चेत् । ततः प्रणतौ दम्पती प्रतिविद्वाश्चक्रेशो वाग्भवं ऐंमिति रमां श्रीमिति च बीजं श्रावयेत् ॥२७७॥

यद्यदङ्गीकृतं तत्र ताभ्यां पाल्यं प्रयत्नतः ।
शाम्भवोक्तविधानेन कुलीनाभ्यां कुलेश्वरि ! ।।२७८।।
वयोवर्णविचारोऽत्र शैवोद्वाहे न विद्यते ।
असपिण्डां भर्तृहीनामुद्वहेच्छम्भुशासनात् ।।२७९।।

पद्मा–हे कुलेश्वरि ! वह कुलीन दम्पत्ति उस शैव विवाह स्थल में जो भी स्वीकार करेंगे, उनको शिव द्वारा कही गयी विधि के अनुसार अवश्य ही पालन करना होगा। इस शैवविवाह में आयु, वर्ण आदि के विचार करने की आवश्यकता नहीं है। शिव के आदेशानुसार पतिहीना तथा असपिण्डा से ही विवाह करे ।

हरि०–तत्र शाम्भवोद्वाहकर्मणि। ताभ्यां जायापतिभ्यां॥२७८-२७९॥

परिणीता शैवधर्मे चक्रनिर्धारणने या ।
अपत्यार्थी ऋतुं दृष्ट्वा चक्रातीते तु तां त्यजेत् ।।२८०।।

पद्मा–जो स्त्री शैवधर्म चक्र के अनुसार विवाहित है सन्तान, का इच्छुक वीर उसके नियमित ऋतुकाल को देखकर चक्र की निवृत्ति के समय उसका त्याग कर सकता है।

हरि०–परिणीतेत्यादि। चक्रनिर्धारणेन चक्रनियमेन शैवधर्मे या स्त्री परिणीता उद्वढा आसीत्तांस्त्रियं चक्रामीते सति अपत्यार्थी वीरः द्वितीयमृतुं दृष्ट्वा त्येजत् ॥२८०॥

शैवभार्योदभवापत्यमनुलोमेन मातृवत् ।
समाचरेद्विलोमेन तत्तु मामान्यजातिवत् ।।२८१।।
एषा सङ्करजातीनां सर्वत्र पितृकर्मसु ।
भोज्यप्रदानं कौलानां भोजनं विहितं भवेत् ।।२८२।।
नृणां स्वभावजं देवि! प्रियं भोजनमैथुनम् ।
सङ्क्षेपाय हितार्थाय शैवधर्मे निरूपितम् ।।२८३।।
अतएव महेशानि ! शैवधर्मनिषेवणात् ।
धर्मार्थकाममोक्षाणां प्रभुर्भवति नान्यथा ।।२८४।।

इति श्रीमहानिर्वाणतन्त्रे सर्वतन्त्रोत्तमोत्तमे सर्वधर्मनिर्णयसारे श्रीमदाद्यासदा-शिवसंवादे कुशकण्डिकादशविध-संस्कारविधिर्नाम नवमोल्लास: ।।९।।

पद्मा–अनुलोम विवाह (जब वर उच्चजाति का तथा कन्या निम्न जाति की हो) से विवाहित शैवभार्या के गर्भ से उत्पन्न सन्तान माता की जाति के अनुरूप ही व्यवहार में मानी जायेगी। प्रतिलोम क्रम (जब वर निम्न जाति का तथा कन्या उच्च जाति की हो) के विवाह से उत्पन्न सन्तान सामान्य जाति की मानी जाएगी। इन समस्त वर्णसंकर जातिवालों के पितृश्राद्धादि में कौल मनुष्यों को भोज द्रव्य प्रदान करना होगा तथा भोजन कराना होगा। हे देवि! भोजन तथा सम्भोग सुख मनुष्यों को स्वभाव से ही प्रिय है। इसलिए उसका संक्षेप करने के लिये तथा हित करने के लिये शैवधर्म में उनकी सीमा नियत की गई है। हे महेशानि! इसीलिये शिव के प्रवर्तित धर्म का अनुष्ठान करने से मनुष्य नि:सन्देह रूप से धर्म, काम एवं मोक्ष का अधिकारी हो जाता है।

इस प्रकार श्रीमहानिर्वाणतन्त्र के कुशण्डिकादशविधासंस्कार नामक नवम उल्लास की अजयकुमार उत्तम विरचित पद्मा हिन्दी व्याख्या पूर्ण हुई।

हरि०–शैवभार्येत्यादि। अनुलोमेन वर्णेन शैवभार्योद्भवापत्यं मातृवत् कर्म समाचरेत् कुर्यात्। यथा ब्राह्मणात् क्षत्रियायां शैव्यां भार्यायां जातमपत्यं क्षत्रियावत् कर्म समाचरेदित्येवाम् विलोमेन वर्णेन यत् शैवभार्योद्भवापत्यं तत्तु सामान्यजातिवत् पञ्चमवर्णवत् कर्म समाचरेत् ॥२८१-२८४॥

इति श्रीमहानिर्वाणतन्त्र टीकायां नवमलोल्लास: ।।९।।

दशमोल्लासः

श्रीदेव्युवाच

कुशकण्डिकाविधिनार्थ संस्काराश्च दश श्रुताः ।
वृद्धिश्राद्धविधिं देव! कृपया मे प्रकाशय ।।१।।
कस्मिन् कस्मिंश्च संस्कारे प्रतिष्ठासु च कास्वपि ।
कुशकण्डिकाविधानञ्च वृद्धिश्राद्धञ्च शङ्कर! ।।२।।
कर्तव्यं वा न कर्तव्यं तन्ममाक्ष्व तत्त्वतः ।
मत्प्रीतये महेशान ! जीवानां मङ्गलाय च ।।३।।

पद्मा–श्रीदेवी ने कहा-हे नाथ! आपसे कुशकण्डिका की विधि तथा दस प्रकार के संस्कारों को सुना। हे देव! कृपा करके मुझे वृद्धिश्राद्ध का विधान बतायें। हे शङ्कर ! किस संस्कार के समय अथवा किस-किस प्रतिष्ठा के समय कुशकण्डिका तथा वृद्धिश्राद्ध करना अथवा न करना चाहिए। हे महेशान ! मेरी प्रीति के लिये तथा प्राणियों के कल्याण हेतु मुझसे भली-भाँति कहिये ।

हरि०–ॐ नमो ब्रह्मणे !

कुशकण्डिकाया जीवसेकादिविवाहान्तानां दशविधसंस्काराणाञ्च विधिं श्रुत्वेदानीं वृद्धिश्राद्धविधिं कुशकण्डिकाया वृद्धिश्राद्धस्य च कस्मिन् कस्मिन् कर्मणि कार्यत्वम् कार्यत्वं वा वर्तते तदपि श्रोतुमिच्छन्ती श्रीदेव्युवाच कुशकण्डिकाविधिरित्यादि। आचक्ष्वब्रूहि।।१-३।।

श्रीसदाशिव उवाच

जीवसेकाद्विवाहान्तदशसंस्कारकर्मसु ।
यत्र यद्विहितं भद्रे ! सविशेषं प्रकीर्तितम् ।।४।।
तदेव कार्यं मनुजैस्तत्त्वज्ञैर्हितमिच्छुभिः ।
अन्यत्र यद्विधातव्यं तच्छृणुष्व वरानने ।।५।।

पद्मा–श्रीसदाशिव ने कहा-हे भद्रे! गर्भाधान से विवाह तक दस संस्कारों में जो कार्य जिसमें कहे गये है वह सब मै विशेष रूप से कहता हूँ। हे वरानने,! मैने जहाँ पर जिस प्रकार का विधान किया है, कल्याण के इच्छुक तत्वज्ञ मनुष्य उसी प्रकार का अनुष्ठान करे। उससे भिन्न अन्य स्थानों पर जिस प्रकार की विधि है उसे कहता हूँ, सुनो ।

हरि०–श्रीदेव्यैवं प्रार्थितः सन् श्रीसदाशिव उवाच जीवसेकादित्यादि। जीवसेकाज्जीवसेकमारभ्यः ।।४-५।।

वापीकूपतड़ागानां देवप्रतिकृतेस्तथा ।
गृहाणामव्रतादीनां प्रतिष्ठाकर्मसु प्रिये ! ।।६।।

पद्मा–हे प्रिये! वापी, कूप, तड़ाग, देवप्रतिमा, गृह, उद्यान, व्रतादि की प्रतिष्ठा के समय।

हरि०–वापीत्यादि। देवप्रतिकृते: देवताप्रतिमाया॥६॥

सर्वत्र पञ्चदेवानां मातृणामपि पूजनम् ।
वसोर्धारा च कर्तव्या वृद्धिश्राद्धकुशकण्डिके ।।७।।

पद्मा–सर्वत्र पञ्चदेवताओं की, मातृकाओं की पूजा, वसुधारा, वृद्धिश्राद्ध तथा कुशकण्डिका करनी चाहिये।

हरि०–**पञ्चदेवानां ब्रह्मादीनां** । मातृणां गौर्यादीनाम् ॥७॥

स्त्रीणां विधेय कृत्येषु वृद्धिश्राद्धं न विद्यते ।
देवतापितृतृप्त्यर्थं भोज्यमेकं समुत्सृजेत् ।।८।।

पद्मा–स्त्रियों द्वारा जो कर्म होते हैं उनमें वृद्धिश्राद्ध नहीं होता है। मात्र देवताओं तथा पितरों की तृप्ति हेतु एक भोज का उत्सर्ग करना चाहिये ।

हरि०–**स्त्रीणामित्यादि**। स्त्रीणामिति कृत्यानां कर्तरि वेत्यनेन कर्तरि षष्ठी। समुत्सृजेत् स्त्रीति शेष: ॥८॥

देवमात्रार्चनं तत्र वसुधारा कुशकण्डिका ।
भक्त्या स्त्रिया विधातव्या ऋत्विजा कमलानने! ।।९।।

पद्मा–हे कमलानने! स्त्रियाँ भक्तिपूर्वक पुरोहित द्वारा देवपूजन, षोडशमातृकापूजन, वसुधारा दान तथा कुशकण्डिका कराये ।

हरि०–**तत्र स्त्रीभिर्विधेयेषु कर्मसु**। ऋत्विजा आत्मप्रतिनिधिना पुरोहितेन॥९॥

पुत्रश्च पौत्रो दौहित्रो ज्ञातयो भगिनीसुत: ।
जामातर्त्विग्देवपित्रे शस्ता: प्रतिनिधौ शिवे! ।।१०।।
वृद्धिश्राद्धं प्रवक्ष्यामि तत्त्वत: शृणु कालिके! ।।११।।

पद्मा–हे शिवे! पुत्र, पौत्र, दौहित्र, भगिनेय, जामाता तथा पुरोहित को प्रतिनिधि बनाना प्रशस्त कहा गया है। हे कालिके ! अब वृद्धिश्राद्ध को कहता हूँ, सुनो ।

हरि०–ननु पुरोहित एव प्रतिनिधि: प्रशस्तो भवति तदन्योऽपि कश्चित् तत्राह पुत्र इत्यादि॥१०-११॥

कृत्वा नित्योदितं कर्म मानव: सुसमाहित: ।
गङ्गां यज्ञेश्वरं विष्णुं वास्त्वीशं भूपतिं यजेत् ।।१२।।

पद्मा–मनुष्य नित्यकर्म समाप्त करके एकाग्रचित्त से गंगा, यज्ञेश्वर, विष्णु, वास्तुदेव तथा भूस्वामी की पूजा करे ।

हरि०–अथवृद्धिश्राद्धविधिमाह कृत्वेत्यादिभि:। नित्योदितं कर्म कृत्वा पूर्वाभिमुखो मानव:। सुसमाहितोऽतिसावधान: सन् प्रणवादिनमोऽन्तेन नाममन्त्रेण गन्धपुष्पादिभिर्गङ्गां यज्ञेश्वरं विष्णुं वास्त्वीशं भूपतिं भूस्वामिनं पुरुषञ्च क्रमतो यजेत् पूजयेत् ॥१२॥

ततो दर्भमयान् विप्रान् कल्पयेत् प्रणवं स्मरन् ।
पञ्चभिर्नवभिर्वाऽपि सप्तभिस्त्रिरेव वा ।।१३।।
निगर्भैश्च कुशै साग्रैर्दक्षिणावर्तयोगतः ।
सार्द्धद्वयावर्तनेन उद्धर्वाग्रैरचयेद् द्विजान् ।।१४।।

पद्मा–फिर प्रणव (ॐ) का स्मरण करते हुये दर्भ (कुश) का ब्राह्मण बनाये। पाँच, सात, नौ या तीन कुशपत्र लेकर उन्हें दक्षिणावर्त दिशा में ढाई बार लपेट कर ब्राह्मण बनाये।

हरि०–तत इत्यादि। ततः परं प्रणवमोङ्कार स्मरन् सन् मानवो दर्भमयान् विप्रान् कल्पयेत् रचयेत् । दर्भमयब्राह्मणनिर्माणविधानमाह पञ्चभिरित्यादिना सार्द्धेन। निर्गर्भैर्गर्भशून्यैः साग्रैरग्रसहितैरुर्द्धाग्रैर्नवभिः सप्तभिः पञ्चभिस्त्रिभिरेव वा कुशैर्दक्षिणावर्तयोगतः सार्द्धद्वयावर्तनेन द्विजान विप्रान् रचयेत् ।।१३-१४।।

वृद्धिश्राद्धे पावणादौ षड्विप्राः परिकीर्त्तिताः ।
एकोद्दिष्टेतु कथित एक एव द्विजः शिवे ।।१५।।

पद्मा–हे शिवे ! वृद्धिश्राद्ध तथा पार्वणादिश्राद्ध में तीनों पक्षों के दो-दो ब्राह्मण बनाये।। इस प्रकार कुल छः ब्राह्मण बनाये, किन्तु एकोद्दिष्ट श्राद्ध में केवल एक ब्राह्मण ही बनाये।

हरि०–ननु कति दर्भमया ब्राह्मणाः कल्पयितव्या इत्यपेक्षायामाह वृद्धिश्राद्धे इत्यादि।।१५।।

ततो विप्रान् कुशमयानेकस्मिन्नेव भाजने ।
कौबेराभिमुखान् कृत्वा स्नापयेदमुना सुधीः ।।१६।।

पद्मा–इस कुशमय ब्राह्मणों को एक पात्र में उत्तर की ओर मुख करके रखे तथा मन्त्र को पढ़कर स्नान कराये।

हरि०–तत इत्यादि। ततः परं सुधीर्वृद्धिश्राद्धकर्ता एकस्मिन्नेव भाजने पात्रे कुशमयान् विप्रान् कौबेराभिमुखानुत्तरमुखान् कृत्वाऽमुना वक्ष्यमाणेन मन्त्रेण स्नापयेत् ।।१६।।

ह्रीं शन्नो देवीरभीष्टय शन्नो भवन्तु पीतये ।
शंयोरभिस्रवन्तु नः ।।१७।।

पद्मा–मन्त्र यह है–जलदेवता हमारे अभीष्ट की सिद्धि के लिये कल्याण करें। जलदेवता हमारे पीने के लिये मंगल करे। हम पर सब प्रकार की कल्याणकारी वर्षा हो।

हरि०–कुशमयब्राह्मणस्नापनार्थं मन्त्रमेवाह । ह्रीं शन्न इत्याद्यम् ।।१७।।

ततस्तु गन्धपुष्पाभ्यां पूजयेत् कुशभूसुरान् ।।१८।।

पद्मा–इसके पश्चात् कुशमय ब्राह्मणों की गन्धपुष्प से पूजा करे।

हरि०–ततस्त्वित्यादि। ततस्तु प्रणवादिनमोऽन्तेन नाममन्त्रेण गन्धपुष्पाभ्यां कुशभूसुरान् कुशमयब्राह्मणान पूजयेत् ।।१८।।

पश्चिमे दक्षिणे चैव युग्मयुग्मक्रमात् सुधीः ।
षट्पात्राणि सदर्भाणि स्थापयेत्तुलसीतिलैः ।।१९।।

पद्मा–फिर बुद्धिमान् पुरुष पश्चिम तथा दक्षिण दिशा में तुलसीदल, तिल तथा दर्भ के साथ दो-दो एकत्र करके छः पात्र स्थापित करे ।

हरि०–पश्चिमे इत्यादि। ततस्तु सुधीः कर्मसाधकः पश्चिमे दक्षिणे चैव युग्म युग्मक्रमात् सदर्भाणि कुशसहितानि तुलसीतिलैश्च युक्तानि षट्पात्राणि स्थापयेत् ॥१९॥

पात्रद्वये पश्चिमायां याम्ये पात्रचतुष्टये ।
पूर्वास्यावुत्तरमुखान् षड्विप्रानुपवेशयेत् ।।२०।।

पद्मा–पश्चिम में स्थापित दो पात्रों में तथा दक्षिण में स्थापित चार पात्रों में क्रमशः पूर्व की ओर मुख करके तथा उत्तर की ओर मुख करके छः ब्राह्मणों को बैठाये ।

हरि०–पात्रद्वये इत्यादि। ततः पश्चिमायां दिशि स्थापिते पात्रद्वये याम्ये दक्षिणे स्थापिते पात्रचतुष्टये च क्रमतः पूर्वास्यौ पूर्वमुखौ उत्तरमुखांश्च कुशमयान् षड्विप्रानुपवेशयेत्॥२०॥

दैवपक्षं पश्चिमायां दक्षिणे वामयाम्ययोः ।
पितुर्मातामहस्यापि पक्षौ द्वौ विद्धि पार्वति ।।२१।।

पद्मा–हे पार्वति! पश्चिम में देवपक्ष, दक्षिण में बायीं ओर पितृपक्ष एवं दक्षिण में दाहिनी ओर मातामाह का पक्ष कहा गया है ।

हरि०–दैवपक्षमित्यादि। हे पार्वति! पश्चिमायां दिशि दैवं पक्षं त्वं विद्धि जानीहि। दक्षिणे तु वामयाम्ययोर्वामभागे दक्षिणभागे च क्रमतः पितृर्मातामहस्यापि द्वौ पक्षौ वृद्धि॥२१॥

नान्दीमुखाश्च पितरो नान्दीमुख्यश्च मातरः ।
मातामहादयोऽप्येवं मातामह्यादयोऽपि च ।
श्राद्धे नाम्न्याभ्युदयिके समुल्लेख्या वरानने ! ।।२२।।

पद्मा–हे वरानने! आभ्युदयिकश्राद्ध में पितरों तथा माताओं को क्रमशः नान्दीमुख तथा नान्दीमुखी पद से विभूषित करे । मातामह तथा मातामही का उल्लेख भी इसी प्रकार करे।

हरि०–नान्दीमुखाश्चेत्यादिं हे वरानने देवि आभ्युदयिके नाम्नि श्राद्धे पितरः पित्रादयो नान्दीमुखा मातरो मात्रादयश्च नान्दीमुख्यः समुल्लेख्याः समुच्चार्याः एवं मातामहादयोऽपि नान्दीमुखाः मातामह्यादयोऽपि नान्दीमुख्यः समुल्लेख्याः॥२२॥

दक्षावर्तेनोत्तरास्यो दैवं कर्म समाचरेत् ।
वामावर्तेन दक्षास्यः पितृकर्माणि साधयेत् ।।२३।।

पद्मा–उत्तर की ओर मुख करके दक्षिणावर्त क्रम से दैवकर्म तथा दक्षिण की ओर मुख करके वामावर्त क्रम से पितृकर्म करे ।

हरि०–दक्षावर्तेनेत्यादि। दक्षिणावर्तेनोत्तरास्य उत्तरमुखः सन् दैवं कर्म समाचरेत् कुर्यात् । वामावर्तेन दक्षास्यो दक्षिणमुखः सन् पितृकर्माणि साधयेत् ॥२३॥

सर्वं कर्म प्रकुर्वीत दैवादिक्रमतः शिवे ।
लङ्घनान्मातृमातॄणां श्राद्धं तद्विफलं भवेत् ।।२४।।

पद्मा–हे शिवे! दैवादि क्रम से सभी कर्म करे। माता तथा माता की माता को लघंन करके यदि श्राद्ध कर्म किया जाये तो वह विफल होता है ।

हरि०–**सर्वमित्यादि**। हे शिवे! दैवादिक्रमत एव सर्वं कर्म प्रकुर्वीत। ननु पितृकर्मसाधनाय दक्षिणावर्त्तेनैव दक्षिणामुखभवने को दोषस्तत्राह लङ्घनादित्यादिं मातृमातॄणां मातुर्मात्रादीनां लङ्घनात्तच्छ्राद्धं विफलं भवेत् । मातृमातृणामिति मातुः पित्रादीनामप्युपलक्षणम् ।।२४।।

कौबेराभिमुखोऽनुज्ञावाक्यं दैवे प्रकल्पयेत् ।
याम्यास्यः कल्पयेद्वाक्यं पित्र्ये मातामहेऽपि च ।
तत्रादौ दैवपक्षे तु वाक्यं शृणु शुचिस्मिते ।।२५।।

पद्मा–उत्तर की ओर मुख करके दैवकर्म के समय अनुज्ञावाक्य का पाठ करे और पितृ तथा मातामहादि के कर्म के समय दक्षिणमुख होकर करे। हे शुचिस्मिते! सर्वप्रथम दैवपक्ष के अनुज्ञावाक्य को सुनो ।

हरि०–**कौबेरेत्यादि**। कौबेराभिमुखो उत्तराभिमुखो भूत्वा दैवपक्षेऽनुज्ञावाक्यं कल्पयेत् रचयेत् । याम्यास्यो दक्षिणमुखो भूत्वा पित्र्ये पक्षे मातामहे अपि पक्षे अनुज्ञावाक्यं कल्पयेत्।।२५।।

कालादीनि निमित्तानि समुल्लिख्य ततः परम् ।
तत्तत्कर्माभ्युदयार्थमुक्त्वा साधकसत्तम् ।।२६।।
पित्रादीनां त्रयाणां तु मात्रादीनां तथैव च ।
मातामहानां च मातामह्यादीनामपि प्रिये! ।।२७।।
षष्ठ्यन्तं कीर्त्तयेन्नाम् गोत्रोच्चारणपूर्वकम् ।
विश्वेषाञ्चैव देवानां श्राद्धं पश्चुदीरयेत् ।।२८।।
कुशनिर्मितयोः पश्चात् विप्रयोरहमित्यपि ।
करिष्ये परमेशानीत्यनुज्ञा वाक्यमीरितम् ।।२९।।

पद्मा–हे प्रिये! श्रेष्ठ साधक सर्वप्रथम काल तथा निमित्त का नाम लेकर तत्तत्कर्माभ्युदयार्थ'' कहकर पित्रादि तीन पुरुषों का, मात्रादि तीन का, मातामहादि नाम लेकर ''**विश्वेषां देवानां श्राद्धं**'' इस पद का उच्चारण करे। हे परमेशानि! फिर ''**कुशनिर्मितयोर्ब्राह्मणयोरहं करिष्ये**'' इस वाक्य को पढ़े। यही अनुज्ञा वाक्य है ।

अनुज्ञा वाक्य–विष्णुरों तत्सत् ओं अद्यामुकमास्यमुकपक्षेऽमुकतिथावमुककर्माभ्युदयार्थममुकगोत्राणां नान्दीमुखानां पितृपितामहप्रपितामहानाममुकामुकामुकदेवशर्मणाममुकगोत्राणां नान्दीमुखानां मातृपितामहीप्रपितामहीनाममुक्यमुक्यमुकीनां देवीनां च अमुकगोत्राणां नान्दीमुखानां मातामहप्रमातामहवृद्धप्रमातामहानाममुकामुकामुकदेवशर्मणां च अमुकगोत्राणां नान्दीमुखीनां मातामहीप्रमातामहीवृद्धप्रमातामहीमुक्यमुक्यमुकीनां देवीनां च विश्वेषां देवानामाभ्युदयिकं श्राद्धं कुशनिर्मितयोर्विप्रयोरहं करिष्ये ।

हरि०–दैवपक्षे प्रकल्पनीयं यदनुज्ञावाक्यं तदेवाह कालादीनीत्यादिभि:। प्रथमत: कालादीनि निमित्तानि समुल्लिख्य तत: परं तत्तत्कर्माभ्युदयार्थमुक्त्वा साधकसत्तमो गोत्रनामोच्चारणपूर्वकं पित्रादीनां त्रयाणां मात्रादीनामपि तिसृणां तथैव मातामहादीनां त्रयाणां मातामह्यादीनामपि तिसृणां षष्ठ्यन्तं नाम कीर्तयेत् । ततो विश्वेषां देवानां चेति पदमुदीरयेदुच्चारयेत् । तत: श्राद्धपदमुदरीयेत्। पश्चात् कुशनिर्मितयोर्विप्रयोरहमित्यप्युदीरयेत् । तत: करिष्ये इत्युदीरयेत्। सकलपदयोजनया विष्णुरों तत्सत् ओं अद्यामुकमास्यमुकपक्षेऽमुकतिथावमुककर्माभ्यु-दयार्थममुकगोत्राणां नान्दीमुखानां पितृपितामहप्रपितामहानाममुकामुकामुकदेव शर्मणाममुकगोत्राणां नान्दीमुखीनां मातृपितामहीप्रपितामहीनामनाममुक्यमुक्यमुकीनां देवीनां च अमुकगोत्राणां नान्दीमुखानां मातामहप्रमातामहवृद्धप्रमातामहानाममुकामुकामुकदेवशर्मणां चं अमुकगोत्राणां नान्दीमुखीनां मातामहप्रमातामहवृद्धप्रमातामहीवृद्धप्रमातामहीनाममुक्यमुक्यमुकीनां देवीनां च विश्वेषां देवानामाभ्युदयिकं श्राद्धं कुशनिर्मितयोर्विप्रयोरहं करिष्ये इति वाक्यं जातम् । हे परमेशानि दैवपक्षे इत्येतदेवानुज्ञावाक्यमीरितं कथितम् ।।२६-२९।।

विश्वान् देवान् परित्यज्य पितृपखे तु पार्वति! ।
तथा मातामहस्यापि पक्षेऽनुज्ञा प्रकीर्तिता ।।३०।।

पद्मा–हे पार्वति! पितृपक्ष में तथा मातामह के पक्ष में "विश्वेषां देवानां" पद को छोड़कर अनुज्ञावाक्य कहा गया है। यथा-ओं अद्य अमुके मास्यमुकपक्षे अमुकतिथावमुककर्माभ्युदयार्थममुकोगात्राणां नान्दीमुखानां पितृपितामहप्रपितामहानाममुकामुकदेवशर्मणाम् अमुकगोत्राणां नान्दीमुखानां मातृपितामहीप्रपितामहीनाममुक्यमुक्यमुकीदेवीनाम् अमुकगोत्राणां नान्दीमुखानां मातामहप्रमातामह-वृद्धप्रमातामहानां अमुकामुकामुकदेवशर्मणाम् अमुकगोत्राणां नान्दीमुखनां मातामहीप्रमातामहीवृद्धप्रमातामहीनाम् अमुक्यमुक्यमुकी देवीनां चाप्याभ्युदयिकं श्राद्धं कुशनिर्मितयोर्विप्रयोरहं करिष्ये।।३०।।

हरि०–पितृपक्षे मातामहपक्षे च यदनुज्ञावाक्यं प्रकल्पनीयं तदाह विश्वानित्यादिना। हे पार्वति पितृपक्षे तथा मातामहस्यापि पक्षे विश्वान् देवान् परित्यज्यानुज्ञा प्रकीर्तिताऽनुज्ञायावाक्यं कथितं। पितृपक्षेऽनुज्ञावाक्य यथा ओं अद्य अमुके मास्यमुकपक्षेऽमुकतिथावमुककर्माभ्यु-दयार्थममुकगोत्राणां नान्दीमुखानां पितृपितामहप्रवितामहानाममुकामुकदेवशर्मणां अमुगोत्राणां नान्दीमुखानां मातृपितामहीप्रपितामहीनाममुक्यमुक्यमुकीनां देवीनां चाप्याभ्युदयिकं श्राद्धं कुशनिर्मितयोर्विप्रयोरहं करिष्यते इति। मातामहपक्षेऽप्येवमेवानुज्ञावाक्यं प्रकल्पनीयम् ।।३०।।

ततो जपेद्ब्रह्मविद्यां गायत्रीं दशधा शिवे! ।।३१।।
देवताभ्य: पितृभ्यश्च महायोगिभ्य एव च ।
नमोऽस्तु पुष्टयै नित्यमेव भवन्त्विति ।।३२।।

पद्मा–हे शिवे! इसके पश्चात् ब्रह्मविद्या गायत्री का दस बार जप करे। देवताओं को पितरों को, महायोगियों को, पुष्टि को तथा स्वाहा को नमस्कार है। इस प्रकार के कर्म को नित्य करे ।

हरि०–ततः अनुज्ञावाक्यकल्पनादनन्तरम् ॥३१-३२॥

पठित्वैनं त्रिधा हस्ते जलमादाय सत्तमः ।
वँ हूँ फडिति मन्त्रेण श्राद्धद्रव्याणि शोधयेत् ।।३३।।

पद्मा–इस मन्त्र को पढ़कर श्राद्धकर्ता हाथ में जल लेकर **''वँ हूँ फट्''** मन्त्र को पढ़कर श्राद्ध के सभी द्रव्यों को तीन बार प्रोक्षित कर शुद्ध करे।

हरि०–**पठित्वैनमित्यादि**। एनं देवताभ्यां इत्याद्यं भवन्त्वितीत्यन्तं मन्त्रं त्रिधा त्रिवारं पठित्वा ततः सत्तमः श्राद्धकर्ता हस्ते जलमादाय वँ हूँ फडिति मन्त्रेण श्राद्धद्रव्याणि शोधयेत् ॥३३॥

आग्नेय्यां पात्रमेकन्तु संस्थाप्य कुलनायिके !
रक्षोघ्नममृतं प्रोच्य यज्ञरक्षां कुरुष्व मे ।
इत्युक्त्वा भाजने तस्मिंस्तुलसीदलसंयुतम् ।।३४।।
निधाय सलिलं देवि ! देवादिक्रमतः सुधीः ।
विप्रेभ्यो जलगण्डूषं दत्वा दद्यात् कुशासनम् ।।३५।।

पद्मा–हे कुलनायिके! आग्नेय दिशा में एक पात्र स्थापित कर **'रक्षोघ्नममृतं मम यज्ञरक्षां कुरुष्व'** मंत्र को पढ़कर उस पात्र में तुलसीदल सहित जल रखकर बुद्धिमान् श्राद्धकर्ता देवपक्ष से प्रारम्भ करे, कुशमय ब्राह्मणों को देवादिक्रम से जलगण्डूष देकर कुशासन प्रदान करे।

''विश्वेदेवा इदमासनं वो नमः'' यह वाक्य पढ़कर विश्वदेवताओं को कुशासन प्रदान करे। फिर **''अमुकगोत्र नान्दीमुख पितरमुकदेवशर्मन् अमुकगोत्रनान्दीमुखपितामह अमुकदेवशर्मन, अमुकगोत्र नान्दीमुख प्रपितामह अमुकदेवशर्मन, इदमासनं वः स्वधा''** यह मन्त्र पढ़कर पिता, पितामह तथा प्रपितामह को आसन दे। तदुपरान्त **''अमुकगोत्रे नान्दीमुखिमातरमुकीदेवि, अमुकगोत्रे नान्दीमुखे पितामहि अमुकीदेवि अमुकगोत्रे नान्दीमुखि प्रपितामहि अमुकीदेवि इदमासनं वः स्वधा।''** यह पढ़कर माता, पितामही को तथा प्रपितामही को आसन दे। अनन्तर **''अमुकगोत्र नान्दीमुखं मातामह अमुकदेवशर्मनअमुकगोत्र नान्दीमुख प्रमातामह अमुकदेवशर्मन, अमुकगोत्र नान्दीमुख वृद्धप्रमातामह अमुकदेवशर्मन् इदमासनं वः स्वधाः''** पढ़कर मातामह, प्रमातामह तथा वृद्धप्रमातामह को आसन दे। इसके बाद **''अमुकगोत्रे नान्दीमुखि मातामहि अमुकीदेवि अमुकगोत्रे नान्दीमुखि प्रमातामहि अमुकीदेवि अमुकगोत्रे नान्दीमुखि वृद्धप्रमातामहि अमुकीदेवि इदमासनं वः स्वधा''** यह मन्त्र पढ़कर मातामही प्रमातामही तथा वृद्धप्रमातामही को आसन दें ॥३४-३५॥

हरि०–**आग्नेय्यामित्यादि**। तत आग्नेय्यां दिश्येकं पात्रं संस्थाप्य प्रथमतो रक्षोघ्नममृतं प्रोच्य ततो मे यज्ञरक्षां कुरुष्वेति वदेत्। योजनया रक्षोघ्नममृतमसि मम यज्ञरक्षां कुरुष्वेति

मन्त्रो जातः। इतीमं मन्त्रमुक्त्वा तस्मिन्नाग्नेय्यां दिशि संस्थापिते भाजने तुलसीयवसंयुतं सलिलं जलनिधाय संस्थाप्य तत सुधीः श्राद्धकर्ता दैवादिक्रमतः कुशमयेभ्यो विप्रेभ्यो जलमण्डूषं दत्त्वा विश्वेदेवा इदमासनं वो नम इति वाक्येन विश्वभ्यो देवेभ्योऽमुकगोत्र नान्दीमुख पितामहामुकदेवशर्मन्नमुकगोत्र नान्दीमुख प्रपितामहामुकदेवशर्मन्निदमासनं वः स्वधेति वाक्येन पित्रादिभ्योऽमुकगोत्रे नान्दीमुखि मातरमुकि देवि अमुकगोत्रे नान्दीमुखि पितामहि अमुकि देवि अमुकगोत्रे नान्दीमुखि प्रपितामहि अमुकि देवि इदमासनं वः स्वधेति वाक्येन मात्रादिभ्योऽमुकगोत्र नान्दीमुख मातामहामुकदेवशर्म्मन्नमुकगोत्र नान्दीमुख प्रमातामहामुकदेवशर्मन्नमुकगोत्र नान्दीमुख वृद्धप्रमातामहामुकदेवशर्मन्निदमासनं व स्वधेति वाक्येन मातामहादिभ्योऽमुकगोत्रे नान्दीमुखि मातामह्यमुकि देवि अमुकगोत्रे नान्दीमुखि प्रमातामह्यमुकि देवि अमुकगोत्र नान्दीमुखि वृद्धप्रमातामह्यमुकि देवि इदमासनं वः स्वधेति वाक्येन मातामह्यादिभ्योऽपि कुशासनं दद्यात्।

तत आवाहयेद्विद्वान् विश्वान् देवान् पितृस्तथा।
मातृर्मातामहांश्चापि तथा मातामहीः शिवे! ।।३६।।

पद्य–हे शिवे! इसके पश्चात् विद्वान् व्यक्ति विश्वदेवगण, पितृगण, मातृगण मातामहगण तथा मातामहीगण का आवाहन करे। जैसे-**विश्वेदेवाः इहागच्छत इह तिष्ठत इह सन्निधत्त मम पूजां गृह्णत**'' इस वाक्य से विश्वदेवगणों का कुशासन पर आवाहन करे। ''**अमुकगोत्र नान्दीमुख पितरमुकदेवदर्शन् इहागच्छ इह तिष्ठ इह सन्निधेहि मम पूजां गृहाण**'' इस वाक्य से पिता का कुशासन पर आवाहन करे। इसके पश्चात् ''**अमुकगोत्र नान्दीमुख पितामह अमुकदेवशर्मन् इहागच्छ इहतिष्ठ इह सन्निधेहि मम पूजां गृहाण**'' यह वाक्य पढ़कर पितामह का आवाहन करे। इसके पश्चात् ''**अमुकगोत्र नान्दीमुख प्रपितामह अमुकदेव शर्मन इहागच्छ इह तिष्ठ इह सन्निधेहि मम पूजां गृहाण**'' इस वाक्य से प्रपितामह का कुशासन पर आवाहन करे। इसके बाद ''**अमुकगोत्रे नान्दीमुखि मातरमुकीदेवि इहागच्छ इहागच्छ इह तिष्ठ इह सन्निधेहि मम पूजां गृहाण**'' इस वाक्य को पढ़कर माता का आवाहन करे। तत्पश्चात् ''**अमुकगोत्रे नान्दीमुखि प्रपितामहि अमुकीदेवि इहागच्छ इह तिष्ठइन सन्निधेहि मम पूजां गृहाण**'' इस वाक्य से पितामही का आवाहन कुश के आसन पर करे। इसके उपरान्त ''**अमुकगोत्रे नान्दीमुखि प्रपितामही अमुकीदेवि इहागच्छ इह तिष्ठ सन्निधेहि मम पूजां गृहाण**'' इसको पढ़कर प्रपितामही का आवाहन् करे। अब ''**अमुकगोत्रे नान्दीमुखि मातामह अमुकर्शमन् इहागच्छ इह तिष्ठ ह सन्निधेहि मम पूजां ग्रहाण**'' यह मन्त्र पढ़कर मातामह का कुशासन पर आवाहन करे। तदनन्तर ''**अमुकगोत्रे नान्दीमुखि वृद्धप्रमातामह अमुकर्शमन् इहागच्छ इह तिष्ठ इह सन्निधेहि मम पूजां ग्रहाण**'' इस वाक्य को पढ़कर वृद्धप्रमातामह का आवाहन कुशासन पर करे। इसके पश्चात् ''**अमुकगोत्रे**

नान्दीमुखि अमुकीदेवि इहागच्छ इह तिष्ठ इह सन्निधेहि मम पूजां गृहाण'' इस वाक्य से मातामही का कुशासन पर आवाहन करे। तत्पश्चात्–**''अमुकगोत्रे नान्दीमुखि प्रमातामह अमुकदेवी इहागच्छ इह तिष्ठ इह सन्निधेहि मम पूजां ग्रहाण''** इस वाक्य का पाठकर प्रमातामही का आवाहन कुशासन पर करे। इसके बाद **''अमुकगोत्रे नान्दीमुखि वृद्धप्रमातामहि अमुकीदेवी इहागच्छ इह तिष्ठ इह सन्निधेहि मम पूजां ग्रहाणं''** इस वाक्य से वृद्धप्रमातामही का आवाहन करे।

हरि०–तत इत्यादि। ततो विद्वान् श्राद्धकर्ता विश्वेदेवा इहागच्छतेह तिष्ठतेह सन्निधत्त मम पूजां गृह्णीतेति वाक्येन विश्वान् देवान् अमुकगोत्रा नान्दीमुखाः। पितृपितामहप्रपितामहा अमुकामुकामुकदेवशर्माणः इहागच्छतेह तिष्ठतेह सन्निधत्त मम पूजां ग्रहणीतेति वाक्येन पितृन् पित्रादीन् तथा अमुकगोत्रा नान्दीमुखो मातृपितामहीप्रपितामह्योऽमुक्यमुक्यो देव्य इहागच्छतेह तिष्ठतेह सन्निधत्त ममपूजां गृहणीतेति वाक्येन मातृर्मात्रादीरपि अमुकगोत्रा नान्दीमुख्या मातामहप्रमातामहवृद्धप्रमातामहा अमुकामुकामुकदेवशर्माण इहागच्छतेह तिष्ठतेह सन्निधत्त मम पूजां गृह्णीतेति वाक्येन मातामहान् मातामहादीनपि अमुकगोत्रा नान्दीमुख्यो मातामहीप्रमातामहीवृद्धप्रमातामह्योऽमुक्यमुक्यमुक्यो देव्य इहागच्छतेह तिष्ठतेह सन्निधत्त मम पूजां गृहणीतेति वाक्येन मातामहीर्मातामह्यादीश्चापि कुशासने आवाहयेत् ॥३६॥

आवाह्य पूज्येदादौ विश्वान् देवांस्ततो यजेत् ।
पितृत्रयं तथा मातृत्रयं मातामहत्रयम् ॥३७॥
मातामहीत्रयं चापि पाद्यार्घ्याचमनादिभिः ।
धूपैर्दीपैश्च वासोभिः पूजयित्वा वरानने! ।
पात्राणां पातनप्रश्नं कुर्याद्दैवक्रमात् शिवे ॥३८॥

पद्या-हे वरानने! हे शिवे! सर्वप्रथम विश्वदेवगण का आवाहन पूजा करे, इसके उपरान्त मातृपक्ष तथा पितृपक्ष मातामहत्रय और मातामहीत्रय को पाद्य, अर्घ्य, आचमनीय, धूप, दीप, वस्त्रादि के द्वारा पूजा करे। इसके पश्चात् देवपक्ष से प्रारम्भ करके पात्र पातन प्रश्न करे।

विमर्श–कल्पितवाक्य यथा **''विश्वेदेवाः एतानि पाद्यार्घ्याचमनीयगन्धपुष्पधूप-दीपाच्छादनानि वो नमः''** यह वाक्य पढ़कर प्रथम विश्वदेवगणों की पूजा करे फिर **''ओम् अद्य अमुकगोत्रा नान्दीमुखाः पितृपितामहप्रपितामहा अमुकामुकदेव शर्माणः एतानि पाद्यार्घ्याचमनीय-गन्ध-पुष्पधूपदीपाच्छादनानि वः स्वधाः''** इस वाक्य से उपरोक्त विश्वदेवम् मातृपक्ष तथा पितृपक्ष की पूजा करे। तदनन्तर **''अमुकगोत्रा'' नान्दीमुख्यः मातृपितामहीप्रपितामह्यः अमुक्यमुक्यभ्यो देव्यः एतानि पाद्यार्घ्याचमनीयगन्धपुष्प धूपदीपाच्छादनानि वः स्वधा''** इस वाक्य को पढ़कर तीनों माताओं का पूजन करे। फिर **''अमुकगोत्रा नान्दीमुखा मातामहप्रमातामहवृद्धप्रमातामहा**

अमुकामुकामुकदेव शर्माणः एतानि पाद्यार्घ्याचमनीयगन्धपुष्पधूपदीपाच्छादनानि वः स्वधा'' इस वाक्य के द्वारा तीनों नाना की पूजा करे। तत्पश्चात् ''**अमुकगोत्रो नान्दीमुखो मातामहीप्रमातामहीवृद्धप्रमातामह्यः अमुक्यमुक्यमुक्यो देव्यः पाद्यार्घ्यचमनीयगन्धपुष्प-धूपदीपाच्छादनानि वः स्वधा**'' इस वाक्य से तीनों मातामहियों की पूजा करे।

ब्राह्मण के प्रति प्रश्न करे कि ''**पात्राणि पातयिष्ये**'' ब्राह्मण उत्तर दे कि ''**पातय**''॥

हरि०–आवाह्येत्यादि। एवं विश्वेदेवादीनावाह्य। विश्वेदेवा। ऐतानि पाद्यार्घ्याचमनादीनि वो नम इति वाक्येन पाद्यार्घ्याचमनादिभिर्धूपैर्दीपैर्वासोभिश्चाप्यादौ विश्वान् देवान् पूजयेत्। ततः ओं अद्यामुकगोत्रा नान्दीमुखाः पितृपितामहप्रपितामहा अमुकामुकामुकदेवशर्माण एतानि गन्धपुष्पधूपदीपादीनि वः स्वधेति वाक्येन पितृत्रयं तथैवामुकगोत्रा नान्दीमुख्यो मातृपितामहीप्रपितामह्योऽमुक्यमुक्यमुक्यो देव्य एतानि पाद्यादीनि वः स्वधेति वाक्येन मातृत्रयं तथैव प्रकल्पितेन वाक्येन मातामहत्रयं तथैव कल्पितवाक्येन मातामहीत्रयं चापि क्रमतः पाद्यादिभिर्जयेत् पूजयेत्। हे वरानने शिवे एवं विश्वदेवादीन् पूजयित्वा ततो दैवक्रमात् देवपक्षादिक्रमतः पात्राणि पातयिष्ये इति पात्राणां पातनप्रश्नं ब्राह्मणं प्रति कुयात् ॥३७-३८॥

मण्डलं रचयेदेकं मायया चतुरस्रकम्।
द्वे द्वे च मण्डले कुर्यात् तद्वत्पक्षद्वयोरपि ॥३९॥

पद्मा–फिर मायाबीज ह्रीं का उच्चारण करके देवपक्ष के लिये एक चतुष्कोण मण्डल का निर्माण करे। इसी प्रकार पितृपक्ष एवं मातामह पक्ष के लिये भी दो दो मण्डल ह्रीं से बनाये।

हरि०–मण्डलमित्यादि। ततः ओं पातयेति ब्राह्मणादुत्तरं प्राप्य दैवपक्षे मायया ह्रीं बीजेन चतुरस्रकं चतुष्कोणमेकं मण्डलं रचयेत्। पक्षद्वयोरपि पितृपक्षमातामहपक्षयोरपि तद्वत् ह्रीं बीजेन चतुष्कोणे द्वे द्वे मण्डले कुर्यात् ॥३९॥

वारुणप्रोक्षितेष्वेषु पात्राण्यासाद्य साधकः।
तेन क्षालितपात्रेषु सर्वोपकरणैः सह।
पानार्थपाथसान्नानि क्रमेण परिवेशयेत् ॥४०॥

पद्मा–वरुण बीज '**वँ**' से इन मण्डलों का प्रोक्षण कर इन पर क्रमशः पात्र स्थापित कर समस्त सामग्री सहित पात्र को '**वँ**' बीज से प्रक्षालित कर पीने के लिए जल सहित क्रमपूर्वक अन्न रखे।

हरि०–वारुणेत्यादि। ततः साधको जनो वारुणप्रोक्षितेषु वमिति बीजेनाभिषिक्तेष्वेषु मण्डलेषु क्रमतः पात्राण्यासाद्य संस्थाप्य तेन वमिति बीजेन क्षालितेषु पात्रेषु सर्वैरुपकरणैः पानार्थपाथसा पानार्थेन च सहान्नानि क्रमेण देवादिक्रमतः परिवेशयेत् ॥४०॥

ततो मधुयवान् दत्त्वा ह्रौं हूं फडिति मन्त्रकैः ।
संप्रोक्ष्यान्नानि सर्वाणि विश्वान् देवांस्तथा पितॄन् ।।४१।।
मातॄर्मातामहान् मातामहीरुल्लिख्य तत्त्ववित् ।
निवेद्य देवीं गायत्रीं देवताभ्यस्त्रिधा पठेत् ।।४२।।
शेषान्नपिण्डयोः प्रश्नौ कुर्यादाद्ये ततः परम् ।।४३।।

पद्मा–फिर समस्त अन्न में मधु (शहद) तथा यव (जौ) डालकर **'ह्रौं हूं फट्'** इस मन्त्र से उस समस्त अन्न को जल द्वारा प्रोक्षित कर क्रमपूर्वक विश्वदेवगण, पितृगण, मातृगण, मातामहगण तथा मातामहीगण का उल्लेख करते हुए उस अन्न को निवेदित करे। तदुपरान्त **गायत्री** तथा **देवताभ्यः** आदि मन्त्र का तीन बार पाठ करे। हे आद्ये! तब शेषान्न प्रश्न तथा पिण्ड प्रश्न करे ।

हरि०–तत इत्यादि। ततः परमन्नेषु मधुयवान् दत्त्वा ह्रौं हूं फडिति मन्त्रकैः सर्वाण्यन्नानि संप्रोक्ष्याभिषिच्य तत्त्ववित् जनो विश्वान् देवान् तथा पितॄन् पित्रादीन् तथा मातॄर्मात्रादींस्तथा मातामहान्मातामहादीन् तथा मातामहीर्मातामह्यादीरप्युल्लिख्योच्चार्य विश्वदेवादिभ्यः सर्वाण्यन्नानि निवेद्य विश्वेदेवाः पानार्थोदकमधुयवसर्वोपरकरणसहितमेतदन्नं वो नम इति वाक्येन विश्वेभ्यो देवेभ्योऽमुकगोत्रा नान्दीमुखाः पितृपितामह प्रपितामहा अमुकामुकामुकदेवशर्माणः पानार्थोदकमधुयवसर्वोपकरणान्वितमेतदन्नं व स्वधेति वाक्येन पित्रादिभ्योऽमुकगोत्रा नान्दीमुख्यो मातृपितामहीप्रपितामह्योऽमुक्यमुक्यमुक्यो देव्यः पानार्थोदकमधुयवसर्वोपरकरणान्वितमेतदन्नं वः स्वधेति वाक्येन मात्रादिभ्योऽमुकगोत्रा नान्दीमुख्यो मातामहीप्रमातामहीवृद्ध-प्रमाता मह्योऽमुक्यमुक्यमुक्यो देव्यः पानार्थोदकमधुयवसर्वोपकरणान्वितमेतदन्नं वः स्वधेति वाक्येन मातामह्यादिभ्योऽपिसोपकरणान्यन्नानि क्रमेण दत्त्वा गायत्रीं देवीं दशधा पठेत् । ततो देवताभ्य इत्याद्यं भवन्त्वितीत्यन्तं मन्त्रं त्रिधा पठेत् । हे आद्ये ततः परं शेषान्नमस्ति क्व देयमिति पिण्डदानं करिष्ये इति च शेषयान्नपिण्डयोः प्रश्नौविप्रं प्रति कुर्यात् ।।४१-४३।।

दत्तशेषैरक्षताद्यैर्मालूरफलसन्निभान् ।
द्विजात् प्राप्तोत्तरः पिण्डान् रचयेद्द्वादशन प्रिये! ।।४४।।

पद्मा–हे प्रिये! ब्राह्मणों से प्रश्न कर उत्तर प्राप्त होने पर देने से शेष बचे अक्षतादि द्वारा विल्वफल के समान बारह पिण्ड बनाये।

हरि०–दत्तशेषैरित्यादि। ततः परं द्विजात् इष्टेभ्यो दीयतामिति ओं कुरुष्वेति प्राप्तोत्तरः सन् दत्तशेषैर्दत्तेभ्योऽवशिष्टैरक्षताद्यैर्मालूरफलसन्निभान् विल्वफलतुल्यान् द्वादश पिण्डान रचयेत् ।।४४।।

अन्यं तु कल्पयेदेकं पिण्डं तत्सममम्बिके! ।
आस्तरेन्नैर्ऋते दर्भान् मण्डले यवसंयुतान् ।।४५।।

पद्मा–हे अम्बिके ! उसी प्रकार का एक अन्य पिण्ड बनाये फिर नैऋत्यकोण में मण्डल के ऊपर यवसहित कुश बिछाये ।

हरि०–अन्यन्वित्यादि। ततस्तेभ्योऽन्यमपि तत्समं विल्वफलतुल्यमेकं पिण्डं कल्पयेत्। ततो नैऋते कोणे कल्पिते चतुष्कोणमण्डले यवसंयुतान् दर्भान् कुशानास्तरेदाच्छादयेत् ॥४५॥

ये मे कुले लुप्तपिण्डाः पुत्रदारविवर्जिताः ।
अग्निदग्धाश्च ये केऽपि व्यालव्याघ्रहताश्च ये ।।४६।।
ये बान्धवाबान्धवा वा येऽन्यजन्मनि बान्धवाः ।
मद्दत्तपिण्डतोयाभ्यां ते यान्तु तृप्तिमक्षयाम् ।।४७।।
दत्त्वा पिण्डमपिण्डेभ्यो मन्त्राभ्यां सुरवन्दिते ! ।
प्रक्षाल्य हस्तावाचान्तः सावित्रीं प्रजपंस्ततः ।
देवताभ्यस्त्रिधा जप्त्वा मण्डलानि प्रकल्पयेत् ।।४८।।

पद्या–हे सुरवन्दिते! मेरे वंश मे जो लुप्तपिण्ड हैं, जो स्त्री एवं पुत्र से रहित हैं, जो अग्नि से दग्ध (जले) हैं, जो सर्प, व्याघ्र आदि हिंसक जन्तुओं से मारे गये हैं, जो मेरे बान्धव अथवा अबान्धव या जो अन्य जन्म के मेरे बान्धव हैं, वे सभी मेरे द्वारा दिये गये इस पिण्ड तथा जल के द्वारा अक्षय तृप्ति को प्राप्त करें। फिर साधक हाथ धोकर आचमन करे तथा गायत्री एवं देवताभ्यः इत्यादि मन्त्र का तीन बार जप कर मण्डल बनाये ।

हरि०–दत्त्वेत्यादि। हे सुरवन्दि ये मे कुले इत्यादिभ्यां ते यान्तु तृप्तिमक्षयामित्यन्ताभ्यां द्वाभ्यां मन्त्राभ्यामपिण्डेभ्यः पिण्डहीनेभ्यो: नैर्ऋतकोणे कल्पिते चतुष्कोणे मण्डले आच्छादितेषु दर्भेषु पूर्वरचितद्वादशपिण्डातिरिक्तं पश्चाद्रचितं त्रयोदशं पिण्डं दत्त्वा हस्तौ प्रक्षाल्य तत आचान्तः कृताचमनः सन् सावित्री गायत्री द्वादशधा प्रजपन् देवताभ्या इति मन्त्रं त्रिधा जप्त्वा मण्डलानि प्रकल्पयेत् ॥४६-४८॥

उच्छिष्टपात्रपुरतः पूर्वोक्तविधिना बुधः ।
द्वे द्वे च मण्डले देवि ! रचयेत् पितृतः क्रमात् ।।४९।।

पद्या–हे देवि! पितृपक्ष से प्रारम्भ कर उच्छिष्ट पात्र के समक्ष पहले कही गयी विधि से दो-दो मण्डल बनाये ।

हरि०–ननु केन विधिना कुत्र स्थाने कियन्ति वा मण्डलानि कल्पयितव्यानीत्याकाङ्क्षायामाह उच्छिष्टेत्यादि। हे देवि बुधः प्राज्ञः श्राद्धकर्त्ता पूर्वोक्तेन विधिना पितृतः क्रमादुच्छिष्टपात्राणां पुरतो द्वे द्वे चतुष्कोणे मण्डले रचयेत् ॥४९॥

पूर्वमन्त्रेण संप्रोक्ष्य कुशांस्तेष्वास्तरेत् कृती ।
अभ्युक्ष्य वायुना दर्भान् पितृदर्भक्रमात् शिवे! ।
ऊर्द्ध्वे मूले च मध्ये च त्रींस्त्रीन् पिण्डान्निवेदयेत् ।।५०।।

पद्या–वं वरुणबीज से इन समस्त मण्डलों को प्रोक्षित कर इन पर कुश बिछाये। फिर वायुबीज यं से समस्त कुशों को प्रोक्षित कर पितृदर्भ से प्रारम्भ कर कुश के मूल, मध्य,

तथा ऊर्ध्व भाग में क्रमशः पितृत्रय, मातृत्रय, मातामहत्रय तथा मातामहीत्रय को तीन-तीन पिण्ड प्रदान करे।

हरि०-पूर्वमन्त्रेणेत्यादि। हे शिवे ततो वमिति बीजरूपेण पूर्वमन्त्रेण मण्डलानि सम्प्रोक्ष्यऽभिषिच्य कृती विचक्षणः श्राद्धकर्ता तेषु मण्डलेषु कुशानास्तरेत्। ततो वायुना-यमितिबीजेन दर्भानभ्युक्ष्याऽभिषिच्य पितृदर्भक्रमात् दर्भाणां मूले मध्ये चोर्द्धवे च पित्रादिभ्यो मातामहादिभ्यो मातामह्यादिभ्यश्च क्रमेणैव त्रींस्त्रीन् पिण्डान्निवेदयेत् दद्यात् ॥५०॥

आमन्त्रणेन प्रत्येकं नामोच्चार्य महेश्वरि ! ।
स्वाध्या वितरेत् पिण्डं यवमाध्वीकसंयुतम् ॥५१॥

पद्मा-हे महेश्वरि ! प्रत्येक का आमन्त्रणयुक्त नाम उच्चारण करके स्वधा कहते हुए प्रत्येक को जौ (यव) मधा मधुयुक्त पिण्डप्रदान करे यथा—'**अमुकगोत्र नान्दीमुख पितरमुकदेवशर्मन। एष मधुयवसमन्वितः पिण्डस्ते स्वधा**' यह वाक्य पढ़कर कुशमूल में पिता के लिये पिण्डान करें फिर ''**अमुकगोत्र नान्दीमुख पितामह अमुकदेवशर्मन् ! एष ते मधुयवसहितः, पिण्डः स्वधा**'' इस वाक्य को पढ़कर कुश के पितामह को पिण्डदान करें। तत्पश्चात् ''**अमुकगोत्र नान्दीमुख प्रपितामह अमुकदेवशर्मन! एष मधुयवयुतः पिण्डस्ते स्वधा**'' इस वाक्य को पढ़कर कुश के ऊपरी भाग में ''**प्रपितामह अमुकदेवशर्मन ! एष मधुयवयुत, पिण्डस्ते स्वधा**'' इस वाक्य को पढ़कर कुश के ऊपरी भाग में प्रपितामह को पिण्ड प्रदान करें। तदुपरान्त ''**अमुकगोत्र नान्दीमुखि मातरमुकीदेवि ! मधुयवसमन्वित एष पिण्डस्ते स्वधा**'' यह वाक्य पढ़कर कुशमूल में माता के लिये पिण्डदान करें। फिर ''**अमुकगोत्रे नान्दीमुखि पितामहि अमुकीदेवि ! यवमधु सहित एष पिण्डस्ते स्वधा**'' यह वाक्य पढ़कर कुश में पितामही को पिण्डदान करें। इसके उपरान्त ''**अमुकगोत्रे नान्दीमुखि प्रपितामहि अमुकीदेवि ! मधुयवयुत एष पिण्डस्ते स्वधा**'' यह वाक्य पढ़कर कुश के अग्रभाग में प्रपितामही के लिये पिण्ड दे। तदुपरान्त ''**अमुकगोत्रे नान्दीमुखि मातामह अमुकीदेवि ! मधुयवयुत एष पिण्डस्ते स्वधा**'' यह वाक्य पढ़कर कुश के मूल में मातामह को पिण्ड प्रदान करे। फिर-''**अमुकगोत्रे नान्दीमुखि प्रमातामह अमुकीदेवि! मधुयवयुत एष पिण्डसते स्वधा**'' यह वाक्य पढ़कर कुश के मूल में मातामह को पिण्ड प्रदान करे। फिर-''**अमुकगोत्र प्रमातामह अमुकदेव ! मधुयवयुत एष पिण्डस्ते स्वधा**'' इस वाक्य का उच्चारण करके कुश के मध्यभाग में प्रमातामह को पिण्डदान करे। तत्पश्चात् ''**अमुकगोत्र नान्दीमुख वृद्धप्रमातामह अमुकदेव ! मधुयवयुत एष पिण्डस्ते स्वधा**'' इस वाक्य का उच्चारण करके कुश के अग्रभाग में वृद्धप्रमातामह को पिण्ड प्रदान करें। तदनन्तर ''**अमुकगोत्र नान्दीमुखी मातामहि अमुकीदेवी ! मधुयवयुत एष पिण्डस्ते स्वधा**'' इस वाक्य का उच्चारण कर कुशमूल में मातामही को पिण्ड प्रदान करे।

तदुपरान्त्–''**अमुकगोत्रे नान्दीमुखि प्रमातामहि अमुकीदेवी ! मधुयवयुत एष पिण्डस्ते स्वधा**'' इस वाक्य को पढ़कर प्रमातामही को पिण्डदान करे। तदुपरान्त् ''**अमुकगोत्र नान्दीमुखी वृद्धप्रमातामहि अमुकीदेवी ! मधुयवयुत एष पिण्डस्ते स्वधा**'' इस वाक्य का उच्चारण कर कुश (दर्भ) के अग्रभाग में वृद्धप्रमातामही को पिण्ड प्रदान करे।

हरि०–ननु केन केन वाक्येन पित्रादिभ्यः पिण्डा निवेदयितव्या इत्यपेक्षायामाह आमन्त्रणेनेत्यादि। हे महेश्वरि आमन्त्रणेन सम्बोधन विभक्त्या विशिष्टं पित्रादीनां प्रत्येकं नामोच्चार्य स्वधया पवमाध्वीकसंयुतं मधुयवाभ्यां संयुक्त पिण्डं वितरेत् । अमुकगोत्र नान्दीमुख पितरमुकदेवशर्मन्नेष मधुयवयुतः पिण्डस्ते स्वधेति वाक्येन दर्भमूले पित्रे अमुकगोत्रे नान्दीमुख पितामह अमुकदेवशर्मन्नेष मधुयवयुतः पिण्डस्ते स्वधेति वाक्येन दर्भमध्ये पितामहाय अमुकगोत्र अुमकदेवशर्मन्नेष मधुयवयुतः पिण्डस्ते स्वधेति वाक्येन दर्भमध्ये पितामहाय अुमकगोत्र नान्दीमुख प्रपितामह अमुकदेव शर्मन्नेष मधुयवयुतः पिण्डस्ते स्वधेति वाक्येन दर्भो द्वे भागे प्रपितामहायाऽमुकगोत्रे नान्दीमुखि मातरमुकि देवि मधुयवयुत एष पिण्डस्ते स्वधेति वाक्येन दर्भमूले मात्रे अमुकगोत्रे नान्दीमुखि पितामह्यमुकि देवि मधुयवयुत एष पिण्डस्ते स्वधेति वाक्येन दर्भमध्ये पितामह्यै अमुकगोत्रे नान्दीमुखि प्रपितामह्यमुकि देवि मधुयवयुत एव पिण्डस्ते स्वधेति वाक्येन दर्भाग्रे प्रपितामह्यै अमुकगोत्र नान्दीमुख माता महामुकदेवशर्मन्नेष मधुयवयुतः पिण्डस्ते स्वधेत्यनेन वाक्येन दर्भमूले मातामहाय अमुकगोत्र नान्दीमुख प्रमातामह अमुकदेवशर्मन्नेष मधुयवयुतः पिण्डस्ते स्वधेत्यनेन वाक्येन दर्भमध्ये प्रमातामहाय अमुकगोत्र नान्दीमुख वृद्धप्रमातामह अमुकदेवशर्मन्नेष मधुयवयुत पिण्डस्ते स्वधेत्यनेन दर्भाग्रे वृद्धप्रमातामहाय अमुकगोत्रे नान्दीमुखि मातामह्यमुकि देवि मधुयवयुत एष पिण्डस्ते स्वधेत्यनेन दर्भमूले मातामह्यै अमुकगोत्रे नान्दीमुखि प्रमातामह्यमुकि देवि मधुयवयुत एष पिण्डस्ते स्वधेत्यनेन दर्भमध्ये प्रमातामह्यै अमुकगोत्रे नान्दीमुखि वृद्धप्रमातामह्य मुकि देवि मधुयवयुत एष पिण्डस्ते स्वधेति वाक्येन दर्भाग्रे वृद्धप्रमातामह्यै च पिण्डं दद्यादित्यर्थः ।।५१।।

पिण्डान्ते पिण्डशेषञ्च विकीर्य लेपभाजिनः ।
प्रीणयेत् करलेपेन नैकोद्दिष्टेष्वयं विधिः ।।५२।।

पद्मा–पिण्डदान करने के उपरान्त अन्नयुक्त हाथ को कुश में रगड़कर चौथे से सातवें पुरुष को प्रसन्न करे। एकोदिष्ट श्राद्ध में यह लेपभोजिपितृगणप्रीणन विधि नहीं है ।

हरि०–**पिण्डान्ते इत्यादि**। पिण्डान्ते पिण्डप्रदानान्ते पिण्डानभितः पिण्डशेषं विकीर्य विक्षिप्य ओं लेपभुजः पितरः प्रीयन्तामिति वाक्येन करलेपेन हस्तलग्नेनान्नेन लेपभाजिनश्चतुर्थादीन् पितृन् प्रीणयेत् । एकोदिष्टेष्वयं विधिर्लेपभाजिपितृप्रीणनविधिर्नास्ति।।५२।।

देवतापितृतृप्त्यर्थं सावित्रीं दशधा जपेत् ।
देवताभ्यस्त्रिधा जप्त्वा पिण्डान् सम्पूजयेत्ततः ।।५३।।

पद्मा–तत्पश्चात् देवता तथा पितरों की तृप्ति के लिये सावित्री (गायत्री) मन्त्र का दस बार जप करे तथा **देवताभ्यः पितृभ्यश्च** मन्त्र का तीन बार जप करे। फिर गन्धपुष्प से पिण्ड की पूजा करे।

हरि०–देवतेत्यादि। ततो देवतापितृतृप्त्यर्थं सावित्रीं गायत्रीं दशधा जपेत्। ततो देवताभ्य इति मन्त्रं त्रिधा जप्त्वा ततो गन्धपुष्पाभ्यां पिण्डान् सम्पूजयेत् ॥५३॥

प्रज्वाल्य धूपं दीपं च निमील्य नयनद्वयम्।
दिव्यदेहधरान् पितृनश्नतः कव्यमध्वरे।
विभाव्य प्रणमेद्धीमानिमं मन्त्रमुदीरयन् ॥५४॥

पद्मा–इसके पश्चात् धूपदीप जलाकर दोनों आँखे बन्दकर इस प्रकार की भावना करे कि दिव्य शरीरधारी पितृगण यज्ञस्थल में उनके लिये प्रदान किये गये द्रव्य का भोजन कर रहे हैं, फिर ज्ञानी मनुष्य मन्त्र पढ़कर पितरों को प्रणाम करे। मन्त्र के लिये श्लोक ५५ देखे।

हरि०–प्रज्वाल्येत्यादि। ततो धूपं दीपं च प्रज्वाल्य नयनद्वयं निमील्य दिव्यदेहधरान् अध्वरे यज्ञे कव्यं पित्र्यमन्नं अश्नतः खादतः पितॄन् विभाव्य विचिन्त्येमं वक्ष्यमाणं मन्त्रमुदीरयन् कीर्तयन् जनस्तान् प्रणमेत् ॥५४॥

पिता मे परमो धर्मः पिता मे परमं तपः।
स्वर्गं पिता मे तत्तृप्तौ तृप्तमस्त्यखिलं जगत् ॥५५॥

पद्मा–पिता ही मेरे परम धर्म हैं पिता ही मेरे परम तप हैं, पिता ही मेरे स्वर्ग हैं। उनके तृप्त होने से ही समस्त जगत तृप्त होता है।

हरि०–तमेव मन्त्रमाह पिता मे इत्याद्यम् ॥५५॥

ततो निर्माल्यमादाय प्रार्थयेदाशिषः पितॄन् ॥५६॥
आशिषो मे प्रदीयन्तां पितरः करुणामयाः।
वेदाः सन्ततयो नित्यं वर्द्धन्तां बान्धवा मम् ॥५७॥
पातारो मे विवर्द्धन्तां बहून्यन्नानि सन्तु मे।
याचितारः सदा सन्तु मा च याचामि कञ्चन् ॥५८॥

पद्मा–फिर निर्माल्य लेकर पितरों से आशीर्वाद की प्रार्थना करे कि-करुणावान् पितृगण मुझे आशीर्वाद प्रदान करें। मेरे वेदज्ञान, सन्तान तथा बान्धवों की नित्य वृद्धि हो। जो मुझे दान देते हैं वे वृद्धि को प्राप्त हों। मेरे पास बहुत सा अन्न हो। याचकगण सदैव मेरे पास बने रहें तथा मैं किसी से याचना न करूँ।

हरि०–तत् इत्यादि। ततः परम् निर्माल्यं पुष्पाद्यादाय गृहीत्वा आशिषो मे प्रदीयताम् इत्याद्यं मा च याचानि कञ्चनेत्यन्तं मन्त्रद्वयमुदीनरयन् कर्मसाधक पितॄनाशिषः कामान् प्रार्थयेत् याचेत् ॥५६-५८॥

दैवादितो द्विजान् पिण्डान् विसृजेत्तदनन्तरम् ।
तथैव दक्षिणां कुर्यात् पक्षेषु त्रिषु तत्त्ववित् ।।५९।।

पद्मा–तत्पश्चात् देवपक्ष से प्रारम्भ कर समस्त ब्राह्मणों एवं सभी पिण्डों का विसर्जन करे। तदुपरान्त देवपक्ष, पितृपक्ष तथा मातामह पक्ष को दक्षिणा प्रदान करे।।५९।।

हरि०–दैवादित इत्यादि। तदनन्तरं दैवादितो दैवपक्षादिक्रमतो ब्रहन् क्षमस्वेति पिण्ड गयां गच्छेति च वाक्यमुच्चरन् तत्त्ववित् साधको दर्भमयान् द्विजान् पिण्डांश्च विसृजेत् । तथैव दैवादिक्रमेणैव त्रिष्वपि पक्षेषु ओं तत्सत् अद्येत्यादि कृतैतदाभ्युदयिकश्राद्धप्रतिष्ठार्थः हिरण्यादिकममुकगोत्रायामुकदेवशर्मणे ब्राह्मणाय दक्षिणां दातुमहमुत्सृजे इति वाक्येन यथाशक्ति हिरण्यादिकं दक्षिणां कुर्यात् ।।५९।।

गायत्रीं दशधा जप्त्वा देवताभ्योऽपि पञ्चधा ।
दृष्ट्वा वह्निं रविं विप्रमिदं पृच्छेत् कृताञ्जलिः ।।६०।।

पद्मा–साधक दस बार गायत्री मन्त्र का तथा पाँच बार **देवताभ्यः पितृभ्यश्च** इस मन्त्र का जप कर अग्नि तथा सूर्य का दर्शन कर हाथ जोड़कर ब्राह्मण से पूछे ।

हरि०–गायत्रीमित्यादि। ततो गायत्रीं दशधा जप्त्वा देवताभ्य इति मन्त्रमपिपञ्चधा जप्त्वा वह्निं रविं च दृष्ट्वा कृताञ्जलिः सन् विप्रमिदं पृच्छेत् ।।६०।।

इदं श्राद्धं समुच्चार्य साङ्गं जातमुदीरयेत् ।
द्विजो वदेत् सम्यगेव साङ्गं जातं विधानतः ।।६१।।

पद्मा–इदं श्राद्धं साङ्गं जातम् (क्या यह श्राद्धकर्म सभी अंगों सहित सम्पन्न हो गया?) ब्राह्मण उत्तर दे-**विधानतः सम्यगेव साङ्गं जातम्**'' अर्थात् विधान के अनुसार यह सम्पूर्ण रूप से सभी कार्यों के सहित सम्पन्न हो गया ।

हरि०–विप्रं प्रति किं पृच्छेदित्यपेक्षायामाह इदमित्यादि। इदं श्राद्धं समुच्चार्य साङ्गं जातमित्युदीरयेत् । योजनया इदं श्राद्धं साङ्गं जातमित्येव विप्रं पृच्छेत् । ततो विधानतः सम्यगेव साङ्गं जातमिति द्विजो वदेत् ।।६१।।

अङ्गवैगुण्यशान्त्यर्थं प्रणवं दशधा जपन् ।
अच्छिद्राभिविधानेन कुर्यात् कर्मसमापनम् ।
पात्रीयान्नानि पिण्डाश्च ब्राह्मणाय निवेदयेत् ।।६२।
विप्राभावे गवाजेभ्यः सलिले वा विनिःक्षिपेत् ।
वृद्धि श्राद्धमिदं प्रोक्तं नित्यसंस्कारकर्मणि ।।६३।।

पद्मा–फिर साधक अंग की विकारता की शान्ति के लिए दस बार प्रणव ॐ का जप करे और आच्छिद्राभिविधान द्वारा कर्म को समाप्त करे। पात्र के अन्न एवं पिण्डों को ब्राह्मण को दे दे । यदि ब्राह्मण न उपस्थित हो तो गाय या बकरी को प्रदान कर दे।

हरि०–अच्छिद्राभिविधानेन कृतमेतच्छ्राद्धकर्माऽच्छिद्रमस्त्विति वाक्येन ।।६२-६३।।

श्राद्धे पर्वणि कर्तव्ये पार्वणत्वेन कीर्तयेत् ।।६४।।

पद्मा–अमावस्या आदि पर्व उपरोक्त विधान से किया गया कर्म पार्वण श्राद्ध कहा जाता है।

हरि०–एवामाभ्युदयिकश्राद्धविधिमुक्त्वेदानीं सविशेषेण तेनैव विधिना पार्वणादिकमपि श्राद्धं विधातव्यमित्याह श्राद्धे इत्यादिभिः। पर्वण्यमावास्यादौ कर्तव्ये श्राद्धे कल्पनीयेष्वनुज्ञावाक्येषु पार्वणत्वेन श्राद्धं कीर्तयेदुच्चारयेत् ।।६४।।

देवतादिप्रतिष्ठासु तीर्थयात्राप्रवेशयोः ।
पार्वणेन विधानेन श्राद्धमेतदुदीरयेत् ।।६५।।

पद्मा–देवतादि की प्रतिष्ठा, तीर्थयात्रा, गृहप्रवेश में "पार्वणश्राद्ध" की विधि के अनुसार श्राद्ध कर्म करे।

हरि०–**देवतादीत्यादि।** देवतादिप्रतिष्ठासु तीर्थयात्राप्रवेशयोश्च कर्तव्ये श्राद्धे कल्पनीयेष्वनुज्ञावाक्येषु पार्वणेन विधानेनैतच्छाद्धमित्युदीरयेत् ।।६५।।

नैतेषु श्राद्धकृत्येषु पितॄन्नान्दीमुखान् वदेत् ।
नमोऽन्तपुष्ट्यायित्यत्र स्वधायै पदमुच्चरेत् ।।६६।।

पद्मा–इन सभी श्राद्धकर्मों में पितृगण को **नान्दीमुखान् पितॄन्** से युक्त न करे तथा **नमोऽस्तु पुष्ट्यै** के स्थान पर **नमः स्वधायै कहे** ।

हरि०–**नैतेष्वित्यदि।** एतेषु श्राद्धकृत्येषु पितॄन्नान्दीमुखान्न वदेत् किं च देवताभ्यः पितृभ्यश्चेति मन्त्रेण नमोऽन्ते पुष्ट्यै इत्यत्र स्वधायै इति पदमुच्चरेत्। अन्यत् सर्वं पूर्ववदेव विधेयम् ।।६६।।

पित्रादित्रयमध्ये तु यो जीवति वरानने !
तस्योर्द्ध्वतनमुल्लिख्य श्राद्धं कुर्याद्विचक्षणः ।।६७।।
जनकादिशु जीवत्सु त्रिषु श्राद्धं विवर्ज्जयेत् ।
तेषु प्रीतेषु देवेशि! श्राद्धयज्ञफलं लभेत् ।।६८।।

पद्मा–हे वरानने! पितादि तीन पुरुषों के मध्य में जो जीवित हो बुद्धिमान् मनुष्य उसके स्थान पर उसके ऊपरवाले पुरुष का उल्लेख कर श्राद्ध करे। हे देवेशि! पिता, पितामह, प्रपितामह, यदि तीनों पुरुष जीवित हों तो उनका श्राद्ध कर्म न करे इनके प्रसन्न होने से श्राद्ध और यज्ञ का फल प्राप्त हो जाता है।

हरि०–उर्द्धतनम् उर्द्धभवम् ।।६७-६८।।

जीवत्पितरि कल्याणि! नान्यश्राद्धाधिकारिता ।
मातुः श्राद्धं विना पत्न्यास्तथा नान्दीमुखं विना ।।६९।।

पद्मा–हे कल्याणि! पिता के जीवित रहने पर माता का श्राद्ध, पत्नी का श्राद्ध एवं नान्दीमुख श्राद्ध के अतरिक्त अन्य किसी श्राद्ध के करने का अधिकार नहीं है।

हरि०–जीवदित्यादि। हे कल्याणि पितरि जीवति सति पुत्रस्य मातुः पत्न्याश्च श्राद्धं विना तथा नान्दीमुखमाभ्युदयिकमपि श्राद्धं विना अन्यश्राद्धाधिकारिता नास्तीत्यन्वयः ॥६९॥

एकोद्दिष्टे तु कौलेशि! विश्वदेवान्न पूजयेत् ।
एकमेव समुद्दिश्याऽनुज्ञावाक्यं प्रकल्पयेत् ॥७०॥
दक्षिणाभिमुखां दद्यादन्नं पिण्डं च मानवः ॥
यवस्थाने तिला देयाः सर्वमन्यच्च पूर्ववत् ॥७१॥

पद्मा–हे कुलेश्वरि! एकोद्दिष्ट श्राद्ध करते समय विश्वदेवगण की पूजा न करे। उसके स्थान पर एक ही मनुष्य को लक्ष्य कर अनुज्ञा वाक्य की कल्पना करे । दक्षिण की ओर मुख करके अन्न तथा पिण्डदान करे। शेषपूर्व की भाँति करे, केवल जौ के स्थान पर तिल प्रदान करे ।

हरि०–एकोद्दिष्टे श्राद्धे॥७०-७१॥

प्रेतश्राद्धे विशेषोऽयं गङ्गाद्यर्चां विवर्जयेत् ।
मृतं समुल्लिखेत् प्रेतं वाक्ये दानेऽन्नपिण्डयोः ॥७२॥

पद्मा–"प्रेतश्राद्ध" में यह विशेषता है कि गंगादि का पूजन न करे तथा अन्न व पिण्डदान के समय मृत व्यक्ति का उल्लेख प्रेत कहकर करे ।

हरि०–**प्रेतश्राद्ध इत्यादि**। प्रेतश्राद्धे गङ्गाद्यर्चां विवर्जयेत् न कुर्यात्। अनुज्ञावाक्ये-ऽन्नपिण्डयोर्दाने च मृतं जनं प्रेतं समुल्लिखेदुच्चारयेत्। प्रेतश्राद्धेऽयं विशेषो विज्ञेयः॥७२॥

एकमुद्दिश्य यत् श्राद्धमेकोद्दिष्टं तदुच्यते ।
प्रेतस्यान्ने च पिण्डे च मत्स्यं मांस नियोजयेत् ॥७३॥

पद्मा–एक मनुष्य के उद्देश्य से जो श्राद्धकर्म किया जाता है उसे एकोद्दिष्ट कहा जाता है। प्रेतश्राद्ध में प्रेत के अन्न व पिण्ड में मत्स्य तथा मांस प्रदान करे ।

हरि०–ननु किन्नाम एकोद्दिष्टं श्राद्धं तत्राह एकमुद्दिश्येत्यादिं नियोजयेत् समर्पयेत् ॥७३॥

अशौचान्तात् द्वितीयेऽह्नि श्राद्धं यत् कुरुते नरः ।
प्रेतश्राद्धं विजानीहि तदेव कुलनायिके! ॥७४॥

पद्मा–हे कुलनायिके! अशौच के अन्त में दूसरे दिन जो श्राद्धकर्म मनुष्य करते हैं, वह प्रेतश्राद्ध कहलाता है ।

हरि०–ननु प्रेतश्राद्धं किन्नाम तत्राह अशौचान्तादित्यादि। अशौचान्तात् अशौचस्यान्तो यत्रास्ति तदशौचान्तं तस्मात् ॥७४॥

गर्भस्रावाज्जातमृतादन्यत्र मृतजातयोः ।
कुलाचारानुसारेण मानवोऽशौचमाचरेत् ॥७५॥

पद्मा–जहाँ पर गर्भ गिर जाता है या जन्म लेते ही मर जाता है, इसके अतिरिक्त अन्य

स्थान पर सन्तान के जन्म लेने या मरने पर कुलाचार के अनुसार अशौच का आचरण करे।

हरि०–अथ प्रसङ्गादशौचादिव्यवस्थामाह गर्भस्रावादित्यादिभिः। गर्भस्रावाद्गर्भपातात् जातमृतात् जातः सन्नेव मृतो जातमृतस्तस्माच्चान्यत्रान्ययोर्मृतजातयोः सतोर्मानवः स्वस्वकुलाचारानुसारेणाशौचमशुचिक्रियमाचरेत् कुर्यात् ॥७५॥

द्विजातीनां दशाहेन द्वादशाहेन पक्षतः ।
शूद्रसामान्ययोर्देवि ! मासेनाशौच कल्पना ।।७६।।

पद्मा–हे देवि! ब्राह्मण के लिये दस दिन, क्षत्रिय के लिए बारह दिन, वैश्य के लिए पन्द्रह दिन तथा शूद्र एवं साधारण जाति के लिये एक महीने का अशौच कहा गया है।

हरि०–द्विजातीनामित्यादि। उपनीतसपिण्डमरणे शिशुजनने च द्विजातीनां ब्राह्मण-क्षत्रियवैश्यानां क्रमतो दशाहेन द्वादशाहेन पक्षतः पक्षेणाशौच कल्पनाविज्ञेया शूद्रसामान्ययास्तु मासेनाशौचकल्पना विज्ञेया। शूद्रसामान्यवर्णयोरूपनयनस्थाने विवाहोज्ञेयः ॥७६॥

असपिण्डमृतज्ञातौ त्रिरात्राशौचमिष्यते ।
शृण्वतोऽपिगताशौचे सपिण्डस्य मृतिं शिवे! ।।७७।।

पद्मा–हे शिवे! असपिण्ड जाति की मृत्यु होने पर सपिण्ड की मृत्यु पर अशौचकाल के पश्चात् अथवा एक वर्ष के भीतर करने की सूचना प्राप्त होने पर तीन रात्रि का अशौच होता है।

हरि०–असपिण्डेत्यादि। असपिण्डमृतज्ञातौ सपिण्डभिन्ने गोत्रजे मृते सति त्रिरात्रशौच-मिष्यते। गताशौचेऽशौचे गते सति सपिण्डस्य मृतिं मरणं शृण्वतोऽपि जनस्य त्रिरात्रा-शौचमिष्यते ॥७७॥

अशुचिर्नाधिकारी स्याद्दैवे पित्र्ये च कर्मणि ।
ऋते कुलार्चनादाद्ये तथा प्रारब्धकर्मणः ।।७८।।

पद्मा–हे आद्ये! जो पुरुष अशौच युक्त हो, वह कुलपूजा तथा प्रारब्ध कर्म के अतिरिक्त अन्य कोई भी दैव या पैत्र्य कर्म नहीं कर सकता है ।

हरि०–अशुचिरित्यादि। हे आद्ये कुलार्चनात्तथा प्रारब्धकर्मणश्च ऋते कुलार्चने आरब्धकर्मभ्यान्यस्मिन् दैवे पित्र्ये च कर्मण्यशुचिर्जनोऽधिकारी न स्यात् ॥७८॥

पञ्चवर्षाधिकान् मर्त्यान् दाहयेत् पितृकानने ।
भर्त्रा सह कुलेशानि ! न दहेत् कुलकामिनीम् ।।७९।।
तव स्वरूपा रमणी जगत्याच्छन्नविग्रहा ।
मोहाद्भर्तुश्चितारोहात् भवेन्नरकामिनी ।।८०।।
ब्रह्ममन्त्रोपासकांस्तु तेषामाज्ञानुसारतः ।
प्रवाहयेद्वा निखनेद्दाहयेद्वापि कालिके! ।।८१।।

पुण्यक्षेत्रे च तीर्थे वा देव्याः पार्श्वे विशेषतः।
कुलीनानां समीपे वा मरणं शस्तमम्बिके ।।८२।।

पद्मा–हे कुलेशानि! पाँच वर्ष से अधिक आयु वाले मृत मनुष्य को श्मशान में जलाये। कुलस्त्री को पति के साथ न जलाये; क्योंकि संसार की समस्त स्त्रियाँ तुम्हारा ही स्वरूप हैं। संसार में उनका शरीर आच्छन्न है । जो भी स्त्री मोहवश पति की चिता पर जल मरने को चढ़ती है वह नरक को जाती है। हे कालिके! जो मनुष्य ब्रह्ममन्त्र के उपासक हैं, उनकी आज्ञा के अनुसार स्त्रियों का मृत शरीर जल में प्रवाहित कर दे या मिट्टी में गाड़ दे या चिता में (पति की चिता से अलग) जला दे। हे अम्बिके! पुण्यक्षेत्र, तीर्थ, अथवा देवीस्थान के समीप या कौलिकगणों के निकट मृत्यु प्रशस्त कही गयी है ।

हरि०–पितृकानेन श्मशाने।।७९-८२।।

विभावयन् सत्यमेकं विस्मरन् जगतां त्रयम् ।
परित्यजति यः प्राणान् स स्वरूपे प्रतिष्ठति ।।८३।।

पद्मा:–जो मनुष्य मृत्यु के समय तीनों लोकों को विस्मृत कर एकमात्र सत्यस्वरूप का ध्यान करते हुये प्राण त्यागता है, वह परमात्मा के स्वरूप में मिल जाता है अर्थात् मोक्ष को प्राप्त कर लेता है ।

हरि०–**विभावयन्निति** । विभावयन्विचिन्तयन् । स्वरूपे परमात्मनि।।८३।।

प्रेतभूमौ शवं नीत्वा स्नापयित्वा घृतोक्षितम् ।
उत्तराभिमुखं कृत्वा शाययेत्तं चितोपरि ।।८४।।

पद्मा–श्मशान भूमि में मृत शरीर को लाकर उसे घी लगाकर स्नान कराये। स्नान कराने के उपरान्त चिता के ऊपर उत्तर दिशा में मुख कर लिटा दे ।

हरि०–**प्रेतभूमावित्यादि** । प्रेतभूमौ शवं नीत्वा घृतोक्षितं घृताभ्यक्तं तं स्नापयित्वोत्तराभिमुखं कृत्वा चितोपरि तं शवं शाययेत् ।।८४।।

सम्बोधनान्तं तद्गोत्रं प्रेताख्यानं समुच्चरन् ।
दत्त्वा पिण्डं प्रेतमुखे दहेद्वह्निमनुं स्मरन् ।।८५।।
पिण्डयन्तु रचयेत्तत्र सिद्धान्नैस्तण्डुलैश्च वा ।
यवगोधूमचूर्णैर्वा धात्रीफलसमं प्रिये! ।।८६।।
स्थितेषु प्रेतपुत्रेषु ज्येष्ठे श्राद्धाधिकारिता ।
तदभावेऽन्यपुत्रादौ ज्येष्ठानुक्रमतो भवेत् ।।८७।।

पद्मा–फिर **ॐ अद्य अमुकगोत्र प्रेत अमुकदेवशर्मन्! एष पिण्डस्ते स्वधा** का उच्चारण कर प्रेत के मुख में पिण्ड दें तथा वह्निबीज रँ का स्मरण करते हुए दाह कर्म करें। हे प्रिये! यहाँ पर सिद्धान्न (पका हुआ अन्न) चावल अथवा गेहूँ के आटे से आँवले के आकार के पिण्ड बनाये। प्रेतपुरुष के पुत्रों में बड़ा पुत्र श्राद्धकर्म करने का अधिकारी है।

बड़े पुत्र के उपस्थित न रहने या मर जाने पर ज्येष्ठता के क्रम से अन्य पुत्र भी श्राद्धकर्म करने के अधिकारी हो सकते हैं।

हरि०-सम्बोधनान्तमित्यादि। सम्बोधनान्तं सम्बोधनविभक्तान्तं प्रेताख्यानं प्रेतनाम तद्गोत्रञ्च समुच्चरन् ओं अद्यामुकगोत्र प्रेत पितरमुक देवशर्मन्नेष पिण्डस्ते स्वधेति वाक्यमुदरीयन् प्रेतमुखे पिण्डतं दत्त्वा वह्निमनु रमिति मन्त्रं स्मरन् सन् शवं दहेत्। ज्येष्ठ पुत्रे ॥८५-८७॥

अशौचान्तान्तदिवसे कृतस्नानो नरः शुचि।
मृतप्रेतत्वमुक्त्यर्थमुत्सृजेत्तिलकाञ्चनम् ॥८८॥

पद्म-अशौच की समाप्ति के दूसरे दिन स्नान कर पवित्र होकर मृत पुरुष का प्रेतत्व दूर करने के लिए तिल तथा काञ्चन (स्वर्ण) का दान करे।

हरि०-अशौचान्तेत्यादिं। अशौचान्तान्तदिवसे अशौचान्ताद्वासरात् परस्मिन् वासरे। कृतस्नानः शुचिश्च सन्नरः ओं अद्येत्यादि अमुकगोत्रस्य प्रेतस्य पितरमुकदेवशर्मणः प्रेतत्वविमुक्त्यर्थममुकगोत्रायामुकदेवशर्मणे ब्राह्मणाय दातुं काञ्चनसहितांस्तिलानहमुत्सृजे इति वाक्यने मृतप्रेतत्वविमुक्त्यर्थं तिलकाञ्चनमुत्सृजेत् ॥८८॥

गां भूमिं वसनं यानं पात्रं धातुविनिर्मितम्।
भोज्यं बहुविधं दद्यात् प्रेतस्वर्गाय सत्सुतः ॥८९॥
गन्धं माल्यं फलं तोयं शय्यां प्रियकरीं तथा।
यद् यत् प्रेतप्रियं द्रव्यं तत् स्वर्गाय समुत्सृजेत् ॥९०॥

पद्म-सत्पुत्र मृतक पिता के स्वर्ग प्राप्ति के लिये गाय, भूमि, वस्त्र, यान, धातु से बने पात्र एवं अनेक प्रकार के भोज्य पदार्थों कों प्रदान करे। गन्ध, माला, फल, तोय (जल) सुखप्रदायक शय्या तथा जो भी वस्तुएँ प्रेत पुरुष (मृतपुरुष) को प्रिय रही हों, वे सभी प्रेत की स्वर्ग प्राप्ति के लिये दान करे।

हरि०-गामित्यादि। ओं अद्यामुकगोत्रस्य प्रेतस्य पितुरमुकदेवशर्मणः स्वर्गार्थममुकगोत्रायामुकदेवशर्मणे ब्राह्मणाय गामिमामहं सम्प्रददे इति वाक्येन सत्सुतः प्रेतस्वर्गाय गां दद्यात्। इत्थमेव कल्पितेन तत्तद्वाक्यने भूम्यादिकमपि प्रेतस्वर्गाय दद्यात् ॥८९-९०॥

ततस्तु वृषभञ्चैकं त्रिशूलाङ्केन लाञ्छितम्।
स्वर्णेनालङ्कृतं कृत्वा त्यजेत् तत्स्वरवाप्तये ॥९१॥
प्रेतश्राद्धोक्तविधिना श्राद्धं कृत्वाऽतिभक्तितः।
ब्रह्मज्ञान् ब्राह्मणान् कौलान् क्षुधितानपि भोजयेत् ॥९२॥

पद्म-इसके उपरान्त उसके स्वर्गप्राप्ति के लिये एक बैल को त्रिशूल के चिन्ह से चिह्नित कर तथा स्वर्णाभूषणों से अलंङ्कृत कर छोड़ दे। भक्तिपूर्वक प्रेतश्राद्ध में कही गयी विधि के अनुसार श्राद्धकर ब्रह्मज्ञानी ब्राह्मणों, कौलों तथा अन्य भूखे मनुष्यों को भोजन कराये।

हरि०-तत्स्वरवाप्तये प्रेतस्वर्गावाप्तये॥९१-९२॥

दानेष्वशक्तो मनुजः कुर्वन् श्राद्धं स्वशक्तितः ।
बुभुक्षितान् भोजयित्वा प्रेतत्वं मोचयेत् पितुः ।।९३।।

पद्मा–जो मनुष्य गाय आदि के दान करने में असमर्थ हो, वह अपनी क्षमता के अनुसार श्राद्ध कर्म कर भूखे मनुष्यों को भोजन कराकर पिता को प्रेतत्त्व से मुक्ति दिलायें।

हरि०–बुभुक्षितान् क्षुधितान् ॥९३॥

आद्यैकोद्दिष्टमेतत्तु प्रेतत्वान्मुक्तिकारणम् ।
वर्षे वर्षे मृततिथौ दद्यादन्नं गतासवे ।।९४।।
बहुभिर्विधिभिः किं वा कर्मभिर्बहुभिश्च किम् ।
सर्वसिद्धिमवाप्नोति मानवः कौलिकार्चनात् ।।९५।।
विना होमाज्जपात् श्राद्धात् संस्कारेषु च कर्मसु ।
सम्पूर्णकार्य सिद्धिः स्यादेकया कौलिकार्चया ।।९६।।

पद्मा–यह प्रेतश्राद्ध आदि एकोदिष्ट तथा प्रेतत्त्व से मुक्त का कारण होता है। इसके पश्चात् प्रतिवर्ष मृत व्यक्ति की मृत्युतिथि पर उसके के लिये अन्न प्रदान करना चाहिए। अनेकविधान अथवा अनेक कर्मों का अनुष्ठान करने से क्या लाभ ? कौलसाधकों की पूजा करने से सभी सिद्धियाँ प्राप्त होती है। विना होम, जप, श्राद्ध अथवा संस्कार के केवल कौलसाधक के पूजन से ही सभी कार्यों की सिद्धि प्राप्त हो जाती है ।

हरि०–**आद्येत्यादि**। एतदाद्यमेकोदिष्टं तु मृतस्य प्रेतत्वान्मुक्तेः कारणं भवति। अतः परं वर्षे वर्षे मृततिथौ एकोदिश्राद्धे मृतं प्रेत नोच्चारयेदित्यवगन्तव्यम् । गतासवे विगत प्राणाय ॥९४-९६॥

शुक्लां चतुर्थीमारभ्य शुभकर्माणि साधयेत् ।
असितां पञ्चमीं यावत् विधिरेष शिवोदितः ।।९७।।
अन्यत्रापि विरुद्धेऽह्नि गुर्वर्त्विक्कौलिकाज्ञया ।
कर्माण्यपरिहार्याणि कर्मार्थी कर्तुमर्हति ।।९८।।
गृहारम्भः प्रवेशश्च यात्रा रत्नादिधारणम् ।
सम्पूज्याऽऽद्यां पञ्चतत्त्वैः कुर्यादेतानि कौलिकः ।।९९।।
संक्षेपयात्रामथवा कुर्यात् साधकसत्तमः ।
ध्यायन् देवीं स्मरन्मन्त्रं नत्वा गच्छेद् यथामति ।।१००।।
सर्वासु देवतार्चसु शारदीयोत्सवादिषु ।
तत्तत्कल्पोक्तविधिना बलिहोमं प्रयोजयेत् ।।१०१।।
आद्यापूजोक्तःविधिना बलिहोमं प्रयोजयेत् ।
कौलार्चनं दक्षिणाञ्च कृत्वा कर्म समापयेत् ।।१०२।।

गङ्गां विष्णुं शिवं सूर्यं ब्रह्माणं परिपूज्य च ।
उद्देश्यमर्चयेद्देवं सामान्यो विधिरीरितः ।।१०३।।
कौलिकः परमो धर्मः कौलिकः परदेवता ।
कौलिक परमं तीर्थं तस्मात् कौलं सदार्चयेत् ।।१०४।।
सार्द्धत्रिकोटितीर्थानि ब्रह्माद्याः सर्वदेवताः ।
वसन्ति कौलिके देहे किन्न स्यात् कौलिकार्चनात् ।।१०५।।
पूर्णाभिषिक्तः सत्कौलो यस्मिन् देशे विराजते ।
धन्यो मान्यः पुण्यतमः स देशः प्रार्थतिसुरैः ।।१०६।।
कृतपूर्णाभिषेकस्य साधकस्य शिवात्मनः ।
पुण्यपापविहीनस्य प्रभावं वेत्ति को भुवि ।।१०७।।
केवलं नररूपेण तारयन्नखिलं जगत् ।
शिक्षयन् लोकयात्राञ्च कौलो विहरति क्षितौ ।।१०८।।

पद्मा– भगवान् शिव ने कहा है शुक्ल पक्ष की चतुर्थी तिथि से प्रारम्भ करके कृष्णपक्ष की पञ्चमी तिथि तक समस्त शुभ कर्म करे। कर्मार्थी मनुष्य गुरु, आचार्य तथा कौलसाधक की अनुमति से अन्य विरूद्ध दिन में भी अपरिहार्य कर्म का अनुष्ठान कर सकता है। कौलसाधक पञ्चतत्त्व द्वारा देवी की पूजा कर गृहारम्भ, गृहप्रवेश, यात्रारम्भ, रत्नादिधारण-ये समस्त कार्य करे। देवी भगवती का ध्यान, मन्त्रजप तथा प्रणाम करके स्वेच्छानुसार यात्रा करे। शारदीय उत्सव आदि में देवताओं की पूजा विधि में कही गयी विधि के अनुसार ध्यान तथा पूजन करे। आद्याकालिका की पूजा में जिस प्रकार का विधान कहा गया है उसी विधान के अनुसार बलिदान तथा होम कर्म करे, अन्त में कौलिक व्यक्ति का पूजन तथा दक्षिणा देकर कर्म को समाप्त करे । गङ्गा, विष्णु, शिव, सूर्य तथा ब्रह्मा का पूजन करके उद्दिष्ट देवता का पूजन करे। कौलिक ही परमधर्म है, कौलिक ही परमदेवता है, कौलिक ही परम तीर्थ है इसलिये सदैव कौलसाधक की ही पूजा करे। साढे तीन करोड़ तीर्थ एवं ब्रह्मादि सभी देवता कौलिक के शरीर में निवास करते हैं। इसलिये कौलिक साधक की पूजा करने से क्या नहीं होता। पूर्णाभिषिक्त कौलिक साधक जिस देश में रहता है वह धन्य, मान्य एवं पुण्यतम् है। देवतागण भी ऐसे देश की प्रार्थना करते हैं। पूर्णाभिषेक में अभिषिक्त साधक पापपुण्यरहित तथा साक्षात् शिवस्वरूप है। पृथ्वी में कौन मनुष्य उसके प्रभाव को जानता है? कौल साधक मनुष्य रुप में सम्पूर्ण जगत् के उद्धार के लिये तथा लोकयात्रा की शिक्षा देने के लिये इस पृथ्वी मण्डल पर विचरण करते हैं।

हरि०– शुक्लामित्यादि। असितां कृष्णाम्। यावदित्यवधौ ।।९७-१०८।।

श्रीदेव्युवाच

पूर्णाभिषिक्त कौलस्य माहात्म्यं कथितं प्रभो ।
विधानमभिषेकस्य कृपया श्रावयस्व माम् ।।१०९।।

पद्मा—श्रीदेवी ने कहा—हे प्रभो! पूर्णाभिषिक्त कौल का माहात्म्य आपने कहा। कृपा कर अब आप इस अभिषेक का विधान कहें। इसको सुनने को मेरी इच्छा है।

हरि०—पूर्णाभिषेक विधि श्रोतुमिच्छन्ती श्रीदेव्युवाच। पूर्णाभिषिक्तकौलस्येत्यादि॥१०९॥

श्रीसदाशिव उवाच

विधानमेतत् परमं गुप्तमासीद् युगत्रये।
गुप्ताभावेन कुर्वन्तो नरा मोक्षं ययुः पुरा॥११०॥

पद्मा—पूर्वकाल के तीन युगों (सत्य, त्रेता तथा द्वापर) में यह विधान गोपनीय था। पूर्वकाल में गुप्तभाव से अनुष्ठान कर मनुष्यों ने मोक्ष प्राप्त किया था।

हरि०—एवं प्रार्थितः सन् श्रीसदाशिव उवाच। विधानमित्यादि॥११०॥

प्रबले कलिकाले तु प्रकाशे कुलवर्त्मनः।
नक्तं वा दिवसे कुर्यात् सत्प्रकाशाभिषेचनम्॥१११॥
नाऽभिषेकं विना कौलः केवलं मद्यसेवनत्।
पूर्णाभिषेकात् कौलः स्यात् चक्राधीशः कुलार्चकः॥११२॥

पद्मा—प्रबल कलिकाल में कुलाचारी साधक रात्रि में या दिन में प्रकटरूप से अभिषेक करे। बिना अभिषेक के केवलमात्र मद्यसेवन करने से ही कौल नहीं होता, जिसका पूर्णाभिषेक हुआ है वही कौल, कुलार्चक तथा चक्राधीश्वर होता है।

हरि०—नक्तं रात्रौ॥१११-११२॥

तत्राभिषेकपूर्वेऽह्नि सर्वविघ्नोपशान्तये।
यथाशक्त्युपचारेण विघ्नेशं पूजयेद् गुरु॥११३॥

पद्मा—अभिषेक के पहले दिन सभी विघ्नों की शान्ति के लिए यथाशक्ति उपचारों के द्वारा गुरु विघ्नराज गणपति की पूजा करें।

हरि०—अथ पूर्णाभिषेकस्य विधानमाह तत्रेत्यादिभिः। विघ्नेशम् गणपतिम्॥११३॥

गुरुश्चेन्नाधिकारी स्यात् शुभपूर्णाभिषेचने।
तदाऽभिषिक्तकौलेन संस्कारं साधयेत् प्रिये॥११४॥

पद्मा—हे प्रिये! यदि गुरुदेव शुभ पूर्णाभिषेक में अधिकारी न हो, तो पूर्णाभिषिक्त कौल द्वारा अभिषेक कर्म कराये।

हरि०—**गुरुरित्यादि**। चेत् यद्यनभिषिक्तत्वात् शुभपूर्णाभिषेचने गुरुरधिकारी न स्यात्तदाभिषिक्त कौलेन पूर्णाभिषेचनं संस्कारं नरः साधयेत्॥११४॥

खान्तार्णं बिन्दुसंयुक्तं बीजमस्य प्रकीर्तितम्॥११५॥

पद्मा—'ख' वर्ण के बाद के वर्ण-ग-को अनुस्वार युक्त करने पर गणपति का बीज गं बनता है।

हरि०—अथ गणपतिपूजाया विधानमेवाह खान्तार्णमित्यादिभिः। बिन्दुसंयुक्तमनुस्वारसहितं

खान्तार्णं खस्यन्तिमं गकाररुपमक्षरम् अस्य विघ्नेशस्य बीजं प्रकीर्तितम्॥११५॥

गणकोऽरूप ऋषिश्छन्दो निवृत् विघ्नस्तु देवता ।
कर्तव्यकर्मणो विघ्नशान्त्यर्थे विनियोगिता ।।११६।।

पद्मा–इस गणपतिमन्त्र के ऋषि गणक, छन्द निवृत् देवता गणपति तथा विनियोग कर्तव्य कर्म के विघ्न की शान्ति के लिए कहा गया है।

हरि०–अथ ऋषिन्यासं विधातुं गणपतिबीजमन्त्रस्य ऋष्यादिकमाह गणक इत्यादिना। अस्य गणपति बीजमन्त्रस्य गणक ऋषिनिवृच्छन्दो विघ्नो देवता कर्तव्यस्य शुभपूर्णाभिषेककर्मणो विघ्नशान्त्यर्थे विनियोगः। शिरसि गणकाय ऋषये नमः, मुखे निवृच्छन्दसे नमः। हृदये विघ्नाय देवतायै नमः। इति ऋषिन्यासं विदध्यात्॥११६॥

षड्दीर्घयुक्तमूलेन षडङ्गानि समाचरेत् ।
प्राणायामं ततः कृत्वा ध्यायेद् गणपतिं शिवे ।।११७।।

पद्मा–छः दीर्घस्वरयुक्त मूल मन्त्र के द्वारा षडङ्गन्यास करे, यथा–**गां अङ्गुष्ठाभ्यां नमः। गीं तर्जनीभ्यां स्वाहा। गूं मध्यमाभ्यां वषट् । गैं अनामिकाभ्यां हुं। गौं कनिष्ठाभ्यां वौषट्। गः करतलपृष्ठाभ्यां फट्। हृदयादि षडङ्गन्यास-गां हृदयाय नमः। गीं शिरसे स्वाहा। गूं शिखायै वषट्। गौं कवचाय हुँ। गौं नेत्रत्रयाय वौषट्। गः करतल पृष्ठाभ्यां फट्। हे शिवे!** इसके उपरान्त गं मन्त्र से प्राणायाम कर गणपति का ध्यान करे।

हरि०–**षडित्यादि।** ततः षड्दीर्घयुक्तेन मूलेन गणपतिबीजेनाङ्गुष्ठादीनि हृदयादीनि च षडङ्गानि प्रति न्यासं समाचरेत्। गां अङ्गुष्ठाभ्यां नमः। गीं तर्जनीभ्यां स्वाहा। गूं मध्यमाभ्यां वषट्। गैं अनामिकाभ्यां हुं। गौं कनिष्ठाभ्यां वौषट्। गः करतल पृष्ठाभ्यां फट्। इत्यङ्गुष्ठादिषडङ्गन्यासम्। गां हृदयाय नमः। गीं शिरसे स्वाहा । गूं शिखायै वषट्। गैं कवचाय हुँ। गौं नेत्रत्रयाय वौषट्। गः करतल पृष्ठाभ्यां फट्। इति हृदयादिषडङ्गन्यासं च विदध्यादित्यर्थः। ततो गमिति मन्त्रेण प्राणायामं कृत्वा गणपतिं ध्यायेत्॥११७॥

सिन्दूराभं त्रिनेत्रं पृथुतरजठरं हस्तपद्मैर्दधानं ।
खड्गं पाशाङ्कुशेष्टान्युरूकरविलसद्वारुणीपूर्णकुम्भम् ।
बालेन्दुद्दीप्तमौलिं करिपतिवदनं बीजपूरार्द्रगण्डं ।
भोगीन्द्राबद्धभूषं भजतगणपतिं रक्तवस्त्राङ्गरागम् ।।११८।।

पद्मा–सिन्दूर के समान लाल रंग, तीन नेत्र, अत्यन्त ही विशाल उदर, चार हाथों में शंख, पाश, अंकुश एवं वर धारण करने वाले, वारुणी (मदिरा) से भरे हुये कलश से शोभायुक्त, विशालसूंड़, नवीन चन्द्र की कला से प्रदीप्त मस्तक वाले, गजराज के समान मुख वाले, बीजपूर के समान आर्द्र दोनों कपोल, सर्पराज द्वारा विभूषित, लाल वस्त्र एवं लाल अंगराग से विभूषित गणपति का मैं भजन करता हूँ।

पद्मा—श्रीदेवी ने कहा—हे प्रभो! पूर्णाभिषिक्त कौल का माहात्म्य आपने कहा। कृपा कर अब आप इस अभिषेक का विधान कहें। इसको सुनने की मेरी इच्छा है।

हरि०—पूर्णाभिषेक विधि श्रोतुमिच्छन्ती श्रीदेव्युवाच। पूर्णाभिषिक्तकौलस्येत्यादि॥१०९॥

श्रीसदाशिव उवाच

विधानमेतत् परमं गुप्तमासीद् युगत्रये ।
गुप्ताभावेन कुर्वन्तो नरा मोक्षं ययुः पुरा ।।११०।।

पद्मा—पूर्वकाल के तीन युगों (सत्य, त्रेता तथा द्वापर) में यह विधान गोपनीय था। पूर्वकाल में गुप्तभाव से अनुष्ठान कर मनुष्यों ने मोक्ष प्राप्त किया था।

हरि०—एवं प्रार्थितः सन् श्रीसदाशिव उवाच। विधानमित्यादि॥११०॥

प्रबले कलिकाले तु प्रकाशे कुलवर्त्मनः ।
नक्तं वा दिवसे कुर्यात् सत्प्रकाशाभिषेचनम् ।।१११।।
नाऽभिषेकं विना कौलः केवलं मद्यसेवनत् ।
पूर्णाभिषेकात् कौलः स्यात् चक्राधीशः कुलार्चकः।।११२।।

पद्मा—प्रबल कलिकाल में कुलाचारी साधक रात्रि में या दिन में प्रकटरूप से अभिषेक करे। बिना अभिषेक के केवलमात्र मद्यसेवन करने से ही कौल नहीं होता, जिसका पूर्णाभिषेक हुआ है वही कौल, कुलार्चक तथा चक्राधीश्वर होता है।

हरि०—नक्तं रात्रौ ॥१११-११२॥

तत्राभिषेकपूर्वेऽह्नि सर्वविघ्नोपशान्तये ।
यथाशक्त्युपचारेण विघ्नेशं पूजयेद् गुरु ।।११३।।

पद्मा—अभिषेक के पहले दिन सभी विघ्नों की शान्ति के लिए यथाशक्ति उपचारों के द्वारा गुरु विघ्नराज गणपति की पूजा करें।

हरि०—अथ पूर्णाभिषेकस्य विधानमाह तत्रेत्यादिभिः। विघ्नेशम् गणपतिम्॥११३॥

गुरुश्चेत्राधिकारी स्यात् शुभपूर्णाभिषेचने ।
तदाऽभिषिक्तकौलेन संस्कारं साधयेत् प्रिये ।।११४।।

पद्मा—हे प्रिये! यदि गुरुदेव शुभ पूर्णाभिषेक में अधिकारी न हो, तो पूर्णाभिषिक्त कौल द्वारा अभिषेक कर्म कराये।

हरि०—गुरुरित्यादि। चेत् यद्यनभिषिक्तत्वात् शुभपूर्णाभिषेचने गुरुरधिकारी न स्यात्तदाभिषिक्त कौलेन पूर्णाभिषेचनं संस्कारं नरः साधयेत्॥११४॥

खान्तार्णं बिन्दुसंयुक्तं बीजमस्य प्रकीर्तितम् ।।११५।।

पद्मा—'ख' वर्ण के बाद के वर्ण-ग-को अनुस्वार युक्त करने पर गणपति का बीज गं बनता है।

हरि०—अथ गणपतिपूजाया विधानमेवाह खान्तार्णमित्यादिभिः। बिन्दुसंयुक्तमनुस्वारसहितं

खान्तार्णं खस्यन्तिमं गकाररूपमक्षरम् अस्य विघ्नेशस्य बीजं प्रकीर्त्तितम्॥११५॥

गणकोऽरूप ऋषिश्छन्दो निवृत् विघ्नस्तु देवता ।
कर्तव्यकर्मणो विघ्नशान्त्यर्थे विनियोगिता ।।११६।।

पद्मा–इस गणपतिमन्त्र के ऋषि गणक, छन्द निवृत् देवता गणपति तथा विनियोग कर्तव्य कर्म के विघ्न की शान्ति के लिए कहा गया है ।

हरि०–अथ ऋषिन्यासं विधातुं गणपतिबीजमन्त्रस्य ऋष्यादिकमाह गणक इत्यादिना। अस्य गणपति बीजमन्त्रस्य गणक ऋषिनिवृच्छन्दो विघ्नो देवता कर्तव्यस्य शुभपूर्णाभिषेककर्मणो विघ्नशान्त्यर्थे विनियोगः। शिरसि गणकाय ऋषये नमः, मुखे निवृच्छन्दसे नमः। हृदये विघ्नाय देवतायै नमः। इति ऋषिन्यासं विदध्यात्॥११६॥

षड्दीर्घयुक्तमूलेन षडङ्गानि समाचरेत् ।
प्राणायामं ततः कृत्वा ध्यायेद् गणपतिं शिवे ।।११७।।

पद्मा–छः दीर्घस्वरयुक्त मूल मन्त्र के द्वारा षडङ्गन्यास करे, यथा–**गां अङ्गुष्ठाभ्यां नमः। गीं तर्जनीभ्यां स्वाहा। गूं मध्यमाभ्यां वषट् । गैं अनामिकाभ्यां हुँ। गौं कनिष्ठाभ्यां वौषट्। गः करतलपृष्ठाभ्यां फट्। हृदयादि षडङ्गन्यास-गां हृदयाय नमः। गीं शिरसे स्वाहा। गूं शिखायै वषट्। गैं कवचाय हुँ। गौं नेत्रत्रयाय वौषट्। गः करतल पृष्ठाभ्यां फट्। हे शिवे!** इसके उपरान्त गं मन्त्र से प्राणायाम कर गणपति का ध्यान करे ।

हरि०–**षडित्यादि**। ततः षड्दीर्घयुक्तेन मूलेन गणपतिबीजेनाङ्गुष्ठादीनि हृदयादीनि च षडङ्गानि प्रति न्यासं समाचरेत्। गां अङ्गुष्ठाभ्यां नमः। गीं तर्जनीभ्यां स्वाहा। गूं मध्यमाभ्यां वषट्। गैं अनामिकाभ्यां हुं। गौं कनिष्ठाभ्यां वौषट्। गः करतल पृष्ठाभ्यां फट्। इत्यङ्गुष्ठादिषडङ्गन्यासम्। गां हृदयाय नमः। गीं शिरसे स्वाहा । गूं शिखायै वषट्। गैं कवचाय हुं। गौं नेत्रत्रयाय वौषट्। गः करतल पृष्ठाभ्यां फट्। इति हृदयादिषडङ्गन्यासं च विदध्यादित्यर्थः। ततो गनिति मन्त्रेण प्राणायामं कृत्वा गणपतिं ध्यायेत्॥११७॥

सिन्दूराभं त्रिनेत्रं पृथुतरजठरं हस्तपद्मैर्दधानं ।
खड्गं पाशाङ्कुशेष्टान्युरूकरविलसद्वारुणीपूर्णकुम्भम् ।
बालेन्दुदीप्तमौलिं करिपतिवदनं बीजपुरार्द्रगण्डं ।
भोगीन्द्राबद्धभूषं भजतगणपतिं रक्तवस्त्राङ्गरागम् ।।११८।।

पद्मा–सिन्दूर के समान लाल रंग, तीन नेत्र, अत्यन्त ही विशाल उदर, चार हाथों में शंख, पाश, अंकुश एवं वर धारण करने वाले, वारुणी (मदिरा) से भरे हुये कलश से शोभायुक्त, विशालसूंड, नवीन चन्द्र की कला से प्रदीप्त मस्तक वाले, गजराज के समान मुख वाले, बीजपूर के समान आर्द्र दोनों कपोल, सर्पराज द्वारा विभूषित, लाल वस्त्र एवं लाल अंगराग से विभूषित गणपति का मैं भजन करता हूँ।

हरि०—गणपतिध्यानमेवाहैकेन सिन्दूराभमित्यादि। हे भक्ता गणपतिं गणेशानं यूयं भजतेत्यन्वय:। कथम्भूतं गणपतिम् सिन्दूराभम् सिन्दूरेणाभा दीप्तिर्यस्य यस्मिन् वा तथाभूतम्। पुन: कीदृशम् त्रिनेत्रम् त्रिलोचनम्। पुन: कीदृशम् पृथुतरजठरम् अतिविशालकुक्षिम्। पुन: कीदृशम् हस्तपद्मै: पाणिकमलै: खड्गं पाशाङ्कुशेष्टानि पाशमङ्कुशं वरं च दधानं दधतम्। पुन: कीदृशम् उरुकरकरविलसद्वारुणीपूर्णकुम्भम् उरौ विशाले करे शुण्डायां विलसन् भासमानो वारुण्या मदिरया पूर्ण: कुम्भो यस्य तथाभूतम्। पुन: कीदृश बालेन्दुदीप्तमौलिम् बालेन्दुनोद्दीप्तो मौलि: किरीटं यस्य तथाभूतम्। पुन: कीदृशम् करिपतिवदनम् करिपतेर्गजराजस्येव वदनं मुखं यस्य तथाभूतम्। पुन: कीदृशम् बीजपूरार्द्रगण्डम् बीजपूरेण मदप्रवाहेणार्द्रौ गण्डौ कपोलौ यस्य तथाभूतम्। पुन: कीदृशम् भोगीन्द्राबद्धभूषम् भोगीन्द्रेण सर्पराजेन बद्धाभूषा यस्य येन वा तथा भूतम्। पुन: कीदृशम् रक्तवस्त्राङ्गरागाम् रक्तवस्त्रेणाङ्गे रागो रक्तत्वं यस्य तथाभूतम्॥११८॥

ध्यात्वैवं मानसैरिष्ट्वा पीठशक्ती: प्रपूजयेत् ।
तीव्रा च ज्वालिनी नन्दा भोगदा कामरूपिणी ।।११९।।
उग्रा तेजस्वती सत्या मध्ये विघ्ननाशिनी ।
पूर्वादितोऽर्चयित्वैता: पूजयेत् कमलासनम् ।।१२०।।

पद्मा—इस प्रकार ध्यान कर मानसोपचारों के द्वारा उनकी पुजा पीठशक्तियों का पूजन करे। तीव्रा, ज्वालिनी, नन्दा, भोगदा, कामरूपिणी, उग्रा, तेजस्वती तथा सत्या - इन आठ पीठशक्तियों की पूजा पूर्वादिक्रम से करके मध्य में विघ्नविनाशिनी का पूजन कर कमलासन की पूजा करे ।

हरि०—ध्यात्वैवमित्यादि। एवं गणपतिं ध्यात्वा मानसैरूपचारैरिष्ट्वा पूजयित्वा च प्रणवादिनमोऽन्तेन गन्धपुष्पादिभि: पीठशक्ती: पूजयेत्। या: पीठशक्ति: प्रपूजयेत्ता आह तीव्रा चेत्यादिनैकेन। पूर्वादित: क्रमेणैस्तास्तीव्राद्या अर्चयित्वा प्रणवादिनमोऽन्तेन नाममन्त्रेण गन्धपुष्पादिभि: कमलासनं पूजयेत्॥११९-१२०॥

पुनर्ध्यात्वा गणेशानं पञ्चतत्त्वोपचारकै: ।
अभ्यर्च्य तच्चतुर्दिक्षु गणेशं गणनायकम् ।।१२१।।
गणनाथं गणक्रीडं यजेत् कौलिकसत्तम: ।
एकदन्तं रक्ततुण्डं लम्बोदरगजाननौ ।।१२२।।
महोदरञ्च विकटं धूम्राभं विघ्ननाशनम् ।।१२३।।

पद्मा—कौलिक श्रेष्ठ गणपति का पुन: ध्यान करे, मन्त्र से शुद्ध पञ्चतत्त्वरूप उपचारों से उनकी पूजा कर उनके चारों ओर गणेश, गणनायक, गणनाथ, गणक्रीड़, एकदन्त, रक्ततुण्ड, लम्बोदर, गजानन, महोदर, विकट, धूम्राभ तथा विघ्ननाशन की पूजा करे ।

हरि०—पुनरित्यादि। कौलिकसत्तम: पुनर्गणेशानं ध्यात्वा पञ्चतत्त्वोपचारकै:

पूर्वोक्तमन्त्रशोधितैर्मद्यादिभिः पञ्चतत्त्वैरन्यैश्च पाद्यार्घ्याचमनीयादिभिरुपचारैरभ्यर्च्य च तच्चतुर्दिक्षु नमोऽन्तनाममन्त्रेण गन्धपुष्पादिभिर्गणेशादीन् क्रमतो यजेत्॥१२१-१२३॥

ततो ब्राह्मीमुखाः शक्तीर्दिक्पालांश्च प्रपूजयन् ।
तेषामस्त्राणि सम्पूज्य विघ्नराजं विसर्ज्जयेत् ॥१२४॥

पद्मा—फिर ब्राह्मी आदि आठ शक्तियों तथा इन्द्रादि दश दिक्पालों की पूजा करके उनके अस्त्रों की पूजा कर विघ्नराज को विसर्जित करे ।

हरि०—तत इत्यादि। ततः परं प्रणवादिनमोऽन्तनाममन्त्रेण गन्धपुष्पादिभिर्ब्राह्मीमुखा ब्राह्मीप्रभृतीरष्टशक्तीरिन्द्रादीन् दिक्पालांश्च प्रपूजयन् तेषां दिक्पालानामस्त्राणि च सम्पूज्य विघ्नराज क्षमस्वेति वाक्येन विघ्नराजं विसर्जयेत्॥१२४॥

एवं सम्पूज्य विघ्नेशमधिवासनमाचरेत् ।
भोजयेच्च पञ्चतत्त्वैर्ब्रह्मज्ञान कुलसाधकान् ॥१२५॥

पद्मा—इस प्रकार विघ्नराज की पूजा कर अधिवासन करे तथा ब्रह्मज्ञानी कुलसाधकों को भोजन कराये।

हरि०—एवमित्यादि। एवं विघ्नेशं सम्पूज्य वक्ष्यमाणेन विधिना अधिवासनमाचरेत् कुर्यात् ॥१२५॥

ततः परदिने स्नातः कृतनित्योदितक्रियः ।
आजन्मकृतपापानां क्षयार्थं तिलकाञ्चनम् ।
उत्सृजेत् कौलतृप्त्यर्थं भोज्यञ्चैकमपि प्रिये ॥१२६॥
अर्घ्यं दत्त्वा दिनेशाय ब्रह्मविष्णुशिवग्रहान् ।
अर्चयित्वा मातृगणान् वसुधारां प्रकल्पयेत् ॥१२७॥
कर्मणोऽभ्युदयार्थाय वृद्धिश्राद्धं समाचरेत् ।
ततो गत्वा गुरोः पार्श्वं प्रणम्य प्रार्थयेदिदम् ॥१२८॥

पद्मा—हे प्रिये! इसके पश्चात् अगले दिन स्नान तथा नित्यक्रिया करके जन्म से अब तक किये गये समस्त पापों के नाश के लिए तिल तथा स्वर्ण का दान करे। कौलों की तृप्ति के लिये भोजन का भी आयोजन करे। इसके उपरान्त सूर्य को अर्घ्य प्रदान कर ब्रह्मा, विष्णु, शिव, नवग्रह तथा मातृकाओं का पूजन कर वसुधारा दे। इसके अनन्तर कर्म के उदय होने की कामना से वृद्धिश्राद्ध करे। उसके उपरान्त गुरु के निकट जाकर प्रणाम कर प्रार्थना करे ।

हरि०—तत इत्यादि। ततो दिनात् परदिने स्नातः कृतनित्योदितक्रियश्च सन् ओं अद्यामुकगोत्रः श्रीमदमुकदेवशर्मा आजन्म कृताशेषदुष्कृत क्षय कामोऽमुकगोत्रायामुक-देवशर्मणे ब्राह्मणाय दातुं काञ्चनसहितांस्तिलानहमुत्सृजे इति वाक्येनाजन्मकृतपापानां क्षयार्थं तिलकाञ्चनमुत्सृजेत्। तथैव कल्पितेन वाक्येन कौलतृप्तयर्थमेकं भोज्यमप्युत्सृजेत् ॥१२६-१२८॥

त्राहिमाम नाथ। कुलाचारनलिनीकुलवल्लभ ।
त्वत्पादाम्भोरूहच्छायां देहि मूर्ध्नि कृपानिधे: ।।१२९।।
आज्ञां देहि महाभाग! शुभपूर्णाभिषेचने ।
निर्विघ्नं कर्मण: सिद्धिमुपैमि त्वत्प्रसादत: ।।१३०।।
शिवशक्त्याज्ञया वत्स कुरु पूर्णाभिषेचनम् ।
मनोरथमयी सिद्धिर्जायतां शिवशासनात् ।।१३१।।

पद्मा–हे नाथ! हे कुलाचारस्वरूप कमलिनीसमूह के प्रियतम! हे दया के सागर! मेरे माथे पर अपने चरणकमलों की छाया प्रदान करें। हे महाभाग! मेरे शुभ पूर्णभिषेक के लिये आज्ञा प्रदान करें। आपकी कृपा से मैं निर्विघ्न होकर कार्यसिद्धि में सफल होऊँ। उत्तर में श्रीगुरुदेव कहें - हे पुत्र! शिव शक्ति की आज्ञा के अनुसार पूर्णाभिषेक करो। शिव के आदेश से तुम्हे इच्छा के अनुरूप सिद्धि प्राप्त हो ।

हरि०–यत् प्रार्थयेत्तदाह त्राहि नाथेत्यादिभ्यां द्वाभ्याम् ॥१२९-१३१॥

इत्थमाज्ञां गुरो: प्राप्य सर्वोपद्रव शान्तये ।
आयुर्लक्ष्मीबलारोग्यावाप्त्यै सङ्कल्पमाचरेत् ।।१३२।।

पद्मा–श्रीगुरुदेव से आज्ञा प्राप्त कर शिष्य समस्त उपद्रवों की शान्ति के लिये आयु, लक्ष्मी, बल व आरोग्य की प्राप्ति के लिये संकल्प करे यथा - **ओं तत्सदद्य अमुके मासि अमुकाराशिस्थे भास्करे अमुके पक्षे अमुकतिथौ अमुकवासरे अमुकनक्षत्रे अमुकगोत्र: अमुकप्रवर: अमुकदेवी अमुकशाखाध्यायी कुमारिकाखण्डान्तर्गतामुकप्रदेशी-यामुकग्रामवासी श्री अमुकदेवशर्मा नि:शेषोपद्रवशान्तिकाम: आयुर्लक्ष्मीबलरोग्य-कामश्च शुभपूर्णाभिषेचनमाह करिष्ये ।**

हरि०–**इत्थमित्यादि**। इत्थं गुरोराज्ञां प्राप्य सर्वोपद्रवशान्तये आयुर्लक्ष्मीबलारोग्यप्राप्त्यै च ओं अद्यामुकगोत्र: श्रीमदमुकदेव शर्मा नि:शेषोपद्रवध्वंसकाम आयुर्लक्ष्मीबलारोग्यकामश्च शुभपूर्णाभिषेचनमहं करिष्ये इति सङ्कल्पमाचरेत् कुर्यात्।।१३२।।

ततस्तु कृतसङ्कल्पो वस्त्रालङ्कारभूषणै: ।
कारणै: शुद्धिसहितैरभ्यर्च्य वृणुयाद् गुरुम् ।।१३३।।

पद्मा–इस प्रकार संकल्प कर वस्त्र, अलङ्कार, आभूषण तथा शुद्धि सहित कारण द्वारा श्री गुरुदेव का पूजन कर उनका वरण करे यथा–''**ओं तत्सदद्य अमुके मासि अमुकराशिस्थे भास्करे अमुके पक्षे अमुकतिथौ अमुकवासरे अमुकनक्षत्रे अमुकगोत्र: अमुक प्रवर: अमुकवेदी अमुकशाखाध्यायी, कुमारिकाखण्डान्तर्गतामुकप्रदेशीयामुक ग्रामवासी श्री अमुकदेवशर्मा अमुकगोत्रं अमुकप्रवरं अमुकवेदिनं अमुकशाखाध्यायिनं कुमारिकाखण्डान्त र्गतामुकप्रदेशीयामुकग्रामनिवासिनं श्रीमन्तममुकानन्दनाथं गुरुत्वेन भवन्तं वस्त्रालंकारादिभिरहं वृणे**'' इस प्रकार से संकल्प कर गुरु को वरण करे ।

हरि०—ततस्त्वित्यादि। ततस्तु कृतसङ्कल्पः शिष्यो वस्त्रालङ्कारभूषणैः शुद्धि सहितैर्मांसादिसहितैः कारणैर्मद्यैश्च गुरुमभ्यर्च्य ओं अद्यामुकगोत्रः श्री अमुकदेवशर्मा अमुकगोत्रं श्रीमन्तममुकानन्दनाथं गुरुत्वेन भवन्तं वस्त्रादिभिरहं वृणे इति वाक्येन गुरुं वस्त्रादिभिर्वृणुयात्॥१३३॥

गुरुर्मनोहरे गेहे गैरिकादिविचित्रिते ।
चित्रध्वजपताकाभिः फलपल्लवशोभिते ॥१३४॥

पद्मा—श्रीगुरुदेव गैरिकादि रंगो से चित्रित, सुन्दर ध्वज एवं पताकाओं सहित, फलपल्लवों से सुशोभित ।

हरि०—गुरुरित्यादि। ततो गुरुर्गेहे गृहे सार्धहस्तमितामुच्चकैरुच्चत्वे चतुरङ्गुलां चतुरङ्गुलिपरिमितां मृण्मयी वेदी रचयेत् कल्पयेत् इति चतुर्थश्लोकगतैः पदैरन्वयः। मनोहरे इत्यादीनि सप्तम्यन्तानि पदानि गेहस्य विशेषणानि भवन्तीति ज्ञेयम्। चित्रध्वजपताकाभिश्च शोभिते॥१३४॥

किङ्किणीजालमालाभिश्चन्द्रातपविभूषिते ।
घृतप्रदीपावलिभिस्तमोलेशविवर्जिते ॥१३५॥
कर्पूरसहितैर्धूपैर्यक्षधूपैः सुवासिते ।
व्यजनैश्चामरैर्बर्हैर्दर्पणाद्यैरलङ्कृते ॥१३६॥
सार्धहस्तमितां वेदीमुच्चकैश्चतुरङ्गुलाम् ।
रचयेन्मृण्मयीं तत्र चूर्णैरक्षतसम्भवैः ॥१३७॥
पीतरक्तासितश्वेतश्यामलैः सुमनोहरम् ।
मण्डलं सर्वतोभद्रं विदध्यात् श्रीगुरुस्ततः ॥१३८॥

पद्मा— क्षुद्रघंटिकाओ (किङ्किणी) की माला से, रंग बिरंगे चन्द्रातप से सुशोभित, घी के दीपकों की पंक्तियों के प्रकाश से लेशमात्र अंधकार, कर्पूरसहित धूप तथा शालवृक्ष के रस से बनी धूप से सुगन्धित, तालवृन्त, चामर, मयूर (मोर) पंख तथा दर्पणादि से अलंकृत। मनोहर घर में चार अंगुल ऊँची, डेढ़ हाथ चौड़ी मिट्टी की वेदी बनाये। फिर उस घर में पीले, लाल, काले, सफेद तथा श्यामल (साँवले) रंग के चावल के चूर्ण द्वारा सुन्दर सर्वतोभद्र मण्डल की रचना करे ।

हरि०—किङ्किणीजालमालाभिः क्षुद्रघण्टिकासमूहमालाभिश्च भूषिते यक्षधूपैः शालवृक्षरसैः। बर्हैः मयूरपक्षैः । ततः परं श्रीगुरुस्तत्ररचितायां वेद्यां पीतरक्ता सितश्वेतश्यामलैरक्षतसम्भवैश्चूर्णैः सुमनोहरं सर्वतोभद्रं मण्डलं विदध्यात् कुर्यात्। असितैर्नीलवर्णैः। श्यामलैर्हरिद्वर्णैः ॥१३७-१३८॥

स्वस्वकल्पोक्तविधिना मानसा च विधिक्रियाम् ।
कृत्वा पूर्वोक्तमन्त्रेण पञ्चतत्त्वानि शोधयेत् ॥१३९॥

पद्मा–अपने-अपने कल्प में कही गयी विधि के अनुसार मानसिक पूजन तक के कर्म करके पहले कहे गये मन्त्रों से पञ्चतत्त्वों का शोधन करे।

हरि०–स्वस्वेत्यादि। ततः स्वस्वकल्पोक्तविधिना मानसार्चविधि क्रियां मानसपूजापर्यन्तां क्रियां कृत्वा पूर्वोक्तमन्त्रेण मद्यादीनि पञ्चतत्त्वानिशोधयेत्॥१३९॥

संशोध्य पञ्चतत्त्वानि पुरः कल्पितमण्डले।
स्वार्णं वा राजतं ताम्रं मृण्मयं घटमेव वा॥१४०॥
क्षालिताञ्चाऽस्त्रबीजेन दध्यक्षतविचर्चितम्।
स्थापयेद्ब्रह्मबीजेन सिन्दूरेणाऽङ्कयेत् श्रिया॥१४१॥

पद्मा–पञ्चतत्त्वों का शोधन करने के उपरान्त पूर्व में कहे गये सर्वतोभद्र मण्डल के ऊपर, स्वर्ण, रजत, ताम्र अथवा मिट्टी का बना हुआ घड़ा लाकर "फट्" मन्त्र से उसे प्रक्षालित करे और उसमें दही तथा चावल का लेप करे। ब्रह्मबीज (ॐ) का उच्चारण करते हुए पहले से बने सर्वतोभद्रमण्डल के ऊपर स्थापित करे। श्री बीज (श्रीं) का जप करते हुए उसे सिन्दूर से अङ्कित करे।

हरि०–संशोध्येत्यादि। पूर्वोक्तेन मन्त्रेण पञ्चतत्त्वानि संशोध्य पुरः कल्पिते सर्वतोभद्रमण्डलेऽस्त्रबीजेन फटा मन्त्रेण क्षालितं धौतं दध्यक्षतविचर्चितं दध्यक्षतैर्विलिप्तं स्वार्णसुवर्णभवं राजतं रजतोद्भवं ताम्रोद्भवं मृण्मयमेव वा घटं ब्रह्मबीजेन प्रणवेन स्थापयेत्। श्रिया श्रीं बीजेन सिन्दूरेणाऽङ्कयेच्च॥१४०-१४१॥

क्षकाराद्यैरकारान्तैर्वर्णैर्बिन्दुविभूषितैः।
मूलमन्त्रत्रिजापेन पूरयेत् कारणेन तम्॥१४२॥
अथवा तीर्थतोयेन शुद्धेन पायसाऽपि वा।
नवरत्नं सुवर्णं वा घटमध्ये विनिःक्षिपेत्॥१४३॥

पद्मा–चन्द्रबिन्दु से युक्त 'क्ष' से लेकर 'अ' तक के पचास वर्णों के सहित तीन बार मूलमन्त्र का जप कर कारण (मद्य मदिरा) अथवा तीर्थजल अथवा शुद्ध जल के द्वारा उस घड़े को भरकर उसमें नवरत्न या स्वर्ण डालें।

हरि०–क्षकाराद्यैरित्यादि। ततो बिन्दुविभूषितैरनुस्वारालङ्कृतैः क्षकाराद्यैरकारान्तैर्वर्णैः सह मूलमन्त्रस्य त्रिजापेन कारणेन मद्येनाऽथवा तीर्थतोयेन शुद्धेन पवित्रेणाऽन्येन पायसा जलेनापि वा तं घटं पूरयेत्। ततो घटमध्ये नवरत्नं सुवर्णं वा विनिः क्षिपेत्॥१४२-१४३॥

पनसोडुम्बराश्वत्थवकुलाम्रसमुद्भवम्।
पल्लवं तन्मुखे दद्यात् वाग्भवेन कृपानिधिः॥१४४॥

पद्मा–तदुपरान्त कृपानिधि श्रीगुरुदेव वाग्भवबीज "ऐं" का जप करते हुए घड़े के मुख पर कटहल, गूलर, पीपल, मौहसिरी तथा आम के पत्तों को स्थापित करे।

हरि०–तन्मुखे घटमुखे। वाग्भवेन ऐंमिति। मन्त्रेण॥१४४॥

शरावं मार्त्तिकं वापि फलाक्षतसमन्वितम् ।
रमां मायां समुच्चार्य स्थापयेत् पल्लवोपरि ।।१४५।।

पद्मा—इसके उपरान्त रमा (श्रीं) माया (ह्रीं) मन्त्र का जप करते हुए फल तथा अक्षतयुक्त मिट्टी का शराब (प्याला, परई) उन पत्तों के ऊपर रखे।

हरि०—शरावमित्यादि। ततः फलाक्षतसमन्वितं सुवर्णादिभवं मार्त्तिकं मृति मत्तिकोद्भवं वापि शरावं रमां श्रीमिति मायां ह्रीमिति च बीजं समुच्चार्य पल्लवोपरि स्थापयेत्॥१४५॥

बध्नीयाद्वस्त्र युग्मेन ग्रीवां तस्य वरानने ।
शक्तौ रक्तं शिवे विष्णौ श्वेतवासः प्रकीर्तितम् ।।१४६।।

पद्मा—हे वरानने! दो वस्त्रों के द्वारा घड़े के गले को बाँधे। शक्ति मन्त्र में लाल वस्त्र तथा विष्णु मन्त्र में सफेद वस्त्र बाँधने का विधान कहा गया है।

हरि०—तस्य घटस्य। ननु किं वर्णेन वस्त्रयुग्मेन घटस्य ग्रीवां बध्नीयादित्यपेक्षायामाह शक्तौ रक्तमित्यादि॥१४६॥

स्थां स्थीं मायां रमां स्मृत्वा स्थिरीकृत्य घटान्तरे ।
निःक्षिप्य पञ्चतत्त्वानि नवपात्राणि विन्यसेत् ।।१४७।।

पद्मा—इसके उपरान्त **स्थां स्थीं ह्रीं श्रीं स्थिरीभव** मन्त्र से घट को स्थिर करे तथा उसमें पञ्चतत्त्व डालकर नौ पात्रों की स्थापना करे।

हरि०—स्थां स्थीमित्यादि। ततः स्थां स्थीं मायां रमां स्मृत्वा स्थां स्थीं ह्रीं श्रीं स्थिरीभवेति मन्त्रं पठित्वा स्थिरीकृतघटान्तरे पञ्चतत्त्वानि **निःक्षिप्य** पूर्वोक्तविधिना नवपात्राणि विन्यसेत् स्थापयेत्॥१४७॥

राजतं शक्तिपात्रं स्यात् गुरुपात्रं हिरण्मयम् ।
श्रीपात्रन्तु महाशङ्खं ताम्राण्यन्यानि कल्पयेत् ।।१४८।।
पाषाणदारूलौहानां पात्राणि परिवर्जयेत् ।
शक्त्या प्रकल्पयेत् पात्रं महादेव्याः प्रपूजनम् ।।१४९।।

पद्मा—शक्तिपात्र चाँदी का, गुरुपात्र सोने का, श्रीपात्र महाशंख का तथा अन्य सभी पात्र ताँबे के बने होने चाहिए। महादेवी की पूजा में पत्थर लकड़ी तथा लोहे के पात्र का उपयोग न करे। अपनी सामर्थ्य के अनुसार अन्य पदार्थों के ही पात्र रखे।

हरि०—ननु किं द्रव्योद्भवानि नवपात्राणि विन्यसेत्तत्राह राजतमित्यादि। महाशङ्खं नरकपालम्॥१४८-१४९॥

पात्राणां स्थापनं कृत्वा गुरुन् देवीं प्रतर्पयेत् ।
ततस्त्वमृतसम्पूर्णघटमभ्यर्चयेत् सुधीः ।।१५०।।

पद्मा—सुधी साधक पात्रों की स्थापना कर गुरुओं तथा देवी का तर्पण करने के उपरान्त अमृत से पूर्ण घट की पूजा करें।

हरि०—गुरुन् देवीमिति आनन्दभैरवादीनामप्युपलक्षणम्। प्रतर्पयेत् पूर्वोक्तेन तत्तन्मन्त्रेण॥१५०॥

दर्शयित्वा धूपदीपौ सर्वभूतबलिं हरेत् ।
पीठदेवान् पूजयित्वा षडङ्गन्यासमाचरेत् ।।१५१।।
प्राणायामं ततः कृत्वाध्यात्वाऽऽवाह्य महेश्वरीम् ।
स्वशक्त्या पूजयेदिष्टां वित्तशाठ्यं विवर्जयेत् ।।१५२।।

पद्या—धूप, दीप दिखाकर समस्त भूतों को बलि प्रदान करे। उसके पश्चात् पीठ देवतादि की पूजा कर षडङ्गन्यास करे । तदुपरान्त प्राणायाम कर महेश्वरी का ध्यान और आवाहन कर अपनी सामर्थ्य के अनुसार इष्टदेव की पूजा करे। पूजन के समय धन की कंजूसी न करे ।

हरि०—दर्शयित्वेयादि। ततो घटं प्रति धूपदीपौ दर्शयित्वा पूर्वोक्तमन्त्रेण सर्वभूतबलिं हरेत् दद्यात्॥१५१-१५२॥

होमान्तकृत्यं निष्पाद्य कुमारी शक्तिसाधकान् ।
पुष्पचन्दनवासोभिरर्चयेत् सद्गुरुः शिवे ।।१५३।।
अनुगृह्णन्तु कौला मे शिष्यं प्रति कुलव्रताः ।
पूर्णाभिषेकसंस्कारे भवद्भिरनुमन्यताम् ।।१५४।।

पद्या—हे शिवे! सद्गुरुदेव होम कर्म तक कर्म करने के उपरान्त पुष्प, चन्दन तथा वस्त्र के द्वारा क्रमशः कुमारी, शक्ति तथा साधकों की पूजा करे। इसके पश्चात् उपस्थित कौलसाधकों से अपने शिष्य का पूर्णाभिषेक संस्कार करने अनुमति माँगे - हे कुलव्रतपरायण कौलगण। आप सभी मेरे शिष्य पर अनुग्रह करें तथा पूर्णाभिषेक संस्कार की अनुमति दें।

हरि०—होमान्तकृत्यं होमपर्यन्तं कर्त्तव्यं कर्म निष्पाद्य साधयित्वा॥१५३-१५४॥

एवं पृच्छति चक्रेशे तं ब्रूयुर्गुरुमादरात् ।
महामायाप्रसादेन प्रभावात् परमात्मनः ।
शिष्यो भवतु पूर्णस्ते परतत्त्वपरायणः ।।१५५।।

पद्या—इस प्रकार चक्रेश्वर के पूछने पर समस्त कौलगण आदर सहित गुरुदेव से कहें कि महामाया की कृपा से और परमात्मा के प्रभाव से आपका शिष्य परंब्रह्मतत्पर होकर पूर्ण हो।

हरि०—परतत्त्वपरायणः परंब्रह्मतत्परः॥१५५॥

शिष्येण च गुरुर्देवीमर्चयित्वाऽर्चिते घटे ।
कामं मायां रमां जप्त्वा चालयेद्विमलं घटम् ।।१५६।।

पद्या—इसके उपरान्त गुरु शिष्य से देवी की पूजा कराकर पूजित घड़े के उपर काम, माया, रमा अर्थात् क्लीं, ह्रीं श्रीं मन्त्र का जपकर उस निर्मल घड़े को हिलाये ।

हरि०—शिष्येजेत्यादि। ततो गुरुः शिष्येण देवीमर्चयित्वाऽर्चिते पूजिते घटे कामं मायां रमां क्लीं ह्रीं श्रीमिति मन्त्रं जप्त्वा वक्ष्यमाणमन्त्रेण विमलं घटं चालयेत्॥१५६॥

उत्तिष्ठ ब्रह्मकलश! देवतात्मक सिद्धिदः।
त्वत्तोयपल्लवैः सिक्तः शिष्यो ब्रह्मरतोऽस्तु मे ॥१५७॥

पद्मा—हे ब्रह्मकलश! तुम देवतास्वरूप तथा सिद्धिप्रदाता हो, तुम उठो। मेरा शिष्य तुम्हारे जल तथा पल्लव द्वारा सिक्त होकर ब्रह्म में निरत हो। यही घट चालन मन्त्र है।

हरि०—घटचालनमन्त्रमेवाह उत्तिष्ठत्याद्यम्॥१५७॥

इत्थं सञ्चाल्य कलशमुत्तराभिमुखं गुरुः।
मन्त्ररेतैर्वक्ष्यमाणैरभिषिञ्चेत् कृपान्वितः ॥१५८॥

पद्मा—इस घटचालन मंत्र से कलश को चलाकर कृपायुक्त हृदय से शिष्य को उत्तर दिशा की ओर मुख करके बैठाये तथा शिष्य को अभिषिक्त कर मन्त्र पढ़े।

हरि०—इत्थमित्यादि। इत्थं कलशं घटं सञ्चाल्य कृपान्वितो गुरुरुत्तराभिमुखं शिष्यं वक्ष्यमाणैरेतैर्मन्त्रैरभिषिञ्चेत्॥१५८॥

शुभपूर्णाभिषेकस्य सदाशिव ऋषिः स्मृतः।
छन्दोऽनुष्टुब्देवताऽऽद्या प्रणवं बीजमीरितम्।
शुभपूर्णाभिषेकार्ये विनियोगः प्रकीर्त्तितः ॥१५९॥

पद्मा—इस शुभ पूर्णाभिषेक के ऋषि सदाशिव, छन्द अनुष्टुप्, देवता आद्या, बीज प्रणव (ॐ) शुभपूर्णाभिषेक कार्य के लिये इसका विनियोग कहा गया है।

हरि०—अथ शुभपूर्णाभिषेकमन्त्राणामृष्यादिकमाह शुभपूर्णाभिषेकस्येत्यादिना सार्धेन। एषां शुभपूर्णाभिषेकमन्त्राणां सदाशिव ऋषिरनुष्टुप्छन्दः आद्या काली देवता प्रणवो बीजं शुभपूर्णाभिषेकार्थे विनियोगः। शिरसि सदाशिवाय ऋषये नमः। मुखेऽनुष्टुप्छन्दसे नमः। हृदये आद्यायै कालिकायै देवतायै नमः। गुह्ये प्रणवाय बीजाय नमः। शुभपूर्णाभिषेकार्थे विनियोगः इति ऋषिन्यासो विधातव्यः॥१५९॥

गुरवस्त्वाऽभिषिञ्चन्तु ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः।
दुर्गालक्ष्मीभवान्यस्त्वामभिषिञ्चन्तु मातरः ॥१६०॥
षोडशी तारिणी नित्या स्वाहा महिषमर्दिनी।
एतास्त्वामभिषिञ्चन्तु मन्त्रपूतेन वारिणा ॥१६१॥
जयदुर्गा विशालाक्षी ब्रह्माणी च सरस्वती।
एतास्त्वामभिषिञ्चन्तु वगला वरदा शिवा ॥१६२॥

पद्मा—गुरुजन, ब्रह्मा, विष्णु, महेश्वर तुमको अभिषिक्त करें। दुर्गा, लक्ष्मी, भवानी ये मातायें तुम्हारा अभिषेक करें। षोडशी, तारिणी, नित्या, स्वाहा, महिषमर्दिनी—ये अभिमन्त्रित जल से तुम्हारा अभिषेक करें। जयदुर्गा, विशालाक्षी, ब्रह्माणी, वगला, वरदा, शिवा तुम्हें अभिषिक्त करें।

हरि०–अथ गुरवस्त्वाऽभिषिञ्चन्त्वित्यादीनभिषेकमन्त्रानेवाह त्वा त्वाम्॥१६०-१६२॥

नारसिंही च वाराही वैष्णवी वनमालिनी ।
इन्द्राणी वारुणी रौद्री त्वांऽभिषिञ्चन्तु शक्तयः ।।१६३।।

पद्मा–नारसिंही, वाराही, वैष्णवी, वनमालिनी, इन्द्राणी, वारुणी तथा रौद्री यह समस्त शक्तियाँ तुम्हे अभिषिक्त करें ।

हरि०–त्वा त्वाम्॥१६३॥

भैरवी भद्रकाली च तुष्टिः पुष्टिरुमा क्षमा ।
श्रद्धा कान्तिर्दया शान्तिरभिषिञ्चन्तु ते सदा ।।१६४।।
महाकाली महालक्ष्मीर्महानीलसरस्वती ।
उग्रचण्डा प्रचण्डा त्वामभिषिञ्चन्तु सर्वदा ।।१६५।।
मत्स्यः कूर्मो वराहश्च नृसिंहो वामनस्तथा ।
रामो भार्गवरामस्त्वामभिषिञ्चन्तु वारिणा ।।१६६।।
असिताङ्गो रुरुश्चण्डः क्रोधोन्मत्तो भयङ्करः ।
कपाली भीषणश्च त्वामभिषिञ्चन्तु वारिणा ।।१६७।।
काली कपालिनी कुल्ला कुरुकुल्ला विरोधिनी ।
विप्रचित्तामहोग्रा त्वामभिषिञ्चन्तु सर्वदा ।।१६८।।
इन्द्रोऽग्निः शमनो रक्षो वरुणः पवनस्तथा ।
धनदश्च महेशानः सिञ्चन्तु त्वां दिगीश्वराः ।।१६९।।

पद्मा–भैरवी, भद्रकाली, तुष्टि, पुष्टि, उमा, क्षमा, श्रद्धा, कान्ति, दया, शान्ति–ये सदैव तुम्हें अभिषिक्त करें। महाकाली, महालक्ष्मी, महानील, सरस्वती, उग्रचण्डा–ये देवियाँ सदैव तुम्हें अभिषिक्त करें। मत्स्य, कूर्म, वराह, नृसिंह, वामन, राम, परशुराम - ये जल से सदैव तुम्हारा अभिषेक करें। असिताङ्ग, रुरु, चण्ड, क्रोधोन्मत्त, भयंकर, कपाली, भीषण–ये जल से तुम्हें अभिषिक्त करें। काली, कपालिनी, कुल्ला, कुरुकुल्ला विरोधिनी, विप्रचित्ता, महोग्रा –ये सदैव तुम्हारा अभिषेक करें। इन्द्र, अग्नि, पितृपति, नैर्ऋत, वरुण, पवन, कुबेर ईशान–ये आठ दिशापति तुम्हारा अभिषेक करें ।

हरि०–**ते इति कर्मणः** शेषत्वेन विवक्षितत्वात् षष्ठी॥१६४-१६९॥

रविः सोमो मङ्गलश्च बुधो जीवः सितः शनिः ।
राहुः केतुः सनक्षत्रा अभिषिञ्चन्तु ते ग्रहाः ।।१७०।।
नक्षत्रं करणं योगो वाराः पक्षौ दिनानि च ।
ऋतुर्मासो हायनस्त्वामभिषिञ्चन्तु सर्वदा ।।१७१।।
लवणेक्षुसुरासर्पिर्दधिदुग्ध जलान्तकाः ।
समुद्रास्त्वाऽभिषिञ्चन्तु मन्त्रपूतेन वारिणा ।।१७२।।

पद्मा–सूर्य, चन्द्रमा, मंगल, बुध, बृहस्पति, शुक्र, शनि, राहु, केतु–ये समस्त ग्रह

तथा नक्षत्रगण तुम्हारा अभिषेक करें। अश्विनी आदि नक्षत्र, बव आदि करण, विष्कंभादि योग, रवि इत्यादि वार, शुक्लादिपक्ष, दिन, बसन्तादि छः ऋतुएं, महीने, उत्तरायण व दक्षिणायन सूर्य, वर्ष–ये सदैव तुम्हें अभिषिक्त करें। लवण-समुद्र इक्षुसमुद्र, सुरासमुद्र, घृतसमुद्र, दधि समुद्र, दुग्धसमुद्र–ये सभी अभिन्त्रित जल से सदैव तुम्हे अभिषिक्त करें।

हरि०–जीवो बृहस्पतिः। सितः शुक्रः॥१७०-१७२॥

गङ्गा सूर्यसुत रेवा चन्द्रभागा सरस्वती ।
सरयुर्गण्डकी कुन्ती श्वेतगङ्गा च कौशिकी ।
एतास्त्वामभिषिञ्चन्तु मन्त्रपूतेन वारिणा ।।१७३।।

पद्मा–गंगा, यमुना, रेवा, चन्द्रभागा, सरस्वती, सरयू, गण्डकी, कुन्ती, श्वेतगंगा कौशिकी–ये नदियाँ अभिमन्त्रित जल से तुम्हारा अभिषेक करें।

हरि०–सूर्यसुता सूर्यपुत्री यमुना॥१७३॥

अनन्ताद्या महानागाः सुपर्णाद्या पतत्रिणः ।
तरवः कल्पवृक्षाद्याः सिञ्चन्तु त्वां महीधराः ।।१७४।।
पातालभूतलव्योमचारिणः क्षेमकारिणः ।
पूर्णाभिषेकसन्तुष्टास्त्वाऽभिषिञ्चन्तु पाथसा ।।१७५।।

पद्मा–अनन्त, वासुकि, पद्मादि महानाग, गरुड़ादिपक्षी, कल्पवृक्षादि वृक्ष और पर्वत तुम्हारा अभिषेक करें। पातालवासी, भूतलवासी, व्योमचारी और जीवगण तुम्हारा कल्याण करें। पूर्णाभिषेक से सन्तुष्ट हो जल से तुम्हारा अभिषेक करें।

हरि०–अनन्ताद्याः शेषप्रभृतयः। सुपर्णाद्याः गरुडादयः। पतत्रिणः पक्षिणः ॥१७४-१७५॥

दौर्भाग्यं दुर्यशो रोगा दौर्मनस्यं तथा शुचः ।
विनश्यन्त्वभिषेकेन परब्रह्मतेजसा ।।१७६।।
अलक्ष्मीः कालकर्णी च डाकिन्यो योगिनीगणाः ।
विनश्यन्त्वभिषेकेण कालीबीजेन ताडिताः ।।१७७।।

पद्मा–पूर्णाभिषेक होने से एवम् परमब्रह्म के तेज से तुम्हारा दुर्भाग्य, अपकीर्ति, रोग दुर्मनता तथा शोकादि सभी नष्ट हो जायें। अलक्ष्मी, कालकर्णी, डाकिनी, योगिनीगण अभिषेक से तथा काली बीज (क्रीं) से ताडित होकर नष्ट हो जायें।

हरि०–शुचः शोकाः॥१७६-१७७॥

भूताः प्रेताः पिशाचाश्च ग्रहा येऽरिष्टकारकाः।
विद्रुतास्ते विनश्यन्तु रमाबीजेन ताडिताः ।।१७८।।
अभिचारकृता दोषा वैरिमन्त्रोद्भवाश्च ये ।
मनोवाक्कायजा दोषा विनश्यन्त्वभिषेचनात् ।।१७९।।

नश्यन्तु विपदः सर्वाः सम्पदः सन्तु सुस्थिराः ।
अभिषेकेण पूर्णेन पूर्णाः सन्तु मनोरथाः ।।१८०।।
इत्येकाधिकविंशत्या मन्त्रैः संसिक्तसाधकम् ।
पशोर्मुखाल्लब्धमन्त्रं पुनः संश्रावयेद् गुरुः ।।१८१।।

पद्मा—भूत, प्रेत, पिशाच, ग्रह तथा अनिष्ट करने वाले रमाबीज (श्रीं) से फटकार खा कर भाग जायें तथा विनष्ट हों, अभिचार कर्म से उत्पन्न दोष, शत्रुमन्त्र से उत्पन्न दोष, मानसिक दोष, वाचिक दोष, कायिकदोष–ये सभी अभिषेक से नष्ट हो जायें। तुम्हारी समस्त विपत्तियाँ दूर हों, तुम्हारी समस्त सम्पदा स्थिर हो। इस पूर्णाभिषेक से तुम्हारी सभी इच्छाएँ पूर्ण हों। इन इक्कीस मंत्रों से साधक का अभिषेक करें। यदि शिष्य पशुभाव के गुरु से दीक्षित हुआ हो तो पुनः सद्गुरुदेव शिष्य को मंत्र सुनायें ।

हरि०—अरिष्टकारकाः अशुभोत्पादकाः।।१७८-१८१।।

पूर्वोक्तनाम्ना सम्बोध्य ज्ञापयन् शक्तिसाधकान् ।
दद्यादानन्दनाथान्तमाख्यानं कौलिको गुरुः ।।१८२।।
श्रुतमन्त्रो गुरोर्यन्त्रे सम्पूज्य निजदेवताम् ।
पञ्चतत्त्वोपचारेण गुरुमभ्यर्चयेत्ततः ।।१८३।।

पद्मा—फिर कौलिक गुरुदेव पहले गये नाम द्वारा शिष्य को सम्बोधित कर समस्त शक्तिसाधकों को सूचित करते हुए उसे आनन्दनाथान्त नाम प्रदान करे। श्रीगुरुदेव से मंत्र प्राप्त कर शिष्य पञ्चतत्त्वों के उपचारों से गुरु की पूजा करे ।

हरि०—**पूर्वोक्तेत्यादि**। ततः कौलिको गुरुः शक्तिसाधकान् ज्ञापयन् सन् पूर्वोक्तनाम्ना शिष्यं सम्बोध्य तस्याऽऽनन्दनाथान्तमाख्यान नाम दद्यात्। यथा अमुकदेवशर्मन् त्वमेतद्दिनमारभ्याऽमुकानन्दनाथाख्योऽसीति।।१८२-१८३।।

गोभूहिरण्यवासांसि पानालङ्करणानि च ।
गुरवे दक्षिणां दत्त्वा यजेत् कौलान् शिवात्मकान् ।।१८४।।

पद्मा—इसके पश्चात् शिष्य गुरुदेव को भूमि, स्वर्ण, वस्त्र, पान, अलंकार दक्षिणा में प्रदान कर शिवस्वरूप कौलों का पूजन करे ।

हरि०—**गोभूहिरण्येत्यादि**। ॐ अद्येत्यादि कृतैतच्छुभपूर्णाभिषेककर्मणः साङ्गत्वार्थं गोभूहिरण्यादिदक्षिणामुकगोत्रायामुकानन्द नाथाय गुरवे तुभ्यमहं सम्प्रददे इति वाक्येन। यथाशक्ति गोभूहिरण्यादीनि दक्षिणां गुरवे दत्त्वा शिवात्मकान् शिवस्वरूपान् कौलान् यजेत्।।१८४।।

कृतकौलार्चनो धीरः शान्तोऽतिविनयान्वितः ।
श्रीगुरोश्चरणौ स्पृष्ट्वा भक्त्या नत्वेदमर्थयेत् ।।१८५।।

पद्मा—कौल साधकों की पूजा करने के पश्चात् शान्त एवं अत्यन्त विनीत भाव से भक्ति पूर्वक श्रीगुरुदेव के चरण स्पर्श कर नमस्कार कर प्रार्थना करे ।

हरि०—अर्थयेत् याचेत् ।।१८५।।

श्रीनाथ जगतां नाथ मन्नाथ करुणानिधे ।
परामृतप्रदानेन पूरयाऽस्मन्मनोरथम् ।।१८६।।
आज्ञां मे दीयतां कौला: प्रत्यक्षशिवरूपिण: ।
सच्छिष्याय विनीताय ददामि परमामृतम् ।।१८७।।
चक्रेश परमेशान कौलपङ्कजभास्कर ।
कृतार्थं कुरु सच्छिष्यं देह्यमुष्मै कुलामृतम् ।।१८८।।
आज्ञानदाय कौलानां परमामृतपूरितम् ।
सशुद्धिकं पानपात्रं शिष्यहस्ते समर्पयेत् ।।१८९।।
हृद्याकृष्य गुरुर्देवीं स्रुवसंलग्नभस्मना ।
स्वरूप शिष्यरूप कौलानां कूर्चे च तिलकं न्यसेत् ।।१९०।।

पद्मा—"हे श्रीथ! हे जगत नाथ! हे मेरे नाथ! हे करुणानिधि: परामृत प्रदान कर मेरे मनोरथ को पूर्ण करें। गुरुदेव कौलों से आज्ञा प्राप्त कर उनसे कहें - हे शिवरूप कौलगण आप आज्ञा प्रदान करें। अपने विनम्र सच्छिष्य को मैं परमामृत देता हूँ। उत्तर में कौलगण कहें - हे चक्रेश्वर! हे परमेशान! आप कौलस्वरूप कमलवन के लिये सूर्यस्वरूप हैं। आप इस सच्छिष्य को कुलामृत प्रदान कर कृतार्थ करें। कुली कौलगणों की अनुमति लेकर गुरुदेव शुद्धि (माँस) सहित परमामृत से पूर्ण पात्र शिष्य के हाथ प्रदान करे। फिर अपने हृदय में गुरुदेव देवी का ध्यान कर स्रुव में लगी भस्म से शिष्य तथा कौलसाधकों के भ्रूमध्य में तिलक लगाये ।

हरि०—यत् प्रार्थयेत्तदाह श्रीनाथेत्याद्येकेन॥१८६-१९०॥

ततः प्रसादतत्त्वानि कौलेभ्यः परिवेशयन् ।
चक्रानुष्ठानविधिना विदध्यात् पानभोजनम् ।।१९१।।
इति ते कथितं देवि! शुभपूर्णाभिषेचनम् ।
ब्रह्मज्ञानैकजननं शिवत्वफलसाधनम् ।।१९२।।
नवरात्रं सप्तरात्रं पञ्चरात्रं त्रिरात्रकम् ।
अथ वाप्येकरात्रञ्च कुर्यात् पूर्णाभिषेचनम् ।।१९३।।
संस्कारेऽस्मिन् कुलेशानि! पञ्चकल्पाः प्रकीर्तिताः ।
नवरात्रे विधातव्यं सर्वतोभद्रमण्डलम् ।।१९४।।
नवनाभं सप्तरात्रे पञ्चाब्जं पञ्चरात्रके ।
त्रिरात्रे चैकरात्रे च पद्ममष्टदलं प्रिये ।।१९५।।
मण्डले सर्वतोभद्रे नवनाभेऽपि साधकैः ।
स्थापनीया नवघटाः पञ्चाब्जे पञ्चसङ्ख्यकाः ।।१९६।।

पद्मा—इसके उपरान्त प्रसाद तत्त्व समस्त कौलों को अर्पित कर चक्रानुष्ठान की विधि से पान एवं भोजन करे। हे देवि! मैंने तुमसे यह शुभपूर्णाभिषेक कहा। इस पूर्णाभिषेक से

ब्रह्मज्ञान एवं शिवत्व प्राप्त हो जाता है। नवरात्रि, सप्तरात्रि, पञ्चरात्रि, त्रिरात्रि अथवा एकरात्रि में पूर्णाभिषेक करे। हे कुलेशानि! इस संस्कार में पाँच कल्प कहे गये हैं। नौ रात्रि के अभिषेक में "सर्वतोभद्रमण्डल", सातरात्रि के अभिषेक में "नवनाभमण्डल" पाँच रात्रि के अभिषेक में "पञ्चाब्जमण्डल" तीन तथा एक रात्रि के अभिषेक में "अष्टदलकमल" की रचना करे। "सर्वतोभद्र" तथा "नवनाभ" मण्डल में नौ घट (घड़े) तथा पाँच घटों की स्थापना करे।

हरि०—तत इति। विदध्यात् कुर्यात्॥१९१-१९६॥

नलिनेऽष्टदले देवि घटस्त्वेकः प्रकीर्तितः।
अङ्गावरणदेवांश्च केसरादिषु पूजयेत् ॥१९७॥
पूर्णाभिषेकसिद्धानां कौलानां निर्मलात्मनाम्।
दर्शनात् स्पर्शनाद् घ्राणाद् द्रव्यशुद्धिर्विधीयते ॥१९८॥
शाक्तैर्वा वैष्णवैः शैवैः सौरैर्गाणपतैरपि।
कौलधर्माश्रितः साधुः पूजनीयोऽतियत्नतः ॥१९९॥
शाक्ते शाक्तो गुरुः शस्तः शैवे शैवो गुरुर्मतः।
वैष्णवे वैष्णवः सौरे सौरो गुरुरुदाहृतः ॥२००॥

पद्मा—हे देवि! अष्टदलकमल में केवल एक घट की विधि कही गयी है। इस कमल के केसरादि में अंगदेवता तथा आवरणदेवताओं की पूजा करे। पूर्णाभिषेक से सिद्ध पवित्र-हृदय कौलों को देखने, स्पर्श करने तथा सूँघने से ही द्रव्यों की शुद्धि हो जाती है। शाक्त, वैष्णव, शैव, सौर अथवा गाणपत सभी उपासकों द्वारा कुलधर्माश्रित साधु यत्नपूर्वक पूजनीय है। शाक्तों के लिये शाक्त, शैवों के लिये शैव, वैष्णवों के लिये वैष्णव, सौरों के लिये सौर गुरु ही श्रेष्ठ है।

हरि०—नलिने पद्मे॥१९७-२००॥

गाणपे गाणपश्चैव कौलः सर्वत्र सद्गुरुः।
अतः सर्वात्मना धीमान् कौलाद् दीक्षां समाचरेत् ॥२०१॥
पञ्चतत्त्वेन यत्नेन भक्त्या कौलान् यजन्ति ये।
उद्धृत्य पुरुषान् सर्वांस्ते यान्ति परमां गतिम् ॥२०२॥
पशोर्वक्त्राल्लब्धमन्त्रः पशुरेव न संशयः।
वीराल्लब्धमनुर्वीरः कौलाद्भवति ब्रह्मवित् ॥२०३॥
शाक्ताभिषेकी वीरः स्यात् पञ्च तत्त्वानिशोधयेत्।
स्वेष्टपूजाविधावेव न तु चक्रेश्वरो भवेत् ॥२०४॥

पद्मा—गाणपत के लिये गाणपत गुरु तथा कौल सभी के लिए श्रेष्ठ गुरु है। इसलिए बुद्धिमान् मनुष्य सभी प्रकार से कौल गुरु से दीक्षा ग्रहण करे। जो मनुष्य, भक्तिपूर्वक

पञ्चतत्त्वों से कौलगणों को पूजा करते हैं वे अपने समस्त पूर्वजों का उद्धार करके स्वयं भी परमगति को प्राप्त होते हैं। पशुभाव के गुरु से मन्त्र प्राप्त करने वाला पशु ही होता है। इसमें सन्देह नहीं है। जो वीर से मन्त्र ग्रहण करता है वह वीर साधक है। जो कौल गुरु से मन्त्र ग्रहण करता है। वह ब्रह्मज्ञानी है। जिसका शाक्ताभिषेक हुआ है वह वीर है। अपने इष्ट देवता की पूजाविधि से वह पञ्चतत्त्वों का शोधन कर सकता है; किन्तु चक्रेश्वर नहीं बन सकता है ।

हरि०–सर्वात्मा सर्वप्रयत्नेन॥२०१-२०४॥

वीरघाती वृथापायी वीराणां स्त्रीगमस्तथा ।
स्तेयी महापातकिनस्तत्संसर्गी च पञ्चमः ।।२०५।।
कुलवर्त्म कुलद्रव्यं कुलसाधकमेव च ।
ये निन्दन्ति दुरात्मानस्ते गच्छन्त्यधमां गतिम् ।।२०६।।
नृत्यन्ति रुद्रडाकिन्यो नृत्यन्ति रुद्रभैरवाः ।
मांसास्थिचर्वणानन्दाः सुराकौलद्विषां नृणाम् ।।२०७।।

पद्मा–वीर की हत्या करने वाला, वृथा मद्यपान करने वाला, वीरों की स्त्रियों से अवैध सम्बन्ध रखने वाला और जो चोरी से जीवनयापन करता है - ये चार महापापी हैं। इन पापियों का साथ करने वाला मनुष्य पाँचवाँ महापापी है। कुलमार्ग, कुलद्रव्य तथा कुलसाधक की जो पापी निन्दा करते हैं वे अधोगति को प्राप्त होते हैं। रुद्रडाकिनियाँ तथा रुद्रभैरवगण कौलद्वेषी मनुष्यों के मांस और हड्डियों को चबाकर आनन्द से नाचते हैं।

हरि०–अथ पञ्चमहापातकिन आह वीरघातीत्याद्येकेन ॥२०५-२०७॥

दयालवः सत्यशीलाः सदा परहितैषिणः ।
तान् गर्हयन्तो नरकान्निष्कृतिं यान्ति क्वचित् ।।२०८।।
उक्त प्रयोगा बहवः कर्माणि विविधानि च ।
ब्रह्मैकनिष्ठकौलस्य त्यागानुष्ठानयोः समम् ।।२०९।।

पद्मा–दयालु, सत्यनिष्ठ, सदैव परोपकार में लगे रहने मनुष्य भी यदि कौलगणों की निन्दा करते हैं तो वे भी निश्चित रूप से नरक में जाते हैं। बहुत से प्रयोग, बहुत से कर्मानुष्ठान तथा बहुत से विधान कहे गये हैं; किन्तु एक मात्र ब्रह्मनिष्ठ कौल के लिये कर्म का त्याग तथा कर्म का अनुष्ठान दोनों समान रूप से फलदायक होते हैं ।

हरि०–गर्हयन्तः निन्दन्तः॥२०८-२०९॥

एकमेव परं ब्रह्म जगदावृत्य तिष्ठति ।
विश्वार्चया तदर्चा स्यात् यतः सर्वं तदन्वितम् ।।२१०।।

पद्मा–एकमात्र परम ब्रह्म ही त्रिभुवन में व्याप्त होकर स्थित है। इसलिए विश्व की पूजा करने से वह ब्रह्म की ही पूजा होती है; क्योंकि सभी वस्तुएँ ब्रह्म से अभिन्न हैं।

हरि०–एकेति। तदर्चा परब्रह्मार्चनम्। तदन्वितम् परब्रह्मान्वितम्॥२१०॥

फलासक्ता: कामपरा: कर्मजातरता: प्रिये ।
पृथक्त्वेन यजन्तोऽपि तत् प्रयान्ति विशन्ति च ।।२११।।
सर्वं ब्रह्मणि सर्वत्र ब्रह्मैव परिपश्यति ।
ज्ञेय: स एव सत्कौलो जीवन्मुक्तो न संशय: ।।२१२।।

इति श्रीमहानिर्वाणतन्त्रे सर्वतन्त्रोत्तमोत्तमे सर्वधर्मनिर्णयसारे श्रीमदाद्या-
सदाशिव संवादे वृद्धिश्राद्धादिमृतक्रियापूर्णाभिषेक-
कथनं नाम दशमोल्लास:।।१०।।

पद्मा–हे प्रिये! फल में आसक्त, कामपरायण तथा कर्मकाण्ड में लगे हुए व्यक्ति अलग-अलग भावों से अन्य देवताओं की पूजा करने पर भी ब्रह्म का ज्ञान प्राप्त करते हैं तथा ब्रह्म में लय हो जाते हैं। जो समस्त वस्तुओं में ब्रह्म को तथा ब्रह्म को सभी वस्तुओं में देखते है उन्हें सत्कौल तथा जीवन्मुक्त समझना चाहिए, इसमें सन्देह नहीं है ।

हरि०–**फलासक्ता इत्यादि**। अत इति शेष:। कर्मजातरता: कर्मसमूहानुरक्ता:॥ तत् परं ब्रह्म॥२११॥२१२॥

इति श्रीमहानिर्वाणतन्त्रे सर्वतन्त्रोत्तमोत्तमे सर्वधर्मनिर्णयसारे श्रीमदाद्यासदा-
शिवसंवादे अजय कुमार उत्तम विरचित पद्मा हिन्दी व्याख्यायां
वृद्धिश्राद्धादिकथनं नाम दशमोल्लास:।।१०।।

इति श्रीमहानिर्वाणतन्त्रटीकायां दशमोल्लास:।।१०।।

एकादशोल्लासः

श्रुत्वा शाम्भवधर्माणि वर्णाश्रमविभेदतः ।
अपर्णा परया प्रीत्या पप्रच्छ शङ्करं प्रति ।।१।।

पद्मा—वर्णाश्रम भेद के अनुसार भगवान् शिव के धर्म का वर्णन सुनकर अपर्णा देवी अत्यन्त ही प्रसन्न हुई। उन्होंने भगवान् शंकर से अतिआदर पूर्वक पूछा ।

हरि०—ॐ नमो ब्रह्मणे ।

कलौ लोकानां प्रायशो नास्तिकत्वात् संशयापन्नमानसत्वात् कामक्रोधाद्यभिभूतत्वात् सर्वदेन्द्रियसुखाकांक्षित्वाच्च सदाशिवप्रोक्तसन्मार्गाननुष्ठानात्तत्रिबिद्धदुर्वर्त्मन: सेवनाच्चानेकविधं पापमुत्पद्यते। ततश्च तेषां कथं विमुक्तिरित्याशपवती पार्वती शङ्करपृच्छति स्मेत्याह श्रुत्वेत्यादिना। वर्णा ब्राह्मणादयश्चाश्रमौ गार्हस्थ्यभैक्षुकौ च तेषां विभेदतः शाम्भवधर्माणि शम्भुप्रोक्तधर्माणि श्रुत्वा अपर्णा व्रतत्यक्तपत्रा पार्वती परयोत्तमया प्रीत्या शङ्करं कल्याणिकर्तारं महादेवं प्रति पप्रच्छ॥१॥

श्रीदेव्युवाच

वर्णाश्रमाचारधर्माः संस्कारा लोकसिद्धये ।
कथिताः कृपया मह्यं सर्वज्ञेन त्वया प्रभो ।।२।।

पद्मा—श्रीदेवी ने कहा - हे प्रभो! आप सर्वज्ञ हैं। आपने लोक व्यवहार में सफलता के लिये वर्ण तथा आश्रम के आचार, धर्म तथा संस्कारों को कहा है ।

हरि०—किं पप्रच्छेत्यात्काङ्क्षायां प्रष्टव्यमेवाभि धातुमुपक्रमते वर्णाश्रमेत्यादि वक्तुमर्ह-सीत्यन्तं श्लोकत्रयम्। प्रभो हे स्वामिन् यद्यपि लोकसिद्धये लोकनिर्वाहनिष्पत्तये वर्णानामाश्रमाणां चाचारा धर्मः संस्काराश्च सर्वज्ञेन सर्वं जानता त्वया कृपया मह्यं मामुद्दिश्य कथिता उक्ताः॥२॥

कलौ दुर्वृत्तयो लोकाः कामक्रोधान्धचेतसः ।
नास्तिकाः संशयात्मनः सदेन्द्रियसुखैषिणः ।।३।।

पद्मा—कलियुग में मनुष्य काम-क्रोधदि से अन्धे, नास्तिक, शंका करने वाले तथा सदैव इन्द्रियसुखों की इच्छा करने वाले होंगे ।

हरि०—तथापि कलौ लोका अना भवन्निगदितं भवता कथितं वर्त्म मार्गं नानुष्ठास्यन्ति नानुचरियन्तीति द्वितीयं नान्वयः। शिवोक्त वर्त्माननुष्ठाने हेतु दर्शयन लोकान् विशिनष्टि कलौ दुर्वृत्तय इत्यादिना। कथम्भूताः लोकाः दुर्वृत्तयः दुष्टे कर्मणि वृत्तिर्दुष्टा वा वृत्तिर्येषां ते। दुष्टे कर्मणि वर्त्तमाना इत्यर्थः पुनः-पुनः कामक्रोधान्धचेतसः कामक्रोधाभ्यामन्धञ्चेतो येषां तथाभूताः। नास्तिका परलोकादिकं नास्तीति बुद्धिशालिनः। संशयात्मानः परलोकादिव्यमस्ति

नास्तिवेति सन्देहापन्नमानसाः। सदेन्द्रियसुखैषिणः सर्वदा रसनादीन्द्रियसुखाकाङ्क्षिणः।।३।।

भगवन्निगदितं वर्त्म नानुष्ठास्यन्ति दुर्धियः ।
तेषां का गतिरीशान विशेषाद्वक्तुमर्हसि ।।४।।

पद्मा—हे ईशान! दुर्बुद्धियुक्त मनुष्य आपके बताये गये अनुष्ठान को नहीं करेंगे तो उनकी क्या गति होगी? आप इसे विशेष रूप से कहे ।

हरि०—दुर्धियः दुर्बुद्धयः। ईशान हे ऐश्वर्यशालिन् तेषां लोकानां का गतिः को विमुक्तेे रुपायः स्यादिति विशेषाद्वक्तुं कथयितुमर्हसि त्वं योग्यो भवसि। गतिर्ज्ञाने दशायां च मार्गे यात्राभ्युपापयोरिति कोषः ।।४।।

श्री सदाशिव उवाच

साधु पृष्टं त्वया देवि! लोकानां हितकारिणि: ।
त्वं जगज्जननी दुर्गा जन्मसंसारमोचनी ।।५।।

पद्मा—श्री सदाशिव ने कहा—हे देवि! तुमने अच्छा प्रश्न किया है। तुम लोकहितकारिणी, जगज्जननी तथा संसार बन्धन से छुड़ाने वाली दुर्गा हो ।

हरि०—शम्भुरिदानीमपर्णाप्रश्नं स्तौति साधु पृष्टमित्यदिना। देवि हे द्युतिमति त्वया साधु मनोरमं पृष्टम्। साधुप्रश्ने हेतुं दर्शयन्नाह लोकानामिति। कीदृशि देवि लोकानां हितकारिणि जनानामभीष्टेत्यादयित्रि। लोकानां हितकारिणीत्वे बीजं दर्शयन्नाह त्वमित्यादि। त्वं जगज्जननी जगतां जनयित्री जगज्जननीत्वाल्लोकानां हितकारिणी लोकानां हितकारिणीत्वाच्च साधु पृष्टमिति योज्यम्। जन्मसंसारमोचनी जन्मनः उत्पत्तेः संसारात् पुनः पुनर्यातायातकर्तुः कलत्रपुत्रादेश्च मुक्तिकर्त्री त्वम्। अत एव दुःखेन गम्यते ज्ञायते या सा दुर्गा दुर्ज्ञेया च त्वम्।।५।।

त्वमाद्या जगतां धात्री पालयित्री परात्परा ।
त्वयैव धार्यते देविः विश्वमेतच्चराचरम् ।।६।।

पद्मा—हे दवि! तुम ही आद्या, जगत् को धारण और पालन करने वाली परात्परा हो। इस चराचर विश्व को तुम ही धारण करती हो ।

हरि०—त्वमिति। त्वं जगतामाद्या आदिभूताऽसि। जगतां धात्री पोष्ट्री च त्वं पालयित्री जगतां रक्षिका च त्वमेव। परात् श्रेष्ठादपि पराश्रेष्ठा च त्वम्। हे देवि कान्तिमति चराचरं जङ्गमस्थावरमेतद्विश्वं त्वयैवं धार्यते।।६।।

त्वमेव पृथ्वी त्वं वारि त्वं वायुस्त्वं हुताशनः ।
त्वं वियत्त्वमहङ्कारस्त्वं महत्तत्त्वरूपिणी ।।७।।

पद्मा—तुम ही पृथ्वी, जल, वायु, अग्नि, आकाश, अहंकारतत्त्व व महत्तत्वरुपा हो।

हरि०—त्वमेवेति। त्वमेव पृथ्वी भूमिः त्वं वारि जलं त्वमेव वायुः त्वं च हुताशनोऽग्निः त्वं वियदाकाशं त्वं चाहङ्कारः। महत्तत्त्वरूपिणी च त्वमेव।।७।।

त्वमेव जीवो लोकेऽस्मिंस्त्वं विद्या परदेवता ।
इन्द्रियाणि मनोबुद्धिर्विश्वेषां त्वां गतिः स्थितिः ।।८।।

पद्मा—इस जगत् में तुम ही समस्त जीव, विद्या, परमदेवता, इन्द्रिय समूह, मन, बुद्धि, जगत् की गति तथा स्थिति हो।

हरि०—त्वमेवेति। अस्मिंल्लोके यो जीवस्तद्रूपा च त्वमेव। विद्या आत्मज्ञानरूपा च त्वमेव। परदेवता श्रेष्ठदेवता च त्वमेवासि। इन्द्रियाणि नेत्रादीनि मनोहृदयं बुद्धिः शास्त्रादितत्त्वज्ञानम् तत्तद्रूपा च त्वमेवासि। विश्वेषां या गतिः स्थितिश्च तद्रूपा च त्वमेव।।८।।

त्वमेव वेदाः प्रणवः स्मृतयस्त्वं हि संहिताः ।
निगमागमतन्त्राणि सर्वशास्त्रमयी शिवा ।।९।।

पद्मा—तुम ही समस्त वेद, प्रणव, समस्त स्मृतियाँ, तुम ही महाभारतादि समस्त, संहिता निगम, आगम, तन्त्रशास्त्र तथा सर्वशास्त्रमयी शिवा हो ।

हरि०—त्वमेवेति। वेदा यजुरादयः तद्रूपा च त्वमेवासि। प्रणव ओङ्काररूपा च त्वम्। स्मृतयो मन्वादिकथितधर्मशास्त्राणि तद्रूपा च त्वम्। संहिता महाभारतादयस्तद्रूपा च त्वमेवासि। निगमः शम्भुप्रश्नतः पार्वतीमुखाजातः पद्यरूपो ग्रन्थविशेषः। आगमश्च शिवमुखागतगिरिजाननयात वासुदेवमतपद्यरूपग्रन्थविशेष एव। तन्त्र चाऽम्बिकामुद्दिश्य शिवोक्तो गणेशलिखितो ग्रन्थविशेष एव। तद्रूपा च त्वमेव। सर्वशास्त्रमयी वेदान्तादिकसकलशास्त्ररूपा च त्वम्। शिवा कल्याणैकनिलयभूता च त्वमसि।।९।।

महाकाली महालक्ष्मीर्महानीलसरस्वती ।
महोदरी महामाया महारौद्री महेश्वरी ।।१०।।

पद्मा—तुम ही महाकाली, महालक्ष्मी, महानीलसरस्वती, महोदरी, महामाया, महारौद्री तथा महेश्वरी हो।

हरि०—महेति। जगत्संहर्त्रीत्वान्महाकाली त्वम्। सम्पत्तिवृद्धिहेतुत्वान्महालक्ष्मीश्च त्वमेव। विद्याप्रदात्रीत्वान्महानीलसरस्वती च त्वमेवासि। प्रलये अशेष जगत्कुक्षित्वान्महोदरी त्वम्। जगन्मोहयित्रीत्वान्महामाया च त्वम्। महारौद्री अत्युग्रा च त्वम्। महेश्वरी माहेश्वर्यविशिष्टा च त्वम्।।१०।।

सर्वज्ञा त्वां ज्ञानमयी नास्त्येवेद्यं तवाऽन्तिके ।
तथापि पृच्छसि प्राज्ञे! प्रीतये कथयामि ते ।।११।।

पद्मा—हे प्राज्ञे! तुम सभी कुछ जानने वाली तथा ज्ञानमयी हो। तुमसे कुछ भी अज्ञात नहीं है। फिर भी इस समय तुम जो कुछ भी पूछती हो, उसे तुम्हारी प्रसन्नता के लिये कहता हूँ।

हरि०—सर्वज्ञेति। सर्वज्ञा अशेषपदार्थज्ञात्री ज्ञानमयी मोक्षविषयप्राज्ञास्वरूपा च त्वमसि। अतस्तवाऽन्तिके त्वन्निकटे अवेद्यमप्रज्ञेयं किञ्चिदपि नास्ति। ननु किञ्चिदपि ममावेद्यं नास्ति चेत् कथं पृच्छामीत्याशङ्कमानां प्रत्याह तथापीति। यद्यप्येवं तथापि प्राज्ञे हे प्रकृष्टज्ञा-

नवति प्रीतये पृच्छसि ममेति शेषः अहमपि ते तव प्रीतये कथयामि। ते तवाग्रतः ते तुभ्यमिति वा। काकाक्षिगोलकन्यायेन प्रीतये इति पूर्वोत्तराभ्यां क्रियाभ्यां सम्बध्यते।।११।।

सत्यमुक्तं त्वया देवि! मनुजानां विचेष्टितम् ।
जानन्तोऽपि हितं मत्ताः पापैराशु सुखप्रदैः ।।१२।।
नाऽऽचरिष्यन्ति सद्वर्त्म हिताहितबहिष्कृताः ।
तेषां निःश्रेयसार्थाय कर्तव्यं यत्तदुच्यते ।।१३।।

पद्मा—हे देवि! मनुष्यों के आचरण को तुमने ठीक ही कहा है। वे अपने हित को जानते हुए भी शीघ्र सुख प्रदान करने वाले पाप कर्म करते हुए हित-अहित का विचार त्यागकर सत्य के पथ पर नहीं चलेंगे। उनकी मुक्ति के लिये जो कर्तव्य है, उनको मैं कहता हूँ।

हरि०—अधुना पूर्वोक्तमेवानुवदन्नुत्तरं दातुं प्रक्रमते सत्यमुक्तमित्यादि। हे देवि मनुजानां मानवानां विचेष्टितं विरूद्धं चेष्टितं त्वया सत्यमुक्तम्। विचेष्टितमेवाह जानन्त इत्यादिना। आत्मनो हितं जानन्तोऽपि मनुजाः सद्वर्त्म साधुमार्गं नाचरिष्यन्ति नानुष्ठास्यन्ति। सद्वर्त्मानाचरणे हेतुं वदन्मनुजान् विशिनष्टि। कथंभूता मनुजाः आशु सुखप्रदैर्झटिति सुखप्रापकैरवैधस्त्रीगमनसुरापानादिभिः पापैः कर्मभिर्मत्ताः अत एव हिताहिताभ्यां बहिष्कृताः अतो नाचरिष्यन्तीति भावः। तेषां मनुजानां निःश्रेयसार्थाय मुक्तये यत् कर्तव्यं विधेयं तदुच्यते।।१२-१३।।

अनुष्ठानं निषिद्धस्य त्यागो विहितकर्मणः ।
नृणां जनयतः पापं क्लेशशोकामयप्रदम् ।।१४।।

पद्मा—निषिद्ध कर्म का अनुष्ठान तथा विहित कर्म का त्याग इन दोनों से ही मनुष्य को पाप, क्लेश, शोक और रोग होते है।

हरि०—प्रथमतो निषिद्धकर्मानुष्ठान विहितकर्मानुष्ठानाभ्यां पापोत्पत्तिरिति ब्रूते अनुष्ठानमित्यादिना। निषिद्धस्य कर्मणोऽनुष्ठानमाचरणं विहितस्य कर्मणस्त्यागोऽनाचरणं नृणां क्लेशशोकामयप्रदं दुःखशोकव्याधिप्रदायकं पापं जनयतः उत्पादयतः।।१४।।

स्वानिष्टमात्रजननात् परानिष्टोपपादनात् ।
तदेव पापं द्विविधं जानीहि कुलनायिके ।।१५।।

पद्मा—हे कुलनायिके! यह पाप भी दो प्रकार है—पहले प्रकार का पाप वह पाप है जिससे केवल स्वयं का अनिष्ट होता है जैसे—सन्ध्यादि दैनिक कर्म न करना। दूसरे प्रकार का पाप वह जिससे दूसरे का अनिष्ट होता है जैसे—ब्रह्महत्यादि।

हरि०—अथ पूर्वोक्तपापस्य सहेतुकं द्वैविध्यं सम्पादयति स्वानिष्टेत्यादिना। कुलनायिके हे कुलेश्वरि स्वानिष्टमात्रजननात् आत्मन एवानीप्सितस्योत्पादनात् तथा परानिष्टोपपादनादन्यानाकांक्षितस्यापि जननात् तदेव पूर्वोक्तं पापं द्विविधं द्विप्रकारकं जानीहिं प्रतीहि।।१५।।

परानिष्टकरात् पापात् मुच्यते राजशासनात् ।
अन्यस्मान्मुच्यते मर्त्यः प्रायश्चित्या समाधिना ।।१६।।

पद्या—जिस पाप के द्वारा दूसरे का अनिष्ट होता है, राजदण्ड के द्वारा उससे मुक्ति प्राप्त हो जाती है। प्रायश्चित तथा समाधि के द्वारा स्वयं के प्रति किये गये पाप से मुक्ति प्राप्त होती है।

हरि०—एवं द्विविधपापोत्पत्तिं प्रदर्श्येदानीं तस्माद्विमुक्तेरुपायं वदति परानिष्टेत्यादिना। परानिष्टकरादन्यस्याप्यनाकांक्षितोत्पादकात् पापात् राजशासनात् राजदण्डात् मर्त्यो जनो मुच्यते मुक्तो भवति। कर्मकर्त्तरि लट्। अन्यस्मात् स्वानिष्टमात्रजनकात् तु पापात् प्रायश्चित्या प्रायश्चितेन समाधिना चित्तवृत्तिनिरोधेन च मुच्यते॥१६॥

प्रायश्चित्त्याऽथवा दण्डैर्न पूता ये कृतांहसः।
नरकान्न निवर्तन्ते इहामुत्र विगर्हिताः॥१७॥

पद्या—जो पापी राजदण्ड अथवा प्रायश्चित्त से पवित्र नहीं होते, वे इस लोक तथा परलोक में निन्दित होकर चिरकाल तक नरक में रहते हैं।

हरि०—जातद्विविधपापानां प्रायश्चित्तदण्डाभ्यां पूतत्वाभावे सर्वदा नरकस्थायित्वं दर्शयितुमाह प्रायश्चित्त्येति। ये कृतांहसः कृतपापा जनाः प्रायश्चित्या दण्डैर्वापूताः पवित्रा न बभूवुः इह लोके परलोके च विगर्हिता विनिन्दिताः सन्तस्तेनरकान्न निवर्तन्ते तत्रैव तिष्ठन्तीत्यर्थः॥१७॥

तत्रादौ कथयाम्याद्ये नृपशासननिर्णयम्।
यल्लङ्घनान्महेशानि राजा यात्यधमां गतिम्॥१८॥

पद्या—हे आद्ये! हे महेशानि। सर्वप्रथम राजशासन का निर्णय कहता हूँ। यदि राजा इसका लङ्घन करता है तो राजा अधम गति को प्राप्त होता है।

हरि०—अथ राजशासननिर्णयं वदंस्तमुल्लङ्घयतो भूपतेर्नरकगामित्वाह तत्रादावित्यादिना। हे आद्ये हे महेशानि तत्र प्रायश्चित्तनृपशासनयोर्मध्ये आदौ प्रथमतो नृपशासननिर्णयं कथयामि। यस्य लङ्घनात् राजाऽधमां गतिं याति॥१८॥

भृत्यान् पुत्रानुदासीनान् प्रियानपि तथाऽप्रियान्।
शासने च तथा न्याये समदृष्ट्याऽवलोकयेत्॥१९॥

पद्या—शासन के समय, दण्ड देने के समय, विचार के समय, सेवको को पुत्रों को, प्रियजनों को, उदासीन जनों को तथा प्रिय अप्रिय को समान दृष्टि से देखे।

हरि०—नृपशासननिर्णयमेवाह भृत्यानित्यादिना। भृत्यान् भर्त्तव्यानमात्यादीन् पुत्रानात्मजान् उदासीनान् शत्रुमित्रभिन्नान् प्रियान् हितान् तथा अप्रियान् अहितांश्च शासने तथा न्याये च राजा समदृष्ट्या तुल्यदृष्ट्याऽवलोकयेत पश्येत्॥१९॥

स्वयं चेत् कृतपापः स्यात् पीडयेदकृतांहसः।
उपवासैश्च दानैस्तान् परितोष्य विशुध्यति॥२०॥

पद्या—राजा यदि स्वयं पाप कर्म करता है तो वह उपवास और दान के द्वारा अपने

को शुद्ध करे। यदि निर्दोष व्यक्तियो को दण्ड देता है तो वह उन निरपराधी मनुष्यों को दान से सन्तुष्ट कर शुद्ध हो सकता है।

हरि०—नन्वकृतकिल्विषान् पुरुषान् दण्डयतः स्वयं कृतकल्मषस्य नृपस्य कथं शुद्धिस्तत्राह स्वयं चेदित्यादिना। चेद्यदि राजा स्वयं कृतपापः स्यात् तदा उपवासैर्दानैश्च विशुध्यति। चेद्यदि अकृतांहसोऽकृतपापान् अन्यान् पीडयेद्दण्डयेत् तदा दानैस्तानकृतांहसः परितोष्य उपवासैर्दानैश्च विशुध्यति। अत्र पापतारतम्यादुपवासदानयोस्तारतम्यं बोद्धव्यम्॥२०॥

वधार्हं मन्यमानः स्वं कृतपापो नराधिपः ।
त्यक्त्वा राज्यं वनं प्राप्य तपसाऽऽत्मानमुद्धरेत् ॥२१॥

पद्मा—यदि राजा ने ऐसा पाप किया हो, जिसमें कि वह स्वयं मृत्युदण्ड का पात्र हो तो उसे राज्य त्याग कर वन में जाकर तप द्वारा स्वयं का उद्धार करना चाहिए।

हरि०—अथात्मानं वधार्हं मन्यमानस्य कृतदुष्कृतस्य भूपते, प्रायश्चित्तमाह वधार्हमित्यादिना। स्वमात्मानं वधार्हं वधयोग्यं मन्यमानः कृतपापो नराधिपो राज्यं त्यक्त्वा वनं प्राप्य तपसाऽऽत्मानमुद्धरेत् शोधयेत्॥२१॥

गुरुदण्डं नैव राजा विदध्याल्लघुपापिषु ।
न लघुं गुरुपापेषु विनाहेतुं विपर्यये ॥२२॥

पद्मा—राजा बिना विशेष कारण के बड़े पाप के लिये छोटा तथा छोटे पाप के लिये बड़ा दण्ड न दे।

हरि०—अथ दण्डवैपरीत्ये हेतावसति लघुपापे गुरुदण्डं गुरुपापे च लघुदण्डं निषेधति गुर्वित्यादिना। विपर्यये दण्डवैपरीत्ये हेतुं बिना लघुपापिषु जनेषु गुरुदण्डं राजा नैव विदध्यान्न कुर्यात्। गुरुपापेषु जनेषु लघुदण्डं न विदध्यात्॥२२॥

तस्मिन् यच्छासने शास्या अनेकोन्मार्गवर्त्तिनः ।
पापेभ्यो निर्भये शस्तो लघुपापे गुरुर्दमः ॥२३॥

पद्मा—जिस राजा को बहुसंख्यक कुमार्गी मनुष्यों पर शासन करना पड़े, उसे पाप से न डरने वाले मनुष्य के छोटे पाप के लिये बड़ा दण्ड देना भी उचित है।

हरि०—विना हेतुं विपर्यये इत्यनेन वैपरीत्ये कारणसत्त्वे विपरीतदण्डं विदध्यादेवेति ध्वनितमतो हेतुदर्शनपूर्वकं विपरीतदण्डं विदधाति तस्मिन्नित्यादिना श्लोकद्वयेन। यच्छासने यस्योन्मार्गवर्तिनो जनस्य शासनेऽनेकोन्मार्गवर्तिनो बहवोऽसद्धर्मसु वर्तमाना जनाः शास्या भवन्ति तस्मिन् पापेभ्यो बहुभ्योऽपि दुरितेभ्यो निर्भये भयहीनेऽपि जने लघुपापेऽपि गुरुर्दमः शस्तः॥२३॥

सकृत्कृतापराधेन सत्रपे बहुमानिनि ।
पापाद्भीरौ प्रशस्तः स्याद् गुरुपापे लघुर्दमः ॥२४॥

पद्मा—जिस मनुष्य ने केवल एक बार अपराध किया हो, लज्जायुक्त एवं मानी हो,

पापकर्म से डरता हो, उसने यदि बड़ा अपराध भी किया हो तो उसे लघुदण्ड देना चाहिए।

हरि०—कृदिति सकृत्कृतापराधेन सत्रपे सलज्जे बहुमानिनि सबहुमाने पापादेकस्मादपि भीरौ भयशीले जने गुरुपापेऽपि लघुर्दमः प्रशस्तः ।।२४।।

स्वल्पापराधी कौलश्चेत् ब्राह्मणो लघुपापकृत् ।
बहुमान्योऽपि दण्ड्यः स्याद्वचोभिरवनीभृता ।।२५।।

पद्मा—यदि बहुमान्य कौल व्यक्ति लघु अपराध का अपराधी हो या उसी प्रकार का ब्राह्मण अपराधी हो तो राजा उन्हें वचन से दण्ड दे।

हरि०—अथ कृताल्पापराधयोर्बहुमान्ययोरपि कौलब्राह्मणयोर्दण्डमाह स्वल्पापराधीत्यादिना। बहुमान्योऽपि कौलः स्वल्पापराधी चेत् स्यात् तादृग् ब्राह्मणोऽपि लघुपापकृच्चेत्तदाऽवनीभृता राज्ञा वचोभिर्दण्ड्यः स्यात्।।२५।।

न्यायं दण्डं प्रसादं च विचार्य सचिवैः सह ।
यो न कुर्यान्महीपालः स पातकी भवेत् ।।२६।।

पद्मा—जो राजा अपने मंत्रियों के साथ विचार कर न्याय, दण्ड एवं पुरस्कार का निर्णय नहीं करता, वह पातकी होता है।

हरि०—अथ सहामात्यैर्विचारमकृत्वैव दण्डादिकं विदधतो महीपालस्य महापातकित्वमाह न्यायमित्यादिना। सचिवैर्मन्त्रिभिः सह विचार्य न्यायं दण्डं च यो महीपालो न कुर्यात् स महापातकी भवेत्।।२६।।

न त्यजेत् पितरौ पुत्रो न त्यजेयुर्नृपं प्रजाः ।
न त्यजेत् स्वामिनं भार्या विना तानतिपापिनः ।।२७।।

पद्मा—माता पिता का त्याग पुत्र न करे, प्रजा राजा का त्याग न करे, विनययुक्त पत्नी अपने पति का त्याग न करे। यह सभी अतिपापी हों तभी इनका त्याग करना चाहिए।

हरि०—अथ स्त्रीपुत्रप्रजानां धर्ममाह न त्यजेतित्यादिना। पुत्रः पितरौ मातापितरौ न त्यजेत्। प्रजाः नृपं राजानं न त्यजेयुः। भार्या स्वामिनं पतिं न त्यजेत्। नन्वतिपातकिनोऽपि पित्रादयो न हातव्यास्तत्राह विनेति। अतिपापिनस्तान् पित्रादीन्विना अति पातकिनस्ते त्याज्या एवेत्यर्थः।।२७।।

राज्यं धनं जीवनं च धार्मिकस्य महीपतेः ।
संरक्षेयुः प्रजा यत्नैरन्यथा यान्त्यधोगतिम् ।।२८।।

पद्मा—प्रजा धार्मिक राजा के राज्य, धन और जीवन की प्रयत्नपूर्वक रक्षा करे, अन्यथा उन्हें अधोगति प्राप्त होती है।

हरि०—धार्मिकभूपते राज्यादिकमरक्षन्तीनां प्रजानां दोषमाह राज्यमित्यादिना। धार्मिकस्य महीपते राज्यं धनं जीवनं च प्रजा यत्नैः संरक्षेयुः। अन्यथा राज्यादिकमरक्षन्त्यस्ता अधोगतिं यान्ति।।२८।।

मातरं भगिनीञ्चापि तथा दुहितरं शिवे: ।
गन्तारौ ज्ञानतो ये च महागुरुनिघातका: ।।२९।।
कुलधर्मं समाश्रित्य पुनस्त्यक्तकुलक्रिया: ।
विश्वासघातिनो लोका अतिपातकिन: स्मृता: ।।३०।।

पद्या—हे शिवे! जो मनुष्य जान बूझकर माता, बहन व पुत्री के साथ सम्भोग कर्म करते है अथवा माता आदि की हत्या जैसा बहुत बड़ा पाप करते है अथवा कुलधर्म ग्रहण कर पुन: कुलकर्मों का अनुष्ठान त्याग देते है, जो लोगों से विश्वासघात करते हैं वे अतिपापी हैं।

हरि०—पित्रादयोऽतिपातकिश्चेत्त्याज्या इत्युक्तं ते च के इत्याकाङ्क्षायामतिपातकिनो निरुपयति मातरमित्यादिना श्लोकद्वयेन। हे शिवे मातरं जननीं भगिनीं स्वसारं तथा दुहितरं पुत्रीं चापि ज्ञानतो ये गन्तारो भवन्ति तथा ज्ञानतो महागुरुणां मात्रादीनां निघातका: हन्तारो ये कुलधर्मं समाश्रित्य पुनस्त्यक्तकुलक्रिया ये। ये च विश्वासघातिनो लोका: तेऽतिपातकिन: स्मृता: ॥२९-३०॥

मातरं भगिनीं कन्यां गच्छतो निधनं दम: ।
तासामपि सकामानां तदेव विहितं शिवे: ।।३१।।

पद्या—माता, बहन या पुत्री के साथ सम्भोग करने वाले को मृत्युदण्ड का विधान है। इस कार्य में इच्छा रखने वाली, माता, बहन तथा पुत्री के लिये भी यही दण्ड है।

हरि०—अथ मात्रादिगामिन: पुरुषस्य सकामानां तासां च दण्डमाह मातरमिति। हे शिवे मातरं जनयित्रीं तथा भगिनी तथा कन्या पुत्रीं च गच्छत: पुंसो निधनं मरणमेव दमो दण्ड:। सकामानां तासामपि तदेव मरणमेव दमनं विहितम्॥३१॥

मातापितृस्वसुस्तल्पं स्नुषां श्वश्रूं गुरुस्त्रियम् ।
पितामहस्य वनितां तथा मातामहस्य च ।।३२।।
पित्रोर्भ्रातु: सुतां जायां भ्रातु: पत्नीं सुतामपि ।
भागिनेयीं प्रभो: पत्नीं तनयाञ्च कुमारिकाम् ।।३३।।
गच्छन्तां पापिनां लिङ्गच्छेदो दण्डो विधीयते ।
आसामपि सकामानां दमो नासानिकृन्तनम् ।
गृहान्निर्यापणं चैव पापादस्माद्विमुक्तये ।।३४।।

पद्या—जो पुरुष विमाता, बुआ, पुत्रवधू, सास, गुरु की पत्नी, दादी, नानी, चाचा की पुत्री, ममेरी बहन, चाची, मामी, भाभी, भतीजी, भाँजे की पत्नी, स्वामी की पत्नी, पुत्री तथा कुमारी के साथ सम्भोग करे, उस पापी का लिंग कटवा दे। इस सम्भोग में इच्छा रखने वाली स्त्रियों के पापमुक्ति के लिये नाक काटकर घर से बाहर निकाल दें।

हरि०—अथ मातृस्वस्रादिगामिनां पुंसां तासामपि सकामानां दण्डमाह माता पित्रित्यादिना

पापादस्माद्विमुक्तय इत्यन्तेन सार्धत्रयेण। माता पित्रोः स्वसुस्तल्पं शय्यां मैथुनेच्छया गच्छतां तथा स्नुषां पुत्रवधूं तथा श्वश्रूं श्वशुरपत्नीं तथा गुरुस्त्रियां तथा पितामहस्य मातामहस्य च वनितां स्त्रियं तथा पित्रोर्भ्रातुः सुतां मातुलपितृव्य यो पुत्रीम् तयोरेव जायां भार्यां च तथा भ्रातुः पत्नीं तस्यैव सुतामपि तथा भागिनेयीं स्वसृतनयाम् तथा प्रभोः पत्नीं तस्यैव तनयां पुत्रीं च तथा कुमारिकामविवाहितां स्त्रियं गच्छतां पापिनां लिङ्गच्छेदः शिश्नकर्तनं दण्डो विधीयते। सकामानामासामप्यस्मात् पापात् विमुक्तये नासानिकृन्तनं नासिकाच्छेदनं गृहान्निर्यापणं च दमो दण्डो विधीयते॥३२-३४॥

सपिण्डदारतनयाः स्त्रियं विश्वासिनामपि ।
सर्वस्वहरणं केशवपनं गच्छतो दमः ।।३५।।

पद्मा—सपिण्ड की पत्नी, पुत्री तथा विश्वासी व्यक्ति की पत्नी से सम्भोग करने वाले का राजा सभी कुछ हर ले तथा सिर मुँडाकर छोड़ दे।

हरि०—अथ सपिण्डपत्नीतनयागामिनो विश्वसितस्त्रीगामिनश्च दण्डमाह सपिण्डेत्यादिना। सपिण्डानां दारांस्तनयाश्च विश्वासिनामपि स्त्रियं गच्छतो जनस्य सर्वस्वहरणं सर्वधनदानं केशवपनं केशमुण्डनं च दमो भवेत्॥३५॥

स्त्रीभिरेताभिरज्ञानाद् भवेत् परिणयो यदि ।
ब्राह्मेण वापि शैवेन ज्ञात्वा तास्तत्क्षणं त्यजेत् ।।३६।।

पद्मा—यदि अज्ञानवश पहले कही गयी स्त्रियों से ब्राह्म या शैवविवाह हुआ हो तो उपरोक्त सम्बन्धों का ज्ञान होते ही उस स्त्री को त्याग दे।

हरि०—अथाज्ञानतो वेदोक्तशिवोक्तविधिभ्यां सपिण्डादितनयादिभिर्जातविवाहरूप यद्विधयं तदाह स्त्रीभिरित्यादिना। एताभिः सपिण्डादितनयादिभि स्त्रीभिर्ब्राह्मेण वेदोक्तविधिना शैवेन शिवोक्तविधिना वा यद्यज्ञानात् परिणयो विवाहो भवेत् तदा ज्ञात्वा ताः स्त्रीस्तत्क्षणमेव त्यजेत्॥३६॥

सवर्णदारान् यो गच्छेत् अनुलोमपरस्त्रियम् ।
दमस्तस्य धनादानं मासैकं कणभोजनम् ।।३७।।

पद्मा—जो मनुष्य सजातीय पराई स्त्री के साथ सम्भोग करे या अपने से नीच जाति (चाण्डालादि से भिन्न) के पराई स्त्री से मैथुन करे, राजा उसे पर्याप्त अर्थदण्ड और एक महीने तक कणभोजन का दण्ड दे।

हरि०—ननु सवर्णदारान् सवर्णान्तरवर्णदारांश्च गच्छतः कथं विशुद्धिस्तत्राह सवर्णेत्यादिना। यः पुमान् सवर्णदारान् गच्छेत् तथाऽनुलोमपरस्त्रियं च यो गच्छेत्। यथा ब्राह्मणः क्षत्रियां क्षत्रियो वैश्यामेवम्। तस्य धनादानं मासैकं कणभोजनं च दमो ज्ञेयः॥३७॥

राजन्यवैश्यशूद्राणां सामान्यानां वरानने !
ब्राह्मणीं गच्छतां ज्ञानाल्लिङ्गच्छेदो दमः स्मृतः।।३८।।

पद्मा—हे वरानने! जानबूझकर ब्राह्मणी के साथ सम्भोग करने वाले क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र

अथवा सामान्य जाति के व्यक्ति का लिंग काट देना चाहिए, ऐसा कहा गया है।

हरि०—अथ ज्ञानपूर्वकब्राह्मणीगमने क्षत्रियादीनं सकामायास्तस्याश्च दण्डमाह राजन्ये त्यादिना। वराननने श्रेष्ठवदने ज्ञानाद्ब्राह्मणी गच्छतां राजन्यवैश्य शूद्राणां सामान्यानामन्त्यजानां च लिङ्गच्छेदो दमो दण्ड: स्मृत:॥३८॥

ब्राह्मणीं विकृतां कृत्वा देशान्निर्यापयेन्नृप: ।
वीरस्त्रीगामिनां तासामेव मेव दमो विधि: ।।३९।।

पद्या—इस सम्भोग कर्म में इच्छा रखने वाली ब्राह्मणी को राजा विकृत कर देश से निष्कासित कर दे। वीर स्त्री के साथ सम्भोग करने वाले को पुरुष तथा उस वीराचारी के लिए भी उपरोक्त दण्ड का विधान है।

हरि०—सकामां ब्राह्मणीमपि विकृतां एकाङ्गहीनां कृत्वा नृपो देशान्निर्यापयेन्नि:सारयेत्। अथ वीरस्त्रियो गच्छतां तासां च दण्डमाह वीरेति। वीरस्त्रिगामिनां सकामानां तासां चैवमेव पूर्ववदेव दमो विधिर्विधातव्य इत्यर्थ:। विधिरिति वि-पूर्वकाद्धाञ: उपसर्गे धो: किरिति कर्मणि कि:॥३९॥

दुरात्मा यस्तु रमते प्रतिलोमपरस्त्रिया ।
दण्डस्तस्य धनादानं त्रिमासं कणभोजनम् ।।४०।।

पद्या—जो दुरात्मा उच्चजातीय पराई स्त्री के साथ सम्भोग करे, उसका सभी कुछ हरण कर उसे तीन महीने तक कण भोजन दे।

हरि०—अथ सवर्णोत्तमवर्णस्त्रीगामिनां पुंसां तस्याश्च सकामाया दण्डमाह दुरात्मेत्यादिना। यो दुरात्मा दुष्टचित्तो दुर्बुद्धिर्दुस्वभावो वा प्रतिलोमपरस्त्रिया सह रमते। यथा शूद्रो वैश्ययेत्यवेम्। तस्य पुंसो धनादानं त्रिमासं कणभोजनं च दण्डो भवति॥४०॥

सकामाया: स्त्रियाश्चापि दण्डस्तद्वद्विधीयते ।
बलात्कारगता भार्या त्याज्या पाल्या भवेत् शिवे ।।४१।।

पद्या—हे शिवे! इस सम्भोग कर्म की इच्छा करने वाली सभी स्त्रियों के लिए भी इसी प्रकार का दण्डविधान है। यदि पत्नी पर अन्य पुरुष बलात्कार करे तो पति उस पत्नी का त्याग करे, किन्तु उसका भरणपोषण उसे करना होगा।

हरि०—सकामाया: स्त्रियाश्च तद्वत् पूर्ववदण्डो विधीयते। अथ बलात्कारेण परपुरुषरमिताया अबलायास्त्याग: पालनं च पुंसा विधेयमित्याह बलादित्यादिना। हे शिवे! बलात्कारेण परपुंसा गता या भार्या सा त्याज्या ग्रासादिभि: स पाल्या च भवेत्॥४१॥

ब्राह्मी भार्याऽथवा शैवी कामतो वाप्यकामत: ।
सर्वथा हि परित्याज्या स्याच्चेत् परगता सकृत् ।।४२।।

पद्या—ब्राह्मी अथवा शैवी पत्नी यदि इच्छा अथवा अनिच्छा से एक बार पराये पुरुष से सम्भोग कर ले, तो उसका त्याग कर देना ही उचित है।

हरि०–अथ कामाकामाभ्यां परगतयोर्ब्राह्मीशैव्योर्भार्ययोस्त्याग एवोचित इत्याह ब्राह्मीत्यादिना। ब्राह्मी वेदोक्तविधिना परिणीता अथवा शैवी शिवोक्तविधानेन परिणीता भार्या सकृदेकवारमपि परगता चेत्तदा सर्वथा सर्वप्रकारेण परित्याज्या स्यात्॥४२॥

गच्छतां वारनारीषु गवादिपशुयोनिषु ।
शुद्धिर्भवति देवेशि! त्रिरात्रं कणभोजनात् ।।४३।।

पद्मा–हे देवेशि! वाराङ्गना (वेश्या) तथा गाय आदि पशु योनि में मैथुन करने वाले की शुद्धि तीन रात्रि में कणभोजन करने से होती है।

हरि०–अथ वेश्यागामिनां पशुयोनिगामिनां च प्रायश्चित्तमाह गच्छतामित्यादिना। हे देवेशि वारनारीषु वेश्यासु तथा गवादिपशुयोनिषु गच्छतां जनानां त्रिरात्रं कणभोजनाच्छुद्धिर्भवति॥४३॥

गच्छतां कामतः पुंसः स्त्रियाः पायुं दुरात्मनाम् ।
वध एव विधातव्यो भूभृता शम्भुशासनात् ।।४४।।

पद्मा–जो दुरात्मा स्त्रियों की गुदा में अपना लिंग प्रवेश करा कर अप्राकृतिक मैथुन करते है राजा का कर्तव्य है कि उन्हें मृत्युदण्ड दे। ऐसा भगवान् शिव ने कहा है।

हरि०–अथ स्त्रीपुंसयोः पायुं गच्छतां प्रायश्चित्तमाह गच्छतामित्यादिना। पुंसः पुरुषस्य स्त्रियाश्च पायुं गुदं कामतो गच्छतां दुरात्मनां भूभृता राजा शम्भुशासनाद्वध एव विधातव्यः॥४४॥

बलात्कारेण यो गच्छेदपि चाण्डालयोषितम् ।
वधस्तस्य विधातव्यो न सन्तव्यः कदापि सः ।।४५।।

पद्मा–यदि कोई मनुष्य चाण्डालकन्या के साथ बलात्कार करे, तो उसे भी मृत्युदण्ड दे। यह समझकर कि चाण्डाल कन्या से बलात्कार किया है, क्षमा नहीं करना चाहिए।

हरि०–बलात्कारेण परस्त्रीगामिनामपि वध एव दण्ड इत्याह बलादित्यादिना। बलात्कारेण चाण्डालयोषितमपि यो गच्छेत्तस्यापि वधो विधातव्यः। कदापि स न क्षन्तव्यः। अपि शब्देन ब्राह्मण्यादिगामिनां तु सुतरामेव वधो विधातव्य इति ध्वनितम्॥४५॥

परिणीतास्तु या नार्यो ब्राह्मैर्वा शैववर्त्मभिः ।
ता एव दारा विज्ञेया अन्याः सर्वाः परस्त्रियाः ।।४६।।

पद्मा–जो नारी ब्राह्म अथवा शैवविवाह से ग्रहण की गयी है, उसी को पत्नी जानना चाहिए, अन्य सभी स्त्रियाँ परस्त्री हैं।

हरि०–अथोक्तवक्ष्यमाणेषु तत्तच्छ्लोकेष्वाकाङ्क्षितत्वात् स्वस्त्रीः परस्त्रीश्च निरूपयति परिणीता इत्यादिना। ब्राह्मैर्वेदोक्तवर्त्मभिः शिवोक्तवर्त्मभिर्वा यास्तु नार्यः परिणीता उद्वाहितास्ता एव दाराः स्वस्त्रियो विज्ञेया अन्यास्तद्भिन्नाः सर्वाः परस्त्रियो विज्ञेयाः॥४६॥

कामात् परस्त्रियं पश्यन् रहः सम्भाषयन् स्पृशन् ।
परिष्वज्योपवासेन विशुध्येद् द्विगुणक्रमात् ।।४७।।

पद्मा—जो मनुष्य कामुक होकर पराई स्त्री का दर्शन करे, वह एक दिन उपवास करके शुद्ध होता है। जो मनुष्य कामुक होकर परस्त्री से एकान्त में बातें करता है, वह दो दिन उपवास करके शुद्ध होता है। जो कामुक होकर परस्त्री का स्पर्श करता है वह चार दिन में उपवास करके शुद्ध होता है। जो परस्त्री का आलिङ्गन करता है वह आठ दिन उपवास कर शुद्ध हो जाता है।

हरि०—अथ कामतः परस्त्रीदर्शनादिकं कुर्वतः प्रायश्चित्तमाह कामादित्यादिना। कामात् पर स्त्रिय पश्यन् तथा रह एकान्ते सम्भावयन् तया सहाऽऽलापं कुर्वन् तथा स्पृशंश्च परिष्वज्य तामालिङ्गय च द्विगुणक्रमादुपवासेन जनो विशुध्येत्। यथा कामतः परस्त्रीदर्शने एकोपवासेन सम्भाषणे उपवासद्वयेन स्पर्शने उपवास चतुष्टये आलिङ्गने अष्टभिस्तैः शुद्धि॥४७॥

कुर्वत्येवं सकामा या परपुंसा कुलाङ्गना।
उक्तोपवासविधिना स्वात्मानं परिशोधयेत्॥४८॥

पद्मा—जो कुलाङ्गना कामयुक्त होकर परपुरुष का दर्शन, वार्तालाप, स्पर्श, आलिंगन करे वह भी क्रम से एक दिन, दो दिन, चार दिन तथा आठ दिन उपवास करके शुद्ध हो जाती है।

हरि०—अथ सह परपुंसा सम्भाषणादिकं कुर्वत्याः सकामायाः स्त्रिया अपि तदेव प्रायश्चित्तमित्याह कुर्वतीत्यादिना। या कुलाङ्गना कुलपालिका स्त्री सकामा सती परपुंसा सह एवं सम्भाणणादिकं कुर्वती बभूव सा पूर्वोक्तोपवासविधिना आत्मानं परिशोधयेत्॥४८॥

ब्रुवन्निन्द्यं वचः स्त्रीषु पश्यन् गुह्यं परस्त्रियाः।
हसन् गुरुतरं मर्त्य, शुध्येद् द्विरुपवासतः॥४९॥

पद्मा—स्त्रियों को अश्लील बात कहने, उनके गुप्तांग (स्तन, योनि आदि) देखने, तथा उनको देखकर जोर से हँसने पर दो दिन उपवास करने पर शुद्धि होती है।

हरि०—ननु स्त्रीणु दुर्वचो वदतः परस्त्रीगुह्यं पश्यतो गुरुतरान् हसतश्च कथं शुद्धिस्तत्राह ब्रुवन्नित्यादिना। स्त्रीषु निन्द्यमव्यक्तं वचो ब्रुवन् तथा परस्त्रिया गुह्यं गोप्यप्रदेशं पश्यन् तया गुरुतरं हसन्मर्त्यो द्विरुपवासतः शुध्येत्॥४९॥

दर्शयन्नग्नमात्मानं कुर्वन्नग्नं तथा परम्।
त्रिरात्रमशनं त्यक्त्वा शुद्धो भवति मानवः॥५०॥

पद्मा—जो मनुष्य स्वयं को किसी से नंगा दिखाता है अथवा किसी को नंगा करता है, वह तीन दिन तक उपवास करके शुद्ध होता है।

हरि०—नन्वात्मानं नग्नं दर्शयतः परञ्च तादृशं कुर्वतः कथं शुद्धिस्तत्राह दर्शयन्नित्यादिना। आत्मानं नग्नं दर्शयन् तथा परं नग्नं कुर्वन्मानवो द्विरात्रमशनं भोजनं त्यक्त्वा शुद्धो भवति। "आत्मा देहमनोब्रह्मस्वभावधृतिबुद्धिध्वि" ति कोषः॥५०॥

पत्न्याः पराभिगमनं प्रमाणयति चेत्पतिः ।
नृपस्तदा तां तज्जारं शास्यात् शास्त्रानुसारतः ।।५१।।

पद्मा— यदि पति अपनी पत्नी के परपुरुष से सम्भोग को प्रमाणित कर दे, तो राजा उस चरित्रहीन स्त्री और उसके जार (उपपति) को शास्त्र के अनुसार दण्ड दे।

हरि०—अथ स्वपतिप्रमाणितान्यपुरुषगमनायाः स्त्रियाः तज्जारस्य च दण्डमाह पत्न्या इत्यादिना। पतिश्चेद्यदि पत्न्याः पराभिगमनं प्रमाणयति तदा नृपस्तां तस्या जारं च शास्त्रानुसारतः पूर्वोक्तविधानतः शास्यात्।।५१।।

प्रमाणे यद्यशक्तः स्यात् दयितोपपतेः पतिः ।
त्यक्त्वा तां पोषयेद् ग्रासैस्तिष्ठेच्चेत् पतिशासने ।।५२।।

पद्मा— यदि पति-पत्नी के अन्य पुरुष के साथ सम्बन्ध को प्रमाणित करने में असमर्थ रहता है, तो भी उस स्त्री का परित्याग कर सकता है। यदि स्त्री, पति की आज्ञा माने तो पति उसका भरण-पोषण करता रहे ।

हरि०—अथोपपतिप्रमाणाशक्तपतिकायाः शङ्कितव्यभिचारायाः स्त्रियास्त्यागपोषणे विधातव्ये इत्याह प्रमाणेत्यादिना। दयितोपपतेः पत्न्या जारस्य प्रमाणे यदि पतिरशक्तः स्यात्तर्हि तां दयितां त्यक्त्वा चेद् यदि पतिशासने तिष्ठेत् भर्तुराज्ञां न लङ्घेत तदा ग्रासैः कवलैः पोषयेत्।।५२।।

रममाणामुपपतौ पश्यन् पत्नीं पतिस्तदा ।
निघ्नन् वनितया जारं वधार्हो नैव भूभृतः ।।५३।।

पद्मा— यदि पति अपनी पत्नी को जार (उपपति, परपुरुष) के साथ सम्भोग करते देख ले और उसी समय पति अपनी पत्नी सहित जार को मार डाले तो राजा उसे और कोई भी दण्ड न दे।

हरि०—ननु सहोपपतिना रममाणां पत्नीमवलोक्य सजारां तां घ्नतस्तद्भर्तुर्वधार्हत्वं स्यान्न वेति सन्दिहानां गिरिजां प्रति ब्रूते रममाणामित्यादिना। पतिर्भर्ता यदोपपतौ रममाणां पत्नीं पश्यन्नासीत्तदा वनितया सह जारं निघ्नन् पतिर्भूभृतो राज्ञो वधार्हो नैव भवेत्। तदा निघ्नन्नित्यनेनाऽन्यकाले निघ्नतो वधार्हत्वं स्यादेवेति ध्वनितम्।।५३।।

भर्तुर्निवारणं यत्र गमने येन भाषणे ।
प्रयाणाद्भाषणात्तत्र त्यागार्हा स्यात् कुलाङ्गना ।।५४।।

पद्मा— पति जहाँ पर जाने का या जिससे बात करने का निषेध करे, वहाँ यदि वह कुलाङ्गना जाये अथवा बात करे तो पति उसका त्याग कर दे ।

हरि०—अथ भर्तृनिषिद्धस्थाने गच्छन्त्यास्तन्निषिद्धमन्यपुरुषेण सह भाषणं च कुर्वत्याः स्त्रियास्त्यागार्हत्वं विदधाति भर्तुरित्यादिना। यत्र स्थाने गमने येन पुंसा सह भाषणे च भर्तुर्निवारणं जातं तत्र प्रयाणाद्भाषणाच्च कुलाङ्गनापि त्यागार्हा स्यात्।।५४।।

मृतं पत्यौ स्वधर्मेण पतिबन्धुवशे स्थिता ।
अभावे पितृबन्धूनां तिष्ठन्ती दायमर्हति ।।५५।।

पद्मा—पति की मृत्यु होने पर पति के बन्धुओं के वश में रहकर अपने धर्म का पालन करे अथवा पति के बन्धुओं के अभाव में पिता के कुल में रहकर अपने धर्म का पालन करे, तो स्त्री पति की समस्त सम्पत्ति को प्राप्त कर सकती है ।

हरि०—अथ प्रसङ्गात् पतिबान्धवादिवशे स्वधर्मेण तिष्ठन्त्या मृतपति काया दायभाक्त्वमाह मृत इत्यादिना। पत्यौ मृते सति पतिबन्धुवशे स्वधर्मेण स्थिता पतिबन्धूनामभावे पितृबन्धूनां वशे तिष्ठन्ती सती स्त्री दायमर्हति।।५५।।

द्विर्भोजनं परान्नं च मैथुनामिषभूषणाम् ।
पर्यङ्कं रक्तवासश्च विधवा परिवर्जयेत् ।।५६।।

पद्मा—विधवा दो बार भोजन, दूसरे का अन्न, मैथुन (सम्भोग), मांसाहारी भोजन, आभूषण, पलंग पर सोना तथा लाल वस्त्र पहनना छोड़ दे ।

हरि०—अनन्तर श्लोके विधवा धर्माणामाकाङ्क्षितत्वात्तान्निरूपयति द्विर्भोजन मित्यादिश्लोकद्वयेन। विधवा स्त्री द्विभोजनं परस्यान्नं मैथुनं रतिम् आमिषं मांसादिकं भूषणमलङ्कारं पर्यङ्कं खट्वां रक्तवासो रक्तं वस्त्रं च परिवर्जयेत्।।५६।।

नाङ्गमुद्वर्त्तयेद्वासैर्ग्राम्यालापमपि त्यजेत् ।
देवव्रता नयेत् कालं वैधव्यं धर्ममाश्रिता ।।५७।।

पद्मा—विधवा के धर्म को स्वीकार कर सुगन्धित द्रव्य (उबटन, तेल आदि) शरीर में न लगाये, ग्राम्य आलाप को त्याग दे, सदैव देवपूजा में लगी रह कर अपना समय व्यतीत करे ।

हरि०—नाङ्गमेति। वैधव्यं धर्ममाश्रिता विधवा वासैः पिष्टैर्घृष्टैर्वा सुगन्धिद्रव्यैः अङ्गं नोद्धर्त्तयेत् नोत्सादयेत्। वास्यते यैस्ते वासाः करणेऽच्। ग्राम्यामालापमपि त्यजेत्। ननु ग्राम्यालापाभावे कथं कालं क्षिपेत्तत्राह देवेत्यादिना। देवव्रता सती कालं नयेत् स्वेष्टनामादिकीर्त्तनादिना कालं क्षिपेदित्यर्थः।।५७।।

न विद्यते पिता यस्य शिशोर्माता पितामहः ।
नियतं पालने तस्य मातृबन्धः प्रशस्यते ।।५८।।

पद्मा—जिस शिशु के पिता, माता तथा पितामह न हों, उसके पालन के लिये माता के कुल के मातृबन्धु ही प्रशस्त है ।

हरि०—ननु मृतमातापितृपितामहस्य शिशोः पालने पितृबन्धुमातृबन्ध्वोर्मध्ये कतरस्य प्राशस्त्यमिति पृच्छन्ती देवीं प्रत्याह न विद्यते इत्यादिना। यस्य शिशोः पिता माता पितामहश्च न विद्यते तस्य पालने नियतं निश्चितं मातृबन्धुः प्रशस्यते।।५८।।

मातुर्माता पिता भ्राता मातुर्भ्रातुः सुतास्तथा ।
मातुः पितुः सोदराश्च विज्ञेयाः मातृबान्धवाः ।।५९।।

पद्मा—नानी, नाना, मामा, मामा के पुत्र तथा नाना के भाई—यह सभी मातृबन्धु हैं।

हरि०—ननु के ते मातृबन्ध्वादय इत्याह मातुरित्यादिना। मातुर्माता मातामही मातुः पिता मातामहः मातुर्भ्राता मातुलः तथा मातुर्भ्रातुः सुताः मातुलपुत्राः मातुः पितुर्मातामहस्य सोदराश्च मातृबान्धवा विज्ञेयाः॥५९॥

पितुर्माता पिता भ्राता पितुर्भ्रातुः स्वसुः सुताः ।
पितुः पितुः सोदराश्च विज्ञेयाः पितृबान्धवाः ।।६०।।

पद्मा—दादी, दादा, चाचा, चाचा का पुत्र, बुआ का पुत्र, दादा का भाई—इनको पिता बन्धु कहा जाता है।

हरि०—अथ पितृबान्धवानाह पितुरित्यादिना। पितुर्माता पितामही पितुः पिता पितामहः पितुर्भ्राता पितृव्यः पितुर्भ्रातुः सोदराश्च सुताः पितुः स्वसुर्भगिन्याश्च सुताः पितुः पितुः पितामहस्य सोदराश्च पितृषान्धवा विज्ञेयाः॥६०॥

पत्युर्माता पिता भ्राता पत्युर्भ्रातुः स्वसुः सुताः।
पत्युः पितुः सोदराश्च विज्ञेयाः पतिबान्धवाः।।६१।।

पद्मा—सास, ससुर, देवर, देवर का पुत्र, पति की बहन के पुत्र, ससुर के भाई—ये सब पतिबान्धव हैं।

हरि०—अथ पतिबान्धवानाह पत्युरित्यादिना। पत्युर्माता श्वश्रूः पत्युः पिता श्वशुरः पत्युर्भ्राता सोदर, पत्युर्भ्रातुः सुताः पुत्राः पत्युः स्वसुर्भगिन्याश्च सुताः पत्युः पितुः श्वशुरस्य सोदराश्च पतिबान्धवा विज्ञेयाः॥६१॥

पित्रे मात्रे पितुः पित्रे पितामह्यै तथा स्त्रियै ।
अयोग्यसूनवे पुत्रहीनमातामहाय च ।।६२।।
मातामह्यै दरिद्रेभ्य एभ्यो वासस्तथाऽशनम् ।
दापयेन्नृपतिः पुंसा यथाविभवमम्बिके ।।६३।।

पद्मा—हे अम्बके ! पिता, माता, बाबा, दादी, पत्नी, अयोग्य पुत्र, पुत्रहीन, नाना, नानी—इन सभी के दरिद्र होने पर राजा यथाशक्ति इन्हे अन्न तथा वस्त्र प्रदान करे।

हरि०—अथ दरिद्रेभ्यः पित्रादिभ्यो भोजनादिकं पुरुषेण नरपतिर्दापयेदित्याह पित्रे इत्यादिद्वयेन। हे अम्बिके जगज्जननि पित्रे तथा मात्रे तथा पितुः पित्रे पितामहाय पितामह्यै च तथा अयोग्यसूनवे अयोग्यपुत्रायै स्त्रियै पुत्रहीनमातामहाय च तादृश्यै मातामह्यै च दरिद्रेभ्य एभ्यः पित्रादिभ्यो यथाविभवं विभवमनतिक्रम्य वासो वस्त्रं तथाऽशनं भोज्यं नृपतिः पुंसादापयेत् ॥६२-६३॥

दुर्वाच्यं कथयन् पत्नीमेकाहमशनं त्यजेत् ।
त्र्यहं सन्ताड्यन् रक्तं पातयन् सप्तवासरान् ।।६४।।

पद्या—यदि पति अपनी पत्नी को दुर्वचन कहे, तो एक दिन उपवास करे। यदि पत्नी को पीटे, तो उसे तीन रात्रि तक उपवास करे। यदि पीटने से पत्नी का रक्त गिरे, तो सात दिन तक उपवास कर शुद्ध हो ।

हरि०—अथ पत्न्यै दुर्वाच्यं कथयतस्तां ताडयतस्तस्या रक्तं च पातयत: क्रमत: प्रायश्चित्तमाह दुर्वाच्यमित्यादिना। पत्नीं प्रति दुर्वाच्यमवक्तव्यं वच: कथयन् जन एकाहमशनं भोजनं त्यजेत् तां सन्ताडयंस्त्र्यहमशनं त्यजेत्। तस्या रक्तं पातयन् सप्त वासरानशनं त्यजेत्।।६४।।

क्रोधाद्वा मोहतो भार्यां मातरं भगिनीं सुताम् ।
वदन्नुपोष्य सप्ताहं विशुध्येच्छिवशासनात् ।।६५।।

पद्या—यदि क्रोधवश पत्नी को माता, बहन या पुत्री कहे, तो सात रात्रि तक उपवास करने से उसकी शुद्धि होती है, ऐसा भगवान शिव ने कहा है ।

हरि०—अथ क्रोधादित: स्वभार्यायां मातृत्वादि वदत: प्रायश्चित्तमाह क्रोधादित्यादिना। क्रोधादमर्षान्मोहतोऽविवेकाद्वा भार्यां मातरं भगिनीं सुतां पुत्रीं वा वदन् पुमान् शिवशासनात् सप्ताहमुपोष्य विशुध्येत् ।।६५।।

शण्ढेनोद्वाहितां कन्यां कालातीतेऽपि पार्थिव: ।
जानन्नुद्वाहयेत् भूयो विधिरेष: शिवोदित: ।।६६।।

पद्या—यदि कन्या का विवाह नपुंसक पुरुष से हो और यह बात बहुत समय बीतने पर ज्ञात हो तो उस नपुंसक पुरुष से छुटकारा दिला कर राजा उसका विवाह पुन: कराये यह विधान शिव ने कहा है।

हरि०—नपुंसकपरिणीताया नार्या: पुनरुद्वाहो राज्ञा विधापयितव्य इत्याह शण्ढेनेत्यादिना। कालेऽतीतेऽपि जानन् पार्थिवो भूप: शण्ढेन नपुंसकेनोद्वाहितां कन्यां भूय: पुनरुद्वाहयेत्। ननु वेदाद्यसम्मतत्वान्नेदं मान्यं तत आह विधिरिति। एष: शिवोदित: शिवभाषितो विधि:।।६६।।

परिणीता न रमिता कन्यका विधवा भवेत् ।
साप्युद्वाह्या पुन: पित्रा शैवधर्मेष्वयं विधि: ।।६७।।

पद्या—यदि कन्या का विवाह हो गया हो और पति के साथ सम्भोग करने के पहले ही विधवा हो जाय, तो कन्या का विवाह माता-पिता को कर देना चाहिए। शैवधर्म में ऐसी ही विधि कही गयी है ।

हरि०—अथ पत्यरमिताया मृतभर्तृकाया: कन्याया: पुनरुद्वाह: पित्रा कार्य इत्याह परिणीतेत्यादिना। या परिणीता विवाहिता कन्या भर्त्रा न रमिता सती विधवा भवेत् सा परिणीतापि कन्या पित्रा पुनरुद्वाह्या भवेत्। अत्र प्रमाणं दर्शयति शैवेति। विधिरयं शैवधर्मेषु निरूपित:।।६७।।

उद्वाहाद् द्वादशे पक्षे पत्यन्तात् गतहायने ।
प्रसूते तनयं योग्यं न सा पत्नी न सः सुतः ।।६८।।

पद्या—विवाह के पश्चात् बारह पक्ष (छः महीने) में अथवा पति की मृत्यु के एक वर्ष उपरान्त जो स्त्री पुष्ट सन्तान को जन्म दे, वह उसकी पत्नी नहीं और वह पुत्र भी उसका नहीं है ।

हरि०—अथोद्वाहात् षष्ठे मासि प्रसूतपुष्टतनयाया भर्तुमरणात् वर्षे याते प्रसूततनयायाश्च स्त्रियास्तत्पत्नीत्वं बालस्य तत्सुतत्वञ्च व्यावर्त्तयति उद्वाहादित्यादिना। उद्वाहाद् द्वादशे पक्षे षष्ठे मासि योग्यं पुष्टं यं तनयं या प्रसूते उत्पादयति पत्यन्तात् गतहायने पतिमरणात् याते वर्षे यं तनयं या प्रसूते सा पत्नी न स्यात् स च सुतो न स्यात्। तां पुंश्चलीन्तं च जारजातं विदित्वा तयोस्त्यागं कुर्यादिति भावः।।६८।।

आगर्भात् पञ्चमासान्तगर्भं या स्रावयेद्धिया ।
तदुपायकृतं ताञ्च यातयेत्तीव्रताड़नैः ।।६९।।

पद्या—गर्भाधान से लेकर पाँचवें महीने के बीच में जो नारी जानबूझकर गर्भ को गिराये उस स्त्री को तथा गर्भ गिराने का उपाय करने वाले को राजा कठिन ताड़ना देकर दण्डित करे ।

हरि०—अथ गर्भाशयमारभ्य पञ्चमासाभ्यन्तर एव गर्भं स्रावयन्त्याः स्त्रियास्तदुपायकर्तुश्च दण्डमाह आगर्भादित्यादिना। आगर्भाद्गर्भमारभ्य पञ्चमासान्तः पञ्चमासाभ्यन्तरे गर्भं धिया बुद्ध्या या स्रावयेत्ताम् तदुपायकृतं गर्भस्रावोपायकर्तारं च तीव्रताड़नैर्भृशो यातयेत् पीडयेत्।।६९।।

पञ्चमात् परतो मासात् या स्त्री भ्रूणं प्रपातयेत् ।
तत्प्रयोक्तुश्च तस्याश्च पातकं स्याद्वधोद्भवम् ।।७०।।

पद्या—पाँच महीने के उपरान्त जो स्त्री अपने गर्भ को गिराये तथा जो उसका उपाय करे, वे दोनों ही हत्या करने वाले के समान पापी होती हैं ।

हरि०—अथ पञ्चमासादूर्ध्वं गर्भं स्रावयन्त्याः। स्त्रियास्तत्प्रयोक्तुश्च नृवधजन्यं पातकमाह पञ्चमित्यादिना। पञ्चमान्मासात् परतो या स्त्री भ्रूणं प्रपातयेत् तस्यास्तत्प्रयोक्तुर्जनस्य च वधोद्भवं मनुष्यवधजान्यं स्यात्।।७०।।

यो हन्ति ज्ञानतो मर्त्यं मानवः क्रूरचेष्टितः ।
वधस्तस्य विधातव्यः सर्वथा धरणीभृता ।।७१।।

पद्या—जो क्रूर मनुष्य जानबूझकर नर हत्या करे, राजा उसे अवश्य ही मृत्य दण्ड दे।

हरि०—ततश्च कथं विमुक्तिः स्यादिति पृच्छन्तीं पार्वतीं प्रत्याह य इत्यादिना। यः क्रूरचेष्टितो मानवो ज्ञानतो मर्त्यं मनुष्यं हन्ति तस्य सर्वथा सर्वप्रकारेण धरणीभृता राज्ञा वधो विधातव्यः। तत एव तस्य शुद्धिर्नान्यस्येति भावः।।७१।।

प्रमादाद् भ्रमतोऽज्ञानात् घ्नन्तन्नरमरिन्दम: ।
द्रविणादानतस्तीव्रताडनैस्तं विशोधयेत् ।।७२।।

पद्मा—प्रमाद या भ्रमवश मनुष्य की हत्या करने वाले को राजा अर्थदण्ड एवं कठिन ताड़ना द्वारा शुद्ध करे।

हरि०—अथ प्रमादादिभिर्मानव: मारयतो विशुद्धिं दर्शयति प्रमादादित्यादिना। प्रमादादनवधानतया भ्रमतोऽज्ञानाद्वायो नरं हन्ति तं हनन्तं जनमरिन्दमो विपक्षदमनकर्ता राजा द्रविणादानतो द्रव्यहरणतस्तीव्रताडनैश्च विशोधयेत्।।७२।।

स्वतो वा परतो वापि वधोपायं प्रकुर्वत: ।
अज्ञानवधिनां दण्डो विहितस्तस्य पापिन: ।।७३।।

पद्मा—जो कोई पुरुष स्वयं या अन्य के द्वारा वध का उपाये करे, उस पापी को भी वही दण्ड देना चाहिए, जो अज्ञानपूर्वक नरहत्या करने वाले को मिलता है।

हरि०—अथ स्वत: परतो वा नरवधोपायं कुर्वतो दण्डमाह स्वत इत्यादिना। स्वत: परतो वा यो वधोपायं करोति तस्य वधोपायं प्रकुर्वत: पापिन: अज्ञानवधिनामज्ञानतो नरहन्तृणां यो दण्ड: स विहित:।।७३।।

मिथ: संग्रामयोद्धारमाततायिनमागतम् ।
निहत्य परमेशानि! न पापार्हो भवेन्नर: ।।७४।।

पद्मा—हे परमेशानि! संग्राम में परस्पर लड़ते हुए एक को दूसरा मार दे अथवा अत्याचारी मनुष्य को मारने वाला पाप का भागी नहीं होता है ।

हरि०—ननु संग्रामहतयोद्धकस्य निहतागताततायिनश्च वधार्हत्वं स्यात्र वेत्याशङ्कायामाह मिथ इत्यादिना। हे परमेशानि मिथ: परस्परं संग्रामे योद्धारं निहत्य तथाऽऽगतमाततायिनं च निहत्य नर: पापार्ह: पापभाक् न भवेत्। आततायिनो यथा - अग्निदो गरदश्चैव शस्त्रपाणिर्धनापह:। क्षेत्रदारापहारी च षडेते आततायिन:।। इति।।७४।।

अङ्गच्छेदे विधातव्यं भूभृताऽङ्गनिकृन्तनम् ।
प्रहारे च प्रहरणं नृषु पापं चिकीर्षुषु ।।७५।।

पद्मा—पापी पुरुष यदि दूसरे मनुष्य का अंग काट दे तो राजा भी उसका अंग काट दे। यदि पापी पुरुष दूसरे पर प्रहार करे, तो राजा उस पर प्रहार करे।

हरि०—अथाङ्गच्छेदादिकं कुर्वतो दण्डमाह अङ्गेत्यादिना। पापं चिकीर्षुषु कर्तुमिच्छुषु नृषु भूभृता भूपेनाऽङ्गच्छेदे सत्यङ्गनिकृन्तनमङ्गच्छेदनं प्रहारे च प्रहरणं विधातव्यम्।।७५।।

विप्रान् गुरूनवगुरेत् प्रहरेद् यो दुरासद: ।
धनादानाद्धस्तदाहात् क्रमतस्तं विशोधयेत् ।।७६।।

पद्मा—जो पापी ब्राह्मण या गुरु के प्रति मारने के लिए लाठी, डण्डा आदि उठाये उसकी सम्पत्ति छीन कर राजा उसके हाथ जलाकर शुद्ध करे।

हरि०—अथ ब्राह्मणगुरुहननार्थं दण्डादिकमुद्यच्छतस्तान् प्रहरतश्च क्रमशः प्रायश्चित्तमाह विप्रानित्यादिना। यो दुरासदो दुष्टो जनो विप्रान् गुरुंश्च हन्तुमिति शेषः। अवगुरेत् दण्डादिकमुत्क्षिपेत् तान् प्रहरेद्वा तं क्रमतो धनादानात् हस्तदाहाद्राजा विशोधयेत्।।७६।।

शस्त्रादिक्षतकायस्य षण्मासात् परतो मृतौ ।
प्रहर्ता दण्डनीयः स्याद् वधार्हो न हि भूभृतः ।।७७।।

पद्मा—यदि कोई किसी को मार कर घायल कर दे और वह छः महीने में मर जाये तो घायल करने वाला दण्डनीय होता है, किन्तु मृत्युदण्ड का भागी नहीं होता है।

हरि०—अथ शस्त्रादिक्षतशरीरस्य षण्मासात् परतो मरणे सति प्रहर्तुर्दण्डनीयत्वं वधानर्हत्वं चाह शस्त्रादीत्यादिना। शस्त्रादिना क्षतः कायो यस्यतस्य पुंसः षण्मासात् परतो मृतौ सत्यां प्रहर्ता भूभृतो राज्ञो दण्डनीयः स्यात् वधार्हो नैव स्यात्।।७७।।

राष्ट्रविप्लाविनो राज्यं जिहीर्षून्नृपवैरिणाम् ।
रहो हितैषिणो भृत्यान् भेदकान्नृपसैन्ययोः ।।७८।।
योद्धमिच्छूः प्रजा राज्ञा शस्त्रिणः पान्थपीडकान् ।
हत्वा नरपतिस्त्वेतान् नैव किल्विषभाग् भवेत् ।।७९।।

पद्मा—राज्य विद्रोही, राज्य हरण का इच्छुक, गुप्तरूप से राज्य के शत्रुओं का हित चाहने वाला, राजा सहित सैन्य व्यवस्था का भेद लेने वाला, राजा से युद्ध करने का इच्छुक, शस्त्र धारण कर प्रजा तथा पथिकों को पीड़ित करने वाला—इन सभी का विनाश करने वाला राजा पाप का भागी नहीं होता है।

हरि०—अथ देशोपद्राविणः राज्यहरणेच्छून् नृपतिविपक्षाणां रहो हिताकाङ्क्षिणो नृपसैन्यभेदकभृत्यान् राज्ञा सह योद्धुमिच्छः प्रजाः पान्थपीडकशस्त्रिणश्च हन्तो महीपतेः पातकभागित्वं नेत्याह राष्ट्रेत्यादिश्लोकद्वयेन। राष्ट्रविप्लाविनो देशोपद्रावकान् राज्यं जिहीर्षून राज्यहरणेच्छून्नृपवैरिणां राज्ञः शत्रूणां रहो हितैषिणो रहसि हितकाङ्क्षिणो नृपसैन्ययोर्भेदकान् नृपस्य सैन्यस्य च भेदं कुर्वतो भृत्यान् अमात्यादीन् तथा राज्ञा सह योद्धुमिच्छूः प्रजाः तथा पान्थपीडकान् शस्त्रिणश्चैतान् हत्वा नरपतिः किल्विषभाक्नैव भवेत् ।।७८-७९।।

यो हन्यान्मानवं भर्तुराज्ञयापरिहार्यया ।
भर्तुरेव वधस्तत्र प्रहर्तुर्न शिवाज्ञया ।।८०।।

पद्मा—जो मनुष्य अपने स्वामी की अनिवार्य आज्ञा से किसी मनुष्य की हत्या करता है, तो उसके स्वामी को ही मृत्युदण्ड मिलेगा, हत्या करने वाले को नहीं।

हरि०—अथाऽपरिहार्यप्रभ्वाज्ञालङ्घनाशक्तेन भृत्येन मानुषं घातयतो भर्तुरेव वधो विधातव्यो न भृत्यस्येत्याह य इत्यादिना। भर्तुरपरिहार्ययाऽनुल्लङ्घनीययाऽऽज्ञया यो मानवं हन्यात् तस्य प्रहर्तुस्तत्र हनने न वधः किन्तु शिवाज्ञया भर्तुरेव वधो विहितः। अपरिहार्ययेत्यनेन भर्त्राज्ञालङ्घनशक्तो भृत्यो यदि मानवं हन्यात् तदा तस्यैव वध इति सूचितम्।।८०।।

अयत्नपुंसः पशुना शस्त्रैर्वा म्रियते नरः ।
धनदण्डेन वा कायदमेनाऽस्य विशोधनम् ।।८१।।

पद्मा—यदि किसी असावधान पुरुष के अस्त्र या पशु के द्वारा किसी मनुष्य की मृत्यु हो जाने पर अर्थदण्ड अथवा शरीरिक दण्ड के द्वारा उसकी शुद्धि होती है।

हरि०—नन्वनवधानस्य यस्य पुंसः शस्त्रादिभिर्मनुष्यो म्रियते तस्य विशुद्धिः कथं स्यात्तत्राह अयत्नेत्यादिना। अयत्नपुंसो यत्नहीनस्य यस्य पुरुषस्य पशुना गवाश्वादिना शस्त्रैः खड्गादिभिर्वा नरो म्रियते अस्य पुंसोधनदण्डेन कायदण्डेन वा विशोधनं भवेत्।।८१।।

बहिर्मुखान्नृपाज्ञासु नृपाग्रे प्रौढवादिनः ।
दूषकान् कुलधर्माणां शास्याद्राजा विगर्हितान् ।।८२।।

पद्मा—राजा की आज्ञा का पालन न करने वाले, राजा के सामने वाद विवाद करने वाले, कुलधर्म की निन्दा करने वाले—इन सभी को राजा दण्डित करे।

हरि०—अथ राजाज्ञालङ्घिनस्तदग्रे प्रौढवादिनः कुलधर्मदूषकांश्च राजा दण्डयेदित्याह बहिरित्यादिना। नृपाज्ञासु बहिर्मुखान् राजाज्ञालङ्घिनोनृपाग्रे प्रौढिवादिनः प्रौढ वदतः तथा कुलधर्माणां दूषकांश्च विगर्हितान्निन्दितानेतान् राजा शास्यात् ।।८२।।

स्थाप्यापहारिणं क्रूरं वञ्चकं भेदकारिणम् ।
विवादयन्तं लोकांश्च देशान्निर्यापयेन्नृपः ।।८३।।

पद्मा—पथिकों का धन हरण करने वाले, क्रूर, ठग, भेदिया, मनुष्यों में विवाद कराने वालों को राजा अपने देश से निकाल दे।

हरि०—अथ न्यासापहारकादिकान्निजदेशतो नृपो निष्काशयेदित्याह स्थाप्येदित्यादिना स्थाप्याहारिणं न्यासस्याऽपहर्तारं क्रूरं कठिनं निर्दयं वा तथा वञ्चकं तथा भेदकारिणं तथा लोकान् विवादयन्तं च जनं नृपो देशान्निर्यापयेन्निष्काशयेत् ।।८३।।

शुल्केन कन्यां दातृंश्च पुत्रं शण्ढे प्रयच्छतः ।
देशान्निर्यापयेद्राजा पतितान् दुष्कृतात्मनः ।।८४।।

पद्मा—जो मनुष्य शुल्क लेकर कन्या या पुत्र का दान करे अथवा जानबूझकर नपुंसक को कन्या का दान करे, उन पापियों को राजा देश से निकाल दे।

हरि०—अथ शुल्कग्रहणपूर्वकं कन्यां पुत्रं च ददतो जनान् भूपो देशान्निःसारयेदित्याज्ञापयति शुल्केनेत्यादिना। शुल्केन दाननिमित्तकधनेन हेतुना कस्मैचिज्जनाय विशेषतः शण्ढे क्लीबे कन्यां दातृन् तथा शुल्केनैव कस्मिन् विशेषतः शण्ढे पुत्रं च प्रयच्छतो ददतो दुष्कृतात्मनः पापहृदयान् पापबुद्धीन् वा पतितान् जनान् राजा देशान्निर्यापयेत्। शण्ढे इति सम्प्रदानस्याधिकरणत्वेन विवक्षितत्वात् सप्तम्यधिकरणे चेति सप्तमी।।८४।।

मिथ्यापवादव्याजेन परानिष्टं चिकीर्षवः ।
यथापवादं ते शास्या धर्मज्ञेन महीभृता ।।८५।।

पद्मा–जो मनुष्य मिथ्यापवाद द्वारा दूसरे का अनिष्ट करने की इच्छा रखता हो, धर्मज्ञ राजा को चाहिए कि अपवाद के अनुसार दण्ड दे।

हरि०–अथ मिथ्यापवादच्छलेन परानिष्ट जननाकाङ्क्षिणां दण्डमाह मिथ्येत्यादिना। मिथ्यापवादव्याजेन असत्यापवादच्छलेन परानिष्टमन्यानाकाङ्क्षितं चिकीर्षवो ये मानवास्ते धर्मज्ञेन धर्मं जानता महीभृता राज्ञा यथापवादं शास्याः। गुर्वपवादे गुरुशासनं लघ्वपवादे च लघुशासनं विधेयमित्यर्थः॥८५॥

यो यत्परिमितानिष्टं कुर्यात्तत्सम्मितं धनम् ।
नृपतिर्दापयेत्तेन जनायाऽनिष्टभागिने ॥८६॥

पद्मा–जो मनुष्य जितना दूसरे का अनिष्ट करे, उतना ही उस पर अर्थदण्ड लगाकर अनिष्ट भोगी को राजा प्रदान करे।

हरि०–ननु विनैवापराधं परानिष्टं कुर्वतः पुंसः को दण्डो विधातव्यस्तत्राह य इत्यादिना। यो नरो यस्य यत् परिमितानिष्टं कुर्यात्तेन तस्मै अनिष्टभागिने जनाय तत्सम्मितं धनं नृपतिर्दापयेत्॥८६॥

मणिमुक्ताहिरण्यादिधातूनां स्तेयकारिणः ।
करस्य बाह्वोश्छेदो वा कार्यो मूल्यं विचारयन् ॥८७॥

पद्मा–जो मनुष्य मणि, मुक्ता (मोती), स्वर्ण आदि धातुओं को चुराते हैं, राजा उनके मूल्य का विचार कर हाथ अथवा भुजाओं को कटवा दे।

हरि०–अथ मणिमुक्तादिधातुस्तेयिनां दण्डमाह मणीत्यादिना। मणिमुक्ताहिरण्यादीनां धातूनां स्तेयकारिणो नरस्य करस्य बाह्वोर्वा छेदं मण्यादीनां मूल्यं विचारयन् नृपः कुर्यात्। अल्पमूल्यकमण्यादिस्तेये करच्छेदो बहुमूल्यकमण्यादिस्तेये बाह्वोश्छेदः कार्य इत्यर्थः॥८७॥

महिषाश्वगवादीनां रत्नादीनां तथा शिशोः ।
बलेनाऽपहृतां नृणां स्तेयिवद्विहितो दमः ॥८८॥

पद्मा–जो मनुष्य बलपूर्वक, भैंस, घोड़ा, गाय आदि, रत्नादि तथा शिशु (छोटे बच्चे) की चोरी करते है राजा का कर्तव्य है कि उनको चोरों की भाँति ही दण्ड दे।

हरि०–अथ बलात्कारेण महिषाश्वादीनामपहारकस्य दण्डमाह महिषेत्यादिना। महिषाश्वगवादीनां पशूनां तथा रत्नादीनां तथा शिशोश्च बलेनाऽपहृतामपहरतां नृणां स्तेयिवद्दमो विहितः॥८८॥

अन्नामामल्पमूल्यस्य वस्तुनस्तेयिनं नृपः ।
विशोधयेत्तं पक्षैकं सप्ताहं वाऽऽशयन् कणम्॥८९॥

पद्मा–अन्न या अल्पमूल्य की वस्तु को चुराने वाले चोर को राजा एक पक्ष या एक सप्ताह कणभोजन कराकर शुद्ध करे।

हरि०–अथान्नस्य मण्यादिभिन्नाल्पमूल्य वस्तुनश्च स्तेयिनो विशुद्धिमाह अन्नानमित्यादिना।

अन्नानां तथाऽल्पमूल्यस्य वस्तुनश्च स्तेयी यो नरस्तं पक्षैकं सप्ताहं वा कणमाशयन् भोजयन्नृपो विशोधयेत्॥८९॥

विश्वासघातके पुंसि कृतघ्ने सुखवन्दिते: ।
यज्ञैर्व्रतैस्तपोदानैः प्रायश्चित्तैर्न निष्कृतिः ।।९०।।

पद्या–हे सुखन्दिते! विश्वासघाती तथा कृतघ्न चाहे जितना यज्ञ, व्रत, तप, दान आदि कोई भी प्रायश्चित कर्म करे, किन्तु किसी भी प्रकार से उनको मुक्ति प्राप्त नहीं होती है।

हरि०–अथाऽनेकयज्ञव्रतादिकं कुर्वतोऽपि विश्वासघातककृतघ्नयोरनिष्कृतित्वमाह विश्वासेत्यादिना। हे सुखन्दिते विश्वासघातके तथा कृतघ्ने उपकृतविनाशके च पुंसि यज्ञैरश्वमेधादिभिर्व्रतैः कृच्छ्रचान्द्रायणादिभिस्तपोभिर्दानैश्च प्रायश्चित्तैः पापविनाशकैरेतैर्निष्कृतिर्दुष्कृतान् मुक्तिर्न स्यात्॥९०॥

ये कूटसाक्षिणो मर्त्या मध्यस्था पक्षपातिनः ।
शास्यात्तांस्तीव्रदण्डेन् देशान्निर्यापयेन्नृपः ।।९१।।

पद्या–जो मध्यस्थ होकर पक्षपात करते हैं, राजा उन्हें कठोर दण्ड द्वारा दण्डित करे और देश से बाहर निकाल दे।

हरि०–अथ साक्षित्वे मिथ्याभिधायिनां पक्षपातिमध्यस्थानां च दण्डमाह ये इत्यादिना। कूटसाक्षिणः साक्ष्ये मृषाभिधायिनो ये मर्त्यास्तथा पक्षपातिनो मध्यास्थाश्च ये तान् नृपस्तीव्रदण्डेन शास्यात्तथा देशान्निर्यापयेत्॥९१॥

षट् साक्षिणः प्रमाणं स्युश्चत्वारस्त्रय एव वा ।
अभावे द्वावपि शिवे प्रसिद्धौ यदि धार्मिकौ ।।९२।।

पद्या–हे शिवे! छः चार अथवा तीन साक्षी प्रमाणस्वरूप माने जाते हैं। इनके अभाव में दो धार्मिक एवं प्रसिद्ध साक्षी भी प्रमाणस्वरूप माने जा सकते हैं।

हरि०–ननु कति साक्षिणः प्रमाणं भवेयुरित्यपेक्षायामाह षडित्यादिना षट् चत्वारस्त्रयो वा साक्षिणः प्रमाणं स्युः। हे शिवे! अभावे त्रिचतुरादिसाक्ष्यसत्त्वे प्रसिद्धौ धार्मिकौ भवेतां तदा द्वावपि साक्षिणो प्रमाणं स्याताम्॥९२॥

देशतः कालतो वापि तथा विषयतः प्रिये ।
परस्परमयुक्तश्चेद् अग्राह्यं साक्षिणां वचः ।।९३।।

पद्या–हे प्रिये! देश, काल तथा विषय विशेष में जो परस्पर विरोधी बात कहें उन साक्षियों की बात प्रमाण रूप में स्वीकार न की जाय।

हरि०–स्थानादिभेदतः परस्परमसङ्गतं साक्षिणां वचो न प्रमाणमित्याह देशत इत्यादिना। हे प्रिये देशतः स्थानतः कालतो दिनप्रहारादितस्तथा विषयतो वस्तुतो वा चेद् यदि परस्परमयुक्तमसम्बन्धं साक्षिणां वचस्तदाऽग्राह्यं स्यात्॥९३॥

अन्धानां वाक् प्रमाणं स्याद्बधिराणां तथा प्रिये ।
मूकानामेडमूकानां शिरसाऽङ्गीकृतिर्लिपिः ।।९४।।

पद्मा—अन्धे तथा बहरों के वचन प्रमाण रूप में माने जायेंगे। एड़मूक (सुनने तथा बोलने से रहित) का सिर हिलाना स्वीकृति माना जायेगा। साक्ष्य के लिये उनकी लिपि (लेख) को ग्रहण करे।

हरि०—ननु दर्शनाद्यशक्ता अन्धादयः साक्षिणो भवितुमर्हन्ति न वेत्याशङ्कायामाह अन्धानामित्यादिना। हे प्रिये! अन्धानामचक्षुषां तथा बधिराणां श्रोत्रहीनां वाक् प्रमाणं स्यात् मूकानामवाचां तथा एडमूकानां श्रोत्रवचोरहितानां शिरसाऽङ्गीकृतिः स्वीकारो लिपिरक्षरं च प्रमाणं स्यात्।।९४।।

लिपिः प्रमाणं सर्वेषां सर्वत्रैव प्रशस्यते ।
विशेषाद्व्यवहारेषु न विनश्येच्चिरं यतः ।।९५।।

पद्मा—इन समस्त स्थानों में सभी के लिये लिपि ही प्रशस्त प्रमाण है। विशेषरूप से व्यवहार में यह सभी प्रकार से श्रेष्ठ है और बहुत काल तक यह नष्ट भी नहीं होती है।

हरि०—अथाऽन्यप्रमाणाल्लिपिप्रमाणस्य बहुकालस्थायित्वात् प्राशस्त्यमाह लिपिरित्यादिना। सर्वत्रैव कर्मणि विशेषात् क्रयविक्रयादिरूपव्यवहारेषु सर्वेषां लिपिः प्रमाणं प्रशस्यते। प्राशस्त्ये हेतुं दर्शयन्नाह न विनश्येदित्यादिना। यतश्चिरं बहुकालं लिपिर्न विनश्येच्चिरं तिष्ठेदित्यर्थः।।९५।।

स्वीयार्थमपरार्थञ्चेत् कुर्वतः कल्पितां लिपिम् ।
दण्डस्तस्य विधातव्यो द्विपाद्यं कूटसाक्षिणः ।।९६।।

पद्मा—जो मनुष्य अपने लिये या दूसरे के लिए कल्पित (झूठी या जाली) लिपि का प्रयोग करते हैं, उन जालसाजों को दुगुना दण्ड दे।

हरि०—अथाऽक्षरं कल्पयतो दण्डमाह स्वीयार्थमित्यादिना। स्वीयार्थमपरार्थं वा कल्पितं लिपिं यः करोति तस्य तादृशीं लिपिं कुर्वतो जनस्य कूटसाक्षिणः साक्ष्येऽनृतं वदतो द्विपाद्यं द्विगुणो दण्डो राज्ञा विधातव्यः।।९६।।

अभ्रमस्याऽप्रमत्तस्य यदङ्गीकरणं सकृत् ।
स्वीयार्थे तत्प्रमाणं स्याद्वचो बहुसाक्षिणाम् ।।९७।।

पद्मा—भ्रम एवं प्रमाद से रहित जो पुरुष यदि अपनी किसी एक बात को एक बार स्वीकार कर ले, तो बहुत से साक्षियों के होने पर भी प्रमाण है।

हरि०—बहुसाक्षिवचोभ्योऽप्रमत्ताभ्रान्तजनः स्वयं कृतैकवारस्वीकाररूपप्रमाणस्याऽतिप्राशस्त्यं दर्शयितुमाह अभ्रमस्येत्यादिना। अभ्रमस्य भ्रान्तिरहितस्याप्रमत्तस्य सावधानस्य यत् सकृदेकवारमपि अङ्गीकरणं स्वीकारस्तत् स्वीयार्थे बहुसाक्षिणामपि वचसो भाषणादधिकं प्रमाणं स्यात्।।९७।।

यथा तिष्ठन्ति पुण्यानि सत्यमाश्रित्य पार्वति! ।
तथाऽनृतं समाश्रित्य पातकान्यखिलान्यपि ।।९८।।
अतः सत्यविहीनस्य सर्वपापाश्रयस्य च ।
ताडनाद्दमनाद्राजा न पापार्हः शिवाज्ञया ।।९९।।

पद्या—हे पार्वति! जिस प्रकार सत्य का आश्रय लेकर समस्त पुण्य रहते हैं। उसी प्रकार असत्य का आश्रय लेकर सभी पाप रहते हैं। इसलिए जो व्यक्ति सत्यविहीन है वह सभी पापों का आश्रय है। ऐसे पापी का ताड़न एवं दमन करने से राजा पाप का भागी नहीं होता है।

हरि०—अथाऽसत्यस्याऽखिलपातकाश्रयत्वं व्याहरंस्तदाश्रयान्मानवान् दण्डयतो राज्ञः पापानर्हत्वमाह यथेत्यादिना शिवाज्ञयेत्यन्तेन श्लोकद्वयेन। हे पार्वति यथा सत्यमाश्रित्य पुण्यानि तिष्ठन्ति तथाऽनृतमसत्यं समाश्रित्याऽखिलान्यपि पातकान्यपि तिष्ठन्ति। अतः सत्यविहीनस्य सर्वपापाश्रयस्य च जनस्य ताडनाद्दमनाद्धनदण्डाच्च राजा शिवाज्ञया पापार्हः पापभाक् न स्यात्।।९८-९९।।

सत्यं ब्रवीमि सङ्कल्प्य स्पृष्ट्वा कौलं गुरुं द्विजम् ।
गङ्गातोयं देवमूर्तिं कुलशास्त्रं कुलामृतम् ।।१००।।
देवीनिर्माल्यमथवा कथनं शपथो भवेत् ।
तत्राऽनृतं वदन् मर्त्यः कल्पान्तं नरकं व्रजेत् ।।१०१।।

पद्या—"मैं जो कुछ कहूँगा सत्य कहूँगा" ऐसा संकल्प करके कौलगुरु, ब्राह्मण, गंगा जल देवमूर्ति, कुलशास्त्र, कुलामृत, देवीनिर्माल्य—इन सभी को स्पर्श करके जो कहा जाता है उसे शपथ कहते हैं। यह शपथ लेकर जो मिथ्या (असत्य) बोलता है, वह कल्प के अन्त तक नरक में निवास करता है।

हरि०—अथ शपथस्वरूपं निरूपयंस्तत्राऽनृतं ब्रुवतोमर्त्यस्य नरकगामित्वं विदधाति सत्यमित्यादिनां श्लोकद्वयेन। सत्यमहं ब्रवीमीति सङ्कल्प्य कौलं कुलीनं गुरुं निषेकादिकरं द्विजं ब्राह्मणं गङ्गातोयं गङ्गाजल देवमूर्तिं देवताप्रतिमां कुलशास्त्रं तन्त्रादिकं कुलामृतमासवम् देवीनिर्माल्यं वा स्पृष्ट्वा कथनं शपथो भवेत् तत्र शपथेऽनृतं मिथ्यां वदन् मर्त्यः कल्पान्तं कल्पपर्यन्तं नरकं व्रजेत् नरकान्नरकान्तरं गच्छेत्।।१००-१०१।।

अपापजनिकार्याणां त्यागे वा ग्रहणेऽपि वा ।
तत् कार्यं सर्वथा मर्त्यैः स्वीकृतं शपथेन यत् ।।१०२।।

पद्या—जो कार्य पापजनक नहीं है, उसका त्याग अथवा ग्रहण जो शपथ के साथ स्वीकार हो, वह अवश्य ही कर्तव्य है।

हरि०—अथ शपथपूर्वकस्वीकृतापापजनककार्याणामवश्यकृत्य त्वमाह अपापेत्यादिना। न पापस्य जनिरुत्पत्तिर्येभ्यस्तेषां कार्याणां त्यागे वा ग्रहणेऽपि वा शपथेन मर्त्यैर्यत् स्वीकृतं

तत् सर्वथा कार्यं न लङ्घनीयमित्यर्थः। ग्रहणेऽपि चेत्यनेन पापजनककर्मणां त्यागे एव यत् स्वीकृतं तस्यैवाऽवश्यकृत्यत्वमिति ध्वनितम्॥१०२॥

स्वीकारोल्लङ्घनाच्छुध्येत् पक्षमेकमभोजनैः ।
भ्रमेणापि तमुल्लङ्घ्य द्वादशाहं कणाशनैः ।।१०३।।

पद्मा—स्वीकार की गयी बात का जानबूझकर उल्लंघन करने से एक पक्ष निराहार रहने से शुद्धि होती है। भ्रमवश यदि उल्लंघन हो तो बारह दिन तक कणभोजन करने से शुद्धि होती है।

हरि०—ननूल्लङ्घितशपथपूर्वकस्वीकृतापापजनककार्यो मनुष्यः कथं शुध्येत् तत्राह स्वीकारे त्यादि। स्वीकारोल्लङ्घनादेकं पक्षमभोजनैर्जनः शुध्येत्। भ्रमेणापि तं स्वीकारमुल्लङ्घ्य द्वादशाहं कणाशनैः शुध्येत्॥१०३॥

कुलधर्मोऽपि सत्येन विधिना चेन्न सेवितः ।
मोक्षाय श्रेयसे न स्यात् कौले पापाय केवलम् ।।१०४।।

पद्मा—जो मनुष्य सत्य का आश्रय लेकर कुलधर्म की सेवा नहीं करता है उसका वह धर्म मोक्षप्रदायक नहीं होता केवल पापजनक ही होता है।

हरि०—अथाऽविधिसेवितस्य कुलधर्मस्यापि पापजनकत्वमाह कुलेत्यादिना। सत्येन विधिना चेद्यदि सेवितो न स्यात् तदा कुलधर्मोऽपि कौले कुलीने मोक्षाय अपवर्गाय तथा श्रेयसे भद्राय च न स्यात् केवलं पापायैव भवति। अतो विधिनैव सेव्यः कुलधर्म इति भावः॥१०४॥

सुरा द्रवमयी तारा जीवनिस्तारकारिणी ।
जननी भोगमोक्षाणां नाशिनी विपदां रुजाम् ।।१०५।।

पद्मा—सुरा द्रवमयी स्वयं भगवती तारा है, इसी कारणवश प्राणियों का निस्तार होता है। सुरा भोग एवं मोक्ष की जननी है। सुरा विपत्तियों तथा रोगों का नाश करने वाली है।

हरि०—अथ सुरेत्यादिभिस्त्रिभिः पद्यैर्मद्यं स्तौति। सुरा द्रवमयी द्रवरूपा तारा भवति। या जीवनिस्तारकारिणी जीवानां निस्तारकर्त्री या भोगमोक्षाणां जननी उत्पादयित्री या विपदां विपत्तीनां रुजां रोगाणां च नाशिनी॥१०५॥

दाहिनी पापसङ्घानां पावनी जगतां प्रिये: ।
सर्वसिद्धिप्रदा ज्ञानबुद्धिविद्याविवर्धिनी ।।१०६।।
मुक्तैर्मुमुक्षुभिः सिद्धैः साधकैः क्षितिपालकैः ।
सेव्यते सर्वदा देवैराद्ये! स्वाभीष्टसिद्धये ।।१०७।।

पद्मा—हे प्रिये! सुरा सभी पापों को भस्म करती है। यह समस्त संसार को पवित्र करती है। यह सभी प्रकार की सिद्धियों को प्रदान करती है। सुरा के द्वारा ज्ञान, बुद्धि एवं विद्या की वृद्धि होती है। हे आद्ये! मुक्त, मुमुक्षु, सिद्धगण, साधकगण देवतागण तथा राजा

अपने-अपने अभीष्ट के लिये इसी सुरा का सदैव सेवन करते हैं।

हरि०—या पापसङ्घानां पापसमूहानां दाहिनी दग्धी। हे प्रिये या जगतां पावनी, शुद्धिकर्त्री या सर्वसिद्धिप्रदा सर्वाषां सिद्धीनां प्रदात्री या ज्ञानबुद्धिविद्या विवर्द्धिनी। मोक्षे धीर्ज्ञानम् शास्त्रादितत्त्वज्ञानं बुद्धि आत्मज्ञानं विद्या तेषां विवर्धयित्री। हे आद्ये मुक्तैर्मुक्तिशालिभि: मुमुक्षुभिर्मोक्षेप्सुभि: सिद्धै: साधकै: क्षितिपालकै: राजभिर्देवैश्च स्वाभीष्टसिद्धये सर्वदा या सेव्यते सा सुरा द्रवमयी तारा बोद्धव्येति पूर्वेणान्वय: या सेत्यध्याहारलभ्ये॥१०६-१०७॥

सम्यग्विधिविधानेन सुसमाहितचेतसा ।
पिबन्ति मदिरां मर्त्या अमर्त्या एव ते क्षितौ ॥१०८॥

पद्मा—जो शास्त्र में कही गयी विधि के अनुसार एकाग्रचित्त से मदिरा का सेवन करते हैं वे पृथ्वी पर मर्त्य होकर भी अमर्त्य (देवता) के समान होते हैं।

हरि०—सुरेत्यादिश्लोकत्रयेण मदिरां स्तुत्वेदानीं विधिपूर्वकतत्पानकर्तु: साक्षाद्देवत्वं प्रतिपादयति सम्यगित्यादिना। ये मर्त्या: सम्यग्विधिविधानेन सुसमाहितचेरसाऽतिसावधानमनसा मदिरां पिबन्ति ते क्षितौ पृथिव्याममर्त्या देवा एव भवन्ति॥१०८॥

प्रत्येकतत्त्वस्वीकाराद्विधिना स्याच्छिवो नर: ।
न जाने पञ्चतत्त्वानां सेवनात् किं फलं भवेत् ॥१०९॥

पद्मा—पञ्चतत्त्वो (मद्य, मांस, मत्स्य, मुद्रा एवं मैथुन) में से यदि किसी एक तत्त्व का विधिपूर्वक सेवन करने वाला साधक साक्षात् शिवस्वरूप हो जाता है। यदि मनुष्य पाँचों तत्त्वों का विधानपूर्वक सेवन करे तो उसका क्या फल होता है उसको मैं नहीं कह सकता हूँ।

हरि०—अथ विधिसेवितमद्यादिपञ्चतत्त्वानाम निर्वचनीयफलत्वं दर्शयति प्रत्येकेत्यादिना। विधिना प्रत्येक तत्त्व स्वीकारात् मद्याद्येकैकतत्त्वाङ्गीकारान्नर: शिव: स्यात् पञ्चानामपि तत्त्वानां मद्यादीनां सेवनात् किं फलं भवेदिति तु न जाने॥१०९॥

इयञ्चेत् वारुणी देवी निपीता विधिवर्जिता ।
नृणां विनाशयेत् सर्वं बुद्धिमायुर्यशो धनम् ॥११०॥

पद्मा—जो बिना शास्त्रोक्त विधि के वारुणी देवी (मदिरा) का सेवन करता है तो वह सेवन करने वाले की बुद्धि, आयु, यश तथा धन—सभी कुछ वारुणी देवी नष्ट कर देती है

हरि०—अथ विधिवर्जित सुरापानस्य बुद्ध्यायुरादिसकलपदार्थ विनाशकत्वमाह इयमित्यादिना। चेद् यदि विधिवर्जितेयं वारुणी मदिरा देवी निपीता स्यात्तदा नृणां बुद्धिमायुर्यशोधनमित्यादि सर्वं विनाशयेत्॥११०॥

अत्यन्तपानान्मद्यस्य चतुर्वर्गप्रसाधनी ।
बुद्धिर्विनश्यति प्रायो लोकानां मत्तचेतसाम् ॥१११॥

पद्मा—जो अत्यधिक मदिरा का पान करके मतवाले हो जाते हैं उनकी धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्ष प्रदायिनी बुद्धि का विनाश हो जाता है।

हरि०—सुरात्यन्तपानस्य बुद्धिविनाशकत्वेऽतिपीतमद्यानां स्वपरानिष्टोत्पादकत्वस्य हेतुत्वात्तदत्यासक्तचेतसः पुमांसो नरेशचक्रेशाभ्यां दण्डया इत्याह अत्यन्तेत्यादिना शोधयेदित्यन्तेन श्लोकत्रयेण। मद्यस्याऽत्यन्तपानान्मत्तचेतसां लोकानां चतुर्वर्गप्रसाधनी धर्मार्थकाममोक्षाणां साधयित्री बुद्धिः प्रायोग विनश्यति।।१११।।

विभ्रान्तबुद्धेर्मनुजात् कार्याकार्यमजानतः ।
स्वानिष्टं च परानिष्टं जायतेऽस्मात् पदे पदे ।।११२।।
अतो नृपो वा चक्रेसो मद्ये मादकवस्तुषु ।
अत्यासक्तजनान् कायधनदण्डेन शोधयेत् ।।११३।।

पद्मा—अत्यधिक मद्यपान करने वाला मनुष्य भ्रमित बुद्धि का हो जाता है। उसे कार्य-अकार्य का ज्ञान नहीं रहता। वह पग-पग पर अपना तथा दूसरे का अनिष्ट करता रहता है। इसलिए जो भी मनुष्य मद्य और मादक वस्तुओं में अत्यन्त आसक्त । राजा अथवा चक्रेश्वर को चाहिए कि उन्हें शारीरिक तथा धनदण्ड के द्वारा शुद्ध करे ।

हरि०—कार्याकार्यमजानतोऽस्माद्विभ्रान्तबुद्धेर्मनुजात् स्वानिष्टं परानिष्टं च पदे पदे जायते। अतो मद्ये मादकवस्तुषु चाऽत्यासक्तान् जनान् नृपश्चक्रेशो वा कायधनदण्डेन शोधयेत् ॥११२-११३।

सुराभेदात् व्यक्तिभेदात् न्यूनेनाऽप्यधिकेन वा ।
देशकालविभेदेन बुद्धिभ्रंशो भवेन्नृणाम् ।।११४।।
अतएव सुरापानादतिपानं न लक्ष्यते ।
स्खलद्वाक्पाणिपादृग्भिरतिपानं विचारयेत् ।।११५।।

पद्मा—सुरा अधिक मात्रा में पी हो या कम मात्रा में पी हो, वह सुराभेद से, व्यक्ति भेद से, देश और काल के भेद से बुद्धि को भ्रष्ट कर देती है। इसलिये लड़खड़ाते हुए वचन, काँपते हाथों, डगमगाते पैरों एवं चञ्चलदृष्टि द्वारा अतिरिक्त पान का निर्णय करे; क्योंकि सुरा के परिमाण से अतिपान को नहीं जान सकते ।

हरि०—मद्यादिविभेदतो न्यूनस्याऽधिकस्य च तस्य बुद्धिभ्रंशजनकत्वात्तन्मानादत्यन्तपानस्य ज्ञातुम् शक्यत्वात् स्खलद्वागादिभिस्तल्लक्षणीयमित्सयाह सुरेत्यादिना विचारयेदित्यन्तेन श्लोकद्वयेन। सुराभेदात् व्यक्तिभेदाज्जनविशेषाद्देशकालयोर्विभेदेन च न्यूनेनापि अधिकेन वा मद्येन नृणां बुद्धिभ्रंशो भवेत्। अतएव सुराया मानादतिपानं न लक्ष्यते, किन्तु स्खलद्वाक्पाणिपदृग्भिरितस्ततो विचलद्भिर्वचोहस्तपादनेत्रैरतिपानं विचारयेत् विलक्षयेत् ॥११४-११५॥

नेन्द्रियाणि वशे यस्य मदविह्वलचेतसः ।
देवतागुरुमर्यादोल्लङ्घिनो भयरूपिणः ।।११६।।

निखिलानर्थयोग्यस्य पापिनः शिवघातिनः ।
दहेज्जिह्वां हरेदर्थान् ताडयेत्तं च पार्थिवः ।।११७।।

पद्मा—जिसकी समस्त इन्द्रियाँ वश में नहीं हैं, जिसका चित्त मद से विह्वल हो रही है, जो मद से व्याकुल होकर देवता एवं गुरु की मर्यादा का उल्लंघन करता है, जिसको मत्त अवस्था में देखकर भय होता है जो सभी प्रकार के अनर्थ करने को तैयार रहता है वह पुरुष पापी एवं अनिष्टकारी है । राजा ऐसे मनुष्यों की जीभ जलवा दे, उसका धन छीनकर ताड़ना दे ।

हरि०—अथोल्लङ्घितदेवतागुरुमर्यादावशेन्द्रियमदिरामत्तस्य दण्डमाह नेन्द्रियाणीत्यादिश्लोकद्वयेन। यस्येन्द्रियाणि वशे न सन्ति, तस्य मदविह्वलचेतसो मदिराविकृतचित्तस्य देवतागुरुमर्यादोल्लङ्घिनो लङ्घितदेवनिषेकादिगुरुमर्यादस्य भयरूपिणो भीतिस्वरूपस्य निखिलानर्थयोग्यस्याऽशेषानर्थार्हस्य पापिनः पातकाश्रयस्य शिवघातिनः शिवाज्ञालङ्घनात्तद्धन्तुर्निजभद्रहन्तुर्वा नरस्य जिह्वां पार्थिवो दहेत् अर्थान् हरेत् तं च ताडयेत्।।११६-११७।।

विचलत्पादवाक्पाणिं भ्रान्तमुन्मत्तमुद्धतम् ।
तमुग्रं यातयेद्राजा द्रविणं चाहरेत्ततः ।।११८।।

पद्मा—मदिरा पान से जिसके पैर, वचन और हाथ विचलित हों, जो भ्रमित, उन्मत्त एवं ऊधमी हो, अविनीत हो, राजा उसे दण्ड देकर उसका धन छीन ले ।

हरि०—अथ विचलत्पादादिकस्य मद्यमत्तस्य दण्डमाह विचलदित्यादिना। विचलत्पादवाक्पाणिं स्खलच्चरणवचोहस्तं भ्रान्तं भ्रमयुतमुन्मत्तमुन्मादवन्तमुद्धतमविनीतं तमुग्रं रौद्रं राजा यातयेत् ततो द्रविणं च आहरेत्।।११८।।

अपवाग्वादिनं मत्तं लज्जाभयविवर्जितम् ।
धनदानेन तं शास्यात् प्रजाप्रीतिकरो नृपः ।।११९।।

पद्मा—जो पुरुष मदिरा से मत्त होकर अश्लील वचन कहे, लज्जा एवं भय रहित होकर रहे, प्रजा का प्रीतिकर राजा उसका धन छीनकर उसे दण्डित करे ।

हरि०—अथाऽवाच्यवादिनो मत्तस्य दण्डमाह अपवागित्यादिना । अपवाग्वादिनं अवक्तव्यं वचो वदन्तं लज्जाभयविवर्जितं तं मत्तं प्रजाप्रीतिकरो नृपो धनादानेन शास्यात् ।।११९।।

शताभिषिक्तः कौलश्चेत् अतिपानात् कुलेश्वरि! ।
पशुरेव स मन्तव्यः कुलधर्मबहिष्कृतः ।।१२०।।

पद्मा—हे कुलेश्वरि! यदि सौ बार अभिषिक्त कौल भी अतिपान करे, तो उसे भी कुलधर्म से बहिष्कृत कर पशु मानना चाहिए ।

हरि०—शताभिषिक्तकौलस्याऽप्यत्यन्तमद्यपापतेन कुलधर्मबहिष्कृतत्वात् पशुत्वशा-

लित्वमाह शतेत्यादिना। चेच्छब्दोऽप्यर्थे। हे कुलेश्वरि शताभिषिक्त: कौलोऽप्यतिपानात् पशुरेव मन्तव्य: यत: स कुलधर्माब्दहिष्कृत:॥१२०॥

पिबन्नतिशयं मद्यं शोधितं वाऽप्यशोधितम् ।
त्याज्यो भवति कौलानां दण्डनीयोऽपि भूभृत: ।।१२१।।

पद्मा–जो व्यक्ति शोधित अथवा अशोधित मद्य का अतिपान करता है वह कौलगण द्वारा त्याज्य तथा राजा द्वारा आर्थिक रूप से दण्डनीय है।

हरि०–अथ संस्कृतासंस्कृतातिशयितमद्यपायिनो नरस्य राज्ञा दण्डनीयत्वं कौलहेयत्वं चाह पिबन्नित्यादिना। शोधितमशोधितं वाऽतिशयं बहुतं मद्यं पिबन्मर्त्य: कौलानां त्याज्यो भूभृतो दण्डनीयोऽपि भवति॥१२१॥

ब्राह्मीं भार्यां सुरां मत्ता: पाययन्तो द्विजातय: ।
शुध्येयुर्भार्यया सार्धं पञ्चाहं कणभोजनात् ।।१२२।।

पद्मा–यदि कोई द्विज (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य) मत्त होकर ब्राह्मधर्म की विधि के अनुसार विवाहिता स्त्री को मद्यपान कराये, तो उस स्त्री के सहित पाँच दिन तक कणभोजन करने से शुद्धि होती है ।

हरि०–ननु ब्राह्मीं भार्यां मद्यं पाययन्तो द्विजा: कथं शुध्येयुस्तत्राह ब्राह्मीमित्यादिना। ब्राह्मीं वेदोक्तविधिना परिणीतां भार्यां सुरां पाययन्तो मत्ता: द्विजातयो भार्यया सार्धं पञ्चाहं कणभोजनाच्छुध्येयु:॥१२२॥

असंस्कृतसुरापानात् शुध्येदुपसंस्त्र्यहम् ।
भुक्त्वाऽप्यशोधितं मांसमुपवासद्वयं चरेत् ।।१२३।।

पद्मा–अशुद्ध व असंस्कारित सुरा को पीने वाला तीन दिन के उपवास से शुद्ध होता है। यदि कोई मनुष्य अशोधित मांस को खाता है, तो उसे दो दिन उपवास करना चाहिए।

हरि०–नन्वशोधितमद्यपानात् तादृङ्मांसभक्षणाच्च कथं शुध्येत्तत्राह असंस्कृतेत्यादिना। असंस्कृतसुरापानात् त्र्यहं त्रिदिनमुपवसन् शुध्येत्। अशोधितं मांसमपि भुक्त्वा उपवासद्वयं चरेत् कुर्यात् ॥१२३॥

असंस्कृते मीनमुद्रे खादन्नुपवसेदह: ।
अवैधं पञ्चमं कुर्वन् राज्ञो दण्डेन शुध्यति ।।१२४।।

पद्मा–यदि कोई मनुष्य अशोधित "मत्स्य" एवं "मुद्रा" का भक्षण करता है, तो उसे एक दिन उपवास करना चाहिए। यदि कोई मनुष्य अवैध रूप से पञ्चमतत्त्व मैथुन का सेवन करता है तो वह राजदण्ड के द्वारा शुद्ध होता है।

हरि०–अथाशोधितमत्स्यमुद्रयोर्भोक्तुरवैधसुरतकर्तुश्च प्रायश्चित्तमाह असंस्कृत इत्यादिना। असंस्कृते अशोधिते मीनमुद्रे खादन्नरोऽहतर्दिनमेकमुपवसेत्। अवैधं विधिवर्जितं पञ्चमं सुरतं कुर्वन्नरो राज्ञो दण्डेन शुध्यति।।१२४॥

भुञ्जानो मानवं मांसं गोमांसं ज्ञानतः शिवे ।
उपोष्य पक्षं शुद्धः स्यात् प्रायश्चित्तमिदं स्मृतम् ।।१२५।।

पद्या–हे शिवे! यदि कोई व्यक्ति जान बूझकर मनुष्य अथवा गाय का मांस खाता है, तो वह एक पक्ष उपवास द्वारा शुद्ध होता है। यही उसका प्रायश्चित्त कर्म कहा गया है।

हरि०–ननु ज्ञानतो नरमांसं गोमांसञ्च खादतः पुंसः कथं शुद्धिस्तत्राह भुञ्जान इत्यादिना। हे शिवे ज्ञानतो मानवं मानवसम्बन्धिमांसं मोमांसञ्च भुञ्जानो नरः पक्षमेकमुपोष्य शुद्धः स्यात्। इदं तयोर्भक्षणे प्रायश्चित्तं स्मृतम्।।१२५।।

नराकृतिपशोर्मांसं मांस मांसादनस्य च ।
अत्त्वा शुध्येन्नरः पापादुपवासैस्त्रिभिः प्रियेः ।।१२६।।

पद्या–हे प्रिये! जो मनुष्य, मनुष्य के आकार वाले पशु या मांस खाने वाले प्राणी का मांस खाता है, वह तीन दिन के उपवास द्वारा शुद्ध होता है ।

हरि०–ननु भुक्तमनुष्याकृति पशुमांसो मांसादकमांसभक्षकश्च पुमान् कथं शुध्येत्तत्राह नरेत्यादिना। हे प्रिये नराकृतिपशोर्वानरादेर्मांसादनस्य मांसभक्षकस्य व्याघ्रादेश्च मांसमत्वा भुक्त्वानरस्त्रिभिरूपवासैः पापात् शुध्येत्।।१२६।।

म्लेच्छानां श्वपचानां च पशूनां कुलवैरिणाम् ।
खादन्नन्नं विशुद्धः स्यात् पक्षमेकमुपोषितः ।।१२७।।

पद्या–जो मनुष्य म्लेच्छ, चाण्डाल तथा कुलविरोधी पशु का अन्न खाता है, उसकी शुद्धि एक पक्ष के उपवास द्वारा होती है।

हरि०–अथ भुक्तम्लेच्छाद्यन्नस्य पुंसः प्रायश्चित्तमाह म्लेच्छानामित्यादिना। म्लेच्छानां यवनानां श्वपचानां चाण्डालानां कुलवैरिणां पशूनां चाऽन्नं खादन् जनः पक्षमेकमुपोषितः सन् विशुद्धः स्यात् ।।१२७।।

उच्छिष्टं यदि भुञ्जीत ज्ञानादेषां कुलेश्वरि! ।
शुध्येन्मासोपवासेनाऽज्ञानात् पक्षोपवासतः ।।१२८।।

पद्या–हे कुलेश्वरि! जो बिना जाने म्लेच्छ, चाण्डाल तथा कुलविरोधी का जूठन खा लेता है वह एक पक्ष के उपवास से शुद्ध होता है। जो जानबूझकर इन व्यक्तियों का जूठन खाता है। वह एक महीने के उपवास से शुद्ध होता है ।

हरि०–ननु ज्ञानाज्ञानाभ्यां म्लेच्छाद्युच्छिष्टमन्नादिकं भुञ्जानः कथं शुध्येत्तत्राह उच्छिष्ट मित्यादिना। हे कुलेश्वरि ज्ञानादेषां म्लेच्छादीनामुच्छिष्टमन्नादिकं यदि भुञ्जीत तदा मासोपवासेन नरः शुध्येत्। अज्ञानाद्यदि भुञ्जीत तदा पक्षोपवासतः शुध्येत्।।१२८।।

अनुलोमेन वर्णानामन्नं भुक्त्वा सकृत् प्रिये! ।
दिनत्रयोपवासेन विशुद्धः स्यान्ममाज्ञया ।।१२९।।

पद्या–हे प्रिये! उच्च जाति का मनुष्य यदि एक बार नीच जाति का अन्न खाता है

वह तीन दिन के उपवास द्वारा शुद्ध होता है। ऐसी मेरी आज्ञा है।

हरि०–अथ क्रमत: क्षत्रियाद्यन्नमश्नतां ब्राह्मणादीनां प्रायश्चित्तमाह अनुलोमेनेत्यादिना। हे प्रिये! अनुलोमेन क्रमेण वर्णानां सकृदन्नं भुक्त्वा ब्राह्मणादिर्दिनत्रयोपवासेन ममाज्ञया विशुद्ध: स्यात्। यथा ब्राह्मण: क्षत्रियान्नमेवम्॥१२९॥

पशुश्वपचम्लेच्छानामन्नं चक्रार्पितं यदि।
वीरहस्तार्पितं वापि तदश्नन्नैव पापभाक्॥१३०॥

पद्मा–यदि पशु, श्वपच (चाण्डाल) तथा म्लेच्छ का अन्न "भैरवी चक्र" में अर्पित किया जाये अथवा वीर साधक के द्वारा दिया जाये तो उसको खाने में कोई भी पाप का भागी नहीं होगा।

हरि०–अथ चक्रार्पितस्य वीरहस्तार्पितस्य च पशुश्वपचम्लेच्छान्नस्य भोक्तुरपातकित्वमाह पश्वित्यादिना। पशुश्वपचम्लेच्छानामन्नं यदि चक्रार्पितं चक्रदत्तं वीरहस्तार्पितं वा स्यात्तदा तदन्नमश्नन् खादन् नर: पापभाक् नैव भवेत्॥१३०॥

अन्नाभावे च दौर्भिक्ष्ये विपदि प्राणसङ्कटे।
निषिद्धेनाऽदनेनापि रक्षन् प्राणान्न पातकी॥१३१॥

पद्मा–जब अन्न का अभाव हो, दुर्भिक्ष हो, विपत्ति में हो, प्राणों पर संकट हो, उस समय निषिद्ध अन्न को खाने वाला पाप का भागी नहीं होगा।

हरि०–ननु दुर्भिक्षादौ निषिद्धवस्तुभोजनेन प्राणान् रक्षतो जनस्य पातकं भवेन्नवेत्या शङ्कमानां प्रत्याह अन्नेत्यादिना। दुर्लभा भिक्षा यत्र तत्र दुर्भिक्षे समये विपदि च देशोपद्रवपलायनादौ अन्नाभावे प्राणसङ्कटे सति निषिद्धेनाऽप्यदनेनाभोज्यस्यापि भोजनेन प्राणान् रक्षन् पातकी न भवेत्॥१३१॥

करिपृष्ठे तथाऽनेकोद्वाह्यपाषाणदारुषु।
अलक्षितेऽपि दुष्याणां भक्ष्यदोषो न विद्यते॥१३२॥

पद्मा–हाथी की पीठ पर, अनेक मनुष्यों द्वारा ले जाने योग्य पत्थर या लकड़ी पर तथा दूषित पदार्थ का यदि लक्ष्य न हो तो भक्ष्य दोष नहीं होता है।

हरि०–नौकादावन्नादिकमश्नतां न दोष इत्याह करीत्यादिना। करिपृष्ठे हस्तिन: पृष्ठे तथाऽनेक्यैरुद्वाह्येषु पाषाणेषु दारुषु च तथा दुष्याणां यवनादीनामलक्षितेऽपि यवनादीनामिदं भवति यवनोदयोऽत्र वर्त्तन्ते एवमविज्ञातेऽपि स्थाने यद्वा दुष्याणां मलमूत्रादीनामलक्षितेऽपि सत्स्वपि तेषु तेषामविज्ञानेऽपि भक्ष्यदोषो न विद्यते॥१३२॥

पशूनभक्ष्यमांसांश्च व्याधियुक्तानपि प्रिये।
न हन्याद्देवतार्थेऽपि हत्वा च पातकी भवेत्॥१३३॥

पद्मा–हे प्रिये! जिन पशुओं का मांस अभक्ष्य है, जो पशुरोगयुक्त हैं उन्हें देवता के लिये भी न मारे। मारने से पाप होता है।

हरि०—अथ देवतार्थमभक्ष्यमांसान् व्याधियुतांश्च पशून्निघ्नतः पातकित्वमाह पशूनित्यादिना। हे प्रिये! अभक्ष्यमांसान् व्याधियुक्तांश्चपशून् देवतार्थे न हन्यात्। अपीति निश्चितम्। ननु हनने को दोषस्तत्राह हत्वेति। हत्वा च जनः पातकी भवेत्।।१३३।।

कृच्छ्रव्रतं नरः कुर्याद् गोवधे बुद्धिपूर्वके ।
अज्ञानादाचरेदर्धं व्रतं शङ्करशासनात् ।।१३४।।

पद्या—मनुष्य यदि जानबूझकर गाय की हत्या करे तो कृच्छ्रव्रत करे। यदि अज्ञानपूर्वक गोवध हो जाये तो अर्धकृच्छ्रव्रत करे। ऐसा भगवान् शंकर ने कहा है ।

हरि०—अथ ज्ञानाज्ञानाकृतगोवधप्रायश्चित्तमाह कृच्छ्रेत्यादिना प्रिये इत्यन्तेन। ज्ञानपूर्वके गोवधे सति नरः कृच्छ्रव्रतं कुर्यात्। अज्ञानाद्गोवधे सति शङ्करशासनादर्धं व्रतमाचरेत् कुर्यात्।।१३४।।

न केशवपनं कुर्यात् न नखच्छेदनं तथा ।
न क्षारयोगं वसने यावन्न व्रतमाचरेत् ।।१३५।।

पद्या—जब तक कृच्छ्रव्रत को न कर ले, तब तक दाढ़ी तथा सिर के केश न कटवाये न ही नाखून कटाये। वस्त्रादि को भी साबुन से न धोये ।

हरि०—**न केशेति**। यावद् व्रतं नाचरेत् तावत् केशवपनं केशानां मुण्डनं न कुर्यात् तथा नखच्छेदनं न कुर्यात् वसने वस्त्रे क्षारयोगं च न कुर्यात्।।१३५।।

उपवासैर्नयेत् मासं मासमेकं कणाशनैः ।
मासं भैक्षान्नश्नीयात् कृच्छ्रव्रतमिदं शिवे!।।१३६।।

पद्या—हे शिवे! एक महीना उपवास करके बिताये, एक महीना कणभोजन करके बिताये, एक महीना भिक्षा का अन्न खाकर बिताये—यही कृच्छ्रव्रत का नियम है ।

हरि०—ननु किं नाम कृच्छ्रव्रतमतस्तन्निरूपयति उपवासैरित्यादिना। हे शिवे उपवासैर्मासमेकं नयेत् यापयेत्। मासमेकं कणाशनैर्नयेत्। मासमेकं च भैक्षान्नं भिक्षासम्पन्नमन्नमश्नीयात्। इदं कृच्छ्रव्रतं ज्ञेयम्।।१३६।।

व्रतान्ते वापितशिराः कौलान् ज्ञातींश्च बान्धवान् ।
भोजयित्वा विमुक्तः स्याद् ज्ञानगोवधपातकात् ।।१३७।।

पद्या—व्रत पूरा होने पर सिर को मुँड़ा कर कौलों को, स्वजाति वालों को तथा बन्धुबान्धवों को भोजन कराये। इससे जानबूझकर की गयी गोहत्या के पाप से मुक्ति मिलती है ।

हरि०—**व्रतान्ते इति**। व्रतान्ते व्रतसमाप्तौ वापितशिराः मुण्डितमस्तकः सन् कौलान् ज्ञातीन् सगोत्रांश्च भोजयित्वा ज्ञानगोवधपातकाज्जनो विमुक्तः स्यात्।।१३७।।

अपालनवधाद्दोषे शुध्येदष्टोपवासतः ।
बाहुजाद्या विशुध्येयुः पादन्यूनक्रमात् प्रिये! ।।१३८।।

पद्या—हे प्रिये! अच्छी प्रकार पालन न करने से हुई गाय की हत्या का पाप आठ दिन

के उपवास से शुद्ध हो जाता है, किन्तु क्षत्रिय छः दिन में, वैश्य चार दिन में तथा शूद्र दो दिन के उपवास से शुद्ध हो जाता है। आठ दिन का नियम केवल ब्राह्मण के लिए है।

हरि०–अपालनेति। गोरपालनवधादरक्षणतो वधादष्टोपवासेन शुध्येत्। हे प्रिये बाहुजाद्याः क्षत्रियादयः पादन्यूनक्रमाद्विशुध्येयुः। क्षत्रियादयः क्रमतः पादपादन्यूनं व्रतं करणीयमिति भावः॥१३८॥

गजोष्ट्रमहिषा श्वांश्च हत्वा कौलिनि: कामतः ।
उपवासैस्त्रिभिः शुध्येन्मानवः कृतकिल्विषः ।।१३९।।

पद्मा–हे कौलिनि! अपनी इच्छानुसार हाथी, ऊँट, भैंस तथा घोड़ा–इन जीवों की हत्या करने वाला मनुष्य तीन दिन के उपवास से शुद्ध होता है ।

हरि०–अथ गजोष्ट्रादिवधप्रायश्चित्तमाह गजोष्ट्रेत्यादिना। हे कौलिनि गजोष्ट्रमहिषाश्वान् बृहत्कायान् कामतो हत्वा कृतकिल्विषो मानवस्त्रिभिरुपवासैः शुध्येत्॥१३९॥

मृगमेषाजमार्जारान् निघ्नन्नुपवसेदहः ।
मयूरशुकहंसांश्च सज्योतिरशनं त्यजेत् ।।१४०।।

पद्मा–मृग (हिरण) मेष (भेड़) बकरे तथा बिल्ली की हत्या करने पर एक दिन का उपवास करे। मयूर (मोर), शुक (तोता), हंस की हत्या करने पर सूर्योदय से सूर्यास्त तक उपवास करे ।

हरि०–अथ मृगमेषादिवधप्रायश्चित्तमाह मृगेत्यादिना । मृगमेषाजमार्जारान् हरिणाविच्छागविड़ालान् निघ्नन्नरोऽह्रेकदिनमुपवसेत्। मयूरशुकहंसांश्च निघ्नन्नरो ज्योतिषा सूर्येण सह वर्तमानं सज्योतिर्दिनमशनं त्यजेत्। दिवसेऽशनं त्यजन्नस्तं याते सूर्ये भुञ्जीतेत्यर्थः। "ज्योतिर्ना भास्करेऽग्नौ च क्लीबं मद्योत दृष्टिष्विति" रुद्रः ॥१४०॥

निहत्य सास्थिजन्तूंश्च नक्तमद्यात् निरामिषम् ।
निरस्थिजीविनो हत्वा मनस्तापेन शुद्ध्यति ।।१४१।।

पद्मा–अस्थि (हड्डी) युक्त जीव की हत्या करने पर एक रात्रि तक निरामिष भोजन करे, अस्थिहीन जीव की हत्या करने पर केवल पश्चात्ताप करने से ही शुद्धि होती है ।

हरि०–अथ कृकलासाद्यस्थिमत्क्षुद्रजन्तून्निरस्थिजन्तूंश्च निघ्नतो नरस्य प्रायश्चित्तमाह निहत्येत्यादिना। निरस्थिसाहचर्यात् सास्थिजन्तूनस्थिमतः कृकलासादीन् क्षुद्रान् शरीरिणो निहत्य नक्तं रात्रौ निरामिषमामिषवर्जितमद्यात् भुञ्जीत। मयूरादिहननापेक्षया कृकलासादिहनने प्रवृत्तेराधिक्यात्तद्धनननिमित्तकदण्डस्य गुरुत्वमवगन्तव्यम्। निरस्थिजीविनोऽस्थिरहितजन्तून् हत्वा मनस्तापेन शुध्यति॥१४१॥

पशुमीनाण्डजान्निघ्नन् मृगयायां महीपतिः ।
न पापार्हो भवेद्देवि! राज्ञो धर्मः सनातनः ।।१४२।।

पद्मा–हे देवि! जो राजा मृगया (आखेट, शिकार) के समय पशु, मत्स्य (मछली)

तथा अण्डे से उत्पन्न हुए जीवों की हत्या करे, वह पापी नहीं होता है; क्योंकि राजाओं का यह सनातन धर्म है।

हरि०–ननु मृगयायां मृगमीनादींस्निघ्नतो महीपालस्य मृगादिवधहेतुकं पापं भवेन्नवेति पृच्छन्तीं प्रत्याह पश्वित्यादिना। हे देवि पशुमीनाण्डजान् मृगव्याघ्रादिमत्स्यपक्षिणो मृगयायां निघ्नन् महीपतिः पापार्हो न भवेत्। यतोऽहं राज्ञः सनातनो नित्यो धर्मो भवति।।१४२।।

देवोद्देशं विना भद्रे! हिंसां सर्वत्र वर्जयेत् ।
कृतायां वैधहिंसायां नरः पापैर्न लिप्यते ।।१४३।।

पद्मा–हे भद्रे! देवता के देने के उद्देश्य के बिना जो हिंसा की जाती है, वह वर्जित है। वैध हिंसा करने से मनुष्य पापकर्म में लिप्त नहीं होता है।

हरि०– अथाऽवैधहिंसायाः पापजनकत्वादकर्तव्यत्वमाह देवेत्यर्धेन। हे भद्रे भद्रकारिणि देवोद्देश्यं कर्म विना सर्वत्र हिंसा वर्जयेत्। वैधहिंसायाः पापाजनकत्वात् कर्तव्यतामाह कृतायामित्याद्यर्धेन। वैधहिंसायां कृतायां सत्यां नरः पापैर्न लिप्यते ।।१४३।।

संकल्पितव्रतापूर्तौ देवनिर्माल्यलङ्घने ।
अशुचौ देवतास्पर्शे गायत्रीजपमाचरेत् ।।१४४।।

पद्मा–जो मनुष्य संकल्प किया हुआ व्रत पूरा न कर सके, देवनिर्माल्य को लाँघ जाये अशौच के समय में देवता की प्रतिमा का स्पर्श कर ले, तो गायत्रीमंत्र का जप करे।

हरि०–ननु सङ्कल्पितं व्रतमसमापयतो देवनिर्माल्यं लङ्घयतोऽशौचानपगमे देवताः स्पृशतश्च पुंसः कथं शुद्धिस्तत्राह सङ्कल्पितेत्यादिना। सङ्कल्पितव्रतापूर्तौ सङ्कल्पितस्य व्रतस्याऽसमाप्तौ देवनिर्माल्यलङ्घने सति अशुचावशौचे देवतास्पर्शे च गायत्रीजपमाचरेत्।।१४४।।

माता पिता ब्रह्मदाता महान्तो गुरवः स्मृताः ।
निन्दन्नेतान् वदन् क्रूरं शुध्येत् पञ्चोपवासतः ।।१४५।।

पद्मा–माता, पिता तथा ब्रह्मदाता–ये तीन महागुरु कहे गये हैं। जो इनकी निन्दा करता है या कठोर वचन कहता है वह पाँच दिन के उपवास से शुद्ध होता है।

हरि०–अथ महतो गुरुत्रिरूपर्यस्तान्निन्दतः क्रूरं ब्रुवतश्च पुंसः प्रायश्चित्तमाह मातेत्यादिना। माता जननी पिता जनको ब्रह्मदाता वेदाध्यापकश्चैते महान्तो गुरवः स्मृताः। एतान् महागुरु-न्निन्दन् क्रूरं वदंश्च नरः पञ्चोपवासतः शुध्येत् ।।१४५।।

एवमन्यान् गुरुन् कौलान् विप्रान् गर्हन्नपि प्रिये!।
सार्धद्वयोपवासेन मुक्तो भवति पातकात् ।।१४६।।

पद्मा–हे प्रिये! जो मनुष्य इस प्रकार अन्य गुरु की, कौल अथवा ब्राह्मण की निन्दा करता है अथवा कटु वचन कहता है, वह ढाई दिन के उपवास से शुद्ध होता है।

हरि०–अथ मात्राद्यन्यगुरुकौलब्राह्मणनिन्दकानां प्रायश्चित्तमाह एवमित्यादिना। हे प्रिये एवमन्यान् मात्रादिभिन्नान् गुरुन् कौलान् विप्रांश्च गर्हन्निन्दन् अपि वा क्रूरं वदंश्च नरः सार्धद्वयोपवासेन पातकात् मुक्तो भवति ।।१४६।।

वित्तार्थी मानवो देशानखिलान् गन्तुमर्हति ।
निषिद्धकौलिकाचारं देशं शास्त्रमपि त्यजेत् ।।१४७।।

पद्मा—धन के इच्छुक मनुष्य सभी देशों में जा सकते हैं, किन्तु जिस देश में या शास्त्र में कौलाचार निषिद्ध हो; उस देश एवं उस शास्त्र का परित्याग कर दे ।

हरि०—अथ वित्तोदेश्यकसर्वदेशगमनार्हस्यपि मानवस्य कौलाचार रहितदेशाटनानर्हत्वमाह वित्तार्थीत्यादिना। वित्तार्थी मानवोऽखिलान् सर्वान् देशान् गन्तुमर्हति। निषिद्धः कौलिकानामाचारो यत्र तं देशं तादृशं शास्त्रमपि मानवस्त्यजेत् ।

गच्छंस्तु स्वेच्छया देशे निषिद्धकुलवर्त्मनि ।
कुलधर्मात्पतेद्भूयः शुध्येत् पूर्णाभिषेकतः ।।१४८।।

पद्मा—जिस देश में कुलधर्म एवं कौलाचार निषिद्ध है उस देश में इच्छानुसार जाने पर कुलधर्म से पतित होना पड़ता है। पुनः पूर्णाभिषेक होने पर ही शुद्धि होती है ।

हरि०—अथ धनलोभेन निषिद्धकौलिकाचारं देशं गच्छतो नरस्य कुलधर्मात् पतितत्त्वं पुनः पूर्णाभिषेकतः पूततत्त्वञ्चाह गच्छन्नित्यादिना। निषिद्धकुलवर्त्मनि देशे स्वेच्छया गच्छंस्तु नरः कुलधर्मात् पतेत् भूयः पुनः पूर्णाभिषेकतः शुध्येत्।।१४८।।

तपनोदयमारभ्य यामाष्टकमभोजनम् ।
उपवासः स विज्ञेयः प्रायश्चित्ते विधीयते ।।१४९।।

पद्मा—सूर्योदय से लेकर आठ पहर तक निराहार रहना ही उपवास कहा गया है। प्रायश्चित के लिये यही विधि है ।

हरि०—अथोक्ततत्तच्छ्लोकेष्वाकाङ्क्षितत्वादुपवासं निरूपयति तपनोदयमित्यादिना। तपनोदयं सूर्योदयमारभ्य यामाष्टकं प्रहराष्टकं यदभोजनं स उपवासो विज्ञेयः। प्रायश्चित्ते स विधीयते क्रियते।।१४९।।

पिबंस्तोयाञ्जलिञ्चैकं भक्षन्नपि समीरणम् ।
मानवः प्राणरक्षार्थं न भ्रश्येदुपवासतः ।।१५०।।

पद्मा—जो मनुष्य प्राण रक्षा के लिए एक अञ्जलि जल पी ले अथवा वायुभक्षण करे तो वह उपवास से भ्रष्ट नहीं होगा ।

हरि०—अथ एकाञ्जलितोयपानेनोपवासस्याऽविनाशित्वं कथयन्नाह पिबन्निति। प्राणरक्षणार्थमेकं तोयाञ्जलिं पिबन् समीरणं वायुं चापि भक्षन्मानवः उपवासतो न भ्रश्येत् पतेत्। एकाञ्जलितोयपानादुपवासो न विनश्येदिति तत्त्वम्।।१५०।।

उपवासासमर्थश्चेद्रुजा वा जरसाऽपि वा ।
तदा प्रत्युपवासञ्च भोजयेद्द्वादश द्विजान् ।।१५१।।

पद्मा—यदि वृद्धावस्था अथवा शारीरिक कष्ट से उपवास करने में असमर्थ हो, तो प्रत्येक उपवास के अनुकल्प में बारह ब्राह्मणों को भोजन कराये ।

हरि०—अथ रोगाद्भिोपवासं कर्तुमशकनुवता जनेन प्रत्युपवासं द्वादशब्राह्मणन् भोजयित्वा इत्याह उपवासेत्यादिना। रुजा रोगेण वा जरसा जीर्णत्त्वेन वा चेद्यदि उपवासासमर्थो नरः स्यात् तदा प्रत्युपवासमुपवासं प्रति द्वादश द्विजान् ब्राह्मणान् भोजयेत्॥१५१॥

परनिन्दां निजोत्कर्षं व्यसनायुक्तभाषणम् ।
अयुक्तं कर्म कुर्वाणो मनस्तापैर्विशुध्यति ॥१५२॥

पद्या—जो मनुष्य परनिन्दा, स्वयं की प्रशंसा, दुःखदायक अनुचित बात कहे या अवैध कार्य करे तो इनकी शुद्धि केवल मन से पछताने से होती है ।

हरि०—अथ परनिन्दानिजोत्कर्षादिकं कुर्वतः प्रायश्चित्तमाह परनिन्दा मित्यादिना। परस्यान्यस्य निन्दां निजोत्कर्षमात्मोत्कृष्टतां व्यसनायुक्तभाषणं परीवादादिसम्बद्धकथनम् अयुक्तमनुचितं कर्म च कुर्वाणो नरो मनस्तापैर्विशुध्यति॥१५२॥

अन्यानि यानि पापानि ज्ञानाज्ञानकृतान्यपि ।
नश्यन्ति जपनाद्देव्याः सावित्र्याः कौलभोजनात् ॥१५३॥

पद्या—इनके अतिरिक्त ज्ञान अज्ञान में किये गये पाप गायत्री मंत्र की उपासना एवं कौल भोजन द्वारा नष्ट हो जाते हैं ।

हरि०—अथ ज्ञानाज्ञानकृतावशिष्टपापानां गायत्रीजपात् कौलानामशनाच्च विनाश इत्याह अन्यानीत्यादिना। ज्ञानाज्ञानाभ्यां कृतान्यन्यान्यपि यानि पापानि सावित्र्याः सवितृदेवताया गायत्र्या देव्या जपनात् कौलानां भोजनाच्च नश्यन्ति ॥१५३॥

सामान्यनियमान् पुंसां स्त्रीषु षण्डेषु योजयेत् ।
योषितां तु विशेषोऽयं पतिरेको महागुरुः ॥१५४॥

पद्या—पुरुषों के लिये जो सामान्य नियम कहे गये हैं, वहीं स्त्रियों तथा नपुंसकों के लिये प्रयोग किए जाएंगे। स्त्रियों के विषय में विशेष बात यह है उनके पति ही उनके महागुरु हैं ।

हरि०—अथ पुरुषाणां साधारणनियमाः स्त्रीषु नपुंसकेष्वपि योजयितव्या इत्याह सामान्येत्यादिना। पुंसां पुरुषाणां सामान्यनियमान् स्त्रीषु षण्डेषु नपुंसकेषु च योजयेत्। योषितां स्त्रीणान्तु पतिरेको महागुरुः स्मृतोऽयं विशेषः॥१५४॥

महारोगान्विता ये च ये नराश्चिररोगिणः ।
स्वर्णदानेन पूताः स्युर्दैवे पैत्र्येऽधिकारिणः ॥१५५॥

पद्या—महारोग से ग्रस्त तथा सदैव के लिये रोगी मनुष्य स्वर्णदान करके पवित्र हो जाते हैं तथा दैव एवं पितृकर्म में अधिकारी होते हैं ।

हरि०—अथ कुष्ठादिमहारोगान्वितचिररोगिणोरपि सुवर्णदानेन पूतत्वसत्त्वाद्दैव पितृकर्माधिकारित्वमाह महारोगेत्यादिना। ये नरा महारोगान्विता ये च चिररोगिणस्ते स्वर्णदानेन पूताः सन्तो दैवे पैत्र्ये च कर्मणि अधिकारिणः स्युः॥१५५॥

अपघातमृतेनापि दूषितं विद्युदग्निना ।
गृहं विशोधयेद्धोमैर्व्याहृत्या शतसंख्यकैः ।।१५६।।

पद्मा—यदि किसी के घर में सर्प काटने, सिंह व्याघ्रादि के मारने, फाँसी आदि के लगाने से अपमृत्यु हुई हो अथवा बिजली गिरी हो तो उस घर को **भूः स्वाहा, भुवः स्वाहा, स्वः स्वाहा** इत्यादि सौ व्याहृतियों के द्वारा होम कर शुद्ध करे ।

हरि०—नन्वपघातमृतेन विद्युदग्निना च दूषितस्य वेश्मनः कथं शुद्धिस्तत्राह अपघातेत्यादिना। अपघातमृतेनापघातप्राप्तमृत्युना सर्पव्याघ्रोद्बन्धनादिमृतेनेतिं यावत्। विद्युदग्निना चापि दूषित गृहं व्याहृत्या भूराद्यैः शतसंख्यकैर्होमैर्विशोधयेत्।।१५६।।

वापीकूपतडागेषु सास्थ्नां शवनिरीक्षणात् ।
उद्धृत्य कुणपं तेभ्यस्ततस्तान् परिशोधयेत् ।।१५७।।

पद्मा—यदि बावली, कुएं तथा तालाबादि में अस्थि (हड्डी) युक्त शव दिखाई दे, तो उस शव को बाहर निकाल कर बावली, कुएं तथा तालाब को शुद्ध करे ।

हरि०—अथास्थिमज्जन्तुशवदूषितवापीकूपादीनां सामान्यतः शोधनमाह वापीत्यादिना। वापीकूपतडागेषु सास्थ्नामस्थिमतां शवनिरीक्षणात् कणप्रदर्शनात्तेभ्यो वाप्यादिभ्यः कुणपं शवमुद्धृत्य ततस्तान् वाप्यादीन् परिशोधयेत्।।१५७।।

पूर्णाभिषेकमनुभिर्मन्त्रितैः शुद्धवारिभिः ।
पूर्णैस्त्रिसप्तकुम्भैस्तान् प्लावयेदिति शोधनम् ।।१५८।।

पद्मा—उनके शुद्ध करने का विधान यह है कि इक्कीस घड़े शुद्ध जल से भरे हुए हों तथा उनको पूर्णाभिषेक के मंत्र से अभिमंत्रित करके उनको जलाशय में डाल दे ।

हरि०—कथं शोधयेदित्याकाङ्क्षायां शोधनप्रकारमाह पूर्णेत्यादि। पूर्णाभिषेकमनुभिः पूर्णाभिषेकस्य मन्त्रैर्मन्त्रितैः शुद्धवारिभिः पवित्रजलैः पूर्णैस्त्रिसप्तकुम्भैरेकविंशति घटैस्तान् वाप्यादीन् प्लावयेत् इति शोधनं अयं शोधनप्रकारः।।१५८।।

यदि स्वल्पजलास्ते स्युः शवदुर्गन्धिदूषिताः ।
सपङ्कं सलिलं सर्वमुद्धृत्याप्लावयेत्तु तान् ।।१५९।।

पद्मा—यदि कूप बावली आदि से जल बहुत कम हो तथा वह शव की दुर्गन्ध से दूषित हो गया हो तो कीचड़ सहित सभी जल बाहर निकाल कर उपरोक्त विधि से अभिमन्त्रित जल में डाले ।

हरि०—अथाल्पजलत्वगजमितबहुजलत्वाभ्यां वाप्यादीनां भेदवत्त्वाच्छोधनविशेषमाह यदीत्यादिना श्लोकद्वयेन। शवदुर्गन्धदूषितास्ते वाप्यादयो यदि स्वल्पजलाः स्युस्तदा तेभ्यः सपङ्कं सर्वं सलिलं जलमुद्धृत्योक्तप्रकारेण तानाप्लावयेत् ।।१५९।।

सन्ति भूरीणि तोयानि गजदघ्नानि तेषु च ।
शतकुम्भजलोद्धारैरभिषेकेण शोधयेत् ।।१६०।।

पद्या—यदि पहले कहे गये जलाशयों में हाथी बराबर बहुत जल हो, तो एक सौ घड़े जल निकाल कर पहले कहे गये अभिषेक मन्त्रों से पवित्र इक्कीस घड़े जल उसमें डालकर शुद्ध करे।

हरि०—सन्तीति। तेषु वाप्यादिषु चेत् यदि गजदघ्नानि हस्तिपरिमाणानि भूरीणि बहूनि तोयानि जलानि सन्ति तदा शतकुम्भजलोद्धारैरेकविंशतिकुम्भजलैरभिषेकेण च तान शोधयेत्॥१६०॥

यद्येवं शोधिता न स्युर्मृतस्पृष्टजलाशयाः।
अपेयसलिलास्तेषां प्रतिष्ठामपि नाचरेत्॥१६१॥

पद्या—शव से स्पर्श किया हुआ जलाशय यदि इस प्रकार भी शुद्ध न हो तो न तो उसका जल पिये और न ही उस जलाशय की प्रतिष्ठा करे।

हरि०—अथाशोधितवाप्यादीनामपेयजलत्वं प्रतिष्ठनर्हत्वञ्चाह यदीत्यादिना। मृतस्पृष्टजलाशयाः शवस्पृष्टवाप्यादयो यद्येवं शोधिता न स्युस्तदा तेऽपेय सलिला भवन्ति। तेषामशोधितवाप्यादीनां प्रतिष्ठामपि नाऽऽचरेन्न कुर्यात्॥१६१॥

स्नानमेषु जलैरेषां कुर्वन् कर्म वृथा भवेत्।
दिनमेकं निराहारः शुध्येत् पञ्चामृताशनात्॥१६२॥

पद्या—इस प्रकार के अशुद्ध जल से स्नान करने से मनुष्य द्वारा किया गया कोई भी कर्म निरर्थक हो जाता है। यदि कोई इस प्रकार के जल में स्नान कर ले, तो एक दिन निराहार रहकर पञ्चामृत को पीने से उसकी शुद्धि होती है।

हरि०—अथाशोधितवाप्यादि जलैः स्नानादिकं कुर्वतो नरस्य प्रायश्चित्तं क्रियमाणस्य कर्मणो निष्फलत्वञ्चाह स्नानमित्यादिना। एष्वशोधितवाप्यादिषु स्नानं कुर्वन् तेषां च जलैरन्यच्च कर्म कुर्वन् नरो दिनमेकं निराहारः सन् पञ्चामृताशनात् शुध्येत्। क्रियमाणं च कर्म वृथा भवेत्॥१६२॥

याचकं धनिनं दृष्ट्वा वीरं युद्धपराङ्मुखम्।
दूषकं कुलधर्माणां मद्यपाञ्च कुलस्त्रियम्॥१६३॥
मित्रद्रोहकरं मर्त्यं स्वयं पापरतं बुधम्।
पश्यन् सूर्यं स्मरन् विष्णुं सचैलं स्नानमाचरेत्॥१६४॥

पद्या—जो धनवान् होकर भी याचना करता है, वीर होकर भी युद्ध से मुख मोड़ता है, जो कुलधर्म को दूषित करता है, जो कुलस्त्री होकर भी मद्यपान करती है, जो मित्र से द्रोह करता है, जो पण्डित (विद्वान) होकर भी पापकर्म करता है। ऐसे पापी मनुष्य को यदि कोई मनुष्य देख ले तो वह सूर्य का दर्शन कर भगवान् विष्णु को स्मरण करे तथा पहने हुए वस्त्रों सहित स्नान करे। ऐसा करने पर मनुष्य पापमुक्त होगा।

हरि०—अथ दृष्टधनिकयाचकयुद्धपराङ्मुखवीरादिकस्य पुंसः प्रायश्चित्तमाह

याचकमित्यादिश्लोकद्वयेन। याचकं भिक्षुकं धनिनं दृष्ट्वा तथा युद्धपराङ्मुखं रणविमुखं वीरं शूरं कुलधर्माणां दूषकं जनं कुलस्त्रियञ्च मद्यपां मित्रद्रोहकरं मर्त्यं स्वयं पापरतं बुधं पण्डितं च दृष्ट्वा सूर्यं पश्यन् विष्णुं स्मरन्नरः सचेलः सवस्त्रः स्नानमाचरेत्।।१६३।।१६४।।

खरकुक्कुटकोलांश्च विक्रीणन्तो द्विजातयः ।
नीचवृत्तिं चरन्तोऽपि शुध्येयुस्त्रिदिनव्रतात् ।।१६५।।

पद्मा—जो द्विज (ब्राह्मण, क्षत्रिय एवं वैश्य) होकर भी गधे, मुर्गे और सूअर को बेचता है अथवा अन्य कोई नीच कर्म करता है, वे तीन दिन के व्रत से शुद्ध हो जाते हैं।

हरि०—ननु गर्दभादीन् विक्रीणतां नीचवृत्तिं च कुर्वतां द्विजानां कथं शुद्धिस्तत्राह खरेत्यादिना। खरकुक्कुटकोलान् गर्दभचरणायुधशूरकरान् विक्रीणन्तो नीचवृत्तिञ्चापि चरन्तः कुर्वन्तो द्विजातयो ब्राह्मणस्त्रिदिनव्रतात् शुध्येयुः।।१६५।।

दिनमेकं निराहारो द्वितीयं कणभोजनः ।
अपरन्तु नयेदद्भिस्त्रिदिनव्रतमम्बिके ।।१६६।।

पद्मा—हे अम्बिके! तीन दिन व्रत का विधान यह है कि प्रथम दिन निराहार रहे, दूसरे दिन कण भोजन करे तथा तीसरे दिन जल पीकर रहे।

हरि०—ननु किं त्रिदिनव्रतमत आह दिनमित्यादि। निराहारः सन् दिनमेकं नयेत् यापयेत्। कणभोजनः सन् द्वितीयं दिनं नयेत्। अपरन्तु तृतीयं दिनन्तु अद्भिर्जलैर्नयेत्। हे अम्बिके त्रिदिनव्रतमिदं स्मृतम्।।१६६।।

गृहेऽनुद्घाटितद्वारेऽनाहूतः प्रविशन्नरः ।
वारितार्थप्रवक्ताऽपि पञ्चाहमशनं त्यजेत् ।।१६७।।

पद्मा—यदि कोई मनुष्य बन्द द्वार वाले घर में बिना बुलाये प्रवेश करे या जो बात बनाने से मना किया गया है उसे कहे तो उसे पाँच दिन तक अन्न का त्याग करना चाहिए।

हरि०—अथ पिहितद्वारागारेऽनाहूतस्यैव प्रविशतो वारितार्थं कथयतश्च प्रायश्चित्तमाह गृह इत्यादिना। अनुद्घाटितद्वारे रुद्धद्वारे गृहे अनाहूत एव प्रविशन्नरो वारितार्थप्रवक्ताऽपि वारितस्यार्थस्य प्रकथयितापि नरः पञ्चाहमशनं त्यजेत्।।१६७।।

आगच्छतो गुरुन् दृष्ट्वा नोतिष्ठेद्यो मदान्वितः।
तथैव कुलशास्त्राणि शुध्येदेकोपवासतः ।।१६८।।

पद्मा—जो मनुष्य घमण्ड के कारण आने वाले गुरुजन को देखकर खड़ा नहीं होता और जो कुलशास्त्र को आता हुआ देखकर खड़ा नहीं होता, वह एक दिन के उपवास से शुद्ध होता है।

हरि०—अथागच्छतः पित्रादीन् कुलशास्त्राणि च समीक्ष्याऽनुत्तिष्ठतः पुंसः प्रायश्चित्तमाह आगच्छ इत्यादिना। आगच्छतो गुरुन् पित्रादीन् तथैवागच्छन्ति कुलशास्त्राणि च दृष्ट्वा यो मदान्वितो नोतिष्ठेत् स एकोपवासतः शुध्येत्। मदान्वित इत्यनेन रोगादिनिमित्तकयाऽशक्तयाऽनुत्तिष्ठतस्तु न दोषभागित्वमिति ध्वनितम्।।१६८।।

एतस्मिन् शाम्भवे शास्त्रे व्यक्तार्थपदबृंहिते ।
कूटेनार्थं कल्पयन्तः पतिता यान्त्यधोगतिम् ।।१६९।।

पद्मा—भगवान् शिव के इस शास्त्र में सभी अर्थ भलीभाँति लिखे हैं। जो इसका कूट अर्थ करेंगे, वे पतित होकर अधोगति को प्राप्त होंगे ।

हरि०—अधुना शम्भुप्रोक्तेऽस्मिन् शास्त्रे शब्दव्याजेनाऽर्थान्तरं कल्पयतां पतितत्वमधोगामित्वञ्चाह एतस्मिन्नित्यादिना। व्यक्तार्थपदबृंहिते विस्पष्टार्थपदवर्धिते शाम्भवे शम्भुप्रोक्ते एतस्मिन् शास्त्रे कूटेन शब्दव्याजेनार्थं कल्पयन्तो नराः पतिताः सन्तोऽधोगतिं यान्ति-

मायानिश्चलयन्त्रेषु कैतवानृतराशिषु ।
अयोधने शैलशृङ्गे सीराङ्गे कूटमस्त्रियाम् ।।इत्यमरः।।१६९।।

इदं ते कथितं देवि! सारात्सारं परात्परम् ।
इहामुत्रार्थदं धर्म्यं पावनं हितकारकम् ।।१७०।।

इति श्रीमहानिर्वाणतन्त्रे सर्वतन्त्रोत्तमोत्तमे सर्वधर्मनिर्णयसारे श्रीमदाद्या-सदाशिवसंवादे स्वपरानिष्टजनकपापप्रायश्चित्तकथनं नाम एकादशोल्लासः।।११।।

पद्मा—हे देवि! तुमसे मैंने जो कहा है, वह सार का भी सार है और श्रेष्ठ से भी श्रेष्ठ धर्म है। यह पवित्र करने वाला, हितकारक और इह लोक तथा परलोक में भी परमार्थ देने वाला है ।

इस प्रकार श्रीमहानिर्वाणतन्त्र के प्रायश्चित्त कथन नामक एकादश उल्लास की अजय कुमार उत्तम रचित पद्मा हिन्दी व्याख्या पूर्ण हुई।।११।।

हरि०—प्रकरणार्थमुपसंहरन्नाह इदमित्यादिना। हे देवि सारात्सारं न्याय्यादपि न्याय्यं परात्परमुत्तमादप्युत्तमं इहामुत्रार्थदमिहलोके परलोके च फलदं धर्म्यं धर्मादनयेतं पावनं पावित्र्यकारकं हितकारणमिदं ते तुभ्यं कथितम्। "सारो बले स्थिरांशे च न्याय्ये क्लीबं वरे त्रिष्वित्यमरः"। "अर्थोऽभिधेयरैवस्तु प्रयोजननिवृत्तिष्वित्यमरः"।।१७०।।

इति श्रीमहानिर्वाणतन्त्रटीकायाम् एकादशोल्लासः।

द्वादशोल्लासः

श्रीसदाशिव उवाच

भूयस्ते कथयाम्याद्ये ! व्यवहारान् सनातनान् ।
यान् रक्षन् प्रविदन्राजा स्वच्छदं पालयेत् प्रजाः।।१।।

पद्या—हे आद्ये! मैं तुमसे पुनः सनातन व्यवहार को कहता हूँ। इस व्यवहार की रक्षा करने से राजा स्वच्छन्द होकर प्रजा का पालन कर सकता है॥१॥

हरि०—ॐ नमो ब्रह्मणे ।

इदानीं लोकशुभाकाङ्क्षया परमकारुणिको महादेवः सनातनव्यवहारान् पार्वतीं प्रति पुनः कथयितुमारभते भूय इत्यादिना। हे आद्ये! ते तुभ्यं तवाग्रे वा तान् सनातनान् शाश्वतान् व्यवहारान् भूयः पुनरहं कथयामि यान् व्यवहारान् रक्षन् पालयन् प्रविदन् प्रजानन् राजा स्वच्छन्दं स्वैरं प्रजाः पालयेद्रक्षेत्॥१॥

नियमेन विना राज्ञो मानवाः धनलोलुपाः ।
मिथस्ते विवदिष्यन्ति गुरुस्वजनबन्धुभिः ।।२।।
व्यतिघ्नन्ति तदा देवि! स्वार्थिनो वित्तहेतवे ।
पापाश्रया भविष्यन्ति हिंसया च जिहीर्षया ।।३।।
अतस्तेषां हितार्थाय नियमो धर्मसम्मतः ।
नियोज्यते यमाश्रित्य न भ्रश्येयुः शुभान्नराः ।।४।।

पद्या—राजा के नियमों के बिना मनुष्य धन के लालची होकर गुरुजनों, स्वजनों तथा बन्धुबान्धवों के साथ झगड़ा करेंगे। हे देवि! धन के लिए वे एक दूसरे को मारेंगे तथा हिंसा व धन चुराने की इच्छा के कारण पापी होंगे। इसलिए मनुष्यों के हित के लिए मैं धर्मसम्मत राजनियम बनाता हूँ। इन नियमों का पालन करने से मनुष्यों का कभी भी अमंगल (अकल्याण) नहीं होगा॥२-४॥

हरि०—महीपतेर्नियमस्याऽभावाद् द्रव्याभिलाषिणो मनुजाः पित्रादिभिः सार्धं मिथो विवादादिकं करिष्यन्ति तन्निराकरणाय लोकहिताकाङ्क्षः सदाशिवो नियमं विदधातीत्येवाह नियमेनेत्यादिना शुभान्नराः इत्यन्तेन श्लोकत्रयेण। हे देवि! यतो राज्ञो नृपस्य नियमेन विना धनलोलुपाः वित्तविषयकलालसावन्तस्ते मानवा मनुष्या गुरुस्वजनबन्धुभिः साकं मिथो विवदिष्यन्ति तथा तदा नियमाभावे स्वार्थिनो धनार्थिनस्ते वित्तहेतवे धनार्थं व्यतिघ्नन्ति परस्परं हनिष्यन्ति जिहीर्षया वित्तहरणेच्छया हिंसया च पापाश्रया भविष्यन्ति। अतस्तेषां मानवानां हितार्थाय धर्मसम्मतः स नियमो मया नियोज्यते प्रवर्त्यते यं नियममाश्रित्य नराः शुभाद्भद्रात्र भ्रश्येयुर्न पतेयुः। व्यतिघ्नन्तीत्यत्र वर्तमानसामीप्ये वर्तमानवद्वेति भविष्यति लट्॥२-४॥

दण्डयेत् पापिनो राजा यथा पापापनुत्तये ।
तथैव विभजेद्दायान् नृणां सम्बन्धभेदतः ।।५।।

पद्मा—राजा के पापों के निवारण के लिये जिस प्रकार पापियों को दण्ड देता है, उसी प्रकार मनुष्यों के सम्बन्धभेद के अनुसार दाय अर्थात् सम्पत्ति का भी विभाजन करे।

हरि०—ननु यन्नियमाश्रयणान्मनुष्या भद्रात्र श्रयेयुः कोऽसौ नियमस्तत्राह दण्डयेदित्याना। यथा राजा नराधिपः पापापनुत्तये किल्विषनाशाय पापिनो जनान् दण्डयेत्तथैव नृणां मनुष्याणां सम्बन्धभेदतो दायान् विभवान् विभजेत् विभक्तान् कुर्यात्।'' दायो दाने धने पुंसि वाच्यलिङ्गस्तु दातरि''।।५।।

सम्बन्धो द्विविधो ज्ञेयो विवाहाज्जन्मनस्तथा ।
तत्रौद्वाहिकसम्बन्धादपरो बलवत्तरः ।।६।।

पद्मा—विवाह एवं जन्म के भेद से सम्बन्ध दो प्रकार के होते हैं - विवाहाधीन एवं जन्माधीन। इनमें जन्माधीन सम्बन्ध सबसे अधिक बलवान है ।

हरि०—अथोद्वाहजननाभ्यां दायविभागोपयोगिनः सम्बन्धरूप द्वैविध्यं भाषमाणो महादेवस्तत्र वैवाहिकसम्बन्धतो जननसम्बन्धस्य प्राबल्यं प्रतिपादयति सम्बन्ध इत्यादिना। विवाहात्तथा जन्मनः उत्पत्तेः सम्बन्धो द्विविधो द्विप्रकारको ज्ञेयो बोद्धव्यः। तत्र तयोः सम्बन्धयोरौद्वाहिकसम्बन्धादपरो जन्मसम्बन्धो बलवत्तरो ज्ञेयः।।६।।

दाये तूर्ध्वतनाज्ज्यायान् सम्बन्धोऽधस्तनः शिव ।
अध ऊर्ध्वक्रमादत्र पुमान् मुख्यतरः स्मृतः ।।७।।

पद्मा—हे शिवे! धन के अधिकार में ऊर्ध्वतन संबंध की अपेक्षा अधस्तन संबंध श्रेष्ठ है। इसी प्रकार अधः ऊर्ध्व के क्रम से स्त्रीजाति की अपेक्षा पुरुष जाति ही मुख्य कही गयी है ।

हरि०—दायहरणे उर्ध्वतनसम्बन्धतोऽधोभवस्यैव सम्बन्धस्य ज्येष्ठत्वमधऊर्ध्व क्रमतो योषिद्भ्यः पुरुषस्यैव प्रधानतरत्वं चाह दाये त्वित्यादिना। हे शिवे दाये तु धने तूर्ध्वतनादूर्ध्वभवात् सम्बन्धादधस्तनोऽधोभवः सम्बन्धो ज्यायान् श्रेष्ठः स्मृतः। तुशब्देनाऽभिवादनादावधस्तनात् सम्बन्धादूर्ध्वतनस्यैव सम्बन्धस्य ज्यायस्त्वमिति ध्वनितम्। अत्र दायहरणेऽधऊर्ध्वक्रमात् स्त्रीतः पुमान् पुरुषो मुख्यतरः प्रधानतरः स्मृतः।।७।।

तत्रापि सन्निकर्षेण सम्बन्धी दायमर्हति ।
अनेन विधिना धीरा विभजेयुः क्रमाद्धनम् ।।८।।

पद्मा—इनके मध्य अधिकतर निकट संबन्ध के क्रम से सम्पत्ति (दाय) का अधिकारी होता है। विद्वान् पुरुष इसी विधि के अनुसार विधि पूर्वक धन सम्पत्ति का बँटवारा करते हैं ।

हरि०—नन्वासन्नानासन्नयोर्मध्ये कतरस्य दायार्हत्वं स्यात् तत्राह तत्रापीति। तत्रापि मुख्यतरेषु पुंस्वपि सन्निकर्षेण सान्निध्येन सम्बन्धी दायमर्हति धनार्हो भवति। अनेन पूर्वोक्तेन विधिना धीरा मनीषिणो धनं क्रमाद्विभजेयुर्वण्टयेयुः।।८।।

मृतस्य पुत्रे पौत्रे च कन्यासु पितरि स्थिते ।
भार्यायामपि दायार्हः पुत्र एव न चापरः ।।९।।

पद्मा–यदि मृतक के पुत्र, पौत्र, कन्या, पिता तथा पत्नी जीवित हो तो पुत्र ही धन का अधिकारी होता है, अन्य कोई नहीं ।

हरि०–ननु प्राप्तपञ्चत्वस्य पुंसो विद्यमानानां पत्नीकन्यानां ताततनयपौत्राणाञ्च मध्ये कथमस्य तद्धनग्राहकत्वमत आह मृतस्येत्यादिना । मृतस्य मानवस्य पुत्रे पौत्रे पितरि च स्थिते कन्यास्वात्मजासु च। स्थितासु भार्यायां पत्न्यामपि स्थितायां सन्निकृष्टत्वात् पुंस्त्वेन मुख्यतरत्वादधोभवत्वेन ज्यायस्त्वाच्च पुत्र एव दायार्हः स्यान्न चापरस्तद्भिन्नः पौत्रादिर्दायार्हः। पौत्रस्य पुत्रतो विप्रकृष्टत्वात् भार्यायाः कन्यानां च स्त्रीत्वेनाऽप्रधानत्वात् पितुश्चोर्ध्वभवत्वेनाऽज्यापस्त्वाद्दायार्हत्वं नेत्यर्थः।।९।।

बहवस्तनया यत्र सर्वे तत्र समांशिनः ।
ज्येष्ठे राज्याधिकारित्वं तत्तु वंशानुसारतः ।।१०।।

पद्मा–जहाँ पर अधिक सन्तानें हैं, वहाँ सभी पुत्रों को समान अंश प्राप्त होगा, किन्तु वंशानुक्रम से ज्येष्ठ पुत्र ही राज्य का उत्तराधिकारी होगा ।

हरि०–ननु बुहुपुत्रस्य प्रमीतस्य पृथ्वीपतेः स्वावरस्थावरेतरणद्रव्येषु सर्वेषामात्मजानां समांश हारित्वं न्यूनाधिकांशहारित्व वेत्यत आह बहवः इत्यादिना। राज्ञो पत्र स्थावरे जङ्गमे वापि द्रव्ये बहवः तनयाः पुत्रा भागार्हास्तत्र सर्वे समांशिनस्तुल्यभागिनः स्युः नतु न्यूनाधिकांशिन् इत्यर्थः। ननु महीपतेर्ज्येष्ठ एवाऽऽत्मजे प्रायशो राज्याधिकारित्वं श्रूयते दृश्यते च तत् कथमुच्यते सर्वे तत्र समांशिन इत्यत आह ज्येष्ठ इत्यादि। राज्ञः पुत्रे यद्राज्याधिकारित्वं तत्तु वंशनुसारतो ज्ञेयम्। वंशे यदि ज्येष्ठ एव राजपुत्रो राज्यं सममानो भवेत्तदातस्मिन्नेव राज्याधिकारित्वं। अन्येषां ग्रासाच्छादनभाजनत्वम्। अन्यथा तु पृथ्व्यादिकं सकलं द्रविणं विभज्य सर्वे गृहणीयुरिति भावः।।१०।।

ऋणं यत् पैतृकं तच्च शोधयेत् पैतृकैर्धनैः ।
तस्मिन् स्थिते विभागार्हं न भवेत् पैतृकं वसु ।।११।।

पद्मा–यदि पैतृक ऋण है तो उस ऋण को पैतृक धन से ही चुकाये। ऋण के रहते हुए पैतृक धन का बँटवारा नहीं किया जा सकता ।

हरि०–पैतृकमृणं दत्त्वाऽवशिष्टं पितृद्रव्यं भ्रातृभिर्विभक्तव्यमित्याह ऋणमित्यादिना। पैतृकं पितृसम्बन्धि यदृणं तत् पैतृकैः पितृसम्बन्धिभिर्धनैः शोधयेत्। तस्मिन्नृणे स्थिते सति पैतृकं वसु धनं विभागार्हं वण्टनयोग्यं न भवेत्।।११।।

विभज्य यदि गृहणीयुर्विभवं पैतृकं नराः ।
तेभ्यस्तद्धनमाहृत्य पितृणां दापयेन्नृपः ।।१२।।

पद्मा–यदि पैतृक ऋण के रहते हुए पुत्र आपस में धन बाँट ले, तो राजा उनसे वह धन लेकर पैतृक ऋण का भुगतान करे ।

हरि०—पैतृकमृणमशोधयित्वैव विभज्य गृहीततातद्रव्यैर्मर्त्यैर्नराधियस्तदृणं दापयेदित्याह विभज्येत्यादिना। पैतृकं विभवं धनं विभज्य नरा यदि गृह्णीयुस्तदा तेभ्यो नरेभ्यस्तत् पैतृकं धनमाहृत्य गृहीत्वा नृपो राजा पितृणां तातसम्बन्धि ऋणं तैर्दापयेत ॥१२॥

यथा स्वकृतपापेन निरयं यान्ति मानवाः ।
ऋणेनापि तथा बद्धः स्वयमेव न चापरः ॥१३॥

पद्मा—जिस प्रकार मनुष्य पाप करने से स्वयं ही नरक में जाता है। उसी प्रकार मनुष्य अपने ऋण से स्वयं को ही बाँधता है किसी दूसरे को नहीं।

हरि०—ऋणानपयने ऋणग्रहीतुरेव सदृष्टान्तं तद्दोषभागित्वमाह यथेत्यादिना। यथा स्वकृतपापेन मानवा नरा निरयं नरकं यान्ति तथा ऋणेनापि स्वयमेव बद्धो भवति न चापरस्तदन्यः कश्चन बद्धो भवेत्॥१३॥

साधारणं धनं यच्च स्थावरं स्थावरेतरम् ।
अंशिनः प्राप्तुमर्हन्ति स्वं स्वमंशं विभागतः ॥१४॥

पद्मा—चल-अचल जो कुछ भी साधारण धन हो, उनमे से उत्तराधिकारियों को उनके भाग के अनुसार अपना अपना अंश प्राप्त होता है ।

हरि०—सामान्ये स्थावरे जङ्गमे च द्रव्ये सर्वेषामेव दायादानां तुल्यांशग्राहकत्वमित्याह साधारणमित्यादिना। स्थावरं स्थवरेतरं जङ्गमं च यत् साधारणं सामान्यं धनं तत्र विभागतः सर्वे अंशिनः स्वं स्वमंशं प्राप्तुं लब्धुमर्हन्ति योग्या भवन्ति॥१४॥

अंशिनां सम्मतावेव विभागः परिसिध्यति ।
तेषामसम्मतौ राजा समदृष्ट्यांशमाचरेत् ॥१५॥

पद्मा—जहाँ पर सभी भागीदारों की सहमति होती है, वहीं पर यथार्थ रूप से विभाजन हो सकता है। जहाँ पर अंशधारकों की सहमति न हो, वहाँ पर राजा को चाहिए कि वह समस्त धन को बराबर भागों में बाँट दे ।

हरि०—सर्वेषामंशिकानां मिथः सम्मतौ सत्यामेव विभागस्य संसिद्धिः स्यादित्याह अंशिनामित्याद्यर्धेन। अंशिनां भागग्राहकाणां सम्मतावेव सत्यां विभागः परिसिध्यति निष्पद्यते न त्वन्यथा। ननु पैतृकद्रव्यविभागे सर्वेषां दायादानां सम्मतेरभावे कथं विभागो भवेत्तत्राह तेषामित्यादिना। तेषामंशिनामसम्मतौ सत्यां राजा समदृष्ट्या तुल्यदृष्ट्या अंशं विभागमाचरेत कुर्यात्॥१५॥

स्थावरस्य चरस्यापि विभागानर्हवस्तुनः ।
मूल्यं वा तदुपस्वत्वमंशिनां विभजेन्नृपः ॥१६॥

पद्मा—जिस चल अचल सम्पत्ति का विभाग न किया जा सके राजा उसका मूल्य अथवा उपस्वामित्व अंशियों में विभाजित कर दे ।

हरि०—ननु विभागायोग्यस्य स्थावरादेर्वस्तुनः कथं विभागः स्यादत आह स्थावरस्ये

त्यादिना। स्थावरस्य चरस्य जङ्गमस्यापि विभागानर्हवस्तुनो विभाजनायोग्यस्य पदार्थस्य मूल्यमथवा तदुपस्वत्वं तदतिरिक्तं त एवोपजातं द्रव्यं नृपो राजा अंशिनां दायादानां विभजेत् तेभ्यो दापयितुं विभक्तं कुर्यात्। अंशिनामिति "सम्प्रदानस्य शेषत्वेन विवक्षितत्वात् षष्ठी शेषे" इति षष्ठी।।१६।।

विभक्तेऽपि धने यस्तु स्वीयांशं प्रतिपादयेत् ।
पुनर्विभज्य तद्द्रव्यमप्राप्तांशाय दापयेत् ।।१७।।

पद्मा—यदि धन सम्पत्ति विभाजन के पश्चात् कोई अन्य पुरुष यह प्रमाणित कर दे कि धन में मेरा अंश है तो राजा उस धन को पुन: विभाजित कर और अंश न पाने वाले पुरुष को अंश दिला दे ।

हरि०—अथांशिभिर्विभज्य गृहीतेष्वपि द्रव्येषु स्वकीयं भागं साक्षिभिर्नृपस्याग्रे ज्ञापयते मानवाय राजा पुनस्तानि द्रव्याणि विभज्य तैर्दापयेदित्याह विभक्तेऽपीत्यादीना। विभक्तेऽपि वण्टितेऽपि धने यस्तु मनुष्य: स्वीयांशमात्मीयं भागं प्रतिपादयेन्नृपस्याग्रे साक्षिभिर्बोधतयेत् तस्मै अप्राप्तांशाय मनुष्याय पुनस्तत् द्रव्यं विभज्य नृपो दायादैर्दापयेत्।।१७।।

कृते विभागे द्रव्याणामंशिनां सम्मतौ शिवे:।
पुनर्विवादयंस्तत्र शास्यो भवति भूभृत:।।१८।।

पद्मा—हे शिवे! जब सभी अंशधारको को सम्पत्ति में भाग मिल जाये किन्तु कोई दूसरा बाद में उस अंश को अस्वीकार कर फिर विभाजन के सम्बन्ध में विवाद करे तो राजा उसे दण्डित करे ।

हरि०—सर्वेषां दायादानां सम्मतौ सत्यां द्रव्यविभागे जाते पुनस्तत्र विवादं कुर्वन्नरो महीपालेन शासनीयो भवेदित्याह कृत इत्यादिना। हे शिवे अंशिनां सम्मतौ सत्यां द्रव्याणां विभागे कृते सति पुनस्तत्र द्रव्यविभागे विवादयन् विवादं कुर्वन्नरो भूभृतो राज्ञ: शास्य: शासनीयो भवति ।।१८।।

स्थिते प्रेतस्य पौत्रे च भार्यायाञ्च पितर्यपि ।
पौत्र एव धनार्ह: स्यादधस्ताज्जन्मगौरवात् ।।१९।।

पद्मा—यदि मृतक पुरुष का पौत्र, पत्नी तथा पिता जीवित हैं तो यह पौत्र ही अधस्तनत्व रूप से गौरव पाकर धन का अधिकारी होगा ।

हरि०—ननु प्रमीतस्य मानवस्य विद्यमानानां तातभार्यापौत्राणां मध्ये कस्य तद्धनभागित्वमत आह स्थिते इत्यादिना। प्रेतस्य मृतस्य मनुष्यस्य पौत्रे पितरि चापि स्थिते भार्यायां च स्थितायामधस्ताज्जन्म येषां तेषां गौरवाद्गुरुत्वाद्धेतो: पौत्र एव धनार्हो धनयोग्य: स्यात्।।१९।।

अपुत्रस्य स्थिते ताते सोदरे च पितामहे ।
जन्मत: सन्निकर्षेण पितैवाऽस्य धनं हरेत् ।।२०।।

पद्मा—पुत्रहीन मृत मनुष्य के पिता के भाई तथा पितामह यदि जीवित है तो जन्म की निकटता के कारण पिता ही धन का अधिकारी होगा ।

हरि०—नन्वपुत्रस्य मृतस्य पुंसो वर्तमानानां जनकपितामहसमानोदर्याणां मध्ये कतमस्य तद्वित्तहारित्वमत आह अपुत्रस्येत्यादिना। अपुत्रस्य मृतस्य जनस्य ताते पितरि सोदरे भ्रातरि पितामहे च स्थिते सन्ति जन्मनः सन्निकर्षेण सान्निध्येन हेतुनाऽस्याऽपुत्रस्य धनं पितैव हरेत् गृह्णीयात्॥२०॥

विद्यमानासु कन्यासु सन्निकृष्टास्वपि प्रिये! ।
मृतस्य पौत्रो धनभाक् यतो मुख्यतरः पुमान् ।।२१।।

पद्या—हे प्रिये! अत्यन्त निकट कन्या के होते हुए भी पौत्र ही धन का अधिकारी होगा क्योंकि स्त्री की अपेक्षा पुरुष ही श्रेष्ठ है ।

हरि०—स्वर्यातुरपुत्रस्यासन्नतरास्वपि कन्यासु स्थितासु पुंसः प्रधानतरत्वात् पौत्रस्यैव धनभागित्वमित्याह विद्यमानास्वित्यादिना। हे प्रिये मृतस्य पुरुषस्य विद्यमानासु सन्निकृष्टास्वासन्नास्वपि कन्यासु यतः पुमान् पुरुषो मुख्यतरः प्रधानतरो भवेदतः पौत्र एवं धनभाग् भवेत्॥२१॥

धनं मृतेन पुत्रेण पौत्रं याति पितामहात् ।
अतोऽत्र गीयते लोकैः पुत्ररूपः स्वयं पिता ।।२२।।

पद्या—यदि मृतक का पुत्र पहले ही मर गया हो वह धन पितामह से पौत्र को जाता है। संसार में यह प्रसिद्ध है कि स्वयं पिता ही पुत्र स्वरूप होता है ।

हरि०—अधुना पितुरेव सहेतुकं पुत्ररूपत्वं व्याहरन् पुत्रहीनस्य मृतस्य पुंसः पोत्रस्यैव धनाधिकारित्वमनुवदति धनमित्यादिना। यतो धनं पितामहात् सकाशान्मृतेन पुत्रेण पौत्रं याति गच्छति अतोऽत्र संसारे लोकैर्जनैः पिता स्वयं पुत्ररूप इति गीयते शब्द्यते॥२२॥

औद्वाहिकेऽपि सम्बन्धे ब्राह्मी भार्या वरीयसी ।
अपुत्रस्य हरेद्रिक्थं पत्युर्देहार्धहारिणी ।।२३।।

पद्या—विवाह के सम्बन्ध में ब्राह्म विधि के अनुसार विवाहिता पत्नी ही श्रेष्ठ है। पति की अर्द्धांगस्वरूपा पत्नी ही पुत्रहीन पति के धन की अधिकारिणी होगी ।

हरि०—इदानीं ब्राह्मीशैव्योर्भार्यर्मध्ये ब्राह्ययेवातिश्रेष्ठा पुत्ररहितस्य मृतस्य पत्युर्वित्तस्य ग्रहिका चेत्याह औद्वाहिकेऽपीत्यादिना। औद्वाहिकेऽपि विवाहनिमित्तकेऽपि सम्बन्धे ब्राह्मी वेदोक्तविधिना परिणीता भार्या शैवीभार्याया वरीयस्यतिवरा भवेत्। पत्युः स्वामिनो यतो देहार्धहारिणी स्यादतो ब्राह्मयेव भार्याऽपुत्रस्य पुत्रहीनस्य मृतस्य पत्युः रिक्थं धनं हरेत्। अपुत्रस्येत्युपलक्षणं पुत्रपौत्रादिरहितस्य। वरीयांस्तूरुवरयोरित्यमरः। "रिक्थमृक्थं धनं वस्वित्यमरः"॥२३॥

पतिपुत्रविहीना तु सम्प्राप्य स्वामिनो धनम् ।
नैव दातुं न विक्रेतुं समर्था स्वधनं विना ।।२४।।

पद्या—पति एवं पुत्रहीन नारी यदि पति की सम्पत्ति को पाती है तो वह अपने स्त्री

धन के अतिरिक्त पति की सम्पत्ति का न तो दान कर सकती है और न ही विक्रय कर सकती है।

हरि०—अथ स्वामिपुत्राभ्यां रहिता स्त्री लब्धभर्तृविभवा सती तद्दानविक्रयौ कर्तुं न शक्नोतीत्याह पतिपुत्रेत्यादिना। पतिपुत्रविहीना स्त्री स्वामिनो धनं सम्प्राप्य लब्ध्वा नैव तद्दातुं न च विक्रेतुं समर्था शक्ता भवेत् परन्तु स्वधनं विना। स्वकीयं तु धनं दातुं विक्रेतुं शक्नोतीत्यर्थः॥२४॥

पितृभिः श्वशुरैर्वापि दत्तं यद्धर्मसम्मतम्।
स्वकृत्योपार्जितं यच्च स्त्रीधनं तत् प्रकीर्तितम्॥२५॥

पद्मा—पिता के कुल से प्राप्त श्वसुर के कुल से प्राप्त धन तथा धर्मानुसार स्वयं के परिश्रम से प्राप्त धन स्त्रीधर्म कहलाता है।

हरि०—ननु किं नाम स्त्रीधनमत आह पितृभिरित्यादिना। बहुवचनस्य बहूपलक्षकत्वात् पितृभिर्जनकादिभिः श्वशुरैः पतिपित्रादिभिर्वा धर्मसम्मतं यद्धनं दत्तं यच्च स्वकृत्या स्वीयया शिल्पादिक्रिययोपार्जितं तत् स्त्रीधनं प्रकीर्तितं कथितम्॥२५॥

तस्यां मृतायां रिक्थं तत् पुनः स्वामिपदं व्रजेत्।
तदासन्नतरो रिक्थमध ऊर्ध्वक्रमाद्धरेत्॥२६॥

पद्मा—स्वामी की सम्पत्ति को जिस स्त्री ने पाया है, यदि उसकी मृत्यु हो जाती है तो वह धन पति के निकट सम्बन्धी को प्राप्त होगा।

हरि०—ननु सम्प्राप्तस्वामिवित्ताया योषितो मृतौ सत्यां कस्य तद्वित्तहारितेत्यत आह तस्यामित्यादिना। तस्यां सम्प्राप्तस्वामिधनायां स्त्रियां मृतायां सत्यां तद्रिक्थं धनं पुनः स्वामिपदगतं च तद्रिक्थमधऊर्ध्वक्रमात्तदासन्नतरः स्वामिनोऽतिसन्निकृष्टो जनो हरेत्। एतत्तु सामान्यत उक्तं विशेषतस्त्वग्रे वक्ष्यते॥२६॥

मृते पत्यौ स्वधर्मेण पतिबन्धुवशे स्थिता।
तदभावे पितृबन्ध्योस्तिष्ठन्ती दायमर्हति॥२७॥

पद्मा—पति की मृत्यु के उपरान्त पत्नी अपने धर्म का पालन करते हुए पति के बन्धुओं के वश में रहे। उनके अभाव में पिता के बन्धुओं के वश में रहे, तभी वह सम्पत्ति की अधिकारिणी होगी।

हरि०—भर्तुर्मरणे सति भर्त्रादिबान्धववशे स्वधर्मेण तिष्ठन्त्येव स्त्री स्वामिनो दायमर्हतीत्याह मृते इत्यादिना। पत्यौ स्वामिनि मृते सति पतिबन्धुवशे स्वधर्मेण स्थिता तदभावे पतिबन्ध्वभावे पितृबन्धोर्वशे तिष्ठन्ती स्त्री दायं पत्युर्धनमर्हति॥२७॥

शङ्कितव्यभिचाराऽपि न पत्युर्दायभागिनी।
लभते जीवं मात्रं भर्तुर्विभवहारिणः॥२८॥

पद्मा—जिस नारी के ऊपर व्यभिचार की आशंका हो, वह पति के धन की

अधिकारिणी नहीं होगी, किन्तु जो पुरुष उसके पति के धन का अधिकारी होगा वह विभव के अनुसार उसे मात्र वस्त्र एवं भोजन जीविका के लिए देगा।

हरि०—शङ्कितव्यभिचारा नारी तु ग्रासाच्छादनमात्रभागिनी न तु स्वामिधनभागिनीत्याह शङ्कितेत्यादिना। शङ्कितव्यभिचाराऽपि स्त्री पत्युर्दायभागिनी न भवति किन्तु भर्तुर्विभवहारिण: पुरुषाज्जीवनं मात्रं जीवनमेव लभते प्राप्नोति। अपीति वदता सदाशिवेन प्रकटितव्यभिचाराया नार्या नितरामेव भर्तृदायभाजनत्वं नेति सूचितम्। जीव्यते येनाऽन्नादिना तज्जीवनम् "करणाधिकरणयोश्चेति" करणे ल्युट्। "मात्रं कात्स्न्र्येऽवधारणे" इत्यमर:॥२८॥

बह्वयश्चेद्वनितास्तस्य स्वर्यातुर्धर्मतत्परा: ।
भजेरन् स्वामिनो वित्तं समांशेन शुचिस्मिते ॥२९॥

पद्मा—हे शुचिस्मिते! यदि स्वर्गवासी पुरुष की अनेक स्त्रियाँ हों तथा सभी अपने धर्म के पालन में लगी रहें, तो वे सब पति की सम्पत्ति में समान अंश प्राप्त करेंगी।

हरि०—प्रेतस्य धर्मपरायणा बह्वयो भार्याश्चेत् सर्वा: स्वामिनो द्रव्यं विभाज्य गृह्णीयुरित्याह बह्वय इत्यादिना। हे शुचिस्मिते शुभ्रेषद्धासे पवित्रेषद्धासे वा। तस्य स्वर्यातु: स्वर्गगामिन: पुंसो धर्मतत्परा: पुण्यपरायणाश्चेद्यपि बह्वयो वनिता: स्त्रिय: स्युस्तदा सर्वास्ता, स्वामिनो वित्तं समांशेन तुल्यभागेन भजेरन् सेवेरन् ॥२९॥

पत्युर्धनहरायाश्च मृतौ भर्तृसुतास्थितौ ।
पुन: स्वामिपदं गत्वा धनं दुहितरं व्रजेत् ॥३०॥

पद्मा—पति के धन की अधिकारिणी पत्नी की मृत्यु होने और पति की कन्या के जीवित रहने पर वह धन पुन: पति का होकर पुत्री को प्राप्त होगा।

हरि०—लब्धभर्तृवित्ताया वनिताया मरणे सति तद्वित्तं पुनस्तत्स्वामिनं प्राप्य ततश्च तत्तनयां गच्छेदित्याह पत्युरित्यादिना। पत्युर्धनहराया: स्वामिनो वित्तहारिण्य: स्त्रिया: मृतौ भर्तु: सुताया: स्थितौ च सत्यां धनं पुनस्तत्स्वामिपदं गत्वा दुहितरं तत्सुतां व्रजेद् गच्छेत्। भर्तुसुतेतिव्याहरन्महादेव: क्रीतादिसुतां तद्धनं न गच्छेदिति सूचयाञ्चक्रे॥३०॥

एवं स्थितायां कन्यायां रिक्थं पुत्रवधूगतम् ।
तन्मृतौ स्वामिनं प्राप्य श्वशुरात्तत्सुतामियात् ॥३१॥

पद्मा—इसी प्रकार कन्या के रहते पुत्रवधू को प्राप्त धन उसकी मृत्यु होने पर पुन: पति को जाकर श्वसुर के अधीन होकर उस कन्या को प्राप्त होगा।

हरि०—गृहीतपतिद्रव्याया नार्या मृतौ सत्यां तद्द्रव्यं भर्तृगतं तत: श्वशुरगतं च सत् श्वशुरकन्यां यायादित्याह एवमित्यादिना। एवमनेन प्रकारेण कन्यायां स्थितायां सत्यां पुत्रवधूगतं रिक्थं धनं तन्मृते पुत्रवधूमरणे सति स्वामिनं तद्भर्तारं प्राप्य पुन: श्वशुरं प्राप्य श्वशुराच्च तत्सुतां श्वशुरतनयामियाद्गच्छेत्। तन्मृते इत्यत्र "नपुंसके भावे क्त" इति सूत्रेण भावे क्त प्रत्यय:। एतच्च भर्तृदुहित्रादिआत्तीयपर्यन्ताभावे बोद्धव्यम्॥३१॥

तस्य पितामहे सत्त्वे वित्तं मातृगतं शिवे ।
तस्यां मृतायां पुत्रेण भर्त्रा श्वशुगम्भवेत् ।।३२।।

पद्मा—हे शिवे! इसी प्रकार पितामह के जीवित रहने पर यदि धन माता को प्राप्त होता है, तो माता की मृत्यु होने पर वह धन माता के पति अर्थात् पितामह के पुत्र का धन होकर पितामह को प्राप्त होगा ।

हरि०—ननु प्राप्तपुत्रवित्ताया मातुर्मरणे सति कस्य तद्वित्तभागितेत्यत आह तथेत्यादिना। हे शिवे तथा तेनैव प्रकारेण पितामहे सत्त्वे वर्तमाने मातृगतं जननीप्राप्तं वित्तं धनं तस्यां मातरि मृतायां सत्यां पुत्रेणाऽऽत्मजेन भर्त्रा पत्या च श्वशुरगं भवेत् श्वशुरंगच्छेदित्यर्थः। सत्रेव सत्त्वमिति स्वार्थिकस्त्वः। इदं पुत्रस्य सोदराणां तत्पुत्राणाञ्चाऽसत्त्वे बोद्धव्यम्।।३२।।

मृतस्योर्ध्वगतं वित्तं यथा प्राप्नोति तत्पिता ।
जनन्यपि तथाऽऽप्नोति पतिहीना भवेद्यदि ।।३३।।

पद्मा—मृत मनुष्य का ऊर्ध्वगत धन जैसे पिता को प्राप्त होता है, उसी प्रकार पतिहीना माता को भी प्राप्त होता है ।

हरि०—पुत्रादिपितृपर्यन्तरहितस्य प्राप्तपञ्चत्वस्य पुंसो जनकस्य जनन्या अपि तद्वित्तहर्त्रीत्वं तन्मृतौ च तस्य विभातुपीत्याह मृतस्येत्यादिद्वयेन। मृतस्य जनस्योर्ध्वगतमूर्ध्वं प्राप्तं वित्तं तत्पिता मृतस्य जनको यथाऽऽप्नोति लभते, तथैव यदि पतिहीना स्वामिरहिता भवेत् तदा तज्जनन्यप्याप्नोति।।३३।।

अतः सत्यां जनन्यां तु विमाता न धनं हरेत् ।
मृतौ जनन्यास्तं प्राप्य पित्रा गच्छेद्विमातरम् ।।३४।।

पद्मा—माता के जीवित रहते सौतेली माँ को धन प्राप्त नहीं हो सकता, किन्तु माता की मृत्यु होने पर पिता के सम्बन्ध से सौतेली माँ भी धन की अधिकारिणी होगी ।

हरि०—**अत इति**। अतो जनन्यान्तु सत्यां विमाता तस्य धनं न हरेत, किन्तु मातैव हरेत्। जनन्या मृतौ मरणे तु तद्धनं तं पुत्रं प्राप्य पित्रा विमातरं गच्छेत्।।३४।।

अधस्तनानां विरहाद्यथा रिक्थं न यात्यधः ।
येनैवाऽधस्तनं प्राप्तं तेनैवोर्ध्वं तदा व्रजेत् ।।३५।।

पद्मा—यदि अधस्तन अधिकारी का अभाव हो तो धन अधोगामी नहीं होगा, किन्तु यह धन जिस नियम से अधोगामी हो सकता है। उस नियम के द्वारा ही ऊर्ध्वगामी होगा अर्थात् जो जन्म के सम्बन्ध से निकट है वही आगे धन का अधिकारी होगा ।

हरि०—अधोभवानां रिक्थग्राहकाणामभावादधस्तादगच्छतो वित्तस्योर्ध्वगामित्वेनाऽपत्यहीनाया लब्धभ्रातृ वित्तायाः पतिवत्याः स्वसुर्मृतौ सत्यां तद्गतरूप वित्तरूप पितृव्याश्रयत्वं स्यादित्येवाह अधस्तनानामित्यादिद्वयेन। अधस्तनानामधोभवानां जनानां विरहादभावाद्यथा यदा रिक्थं धनं अधो न याति गच्छति तदा येनैव जनेन अधस्तनमधोभवं जनं धनं प्राप्तं तेनैव जनेनोर्ध्वं व्रजेद्गच्छेत्।।३५।।

अतः स्थितौ पितृव्यस्य धनं स्वसृगतञ्च सत् ।
पत्यौ स्थितेऽनपत्याया मृतौ पितृव्यमाश्रयेत् ।।३६।।

पद्मा–अतः चाचा के रहने पर बहन को प्राप्त धन भी कन्यापुत्रहीना उस बहन की मृत्यु होने पर, बहनोई के रहने पर भी, लौट कर चाचा को ही प्राप्त होगा ।

हरि०–अत इत्यादि। अधोऽधस्तनानां विरहाद्रिक्थस्योर्ध्वगामित्वादेव पितृव्यस्थितावनपत्यायाः पुत्रेण पुत्र्या च रहितायाः स्वसुर्मृतौ सत्या पत्यौ भगिनीभर्तरिस्थितेऽपि स्वसृगतं च सत् धनं पितृव्यमाश्रयेत् तस्या भ्रात्रा पित्रादिना च पितृभ्रातरं भजेत्। अनपत्याया इति विशेषणेनाऽपत्यवत्याः स्वसुः मृतौ तद्गतस्य धनस्य तदपत्यगामितैवेत्यसूसुचत्।।३६।।

ऊर्ध्वाद्वित्तमधः प्राप्य पुमांसमवलम्बते ।
अतः सत्यां सोदरायां वैमात्रेयो धनं हरेत् ।।३७।।

पद्मा–धन ऊर्ध्वगामी होकर जब अधोगामी होता है, तो वह पुरुष को ही प्राप्त होता है। इसलिए सगी बहन के रहने पर भी सौतेला भाई धन का अधिकारी होता है ।

हरि०–ऊर्ध्वादधः प्राप्तस्य धनस्य पुरुषावलम्बित्वात् सोदरायां विद्यमानायामपि वैमात्रेयगामितैव स्यादित्याह ऊर्ध्वादित्यादिना। यतो वित्तं धनमूर्ध्वादधः प्राप्य पुमांसं पुरुषमवलम्बते आश्रयति अतः सोदरायां भगिन्यां सत्यामपि वैमात्रेयो विमातृजो धनं हरेत्।।३७।।

स्थितायां सोदरायाञ्च विमातुः पुत्रासन्ततौ ।
वैमात्रेयगतं वित्तं वैमात्रेयान्वयो भजेत् ।।३८।।

पद्मा–सगी बहन तथा सौतेले भाई की सन्तान के जीवित रहने पर भी सौतेला भाई धन का अधिकारी होता है ।

हरि०–ननु सोदरायां वैमात्रेयसन्ततौ च विद्यमानायां वैमात्रेयमरणे सति तद्गतं वित्तं का प्राप्नुयात्तत्राह स्थितायामित्यादिना। सोदरायां भगिन्यां विमातुः पुत्रसन्ततौ च स्थितायां सत्यां वैमात्रेयगतं वित्तं तन्मरणे सति वैमात्रेयान्वयो विमातृजसन्ततिर्भजेत् सेवेत् ।।३८।।

मृतस्य सोदरो भ्राता वैमात्रेयस्तथा शिवे ।
धनं पितृगतत्वेन विभजेतां समांशिनौ ।।३९।।

पद्मा–हे शिवे! यदि मृतक पुरुष के सगे भाई तथा सौतेले भाई जीवित हो, तो वह धन पितृगत होकर पितृसम्बन्ध से सहोदर (सगे) एवं सौतेले भाई समान रूप से बाँट लें।

हरि०–पुत्रादिमातृपर्यन्तरहितस्य प्रमीतस्य पुंसः सोदरवैमात्रेययोरुभयोरपि तद्धने समभागित्वमित्याह मृतस्येत्यादिना। हे शिवे मृतस्य जनस्य सोदरो भ्राता तथा वैमात्रेयश्च उभौ तद्धनस्य पितृगत्वेन हेतुना तत्र समांशिनौ सन्तौ तद्धनं विभजेतां विभज्य गृह्णीयातामित्यर्थः।

कन्यायां जीवितायाञ्च तदपत्यं न दायभाक् ।
यत्र यद्वाधितं वित्तं तन्मृतावपरं व्रजेत् ।।४०।।

पद्मा–कन्या के जीवित रहते हुए उसके गर्भ की संतान धन की अधिकारिणी नहीं

होगी; क्योंकि यहाँ कन्या ही उसकी बाधक है। बाधक स्वरूप कन्या की जब मृत्यु हो जायेगी, तब वह धन उसकी सन्तान को प्राप्त होगा।

हरि०—जीवन्त्यां कन्यायां तदपत्यस्य दायभागित्वं नेत्याह कन्यायामित्यादिना। कन्यायां जीवितायां सत्यां तदपत्यं दायभाग् न भवेत्, किन्तु कन्यैव दायभागिनी स्यादित्यर्थः। यत्र जने यद्वित्तं धनं यद्बाधितं भवेत् तन्मृतौ तस्य बाधकजनस्य मरणे सति तद्वित्तं तमपरं जनं व्रजेत् गच्छेत्॥४०॥

विभाजेयुर्दुहितरः पुत्राभावे पितुर्वसु।
उद्वाहयन्तयोऽनूढां तु पितुः साधारणैर्धनैः॥४१॥

पद्मा—पिता के साधारण धन से अविवाहिता बहन का विवाह कर पुत्र अर्थात् भाई के न होने पर कन्यायें अपने पिता के धन को आपस में बाँट लें।

हरि०—अपरिणीतां भगिनीं सामान्यैस्तातद्रव्यैरुद्वाहयन्त्यो दुहितरो मृतस्याऽपुत्रस्य पितुर्द्रविणं सर्वां विभज्य गृह्णीयुरित्याह विभजेयुरित्यादिना। पितुः पुत्राभावे सति पितुः साधारणैः सामान्यैः धनैरनूढामपरिणीतां पितुः पुत्रीमुद्वाहयन्त्यो दुहितरः पुत्र्यः पितुर्वसु द्रव्यं विभजेयुः। तुशब्देन विवाह्यमानाऽपि पितृद्रव्यं विभजेत्॥४१॥

असन्तत्या मृतायाश्च स्त्रीधनं स्वामिनं भजेत्।
अन्यत्तु द्रविणं यस्मादाप्तं तत्पदमाश्रयेत्॥४२॥

पद्मा—सन्तानहीन मृत स्त्री का स्त्रीधन स्वामी (पति) को प्राप्त होता है। स्त्रीधन से भिन्न अन्य धन जिसे उत्तराधिकार सूत्र से प्राप्त है, उसी को प्राप्त होगा।

हरि०—अनपत्यायाः प्रमीतायानार्याः स्त्रीधनस्य तत्स्वाभिगामित्वमपरस्य तु तल्लब्धद्रव्यस्य यतः प्राप्तिरासीत्तत्पदा श्रयित्वमित्याह असन्तत्या इत्यादिना। असन्तत्याः सन्ततिरहितायां मृताया नार्याः स्त्रीधनं स्वामिनं तद्भर्तारं भजेत् सेवेत। अन्यत्तु तद्भिन्नन्तु द्रविणं द्रव्यं यस्माज्जनादाप्तं लब्धं तत्पदमाश्रयेद्व्रजेत्॥४२॥

प्रेतलब्धधनैर्नारी विदध्यादात्मपोषणम्।
पुण्यन्तु तदुपस्वत्वैर्न शक्ता दानविक्रये॥४३॥

पद्मा—उत्तराधिकार के सम्बन्ध से जो धन स्त्री को प्राप्त हो, उससे वह स्वयं का भरण-पोषण करे तथा उसकी आय से पुण्यकर्म करे, किन्तु इस सम्पत्ति को न तो वह दान कर सकती है और न ही बेच सकती है।

हरि०—प्रेतप्राप्तानि वित्तानि दातुं विक्रेतुं चाऽशक्नुवती नारी मरणपर्यन्तं भुञ्जीत तदुपस्वत्वैस्तु धर्ममपि कुर्वीतेत्याह प्रेतेत्यादिना। प्रेतलब्धधनैर्मृतप्राप्तैर्वित्तैर्नारी योषिदात्मपोषणमात्मनो भरणं विदध्यात् कुर्यात्। पुण्यं धर्मं तु तदुपस्वत्वैस्तदतिरिक्तैस्तत एवोपजातैर्धनैर्विदध्यात्। तेषां दाने विक्रये च शक्ता समर्था न भवेत्॥४३॥

पितामहस्नुषायाञ्च सत्यां तातविमातरि ।
पितामहगतं रिक्थं तत्पुत्रेण स्नुषां व्रजेत् ।।४४।।

पद्मा—यदि चाची या सौतेली चाची विद्यमान हो, तो वह धन पितामहगामी को बाद में चाचा द्वारा चाची को प्राप्त होता है।

हरि०—ननु पुत्रादिपितृव्यपर्यन्तरहितस्य मृतस्य पुंसो द्रविणस्य तत्पितृव्यपत्नीगामित्वं तातविमातृगामित्वं वेत्या शङ्कायामाह पितामहेत्यादिना। पितामहस्नुषायां पितामहपुत्रभार्यायां तातविमातरि च सत्यां विद्यमानायां पितामहगतं रिक्थं धनं तत्पुत्रेण पितामहस्यात्मजेन स्नुषां पुत्रपत्नीं व्रजेत् ।।४४।।

पितामहे पितृव्ये च तथा भ्रातरि जीवति ।
अधोभवानां मुख्यत्वात् भ्रातैव धनभाग् भवेत् ।।४५।।

पद्मा—यदि पितामह, चाचा तथा भाई जीवित हों, तो अधस्तन पुरुष की प्रधानता होने से भाई ही धन का अधिकारी होगा ।

हरि०—ननु पुत्रादिमातृपर्यन्तरहितस्य प्रेतस्य पुंसो विद्यमानानां पितामहपितृव्यभ्रातृणां मध्ये कतमस्य तद्धनभागित्वं तत्राह पितामह इत्यादिना श्लोकद्वयेन। पितामहे पितृव्ये तथा भ्रातरि च जीवति सति अधोभवानां जनानां मुख्यत्वात् प्रधानत्वाद्धेतोर्भ्रातैव धनभाग् भवेत्। मृतात् पुत्रात् पितृगतं धनं मृतस्य भ्रातैव भजेदित्यर्थः ।।४५।।

पितृव्यात् सन्निकर्षेऽत्र तुल्यौ भ्रातृपितामहौ ।
धनं पितृपदं गत्वा प्रयातुर्भ्रातरं भजेत् ।।४६।।

पद्मा—चाचा की अपेक्षा भाई तथा पितामह दोनों ही समानरूप से निकट हैं। ऐसे स्थान पर मृतक पुरुष का धन पितृधन होकर भाई को प्राप्त होगा ।

हरि०—पितृव्यादिति। अत्र लोके पितृव्यात् सन्निकर्षे सामीप्ये यद्यपि भ्रातृपितामहौ तुल्यौ समानौ भवतः तथाप्यधोभवानां मुख्यत्वात् स्वः प्रयातुर्जनस्य धनं पितृपदं गत्वा भ्रातरं भजेत्।।४६।।

स्थितेऽप्यपत्ये दुहितुः प्रेतस्य पितरि स्थिते ।
दुहित्रपत्यं धनभाग् धनं यस्मादधोमुखम् ।।४७।।

पद्मा—यदि मृतक पुरुष की पुत्री का पुत्र तथा पिता विद्यमान हो तो पुत्री का पुत्र धन का अधिकारी होगा; क्योंकि धन स्वभावतः अधोगति को प्राप्त होता है।

हरि०—ननु पुत्रादिपुत्रीपर्यन्तहीनस्य मृतस्य पुंसो विद्यमानयोस्तातदुहित्रपत्ययोर्मध्ये कतरस्य तद्धनग्राहकत्वमत आह स्थित इत्यादिना । प्रेतस्य मृतस्य जनस्य पितरि स्थिते दुहितुरपत्येऽपि स्थिते सति यस्माद्धनमधोमुखं स्यादतो दुहित्रपत्यमेव धनभाग् भवेत्।।४७।।

स्वःप्रयातुः स्थिते ताते तथा मातरि कालिके ।
पुंसो मुख्यतरत्वेन धनहारी भवेत् पिता ।।४८।।

पद्मा—हे कालिके! यदि मृतक पुरुष के माता-पिता जीवित हों, तो पुरुष की

प्रधानता-से पिता ही धन का अधिकारी होगा।

हरि०—प्रेतस्य पुंसो जीवतोर्मातापित्रोर्मध्ये पुरुषस्य प्रधानत्वात् पितुरेव तद्धनहारित्वमित्याह स्व: प्रयातुरित्यादिना। हे कालिके स्व: प्रयातुर्मृतस्य जनस्य ताते तिपरि स्थिते सति तथा मातरि स्थितायां सत्यां पुंसो मुख्यतरत्वेन हेतुना पिता धनहारी स्यात्॥४८॥

स्थित: स्वपितृसापिण्डो वर्तमानेऽपि मातुले ।
प्रेतस्य धनहारी स्यात् पितु: सम्बन्धगौरवात् ॥४९॥

पद्मा—मृत व्यक्ति के पिता का सपिण्ड तथा मामा जीवित हो, तो पिता के सम्बन्ध की गुरुता से पिता का सपिण्ड व्यक्ति ही धन को प्राप्त करेगा ॥४९॥

हरि०—ननु मृतस्य पुंसो विद्यमानयोर्मातुलपितृसपिण्डयोर्मध्ये कतरस्य तद्वित्तभागित्वमत आह स्थित इत्यादि। मातुले वर्तमानेऽपि पितु: सम्बन्धस्य गौरवाद्धेतो स्थित: स्वपितृसापिण्ड: प्रेतस्य धनहारी स्यात्। सपिण्ड एव सापिण्ड: "प्रज्ञादिभ्यश्चेति" स्वार्थेऽण्॥४९॥

अधस्ताद्गमनाभावे धनमूर्ध्वभवं गतम् ।
तत्रापि पुंसां मुख्यत्वादितं पितृकुलं शिवे! ।
अतोऽत्र सन्निकृष्टोऽपि मातुलो नाप्नुयाद्धनम् ॥५०॥

पद्मा—हे शिवे! धन यदि अधोगामी न हो सके, तो वह ऊर्ध्वतन पुरुष को प्राप्त होगा पुरुष की प्रधानता हेतु पहले धन पिता के ही कुल में जाता है। इस कारण से माता इस स्थान में निकट होकर भी धन का अधिकारी नहीं होगा।

हरि०—ननु पितु: सपिण्डात् सन्निकृष्टस्य मातुलस्यैव प्रतधनहर्तृत्वं सम्भवति न तु विप्रकृष्टस्य पितु: सपिण्डस्येतीमामाशङ्कां परिहरन्नाह अधस्तादित्यादिधनमित्यन्तं सार्धम्। हे शिवे! अधस्ताद्गमनाभावे सति प्रेतस्य धनमूर्ध्वभवं जनं गतं प्राप्तं भवेत्। तत्राप्यूर्ध्वभवेष्वपि पुंसां मुख्यत्वाद्धनं पितृकुलमितं प्राप्तं स्यात्। अतो हेतोरत्र लोके सन्निकृष्टोऽप्यासन्नोऽपि मातुल: प्रेतस्य धनं नाप्नुयान्न लभेत्॥५०॥

अजीवत्पितृक: पौत्र: पितृव्यै: सह पार्वति ।
पितामहस्य द्रविणात् स्वपितुर्दायमर्हति ॥५१॥

पद्मा—हे पार्वति! जहाँ पर माता-पिताहीन पौत्र तथा पुत्र दोनो हैं, वहाँ पर माता-पिताहीन पौत्र पिता के नियत धन के अंश को प्राप्त करेगा।

हरि०—भ्रातृभ्योऽविभक्तस्य पुरुषस्य मृतौ सत्यां तत्पुत्र: सार्धं पैतामहकद्रव्यात् पैतृकमंशं प्राप्तुयादित्याह अजीवदित्यादिना। हे पार्वति! अजीवत्पितृको मृतजनक: पौत्र: पितृव्यै: पितुर्भ्रातृभि: सह पितामहस्य द्रविणात् द्रव्यात् स्वपितुर्दायं प्राप्तुमर्हति॥५१॥

भ्रातृहीना तथा पौत्री पितृव्यै: समभागिनी ।
पितामहधनं सौम्या हरेच्चेन्मृतमातृका ॥५२॥

पद्मा—माता, पिता तथा भाई से हीन पौत्री यदि अपने धर्म में निरत रहे, तो पितामह के धन में चाचा के सहित धन का बराबर भाग पायेगी।

हरि०—अजीवन्मातृका भ्रातृरहिता पौत्र्यपि पितामहद्रव्यात् प्रमीतस्य पितुरंशं प्राप्तुमर्हतीत्याह भ्रातृहीनेत्यादिना। चेद्यदि मृतमातृका भ्रातृहीना सोदरवैमात्रेयरहिता सौम्या व्यभिचाराख्यदोषहीना च भवेत् तदा तथा तेन प्रकारेण पौत्री पुत्रदुहिता पितृव्यैः समभागिनी सती पितामहधनं हरेत् गृह्णीयात् ।।५२।।

सत्यां पौत्र्याः पितामह्यां पौत्र्याः पितृष्वसर्यपि ।
वित्ते पितृगते देवि! पौत्री तत्राऽधिकारिणी ।।५३।।

पद्मा—हे देवि! यदि पितामही तथा बुआ दोनों ही जीवित हो, तो पितृगत धन की अधिकारिणी पौत्री ही होगी ।।५३।।

हरि०—ननु प्राप्तपञ्चत्वस्य पुंसो विद्यमानानां जननीभगिनीपुत्रीणां मध्ये तद्वित्ते का धनाधिकारिणी स्यात् तत्राह सत्यामित्यादिना। हे देवि! पौत्र्याः पितामह्यां तथा पौत्र्याः पितृष्वसर्यपि सत्यां विद्यमानायाम् अधस्ताज्जन्मगौरवात् पौत्री तत्र पितृगते वित्तेऽधिकारिणी स्यात् ।

अधोगामिषु वित्तेषु पुमान् ज्यायानधस्तनः ।
ऊर्ध्वगामिधने श्रेष्ठः पुमानूर्ध्वोद्भावो भवेत् ।।५४।।

पद्मा—जो धन नीचे की ओर जाता है उसमें नीचे के पुरुष की प्रधानता है। जो धन ऊपर की ओर जाता है। उसमें ऊपर के पुरुषों की प्रधानता है ।

हरि०—ननु प्रेतस्य स्नुषाया दुहितृतः पौत्र्याश्च तज्जनकस्य पुंस्त्वेन श्रेष्ठत्वाद्विद्यमानस्य तस्यैव तद्धनहारित्वं सङ्घटते ननु तत्स्नुषादीनामितीमं सन्देहं दूरी कुर्वन्नाह अधोगामिष्वित्यादितत्पितेत्यन्तं श्लोकद्वयम्। अधोगामिषु वित्तेषु धनेष्वधस्तनोऽधोभावः पुमान् ज्यायान् श्रेष्ठो भवेत् न तूर्ध्वोद्भवः। ऊर्ध्वगामिधने तूर्ध्वोद्भवः पुमान् श्रेष्ठो भवेत्।।५४।।

अतः स्नुषायां पौत्र्याञ्च सत्यां दुहितरि प्रिये! ।
प्रेतस्य विभवं हर्तुं नैव शक्नोति तत्पिता ।।५५।।

पद्मा—हे प्रिये! इसी कारणवश पुत्रवधू, पौत्री तथा कन्या के जीवित रहते हुए मृतक पुरुष का धन मृतक पुरुष का पिता ग्रहण नहीं कर सकता ।

हरि०—अत इति। हे प्रिये अतोऽधोगामिधने ऊर्ध्वोद्भवस्याऽश्रेष्ठत्वाद्धेतोः प्रेतस्य स्नुषायां पुत्रभार्यायां पौत्र्यां दुहितरि च सत्यां वर्तमानायां प्रेतस्य विभवं धनं हर्तुं गृहीतुं तत्पिता नैव शक्नोति, किन्तु यथाक्रमं ता एव प्रेतधनं हर्तुं शक्नुवन्तीत्यर्थः।।५५।।

यदा पितृकुले न स्यान्मृतस्य धनभाजनम् ।
पूर्वोक्तविधिना रिक्थं मातामहकुलं भजेत् ।।५६।।

पद्मा—यदि मृतक पुरुष के कुल में धन का कोई भी उत्तराधिकारी न हो तो पूर्वोक्त विधि से वह धन मातामह के कुल में जायेगा ।

हरि०—ननु प्रेतपुरुषस्य पितुर्वंशे धनग्राहकासत्त्वे तद्द्रव्यस्य किं कुलगामित्वं स्यादत

आह यदेत्यादिना। यदा मृतस्य जनस्य पितृकुले धनभाजनं धनस्य पात्रं न स्यात्तदा पूर्वोक्तविधिना पूर्वकथितविधानेन रिक्थं प्रेतस्य धनं मातामहकुलं भजेत् सेवेत॥५६॥

मातामहगतं वित्तं मातुलैस्तत्सुतादिभिः ।
अध ऊर्ध्वक्रमेणैवं पुमांसं स्त्रियमाश्रयेत् ॥५७॥

पद्मा—नाना के कुल में गये धन को मामा तथा उसके पुत्र पायेंगे। यह भी पहले अधस्तन, उसके अभाव में ऊर्ध्वतन एवं पुरुष को और उसके अभाव में स्त्री को प्राप्त होगा ॥५७॥

हरि०—मातामहकुलयातस्य द्रव्यस्याध-ऊर्ध्वक्रमेणैव पुरुषाश्रयत्वं तदसत्त्वे नार्याश्रयत्वं च मातामहेत्यादिना। मातामहगतं मातामहं प्राप्तं वित्तं धनं मातुलैस्तत्सुतादिभिर्मातुलपुत्रादिभिश्च अधऊर्ध्वक्रमेण एवं पितृकुले इव पुमांसं पुरुषं तदभावे स्त्रियमाश्रयेत् सेवेत॥५७॥

ब्राह्मन्वये विद्यमाने पित्रोः सापिण्डने स्थिते ।
मृतस्य शैवीतनयो न पितुर्दायभाग् भवेत् ॥५८॥

पद्मा—ब्राह्मविवाह से विवाहिता पत्नी के सन्तान होने पर तथा माता के सपिण्ड के रहते शैवविवाह से विवाहिता पत्नी की सन्तान मृत पुरुष के धन को नहीं प्राप्त कर सकेगी।

हरि०—अथ प्रेतपुरुषस्य ब्राह्मीभार्याया अन्वये मातापित्रोः सपिण्डे वा स्थिते शैवीपुत्रस्य तद्विभवभागित्वं नेत्या ब्राह्मयन्वये इत्यादिना। ब्राह्मन्वये ब्राह्मया भार्याया वंशे विद्यमाने पित्रोर्मातुः पितुश्च सापिण्डने सपिण्डे वा स्थिते सति शैवीतनयः शैव्या भार्यायाः पुत्रो एतस्य पितुर्दायभाग् न भवेत्, किन्तु विद्यमानयोस्तयोरेव क्रमतः तद्दायभागित्वमित्यर्थः। एतेन ब्राह्मन्वयस्य मातापित्रोः सपिण्डस्य चाभावे शैवीतनयस्यैव मृतजनकदायभागित्वमिति ध्वनितम्॥५८॥

शैवी पत्नी च तत्पुत्रा लाभेरन् धनभागिनः ।
ग्रासमाच्छादनं भद्रे स्वः प्रयातुर्यथा धनम् ॥५९॥

पद्मा—हे भद्रे! शैवविवाह से विवाहिता पत्नी तथा उसके पुत्र धनाधिकारी से मृतक पुरुष की सम्पत्ति के अनुसार भोजन व वस्त्र पा सकते हैं ।

हरि०—ननु ब्राह्मन्वयस्य पित्रोः सपिण्डस्य वा वर्तमानत्वे शैवीपुत्राणां मृतपितृदाय भागित्वाभावे कथमुदरभरणादिनिर्वाहस्तत्राह शैवीत्यादिना। हे भद्रे! स्वः प्रयातुः स्वर्गतस्य पुंसः शैवी पत्नी तत्पुत्राः शैव्यास्तनयाश्च तस्य धनभागिनः पुरुषात् यथाधनं यथाविभवं ग्रासमाच्छादनं च लभेरन् प्राप्नुयुः॥५९॥

शैवोद्वाहं प्रकुर्वन्तीं शैवभर्तैव पालयेत् ।
सौम्याश्चेन्नाधिकारोऽस्याः पित्रादीनां धने प्रिये! ॥६०॥

पद्मा—हे प्रिये! शैवविवाह से विवाहिता पत्नी का पालनपोषण शैव पति ही करता

है। यदि पत्नी व्यभिचारिणी है तो वह उसका पालन पोषण नहीं करेगा। यह शैवी पत्नी, माता पिता के धन की अधिकारिणी नहीं है।

हरि०—ननु शैवमुद्वाहं कुर्वती नारी पित्रादिभिः पानीया भवेच्छैवेन भर्त्रा वेत्याशङ्कायामाह शैवोद्वाहमित्यादिना। हे प्रिये यतोऽस्याः शैव्याः स्त्रियाः पित्रादीनां धनेऽधिकारो नास्त्यतः शैवोद्वाहं प्रकुर्वन्तीं तां चेद्यदि सौम्यामव्यभिचारिणीं जानीयात्तदा शैवभर्त्तैव पालयेत् रक्षेत्। जानीयादितित्त्वध्याहारलभ्यम्॥६०॥

अतः सत्कुलजां कन्यां शैवैरुद्वाहयन् पिता।
क्रोधाद्वा लोभतो वापि स भवेल्लोकगर्हितः॥६१॥

पद्या—पिता क्रोध या लोभवश अपनी सत्कुलोत्पन्न कन्या को यदि शैवविवाह में देता है तो वह लोक समाज में निन्दित होगा।

हरि०—अथ शैवेन विधिना सत्कुलजां कन्यामुद्वाहव्यतो जनकस्य लोकनिन्द्यत्वं दर्शयितुमाह अत इत्यादिना। अतो ब्राह्मन्वये मातापित्रोः सपिण्डे वा स्थिते भर्तुर्द्रव्ये स्वपित्रादिद्रव्ये चाधिकारस्याऽभावाद्धेतोः क्रोधाद्वा लोभतो वापि शैवैर्विधिभिः सत्कुलजां सद्वंशजातां कन्यामुद्वाहयन् यः स पिता लोकगर्हितो लोकनिन्दितो भवेत्॥६१॥

शैवीतदन्वयाभावे सोदको ब्रह्मदो नृपः।
हरेयुः क्रमतो वित्तं मृतस्य शिवशासनात्॥६२॥

पद्या—शैव पत्नी तथा उसका वंश न होने पर शिव-आज्ञा से क्रमशः समानोदक, आचार्य तथा राजा मृतक पुरुष के धन को पाएँगे।

हरि०—पुत्रादिशैवीसन्ततिपर्यन्तरहितस्य प्राप्तपञ्चत्वस्य पुरुषस्य स्थावरादिसकलद्रव्येषु सोदकस्य वेदाध्यापकगुरोर्नरपतेश्च क्रमतोऽधिकास्त्त्विमस्तीत्याह शैवीत्यादिना। शैवीतदन्वयाभावे सति सोदको ब्रह्मदो वेदाध्यापकः गुरुः नृपो राजा च मृतस्य वित्तं धनं शिवशासनात् शिवाज्ञातः क्रमतो हरेयुः। यथा शैवीतदन्वयासत्त्वे प्रथमतः सोदको मृतस्य वित्तं हरेत्। तदभावे वेदाध्यापकः तदसत्त्वे तु राजा चेति॥६२॥

पिण्डदात् सप्तपुरुषाः सपिण्डाः कथिताः प्रिये!।
सोदका दशमान्ताः स्युस्तः केवलगोत्रजाः॥६३॥

पद्या—हे प्रिये! पिण्डदाता से सातवें पुरुष तक सपिण्ड कहा जाता है। आठवें से लेकर दसवें पुरुष तक समानोदक कहा जाता है। जो दसमपुरुष के अन्तर्गत नहीं आते हैं, उन्हें केवल गोत्र कहा जाता है।

हरि०—ननु केषां सपिण्डत्वं केषां सोदकत्वं केवलगोत्रजत्वं च केषामत आह पिण्डदादित्यादिना। हे प्रिये पिण्डदात् पिण्डदातारं पुरुषमारभ्य सप्तपुरुषाः सपिण्डाः कथिताः तत ऊर्ध्वं दशमान्ताः दशमपुरुषान्ताः सोदकाः स्युः ततः परं केवलगोत्रजा भवेयुः। पिण्डदादिति "ल्यब्लोपे कर्मण्यधिकरणे चेति" कर्मणि पञ्चमी॥६३॥

विभक्तं द्रविणं यच्च संसृष्टं स्वेच्छया तु चेत् ।
अविभक्तविधानेन भजेरंस्तद्धनं पुनः ।।६४।।

पद्मा—जो धन एक बाँटकर बाद में स्वेच्छा से एक में मिला लिया गया हो, उसे बिना विभाजित मानकर पुनः विभाजन की विधि से विभाजित किया जाये ।

हरि०—विभक्तस्य पश्चात् स्वेच्छया संसृष्टस्य द्रव्यस्याऽविभक्तविधानेनैव पुनर्विभागमाह विभक्तमित्यादिना। चेद्यदि विभक्तं यत् द्रविणं द्रव्यं स्वेच्छयासंसृष्टं मिश्रीकृतं स्यात्तदा तद्धनं पुनरविभक्तविधानेन दायादा भजेरन् ।।६४।।

अविभक्ते विभक्ते वा यस्य यादृग्विभागिता ।
मृतेऽपि तस्य दायादास्तादृग्विभवभागिनः ।।६५।।

पद्मा—अविभाजित या विभाजित धन में जिसका जितना अंश निर्धारित है, उस पुरुष के मरने पर उसके उत्तराधिकार उसी के अनुसार अपना भाग प्राप्त कर सकेंगे ।

हरि०—जीवतो यस्य पुरुषस्य विभक्ताविभक्ताखिलद्रव्येषु येषां यादृग्विभागित्वं तस्य मरणेऽपि तत्र तेषां तादृग्विभागित्वं स्यादेवेत्याह अविभक्ते इत्यादिना। यस्य पुरुषस्याऽविभक्ते विभक्ते वा द्रव्ये येषां दायादानां यादृग्विभागिता स्यात्तस्य पुंसो मृतेऽपि मरणेऽपि दायादास्तादृग्विभवभागिनो भवेयुः।।६५।।

ये यस्य धनहर्तारो भवेयुर्जीवनावधि ।
दद्युः पिण्डं त एवाऽस्य शैवभार्यासुतं विना ।।६६।।

पद्मा—जो जिसके धन का अधिकारी है, वह उसे अपने जीवनकाल में पिण्डदान करता रहेगा, किन्तु शैवी भार्या का पुत्र पिण्डदान नहीं कर सकेगा ।

हरि०—प्रमीतस्य यस्य पुंसो द्रविणं ये लाभेरंस्तस्मै यावज्जीवनं त एव पिण्डं ददेरन्नित्याह ये इत्यादिना। ये पुमांसो यस्य पुंसो धनहर्तारो भवेयुस्त एव जीवनावधि जीवनपर्यन्तमस्य पुरुषस्य पिण्डं दद्युः। परन्तु शैवभार्यासुतं विना तस्य तत्पिण्डदानेऽधिकारित्वं नास्तीत्यर्थः। शैवभार्यासुतमिति शैव्यास्तद्दुहित्रादीनां चोपलक्षणम्।।६६।।

लोकेऽस्मिन् जन्मसम्बन्धाद् यथाऽशौचं विधीयते ।
धनभागित्वसम्बन्धात् त्रिरात्रं विहितं तथा ।।६७।।

पद्मा—इस संसार में जन्म के सम्बन्ध में जिस प्रकार अशौच की व्यवस्था है, उसी प्रकार उत्तराधिकार के सम्बन्ध में भी तीन रात्रि तक का अशौच होता है ।

हरि०—यथा जन्मसम्बन्धात् सर्वेषां बान्धवानां मरणजनननिमित्तकाशौचं जायते एवं धनभागित्वसम्बन्धाद्धनहारिणामपि त्रिरात्रमशौचं स्यादित्याह लोके इत्यादिना। जन्म-सम्बन्धाद्यथाऽस्मिंल्लोके जने मरणजनननिमित्तकमशौचं विधीयते धनभागित्वसम्बन्धा द्धनहर्तर्यपि त्रिरात्रमशौचं विहितम्। "लोकः स्याद्भुवने जने" इत्यमरः।।६७।।

पूर्णेऽशौचेऽथवाऽपूर्णे तत्कालाभ्यन्तरे श्रुते ।
श्रवणाच्छेषदिवसैर्विशुद्ध्येयुर्द्विजादयः ।।६८।।

पद्या–जो पूर्ण अशौच या खण्ड अशौच निर्दिष्ट अशौच के समय में मध्य में सुनने पर अशौच काल के जो कुछ दिन बचे हों, द्विजातिगण उतने ही दिन में शुद्ध होंगे ।

हरि०–नन्वशौचकालाभ्यन्तर एव पूर्णे खण्डं वाऽशौचं शृण्वतामपरदेशस्थानां ब्राह्मणदीनामशौच श्रवणवासरादवशिष्टैरवा शौचवासरैर्विशुद्धिः स्यात् तद्वासरमारभ्याऽपरैर्वा दशाहादिभिरित्याशङ्कायामाह पूर्णे इत्यादिना। पूर्णेऽशौचेऽथवाऽपूर्णे खण्डेऽशौचे तत्कालाभ्यन्तरेऽशौचकालमध्ये श्रुते सति श्रवणादशौचश्रवणदिवाताच्छेषदिवसैरव शिष्टैरहोरात्रैर्द्विजादयो ब्राह्मणादयो विशुध्येयुः श्रूयतेऽस्मिनन्निति श्रवणं तस्मात्। "करणाधिकरणयोश्च" इत्यधिकरणे ल्युट्।।६८।।

कालातीते तु विज्ञाते खण्डेऽशौचं न विद्यते ।
पूर्णे त्रिरात्रं विहितं न चेत् संवत्सरात् परम् ।।६९।।

पद्या–अशौच काल के व्यतीत हो जाने पर खण्ड अशौच सुनने पर अशौच नहीं होता, किन्तु पूर्ण अशौच सुनने पर तीन रात्रि का अशौच होगा। यदि समय एक वर्ष से अधिक न व्यतीत हुआ हो ।

हरि०–नन्वशौचकालव्यपगमे सति संवत्सराभ्यन्तर एव ज्ञातिमरणं शृण्वन्तो ब्राह्मणादयः कियद्भिरहोरात्रैर्विशुध्येयुरत आह कालातीते इत्यादिना। कालातीतेत्वशौचकालातिक्रमणे तु खण्डेऽशौचे विज्ञाते सत्यशौचं न विद्यते। चेद्यदि संवत्सराद्वर्षात् परमूर्ध्वं दिनादिकमतीतं न भवेत्तदा अतीतेऽप्यशौचकाले पूर्णेऽशौचे विज्ञाते सति त्रिरात्रमशौचं विहितम्। कालस्यातीतं कालातीतमिति "षष्ठीति" सूत्रेण षष्ठीतत्पुरुषः। अतीतमित्यतिपूर्वादिगणो भावेक्तः। नाशौचं प्रसवस्याति व्यतीतेषु दिनेष्वपि" इति देवलवचनात् मरणविषयकमिदं वचनम्।।६९।।

वर्षातीतेऽपि चेन्मातुः पितुर्वामरणश्रुतौ ।
त्रिरात्रमशुचिः पुत्रस्तथा भर्तुः पतिव्रता ।।७०।।

पद्या–यदि एक व्यतीत होने पर पुत्र, पिता अथवा माता की मृत्यु का अथवा पतिव्रता स्त्री, पति के मरने का समाचार सुने तो तीन रात्रि तक अशौच रहता है ।

हरि०–संवत्सरे व्यतीतेऽपि मातापित्रोर्मरणं शृण्वतः पुत्रस्य स्वामिनो मरणं शृण्वत्याः पतिव्रतायाश्च त्रिरात्रमशौचं स्यादित्याह वर्षातीतेऽपीत्यादिना वर्षातीतेऽपि संवत्सरातिक्रमणेऽपि चेद्यदि मातृः पितुर्वा मरणश्रुति स्यात्तदा तयोर्मरणश्रुतो सत्यां पुत्रः त्रिरात्रमशुचिः स्यात् भर्तुः स्वामिनो मरणश्रुतो पतिव्रता स्त्री त्रिरात्रम् शुचिः स्यात् ।।७०।।

अशौचाभ्यान्तरे यस्मिन्नशौचान्तरमापतेत् ।
गुर्वशौचेन मर्त्यानां शुद्धिस्तत्र विधीयते ।।७१।।

पद्मा—यदि एक अशौच काल में दूसरा अशौच हो जाय तो दीर्घकाल के अशौच से मनुष्य की शुद्धि होती है।

हरि०—एकस्मिन्नशौचे सति तच्छेषवासराऽसमाप्तावेव विषमकालव्यापकाः शौचान्तरनिपाते सत्यधिकदिनव्यापकेनाऽशौचेन मर्त्यानां शुद्धिः स्यादित्याह अशौचाभ्यन्तर इत्यादिना। यस्मिन्नशौचे सत्यशौचाभ्यन्तरेऽशौचमध्येऽशौचान्तरं विषमकालव्यापकम् अपरमशौचम् आपतेदागच्छेत्तस्मिन्न शौचे जाते सति गुर्वशौचेनाऽधिकदिनव्यापकेनाऽशोचेनाऽपगेन मर्त्यानां शुद्धिर्विधीयते।।७१।।

अशौचानां गुरुत्वञ्च कालव्यापित्वगौरवात् ।
व्याप्यव्यापकयोर्मध्ये गरीयो व्यापकं स्मृतम् ।।७२।।

पद्मा—दीर्घकाल तक रहने वाले अशौच को गुरु कहा जाता है। अल्प समय तक रहने वाले अशौच को लघु कहा जाता है। व्याप्य तथा व्यापक इन दो प्रकार के अशौचों में व्यापक अशौच ही गुरु माना जाता है।।७२।।

हरि०—अथाशौचानां गुरुत्वं निरुपयति अशौचानामित्यादिना। काल व्यापिकत्व-गौरवात् कालव्यापकत्वे गुरुत्वाद्धेतोरशौचानां गुरुत्वं भवेत्। अधिककालव्यापकत्वाद-शौचानां गुरुत्वमल्पकालव्यापकत्वाच्च लघुत्वमित्यर्थः। व्याप्यव्यापकयोरशौचयोर्मध्ये व्यापकमशौचं गरीयो गुरुतरं स्मृतम्।।७२।।

यद्यशौचान्तदिवसे पतेदपरसूतकम् ।
पूर्वाशौचेन शुद्धिः स्यादधवृद्धया दिनद्वयम् ।।७३।।

पद्मा—यदि मरण अशौच तथा जनन अशौच के शेष दिनों में कोई दूसरा मरणजनित या जन्म जनित खण्ड अशौच हो, तो पहले अशौच द्वारा ही वह छूट जायेगा अर्थात् खण्ड अशौच ग्रहण नहीं होगा। यदि पूर्ण अशौच हो तो पूर्व अशौच के पश्चात् दो दिन बढ़ जायेगा।

हरि०—नन्वशौचान्तदिनेऽपरस्मिन्नशौचे पतिते सति पूर्वाशौचेनैव शुद्धिः पराशौचेन वेत्याशङ्कायामाह यदीत्यादिना। अशौचान्तदिवसे जननाशौचस्यान्तिमेऽहोरात्रे यद्यपरसूतकं तदन्यजननिमित्तकखण्डाशौचं पतेत्तदा पूर्वाशौचेनैव व्यतीतेन शुद्धिः स्यात्। यदि त्वशौचान्त-दिवसे पूर्णाशौचान्तरोपनिपाते सत्यद्यवृद्धिर्भवेत् तदाऽयवृद्धया पूर्वाशौचान्तदिसावधिकं दिनद्वयमशौचं स्यात्। सूतकमिति तु मृतकस्याऽप्युपलक्षणम्। तत्राप्येवमेवावगन्तन्तव्यम्।।७३।।

तावत् पितृ कुलाशौचं यावन्नोद्वहनं स्त्रियाः ।
जाते परिणये पित्रोर्मृतौत्र्यहमुदाहृतम् ।।७४।।

पद्मा—स्त्रियों का जब तक विवाह नहीं हो जाता, तब तक पितृकुल में ही अशौच होगा। विवाह के उपरान्त माता-पिता की मृत्यु पर तीन रात्रि का अशौच होगा।।७४।।

हरि०—ननु स्त्रीणां तातकुल एवाऽशौचे सत्यशौचं भवेद्भर्तृकुल एव वा किमुभयत्रापीत्या-शङ्कायामाह तावदित्यादिना। यावदुद्वहनमुद्वाहो न भवेत्तावत् कालपर्यन्तं स्त्रियाः पितृकुलाशौचं

पितृकुलसम्बन्ध्यशौचं स्यात्। एतेन विवाहात् परतो भर्तृकुलसम्बन्ध्येव स्त्रिया अशौचं भवेदिति सूचितम्। ननु उद्वाहादूर्ध्वमुत्पादकयोर्मातापित्रोरपि मृतौ नार्या अशौचं न स्यादित्यत् आह जाते इत्यादिना। परिणये विवाहे जाते सत्यपि पित्रोर्मृतौ मातुः पितुश्च मरणे सति स्त्रियाः त्र्यहं त्रिदिनमशौचमुदाहृतम्।।७४।।

विवाहानन्तरं नारी पतिगोत्रेण गोत्रिणी ।
तथा गृहीतृगोत्रेण दत्तपुत्रस्य गोत्रिता ।।७५।।

पद्या—विवाह के उपरान्त स्त्री, पति के गोत्र की हो जाती है। इसी प्रकार गोद लिया हुआ पुत्र गोद लेने वाले के गोत्र का हो जाता है.।

हरि०—ननु वैवाहिकसम्बन्धाज्जननसम्बन्धस्य बलवत्तरत्वस्योक्तत्वान्नार्याः पितृकुल एवाशौचे सत्यशौचं युक्तं न तु पतिकुलाशौचे सतीत्यत आह विवाहान्तरमित्यादिना। विवाहानन्तरमुद्वाहात् परतो नारी स्त्री पतिगोत्रेण गोत्रिणी स्यात्। विवाहादूर्ध्वं पितृ गोत्राद्बहिर्भूत-त्वात् तत्राशौचे सति स्त्रिया अशौचं न स्यादिति भावः। ननु दत्तकपुत्रस्य जनकगोत्रेण गोत्रवत्त्वमादातुर्गोत्रेण वेति सन्देहं निराकुर्वन्नाह तथेत्यादिना । तथा तेन प्रकारेण दत्तपुत्रस्य गृहीतृगोत्रेण गोत्रिता गोत्रवत्ता स्यात्।।७५।।

सुतमादाय सम्मत्या जनन्या जनकस्य च ।
स्वगोत्रनामान्युल्लिख्य संस्कुर्यात् स्वजनैः सह।।७६।।

पद्या—माता-पिता दोनों की सहमति से पुत्र ग्रहण कर ग्रहणकर्ता अपने गोत्र तथा नाम का उल्लेख कर दत्तक पुत्र का संस्कार करे ।

हरि०—इदानीं मातापित्रोः सम्मत्या पुत्रमादाय गृहीत्रा स्वगोत्रनामान्युच्चार्य तत्संस्कारो विधेय इत्याह सुतमित्यादिना। जनन्या जनयित्र्या जनकस्योत्पादकस्य च सम्मत्या सुतं तत्पुत्रमादाय गृहीत्वा स्वगोत्रनामान्युल्लिख्याऽऽत्मनोगोत्रनामधेयान्मुच्चार्य गृहीता स्वजनैबान्धवैः सह संस्कारं कुर्यात्।।७६।।

औरसेऽपि यथा पित्रोर्धने पिण्डेऽधिकारिता ।
आदात्रोर्दत्तके तद्वत्तोऽस्य पितरौ हि तौ ।।७७।।

पद्या—जिस प्रकार औरस पुत्र माता-पिता के धन का पिण्ड का अधिकारी होता है। उसी प्रकार दत्तक पुत्र भी दत्तक लेने वाले के धन तथा पिण्ड का अधिकारी होगा; क्योंकि दत्तक लेने वाले ही इस दत्तक पुत्र के माता-पिता हैं ।

हरि०—आदात्रोर्मातापित्रोर्धने पिण्डे च दत्तकपुत्रस्य सदृष्टान्तमधिकारि त्वमाह औरसेऽपीत्यादिना। अपिशब्दः पिण्डेन योजनीयः। पित्रोर्धने पिण्डेऽपि यथौरसे पुत्रेऽधिकारिता वर्तते तद्वदादात्रोरपि धने पिण्डे च दत्तकेऽधिकारिता स्यात्। दत्तकस्याऽऽदात्रोः पिण्डादावधिकारित्वे हेतुं दर्शयन्नाह यत इत्यादिना। यतोऽस्य दत्तकस्य तौ आदातरौ हीति निश्चितौ पितरौ स्यातामतस्तद्धन पिण्डयोस्तस्याऽधिकारितेत्यर्थः।।७७।।

आपञ्चाब्दं शिशुं गृह्णन् सवर्णात् परिपालयेत्।
पञ्चवर्षाधिको बालो दत्तको न प्रशस्यते।।७८।।

पद्मा—पाँच वर्ष के बालक को सवर्ण से लेकर उसका प्रतिपालन करे। दत्तक के लेने में पाँच वर्ष से अधिक आयु का बालक प्रशस्त नहीं है।

हरि०—ननु कियद्धायनो बालो दत्तकः प्रशस्तोऽस्त आह आपञ्चाब्दमित्यादिना। सवर्णात् समानवर्णादापञ्चाब्द पञ्चाब्दपर्यन्तं शिशुं बालं गृह्णन् ब्राह्मणादिः परिपालयेद्रक्षेत्। पञ्चाब्दा वर्षाणि यस्य स पञ्चाब्दस्तस्मादा इत्यापञ्चाब्दम्। "आङ्मर्यादाभिविध्योरित्यव्ययीभावः"। पञ्चवर्षाधिको यो बालोः असौ दत्तको न प्रशस्यते।।७८।।

भ्रातृपुत्रोऽपि दत्तश्चेद्गृहीतैव भवेत् पिता।
उत्पादकः पितृव्यः स्यात् सर्वकर्मसु कालिके।।७९।।

पद्मा—हे कालिके! यदि भतीजा दत्तक पुत्र हो तो दत्तक लेने वाला ही उस दत्तक पुत्र का पिता होगा और उसका वास्तविक पिता समस्त कार्यों में चाचा के समान समझा जायेगा।

हरि०—दत्तस्य भ्रातुष्पुत्रस्याप्यादाता तत्पितृव्य एव पिता स्यात् तज्जनकस्तु तत्पितृव्यः स्यादित्याह भातृपुत्रोऽपीत्यादिना। हे कालिके! चेद्यदि भ्रातृपुत्रोऽपि दत्तो भवेत्तदा सर्वेषु कर्मसु गृहीतैव तस्य पिता भवेत् उत्पादको जनकस्तु तस्य पितृव्यः स्यात्।।७९।।

यो यस्य धनहर्ता स्यात् स तद्धर्माणि पालयेत्।
संरक्षेन्नियमांस्तस्य तद्बन्धून् परितोषयेत्।।८०।।

पद्मा—जो व्यक्ति जिसके धन का अधिकारी होगा, वही व्यक्ति उसके धर्म का पालन करेगा और नियम मानेगा तथा उसके बन्धुओं को सन्तुष्ट करेगा।

हरि०—धनहारिणा पुरुषेण धनस्वामिनो धर्मा नियमाश्च संरक्षणीयास्तद्बान्धवाश्च सन्तोषणीया इत्याह य इत्यादिना। यः पुमान् यस्य पुंसो धनहर्ता स्यात् स तस्य धर्माणि पालयेत् तस्य नियमांश्च संरक्षेत् तस्य बन्धूनपि परितोषयेत्।।८०।।

कानीना गोलकाः कुण्डा अतिपातकिनश्च ये।
नाऽशौचं मरणे तेषां नैव दायाधिकारिता।।८१।।

पद्मा—कानीन, गोलक तथा कुण्ड ये अतिपापी हैं। उनके मरने पर अशौच नहीं होता और उन्हें धन का अधिकार नहीं होता है।

हरि०—कानीन गोलकादीनां दायाधिकारित्वं तेषां मरणेऽशौचं च नेत्याह कानीना इत्यादिना। ये कानीनाः पितुर्वेश्मन्यप्रकाशं कन्ययोत्पादिताः ये च गोलका मृते भर्तरि जाराज्जाताः ये च कुण्डा जीवत्येव पत्यौ जाराजाः ये चोक्तलक्षणा अतिपातकिनस्तेषां मरणेऽशौचं न स्यात् तेषां दायाधिकारिता च नैव स्यात्। "अमृते जारजः कुण्डो मृते भर्तरि गोलकः" इत्यमरः।।८१।।

लिङ्गच्छेदो दमो येषां यासां नासानिकृन्तनम् ।
महापातकिनाञ्चापि मृतौ नाऽशौचमाचरेत् ।।८२।।

पद्मा—जिन पुरुषों का दण्ड के रूप में लिंग काटा गया है अथवा जिन स्त्रियों की नाक राजा की आज्ञा से काटी गयी है अथवा जो ब्रह्महत्यादि करके महापातकी हुए हैं, उनके मरने पर अशौच नहीं माना जायेगा ।

हरि०—नासाकर्तनदण्डकापराधकर्त्रीणां स्त्रीं लिङ्गच्छेदण्डकापराधकारिणां महापातकिनाञ्च पुंसामपि मृतावशौचं नाऽऽचरणीयमित्याह लिङ्गच्छेद इत्यादिना। येषां पुरुषाणां लिङ्गच्छेदः शिश्नकर्तनं दमो दण्डो विहितस्तेषां यासां नासानिकृन्तनं नासिकाकर्तनं दण्डस्तासां स्त्रीणां महापातकिनां ब्रह्मघातकादीनाञ्चापि मृतौ मरणेऽशौचं नाचरेन्न कुर्यात्।।८२।।

नृणामुद्देशहीनानां परिवारान् धनान्यपि ।
पालयेद्रक्षयेद्राजा यावद्द्वादशवत्सरम् ।।८३।।

पद्मा—जिस पुरुष का कोई पता न हो अथवा खो गया हो, उसके परिवार तथा धन की रक्षा बारह वर्ष तक राजा को करनी चाहिए ।

हरि०—अनुद्दिष्टानां मनुष्याणां परिवारान् धनानि च द्वादशवर्षपर्यन्तं राज्ञा रक्षितव्यानीत्याह नृणामित्यादिना। उद्देशहीनानामनुद्दिष्टानां नृणां मनुष्याणां परिवारान् यावद् द्वादशवत्सरं द्वादशवर्षपर्यन्तं राजा पालयेत्। तेषां धनान्यपि स एव रक्षयेत् ।।८३।।

द्वादशाब्दे गते तेषां दर्भदेहान् विदाहयेत् ।
त्रिरात्रान्ते तत्सुताद्यैः प्रेतत्वं परिमोचयेत् ।।८४।।

पद्मा—बारह वर्ष के उस खोये हुए व्यक्ति की कुशमय देह का दाह कराये। तीन रात्रि के पश्चात् उस व्यक्ति के पुत्रादि के द्वारा श्राद्ध कर प्रेतत्व को छुड़ाये ।

हरि०—द्वादशवर्षादूर्ध्वमनुद्दिष्टानां पुंसां कुशमयानि शरीराणि राज्ञा तत्पुत्रादिभिर्दाहयितव्यानि त्रिरान्त्रान्ते तेषां प्रेतत्वञ्च मोचयितव्यमित्याह द्वादशाब्द इत्यादिना। द्वादशाब्दे द्वादशवर्षे गते याते सति तेषामुद्देशहीनानां नृणां दर्भदेहान् कुशमयशरीराणि राजा तत्सुताद्यैरनुद्दिष्टानां पुत्रादिभिर्विदाहयेत्। त्रिरात्रान्ते तेषां प्रेतत्वञ्च तैरेव परिमोचयेत्।।८४।।

ततस्तत्परिवारेभ्यः पुत्रादिक्रमतो धनम् ।
विभज्य नृपतिर्दद्यादन्यथा पातकी भवेत् ।।८५।।

पद्मा—इसके उपरान्त राजा इस खोये हुए पुरुष का धन यथावत् विभाजित कर पुत्रादि क्रम से उसके परिवार वालों को दे दे। ऐसा न करने पर राजा पाप का भागी होगा।

हरि०—ततः परमुद्देशरहितजनस्वामिकं द्रव्यं विभज्यपुत्रादिक्रमतस्तत्परिवारेभ्यो नृपेण देयमित्याह तत इत्यादिना। ततस्तद्दाहानन्तरं तदीयं धनं विभज्य पुत्रादिक्रमतस्तत्परिवारेभ्यो नृपतिर्दद्यात्। नन्वेवमकुर्वतो नरपतेः को दोषोऽत आह अन्यथेति। अन्यथा एतदकुर्वन नृपति, पातकी भवेत।।८५।।

न कोऽपि रक्षिता यस्य दीनस्याऽऽपद्गतस्य च ।
तस्यैव नृपतिः पाता यतो भूपः प्रजाप्रभुः ।।८६।।

पद्मा—जिनका कोई रक्षक नहीं है उनका तथा अनाथ, दीन और विपत्ति में पड़े हुए मनुष्यों का रक्षक राजा ही है; क्योंकि राजा ही प्रजा का स्वामी है ।

हरि०—विपत्ति प्राप्तोऽनन्यरक्षको मर्त्यो राज्ञैव पालनीय इत्याह न कोऽपीत्यादिना। आपद्गतरूप विपत्तिं प्राप्तस्य दीनस्य दरिद्रस्य यस्य पुंसः कोऽपि रक्षिता न विद्यते तस्य नृपतिरेव पाता रक्षकः स्यात्। यतो भूप एव प्रजानां प्रभुः स्वामी भवेत्। "निवस्तु दुर्विधो दीनो दरिद्रो दुर्गतोऽपि सः "इत्यमरः"।।८६।।

यद्यागच्छेदनुद्दिष्टो विभागान्तेऽपि कालिके ।
तस्यैव दाराः पुत्राश्च धनं तस्यैव नान्यथा ।।८७।।

पद्मा—हे कालिके! यदि धन विभाजित होने के उपरान्त खोया हुआ व्यक्ति वापस आ जाये तो स्त्री, पुत्र तथा धन उसी को प्राप्त होंगे इसमें अन्यथा नहीं हो सकता ।।८७।।

हरि०—द्रव्यविभागान्तेऽप्यागतस्याऽनुद्दिष्टस्यैव पत्न्याद्यो भवेयुरित्याह यदीत्यादिना। हे कालिके! विभागान्तेऽप्यनुद्दिष्टो जनो यथागच्छेत् तदा तस्यैव दारा भार्या पुत्राश्च तस्यैव धनमपि तस्यैव एतत्सर्वमन्यथा न भवेत्।।८७।।

न समर्थः पुमान् दातुं पैतृकं स्थावरञ्च यत् ।
स्वजनायाऽथवाऽन्यस्मै दायादानुमतिं विना ।।८८।।

पद्मा—बिना उत्तराधिकारियों की सम्मति के पुरुष भी पैतृक स्थावर धन को स्वजन या अन्य किसी व्यक्ति को दान नहीं कर सकता ।

हरि०—अंशिकानामननुमतौ पितृस्वामिकस्थावरद्रव्यं कस्मैचिदपि दातुं न कोऽपि शक्नुयादित्याह न समर्थ इत्यादिना। स्थावरं चेत्यत्राऽवधारणार्थकश्चशब्दः पैतृकस्थावराभ्यां द्वाभ्यामपि सम्बध्यते। तदाऽयमर्थः। दायादानुमति विना अंशिकानामनुमतेरभावे पैतृकमेव स्थावरमेव यत द्रव्यं तत्स्वजनायान्यस्मै वा दातु पुमान् समर्थः शक्तो न भवेत्—

"अन्वाचयसमाहारेतरेतरसमुच्चये ।
विनियोगे तुल्ययोगितावधारणहेतुषु ।
पादस्य पूरणेऽप्युक्तं नवस्वर्थेषु चाव्ययम्" ।।८८।।

यत्तु स्वोपार्जितं रिक्थं स्थावरं स्थावरेतरम् ।
अस्थावरं पैतृकं च स्वेच्छया दातुमर्हति ।।८९।।

पद्मा—स्वयं के द्वारा अर्जित चल-अचल धन तथा पैतृक अचल धन को स्वेच्छानुसार दान किया जा सकता है ।

हरि०—पैतृकं स्थावरञ्च यदित्यनेन स्वोपार्जितस्थावराद्यखिलद्रव्यस्य लब्धस्य पैतृकस्य च जङ्गमद्रव्यस्य स्वच्छन्दं दानं कुर्यादिति सूचितं तदेव पुनर्विस्पष्टयितुमाह यत्त्वित्यादिना।

यत्तु स्वोपार्जितं स्थावरं स्थावरेतरं जङ्गमं च रिक्थं धनं यच्च लब्धं पैतृकं पितृसम्बन्धि अस्थावरं जङ्गमं धनं तत्तु स्वेच्छया दातुमर्हति ।।८९।।

स्थिते पुत्रेऽथवा पत्न्यां कन्यायां तत्सुतेऽपि वा ।
जनके च जनन्यां वा भ्रातर्येवं स्वसर्यपि ।।९०।।
स्वार्जितं स्थावरधनमस्थावर धनञ्च यत् ।
अस्थावरं पैतृकञ्च दातुं सर्वं क्षमो भवेत् ।।९१।।

पद्मा–पुत्र, पत्नी, कन्या अथवा कन्या का पुत्र या माता, पिता, भाई, बहन कोई भी जीवित हो, तो भी अपने द्वारा अर्जित चल-अचल सम्पत्ति तथा पैतृक-अचल सम्पत्ति को दान किया जा सकता है ।

हरि०–अतिसन्निकृष्टतरपुत्राद्यननुमतावपि आत्मोपार्जितस्थावरादिसकलद्रव्यं पैतृकञ्चाऽस्थावरधनं दातुं पुमान् समर्थो भवेदित्याह स्थित इत्यादिना क्षमो भवेदित्यन्तेन श्लोकद्वयेन। पुत्रे आत्मजेऽपि स्थिते सति पत्न्यां भार्यायामथवा कन्यायां दुहितरि स्थितायां तत्सुते कन्यापुत्रे वा जनके पितरि वा स्थिते जनन्यां मातरि वा स्थितायामेवं भ्रातरि सोदरे स्थिते स्वसर्यपि भगिन्यामपि स्थितायां स्वार्जितमात्मोपार्जितं यत् स्थावरं धनं यच्चाऽस्थावर धनं जङ्गमद्रव्यं यच्च पैतृकमप्यस्थावरं धनं तत् सर्वं दातुं पुमान् क्षमः समर्थो भवेत्।।९०-९१।।

धनमेवं विधानेन दत्तं वा धर्मसात्कृतम् ।
पुंसा तदन्यथा कर्तुं पुत्राद्यैर्नैव शक्यते ।।९२।।

पद्मा–यदि पुरुष इस प्रकार का धन किसी को दान कर दे अथवा किसी धार्मिक कार्य में लगा दे तो उसके पुत्र पौत्रादि उसके विरुद्ध कुछ भी नहीं कर सकते ।

हरि०–शङ्करोक्तेन विधानेन पुरुषेण दत्तं धर्मार्थं च स्थापितं द्रव्यं तत् पुत्रादिभिर्नैवान्यथा कर्तुं शक्यमित्याह धनमित्यादिना। पुंसा पुरुषेणैवं विधानेन शिवोक्तेनैतादृशेन विधिना यत् धनं दत्तं यद्वा धनं धर्मसात्कृतं धर्माधीनं कृतं धर्मार्थं स्थापितमिति यावत्। तत् धनं पुत्राद्यैरन्यथाकर्तुं नैव शक्यते।।९२।।

धर्मार्थं स्थापितं रिक्थं दाता रक्षितुमर्हति ।
न प्रभुः पुनरादातुं धर्मो ह्यस्य यतः प्रभुः ।।९३।।

पद्मा–धर्मार्थ में लगाई गयी सम्पत्ति की रक्षा धन को देने वाला ही करेगा, किन्तु वह उसे पुनः नहीं जा सकता, क्योंकि धर्म ही उस धन का स्वामी हो जाता है ।

हरि०–धर्मार्थस्थापितद्रव्यस्य धर्मस्वामिकत्वात् दातुः पुनरग्राह्यत्वं तद्रक्ष्यत्वञ्चाह धर्मार्थमित्यादिना। धर्मार्थं स्थापितं यद्रिक्थं धनं तद्रक्षितं दाताऽर्हति। तत् धनं पुनरादातुं गृहीतुं दाता न प्रभुरधिपः। यतोऽस्य धनस्य। हीति निश्चितौ। धर्मः प्रभुः स्वामी।।९३।।

मूलं वा तदुपस्वत्वं यथासङ्कल्पमम्बिके ।
स्वयं वा तत्प्रतिनिधिर्धर्मार्थं विनियोजयेत् ।।९४।।

पद्मा—हे अम्बिके! स्वयं अथवा अपने प्रतिनिधि के द्वारा सङ्कल्प के अनुसार मूलधन अथवा उसकी आय को धार्मिक कार्यों में लगा दे।

हरि०—मूलधनं तदुपस्वत्वं वाऽऽत्मनाऽऽत्मप्रतिनिधिना वा यथासङ्कल्पं धर्मार्थं विनियोजयितव्यमित्याह मूलमित्यादिना। हे अम्बिके यथासङ्कल्पं सङ्कल्पमनतिक्रम्य मूलं वा धनं तदुपस्वत्वं वा स्वयमात्मैव वा तत्प्रतिनिधिरात्मनः प्रतिनिधिर्वा धर्मार्थं विनियोजयेत्। मुख्यस्याभावे तत्सदृशो य उपादीयते स प्रतिनिधिः॥९४॥

स्वोपार्जितधनस्यार्धं दायादायाऽपि चेत् धनी।
दद्यात् स्नेहेन तच्चान्यो नान्यथा कर्तुमर्हति॥९५॥

पद्मा—यदि किसी उत्तराधिकारियों से किसी एक को अपने द्वारा अर्जित किये गये धन का आधा भाग स्नेह वश दे दे तो अन्य उसके विरुद्ध कुछ नहीं कर सकते।

हरि०—ननूपार्जकजनेन प्रेमतो दायहारिणेऽपि दत्तं स्वोपार्जितद्रव्यस्यार्धमन्यः पुमानन्यथा कर्तुमर्हति न वेत्यत आह स्वोपार्जितधनस्येत्यादिना। धनी पुमांश्चेद्यदि स्नेहेन प्रेम्णा स्वोपार्जितधनस्यार्धं दायादायाऽपि धनहारिणेऽपि दद्यात्तदाऽन्यो जनस्तत्स्नेहेन दत्तं स्वोपार्जितधनामर्धमन्यथा कर्तुं नार्हति न योग्यो भवति। इतोऽनन्तरं वक्ष्यमाणस्य वचनस्य बह्वंशिविषयत्वात् द्व्यंशित्रिषयकमिदं वचनम्॥९५॥

यदि स्वोपार्जितस्यार्धमेकस्यै धनहारिणाम्।
ददात्यन्यैश्च दायादैः प्रतिरोद्धुं न शक्यते॥९६॥

पद्मा—यदि उत्तराधिकारियों में से किसी एक ही व्यक्ति को अपनी अर्जित सम्पत्ति का आधा दे दे, तो अन्य उत्तराधिकारी उसके विरुद्ध कुछ भी नहीं कर सकते हैं।

हरि०—ननु बहूनां दायादानामेकस्मै दीयमानं स्वोपार्जितधनस्यार्धं अन्ये दायादाः प्रतिरोद्धुं शक्नुवन्ति न वेत्यत आह यदीत्यादिना। यद्यर्जको धनहारिणां दायादानां मध्ये एकस्मै धनहारिणे स्वोपार्जितस्य द्रव्यस्यार्धं ददाति तदाऽन्यैर्दायादैः प्रतिरोद्धुं वारयितुं न शक्यते॥९६॥

एकेन पितृवित्तेन यत्र वित्तमुपार्जितम्।
पित्र्ये समांशा दायादा न लाभार्हा विनाऽर्जकम्॥९७॥

पद्मा—जहाँ पर अनेक भाइयों में से एक भाई पैतृक धन द्वारा धन अर्जित करता है, वहाँ उक्त पैतृक धन में ही सभी भाइयों का अधिकार है। अर्जित धन उपार्जन करने वाले के अतिरिक्त अन्य किसी को भी प्राप्त नहीं होगा।

हरि०—ननु पैतृकद्रविणेनैवोपार्जिते वित्ते सर्वे दायादा भागार्हा भवेयुर्न वेत्याशङ्कायामाह एकेनेत्यादिना। यत्र येषु दायादेषु मध्ये येनैकेन दायादेन येन पितृवित्तेन पैतृकेण धनेन वित्तं धनमुपार्जितं ते सर्वे दायादास्तस्मिन् पित्र्ये पैतृके समांशाः समभागिनः स्युः। तमर्जकं विना लाभार्हास्तु न स्युः। किन्त्वर्जक एवैको लाभार्ह इत्यर्थः॥९७॥

पैतृकाणि च वित्तानि नष्टेऽप्युद्धारयेत्तु यः ।
दायादानां तद्धनेभ्य उद्धर्त्ता द्व्यंशमर्हति ।।९८।।

पद्मा—यदि नष्ट हुए पैतृक धन का एक भाई उद्धार करता है तो वह उस धन का दो भाग पायेगा। शेष भाई एक भाग प्राप्त करेंगे ।

हरि०—विनष्टानि पैतृकद्रव्याण्युद्धरतो जनस्य तत्र भागद्वयहारित्वमन्येषां तु समभागित्वमित्याह पैतृकाणीत्यादिना। दायादानं मध्ये यस्तु दायादो नष्टेऽपि नाशेऽपि सति पैतृकाणि वित्तान्युद्धरेत् स उद्धर्त्ता तद्धनेभ्यो द्व्यंशं भागद्वयमर्हति अन्ये तु सममंशं लभन्त इत्यर्थः।

पुण्यं वित्तं च विद्या च नाश्रयेदशरीरिणिम् ।
शरीरन्तु पितुर्यस्मात् किन्न स्यात् पैतृकं वसु ।।९९।।

पद्मा—शरीररहित व्यक्ति को पुण्य, धन तथा विद्या प्राप्त नहीं होती है। यह शरीर पिता से प्राप्त हुआ है अत: कौन सा धन पैतृक नहीं है? अर्थात् सभी कुछ पैतृक है ।

हरि०—वपुष्य: पैतृकत्वेन वपुष्मदाश्रितानां विद्यावित्तादीनामपि पैतृकत्वसत्त्वात् पृथगन्नद्रव्यैरपि मनुष्यैस्तैरेखोपार्जितानां सर्वेषां धनानां पितृसम्बन्धत्वानपायात् स्वोपार्जितत्वं न सिद्धयेदतो निजायासैरर्जितानां सकलद्रव्याणां स्वोपार्जिततत्वमर्जकमात्रस्वामिकत्वञ्च ज्ञातव्यमित्येतदेवाह पुण्यमित्यादिना न चापर: इत्यन्तेन श्लोकत्रयेण । यस्माद्धेतो पुण्यं धर्मं वित्तं धनं च विद्या शास्त्रादितत्त्वज्ञानं चाशरीरिणमदेहिनं नाश्रयेन्नावलम्बते किन्तु शरीरिण मेवाऽऽश्रयेत् शरीरन्तु पितु: पितृसम्बन्धि भवति अत: किं वसु धनं पैतृकं पितृसम्बन्धि न भवेदपि तु सर्वं वसु पैतृकमेव भवेत् ।।९९।।

पृगन्नै: पृथग्वित्तैर्मनुजैर्यदुपार्जितम् ।
सर्वं तत् पितृसंक्रान्तं तदा स्वोपार्जितं कुत: ।।१००।।

पद्मा—मनुष्य पृथक् अन्न, पृथक् धन वाले होकर भी जो कुछ उपार्जित करते हैं वह सब पितृसम्बन्धी हैं अत: अपना उपार्जित धन कैसे सम्भव है ।

हरि०—पृथगन्नैरिति। अत: पृथगन्नैर्विभिन्नभक्तै: पृथग्वित्तैर्विभक्तधनैरपि मनुजैर्मनुष्यैर्यदुपार्जितं तत्सर्वं पितृसंक्रान्तं पितृसम्बद्धं जातं तदा स्वोपार्जितं धनं कुतो भवेत् धनस्य स्वोपार्जिततत्वं न सिद्धयेदित्यर्थ: ।।१००।।

अतो महेशि! स्वायासैर्येन यद्धनमर्जितम् ।
स्वोपार्जितं तदेव स्यात् स तत्स्वामी न चापर: ।।१०१।।

पद्मा—हे महेशि! जो मनुष्य अपने परिश्रम से जो धन प्राप्त करता है, वही उसका उपार्जित धन है वही उस धन का स्वामी है और किसी अन्य का नहीं ।

हरि०—अत इति। हे महेशि अतो हेतो: स्वायासैरात्मपरिश्रमैर्येन पृथगन्नादिनाऽपृथगन्नादिना वा पुंसा यत् धनमर्जितं तदेव धनं स्वोपार्जितं स्यात्। सोऽर्जक एव तत्स्वामी स्वोपार्जितस्य धनस्य प्रभुर्न चापरोऽर्जकभिन्न: वामी।।१०१।।

मातरं पितरं देवि! गुरुं चैव पितामहान् ।
मातामहान् करेणापि प्रहरन्नैव दायभाक् ।।१०२।।

पद्मा—हे देवि! माता, पिता, गुरु, पितामह (बाबा) तथा मातामह (नाना) को हाथ से भी मारने वाला व्यक्ति उनके धन का अधिकारी नहीं होगा।

हरि०—मात्रादीन् पाणिनाऽपि प्रहरतो मानवस्य दायभागित्वं नैव स्यादित्याह मातरमित्यादिना। हे देवि मातरं जननीं पितरं जनकं गुरुं मन्त्रोपदेष्टारम् बहुवचनस्य बहूपक्षलक्षकत्वात् पितामहान् पितामहादीन् मातामहांश्चापि मातामहादीनपि करेण पाणिनाऽपि प्रहरन्नरो दायभाक् नैव भवेत्। अपि शब्देन दण्डादिना मात्रादीन् प्रहरतस्तु सुतरामेव दायभागित्वं न भवेदिति सूचितम् ।।१०२।।

निघ्नन्नन्यानपि प्राणैर्न तेषां धनमाप्नुयात् ।
हतानामन्यादायादा भवेयुर्धनभागिनः ।।१०३।।

पद्मा—किसी सम्बन्धी पुरुष का प्राणनाश करके भी वह मृत व्यक्ति के धन को नहीं प्राप्त कर सकेगा। कोई दूसरा उत्तराधिकारी ही उस व्यक्ति के धन का अधिकारी होगा।

हरि०—भ्रात्रादीनपि धनार्थं मारयतः पुरुषस्य हतस्वामिकद्रव्ये निरंशकत्वमपरदायानां समांशकत्वं स्यादित्याह निघ्नन्नित्यादिना। अन्यानपि मात्रादिभिन्नापि जनान् प्राणैर्निघ्नन्मारयन्नरस्तेषां हतानां धनं नाप्नुयान्न लभेत्। किन्तु हतानामन्ये हन्तुर्भिन्ना दायादा धनभागिनो भवेयुः।।१०३।।

नपुंसकाः पङ्गवश्च ग्रासाच्छादनमम्बिके! ।
यावज्जीवनमर्हन्ति न ते स्युर्दायभागिनः ।।१०४।।

पद्मा—हे अम्बिके! नपुंसक तथा अपंग जीवन भर रोटी (भोजन) व कपड़ा (वस्त्र) प्राप्त कर सकेंगे, किन्तु धन के अधिकारी नहीं होंगे।

हरि०—अथाऽनंशानां पङ्गुक्लीवाना यावज्जीवनं ग्रासाच्छादनभागित्वं स्यादित्याह नपुंसका इत्यादिना। हे अम्बिके जगज्जननि नपुंसका पङ्गवश्च यावज्जीवनं जीवनपर्यन्तं केवलं ग्रासाच्छदनमर्हन्ति। ते दायभागिनो न स्युः।।१०४।।

सस्वामिकं प्राप्तधनं पथि वा यत्र कुत्रचित् ।
नृपस्तत्स्वामिने प्राप्वा दापयेत् सुविचारयन् ।।१०५।।

पद्मा—यदि किसी मनुष्य को मार्ग में या किसी अन्य स्थान में सस्वामिक धन प्राप्त हो जाये तो राजा उसपर सूक्ष्म विचार करके धनके स्वामी को प्रदान करे।

हरि०—नन्वध्वादौ लब्धस्य सस्वामिकद्रव्यस्य प्राप्तृ जनगामित्वं स्यादात्मस्वामिगामित्वं वेत्यत् आह सस्वामिकमित्यादिना। पथि मार्गे पत्र कुत्रचिद्वा स्थाने सस्वामिकं प्राप्तं धनं सुविचारयन्नृपः तत्स्वामिने प्राप्तधनस्यापि पतये प्राप्वा पुंसा दापयेत्।।१०५।।

अस्वामिकानां जीवानामस्वामिकधनस्य च ।
प्राप्ता तत्र भवेत् स्वामी दशमांशं नृपेऽर्पयेत् ।।१०६।।

पद्मा—अस्वामिक धन या अस्वामिक जीव के प्राप्त होने पर, पाने वाला व्यक्ति ही उसका अधिकारी होगा। राजा उसका दशमांश ही ग्रहण करे।

हरि०—नन्वस्वामिकाः प्राप्ता गवाश्वादयो जीवास्तादृशानि प्राप्तानि धनानि च प्राप्तारं पुमांसं गच्छेयुर्वसुधाधिपं वेत्याशङ्कायामाह अस्वामिकानामित्यादिना। अस्वामिकानां स्वामिरहितानां जीवानां गवाश्वादीनामस्वामिकस्य धनस्य च प्राप्ता जनस्तत्र तेषु प्राप्तेषु स्वामी भवेत्। तत्र च दशममंशं प्राप्ता नृपेऽर्पयेद्दद्यात्। जीवानामिति धनस्येति च "कर्तृकर्मणोः कृतीति" कर्मणि षष्ठी॥१०६॥

स्थावरं धनमन्यस्मै स्थिते सान्निध्यवर्तिनि।
योग्ये क्रेतरि विक्रेतुं न शक्तः स्थावराधिपः॥१०७॥

पद्मा—जन्म के सम्बन्ध से अथवा विवाह के सम्बन्ध से निकट होने कारण योग्य क्रेता निकट हो, तो स्वामी स्थावर धन्य सम्पत्ति अन्य किसी व्यक्ति को नहीं बेच सकता।

हरि०—ननु स्थावरद्रव्यस्वामिना दूरस्थयोग्यसमीपस्थयोः क्रायकयोर्मध्ये कतरस्मै स्थावरं धनं विक्रेतुं शक्येत तत्राह स्थावरमित्यादिना। सान्निध्यवर्तिनि समीप स्थापिनि योग्ये क्रयार्हे क्रेतरि क्रायके स्थिते सत्यन्यस्मै दूरवर्तिनि पुंसे स्थावरं धनं विक्रेतुं स्थावराधिपो जनः शक्तो न भवेत् किन्तु सान्निध्यवर्तिने एव विक्रेतुं शक्नुयादित्यर्थः। सन्निधिरेव सान्निध्यम्। "चतुर्वर्णादीनां स्वार्थे उपासंख्यानमिति" स्वार्थे ष्यञ्॥१०७॥

सान्निध्यवर्तिनां ज्ञातिः सवर्णो वा विशिष्यते।
तयोरभावे सुहृदो विक्रेत्रिच्छा गरीयसी॥१०८॥

पद्मा—सान्निध्य में रहने वाले क्रेताओं के मध्य जाति या सवर्ण विशेष है। उनके अभाव में मित्र ही विशेष हैं। यदि विक्रेता चाहे तो मित्रों को अपनी सम्पत्ति बेच दे; क्योंकि विक्रेता की इच्छा ही मान्य है।

हरि०—नन्वनेकेषां सन्निधिवर्तिनां मध्ये कतमस्य स्थावरद्रव्यक्रयणे वैशिष्ट्यमत आह सान्निध्येत्यादिना। सान्निध्यवर्तिनां मध्ये ज्ञातिर्गोत्रजो विशिष्यते सवर्णः समानवर्णो वा विशिष्यते तयोर्ज्ञातिसवर्णयोरभावे सुहृदो मित्राणि विशिष्यन्ते। ननु बहूनां गोत्रजानां सवर्णानां सुहृदाञ्च मध्ये कतमस्मै स्थावरं द्रव्यं तत्स्वामी विक्रीणीतेत्यत आह विक्रेत्रिच्छेति। विक्रेतुर्विक्रयकर्तुरिच्छा गरीयसी गुरुतरा भवेत्। क्रमत एव तेषां मध्ये यस्मै विक्रेतुमिच्छेत्तस्मै एव विक्रीणीतेति भावः॥१०८॥

निर्णीतमूल्येऽप्यन्येन स्थावरस्य क्रयोद्यमे।
तन्मूल्यं चेत् समीपस्थो राति क्रेता न चापरः॥१०९॥

पद्मा—दूसरा कोई अन्य व्यक्ति यदि स्थावर धन का मूल्य निश्चित कर क्रय करने को तैयार हो तथा निकट का सम्बन्धी भी उतना ही मूल्य दे रहा हो तो धन निकट के सम्बन्धी को ही बेचा जाएगा, किसी अन्य को नहीं।

हरि०—नन्वन्यनिर्णीतमूल्यं स्थावरं वित्तं तन्मूल्यं ददता समीपस्थापिना क्रीयेत् निर्णीतमूल्येनाऽन्येन वेत्याशङ्कायामाह निर्णीतेत्यादि। स्थावरस्य वित्तस्य क्रयोद्यमे सति अन्येन समीपस्थभिन्नेन पुंसा निर्णीतमूल्येऽपि मूल्ये निर्णीतेऽपि सति तन्मूल्यम् अन्यनिर्णीतमूल्यकस्थावरद्रव्यमूल्यं चेद्यदि समीपस्थो जनो राति ददाति तदाऽपरः समीपस्थभिन्नो जनः क्रेता क्रायको न भवेत्, किन्तु समीपस्थ एवं मूल्यं दत्त्वा क्रीणीयादित्यर्थः॥१०९॥

मूल्यं दातुमशक्तश्चेत् सम्मतो विक्रयेऽपि वा ।
सन्निधिस्थस्तदाऽन्यस्मै गृही शक्तोऽतिविक्रये ।।११०।।

पद्मा—यदि निकट का सम्बन्धी मूल्य देने में असमर्थ है अथवा अन्य के हाथ में बेच देने की सहमति हो तो गृहस्थ दूसरे व्यक्ति को भी बेच सकता है।

हरि०—स्थावरधनस्य मूल्यं दातुम शक्नुवति तद्विक्रये सम्मतिं वापि कुर्वति समीपस्थायिनि जने दुरस्थाय तद्विक्रेतुं तत्स्वामी शक्नोतीत्यत आह मूल्यमित्यादिना। सन्निधिस्थः समीपस्थायी जनश्चेद्यदि स्थावरस्य मूल्यं दातुमशक्तो भवेत् तस्य विक्रयेऽपि वा सम्मतः सम्मतिमान् भवेत् तदा गृही गृहस्थोऽन्यस्मै सन्निधिस्थभिन्नाय विक्रये शक्नोति शक्तो भवति॥११०॥

क्रीतं चेत् स्थावरं देवि! परोक्षे प्रतिवासिनः ।
श्रवणादेव तन्मूल्यं दत्त्वाऽसौ प्राप्तुमर्हति ।।१११।।

पद्मा—हे दवि! निकटसम्बन्धी तथा पड़ोसी के न जानते हुए यदि कोई अन्य स्थावर सम्पत्ति को क्रय कर ले, तो निकट का सम्बन्धी यह सुनते ही मूल्य देकर उस स्थावर सम्पत्ति को पुनः ले सकता है।

हरि०—ननु समीपस्थायिनः परोक्ष एवान्येन क्रीतं स्थावरं वित्तं क्रेतैव प्राप्तुमर्हति तत् श्रुत्वैव तन्मूल्यं ददत् समीपस्थायी वेत्याशङ्कायामाह क्रीतञ्चेदित्यादिना। हे देवि चेद्यदि प्रतिवासिनः सन्निधिस्थायिनो जनस्य परोक्षे स्थावरं द्रव्यमन्येन क्रीतं भवेत् तदा श्रवणादेव तन्मूल्यम् अन्यक्रीतस्थावरद्रव्यमूल्यं दत्त्वाऽसौ प्रतिवासी प्राप्तुम् अर्हति। श्रवणादेवेत्यनेन कालान्तरे तन्मूल्यं दत्त्वाऽपि स्थावरद्रव्यं प्राप्तुं नार्हतीति सूचितम्॥१११॥

क्रेता तत्र गृहारामान् विनिर्माति भनक्ति वा ।
मूल्यं दत्त्वापि नाप्नोति स्थावरं सन्निधिस्थितः।।११२।।

पद्मा—किन्तु यदि उसमें क्रेता ने उसमें घर, उपवन बना लिया हो या गिरा दिया हो तो निकट का सम्बन्धी मूल्य देकर भी स्थावर धन को नहीं प्राप्त कर सकता।

हरि०—क्रायकजनविनिर्मितमन्दिरारामं तद्भग्नमन्दिरोपवनं वा क्रीतं स्थावरधनं मूल्यं दत्त्वापि समीपस्थायी नाप्तुमर्हतीत्याह क्रेतेत्यादिना। क्रेता जनस्तत्र क्रीते स्थावरं यदि गृहारामान् गृहाण्युपवनानि च विनिर्माति करोति तत्र विनिर्मितानेवतान् भनक्ति आमर्दयति वा तदा सन्निधिस्थितोऽपि जनो मूल्यं दत्त्वापि स्थावरधनं नाप्नोति न लभते॥११२॥

करहीनाऽप्रतिहता वन्यारण्यातिदुर्गमा ।
अनादिष्टोऽपि तां भूमिं सम्पन्नां कर्तुमर्हति ।।११३।।

पद्या–जल अथवा उपवन से निकाली हुई, अतिदुर्गम, अनिवारित, भोग एवं राजस्वरहित भूमि को राजा की आज्ञा के बिना भी उपजाऊ बनाया जा सकता है ।

हरि०–भूमिपालेनाऽनाज्ञापितेनापि पुंसा जलोद्भवा काननोद्भवा च करहीना खिला भूमि: सम्पन्ना कर्तव्येत्याह करहीनेत्यादिना। वन्या जलोद्भवाऽऽरण्या काननोद्भवा चातिदुर्गमाऽतएवाऽप्रतिहता खिलाऽतएव करहीना राज्यग्राह्यभागरहिता या भूमिस्तां भूमिमनादिष्टोऽपि भूपेनाऽज्ञप्तोऽपि पुरुष: सम्पन्नां शस्याद्यां कर्तुमर्हति। वने जले भवा वन्या। दिगादिभ्यो यदिति यत्। "पय: कीलालमृतं जीवनं भुवनं वनम्" इत्यमर:। अरण्ये भवा आरण्या अरण्याण्ण इति ण:॥११३॥

बहुप्रयाससाध्यायास्तस्या भूमिर्महीभृते ।
दत्त्वा दशांशं भुञ्जीयात् भूमिस्वामी यतो नृप:।।११४।।

पद्या–भूमि बहुत परिश्रम करके भी तैयार की गई हो, तो भी उसमे उत्पन्न वस्तु का दसवाँ भाग राजा को देकर उसका उपभोग करे; क्योंकि समस्त भूमि का स्वामी राजा ही है ।

हरि०–अनेकायाससाध्यवन्यारण्य क्षितिजातवस्तुनो दशमांशं भूमिस्वामित्वाद्राज्ञे समप्यावशिष्टं सर्वं स्वयं भोक्तव्यमित्याह बह्वित्यादिना। यतो नृपो राजा भूमिस्वामी अतो बहुप्रयाससाध्या अनेकपरिश्रम निष्पाद्यायास्तस्या वन्याया आरण्यायाश्च भूमेर्जातस्य वस्तुनो दशांशं दशमाशं महीभृते राज्ञे दत्ताऽवशिष्टं स्वयं भुञ्जीत्॥११४॥

वापीकूपतडागानां खननं वृक्षरोपणम् ।
परानिष्टकरे देशे न गृहं कर्तुमर्हति ।।११५।।

पद्या–जिस स्थान पर किसी का अनिष्ट हो सकता हो, वहाँ बावली, कुआँ, तालाब खोदना, वृक्ष लगाना तथा घर बनवाना निषिद्ध है ।

हरि०–अन्यानाकाङ्क्षितोत्पादके स्थाने वाप्यादीनां खननं वृक्षाणामारोपणं गेहस्य निर्माणं च न विधेयमित्याह वापीत्यादिना। वाप्यादिखननवृक्षरोपणगृहकरणसत्त्वात् परानिष्टकरेऽन्यानीप्सितोत्पादके देशे वापीकूपतडागानां खननं तथा वृक्षरोपणं तथा गृहमपि कर्तुं जनो नार्हति ॥११५॥

देवार्थं दत्तकूपादौ तथा स्रोतस्वतीजले ।
पानाधिकारिण: सर्वे सेचनेऽन्तिवासिन: ।।११६।।

पद्या–देव कार्य के उद्देश्य से बनाये गये कुएं तथा नदी का जल सभी पीने का अधिकार है तथा इन जलाशयों के निकट रहने वाले सभी मनुष्य उनसे सिंचाई करने के अधिकारी है।

हरि०–देवार्थदत्तकूपादिजले नदीजले च सर्वेषां पानाधिकारिता तु तन्निकटस्थायिनामेवेत्याह

देवार्थमित्यादिना। देवार्थ दत्तकूपादौ तथा स्रोतस्वती जले नदीवारिणि सर्वे पानाधिकारिणः सेचने त्वन्तिकवासिनो निकटस्थायिन एवाधिकारिणो भवेयुः। "स्रोतस्वती द्वीपवन्ती स्रवन्ती निम्नगापगा" इत्यमरः।।११६।।

यत्तोयसेचनाल्लोका भवेयुर्जलकातराः ।
न सिञ्चेयुर्जलं तस्मादपि सन्निधिवर्तिनः ।।११७।।

पद्मा–जिस जल से सिंचाई करने से लोगों को जल का अभाव अनुभव हो, उससे समीपवर्ती जन भी सिंचाई नहीं कर सकते ।

हरि०–ननु यत् पानीयसेचनतस्तत्समीपस्थायिनो लोका जना व्याकुल भवेयुस्तज्जलं सेचनीयं न वेत्यत आह यत्तोयेत्यादिना। यत्तोयसेचनाद्यस्य कूपादेर्वारिणः सेकाल्लोका जना जलकातराः पानीयव्याकुला भवेयुस्तस्माज्जलं सन्निधिवर्तिनोऽपि न सिञ्चेयुः दूरवर्तिनान्तु का वार्ता ।।११७।।

धनानामविभक्तनामंशिनां सम्मतिं विना ।
तथाऽनिर्णीतवित्तानामसिद्धौ न्यासविक्रयौ ।।११८।।

पद्मा–उत्तराधिकारियों की सम्मति के बिना अविभाजित सम्पत्ति को गिरवी रखना या विक्रय करना अवैध है। इसी प्रकार जिस सम्पत्ति का स्वामित्व अथवा परिमाण निर्देशित नहीं हो, उसका विक्रय या बन्धन अवैध है ।

हरि०–दायादासम्मतयोरविभक्तद्रव्यन्मासविक्रययोर्निर्णयरहितद्रव्यन्यासविक्रययोश्च सिद्धत्वं न भवेदित्याह धनानामित्यादिना। अंशिनां दायादानां सम्मतिं विना अविभक्तानां धनानां न्यासविक्रयावसिद्धौ सिद्धौ न भवेताम्। तथाऽनिर्णीतवित्तानां वित्तानि इमानि अस्यैवेति वित्तानि इमानि इयन्ति वेति निर्णयरहितद्रव्याणां स्थापयविक्रयौ सिद्धौ न स्याताम्।।११८।।

स्थाप्यानां बद्धवित्तानां ज्ञानान्नष्टेऽप्ययत्नतः ।
तन्मूल्यं दापयेत्तेन स्वामिने सर्वथा नृपः ।।११९।।

पद्मा–बन्धक वस्तु को जानबूझकर नष्ट करने पर राजा उस नष्ट करने वाले व्यक्ति से उस वस्तु के स्वामी को उसका मूल्य प्रदान करे ।

हरि०–यस्यालये न्यस्तद्रव्याणां बद्धद्रव्याणाञ्च ज्ञानपूर्वकादयत्नान्नाशो भवेत् तेन पुंसा तन्मूल्यं तत्स्वामिने नृपतिना दापयितव्यमित्याह स्थाप्यानामित्यादिना। ज्ञानादयत्नतो ज्ञानपूर्वकादयत्नात् स्थाप्यानां न्यासवित्तानां बद्धवित्तानाञ्च नष्टेऽपि नाशेऽपि सति यद्गेहे स्थापितानि बद्धानि च वित्तानि नष्टानि तेन पुंसा तन्मूल्यं स्थापितबद्धवित्तमूल्यं स्वामिने तद्वित्ताधिपतये नृपो राजा सर्वथा सर्वप्रकारेण दापयेत्। ज्ञानान्नष्टेऽप्ययत्नत इति वदता सदाशिवेन तद्रक्षायै यत्नसत्त्वेऽपि कथञ्चिन्नाशे सति तन्मूल्यं नृपेण न दापयितव्यमिति सूचयामास ।।११९।।

अभिमत्या स्थापकस्य पश्वादिन्यस्तवस्तुनाम् ।
व्यवहारे कृते तत्र धार्ता सम्पोषयेत् पशून् ।।१२०।।

पद्या–यदि किसी के पशु आदि जीव बन्धक (गिरवी) रखे जाये तथा रखने वाले की सम्मति से यह पशु आदि व्यवहार या काम में लाये जाएं, तो जिसके पास पशु धरोहर में रखे गए हैं वही इन पशुओं को भोजनादि देगा ।

हरि०–स्थापकसम्मत्या कृतन्यस्तपश्वादिवस्तु व्यवहारेणैव पुंसा स्थापिता: पशव: सम्पोषयितव्या इत्याह अभिमत्येत्यादिना। स्थापकस्य द्रव्यन्यासकस्याऽभिमत्या सम्मत्या पश्वादिन्यस्तवस्तूनां व्यवहारे कृते सति तत्र तेषु न्यस्तवस्तुषुमध्येपशून् धार्ता धारक: पुरुष: सम्पोषयेत्। संज्ञापूर्वकविधेरनित्यत्वात् पश्वादिन्यस्तवस्तुनामित्यत्र नामीति न दीर्घत्वम्। आगमजस्याप्यनित्यत्वात् धार्तेत्यात्रार्धधातुकस्येड्वलादेरिति नेडागम:।।१२०।।

लाभे नियोजयेद्यत्र स्थावरादीनि मानव: ।
नियमेन विना काललाभयोरन्यथा भवेत् ।।१२१।।

पद्या–जब कोई समय और लाभ के नियम को उपेक्षित कर लाभ के लिए स्थावर व अस्थावर सम्पत्ति को लगाएगा, तो वह लाभ अन्यथा होगा ।

हरि०–काललाभयोर्नियममकृत्वैव यस्मिंल्लाभे स्थावरादिद्रव्याणि प्रयोज्यन्ते तस्य अन्यथात्वं भवेदित्याह लाभे इत्यादिना। काललाभयोर्नियमेन विना यत्र लाभे फले स्थावरादीनि वस्तूनि मानवो नियोजयेत्। स लाभोऽन्यथा भवेत्। "नीवीपरिपणं मूलधनं लोभोऽधिकं फलम्" इत्यमर:।।१२१।।

साधारणानि वस्तूनि लाभार्थं नैव योजयेत् ।
मृते पितरि सर्वेषामंशिनां सम्मतिं विना ।।१२२।।

पद्या–पिता की मृत्यु के पश्चात् समस्त अंशधारकों की सम्मति के बिना कोई भी साधारण सम्पत्ति लाभ के कार्यों में नहीं लगाई जा सकती है ।

हरि०–पितुर्मरणादूर्ध्वं सर्वभ्रातृणां सम्मतेरभावे सामान्यद्रव्याणि लाभार्थं नैव प्रयोक्तव्यानीत्याह साधारणानीत्यादिना। पितरि मृते सति सर्वेषामंशिनां सम्मतिं विना साधारणानि सामान्यानि वस्तूनि लाभार्थं फलार्थं नैव योजयेत्।।१२२।।

क्रमव्यत्ययमूल्येन द्रव्याणां विक्रये सति ।
नृपस्तदन्यथा कर्तुं क्षमो भवति पार्वति ।।१२३।।

पद्या–हे पार्वति! जो अतिमूल्यवान वस्तु कम मूल्य में अथवा कम मूल्य की वस्तु अधिक मूल्य में बिके, तो राजा इसके विपरीत करने में सक्षम होता है ।

हरि०–विपरीतक्रमकेण मूल्येन स्थावरादिद्रव्याणां जातं विक्रयणमन्यथा कर्तुं नृपेण शक्यते इत्याह क्रमेत्यादिना। हे पार्वति! क्रमस्य व्यत्ययो विपर्ययो यत्र तथा भूतेन मूल्येन

द्रव्याणां विक्रये सति स्वल्पमूल्येन भूयिष्ठमूल्यानां भूयिष्ठमूल्येन च स्वल्पमूल्यानां द्रव्याणां विक्रयणे सति तद्विक्रयणमन्यथा कर्तुं नृपो नराधिपः क्षमो भवति ॥१२३॥

जननञ्चापि मरणं शरीराणां यथा सकृत् ।
दानं तथैव कन्याया ब्राह्मोद्वाहः सकृत्सकृत् ॥१२४॥

पद्मा—जिस प्रकार देह का जन्म तथा मृत्यु एक ही बार होती है उसी प्रकार दान एवं कन्या का ब्राह्मविवाह एक बार से अधिक नही होता है ।

हरि०—ननु वेदोक्तविधिभिरेकनोद्वाहिता कन्या जीवत्येव तस्मिन्मृते वा पुनस्तैरेव विधिमिभरन्येनोद्वाह्या भवेन्न वेत्यत आह जननमित्यादिना। यथा शरीराणां जननमुत्पत्तिर्मरणं मृतिश्चापि सकृदेकवारमेव भवति। तथैव दानं कन्याया ब्राह्मोद्वाहश्च सकृत् सकृदेव भवति। ब्राह्मोद्वाह इति व्याहरता महादेवेनैकेनोद्वाहिताया अपि कन्यायाः शैवविधिभिस्तु पुनरुद्वाहो भवत्येवेति सूचयाम्बभूवे॥१२४॥

नैकपुत्रः सुतं दद्यान्नैकस्त्रीकस्तथा स्त्रियम् ।
नैककन्यः सुतां शैवोद्वाहे पितृहितः पुमान् ॥१२५॥

पद्मा—कोई भी मनुष्य अपने इकलौते पुत्र का दान नहीं कर सकता। कोई भी जिसके अपनी एक स्त्री है, उसका दान नहीं कर सकता। जो पितरों का हित चाहता है, वह अपनी इकलौती पुत्री का शैव विवाह नहीं कर सकता है ।

हरि०—एकपुत्रेणैकस्त्रीकेणैकपुत्रीकेण च पितृहितेन पुंसा पुत्रदानं स्त्रीदानं शैवोद्वाहे कन्यादानञ्च नैव कार्यमित्याह नैकपुत्र इत्यादिना। एकपुत्रः पुमान् सुतं पुत्रं कस्मैचिन्न दद्यात्। पुत्रादीनामदाने हेतुं दर्शयन् पुमांसं विशिनष्टि कथम्भूतः पुमान् पितृहितः यतः पितृभ्यो हितोऽतो न दद्यादित्यर्थः॥१२५॥

दैवे पित्र्ये च वाणिज्ये राजद्वारे विशेषतः ।
यद्विदध्यात् प्रतिनिधिस्तन्नियन्तुः कृतिर्भवेत् ॥१२६॥

पद्मा—दैव एवं पितरों के कार्य में, वाणिज्य, विशेषकर राजद्वार में प्रतिनिधि जो कुछ कहेगा वह प्रतिनिधि नियुक्त करनेवाले का ही किया माना जाएगा ।

हरि०—प्रतिनिधिना विहितं यद्यद्दैवादिकं कर्म तत् सर्वमात्मनैव विहितं भवेदित्याह दैव इत्यादिना। दैवे पित्र्ये वाणिज्ये च कर्मणि विशेषतो राजद्वारे च प्रतिनिधिर्यद्विदध्यात्तन्नियन्तुः प्रवर्तयितुः कृतिर्भवेत् । दैवे पित्र्ये वाणिज्ये इति निर्धारणे सप्तमी। क्रियते इति कृतिः। स्त्रियां क्तिन्निति कर्मणि क्तिन् ॥१२६॥

न दण्डार्हः प्रतिनिधिस्तथा दूतोऽपि सुव्रते! ।
नियोक्तृकृतदोषेण विधिरेष सनातनः ॥१२७॥

पद्मा—हे सुव्रते! यह विधि सदैव से होती रही है कि प्रतिनिधि को नियुक्त करने वाले के दोष के लिए प्रतिनिधि अथवा दूत दण्डनीय नहीं है ।

हरि०—ननु नियन्त्रा कृतेनापराधेन प्रतिनिधिदूतौ दण्डनीयौ भवेतां न वेत्यत आह नेत्यादिना। हे सुव्रते शोभनव्रतशालिनि नियोक्तृकृतदोषेण नियन्तृविहितापराधेन प्रतिनिधिः तथा दूतश्चारोऽपि दण्डार्हो न भवेत्। एष सनातनो नित्यो विधिर्विधानम्॥१२७॥

ऋणे कृषौ च वाणिज्ये तथा सर्वेषु कर्मसु ।
यद्यदङ्गीकृतं लोकैस्तत्कार्यं धर्मसम्मतम् ।।१२८।।

पद्मा—ऋण, कृषि कार्य, वाणिज्य तथा अन्य समस्त कर्म जो (संसार) में अंङ्गीकृत है, वही धर्म सम्मत है।

हरि०—ऋणकृष्यादावन्येषु च सकलकर्मसु निखिलस्याऽङ्गीकृतस्याऽवश्यकरणीयतामाह ऋण इत्यादिना। ऋणे कृषौ वाणिज्ये वणिक्कर्मणि च तथाऽन्येषु सर्वेषु कर्मसु लोकैर्जनैर्धर्मसम्मतं यद्यदङ्गीकृतं तत् सर्वं कार्यं विधातव्यम्। धर्मसम्मतमित्यनेन पापसम्मतं स्वीकृतं सर्वथा लोकानामकरणीयमिति ध्वनितम्॥१२८॥

अधीशेनावितं विश्वं नाशं यान्ति निनंक्षवः ।
तत्पातॄन् पाति विश्वेशस्तस्माल्लोकहितो भवेत् ।।१२९।।

इति श्रीमहानिर्वाणतन्त्रे सर्वतन्त्रोत्तमोत्तमे सर्वधर्मनिर्णयसारे
श्रीमदाद्यासदा-शिवसंवादे सनातनव्यवहार-
कथनं नाम द्वादशोल्लासः।

पद्मा—इस जगत् की रक्षा जगदीश्वर करते है। जो इस जगत् को नष्ट करना चाहते है, उनका स्वयं ही विनाश हो जाता है। ईश्वर द्वारा पालित जगत् की रक्षा जो लोग करते है। जगदीश्वर उनकी रक्षा करते है। इसलिए सदैव जगत के हित में ही लगे रहना चाहिए।

श्रीमदाद्यास-दाशिवसंवादे मझिलेगाँवनिवासी अजय कुमार उत्तम
कृत पद्मा हिन्दी व्याख्या में सनातनव्यवहारकथन
नामक द्वादशोल्लास पूर्ण हुआ ।।१२।।

हरि०—आत्मनो भद्रमभिलष्यद्भिमनिवैर्लोकहितैरेव भवितव्यमित्याह अधीशेनेत्यादिना। यतोऽधीशेन जगदीश्वरेणावितं रक्षितं विश्वं संसारं निनंक्षवो नाशयितुमिच्छवो जनाः स्वयं नाशं यान्ति प्राप्नुवन्ति तत्पातॄन् विश्वपालकांस्तु विश्वेशः पाति रक्षति तस्माद्धेतोर्लोकहितो जनो भवेत्। नश्यत्नान्तर्भावितोण्यर्थे॥१२९॥

इति श्रीमहानिर्वाणतन्त्रटीकायां द्वादशोल्लासः ।।

त्रयोदशोल्लासः

इति निगदितवन्तं देवदेवं महेशं
निखिलनिगमसारं स्वर्गमोक्षैकबीजम् ।
कलिमलकलितानां पावनैकान्तचित्ता
त्रिभुवनजनमाता पार्वती प्राह भक्त्या ।।१।।

पद्मा—सभी निगमों का सार तथा स्वर्ग एवं मोक्ष के एकमात्र कारणरूप बातों के कहने वाले देवदेव महादेव से कलियुग के मल से कलुषित जीवों की पवित्रता के लिए एकाग्रचित्त, त्रिभुवन की माता पार्वती ने भक्तिपूर्वक कहा ।

हरि०—ॐ नमो ब्रह्मणे ।

इतीत्यादि। निगदितवन्तम् कथितवन्तम्। कलिमलकलितानां पावनैकान्तचित्ता कलिमलैः संयुक्तानां जनानां पावने दृढमानसा ।।१।।

देव्युवाच

महद्योनेरादिशक्तेर्महाकाल्या महाद्युतेः ।
सूक्ष्मातिसूक्ष्मभूतायाः कथं रूपनिरूपणम् ।।२।।

पद्मा—महद्योनि (जिससे ब्रह्माण्ड उत्पन्न हो रहा है) आदिशक्ति (मूल प्रकृति) महाद्युति (जिससे स्थूल एवं सूक्ष्म जगत् प्रकाशमान है) एवं सूक्ष्म से सूक्ष्मा (सर्वथा दुर्ज्ञेया) महाकाली का निरूपण किस प्रकार से होगा? ।

हरि०—पार्वती महेशं प्रति किमाहेत्यपेक्षायामाह महद्योनिरित्यादिना। महद्योनेः महत्तत्त्वोत्पत्तिस्थानभूतायाः।।२।।

रूपं प्रकृतिकार्याणां सा तु साक्षात् परात्परा ।
एतन्मे संशयं देव विशेषाच्छेत्तुमर्हसि ।।३।।

पद्मा—हे देव! प्राकृतिक कार्य अर्थात् पाञ्चभौतिक घटपटादि का ही स्वरूप है, किन्तु महाकाली साक्षात् परात्पर (प्रकृति रूपा) है अतः इनका रूप होना असम्भव है। इस विषय में मुझे विशेष रूप से सन्देह है। आप मेरे इस विशेष सन्देह का निराकरण करें ।

हरि०—**सा महाकाली।** एतत् एतम् ।।३।।

श्रीसदाशिव उवाच

उपासकानां कार्याय पुरैव कथितं प्रिये ।
गुणक्रियानुसारेण रूपं देव्याः प्रकल्पितम् ।।४।।

पद्मा—श्रीमहादेव (सदाशिव) ने कहा-हे प्रिये! मैंने पहले ही कहा है कि उपासकों के कार्य के लिए गुण एवं क्रिया के अनुसार देवी का रूप कल्पित होता है ।

हरि०—अत्रोत्तरं श्रीसदाशिव उवाच उपासकानामित्यादिभिर्दशभिः। हे प्रिये उपासकानां जनानां कार्याय गुणक्रियानुसारेण देव्या महाकाल्या रूपं प्रकल्पितं न तु वास्तवमिति पुरैव कथितम् ॥४॥

श्वेतपीतादिको वर्णो यथा कृष्णे विलीयते ।
प्रविशन्ति तथा काल्यां सर्वभूतानि शैलजे! ॥५॥
अतस्तस्याः कालशक्तेर्निर्गुणाया निराकृतेः ।
हितायाः प्राप्तयोगानां वर्णः कृष्णो निरूपितः ॥६॥

पद्मा—हे शैलजे! श्वेत, पीत (पीले) आदि रंग जैसे काले रंग में लुप्त हो जाते हैं वैसे ही सभी भूत काली में प्रवेश कर जाते हैं अर्थात् लीन हो जाते है। इसी से योगियों ने निर्गुणा, निराकारा, संसार का हित करने वाली कालशक्ति का रंग काला निरूपित किया है।

हरि०—श्वेतेत्यादि। हे शैलजे पार्वति यथा कृष्ण वर्णे श्वेतपीतादिको वर्णो विलीयते विशेषेण लीनो भवति तथैव काल्यामपि सर्वभूतानि प्रविशन्ति प्रलीयन्ते। अतो हेतोस्तस्याः काल्या वर्णः कृष्णो निरूपितः कथित इत्यन्वयः प्राप्तयोगानाम् लब्धज्ञानरूपमोक्षो-पायानाम ॥५-६॥

नित्यायाः कालरूपायाः अव्ययायाः शिवात्मनः ।
अमृतत्वाल्ललाटेऽस्याः शशिचिह्नं निरूपितम् ॥७॥

पद्मा—वह नित्या, कालरूपा, अविनाशी तथा कल्याणकारिणी है। इसलिए अमृत के स्वरूप चन्द्रमा की कला उनके ललाट पर कल्पित हुई है।

हरि०—नित्याया इत्यादिना। नित्याया वृद्धिशून्याया अव्ययाया अपक्षयरहितायाः शिवात्मनः कल्याणस्वरूपायाः कालरूपाया अस्याः काल्या अमृतत्वात् हेतोर्ललाटे शशि-चिह्नं निरूपितं कथितम्॥७॥

शशिसूर्याग्निभिर्नित्यैरखिलं कालिकं जगत् ।
सम्पश्यति यतस्तस्मात् कल्पितं नयनत्रयम ॥८॥

पद्मा—नित्यस्वरूप, चन्द्र, सूर्य तथा अग्नि द्वारा काल से उत्पन्न समस्त जगत् दिखाई देता है, इसी से काली के तीन नेत्र कल्पित किये गये हैं।

हरि०—कालिकम् कालसम्भवम् ॥८॥

ग्रसनात् सर्वसत्त्वानां कालदन्तेन चर्वणात् ।
तद्रक्तसङ्घो देवेश्याः वासोरूपेण भाषितम् ॥९॥

पद्मा—वह कालिका काल क्रम से समस्त प्राणियों का ग्रास करती हैं तथा कालरूपी दाँतों से चबाने से समस्त प्राणियों का रक्त ही महेश्वरी के लाल वस्त्र के रूप में कहा गया है।

हरि०—सर्वसत्वानाम् अशेषजन्तूनाम्। कालदन्तेन कालरूपेण दन्तेन। तद्रक्तसङ्घः सर्वसत्त्वरुधिरसमूहः॥९॥

समये समये जीवरक्षणं विपदः शिवे ।
प्रेरणं स्वस्वकार्येषु वरश्चाभयमीरितम् ।।१०।।

पद्मा—हे शिवे! वह समय-समय पर जीवों की विपत्ति से रक्षा करती है। जीवों को अपने-अपने कार्य में प्रेरित करने का संकेत उनके वर एवं अभय मुद्राओं से स्पष्ट होता है।

हरि०—समये इत्यादि। हे शिवे समये-समये काले-काले विपदः सकाशात् जीवानां रक्षणं स्वस्वकार्येषु प्रेरणं च कालिकाया वरश्चाभयभीरितम्। विपत्तितो जीवानां रक्षणमयभयं कथितं स्वस्वकार्येषु प्रेरणं वरः कथित इत्यर्थः।।१०।।

रजोजनितविश्वानि विष्टभ्यं परितिष्ठति ।
अतो हि कथितं भद्रे ! रक्तपद्मासनस्थित ।।११।।

पद्मा—हे भद्रे! वह रजोगुण से उत्पन्न विश्व में रहती है। इसी कारण कहा जाता है कि वे लाल कमल के आसन पर स्थित है।

हरि०—विष्टभ्य अवलम्ब्य।।११।।

क्रीडन्तं कालिकं कालं पीत्वा मोहमयीं सुराम् ।
पश्यन्ती चिन्मयी देवी सर्वसाक्षिरूपिणी ।।१२।।
एवं गुणानुसारेण रूपाणि विविधानि च ।
कल्पितानि हितार्थाय भक्तानामल्पमेधसाम् ।।१३।।

पद्मा—वे ज्ञानस्वरूपा है। सभी की साक्षिस्वरूपिणी वे देवी मोहमयी सुरा को पी कर क्रीड़ा करने वाले काल से उत्पन्न जगत् को देखती हैं। अल्पबुद्धि वाले भक्तों के हित के लिए उपरोक्त प्रकार से गुणों के अनुसार भगवती काली के अनेक प्रकार के रूप कल्पित हुए है।

हरि०—कालिकम् कालसम्भवं जगत्। चिन्मयी ज्ञानस्वरूपा।।१२।।१३।।

श्रीदेव्युवाच

ध्यानं यत् कथितं काल्या जीवनिस्तारहेतवे ।
तस्यानुरूपतो मूर्तिं मृण्मयीं वा शिलामयीम् ।।१४।।
दारुधातुमयीं वापि निर्माय यदि साधकः ।
विचित्रभवनं कृत्वा वस्त्रालङ्कारभूषिताम् ।
स्थापयेत्तत्र देवेशीं किं फलं तस्य जायते ।।१५।।
प्रतिष्ठा केन विधिना तस्याः प्रतिकृतेः प्रभोः ।
कर्तव्या तदशेषेण कृपया में प्रकाश्यताम् ।।१६।।
वापीकूपगृहारामदेवप्रतिकृतेस्तथा ।
प्रतिष्ठा सूचिता पूर्वं गदिता न विशेषतः ।।१७।।

पद्मा—श्रीदेवी ने कहा—जीवों के उद्धार हेतु आपने आद्या काली का जो ध्यान कहा है यदि उसके अनुसार मिट्टी, पत्थर, लकड़ी अथवा धातु की मूर्ति बनाकर साधक यदि

इस मूर्ति को वस्त्र एवं अलंकार से विभूषित कर विचित्र व मनोहर गृह बनाकर उसमें देवेशी की मूर्ति को स्थापित करे तो उसका क्या फल होगा? हे प्रभो! किस विधि के द्वारा उस मूर्ति की प्रतिष्ठा की जाएगी। यह कृपा कर बतायें। आपने पहले वापी कूप (कुआँ) घर उद्यान तथा देवप्रतिमा का उल्लेख किया है, किन्तु विशेष रूप से कुछ नहीं कहा है।

हरि०–आद्याया: कालिकायास्तद्भिन्नानां च देवतानां प्रतिमाया गृहादीनाञ्च प्रतिष्ठाया विधानं फलं गृहादिप्रदानफलञ्च श्रोतुमिच्छन्ती देव्युवाच-ध्यानमित्यादि। हे प्रभो जीवनिस्तारहेतवे काल्या यद्ध्यानं कथितं तस्य ध्यानस्यानुरूपतो मृण्मयीं मृत्तिकाविकारभूतां शिलामयीं दारुधातुमयीं वा मूर्तिं निर्माय विचित्रं भवनं च कृत्वा तत्र भवने वस्त्रालङ्कारभूषितां देवेशीं कालीं साधको यदि स्थापयेत्तदा तस्य साधकस्य किं फलं जायते इत्यन्वय:। प्रतिकृते: प्रतिमाया:।।१४-१७।।

तद्विधानमपि श्रोतुमिच्छामि त्वन्मुखाम्बुजात्।
कथ्यतां परमेशान कृपया यदि रोचते ।।१८।।

पद्मा–हे परमेशान! मैं आपके मुखकमल से उस समस्त विधान को सुनना चाहती हूँ। यदि आपकी रूचि हो तो कृपा करके उसे कहिए।

हरि०–अपिना फलम्।।१८।।

श्रीसदाशिव उवाच

गुह्यमेतत् परं तत्त्वं यत् पृष्टं परमेश्वरी: ।
कथयामि तव स्नेहात् समाहितमना: शृणु ।।१९।।
सकामाश्चैव निष्कामा द्विविधा भुवि मानवा: ।
अकामानां पदं मोक्ष: कामिनां फलमुच्यते ।।२०।।
यो यद्देवप्रतिकृतिं प्रतिष्ठापयति प्रिये ।
स तल्लोकमवाप्नोति भोगानपि तदुद्भवान् ।।२१।।

पद्मा–श्रीसदाशिव ने कहा - हे परमेश्वरि! तुमने जो कुछ पूछा है वह अत्यन्त ही गोपनीय है। तुम्हारे स्नेह के कारण मैं उसे बताता हूँ। उसे तुम एकाग्र होकर सुनो। इस भूलोक में दो प्रकार के मनुष्य हैं–सकाम तथा निष्काम। निष्काम मनुष्यों को मोक्ष की प्राप्ति होती है। सकाम मनुष्यों को जिस प्रकार का फल प्राप्त होता है उसे कहता हूँ। हे प्रिये! जो पुरुष जिस देवता की मूर्ति की प्रतिष्ठा करता है, वह उसी देवता के लोक को और उस लोक की भोग्य वस्तुओं को प्राप्त करता है।

हरि०–श्रीदेव्यैवं प्रार्थित: सन् श्रीसदाशिव उवाच गुह्यमेतदित्यादि।।१९-२१।।

मृण्मये प्रतिबिम्बे तु वसेत् कल्पायुतं दिवि ।
दारुपाषाणधातूनां क्रमाद्दशगुणाधिकम् ।।२२।।

पद्मा–मिट्टी की प्रतिमा प्रतिष्ठित करने वाला मनुष्य दश हजार कल्पों तक स्वर्ग में

रहता है। काष्ठ की मूर्ति प्रतिष्ठित करने से दशगुणा (एक लाख कल्प), पत्थर की मूर्ति की प्रतिष्ठा करने से दश लाख कल्प तक स्वर्ग में रहता है। इसी प्रकार पत्थर की मूर्ति से दश गुणा अधिक फल धातु की मूर्ति को प्रतिष्ठित करने में प्राप्त होता है।

हरि०—प्रतिबिम्बे प्रतिमायाम्। अत्र प्रतिष्ठापिते सति इत्यध्याहार्यम्॥२२॥

तृणकाष्ठादिरचितं ध्वजवाहनसंयुतम्।
मन्दिरं देवमुद्दिश्य काममुद्दिश्य वा नरः।
संस्कुर्यादुत्सृजेद्वापि तस्य पुण्यं निशामय॥२३॥
तृणादिनिर्मितं गेहं यो यद्यात् परमेश्वरि!।
वर्ष कोटिसहस्राणि स वसेद्देववेश्मनि॥२४॥
इष्टकागृहदाने तु तस्माच्छतगुणं फलम्।
ततोऽयुतगुणं पुण्यं शिलागेहप्रदानतः॥२५॥
सेतुसङ्क्रमदाताऽऽद्ये! यमलोकं न पश्यति।
सुखं सुरालयं प्राप्य मोदते स्वर्निवासिभिः॥२६॥
वृक्षारामप्रतिष्ठाता गत्वा त्रिदशमन्दिरम्।
कल्पपादपवृन्देषु निवसन् दिव्यवेश्मनि।
भुङ्क्ते मनोरमान् भोगान् मनसो यानभीप्सितान्॥२७॥

पद्मा—जो मनुष्य देवता की प्रसन्नता के लिए या किसी इच्छा से ध्वज एवं वाहन के साथ तृणकाष्ठादि निर्मित घर को बनाकर भेंट करता है या इसी प्रकार के श्रेष्ठतम् घर का संस्कार कराता है उसका पुण्य सुनो। हे परमेश्वरि। जो मनुष्य तृणादि से निर्मित घर को दान करता है वह हजार करोड़ वर्षों देवलोक में रहता है। ईंट का बना घर दान करने से इससे भी सौ गुणा अधिक फल प्राप्त होता है। पत्थर के घर का दान करने का फल इससे दश हजार गुणा अधिक है। हे आद्ये! सेतु तथा संक्रम (एक विशेष प्रकार का पुल) बनाने वाले को कभी भी यमलोक का मुख नहीं देखना पड़ता। वह सुखपूर्ण देवलोक को जाकर स्वर्गवासियों के साथ आनन्द करता है। वृक्ष एवं उपवन की प्रतिष्ठा करने वाला देवलोक में जाकर कल्पवृक्षों से युक्त दिव्य आवास में रहता हुआ अपनी इच्छित सभी सुन्दर भोग्य वस्तुओं का भोग करता है।

हरि०—निशामय शृणु॥२३-२७॥

प्रीतये सर्वसत्त्वानां ये प्रदद्युर्जलाशयम्।
विधूतपापास्ते प्राप्य ब्रह्मलोकमनाभयम्।
निवसेयुः शतं वर्षानम्भसां प्रतिशीकरम्॥२८॥

पद्मा—सभी प्राणियों की प्रसन्नता के लिए जलाशय का जो दान करता है, वह पापों से छूट कर ब्रह्मलोक को जाता है और उस जलाशय में जितनी जल की बूँदें होती हैं, वह उतने सौ वर्षों तक वहाँ रहता है।

हरि०–जलाशयम वापीकूपादिकम्। अनामयम् निरुपद्रवम्। प्रतिशीकरम् प्रत्यम्बुकणम् ॥२८॥

यो दद्याद्वाहनं देवि! देवताप्रीतिकारकम् ।
स तेन रक्षितो नित्यं तल्लोके निवसेच्चिरम् ।।२९।।
मृण्मये वाहने दत्ते यत् फलं जायते भुवि ।
दारुजे तद्दशगुणं शिलाजे तद्दशाधिकम् ।।३०।।

पद्या–हे देवि! देवता की प्रसन्नता के लिए जो कोई वाहन का दान करता है, तो वह उस देवता से रक्षित होकर उसी के लोक में चिरकाल तक निवास करता है। इस भूलोक में मिट्टी के वाहन देने का जो फल है, उसका दश गुणा फल लकड़ी का वाहन दान करने से प्राप्त होता है। पत्थर का वाहन दान करने से उसका भी दश गुणा अधिक फल प्राप्त होता है ।

हरि०–तल्लोके तस्य देवस्य लोके ॥२९-३०॥

रिन्तिका कांस्यताम्रादिनिर्मिते देववाहने ।
दत्ते फलमवाप्नोति क्रमात् शतगुणाधिकम् ।।३१।।
देव्यागारे महासिंहं वृषभं शङ्करालये ।
गरुडं कैशवे गेहे प्रदद्यात् साधकोत्तमः ।।३२।।

पद्या–पीतल, कांसा, ताम्बा आदि धातु से बने देव वाहन के दान से क्रमशः सौ गुणा अधिक फल प्राप्त होता है। श्रेष्ठ साधक देवी के मन्दिर में महासिंह, शिवन्दिर में वृषभ तथा विष्णु मन्दिर में गरुड़ का निर्माण करके दान में देता है ।

हरि०–रिन्तिका पित्तलम् ॥३१-३२॥

तीक्ष्णदंष्ट्रः करालास्यः शटाशोभितकन्धरः ।
चतुरङ्घ्रिर्वज्रनखो महासिंहः प्रकीर्तितः ।।३३।।

पद्या–जिसके तीखे दांत हैं, मुखमण्डल भयानक है, कन्धे केशरों से सुशोभित हैं चार पैर हैं, नाखून वज्र के समान हैं ऐसे चौपाये जन्तुओं को महासिंह कहा जाता है ।

हरि०–महासिंहस्वरूपमाह तीक्ष्णदंष्ट्र इत्याद्येकेन। करालास्यः दन्तुवरदनः। शटाशोभितकन्धरः शटया परस्परश्लिष्टरोमविशेषसमूहेन शोभिता कन्धरा यस्य तथाभुतः। चतुरङ्घ्रिः चतुष्पात् ॥३३॥

शृङ्गायुधः शुभ्रकायः चतुष्पादसितक्षुरः ।
बृहत्ककुत् कृष्णपुच्छः श्यामस्कन्धो वृषः स्मृतः।।३४।।

पद्या–दो सींग ही जिसके आयुध हैं, शरीर श्वेतवर्ण का है, चार पैर हैं, खुर काले रंग के हैं, जिसकी पीठ पर बड़ा ककुद हैं, पूंछ काली है, कन्धे श्याम वर्ण के हैं, वह वृषभ कहलाता है ।

हरि०–वृषभस्वरूपमाह शृङ्गायुध इत्याद्येकन। असितक्षुरः नीलसुरः॥३४॥

गरुडः पाक्षिजङ्घस्तु नरास्यो दीर्घनासिकः ।
पादसङ्कोचसंविष्टः पक्षयुक्तः कृताञ्जलिः ।।३५।।

पद्मा—जिसकी जाँघ पक्षी के समान, मुख मनुष्य के समान, नाक लम्बी है तथा दो पंखों से युक्त अञ्जलि बनाकर जो दोनों पैरों को सिकोड़कर बैठा है, उसे गरूड़ कहते हैं।

हरि०—गरुडस्वरूपमाह गरुड इत्याद्येकेन। नरास्यः मनुष्यमुखः॥३५॥

पताकाध्वजदानेन देवप्रीतिः शतं समाः ।
ध्वजदण्डस्तु कर्तव्यो द्वात्रिंशद्धस्तसम्मितः ।।३६।।
सुदृढश्छिद्ररहितः सरलः शुभदर्शनः ।
वेष्टितो रक्तवस्त्रेण कोटौ चक्रसमन्वितः ।।३७।।

पद्मा—देवालय में ध्वजा एवं पताका दान करने से देवता सौ वर्ष तक प्रसन्न रहते हैं। ध्वजा का दण्ड बत्तीस हाथ लम्बा, दृढ़, छिद्ररहित, सीधा, देखने में सुन्दर और लाल वस्त्र से लपेटा हुआ हो। अग्रभाग विष्णुचक्र से युक्त हो।

हरि०—पताकेत्यादि। पताकाध्वजादानेन पताकासहितध्वजसमर्पणेन। शतं समाः शतवर्षाणि देवताप्रीतिर्भवति। तयोर्मध्ये पूर्व ध्वजस्वरूपमाह ध्वजदण्ड इत्यादिना सार्धेन कोटौ अग्रभागे ॥३६-३७॥

पताका तत्र संयोज्या तत्तद्वाहनचिह्निता ।
प्रशस्तमूला सूक्ष्माग्रा दिव्यवस्त्रविनिर्मिता ।
शोभमाना ध्वजाग्रे या पताका सा प्रकीर्तिता ।।३८।।

पद्मा—इन लक्षणों से युक्त दण्ड के अग्रभाग में सम्बन्धित देवता के वाहन के चिह्न से युक्त पताका लगाए। पताका का मूलभाग श्रेष्ठ तथा अग्रभाग सूक्ष्म हो। पताका को सुन्दर व मनेहर वस्त्र से बनाना चाहिए। देवताओं के सुन्दर वाहनों के चिह्नों से युक्त यह पताका ध्वज के आगे शोभा पाती है।

हरि०—तत्र ध्वजदण्डे। पताकास्वरूपमाह तत्तद्वाहन चिह्नितेत्यादिना सपादश्लोकेन। ध्वजाग्रे ध्वजदण्डाग्रभागे ॥३८॥

वासोभूषणपर्यङ्कयानसिंहासनानि च ।
पानप्राशनताम्बूलभाजनानि पतद्ग्रहम् ।।३९।।

पद्मा—जो वस्त्र, आभूषण पर्यङ्क (पलंग), यान, सिंहासन, पान पात्र, भोजन पात्र, ताम्बूल पात्र, पीकदान।

हरि०—पतद्ग्रहम् मुखात् पततो जलताम्बूलादेर्वाहकं पात्रविशेषम्॥३९॥

मणिमुक्ताप्रवालादिरत्नान्यात्मप्रियञ्च यत् ।
यो दद्यादेवमुद्दिश्य श्रद्धाभक्तिसमन्वितः ।
स तल्लोकं समासाद्य तत्तत्कोटिगुणं लभेत् ।।४०।।

कामिनां फलमित्युक्तं क्षयिष्णु स्वप्नराज्यवत् ।
निष्कामानान्तु निर्वाणं पुनरावृत्तिवर्जितम् ।।४१।।
जलाशयगृहारामसेतुसंक्रमशाखिनाम् ।
देवतानां प्रतिष्ठायां वास्तुदैत्यं प्रपूजयेत् ।।४२।।
अनर्चयित्वा यो वास्तुं कुर्यात् कर्माणि मानवः ।
विघ्नं तस्याऽऽचरेद्वास्तुः परिवारगणैः सह ।।४३।।

पद्मा—मणि, मुक्ता प्रवाल (मूंगा) आदि रत्न तथा अन्य दूसरी अपनी प्रिय वस्तुएं देवता के लिए श्रद्धा व भक्ति के साथ दान करता है, वह उस देवता के लोक में पहुँचकर उन्हीं वस्तुओं का करोड़ों गुणा फल प्राप्त करता है। कामियों (कामना करने वाले) का फल स्वप्न में प्राप्त राज्य की भाँति क्षय होने वाला होता है। निष्काम भाव से कर्म करने वालों को पुनर्जन्मरहित निर्वाण मुक्ति प्राप्त होती है। जलाशय, गृह, आराम, सेतु, संक्रम, वृक्ष तथा देव प्रतिष्ठा के समय वास्तु दैत्य का पूजन करे। जो मनुष्य वास्तु पूजन न करके देव प्रतिष्ठा आदि कार्य करता है उसके कार्य में वास्तुदेव अपने परिवार गणों के साथ विघ्न डालते हैं ।

हरि०—समासाद्य सम्प्राप्य॥४०-४३॥

कपिलास्यः पिङ्गकेशो भीषणो रक्तलोचनः ।
कोटराक्षो लम्बकर्णो दीर्घजङ्घो महोदरः ।।४४।।
अश्वतुण्डः काककण्ठो वज्रबाहुर्व्रतान्तकः ।
एते परिकरा वास्तोः पूजनीयाः प्रयत्नतः ।।४५।।
मण्डलं शृणु वक्ष्यामि यत्र वास्तुं प्रपूजयेत् ।।४६।।

पद्मा—कपिलास्य, पिङ्गकेश, भीषण, रक्तलोचन, कोटराक्ष, लम्बकर्ण, दीर्घजङ्घ, महोदर, अश्वतुण्ड, काककण्ठ, वज्रबाहु तथा व्रतान्तक—ये सभी वास्तु देवता के परिवार हैं। इनकी यत्न पूर्वक पूजा करे। जिस मण्डल में वास्तु देवता का पूजन करना है, उसे कहता हूँ सुनो ।

हरि०—अथ वास्तुदैत्यस्य परिवारानाह कपिलास्य इत्यादिना सार्धेन। परिकराः परिवाराः॥४४-४६॥

वेद्यां वा समदेशे वा शस्ताद्भिरूपलेपिते ।
वाय्वीशकोणयोर्मध्ये हस्तमात्रप्रमाणतः ।।४७।।
सूत्रपातक्रमेणैव रेखामेकां प्रकल्पयेत् ।
ईशानादग्निपर्यन्तमपरां रचयेत्तथा ।।४८।।
आग्नेयान्नैर्ऋतं यावत् नैर्ऋताद्वायवावधि ।
दत्त्वा रेखे चतुष्कोणमेकं मण्डलमालिखेत् ।।४९।।

पद्मा—वेदी अथवा जल से लिपि हुई किसी समतल भूमि पर वायु कोण से ईशान

कोण तक एक हाथ लम्बी रेखा सूत्रपात्र द्वारा बनाये। ईशानकोण से लेकर अग्निकोण तक ऐसी ही एक रेखा और बनाए। इसके पश्चात् अग्निकोण से लेकर नैर्ऋत्य कोण तक तथा नैर्ऋत्यकोण से वायुकोण तक रेखा खींचने से एक चतुष्कोण मण्डल बन जाएगा।

हरि०—वास्तुप्रपूजनार्थं मण्डलमेवाह वेद्यां वेत्यादिभिः। वेद्यां वा शस्ताद्भिः प्रशस्तैर्जलैरुपलेपिते समदेशे वा वाप्वीशकोणयोर्मध्ये सूत्रपातक्रमेणैवहस्तमात्रप्रमाणत एकां रेखां प्रकल्पयेत् रचयेत्। तथैवाऽऽग्नेयादग्निकोणमारभ्य नैर्ऋतं यावत् नैर्ऋतकोणावधि नैर्ऋतात् नैर्ऋतमपि कोणमारभ्य वायवावधि वायुकोणपर्यन्तं क्रमतो द्वे रेखे दत्वा एवं विधानेन एकं चतुष्कोणं मण्डलमालिखेत् ॥४७-४९॥

कोणसूत्रे पातयित्वा चतुर्धा विभुजेत्तु तत्।
यथा तत्र भवेद्देवि! मत्स्यपुच्छचतुष्टयम् ॥५०॥

पद्मा—हे देवि! चतुष्कोण मण्डल के एक कोण से लेकर दूसरे कोण तक दो रेखाएं खींचकर मण्डल को चार भागों में इस प्रकार बाँटे कि उस स्थान पर मत्स्य के पुच्छ के चार आकार बन जाएं।

हरि०—**कोणसूत्रे इत्यादि**। हे देवि तत्र चतुष्कोणे मण्डले यथा मत्स्यपुच्छचतुष्टयं भवेत्तथा तत् चतुष्कोणं मण्डलं कोण सूत्रे पातयित्वा चतुर्धा विभजेत् विभक्तं कुर्यात्॥५०॥

ततो भित्वा पुच्छमूलं वारुणाद्वासवावधि।
कौबेराद् याम्यपर्यन्तं दद्याद्रेखाद्वयं सुधीः ॥५१॥

पद्मा—सुधी साधक इस पुच्छ के मूल का भेदनकर पश्चिम दिशा से पूर्व दिशा तक तथा उत्तर दिशा से लेकर दक्षिण दिशा तक दो रेखाएं खींचे।

हरि०—**तत इत्यादिना**। ततः सुधीर्जनो वारुणात् पश्चिममारभ्य वासवावधि पूर्वपर्यन्तं कौबेरादुत्तरमारभ्य याम्यपर्यन्तं दक्षिणावधि च पुच्छमूलं भित्वा रेखाद्वयं दद्यात्॥५१॥

ततश्चतुर्षु कोणेषु कोणरेखान्वितेष्वपि।
कर्णाकर्णिप्रयोगेण न्यसेद्रेखाचतुष्टयम् ॥५२॥

पद्मा—फिर कोणरेखायुक्त चतुष्कोणों में कर्णाकर्णि चार रेखाएं तथा मध्यस्थल में पश्चिम से पूर्व तक और उत्तर से दक्षिण तक दो रेखाएं खींचे।

हरि०—**ततः इत्यादिना**। ततः परं कोणरेखान्वितेषु चतुर्ष्वपि कोष्ठेषु कर्णाकर्णिप्रयोगेण रेखाचतुष्टयं न्यसेत्। अपिना कोणरेखान्वितेषु चतुर्षु कोष्ठेषु पश्चिमात् पूर्वावधि रेखाद्वयमुत्तरस्माद्दक्षिणावधि च रेखाद्वयं न्यसेत् ॥५२॥

एवं सङ्केतविधिना कोष्ठानां षोडशं लिखन्।
पञ्चवर्णेन चूर्णेन रचयेद्यन्त्रमुत्तमम् ॥५३॥

पद्मा—इस प्रकार उक्त मण्डल के सोलह कोष्ठ बनाकर पाँच रंग के चूर्ण से श्रेष्ठ यन्त्र की रचना करे।

हरि०–एवमित्यादि। एवं सङ्केतविधिना इत्थं सङ्केतविधानेन कोष्ठानां षोडशमालिखेत्। ननु केन द्रव्येणेदं मण्डलमालिखेदित्यपेक्षायामाह पञ्चवर्णैनेत्यादि।।५३।।

चतुर्षु मध्यकोष्ठेषु पद्मं कुर्यात् मनोहरम् ।
चतुर्दलं पीतरक्तकर्णिकं रक्तकेसरम् ।।५४।।
दलानि शुक्लवर्णानि यद्वा पीतानि कल्पयेत् ।
यथेष्टं पूरयेत् पद्मसन्धिस्थानानि वर्णकैः ।।५५।।
शाम्भवं कोष्ठमारभ्य कोष्ठानां द्वादशं क्रमात् ।
श्वेतकृष्णपीतरक्तैश्चतुर्वर्णैः प्रपूरयेत् ।।५६।।

पद्मा–फिर मध्य में स्थित चतुष्कोण में एक मनोहर चार दल वाला कमल बनाए जिसकी कर्णिका पीले तथा लाल रंग तथा केशर लाल रंग की हो। फिर कमल के समस्त दलों को श्वेत या पीले रंग से रंगे । फिर कमल के सन्धि स्थलों में इच्छानुसार रंग भरे। फिर ईशान कोण के कोष्ठक से प्रारम्भ करके शेष बारह कोष्ठक में क्रमानुसार श्वेत, कृष्ण, पीत, रक्त इन चारों रंगों से पुरा करे ।

हरि०–चतुर्ष्वित्यादि। ततश्चतुर्षु मध्यकोष्ठेषु मनोहरं चतुर्दलं चतुष्पत्रकं परिरक्तकर्णिकं पीतरक्तवर्णबीजकोशकं रक्तकेसरं पद्मं कुर्यात् ॥५४-५६॥

दक्षिणावर्तयोगेन कोष्ठानां पूरणं प्रिये ।
वामावर्तेन देवानां पूजनं तेषु साधयेत् ।।५७।।
पद्मे समर्चयेद्वास्तुदैत्यं विघ्नोपशान्तये ।
ईशादिद्वादशे कोष्ठे कपिलास्यादिदानवान् ।।५८।।
कुशकण्डिकोक्तविधिना कुर्वन्नलसंस्कृतिम् ।
यथाशक्त्याऽऽहुतिं दत्त्वा वास्तुयज्ञं समापयेत्।।५९।।
इति ते कथिता देवि! वास्तुपूजा शुभप्रदा ।
यां साधयन्नरः क्वापि वास्तुविघ्नैर्न बाध्यते ।।६०।।

पद्मा–हे प्रिये! दक्षिणावर्तयोग में इन सभी कोष्ठों को पूरा करे। इसके पश्चात् वामावर्त क्रम से उसमें देवगण का पूजन करे। सर्वप्रथम विघ्न की शान्ति के लिए कमल (पद्म) में वास्तु दैत्य की और ईशान कोण से प्रारम्भ कर वामावर्तक्रम से बारह कोष्ठों में कपिलास्य आदि दानवों का पूजन करे। तत्पश्चात् कुशकण्डिकोक्त विधि से अग्नि का संस्कार कर यथाशक्ति आहुतियाँ प्रदान कर वास्तुयज्ञ समाप्त करे। हे देवि! तुमसे शुभत्व प्रदान करने वाली वास्तुपूजा कही। वास्तुपूजन करने से मनुष्य वास्तु के विघ्नों से पीड़ित नहीं होता है।

हरि०–एवं वास्तुमण्डलं कथयित्वेदानीं तत्र परिवारस्य वास्तोः पूजाया विधानमाह वामावर्तेनेत्यादिना सार्धद्वयेन। तेषु द्वादशसु कोष्ठेषु वामावर्तेन देवानां दीव्यतां कपिलास्यादीनां द्वादशानां दानवानां पूजनं साधयेत्॥५७-६०॥

देव्युवाच

मण्डलं कथितं वास्तोर्विधानमपि पूजने ।
ध्यानं न गदितं नाथ तदिदानीं प्रकाशय ।।६१।।

पद्मा—हे नाथ! आपने वास्तुदेव का मण्डल और वास्तुपूजन का विधान कहा, किन्तु वास्तुदेवता का ध्यान नहीं कहा। इस समय आप इसे प्रकट करें।

हरि०—एवं वास्तुमण्डलं तत्र सपरिवारस्य वास्तोः पूजाया विधानञ्च श्रुत्वेदानीं वास्तोर्ध्यानं श्रोतुमिच्छन्ती श्रीदेव्युवाच मण्डलमित्यादिना।।६१।।

श्रीसदाशिव उवाच

ध्यानं वच्मि महेशानि! श्रूयतां वास्तुरक्षसः ।
यस्यानुशीलनात् सद्यो नश्यन्ति सकलापदः ।।६२।।

पद्मा—हे महेशानि! वास्तुराक्षस का ध्यान कहता हूँ सुनो। इसके अनुशीलन करने से सभी आपत्तियाँ शीघ्र ही नष्ट हो जाती है।

हरि०—एवं प्रार्थितः सन् श्रीसदाशिव उवाच ध्यानमित्यादि।।६२।।

चतुर्भुजं महाकायं जटामण्डितमस्तकम् ।
त्रिलोचनं करालास्यं हारकुण्डलशोभितम् ।।६३।।

पद्मा—जो चार भुजाओं वाले एवं विशाल शरीर वाले हैं, जिनका मस्तक जटाजूट से सुशोभित हैं, जिनके तीन नेत्र हैं, जिनका मुख भयानक हैं, जो हार एवं कुण्डल से विभूषित हैं।

हरि०—वास्तोर्ध्यानमेवाहं चतुर्भुजमित्यादिन सार्धत्रयेण।।६३।।

लम्बोदरं दीर्घकर्णं लोमशं पीतवाससम् ।
गदात्रिशूलपरशुखट्वाङ्गं दधतं करैः ।।६४।।

पद्मा—जो लम्बे पेटवाले, तथा विशाल कान वाले हैं, जिनका शरीर लोमों से ढका हुआ है, जो पीला वस्त्र धारण करते हैं, जो चारों भुजाओं में गदा, त्रिशूल, परशु तथा खट्वाङ्ग धारण करते हैं।

हरि०—लोमशम् बहुलोमविशिष्टम् ।।६४।।

असिचर्मधरैर्वीरैः कपिलास्यादिभिर्वृतम् ।
शत्रूणामन्तकं साक्षादुद्यदादित्यसन्निभम् ।।६५।।
ध्यायेदेवं वास्तुपतिं कूर्मपद्मासनस्थितम् ।
मारीभये रोगभये डाकिन्यादिभये तथा ।।६६।।
औत्पातिकापत्यदोषे व्यालरक्षोभयेऽपि च ।
ध्यात्वैवं पूजयेद्वास्तुं परिवारसमन्वितम् ।।६७।।
तिलाज्यपायसैर्हुत्वा सर्वशान्तिमवाप्नुयात् ।
यथा वास्तुः पूजनीयः प्रोक्तकर्मसु सुव्रते ।।६८।।

ग्रहाश्चापि तथा पूज्या दशदिक्पतिभिर्युताः ।
ब्रह्मा विष्णुश्च रुद्रश्च वाणी लक्ष्मीश्च शङ्करी ।।६९।।
मातरः सगणेशाश्च सम्पूज्या वसवस्तथा ।
पितरो यद्यतृप्ताः स्युः कर्मस्वेतेषु कालिके! ।।७०।।
सर्वं तस्य भवेद्व्यर्थं विघ्नश्चापि पदे पदे ।
अतो महेशि यत्नेन प्रोक्तसंस्कारकर्मसु ।।७१।।
पितृणां तृप्तयेऽत्राऽभ्युदयिकं श्राद्धमाचरेत् ।
ग्रहयन्त्रं प्रवक्ष्यामि सर्वशान्तिविधायकम ।।७२।।

पद्या–खड्गचर्म धारण किए हुए, कपिलास्यादि वीरगणों से वेष्टित, शुत्र का संहार करने वाले, उगते हुए सूर्य के समान तेजस्वी, कूर्म के ऊपर पद्मासन पर बैठे हुए, वास्तुपति देव का ध्यान करना चाहिए। महामारीभय, रोगभय, डाकिनी आदि के भय, उपद्रव, सर्प अथवा राक्षसभय के होने पर उपरोक्त प्रकार से ध्यान कर परिवारयुक्त वास्तुदेव का पूजन करे। इसके उपरान्त तिल, घी तथा खीर से होम करे तो सभी कर्मों में शान्ति प्राप्त होती है। हे सुव्रते! पहले कहे गये कर्मों में जिस प्रकार वास्तु पुरुष पूज्य है उसी प्रकार नवग्रह, दशदिक्पाल, ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, वाग्देवी (सरस्वती) लक्ष्मी, शङ्करी (पार्वती), मातृगण, गणेश, वसुगण एवं पितृगण भी पूजनीय है। हे कालिके! पूर्वकथित समस्त कर्मों से यह सभी सन्तुष्ट न हों तो कर्ता का सभी कुछ व्यर्थ हो जाता है और पग-पग पर उसको विघ्न होते हैं। हे महेशि! इसलिए प्रयास करके उक्त संस्कार कर्मों में और इसमें पितृगण की तृप्ति के लिए आभ्युदयिक श्राद्ध कर्म करे। अब मैं सर्वशान्तिविधायक ग्रह यन्त्र कहता हूँ।

हरि०–उद्यदादित्यसन्निभम् उद्यत्सूर्यसदृशम्॥६५-७२॥

यत्र सम्पूजिताः सेन्द्रा ग्रहा यच्छन्ति वाञ्छितम् ।
त्रित्रिकोणैर्लिखेद्यन्त्रं तद्बहिर्वृत्तमालिखेत् ।।७३।।

पद्या–इस यन्त्र में ग्रह तथा इन्द्रादिक देवता पूजे जाते हैं तथा मनवाञ्छित फल देते हैं। तीन त्रिकोण बनाकर उसके बार हर वृत्त बनाए।

हरि०–सेन्द्राः इन्द्रादिदशदिक्पतिसहिताः। यच्छन्ति ददति॥७३॥

विदध्याद्वृत्तलग्नानि दलान्यष्टौ च तद्बहिः ।
चतुर्द्वारान्वितं कुर्यात् भूपुरं सुमनोहरम् ।।७४।।
वासवेशानयोर्मध्ये भूपुरस्य बहिःस्थले ।
वृत्तं विरचयेदेकं प्रादेशपरिमाणकम् ।।७५।।
रक्षोवारुणयोर्मध्ये चापरं कल्पयेत्तथा ।।७६।।

पद्या–उस वृत्त के बाहर उससे लगा हुआ आठ दल वाला कमल बनाए। उनके बाहर चार द्वारों सहित एक सुन्दर भूपुर बनाए। भूपुर के बाहर पूर्व दिशा और ईशानकोण के मध्य

में आधे हाथ का एक वृत्त बनाए। फिर पश्चिम दिशा व नैर्ऋतकोण के मध्य में भी ऐसा ही एक और वृत्त बनाए ॥७४-७६॥

हरि०–ग्रहयन्त्रमेवाह त्रिकोणैरित्यादिभिः। प्रथमतस्त्रिभिस्त्रिकोणैर्विशिष्टं यन्त्रं लिखेत्। ततस्तद्बहिस्त्रिकोणेभ्यो बहिर्वृत्तं वर्तुलमेकं मण्डलमालिखेत। ततो वृत्तलग्नान्यष्टौ दलानि पत्राणि विदध्यात् कुर्यात्। तद्बहिश्चतुर्द्वारान्वितं सुमनोहरं भूपुरं कुर्यात्। ततो वासवेशानयोर्मध्ये भूपुरस्य बहिः स्थले प्रादेश परिमाणकमेकं वृत्तं वर्तुलं मण्डलं विलिखयेत्। ततो रक्षोवरुणयोः नैर्ऋत्यपश्चिमयोर्मध्ये भूपुरस्य बहिः स्थले तथैव प्रादेशपरिमाणकमपरं वृत्तं मण्डलं कल्पयेद्रक्षयेत्॥७४-७६॥

नवग्रहाणां वर्णेन नवकोणानि पूरयेत् ।
मध्यत्रिकोणद्वौ पार्श्वौ सव्यदक्षिणभेदतः ॥७७॥
श्वेतपीतौ विधातव्यौ पृष्ठभागः सितेतरः ।
अष्टदिक्पतिवर्णेन पर्णान्यिष्टौ प्रपूरयेत् ॥७८॥

पद्मा–इसके पश्चात नवग्रह के रंगों द्वारा इस यन्त्र के नौ कोणों को भरे। मध्य के त्रिकोण के दाएँ बाएँ दोनों पार्श्वों में श्वेत तथा पीत (पीले) रंग भरे। उसका पीछे का भाग काला रँगा हो। आठ दलों को अष्टदिक्पाल के रंगों से भरे।

हरि०–नवग्रहाणामित्यादि। तत् सूर्यादीनां नवग्रहाणां वर्णेन विशिष्टैश्चूर्णैः नवकोणानि पूरयेत्। ततः सव्यदक्षिणभेदतो मध्यत्रिकोणस्य द्वौ पार्श्वौ क्रमतः श्वेतपीतौ विधातव्यौ। मध्यत्रिकोणस्य पृष्ठभागः सितेतरः कृष्णवर्णो विधातव्यः। ततः इन्द्रादीनामष्टानां दिक्पतीनां वर्णेन विशिष्टैश्चूर्णैरष्टौ पर्णानि पत्राणि प्रपूरयेत्॥७७-७८॥

सितरक्तासितैश्चूर्णैः पुरः प्राकारमाचरेत् ।
पुरो बहिः स्थे द्वे वृत्ते देवि प्रादेशसम्मिते ॥७९॥
उपर्यधः क्रमेणैव रक्तश्वेते विधाय च ।
सन्धिस्थानानि यन्त्रस्य स्वेच्छया रंजयेत् सुधीः ॥८०॥
यत्कोष्ठे यो ग्रहः पूज्यो यत्पत्रे यश्च दिक्पतिः ।
यद्द्वारेऽवस्थिता ये च तत्क्रमं शृणु साम्प्रतम् ॥८१॥
मध्यकोणे यजेत् सूर्यं पार्श्वयोररुणं शिखाम् ।
पश्चात् प्रचण्डयोर्दण्डौ पूजयेदंशुमालिनः ॥८२॥
भानूर्ध्वकोणे पूर्वस्यामर्चयेद्रजनीकरम् ।
आग्नेये मङ्गलं याम्ये बुधं नैर्ऋतकोणके ॥८३॥

पद्मा–श्वेत, रक्त और कृष्ण रंग के चूर्ण से भूपुर की प्राचीर रंगे। हे देवि! भूपुर के बाहर स्थित आधे हाथ के दोनों वृत्तों के ऊपर और बीच के भागों को क्रमशः रक्त तथा श्वेत रङ्ग से बनाए। समस्त सन्धिस्थलों को इच्छानुसार रंग से भरे। जिस-जिस प्रकोष्ठ में

जिस-जिस ग्रह का पूजन करना चाहिए तथा जिस-जिस दल में दिक्पाल की पूजा करनी चाहिए तथा जिस जिस-जिस द्वार में देवता की स्थिति है उसे क्रम से कहता हूँ उसे सुनो। मध्यकोण में सूर्य की पूजा करे, उसके दोनों पार्श्वों में अरुण तथा शिखा की पूजा करे। सूर्य के पीछे के भाग में प्रचण्ड और उद्दण्ड की पूजा करे। सूर्य के ऊर्ध्वकोण में पूर्व दिशा में चन्द्र का, अग्नि कोण में मंगल की तथा दक्षिण दिशा में बुध की पूजा करे। नैर्ऋतकोण में।

हरि०–सितेत्यादि। ततः सितरक्तासितैः श्वेतलोहितकृष्णवर्णैश्चूर्णैः पुरो भूपुरस्य प्राकारमाचरेत् कुर्यात्। हे देवि पुरो भूपुरस्य बहिः स्थे प्रादेशसम्मिते द्वे वृत्ते बर्तुलं मण्डले उपर्यधः क्रमेणैव रक्तश्वेते विधाय सुधीः साधको मन्त्रस्य सन्धिस्थानानि स्वेच्छया रंजयेत् ॥७९-८३॥

बृहस्पतिं वारुणे च दैत्याचार्यं प्रपूजयेत्।
शनैश्चरं तु वायव्ये कौबेरेशानयोः क्रमात्।
राहुं केतुं यजेत् चन्द्रं परितस्तारकागणान् ॥८४॥

पद्मा–बृहस्पति की, पश्चिम दिशा में शुक्र की, वायुकोण में शनि की, उत्तर दिशा में राहु की, ईशान कोण में केतु की और चन्द्र के चारों ओर नक्षत्रमण्डल की पूजा करे।

हरि०–परितः सर्वतः॥८४॥

सुरो रक्तः शशी शुक्लो मङ्गलोऽरुणविग्रहः।
बुधजीवो पाण्डुपीतौ श्वेतः शुक्रोऽसितः शनिः।
राहुकेतू विचित्राभौ ग्रहवर्णाः प्रकीर्तिताः ॥८५॥

पद्मा–सूर्य रक्तवर्ण, चन्द्रमा शुक्लवर्ण, मंगल अरुणवर्ण, बुध पाण्डुवर्ण, बृहस्पति पीत वर्ण, शुक्र श्वेत वर्ण, शनि कृष्णवर्ण, तथा राहु एवं केतु विचित्र वर्ण है। यह ग्रहों का वर्ण कहा।

हरि०–अथ क्रमतः सूर्यादीनां नवग्रहाणां वर्णानाह सूर इत्यादिना सार्धेन। सूरः सूर्यः॥८५॥

चतुर्भुजं रविं ध्यायेत् पद्मद्वयवराभयैः।
चिन्तयेच्छशिनं दानमुद्रामृतकराम्बुजम् ॥८६॥

पद्मा–सूर्य के दो हाथों में दो कमल तथा दो हाथों में एवं अभयमुद्रा है, ऐसा चतुर्भुज ध्यान करे। चन्द्रमा के एक हाथ में अमृत तथा दूसरे हाथ में दान मुद्रा है।

हरि०–अथ सूर्यादीनां नवग्रहाणां क्रमतो ध्यानमाह चतुर्भुजमित्यादिभिः। पद्मद्वयवराभयैर्विशिष्टं चतुर्भुजं रविं सूर्यं ध्यायेत्। दानमुद्रामृतकराम्बुजं दानमुद्रा चामृतञ्च कराम्बुजयोर्हस्तपद्मयोर्यस्य तथाभूतं शशिनं चन्द्रं विचिन्तयेत् ॥८६॥

कुजमीषत्कुब्जतनुं हस्ताभ्यां दण्डधारिणम्।
ध्यायेत् सोमात्मजं बालं भाललोलितकुन्तलम् ॥८७॥

यज्ञसूत्रान्वितं ध्यायेत् पुस्तकाक्षकरं गुरुम् ।
एवं दैत्यगुरुञ्चापि काणं खञ्ज शनैश्चरम् ।।८८।।

पद्मा–मंगल को कुछ कुबड़े शरीर वाला तथा दोनों हाथों में दण्ड लिए हुए ध्यान करे। बुध को बालक रूप में तथा माथे में चञ्चल केशों सहित ध्यान करें। वृहस्पति को यज्ञोपवीतयुक्त दो हाथों में पुस्तक तथा अक्षमाला लिए हुए ध्यान करे। शुक्र को एक आँख का काना तथा शनि को लंगड़ा ध्यान करे ।

हरि०–सोमात्मजम् बुधम् । भाललोलितकुन्तलम् भाले लोलिताश्चलिताः कुन्तलाः केशा यस्य तथाभूतम् ।।८७-८८।।

राहुकेतू शिरः कायौ विकृतौ क्रूरचेष्टितो ।
स्वैः स्वैर्ध्यानैर्ग्रहानिष्ट्वा यजेदिन्द्रादिदिक्पतीन् ।।८९।।

पद्मा–सिर तथा धड़ ये राहु और केतु हैं। राहु को विकृत तथा क्रूरचेष्टायुक्त मस्तक के रूप में और केतु को विकृत क्रूरकर्मा धड़ के रूप में ध्यान करे। ग्रहों को उनके ध्यानसहित पूजन कर फिर इन्द्रादि दशदिक्पालों का पूजन करे ।

हरि०–इष्ट्वा पूजयित्वा।।८९।।

दलेष्वष्टसु पूर्वादिक्रमतः साधकोत्तमः ।
सहस्राक्षं यजेदादौ पीतकौषेयवाससम् ।।९०।।
वज्रपाणिं पीतरुचिं स्थितमैरावतोपरि ।
रक्ताभं छागवाहस्थं शक्तिहस्तहुताशनम् ।।९१।।

पद्मा–श्रेष्ठ साधक आठ दलों में पूर्वादिक्रम से इन्द्रादि दिक्पालों की पूजा करें। सर्वप्रथम पूर्व दिशा के दल में इन्द्र का पूजन करे । इन्द्र के सहस्र नेत्र हैं, इनका रंग पीला है तथा पीले रेशमी वस्त्र धारण किए हुए हैं। इनके हाथ में वज्र है और ऐरावत हाथी पर सवार हैं। अग्नि के शरीर का रंग लाल है, वह अपने बकरे (छाग) के वाहन पर बैठे हैं। उनके हाथ में शक्ति नामक अस्त्र है ।

हरि०–अथ क्रमत इन्द्रादीनामष्टानां दिक्पतीनां ध्यानं वर्णञ्चाह सहस्राक्षमित्यादिभिः पीतकौशेयवाससम् पीतं कौशेयं कृमिकोशोत्थं वासो वस्त्रं यस्य तथाभूतम्।।९०-९१।।

ध्यायेत् कालं लुलापस्थं दण्डिनं कृष्णविग्रहम् ।
निर्ऋतिं खड्गहस्तञ्च श्यामलं वाजिवाहनम् ।।९२।।

पद्मा–कालस्वरूप यमराज के शरीर का रंग काला है तथा भैंसे पर सवार हैं। निर्ऋति श्यामरंग के अश्व पर आरुढ़ हैं उनके हाथ में खड्ग है ।

हरि०–कालम् यमम्। लुलापस्थम् महिषस्थम् ।।९२।।

वरुणं मकरारूढं पाशहस्तं सितप्रभम् ।
ध्यायेत् कृष्णत्विषं वायुं मृगस्थञ्चाङ्कुशायुधम् ।।९३।।

कुबेरं कनकाकारं रत्नसिंहासनस्थितम् ।
स्तुतं यक्षगणैः सर्वैः पाशाङ्कुशकराम्बुजम् ।।९४।।
ईशानं वृषभारूढं त्रिशूलवरधारिणम् ।
व्याघ्रचर्माम्बरधरं पूर्णेन्दुसदृशप्रभम् ।।९५।।

पद्या–शुक्ल वर्ण वरुण को मकर पर सवार तथा पाश लिए हुए, कृष्णवर्ण वायु को अंकुश लिए हुए तथा मृग पर सवार, स्वर्ण के समान वर्ण वाले कुबेर को सिंहासन पर आरूढ़, पाश व अंकुश लिए हुए, यक्षों द्वारा स्तुत, शुक्लवर्ण ईशान को वृष पर आरूढ़, व्याघ्रचर्म धारण किए हुए, त्रिशूल एवं वरमुद्रा लिए हुए ध्यान करे ।

हरि०–निर्ऋतिम् राक्षसम्।।९३-९५।।

ध्यात्वा चैतान् क्रमादिष्ट्वा ब्रह्मानन्तौ पुरा बहिः ।
ऊर्ध्वाधोवृत्तयोरर्च्यौ ततोऽर्च्या द्वारदेवताः ।।९६।।

पद्या–इन सब का ध्यान कर क्रमपूर्वक आठ दिक्पालों की पुजा कर भुपुर के बाहर ऊर्ध्व तथा अधो वृत्त में क्रमशः ब्रह्मा एवं अनन्त की पूजा करे। फिर द्वारदेवताओं की पूजा करे ।

हरि०–ध्यात्वेत्यादि। एतानिन्द्रादीनष्टौ दिक्पतीनेवं ध्यात्वा क्रमादिष्ट्वा पूजयित्वा च पुरो भूपुराद्बहिरुर्ध्वाधः स्थितयोर्वृत्तयोर्मण्डलयो ब्रह्मानन्तौ दिक्पती क्रमतोऽर्च्यौ पूजनीयौ। ततो द्वारदेवता अर्च्याः।।९६।।

उग्रो भीमः प्रचण्डेशौ पूर्वद्वाःस्थाः प्रकीर्तिताः ।
जयन्तः क्षेत्रपालश्च नकुलेशो बृहच्छिराः ।
याम्यद्वारे पश्चिमे च वृकाश्वानन्ददुर्जयाः ।।९७।।
त्रिशिराः पुरजिच्चैव भीमनादो महोदरः ।
उत्तरद्वारपाश्चैते सर्वे शास्त्रास्त्रपाणयः ।।९८।।

पद्या–उग्र, भीम, प्रचण्ड, ईश–ये चार पूर्वद्वार के स्वामी कहे गए हैं। जयन्त, क्षेत्रपाल, नकुलेश, बृहत् शिरा–ये दक्षिण द्वार के स्वामी कहे गए हैं। वृक, अश्व, आनन्द तथा दुर्जय–ये पश्चिम द्वार के स्वामी हैं। त्रिशिरा, पुरुजित, भीमनाद तथा महादेव–ये उत्तर द्वार के स्वामी हैं। यह समस्त द्वार देवता शस्त्रधारी हैं ।

हरि०–पूज्या द्वारदेवता एवाह उग्रो भीम इत्यादिना सार्धद्वयेन ।।९७-९८।।

श्रूयतां ब्रह्मणो ध्यानमनन्तस्यापि सुव्रते ।।९९।।
रक्तोत्पलनिभो ब्रह्मा चतुरास्यश्चतुर्भुजः ।
हंसारूढो वराभीतिमालापुस्तकपाणिकः ।।१००।।

पद्या–हे सुव्रते! ब्रह्मा और अनन्त के ध्यान कहता हूँ सुनो। ब्रह्मा जी लाल कमल के समान प्रभावाले, चारमुख एवं चारभुजाओं वाले हैं। वे हंस पर आसीन हैं। उनके हाथों में वर, अभय, अक्षमाला एवं पुस्तक हैं ।

हरि०–ब्रह्मणो ध्यानमेवाह रक्तोत्पलनिभ इत्यादिना ॥९९-१००॥

हिमकुन्देन्दुधवलः सहस्राक्षः सहस्रपात् ।
सहस्रपाणिवदनो ध्येयोऽनन्तः सुरासुरैः ॥१०१॥

पद्मा–अब अनन्त का ध्यान कहा जाता है। अनन्त का वर्ण हिम, कुन्दपुष्प और चन्द्रमा के समान उज्ज्वल है। उनके सहस्रनेत्र, सहस्रचरण तथा सहस्रमुख हैं। ये सुर तथा असुरों द्वारा ध्येय हैं।

हरि०–अथाऽनन्तस्य ध्यानमाह हिमकुन्देन्दुधवल इत्याद्येकेन॥१०१॥

ध्यानं पूजाक्रमश्चापि यन्त्रञ्च कथितं प्रिये ।
वास्त्वादिक्रमतो ह्येषां मन्त्रानपि शृणु प्रिये ॥१०२॥

पद्मा–हे प्रिये! ध्यान, पूजाक्रम और यन्त्र का वर्णन किया। अब वास्तु से लेकर अनन्त तक सभी मन्त्रों को सुनो।

हरि०–एषाम् वास्त्वादीनामनन्तान्तानाम्॥१०२॥

क्षकारो हव्यवाहस्थः षड्दीर्घस्वरसंयुतः ।
भूषितो नादबिन्दुभ्यां वास्तुमन्त्रः षडक्षरः ॥१०३॥

पद्मा–क्षकार (क्ष) अग्नि (रेफ, र) के ऊपर रहे उसमें षड्दीर्घ स्वर मिलाकर नादबिन्दु (ँ) से विभूषित करे। इस प्रकार षड्क्षर वास्तु मन्त्र बनता है जो इस प्रकार है–क्ष्रां क्ष्रीं, क्ष्रूं क्ष्रैं क्ष्रौं क्ष्रः।

हरि०–वास्त्वादीनां क्रमतो मन्त्रानेवाह क्षकारः इत्यादिभिः। हव्य वाहस्थः हव्यवाहो रेफः तत्स्थः क्षकारः षड्दीर्घस्वसंयुतो नादबिन्दुभ्यां भूषितश्च कर्तव्यः। एवञ्च क्ष्रां क्ष्रीं क्ष्रूं, क्ष्रैं, क्ष्रौं क्ष्रः इति षडक्षरो वास्तुमन्त्र उद्धृत आसीत्॥१०३॥

तारं मायां तीग्मरश्मे ङेऽन्तमारोग्यदं वदेत् ।
वह्निजायां ततो दत्त्वा सूर्यमन्त्रं समुद्धरेत् ॥१०४॥

पद्मा–तार (ॐ) तथा माया (ह्रीं) का उच्चारण करके "तिग्मरश्मयं" पद का उच्चारण करे। तदुपरान्त "आरोग्यदाय" पद का उच्चारण करके "स्वाहा" का उच्चारण करे। इस प्रकार **"ॐ ह्रीं तिग्मरश्मये आरोग्यदाय स्वाहा"** इस सूर्यमन्त्र का उद्धार होगा।

हरि०–**तारमित्यादि**। पूर्वम् तारं प्रणवं वदेत्। ततो माया ह्रीं बीजं वदेत्। ततस्तीग्मरश्मे इति वदेत्। ततोङेऽन्तमारोग्यदं वदेत्। ततो वह्निजायां दत्त्वा सूर्यमन्त्र समुद्धरेत्। योजनया ओं ह्रीं तीग्मरश्मे आरोग्यदाय स्वाहेति सूर्यमन्त्र उद्धृत आसीत्॥१०४॥

कामो माया च वाणी च ततोऽमृतकरेति च ।
अमृतं प्लावय द्वन्द्वं स्वाहा सोममनुर्मतः ॥१०५॥

पद्मा–काम (क्लीं) माया (ह्रीं) वाणी (ऐं) अमृतकर अमृत प्लावय प्लावय स्वाहा इनको मिलाने से सोम (चन्द्रमा) का मन्त्र बनता है जो इस प्रकार है - **क्लीं ह्रीं ऐं अमृतकराऽमृतं प्लावय प्लावय स्वाहा ।**

हरि०–काम इत्यादि। पूर्वं काम: क्लीमिति बीजमुच्येत। ततो माया ह्रीं बीजमुच्येत्। ततो वाणी ऐंमिति बीजमुच्येत। ततोऽमृतकरेत्युच्येत। ततोऽमृतमुच्येत् । तत: प्लावयद्वन्द्वमुच्येत्। तत: स्वाहोच्येत्। योजनया क्लीं ह्रीं ऐं अमृताकराऽमृतं प्लावय प्लावय स्वाहेति सोममनुर्मत: ।।१०५।।

ऐं ह्रां ह्रीं सर्वपदाद्दुष्टान्नाशय नाशय ।
स्वाहावसाना मन्त्रोऽयं मङ्गलस्य प्रकीर्तित: ।।१०६।।

पद्या–ऐं ह्रां ह्रीं सर्व पद के पश्चात् दुष्टान्नाशय नाशय स्वाहा उच्चारण करने से मंगल का मंत्र होगा। यथा - **ऐं ह्रां ह्रीं सर्वदुष्टान् नाशय नाशय स्वाहा ।**

हरि०–ऐमित्यादि। पूर्वम् ऐं ह्रां ह्रीं वदेत्। तत: सर्वपदतो दुष्टान्नाशय नाशयेति वदेत्। योजनया ऐं ह्रां ह्रीं सर्वदुष्टान्नाशय नाशयेति मन्त्रोजात:। स्वाहावसान: स्वाहान्तोऽयं मङ्गलस्य मन्त्र: प्रकीर्तित:।।१०६।।

ह्रीं श्रीं सौम्यपदञ्चोक्त्वा सर्वान् कामांस्ततो वदेत् ।
पूरयाऽन्ते वह्निकान्तामेष सोमात्मजे मनुः ।।१०७।।

पद्या–ह्रीं श्रीं सौम्य पद का उच्चारण करके "सर्वान् कामान्" का उच्चारण करे। इसके पश्चात् 'पूरय' का उच्चारण करके स्वाहा का उच्चारण करे। इस प्रकार सोम (चन्द्रमा) का मन्त्र बनता है जो इस प्रकार है–**ह्रीं श्रीं सौम्य सर्वान् कामान् पूरय स्वाहा।**

हरि०–ह्रीमित्यादि। पूर्वम् ह्रीं श्रीं सौम्यपदं चोक्त्वा तत: सर्वान् कामान् वदेत्। तत: पूरयान्ते वह्निकान्तां वदेत्। योजनया ह्रीं श्रीं सौम्य सर्वान् कामान् पूरय स्वाहोत्येष सोमात्मजे बुधे मनुर्मत:।।१०७।।

तारेण पुटिता वाणी तत: सुरगुरोपदम् ।
अभीष्टं यच्छ यच्छेति स्वाहामन्त्रो बृहस्पतेः ।।१०८।।

पद्या–सर्वप्रथम तार (ॐ) से पुतित वाणी (ऐं) तत्पश्चात् सुरगुरो पद का उच्चारण करे। फिर "अभीष्टं यच्छ यच्छ स्वाहा" का उच्चारण करे। इस प्रकार बृहस्पति का मन्त्र बनता है। **ॐ ऐं ॐ सुरगुरो अभीष्टं यच्छ यच्छ स्वाहा ।**

हरि०–तारेणेत्यादि। तारेण प्रणवेन पुटित आदावन्ते च संयुक्ता वाणी वक्तव्या। तत: सुरगुरो इति पदं वदेत्। ततोऽभीष्टं यच्छ यच्छेति वदेत्। तत: स्वाहेति वदेत्। योजनया ओं ऐं ओं सुरगुरो अभीष्टं यच्छ यच्छ स्वाहेति बृहस्पतेर्मन्त्रो मत:।।१०८।।

शां शीं शूं, शैं तत: शौं शः: शुक्रमन्त्रः समीरितः ।।१०९।।

पद्या–शां शीं शूं शैं शौं शः यह शुक्र का मन्त्र कहा गया है।

हरि०–शां शीं शूं शैं शौं शः इति शुक्रमन्त्र: समीरित: कथित:।।१०९।।

ह्रां ह्रौं ह्रीं ह्रीं सर्वशत्रून् विद्रावय पदद्वयम् ।
मार्तण्डसूनवे पश्चात् नमो मन्त्रः शनैश्चरे ।।११०।।

पद्मा–सर्वप्रथम ह्रां ह्रां ह्रीं ह्रीं सर्वशत्रून् विद्रावय विद्रावय का उच्चारण करे। तदुपरान्त मार्तण्डसूनवे इसके पश्चात् नमः का उच्चारण करे। इस प्रकार **ह्रां ह्रां ह्रीं ह्रीं सर्वशत्रून् विद्रावय विद्रावय मार्तण्डसूनवे नमः** यह शनि का मन्त्र है ।

हरि०–**ह्रां** ह्रामित्यादि। पूर्वम् ह्रां ह्रां ह्रीं ह्रीं सर्वशत्रूनिति वदेत्। ततो विद्रावयपदद्वयं वदेत्। ततो मार्तण्डसूनवे इति वदेत्। पश्चान्नमो वदेत्। योजनया ह्रां ह्रां ह्रीं ह्रीं सर्वशत्रून् विद्रावय विद्रावय मार्तण्डसूनवे नमः इति शनैश्चरे मन्त्रो जातः॥११०॥

रां ह्रौं भ्रौं ह्रीं सोमशत्रो शत्रून् विध्वंसय द्वयम् ।
राहवे नमः इत्येष राहोर्मनुरुदाहृतः ।।१११।।
क्रूं हूं क्रैं केतवे स्वाहा केतोर्मन्त्रः प्रकीर्तितः ।।११२।।

पद्मा–**रां ह्रौं भ्रौं ह्रीं सोमशत्रो शत्रून् विध्वंसय विध्वसय राहवे नमः** यह राहु का मन्त्र तथा **क्रूं हूं क्रैं केतवे स्वाहा** यह केतु का मन्त्र कहा गया है ।

हरि०–रामित्यादि। पूर्व रां ह्रौं भ्रौं ह्रीं सोमशत्रो शत्रूनिति वदेत्। ततो विध्वंसयद्वयं वदेत्। ततो राहवे नम इति वदेत्। योजनया रां ह्रौं भ्रौं ह्रीं सोमशत्रो शत्रून् विध्वंसय विध्वंसय राहवे नमः इत्येष राहोर्मनुरुदाहृतः कथितः॥१११-११२॥

लं रं मृं स्त्रूं वं यमिति क्षं हौं ब्रीममिति क्रमात् ।
इन्द्राद्यनन्तदिक्पानां दशमन्त्राः समीरिताः ।।११३।।
अन्येषां परिवारणां नाममन्त्राः प्रकीर्तिताः ।
अनुक्तमन्त्रे सर्वत्र विधिरेष शिवोदितः ।।११४।।

पद्मा–**लं इन्द्राय नमः** यह मन्त्र इन्द्र का, **रं अग्नये नमः** यह मन्त्र अग्नि का, **मृं यमाय नमः** यह मन्त्र यम का, **स्त्रूं निर्ऋतये नमः** निर्ऋति का, **वं वरुणाय नमः** यह मन्त्र वरुण का, **यं वायवे नमः** यह मन्त्र वायु का, **क्षं कुबेराय नमः** यह मन्त्र कुबेर का, **हौं ईशानाय नमः** यह मन्त्र ईशान का, **ब्रीं ब्रह्मणो नमः** यह मन्त्र ब्रह्म, तथा **अं अनन्ताय नमः** यह मन्त्र अनन्त का है। इस प्रकार दशदिक्पालों के मन्त्र कहे गए। अन्य परिवार देवताओं के नाम ही उसके मन्त्र कहे गए हैं। जहाँ मन्त्र नहीं कहा गया, वहाँ नाम ही मन्त्र होता है ऐसा भगवान् शिव ने कहा है ।

हरि०–**लमित्यादि**। लमिति रमिति मृमिति स्त्रूमिति वमिति यमिति क्षमिति हौमिति ब्रीमिति अमित्येते क्रमादिन्द्रादीनामनन्तान्तानां दिक्पालानां दशमन्त्राः समीरिताः कथिताः ॥११३-११४॥

नमोऽन्तमन्त्रे देवेशि न नमो योजयेद् बुधः ।
स्वाहान्तेऽपि तथामन्त्रे न दद्याद्वह्निवल्लभाम् ।।११५।।

पद्मा–हे देवेशि! जिस मन्त्र के अन्त में नमः शब्द लगा हो बुद्धिमान् साधक उसमें नमः न जोड़े। इसी प्रकार जिस मन्त्र के अन्त में स्वाहा लगा हो उसमें स्वाहा शब्द न जोड़े।

हरि०–वह्निवल्लभाम् स्वाहेति पदम्॥११५॥

ग्रहादिभ्यः प्रदातव्यं पुष्पं वासश्च भूषणम् ।
तेषां वर्णानुरूपेण नान्यथा प्रीतये भवेत् ।।११६।।

पद्मा–जिस ग्रह का जैसा वर्ण कहा गया है उसी रंग के वस्त्र, आभूषण, पुष्प एवं फल देने चाहिए। ऐसा न करने से ग्रह प्रसन्न नहीं होते हैं ।

हरि०–तेषाम् ग्रहादीनाम्।।११६।।

कुशकण्डिकोक्तविधिना वह्निं संस्थापयन् सुधीः ।
पुष्पैरुच्चावचैर्यद्वा समिद्भिर्होममाचरेत् ।।११७।।

पद्मा–बुद्धिमान् मनुष्य कुशकण्डिकोक्त विधि से अग्नि को स्थापित करके विधि के अनुसार पुष्प अथवा समिधा से होम करे ।

हरि०–समिद्भिः काष्ठैः।।११७।।

शान्तिकर्मणि पुष्टौ च वरदो हव्यवाहनः ।
प्रतिष्ठायां लोहिताक्षः शत्रुहा क्रूरकर्मणि ।।११८।।
शान्तौ पुष्टौ महेशानि तथा क्रूरेऽपिकर्मणि ।
ग्रहयागं प्रकुर्वाण वाञ्छितार्थमवाप्नुयात् ।।११९।।
यथा प्रतिष्ठाकार्येषु देवार्चा पितृतर्पणम् ।
वास्तोर्यागे ग्रहाणाञ्च तद्वदेव विधीयते ।।१२०।।

पद्मा–शान्ति एवं पुष्टि कर्मों में "वरद" नामक अग्नि, प्रतिष्ठा कर्म "लोहिताक्ष" नामक अग्नि और अभिचारादि क्रूर कर्मों में "शत्रुहा" नामक अग्नि में करे। हे महेशानि! शान्ति, पुष्टि या किसी अन्य क्रूर कर्मों के समय जो ग्रहयाग करता है वह अपने अभीष्ट फल को प्राप्त करता है। प्रतिष्ठा कार्यों में जैसे देवपूजा और पितृतर्पण करना आवश्यक है वैसे ही वास्तु याग और गृहयाग में भी देवपूजा और पितृतर्पण करे ।

हरि०–**वरदो** वरदनामा । लोहिताक्षो लोहिताक्षाख्यः । शत्रुहा शत्रुहसंज्ञकः ।।११८-१२०।।

यद्येकस्मिन दिने द्वित्रिः प्रतिष्ठा यागकर्म च ।
तन्त्रेण तत्र देवार्चा पितृश्राद्धाग्निसंस्क्रियाः ।।१२१।।
जलाशयगृहारामसेतुसंक्रम शाखिनः ।
वाहनासनयानानि वासोऽलङ्करणानि च ।।१२२।।
पानाशनीयपात्राणि देयवस्तूनि यान्यपि ।
असंस्कृतानि देवाय च प्रदद्युः फलेप्सवः ।।१२३।।
काम्ये कर्मणि सर्वत्र बुधः सङ्कल्पमाचरेत् ।
विधिवाक्यानुसारेण सम्पूर्णसुकृताप्तये ।।१२४।।

पद्मा–यदि एक ही दिन में दो तीन प्रतिष्ठा व वास्तुयागादि करने हों तो उन सभी

कार्यों के लिए एक बार देवपूजन, पितृश्राद्ध तथा अग्नि संस्कार करे। फल के इच्छुक मनुष्य जलाशय, ग्रह, उपवन, सेतु, संक्रम, वृक्ष, वाहन, आसन, यान, वस्त्र, अलङ्करण, पानपात्र, भोजन पात्र तथा अन्य देव वस्तुओं को बिना प्रोक्षण किए देवता को न प्रदान करे। सम्पूर्ण काम्यकर्मों में पूरा फल प्राप्त करने के लिए विधिवाक्य के अनुसार सङ्कल्प करें।

हरि०–तन्त्रेण एकधैव॥१२१-१२४॥

संस्कृताभ्यर्चितं द्रव्यं नामोच्चारणपूर्वकम् ।
सम्प्रदानाभिधाञ्चोक्त्वा दत्त्वा सम्यक् फलं लभेत् ।।१२५।।

पद्मा–जिस वस्तु का दान करना हो, सर्वप्रथम उसका संस्कार करे, तदुपरान्त पूजन करे। इसके पश्चात् पूजित द्रव्य का नाम लेकर जिसे दान करना है उसके नाम का उच्चारण करे। इस प्रकार दान करने से सम्यक् (उचित) फल प्राप्त होता है ।

हरि०–संस्कृताभ्यर्चितम् शोधितं प्रपूजितम्। संप्रदानभिधां सम्प्रदाननामधेयम्॥१२५॥

जलाशयगृहारामसेतुसंक्रमशाखिनाम ।
कथ्यन्ते प्रोक्षणे मन्त्राः प्रयोज्या ब्रह्मविद्यया ।।१२६।।

पद्मा–जलाशय, गृह, आराम, सेतु, संक्रम, वृक्ष के प्रोक्षित करने का मंत्र कहता हूँ। ब्रह्मविद्या गायत्री के साथ इन मन्त्रों का प्रयोग करे ।

हरि०–ब्रह्मविद्यया गायत्र्या सह॥१२६॥

जीवनधार जीवानां जीवनप्रद वारुण ।
प्रोक्षणे तव तृप्यन्तु जलभूचरखेचराः ।।१२७।।

पद्मा–हे जलाधार! हे जीवों के जीवनदाता! हे वारुण! तुम्हारे प्रोक्षण से जलचर भूचर तथा खेचर सभी तृप्त हों। इस मन्त्र से जलाशय को प्रोक्षित करे ।

हरि०–तेषां मध्ये प्रथमतो जलाशयप्रोक्षणमन्त्रमाह जीवनाधार जीवानामिति। जीवनाधार जलाधार। वारुण वरुणदेवताक॥१२७॥

तृणकाष्ठादिसम्भूत वासेय ब्राह्मणः प्रिय ।
त्वां प्रोक्षयामि तोयेन प्रीतये भव सर्वदा ।।१२८।।

पद्मा–हे गृह! तुम तिनके और लकड़ी आदि से बने हो। तुम उत्तम रहने के योग्य स्थान में हो। तुम ब्रह्मा के प्रिय हो। तुम्हे मैं जल से प्रेक्षित करता हूँ। तुम सदैव प्रसन्नतादायक हो। इस मंत्र को पढ़कर तृणादि से निर्मित गृह को प्रोक्षित करे ।

हरि०–अथ गृहप्रोक्षणमन्त्रमाह तृणकाष्ठादिसम्भूतेति। वासेय वासाय हित॥१२८॥

इष्ठकादिसमुद्भूत वक्तव्यन्त्विष्टकामये ।

इष्ठकादिसमुद्भूत वक्तव्यन्त्विष्टकामये ।।१२९ ।।

पद्मा–यदि घर ईंट का बना हो तो गृह की प्रतिष्ठा के समय ''इष्ठकादि सम्भूत'' कहे। अर्थात् तुम ईंट आदि से बने हो ऐसा मंत्र पढ़े। इसी प्रकार यदि घर पत्थर से बना हो तो ''प्रस्तरादिसमुद्भूत'' कहे ।

हरि०–इष्टकादीत्यादि। इष्टकादिमये गृहे प्रोक्षणीये तृणकाष्ठादिसंभूते इत्यत्र इष्टकादिसमुद्भूतेति वक्तव्यम् ॥१२९॥

फलैः पत्रैश्च शाखाद्यैश्छायाभिश्च प्रियङ्कराः ।
यच्छन्तु मेऽखिलान् कामान् प्रोक्षितास्तीर्थवारिभिः ।।१३०।।

पद्मा–आराम तथा वृक्ष की प्रतिष्ठा के समय भी आगे कहे जा रहे मंत्र को पढ़कर अभ्युक्षित करे - हे आराम! हे वृक्ष! तुम फल, पत्र, शाखाओं और डालियों द्वारा से सभी का प्रिय करते हो। तीर्थजल से प्रोक्षित होकर तुम मेरी समस्त इच्छाओं को पूरा करो।

हरि०–अथारामप्रोक्षणमन्त्रमाह फलैः पत्रैश्च शाखाद्यैरिति॥१३०॥

सेतुस्त्वं भवसिन्धूनां पारदः पथिकप्रियः ।
मया संप्रोक्षितः सेतो यथोक्तफलदो भव ।।१३१।।

पद्मा–हे सेतु ! तुम संसार सागर से पार करने वाले पथिकों के अत्यन्त प्रिय हो। मुझसे प्रोक्षित होकर तुम मुझे यथोचित फल प्रदान करो।

हरि०–अथ सेतुप्रोक्षणमन्त्रामाह सेतुस्त्वं भवसिन्धूनामिति ॥१३१॥

संक्रम त्वां प्रोक्षयामि लोकानां संक्रमं यथा ।
ददासीह तथा स्वर्गे संक्रमो मे प्रदीयताम् ।।१३२।।
आरामप्रोक्षणे मन्त्रो य एव कथितः प्रिये ।
स एव शाखिसंस्कारे प्रयोक्तव्यो मनीषिभिः ।।१३३।।

पद्मा–हे संक्रम! मैं तुम्हे प्रोक्षित करता हूँ। इस जगत् (संसार) में जैसे लोगों को पार करते हो, उसी प्रकार मुझे स्वर्ग में गति प्रदान करो। हे प्रिये! उपवन (आराम) प्रोक्षण मन्त्र का ही प्रयोग वृक्ष के संस्कार में करे।

हरि०–अथ संक्रमप्रोक्षणमन्त्रमाह संक्रम त्वां प्रोक्षयामीति। संक्रम्यते सम्यक् पादविक्षेपः क्रियते लोकैर्यत्र स संक्रमः सेतुविशेषः तत्सम्बोधने संक्रमेति। संक्रमम् सम्यगगमनम् ॥१३२-१३३।

प्रणवो वारुणश्चाऽस्त्रं बीजत्रितयमम्बिके ।
सर्वसाधारणद्रव्यप्रोक्षणे विनियोजयेत् ।।१३४।।

पद्मा–हे अम्बिके! सर्वसाधरण द्रव्यों को प्रोक्षित करने के समय प्रणव (ॐ) वरुणबीज (वं) और अस्त्र (फट्) का प्रयोग करे। मन्त्र इस प्रकार होगा - **ॐ वं फट्**।

हरि०–**प्रणव इत्यादि**। हे अम्बिके प्रणव ओङ्कारः वारुणं वं अस्त्र फडिति बीजत्रितयं सर्वसाधारणद्रव्यप्रोक्षणे विनियोजयेत्॥१३४॥

स्नापनार्हं वाहनं चेत् स्नापयेत् ब्रह्मविद्यया ।
अन्यत्रैवाऽर्घ्यतोयेन कुशाग्रेण विशोधयेत् ।।१३५।।

पद्मा–वाहन यदि स्नान कराने के योग्य हो तो उसे ब्रह्मविद्या (गायत्री) मन्त्र से स्नान कराए। स्नान कराने के योग्य न हो तो कुश के अग्रभाग से अर्घ्य जल के द्वारा उसे शोधित करे।

हरि०-ब्रह्मविद्यया गायत्र्या ॥१३५॥

प्राणप्रतिष्ठामाचर्य तत्रद्वाहनसंज्ञया ।
पूजितोऽलङ्कृतो वाहो देयो भवति दैवते ॥१३६॥

पद्मा-उस वाहन में प्राणप्रतिष्ठा कर उस वाहन का नाम लेकर उसका पूजन करे और अलङ्कृत करे। इसके उपरान्त उसे देवता को प्रदान करे।

हरि०-प्राणेत्यादि। पूर्वोक्तेनोहनीयलिङ्गकपदशालिना देवीप्राणप्रतिष्ठामन्त्रेण वाहनारूप प्राणप्रतिष्ठामाचर्य कृत्वा तद्वाहनसंज्ञया पुजितोऽलङ्कृतश्च वाहो वाहनं दैवते देयो भवति ॥१३६॥

जलाशये पूजनीयो वरुणो यादसां पतिः ।
गृहे प्रजापतिर्ब्रह्माऽऽरामे सेतौ च संक्रमे ।
पूज्यो विष्णुर्जगत्पाता सर्वात्मा सर्वदृग्विभुः ॥१३७॥

पद्मा-जलाशय की प्रतिष्ठा करते समय जलचरों के स्वामी वरुण का पूजन करे। गृह प्रतिष्ठा करते समय प्रजापति ब्रह्मा की पूजन करे। उपवन, सेतु तथा संक्रम की प्रतिष्ठा करते समय जगत्पति, सर्वात्मा, सर्वसाक्षी, त्रिभुवन रक्षक भगवान् विष्णु की पूजा करे।

हरि०-सर्वदृक् सकलपदार्थद्रष्टा । विभुः व्यापकः॥१३७॥

देव्युवाच

विविधानि विधानानि कथितान्युक्तकर्मसु ।
क्रमो न दर्शितो येन मानवः कर्म साधयेत् ॥१३८॥
क्रमव्यत्ययकर्माणि बह्वायासकृतान्यपि ।
न यच्छन्ति फलं सम्यक् नृणां कर्मानुजीविनाम् ॥१३९॥

पद्मा-देवी ने कहा - विभिन्न प्रकार के विधान आपने कहे हैं, किन्तु मनुष्य जिस कर्म का आश्रय लेकर कर्म करे वह आपने प्रकाशित नहीं किया है। जो मनुष्य फल की इच्छा करते हैं तथा जो कर्म करते हैं। वे क्रमरहित कर्म अनेक प्रयत्न करने के साथ करने पर भी वे सम्यक् फल नहीं प्रदान करते हैं।

हरि०-अथोक्तकृत्यतत्तत्कर्मक्रमं जिज्ञासुर्देव्युवाच विविधानीत्यादिना॥१३८-१३९॥

श्रीसदाशिव उवाच

यदुक्तं परमेशानि! मातेव हितकारिणि ।
निःश्रेयसन्तल्लोकानां फलव्यापृतचेतसाम् ॥१४०॥

पद्मा-श्रीसदाशिव ने कहा - हे परमेशानि! तुम माता के समान जगत् का हित करने वाली हो। तुमने क्रमानुसार कार्य करने की जो बात कही है, वह फल में आसक्त लोगों के लिए अत्यन्त ही कल्याणकारी है।

हरि०-एवं प्रार्थितः सन् श्रीसदाशिव उवाच यदुक्तमित्यादिना। फलव्यापृतचेतसाम् फलाय व्यापृतं व्यापारविशिष्टं चेतो येषां ते तेषाम्॥१४०॥

एतेषामुक्तकृत्यानामनुष्ठानं पृथक् पृथक् ।
वास्तुयागक्रमाद्देवि! कथयाम्यवधीयताम् ।।१४१।।

पद्मा - हे देवि! मैंने जिन कर्मों का वर्णन किया है उन सभी का अनुष्ठान अलग-अलग है। अब मैं वास्तु याग से प्रारम्भ करके क्रम पूर्वक कहता हूँ। तुम ध्यान देकर सुनो।

हरि० - अनुष्ठानम् साधनम्।।१४१।।

पूर्वेऽह्नि नियताहारः श्वः प्रातः स्नानमाचरेत् ।
कृत्वा पौर्वाह्निकं कर्म गुरुं नारायणं यजेत् ।।१४२।।
ततः स्वकाममुद्दिश्य विधिदर्शितवर्त्मना ।
कृतसङ्कल्पको मन्त्री गणेशादीन् समर्चयेत ।।१४३।।

पद्मा–वास्तुयाग के समय पहले दिन आहार का संयम करके दूसरे दिन प्रातःकाल स्नान करे। तदुपरान्त पूर्वाह्न कर्म समाप्त कर गुरुदेव एवं नारायण का पूजन करे। इसके पश्चात् अपनी मनोकामना के अनुसार विधिपूर्वक संकल्प करके गणेशादि की पूजा करे।

हरि०–वास्तुयागक्रमादुक्तकृत्यानामनुष्ठानस्य क्रममाह पूर्वेऽह्नीत्यादिभिः।।१४२-१४३।।

बन्धूकाभं त्रिनेत्रं द्विरदवरमुखं नागयज्ञोपवीतम् ।
शङ्खं चक्रं कृपाणं विमलसरसिजं हस्तपद्मैर्दधानम् ।
उद्यद्बालेन्दुमौलिं दिनकरकिरणोद्दीप्तवस्त्राङ्गशोभं
नानालङ्कारयुक्तं भजत गणपतिं रक्तपद्मोपविष्टम् ।।१४४।।
एवं ध्यात्वा यथाशक्त्या पूजयित्वा गणेश्वरम् ।
ब्रह्माणञ्च ततो वाणीं विष्णुं लक्ष्मीं समर्चयेत् ।।१४५।।

पद्मा–अब गणेश जी का ध्यान कहता हूँ - जिनकी आभा बन्धूक पुष्प के समान है, तीन नेत्र हैं, हाथी के समान मुख है, सर्प ही जिनका यज्ञोपवीत है, जो अपने चार हाथों में शंख, चक्र, खड्ग तथा कमल का सुन्दर पुष्प धारण किए हुए हैं, बालचन्द्र जिनके मस्तक सुशोभित है, जिनके वस्त्र एवं शरीर के अंगों की शोभा उदय हुए सूर्य की किरणों के समान है, जो लाल कमल पर विराजमान हैं ऐसे गणपति का मैं पूजन करता हूँ। इस प्रकार गणेश का ध्यान कर यथा शक्ति उनका पूजन करे। तदुपरान्त ब्रह्मा-सरस्वती एवं विष्णु-लक्ष्मी का पूजन करे।

हरि०–अथ गणपतिध्यानमाह बन्धूकाभमित्याद्येकेन। बन्धूकाभम् बन्धूकपुष्पसदृशद्युतिम्। उद्यद्बालेन्दुमौलिम् उद्यन् यो बाल इन्दुर्बालश्चन्द्रः स मौलौ किरीटे यस्य तथाभूतम्। दिन-करकिरणोद्दीप्तवस्त्राङ्गशोभम् दिनकरकिरणवदुद्दीप्तेन वस्त्रेणाङ्गे शोभा यस्य तथाभूतम्।।१४४-१४५।।

शिवं दुर्गां ग्रहांश्चापि तथा षोडशमातृकाः ।
घृतधारास्वपि वसूनिष्ट्वा कुर्यात् पितृक्रियाम् ।।१४६।।

ततः प्रोक्तविधानेन मण्डलं वास्तुरक्षसः ।
निर्माय पूजयेत्तत्र वास्तुदैत्यं गणैः सह ।।१४७।।

पद्मा–इसके पश्चात् शिव, दुर्गा, ग्रह और षोडश मातृकाओं का पूजन करके घी की धारा से वसुगणों का पूजन करे तदुपरान्त पितृक्रिया करे। इसके पश्चात् पहले कही गयी विधि के अनुसार वास्तु राक्षसका मण्डल निर्मित कर वास्तुदैत्य के गणों (सपरिवार) सहित वास्तु दैत्य की पूजा करे ।

हरि०–इष्ट्वा पूजयित्वा ॥१४६-१४७॥

ततस्तु स्थण्डिलं कृत्वा वह्निं संस्कृत्य पूर्ववत् ।
धाराहोमान्तमाचर्य वास्तुहोमं समारभेत् ।।१४८।।

पद्मा–इसके पश्चात् स्थण्डित का निर्माण कर पहले की भाँति अग्नि का संस्कार कर धारा होम तक समस्त कर्मों को कर वास्तुहोम प्रारंभ करे ।

हरि०–आचार्य विधाय॥१४८॥

यथा शक्त्याऽऽहुतीस्तस्मै परिवारगणाय च ।
तथा पूजितदेवेभ्यो दत्त्वा कर्म समापयेत् ।।१४९।।

पद्मा–इसके उपरान्त वास्तुराक्षस तथा उसके परिवार को यथाशक्ति प्रदान करे। पूजित देवताओं के लिए आहुति प्रदान कर कर्म को समाप्त करे ।

हरि०–तस्मै वास्तुदैत्याय ॥१४९॥

वास्तुयागे पृथक्कार्ये एष ते कथितः क्रमः ।
अनेनैव ग्रहाणाञ्च यज्ञोऽपि विहितः प्रिये ।।१५०।।

पद्मा–हे प्रिये! वास्तुयाग में पृथक् भाव से कर्तव्य है । यह क्रम तुमसे कहा। ग्रहयाग में भी यही क्रम विहित है ।

हरि०–अनेनैव क्रमेण॥१५०॥

ग्रहाणामत्र मुख्यत्वान्नाङ्गत्वेन प्रपूजनम् ।
सङ्कल्पानन्तरं कार्यं वास्त्वर्चनमिति क्रमः ।।१५१।।
गणेशाद्यर्चनं सर्वं वास्तुयागविधानवत् ।
ग्रहाणां यन्त्रमन्त्रौ च ध्यानं प्रागेव कीर्तितम् ।।१५२।।
प्रसङ्गात् कथितौ भद्रे: ग्रहवास्तुक्रतुक्रमौ ।
अथ प्रस्तुतकृत्यानामुच्यते कूपसंस्क्रिया ।।१५३।।

पद्मा–ग्रहयाग में ग्रहों की प्रधानता होने के कारण अंगभाव से उनकी पुजा नहीं करनी चाहिए। वैसे स्थान में क्रम यह है कि संकल्प के पश्चात् ही वास्तुदेवता का पूजन करना चाहिए। गणेश आदि देवताओं की पुजा वास्तुयाग के विधान के अनुसार ही करे। ग्रहों के यन्त्र मन्त्र और ध्यान पहले ही कहे जा चुके हैं। हे भद्रे! प्रसङ्गवश ग्रहयाग तथा वास्तु याग

का क्रम कहा जाएगा। अब पूर्वप्रस्तावित कर्मों में से कूप संस्कार की विधि कहता हूँ।

हरि०–अत्र ग्रहयज्ञे ॥१५१-१५३॥

संकल्पं विधिवत् कृत्वा वास्तुपूजनमाचरेत् ।
मण्डले कलशे वापि शालग्रामे यथामति ॥१५४॥
ततः पूज्यो गणपतिर्ब्रह्मा वाणी हरी रमा ।
शिवो दुर्गा ग्रहाश्चापि पूज्या दिक्पतयस्तथा ॥१५५॥

पद्मा–सर्वप्रथम विधिपूर्वक संकल्प करके अपनी बुद्धि के अनुसार, मण्डल में, कलश में अथवा शालग्राम के मध्य में वास्तु पूजा करे। इसके पश्चात् गणेश, ब्रह्मा, वाणी (सरस्वती), विष्णु (हरि) रमा (लक्ष्मी) शिव, दुर्गा, ग्रह तथा दिक्पाल इनकी पूजा करे।

हरि०–कूपसंस्कारक्रममेवाह संकल्पमित्यादिभिः ॥१५४-१५५॥

मातरौ वासवोऽष्टौ च ततः कार्या पितृक्रिया ।
प्राधान्यं वरुणस्यात्र स हि पूज्यो विशेषतः ॥१५६॥
नानोपहारैर्वरुणमर्चयित्वा स्वशक्तितः ।
विधिवत् संस्कृते वह्नौ वारुणं होममाचरेत् ॥१५७॥
पूजितेभ्यश्च देवेभ्यो दत्त्वा प्रत्येकमाहुतिम् ।
पूर्णाहुत्यन्तकृत्येन होमकर्म समापयेत् ॥१५८॥
ततो ध्वजपताकास्रग्गन्धसिन्दूरचर्चितम् ।
उक्तप्रोक्षणमन्त्रेण प्रोक्षयेत् कूपमुत्तमम् ॥१५९॥
ततः स्वकाममुद्दिश्य देवमुद्दिश्य वा नरः ।
सर्वभूतप्रीणनायोत्सृजेत् कूपजलाशयम् ॥१६०॥

पद्मा–मातृगणों और अष्टवसुगणों की पूजा करे। तदुपरान्त पितृश्राद्ध करे। इस कूप संस्कार में वरुण देवता की ही प्रधानता है। अतः उनकी विशेष रूप से पूजा करे। अनेक प्रकार के उपहारों से यथाशक्ति वरुण देवता की पूजा करके संस्कार की हुई अग्नि में विधिपूर्वक वरुण देवता के लिए होम करे। तत्पश्चात् पूजित देवताओं में से प्रत्येक को आहुति प्रदान कर पूर्णाहुति तक का समस्त कार्य कर होम समाप्त करे। पहले कहे गए प्रोक्षण मंत्र को पढ़कर ध्वजा, पताका, माला, चन्दन तथा सिन्दूर से शोभित उत्तम कूप को प्रोक्षित करे और अपनी इच्छा की पूर्ति के लिए अथवा देवता की प्रसन्नता के लिए, सभी प्राणियों को सन्तुष्ट करने के लिए कूप अथवा जलाशय का उत्सर्ग करे।

हरि०–**अत्र कूपसंस्कारे।** सः वरुणः॥१५६-१६०॥

कृताञ्जलिपुटो भूत्वा प्रार्थयेत् साधकाग्रणीः ।
सुप्रीयन्तां सर्वभूता नभोभूतोयवासिनः ॥१६१॥
उत्सृष्टं सर्वभूतेभ्यो मयैतज्जलमुत्तमम् ।
तृप्यन्तु सर्वभूतानि स्नानपानावगाहनैः ॥१६२॥

सामान्यं सर्वजीवेभ्यो मया दत्तमिदं जलम् ।
ये च केचिद्विपद्यन्ते स्वस्वकर्मविपाकतः ।।१६३।।
तत्पापैर्न प्रलिप्येऽहं सफलास्तु मम क्रिया ।
ततस्तु दक्षिणां कृत्वा कृतशान्त्यादिकक्रियः ।।१६४।।
ब्राह्मणान् भोजयेत् कौलान् दीनानपि बुभुक्षितान् ।
जलाशयप्रतिष्ठासु सर्वत्रैण क्रमः शिवे ।।१६५।।

पद्मा–श्रेष्ठ साधक हाथ जोड़कर प्रार्थना करे–खेचर (आकाश में उड़ने वाले) भूचर (भूमि में रहने वाले) 'जलचर (जल में रहने वाले) सभी प्राणी प्रसन्न हों। समस्त प्राणियों के लिए मैं इस उत्तम जल को उत्सर्ग करता हूँ। समस्त प्राणी स्नान अङ्गप्रक्षालनादि, पान तथा अवगाहन कर तृप्त हों। मैं इस जल को सामान्यतः सभी प्राणियों के लिए दान करता हूँ। अपने-अपने कर्म से जो कोई मनुष्य अथवा प्राणी इस जल में प्राणत्याग करेंगे, मैं उनके पाप में लिप्त नहीं होऊँ। मेरी क्रिया सफल हो। इसके उपरान्त दक्षिणा तक कार्य कर शान्तिकर्म करने के उपरान्त ब्राह्मण, कौल तथा भूखे व दरिद्रों को भोजन कराए। हे शिवे! समस्त जलाशयों की प्रतिष्ठा का यही क्रम है ।

हरि०–ननु साधकाग्रणीः किं प्रार्थयेदित्याकाङ्क्षायामाह सुप्रीयन्तामित्यादिभिः ।

तडागादौ च कर्तव्या नागस्तम्भजलेचराः ।।१६६।।

पद्मा–तडागादि की प्रतिष्ठा के समय यह विशेष कर्तव्य है उसमें, नाग, स्तम्भ जलचर का निर्माण करना चाहिए ।

हरि०–तड़ागादिप्रतिष्ठायां यो विशेषस्तमाह तडागादौ चेत्यादिभिः। तडागादौ संस सति नागस्तम्भो जलेचराश्च कर्तव्याः।।१६६।।

मीनमण्डूकमकरकूर्माश्च जलजन्तवः ।
कार्या धातुमयाश्चैते कर्तृवित्तनुसारतः ।।१६७।।

पद्मा–मीन (मछली) मण्डूक (मेढक) मकर (मगरमच्छ) तथा कूर्म (कछुवा)–ये सभी जलजन्तु कर्मकर्ता अपनी सम्पत्ति के अनुसार बनवाये ।

हरि०–ननु किं द्रव्यमयाः के वा जलजन्तवः कर्तव्या इत्यपेक्षायामाह मीनमण्ड-केत्यादिना ।।१६७।।

मत्स्यौ स्वर्णमयौ कुर्यात् मण्डूकावपि हेमजौ ।
राजतौ मकरौ कूर्ममिथुनं ताम्ररिन्तिकम् ।।१६८।।

पद्मा–दो मत्स्य तथा दो मण्डूक स्वर्ण के बनवाए। दो मकर रजत (चाँदी) के बनवाए दो कूर्म ताँबे अथवा पीतल के बनवाए ।

हरि०–ननु किं धातुमयाः कति वा मीनादयो जलजन्तवे। विधातव्या इत्याकाङ्क्षायामाह मत्स्यौ स्वर्णमयावित्यादिना।।१६८।।

एतैर्जलचरैः सार्धं तडागमपि दीर्घिकाम् ।

सागरञ्च, समुत्सृज्य प्रार्थयन्नागमर्चयेत् ।।१६९।।

पद्या–इन समस्त जलचर जन्तुओं के सहित तड़ाग, दीर्घिका (बावड़ी) और सागर का उत्सर्ग कर ''**सुप्रीयन्तां०**'' इत्यादि श्लोकों से प्रार्थना करे, तदुपरान्त नागपूजा करे।

हरि०–**एतैरित्यादि**। एतैर्मीनादिभिर्जलचरैः सार्धं तडागं दीर्घिकां सागरञ्चापि समुत्सृज्य नागं प्रार्थयन् सन अर्चयेत् ।।१६९।।

अनन्तो वासुकिः पद्मो महापद्मश्च तक्षकः ।

कुलीरः कर्कटः शङ्खः पाथसां रक्षका इमे ।।१७०।।

पद्या–अनन्त, वासुकी, पद्म, महापद्म, तक्षक, कुलीर, कर्कट तथा शंख–ये जल के रक्षक हैं ।

हरि०–ननु कस्मिन् स्थाने कं वा नागमभ्यर्चयेत् किं वा प्रार्थयेदित्यपेक्षायामाह अनन्त इत्यादिना। इमेऽनन्तादयोऽष्टौ नागाः पाथसां जलानां रक्षका भवन्तीत्यन्वयः।।१७०।।

इत्यष्टौ नागनामानि लिखित्वाऽश्वत्थपल्लवे ।

स्मृत्वा प्रणवगायत्र्यौ घटमध्ये विनिःक्षिपेत ।।१७१।।

पद्या–पीपल के आठ पत्तों के ऊपर इन आठ नागों के नाम लिखकर प्रणव तथा गायत्री का स्मरण करते हुए उन पत्तों को घड़े के बीच में डाल दे ।

हरि०–**इत्यष्टावित्यादि**। इत्येतान्यनन्तादीन्यष्टौ नागनामान्यश्वत्थपल्लवे लिखित्वा प्रणवगायत्र्यौ स्मृत्वा घटमध्ये विनिःक्षिपेत्।।१७१।।

चन्द्रार्कौ साक्षिणौ कृत्वा विलोड्यैकं समुद्धरेत् ।

तत्रोत्तिष्ठति यो नागस्तं कुर्यात्तोयरक्षकम् ।।१७२।।

पद्या–चन्द्रमा तथा सूर्य को साक्षी कर घड़े के भीतर इन पत्तों को घुमाकर फिर उनमे से एक पत्ता निकाले। उस पत्ते में जिस नाग का नाम हो उसी को जल का रक्षक बनाए।

हरि०–चन्द्रार्कावित्यादि ततश्चन्द्रार्कौ साक्षिणौ कृत्वा लिखितनागनामान्यश्वत्थपल्लवानि विलोड्यैकं लिखितनागनामकमश्वत्थपल्लवं समुद्धरेत्। तत्र यो नाग उत्तिष्ठति तं नागं तोयरक्षकं कुर्यात्।।१७२।।

स्तम्भमेकं समानीय विंशहस्तमितं शुभम् ।

सरलं दारुजं तैलैरुक्षितञ्च हरिद्रया ।।१७३।।

स्नापयेत्तीर्थतोयेन व्याहृत्या प्रणवेन च ।

तत्र ह्रीश्रीक्षमाशान्तिसहितं नागमर्चयेत् ।।१७४।।

पद्या–इसके पश्चात् बीस हाथ लम्बा, शुभ व सीधी लकड़ी का एक स्तम्भ लाकर उसमें तेल व हल्दी लगाएँ। तदुपरान्त प्रणव और व्याहृति का पाठ करते हुए स्तम्भ को स्नान कराएं। उस स्नान कराए गए स्तम्भ में ह्री, श्री, क्षमा और शान्ति के साथ नाग का पूजन करें ।

हरि०—स्तम्भमित्यादि। विंशहस्तमितं विंशतिहस्तपरिमितं सरलमवक्रं दारुजं काष्ठसम्भवम् तैलैर्हरिद्रया चोक्षितमभ्यक्तं शुभमेकं स्तम्भं समानीय व्याहृत्या प्रणवेन च तीर्थतोयेन स्नापयेत्। तत्र स्नापिते स्तम्भे ह्रीश्रीक्षमाशान्तिसहितं नागमर्चयेत् ॥१७३-१७४॥

नाग त्वं विष्णुशय्याऽसि महादेवविभूषणम् ।
स्तम्भमेनमधिष्ठाय जलरक्षां कुरुष्व मे ॥१७५॥

पद्मा—इसके पश्चात् प्रार्थना करे—हे नाग। तुम भगवान विष्णु की शय्या और भगवान् शंकर के आभूषण हो। तुम इस स्तम्भ में स्थान बनाकर मेरे जल की रक्षा करो।

हरि०—नाग त्वमित्यादि। हे नाग त्वं विष्णुशय्याऽसि महादेव विभूषणञ्चाऽसि एनं स्तम्भमधिष्ठाय मे मम जलरक्षां कुरुष्व॥१७५॥

इति प्रार्थ्य ततो नागस्तम्भं मध्येजलाशयम् ।
समारोप्य तडागञ्च कर्ता कुर्यात् प्रदक्षिणम् ॥१७६॥

पद्मा—इस प्रकार नाग से प्रार्थना करने के पश्चात् उस नागाधिष्ठित स्तम्भ को कर्मकर्ता जलाशय में गाड़कर तडाग की प्रदक्षिणा करे ।

हरि०—इतीत्यादि। इति नागं प्रार्थ्य ततो नागस्तम्भं मध्ये जलाशयं जलाशयस्य मध्ये समारोप्य कर्ता तडागप्रदक्षिणं कुर्यात्। मध्ये जलाशयमिति ''पारे मध्ये षष्ठ्या वा'' इत्यनेनाव्ययीभाव:॥१७६॥

यूपश्चेत् स्थापित: पूर्वं तदा नागं घटेऽर्चयन् ।
तज्जलं तत्र निःक्षिप्य शिष्टं कर्म समापयेत् ॥१७७॥

पद्मा—यदि यह स्तम्भ पहले से ही स्थापित हो तो नाग की पूजा घट में करके उस घट का जल जलाश्य में डालकर शेष कर्म समाप्त करे ।

हरि०—यूप इत्यादि। चेद्यदि यूपो नागस्तम्भ: पूर्वमेव स्थापितो भवेत् तदा नागं घटेऽर्चयन् कर्ता तज्जलं घटसम्बन्धिजलं तत्र तडागे निःक्षिप्य शिष्टमवशेषं कर्म समापयेत्॥१७७॥

एवं गृहप्रतिष्ठायां कृतसंकल्पको बुध: ।
वास्त्वादिवसुपूजान्तं पैत्रं कर्म च कूपवत् ॥१७८॥

पद्मा—बुद्धिमान् पुरुष इसी प्रकार घर की प्रतिष्ठा के समय संकल्प करके कुएँ की प्रतिष्ठा की भाँति वास्तुपूजा से वसुपूजा तक कर्म करके पितृकर्म करे।

हरि०—एवं जलाशयप्रतिष्ठाविधानमुक्त्वाऽथ गृहप्रतिष्ठाविधानमाह एवं गृहप्रतिष्ठायामित्यादिभि:॥१७८॥

विधायाऽत्र विशेषेण यजेद्देवं प्रजापतिम् ।
प्राजापत्यञ्च हवनं कुर्यात् साधकसत्तम: ॥१७९॥

पद्मा—श्रेष्ठ साधक विशेष प्रकार से देव प्रजापति का पूजन करे, तदुपरान्त प्राजापत्य होम करे। इसमे वरुण के स्थान पर प्रजापति की पूजा का विधान है ।

हरि०–अत्र गृहसंस्कारे ॥१७९॥

गृहं पूर्वोक्तमन्त्रेण प्रोक्ष्य गन्धादिनाऽर्चयन् ।
ईशानाभिमुखो भूत्वा प्रार्थयेद्विहिताञ्जलिः ॥१८०॥

पद्या–पहले कहे गए मन्त्र से गृह को प्रोक्षित करे तथा गन्धादि अर्पित कर ईशान कोण में मुख कर हाथ जोड़कर प्रार्थना करे॥१८०॥

हरि०–गृहमित्यादि। ततः पूर्वोक्तमन्त्रेण गृहं प्रोक्ष्याऽभिषिच्य गन्धादिना गृहमर्चयन् कर्ता ईशानाभिमुखो भूत्वा विहिताञ्जलिः सन् गृहं प्रार्थयेत्॥१८०॥

प्रजापतिपते गेह पुष्पमाल्यादिभूषितः ।
अस्माकं शुभवासाय सर्वथा सुखदो भव ॥१८१॥
ततस्तु दक्षिणां कृत्वा शान्त्याशीर्वादमाचरेत् ।
विप्रान् कुलीनान् दीनांश्च भोजयेदात्मशक्तितः ॥१८२॥

पद्या–"हे प्रजापति स्वामी के गृह! तुम पुष्पमाल्यादि से विभूषित होकर मेरे शुभ आवास के लिए सभी प्रकार से सुखदायक हो।" इसके उपरान्त दक्षिणा तक कर्म कर शान्ति और आशीर्वाद ग्रहण करे। तदुपरान्त अपनी क्षमता के अनुसार ब्राह्मण, कौल तथा दरिद्रों को भोजन कराए ।

हरि०–गृहं प्रति प्रार्थनामेवाह प्रजापतिपते इत्याद्येकेन। प्रजापतिः पतिर्यस्य स प्रजापतिपतिः तत्सम्बोधने प्रजापतिपते इति ॥१८१-१८२॥

अन्यार्थन्तु प्रतिष्ठा चेत् तद्वासायात्र योजयेत् ।
देवत्राकृतगेहस्य विधानं शृणु शैलजे ॥१८३॥

पद्या–हे शैलजे! यदि किसी अन्य के लिए ग्रह प्रतिष्ठा करनी हो तो संकल्प में "अमुकस्य वासाय" (अमुक के वास के लिए) ये शब्द जोड़ ले। देवता के लिए गृह की प्रतिष्ठा करे ।

हरि०–**अन्यार्थन्त्वित्यादि**। चेद्यद्यन्यार्थं गृहस्य प्रतिष्ठा विधीयते तदाऽत्र गृहप्रतिष्ठायां कर्तव्ये संकल्पे तद्वासायेति योजयेत्। हे शैलजे पार्वति देवत्राकृतगेहस्य देवताधीनकृतगृहस्य दानस्य विधानं त्वं शृणु॥१८३॥

इत्थं संस्कृत्य भवनं शङ्खतूर्यादिनिःस्वनैः ।
देवतासन्निधिं गत्वा प्रार्थयेद्विहिताञ्जलिः ॥१८४॥

पद्या–इस प्रकार गृहसंस्कार कर शंखतूर्यादि बजाकर देवता के पास जाकर हाथ जोड़कर प्रार्थना करे ।

हरि०–देवत्राकृतगेहदानविधानमेवाह इत्थमित्यादिभिः। इत्थं पूर्वोक्तविधानेन भवनं गृहं संस्कृत्य शङ्खतूर्यादिनिः स्वनैः सह देवता सन्निधिं गत्वा विहिताञ्जलिः सन् देवतां प्रार्थयेत् ॥१८४॥

उत्तिष्ठ देवदेवेश भक्तानां वाञ्छितप्रद ।
आगत्य जन्मसाफल्यं कुरु मे करुणानिधे ।।१८५।।

पद्मा–हे देवदेवेश! हे भक्तों को इच्छित फल देने वाले। हे करुणानिधे! आकर मेरे जन्म को सफल बनायें ।

हरि०–यत् प्रार्थयैत्तदाह उत्तिष्ठेत्यादिना॥१८५॥

इत्यभ्यर्थ्य गृहाभ्यर्णे देवमानीय साधकः ।
उपस्थाप्य गृहद्वारि पुरतो वाहनं न्यसेत् ।।१८६।।

पद्मा–इस प्रकार प्रार्थना कर साधक देवता को गृह के निकट लाकर घर के द्वार में स्थापित कर उसके सम्मुख भाग में वाहन को स्थापित करे ।

हरि०–इतीत्यादि। साधको जन इत्यभ्यर्थ्य गृहाभ्यर्णे गृहसमीपे देवमानीय गृहद्वार्युपस्थाप्य च तस्य पुरतोवाहन न्यसेत् स्थापयेत्॥१८६॥

त्रिशूलमथवा चक्रं विन्यस्य भवनोपरि ।
रोपयेन्मन्दिरेशाने सपातकं ध्वजं सुधीः ।।१८७।।
चन्द्रातपैः किङ्किणीभिः पुष्पस्रक्चूतपल्लवैः ।
शोभयित्वा गृहं सम्यक छादयेद्दिव्यवाससा ।।१८८।।

पद्मा–घर के ऊपर त्रिशूल अथवा चक्र स्थापित कर मन्दिर की ईशान दिशा में पताका से युक्त ध्वजा को लगाए। तदुपरान्त चन्द्रातप (चँदोवा), छोटी घण्टियाँ, पुष्पमाला आम्र (चूत) पल्लवो (पत्तों) से घर को विधिवत् सुशोभित कर दिव्यवस्त्रों से ढके ।

हरि०–त्रिशूलमित्यादि। सुधीर्जनो भवनोपरि त्रिशूलमथवा चक्रं विन्यस्य संस्थाप्य मन्दिरेशाने गृहेशानकोणे सपताकं पताकासहितं ध्वजं रोपयेत् ॥१८७-१८८॥

उत्तराभिमुखं देवं वक्ष्यमाणविधानतः ।
स्नापयेद्विहितैर्द्रव्यैस्तत्क्रमं वच्मि ते शृणु ।।१८९।।

पद्मा–देवता को उत्तरमुख स्थापित कर कही गई विधि के अनुसार विहित द्रव्यों से स्नान कराए। अब मैं स्नान का क्रम कहता हूँ, सुनो ।

हरि०–तत्क्रमम् वक्ष्यमाणेन विधानेन विहितैः द्रव्यैर्देवस्नापनस्य क्रमम्॥१८९॥

ऐं ह्रीं श्रीमिति मन्त्रान्ते मूलमन्त्रं समुच्चरन् ।
दुग्धेन स्नापयामि त्वां मातेव परिपालय ।।१९०।।

पद्मा–ऐं ह्रीं श्रीं इस मन्त्र के पश्चात् मूल मन्त्र का उच्चारण करके "**दुग्धेन स्नापयामि त्वां मातेव परिपालय**" अर्थात् मैं दुग्ध से तुम्हे स्नान कराता हूँ माता के समान मेरा पालन करो, मन्त्र को पढ़े। **ऐं ह्रीं श्रीं मूलं दुग्धेन स्नापयामि त्वां मातेव परिपालय** यह सम्पूर्ण मन्त्र होगा ।

हरि०–तत्क्रममेवाह ऐं ह्रीं श्रीमित्यादिभिः। ऐं ह्रीं श्रीमिति मन्त्रान्ते मूलमन्त्रं समुच्चरन् तदन्ते च "दुग्धेन स्नापयामि त्वां मातेव परिपालय" इति समुच्चरन् कर्ता पूर्व दुग्धेन देवं स्नापयेत्॥१९०॥

प्रोक्तबीजत्रयस्यान्ते तथा मूलं नियोजयन् ।
दध्ना त्वां स्नापयाम्यद्य भवतापहरो भव ।।१९१।।

पद्मा–पहले कहे गए तीन बीजों ऐं ह्रीं श्रीं - के अन्त में मूल मन्त्र का उच्चारण करके "दध्ना त्वां स्नापयाम्यद्य भवतापहरो भव" (अर्थात् मैं तुमको दही से स्नान कराता हूँ। तुम संसार के दुःख को दूर करो) इस मन्त्र से देवता को दही से स्नान कराए। सम्पूर्ण मन्त्र इस प्रकार होगा - **ऐं ह्रीं श्रीं मूलं दध्ना त्वां स्नापयाम्यद्य भवतापहरो भव ।**

हरि०–प्रोक्तेत्यादि। ततः परं प्रोक्तबीजत्रयस्यान्ते तथैव मूलं मन्त्रं विनियोजन् तदन्ते च "दध्ना त्वां स्नापयाम्यद्य भवतापहरो भव" इति समुच्चरन् कर्ता दध्ना देवं स्नापयेत्॥१९१॥

पुनर्बीजत्रयं मूलं सर्वानन्दकरेति च ।
मधुना स्नापितः प्रीतो मामानन्दमयं कुरु ।।१९२।।

पद्मा–पुनः "ऐं ह्रीं श्रीं" बीज का उच्चारण कर मूल मन्त्र का उच्चारण करे। इसके पश्चात् "सर्वानन्दकर" का उच्चारण कर "मधुना स्नापितः प्रीतो मामानन्दमयं कुरु" (अर्थात् मैं तुम्हें मधु से स्नान कराता हूँ, तुम प्रसन्न होकर मुझे आनन्दमय करो) इस मन्त्र से देवता को मधु से स्नान कराए। सम्पूर्ण मन्त्र इस प्रकार होगा–**ऐं ह्रीं श्रीं मूलं मधुना स्नापितः प्रीतो मामानन्दमयं कुरु ।**

हरि०–पुनरित्यादि। पुनः ऐं ह्रीं श्रीमिति बीजत्रयं समुच्चरन् तदन्ते मूलं मन्त्रं समुच्चरन् तदन्ते सर्वानन्दकरेति समुच्चरन् तदन्ते च "मधुना स्नापिता प्रीतो मामानन्दमयं कुरु" इति समुच्चरन् कर्ता मधुना देवं स्नापयेत्॥१९२॥

प्राग्वन्मूलं समुच्चार्य सावित्रीं प्रणवं स्मरन् ।
देवप्रियेण हविषा आयुः शुक्रेण तेजसा ।
स्नानं ते कल्पयामीश मामरोगं सदा कुरु ।।१९३।।

पद्मा–पहले के समान ऐं ह्रीं श्रीं, मूलमन्त्र, सावित्री (गायत्री) और प्रणव (ॐ) को स्मरण करे। इसके पश्चात् "देवप्रियेण हविषा आयुः शुक्रेण तेजसा स्नानान्ते कल्पयामीश मामरोगं सदा कुरु" (आयु, शुक्र और तेज की वृद्धि करने वाले देवताओं के प्रिय घी से तुमको स्नान कराता हूँ। हे ईश्वर! तुम हमें सदैव रोगहीन रखो) यह मन्त्र पढ़कर घी के द्वारा स्नान कराए। सम्पूर्ण मन्त्र इस प्रकार होगा - **ऐं ह्रीं श्रीं मूलं सावित्रीं ॐ देवप्रियेण हविषा आयुः शुक्रेण तेजसा। स्नानं ते कल्पयामीशः मामरोगं सदा कुरु ।**

हरि०–प्राग्वदित्यादि। प्राग्वदेव मूलं मन्त्रं समुच्चार्य ततः सावित्रीं गायत्रीं प्रणवमोङ्कारं च स्मरन् सन्

देवप्रियेण हविषा आयुः शुक्रेण तेजसा।
स्नानान्ते कल्पयामीश मामरोगं सदा कुरु''॥

इति स्मरन् कर्ता घृतेन देवं स्नापयेत्। आयुः शुक्रेण आयुः शुक्रवर्धकेन तेजसा तेजोवर्धकेन॥१९३॥

तद्वन्मूलञ्च गायत्रीं व्याहृतिं समुदीरयन्।
देवेश शर्करातोयैः स्नातो मे यच्छ वाञ्छितम् ॥१९४॥

पद्मा–इसी प्रकार ऐं ह्रीं श्रीं मूल मन्त्र, गायत्री व्याहृति का उच्चारण करके ''देवेश शर्करातोयैः स्नातो मे यच्छ वाञ्छितम्'' (हे देवेशः! शर्करा के जल से स्नान कर मुझे मेरा इच्छित फल प्रदान करो) इस मन्त्र से देवता को शर्कराजल से स्नान कराए। सम्पूर्ण मन्त्र इस प्रकार होगा - **ऐं ह्रीं श्रीं मूलं व्याहृतिं गायत्रीं देवेश! शर्करातोयैः स्नातो मे यच्छ वाञ्छितम्।**

हरि०–तद्वदित्यादि। तद्वदेव मूलमन्त्रं गायत्रीं व्याहृतिञ्च समुदीरयन् ततो ''देवेश शर्करातोयैः स्नातो मे यच्छ वाञ्छितम्'' इति च समुदीरयन् कर्ता शर्करातोयैर्देवं स्नापयेत्॥१९४॥

तथा मूलं समुच्चार्य गायत्रीं वारुणं मनुम्।
विधात्रा निर्मितैर्दिव्यैः प्रियैः स्निग्धैरलौकिकैः।
नारिकेलोदकैः स्नानं कल्पयामि नमोऽस्तु ते ॥१९५॥

पद्मा–इस प्रकार ऐं ह्रीं श्रीं मूल तथा गायत्री का उच्चारण करके वारुण बीज (वं) का उच्चारण करे। तत्पश्चात् ''विधात्रा निर्मितै दिर्व्यैः प्रियेः स्निग्धरलौकिकः नारिकेलोदकैः स्नानं कल्पयामि नमोऽस्तुते (अर्थात् विधाता द्वारा निर्मित दिव्य, प्रिय, स्निग्ध तथा अलौकिक नारियल के जल से तुम्हे स्नान कराता हूँ, तुम्हे नमस्कार है) इस मन्त्र से देवता को नारियल जल से स्नान कराए। सम्पूर्ण मन्त्र इस प्रकार से होगा - **ऐं ह्रीं श्रीं मूलं गायत्रीं वं विधात्रा निर्मितैर्दिव्यैः प्रियैः स्निग्धैरलौकिकं नारिकेलोदकैः स्नानं कल्पयामि नमोऽस्तुते।**

हरि०–**तथेत्यादि।** तथैव मूलं मन्त्रं गायत्रीं वारुणं मनुं वमिति मन्त्रं च समुच्चार्य ततः।

''विधात्रा निर्मितैर्दिव्यैः प्रियैः स्निग्धैरलौकिकः।
नारिकेलोदकैः स्नानं कल्पयामि नमोऽस्तु ते॥''

इति समुच्चरन् कर्ता नारिकेलजलैर्देवं स्नापयेत्॥१९५॥

गायत्र्या मूलमन्त्रेण स्नापयेदिक्षुजै रसैः ॥१९६॥

पद्मा–तत्पश्चात् गायत्री व मूलमन्त्र कर उच्चारण का ईख के रस से स्नान कराए। मन्त्र इस प्रकार होगा - **गायत्रीं मूलं इक्षुजैः रसैः स्नापयामि।**

हरि०–ततो गायत्र्या मूलमन्त्रेण च इक्षुजैः रसैर्देवं स्नापयेत्॥१९६॥

कामबीजं तथा तारं सावित्रीं मूलमीरयन् ।
कर्पूरागुरुकाश्मीरकस्तूरीचन्दनोदकैः ।
सुस्नातो भव सुप्रीतो भुक्तिमुक्ती प्रयच्छ मे ।।१९७।।

पद्मा–कामबीज (क्लीं) तथा तार (ॐ) का उच्चारण करके गायत्री व मूलमन्त्र का उच्चारण करे फिर "कर्पूरागुरुकाश्मीरकस्तूरीचन्दनोदकैः। सुस्नातो भव सुप्रीतो भुक्तिमुक्ती प्रयच्छ मे" (अर्थात् कर्पूर, अगुरु, कुंकुम, कस्तूरी और चन्दनयुक्त जल से उत्तम स्नान कर प्रसन्न हों तथा मुझे भोग व मोक्ष प्रदान करें) इस मन्त्र से सुगन्धित जल से देवता को स्नान कराएं। सम्पूर्ण मन्त्र इस प्रकार है - **क्लीं ॐ गायत्रीं मूलं कर्पूरागुरुकाश्मीर कस्तूरीचन्दनोदकैः सुस्नातो भव सुप्रीतो भुक्तिमुक्ती प्रयच्छ मे ।**

हरि०–**कामबीजमित्यादि**। कामबीजं क्लीमिति बीजं तथा तारमोंकारं सावित्रीं गायत्रीं मूलं मन्त्रं चेरयन्नुच्चरन् ततः–

"कर्पूरागुरुकाश्मीरकस्तूरीचन्दनोदकैः ।
सुस्नातो भव सुप्रीतो भुक्तिमुक्ती प्रयच्छ मे ॥

इति चोदीरयन् कर्ता कर्पूरादिवासितैर्जलैर्देवं स्नापयेत्। काश्मीरम् कुङ्कुमम्।।१९७।।

इत्यष्टकलशैः स्नानं कारयित्वा जगत्पतिम् ।
गृहाभ्यन्तरमानीय स्थापयेदासनोपरि ।।१९८।।

पद्मा–इस प्रकार आठ कलशों से जगत्पति को स्नान कराकर घर में ले जाकर आसन के ऊपर स्थापित करे ।

हरि०–**इतीत्यादि**। इत्यनेनैव विधानेन क्रमेण चाष्टकलशैरष्टकलशपरिमितैर्दुग्धादिभिः स्नानं कारयित्वा गृहाभ्यन्तरमानीय च जगत्पतिं देवमासनोपरि स्थापयेत्।।१९८।।

स्नापनार्हा न चेदर्चा तद्यन्त्रे वापि तन्मनौ ।
शालग्रामशिलायां वां स्नापयित्वा प्रपूजयेत् ।।१९९।।

पद्मा–देवप्रतिमा यदि स्नान कराने योग्य न हो, तो उस देवता को यन्त्र में, देवता के मूलमन्त्र में अथवा शालग्राम शिला में स्नान कराकर पूजन करे ।

हरि०–**स्नापनार्हेत्यादि**। चेद्यद्यर्चा देवताप्रतिमा स्नापनार्हा स्नापनयोग्या न भवेत् तदा तद्यन्त्रे देवतायन्त्रे तन्मनौ तद्देवतामन्त्रे वा शालग्रामशिलायां वा स्नापयित्वा देवं प्रपूजयेत्।।१९९।।

अशक्तौ मूलमन्त्रेण स्नापयेच्छुद्धपाथसाम् ।
अष्टभिः कलशैर्यद्वा पञ्चभिः सप्तभिर्यथा ।।२००।।
घटप्रमाणं प्रागेव कथितं चक्रपूजने ।
सर्वत्रागमकृत्येषु स एव विहितो घटः ।।२०१।।

पद्मा–दुग्धमधु अदि से स्नान कराने में यदि व्यक्ति अशक्त हो, तो अपनी क्षमता के अनुसार शुद्ध जल से भरे हुए आठ, सात अथवा पाँच कलश द्वारा स्नान कराए। चक्र पूजा

के प्रसङ्ग में घट का जो परिमाण कहा गया है आगम में कहे गए समस्त कार्यों में उसी प्रकार का घट विहित है ।

हरि०–अशक्ताविल्यादि । दुग्धादिभिः देवतायाः स्नापनेऽशक्तौ सत्यां मूलमन्त्रेण शुद्धपाथसां शुद्धानां जलानामष्टभिः सप्तभिः पञ्चभिर्वा कलशैर्यथावद्देवं स्नापयेत् ॥२००-२०१॥

ततो यजेन्महादेवं स्वस्वपूजाविधानतः ।
तत्रोपचारान् वक्ष्यामि शृणु देवि परात्परे ।।२०२।।

पद्मा–हे देवि! हे परात्परे! अपने-अपने पूजा विधान के महादेव की पूजा करे। इस पूजा में जिन वस्तुओं की आवश्यकता होती है, उन्हें मैं कहता हूँ सुनो॥२०२॥

हरि०–महादेवम् महान्तं देवम्। तत्र देवयजने॥२०२॥

आसनं स्वागतं पाद्यमर्घ्यमाचमनीयकम् ।
मधुपर्कस्तथाचम्यं स्नानीयं वस्त्रभूषणे ।।२०३।।
गन्धपुष्पे धूपदीपौ नैवेद्यं वन्दनं तथा ।
देवार्चनासु निर्दिष्टा उपचाराश्च षोडश ।।२०४।।

पद्मा–आसन, स्वागत, पाद्य, अर्घ्य, आचमनीय, मधुपर्क, पुनः आचमनीय, स्नानीय वस्त्र, आभूषण, गन्ध, पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य तथा वन्दना नमस्कार देवता की पूजा में –ये सोलह उपचार कहे गए हैं ।

हरि०–उपचारानेवाह आसनमित्यादिभिः। निर्दिष्टाः कथिताः॥२०३-२०४॥

पाद्यमर्घ्यञ्चाचमनं मधुपर्काचमौ तथा ।
गन्धादिपञ्चकं चैते उपचारा दश स्मृताः ।।२०५।।
गन्धपुष्पे धूपदीपौ नैवेद्यञ्चापि कालिके ।
पञ्चोपचाराः कथिता देवतायाः प्रपूजने ।।२०६।।

पद्मा–पाद्य, अर्घ्य, आचमनीय, मधुपर्क, पुनः आचमनीय, गंध, पुष्प, धूप, दीप तथा नैवेद्य–इनको दशोपचार कहा गया है। हे कालिके! गन्ध, पुष्प, धूप दीप, तथा नैवेद्य–इनको पञ्चोपचार कहते हैं ।

हरि०–उपचारप्रकारभेदमाह पाद्येत्यादिद्वयेन। स्पष्टम्॥२०५-२०६॥

अस्त्रेणाऽर्घ्याम्भिसा द्रव्यं प्रोक्ष्य धेनुं प्रदर्शयन्।
सम्पूज्य गन्धपुष्पाभ्यां द्रव्याख्यानं समुल्लिखेत् ।।२०७।।
वक्ष्यमाणमनुं स्मृत्वा मूलञ्च देवताभिधाम् ।
सचतुर्थीं समुच्चार्य त्यागार्थं वचनं पठेत् ।।२०८।।

पद्मा–'फट्' मन्त्र का उच्चारण कर अर्घ्यपात्र के जल से अभिषेक कर धेनुमुद्रा दिखाकर गन्ध पुष्प से पूजन कर देय द्रव्य का नाम ले। तत्पश्चात् आगे कहे गए मन्त्र तथा मूलमन्त्र का स्मरण करते हुए चतुर्थी विभक्तियुक्त देवता के नाम का उच्चारण कर त्यागार्थ वचन (नमः) का पाठ करे ।

हरि०–अथासनादिसमर्पणविधिमाह अस्त्रेणेत्यादिद्वयेन। अस्त्रेणफडितिमन्त्रेणा-र्घ्याम्भसाऽर्घ्यजलेन द्रव्यमासनादिकं प्रोक्ष्याऽभिषिच्य तदुपरि धेनुं मुद्रां प्रदर्शयन् साधको गन्धपुष्पाभ्यां द्रव्य सम्पूज्य द्रव्याख्यानं द्रव्यनाम समुल्लिखेदुच्चारयेत्। वक्ष्यमाणं मनुं स्मृत्वा मूलं मन्त्रं सचतुर्थीं देवताभिधां च समुच्चार्य त्यागार्थ वचनं पठेत् ॥२०७-२०८॥

निवेदनविधिः प्रोक्तो देवे देयेषु वस्तुषु ।
अनेन विधिना विद्वान् द्रव्यं दद्याद्दिवौकसे ।।२०९।।
आद्यार्चनविधौ पूर्वं पाद्यार्घ्यादिनिवेदनम् ।
अर्पणं कारणादीनां सर्वमेव प्रदर्शितम् ।।२१०।।
अनुक्तमन्त्रा ये तत्र तानेवात्र शृणु प्रिये ।
आसनाद्युपचाराणां प्रदाने विनियोजयेत् ।।२११।।

पद्या–देवता को वस्तु प्रदान करने की विधि आपने कही। विद्वान मनुष्य इस विधि के अनुसार देवता को द्रव्य प्रदान करे। सर्वप्रथम आद्या काली की पूजा विधि में पाद्य, अर्घ्यादि देने और कारणादि (मद्यादि) के अर्पण करने की विधि कही जा चुकी है। हे प्रिये! वहाँ जो मन्त्र नहीं कहे गए हैं उन्हें कहता हूँ सुनो। आसनादि उपचारों के देने में इन्हीं मन्त्रों का प्रयोग करे ।

हरि०–दिवौकसे देवाय॥२०९-२११॥

सर्वभूतान्तरस्थाय सर्वभूतान्तरात्मने ।
कल्पयाम्युपवेशार्थमासनं ते नमो नमः ।।२१२।।

पद्या–समस्त प्राणियों के अन्तर में स्थित तथा समस्त प्राणियों के अन्तरात्मास्वरूप तुम्हें बैठने के लिए आसन प्रदान करता हूँ। तुम्हें बारम्बार प्रणाम करता हूँ ।

हरि०–अद्यार्चनविधावनुक्तान्मन्त्रानेव क्रमेणाह सर्वभूतान्तरस्थायेत्यादि। हे देव! सर्वेषां भूतानामन्तरे तिष्ठतीति सर्वभूतान्तरस्थस्तस्मै सर्वभूतान्तरस्थाय। सर्वेषां भूतानामन्तरात्मने। ते तुभ्यमुपवेशार्थमासनं कल्पयामि समर्पयामि। ते तुभ्यं नमो नमोऽस्तु अनेन मन्त्रेण देवायाऽऽसनं दद्यात्॥२१२॥

उक्तक्रमेण देवेशि प्रदायाऽऽसनमुत्तमम् ।
कृताञ्जलिपुटो भूत्वा स्वागतं प्रार्थयेत्ततः ।।२१३।।

पद्या–हे देवेशि! उक्त क्रम से उत्तम आसन प्रदान कर हाथ जोड़कर स्वागत की प्रार्थना करे ।

हरि०–उक्तेत्यादि। हे देवेशि! उक्तक्रमेश देवायोत्तममासनं प्रदाय ततः कृताञ्जलिपुटो भूत्वा देवाः स्वाभीष्टसिद्धयर्थमित्यादिवचनद्वयमुदीरयन् अमुकदेव त्वया स्वागतं सुस्वागतमिति स्वागतं भक्त्या देवं प्रार्थयेत्॥२१३॥

देवाः स्वाभीष्टसिद्ध्यर्थं यस्य वाञ्छन्ति दर्शनम् ।
सुस्वागतं स्वागतं मे तस्मै ते परमात्मने ।।२१४।।

पद्या–सभी देवगण अपने अभीष्ट की सिद्धि के लिए जिनके दर्शन की इच्छा रखते हैं, उन तुम परमात्मा का मैं स्वागत करता हूँ।

हरि०–देवा इत्यादि। हे परमात्मन्! यस्य भवतो दर्शनं देवा अपि स्वाभीष्टसिद्ध्यर्थं वाञ्छन्ति तेन त्वया मे मदर्थं स्वागतं सुस्वागतम् तस्मै परमात्मने ते तुभ्यं नमः॥२१४॥

अद्य मे सफलं जन्म जीवनं सफलाः क्रियाः।
स्वागतं यत्त्वया तन्मे तपसां फलमागतम् ॥२१५॥

पद्या–आज मेरा जन्म, जीवन और सब क्रिया सार्थक हुई; क्योंकि तुम्हारे स्वागत के रूप में मेरी तपस्या का फल ही मुझे प्राप्त हुआ है।

हरि०–अद्येत्यादि। हे देव यद्यतस्त्वया स्वागतं तत् ततो हेतोरद्य मे मम जन्म जीवनञ्च सफलं जातम्। क्रिया अपि सफला जाताः। मे मम तपसामपि फलमागतम्॥२१५॥

देवमामन्त्र्य संप्रार्थ्य स्वागतप्रश्नमम्बिके।
विहितं पाद्यमादाय मन्त्रमेनमुदीरयेत् ॥२१६॥

पद्या–हे अम्बिके! इस प्रकार स्वागत प्रदान कर देवता को आमंत्रित कर प्रार्थना करे और विधिपूर्वक पाद्य ग्रहण करके आगे कहा गया मन्त्र पढ़े।

हरि०–देवमित्यादि। हे अम्बिके देवमामन्त्र्य सम्बोध्य उक्तमन्त्रद्वयमुदीरयन् स्वागतप्रश्नं सम्प्रार्थ्य विहितं पाद्यमादाय गृहीत्वा एतं मन्त्रमुदीरयेद्वदेत् ॥२१६॥

यत्पादजलसंस्पर्शाच्छुद्धिमाप जगत्त्रयम्।
तत्पादाब्जप्रोक्षणार्थं पाद्यन्ते कल्पयाम्यहम् ॥२१७॥

पद्या–विहित पाद्य जल लेकर कहे - जिन चरणों के जल के स्पर्श से तीनों लोक शुद्ध हो जाता है, उन तुम्हारे चरणों के धोने के लिए मैं तुम्हे पाद्य प्रदान करता हूँ।

हरि०–यं मन्त्रमुदीरयेत्तमाह यत्पादजलेति। हे परमेश्वर यत्पादजलसंस्पर्शाज्जगत्त्रयं शुद्धिमाप जगाम तत्पादाब्जप्रोक्षणार्थं ते तुभ्यं पाद्यमहं कल्पयामि समर्पयामि इमं मन्त्रमुदीर्य देवाय पाद्यं दद्यात्॥२१७॥

परमानन्दसन्दोहो जायते यत्प्रसादतः।
तस्मै सर्वात्मभूताय आनन्दार्घ्यं समर्पये ॥२१८॥

पद्या–जिसकी कृपा से परमानन्द के समूह उत्पन्न होते हैं। उस सर्वात्मा के लिए मैं यह आनन्दार्घ्य समर्पित करता हूँ।

हरि०–परमानन्दसन्दोह इत्यादि। परमानन्दसन्दोहः परमानन्दसमूहः। अनेन मन्त्रेण देवायाऽर्घ्यं दद्यात्॥२१८॥

जातीलवङ्गकक्कोलैर्जलं केवलमेव वा।
प्रोक्षितार्चितमादाय मन्त्रेणाऽनेन चार्पयेत् ॥२१९॥

पद्या–जायफल, लवङ्ग (लौंग), कक्कोल आदि के द्वारा सुगन्धित जल से अथवा केवल शुद्ध जल लेकर प्रोक्षित और पूजित कर कहे गए मन्त्र से अर्पित करे।

हरि०–जातीत्यादि। प्रोक्षितमर्चितं च जातीलवङ्गकक्कोलैर्वासितं जलं केवलमेव वा जलमादायाऽनेन वक्ष्यमाणेन मन्त्रेण देवाय अर्पयेत्॥२१९॥

यदुच्छिष्टमुपस्पृष्टं शुद्धिमेत्यखिलं जगत् ।
तस्मै मुखारविन्दाय आचामं कल्पयामि ते ॥२२०॥

पद्या–जिसके जूठन के स्पर्श से सम्पूर्ण जगत् शुद्धि को प्राप्त होता है, तुम्हारे उसी मुखकमल के लिए मैं आचमन प्रदान करता हूँ।

हरि०–तमेव मन्त्रमाह यदुच्छिष्टमिति। एति प्राप्नोति। अनेन मन्त्रेणाऽऽचमनीयं देवतामुखे दद्यात्॥२२०॥

मधुपर्कं समादाय भक्त्याऽनेन समर्पयेत् ॥२२१॥

पद्या–तत्पश्चात् मधुपर्क ग्रहण कर इस मन्त्र द्वारा भक्तिपूर्वक समर्पित करे।

हरि०–ततो भक्त्या मधुपर्कं समादायाऽनेन वक्ष्यमाणेन मन्त्रेण देवाय समर्पयेत्॥२२१॥

तापत्रयविनाशार्थमखण्डानन्दहेतवे ।
मधुपर्कं ददाम्यद्य प्रसीद परमेश्वर ॥२२२॥

पद्या–हे परमेश्वर! तुम अखण्ड आनन्द के कारण हो। आध्यात्मिक, आधिदैविक तथा आधिभौतिक–इन तीन पापों के विनाश के लिए मैं तुमको मधुपर्क प्रदान करता हूँ, तुम प्रसन्न होओ।

हरि०–ततो भक्त्या मधुपर्कं समादायाऽनेन वक्ष्यमाणेन मन्त्रेण देवाय समर्पयेत्॥२२२॥

अशुचिः शुचितामेति यत्स्पृष्टस्पर्शमात्रतः ।
तस्मिंस्ते वदनाम्भोजे पुनराचमनीयकम् ॥२२३॥

पद्या–जिसकी स्पर्श की हुई वस्तु का स्पर्श करने से अपवित्र वस्तु भी तत्क्षण पवित्र हो जाती है, तुम्हारे उसी मुखकाल में पुनराचमनीय प्रदान करता हूँ॥२२३॥

हरि०–ततः अशुचिः शुचितामेतीत्यादिना मन्त्रेण पुनर्देवतामुखे आचमनीयं दद्यात् ॥२२३॥

स्नानार्थं जलमादाय प्राग्वत् प्रोक्षितमर्चितम् ।
निधाय देवपुरतो मन्त्रमेनमुदीरयेत् ॥२२४॥

पद्या–तत्पश्चात् स्नान हेतु जल लेकर पहले के समान प्रोक्षित और पूजित कर देवता के सम्मुख रखकर मन्त्र पढ़े।

हरि०–स्नानार्थमित्यादि। ततः प्राग्वत् प्रोक्षितमर्चितं च स्नानार्थं जलमादाय देवपुरतो निधाय संस्थाप्य चैनं मन्त्रमुदीरयेत्॥२२४॥

यत्तेजा जगद्व्याप्तं यतो जातमिदं जगत् ।
तस्मै ते जगदाधार स्नानार्थं तोयमर्पये ॥२२५॥

स्नाने वस्त्रे च नैवेद्य दद्यादाचमनीयकम् ।
अन्यद्रव्यप्रदानान्ते दत्तातोयं सकृत सकृत् ।।२२६।।
वस्त्रमानीय देवाग्रे शोधितं पूर्ववर्त्मना ।
धृत्वा कराभ्यामुत्तोल्य पठेदेनं मनुं सुधीः ।।२२७।।

पद्मा–जिनके तेज से यह सम्पूर्ण जगत् व्याप्त है, जिनसे यह जगत् उत्पन्न हुआ है, हे जगदाधार! उन्हीं तुमको स्नान के लिए जल प्रदान करता हूँ। स्नान, वस्त्र तथा नैवेद्य प्रदान करने के उपरान्त आचमनीय प्रदान करना चाहिए। अन्य द्रव्य प्रदान करने के उपरान्त एक-एक बार जल प्रदान करना चाहिए। ज्ञानी मनुष्य देवता के समक्ष पहले कही हुई विधि के अनुसार दो शुद्ध वस्त्र लाकर दोनों हाथों से उठाकर मन्त्र पढ़े।

हरि०–यं मन्त्रमुदीरयेत्तमाह यत्तेजसा जगद्व्याप्तमिति। अनेन मन्त्रेण देवाय वस्त्रे दद्यात् ॥२२५-२२७॥

सर्वावरणहीनाय मायाप्रच्छन्नतेजसे ।
वाससी परिधानाय कल्पयामि नमोऽस्तुते ।।२२८।।
नानाभरणमादाय स्वर्णरौप्यादिनिर्मितम् ।
प्रोक्ष्याऽर्चयित्वा देवाय दद्यादेनं समुच्चरन् ।।२२९।।

पद्मा–सभी प्रकार के आवरण से रहित, माया से छिपे हुए तेजवाले तुम्हारे लिए उत्तरीय के साथ वस्त्र प्रदान करता हूँ, तुम्हें नमस्कार है। इसके उपरांत स्वर्ण एवं रजत (चाँदी) से निर्मित विभिन्न प्रकार के आभूषण लेकर प्रोक्षण करके पूजा करे। कहे गए मन्त्र से देवता को वस्त्र प्रदान करे ।

हरि०–यं मनुं पठेत् तमाह सर्वावरणहीनायेति। अनेन मन्त्रेण देवाय वस्त्रे दद्यात् ॥२२८-२२९॥

विश्वाभरणभुताय विश्वशोभैकयोनये ।
मायाविग्रहभूषार्थं भूषणानि समर्पये ।।२३०।।

पद्मा–जगत् के आभूषणस्वरूप एवं जगत् की शोभा के एकमात्र कारण, तुम्हारे मायामय शरीर के शृङ्गार के लिए आभूषण समर्पित करता हूँ।

हरि०–यं मन्त्रं समुच्चरन् देवाय भूषणानि दद्यात् तमेव मन्त्रमाह विश्वाभरणभुतायेति॥२३०॥

गन्धतन्मात्रया सृष्टा येन गन्धधरा धरा ।
तस्मै परात्मने तुभ्यं परमं गन्धमर्पये ।।२३१।।

पद्मा–जिनके द्वारा गन्धतन्मात्रा से गन्धवती पृथ्वी की रचना की गयी है, उन्हीं परात्मारूप तुम्हें परमगन्ध प्रदान करता हूँ।

हरि०–**गन्धतन्मात्रयेति**। धरा पृथ्वी। अनेन मन्त्रेण देवाय गन्धं दद्यात्॥२३१॥

पुष्पं मनोहरं रम्यं सुगन्धं देवनिर्मितम् ।
मया निवेदितं भक्त्या पुष्पमेतत् प्रगृह्यताम् ।।२३२।।

पद्या–देवताओं द्वारा निर्मित सुन्दर, मनोहर, सुगन्धित इस पुष्प को भक्तिपूर्वक प्रदान करता हूँ, इसे तुम स्वीकार करो ।

हरि०–पुष्पमित्यादिना मन्त्रेण देवाय पुष्पं दद्यात्॥२३२॥

वनस्पतिरसो दिव्यो गन्धाढ्यः सुमनोहरः ।
आघ्रेयः सर्वभूतानां धूपो घ्राणायतेऽर्प्यति ।।२३३।।

पद्या–वनस्पति के दिव्यरस से निर्मित, गन्धयुक्त, अत्यन्त मनोहर, सभी प्राणियों के सूँघने योग्य धूप, तुम्हारे सूँघने के लिए प्रदान करता हूँ ।

हरि०–वनस्पतिरस इत्यादि। वनस्पतिरसः वृक्षविशेषरसः। अनेन मन्त्रेण देवाय धूपं दद्यात्॥२३३॥

सुप्रकाशो महादीप्तः सर्वतस्तिमिरापहः ।
सबाह्याभ्यन्तरज्योतिर्दीपोऽयं प्रतिगृह्यताम् ।।२३४।।

पद्या–सुन्दर प्रकाशवाला, अत्यन्त ही दीप्तिवान, सभी दिशाओं का अन्धकार दूर करने वाला, बाह्य एवं अन्तर को प्रकाशित करने वाला यह दीपक तुम ग्रहण करो ।

हरि०–सुप्रकाश इत्यादिमन्त्रेण देवाय दीपं दद्यात्॥२३४॥

नैवेद्यं स्वादुसंयुक्तं नानाभक्ष्यसमन्वितम् ।
निवेदयामि भक्त्येदं जुषाण परमेश्वर! ।।२३५।।

पद्या–हे परमेश्वर! इस नैवेद्य में नानाप्रकार के भक्ष्य पदार्थ है। यह श्रेष्ठ एवं अत्यन्त ही स्वादिष्ट है। मैं भक्तिपूर्वक इसे निवेदित करता हूँ। तुम इसका आहार करो ।

हरि०–नैवेद्यमित्यादिना देवाय नैवेद्यं दद्यात्॥२३५॥

पानार्थं सलिलं देव! कर्पूरादिसुवासितम् ।
सर्वतृप्तिकरं स्वच्छमर्पयामि नमोऽस्तुते ।।२३६।।
ततः कर्पूरखदिरलवङ्गैलादिभिर्युतम् ।
ताम्बूलं पुनराचम्यं दत्त्वा वन्दनमाचरेत् ।।२३७।।
उपचाराधारदाने साधारं द्रव्यमुल्लिखेत् ।
दद्याद्वा पृथगाधारं तत्तन्नाम समुच्चरन् ।।२३८।।
इत्यमर्चितदेवाय दत्त्वा पुष्पाञ्जलित्रयम् ।
साच्छादनं गृहं प्रोक्ष्य पठेदेनं कृताञ्जलिः ।।२३९।।

पद्या–हे देव! कर्पूरादि की सुगन्ध से सुगन्धित पीने का जल निर्मल एवं पूर्णतृप्तिदायक है। मैं यह पीने के लिए तुमको अर्पित करता हूँ, तुम्हें नमस्कार है। इसके पश्चात् कर्पूर, खैर (कत्था), इलायची, लवंगादि के साथ ताम्बूल (पान) और पुनराचमनीय देकर

नमस्कार करे। उपचार के साथ यदि आधार दिया जाए तो आधार के साथ द्रव्य का नाम ले अथवा समस्त आधारों का नाम लेकर पृथक् आधार प्रदान करे। इस प्रकार पूजित देवता को तीन पुष्पाञ्जलियाँ प्रदान कर आच्छादनयुक्त गृह का प्रोक्षण करके हाथ जोड़कर प्रार्थना करे।

हरि०—पानार्थं सलिलमित्यादिना कपूरादिसुवासितं पानार्थं जलं देवाय दद्यात् ॥२३६-२३९॥

गेह त्वं सर्वलोकानां पूज्यः पुण्ययशः प्रदः ।
देवतास्थितिदानेषु सुमेरुसदृशो भव ।।२४०।।
त्वं कैलासश्च वैकुण्ठस्त्वं ब्रह्मभवनं गृह ।
यत् त्वया विधृतो देवस्तस्मात् त्वं सुरवन्दितः ।।२४१।।

पद्मा—हे गृह! तुम समस्त लोकों के पूज्य तथा पवित्र यश प्रदान करने वाले हो, तुम देवताओं को स्थान देकर सुमेरू के समान बनो। हे गृह! तुम कैलास हो, तुम बैकुण्ठ हो, तुम ब्रह्मभवन हो; क्योंकि तुम देवता को धारण करते हो, इसलिए देवता तुम्हारी बन्दना करते है ।

हरि०—एनं कं पटेदित्याकाङ्क्षायामाह गेह त्वमित्यादि ॥२४०-२४१॥

यस्य कुक्षौ जगत् सर्वं वरीवर्ति चराचरम् ।
मायाविधृतदेहस्य तस्य मूर्तेर्विधारणात् ।।२४२।।
देवमातृसमस्त्वं हि सर्वतीर्थमयस्तथा ।
सर्वकामप्रदो भूत्वा शान्तिं मे कुरु ते नमः ।।२४३।।

पद्मा—जिनके उदर में सम्पूर्ण चराचर जगत् है। माया द्वारा शरीर को धारण करने वाले उसी ब्रह्म की मूर्ति को धारण करने से तुम देवमाता के समान हो तथा समस्त तीर्थों से युक्त हो। तुम हमारी समस्त कामनाओं को पूर्ण करो और मुझे शान्ति दो, मैं तुमको नमस्कार करता हूँ ।

हरि०—कुक्षौ उदरे॥२४२-२४३॥

इत्यभ्यर्थ्य त्रिरभ्यर्च्य गृहं चक्रादिसंयुतम् ।
आत्मनः काममुद्दिश्य दद्याद्देवाय साधकः ।।२४४।।

पद्मा—इस प्रकार गृह को तीन बार नमस्कार कर साधक अपनी इच्छा की पूर्ति के लिए चक्रादियुक्त उस गृह को देवता के लिए प्रदान करे ।

हरि०—इतीत्यादि। इति गृहमभ्यर्थ्य त्रिस्त्रिवारमभ्यर्च्य च साधकश्चक्रादि संयुतं गृहमात्मनः काममुद्दिश्य देवाय दद्यात्॥२४४॥

विश्वावासाय विश्वाय गृहं ते विनिवेदितम् ।
अङ्गीकुरु महेशान कृपया सन्निधीयताम् ।।२४५।।

पद्मा—हे महेशान! यद्यपि तुम विश्व के आवास हो, फिर भी तुम्हें रहने के लिए

आवास प्रदान करता हूँ। कृपा करके तुम इसे ग्रहण करो तथा इसमें स्थित हो कर रहो।

हरि०–विश्वेत्यादि। विश्वावासाय विश्वमावासो गृहं यस्य स विश्वावास: तस्मै॥२४५॥

इत्युक्त्वाऽर्पितगेहाय देवाय दत्तदक्षिण: ।
शङ्खतूर्यादिघोषैस्तं स्थापयेद्वेदिकोपरि ॥२४६॥

पद्मा–इस प्रकार मन्त्र पढ़कर देवता को गृह भेंट करे तथा दक्षिणा प्रदान कर शंख, तुरही आदि के शब्द करते हुए वेदी के ऊपर देवता को स्थापित करे॥२४६॥

हरि०–इतीत्यादि। इति प्रार्थनावाक्यं देवं प्रत्युक्त्वा अर्पितं दत्तं गेहं यस्मैऽसोऽर्पितगेह: अर्पितगेहाय देवाय दत्तदक्षिण: सन् साधक: शङ्खतूर्यादिघोषैस्तं देवं वेदिकोपरि स्थापयेत् ॥२४६॥

स्पृष्ट्वा देवपदद्वन्द्वं मूलमन्त्रं समुच्चरन् ।
स्थाँ स्थीं स्थिरो भवेत्युक्त्वा वासस्ते कल्पितो मया।
इति देवं स्थिरीकृत्य भवनं प्रार्थयेत् पुन: ॥२४७॥

पद्मा–देवता के दोनों चरणों को स्पर्श करके - **मूलं स्थां स्थीं स्थिरोभव वासस्ते कल्पितो मया** (मैंने तुम्हारे लिए आवास बनाया है, इसमें स्थिर हो) मन्त्र से देवता को स्थिर कर पुन: गृह की प्रार्थना करे।

हरि०–स्पृष्ट्वेत्यादि। ततो देवपदद्वन्द्वं स्पृष्ट्वा पूर्वं मूलं मन्त्रसमुच्चरन् तत: स्थाँ स्थीं स्थिरो भव इत्युक्त्वा वासस्ते कल्पितो मयेति समुच्चरेत्। इत्यनेन मूलमन्त्रसंयुतेन स्थाँ स्थीं स्थिरो भव वासस्ते कल्पितो मयेति मन्त्रेण देवं स्थिरीकृत्य पुनर्भवनं गृहं प्रार्थयेत्॥२४७॥

गृह देवनिवासाय सर्वथा प्रीतिदो भव ।
उत्सृष्टे त्वयि मे लोका: स्थिरा: सन्तु निरामया: ॥२४८॥
द्विसप्तातीतपुरुषान् द्विसप्तानागतानपि ।
मां च मे परिवारांश्च देवधाम्नि निवासय ॥२४९॥
यजनात् सर्वयज्ञानां सर्वतीर्थनिषेवणात् ।
यत्फलं तत्फलं मेऽद्य जायतां त्वत्प्रसादत: ॥२५०॥

पद्मा–हे गृह! तुम देवता के निवास के लिए सभी प्रकार से प्रसन्नतादायक हो। मैंने तुम्हारा उत्सर्ग किया। मेरे लिए स्वर्गलोक उपद्रवशून्य हो। मेरे पहले के बहत्तर तथा आगे के बहत्तर पुरुषों को, मुझे तथा मेरे परिवारजनों को देवलोकवासी बनाओ। समस्त यज्ञों का अनुष्ठान करने से तथा समस्त तीर्थों के सेवन से जो फल प्राप्त होता है, वह फल आज तुम्हारी प्रसन्नता से मुझे प्राप्त हो।

हरि०–ननु भवनं प्रति किं प्रार्थयेदित्यपेक्षामाह गृह देवनिवासायेत्यादिना। उत्सृष्टे दत्ते। निरामया: उपद्रवशून्या:॥२४८-२५०॥

यावत् वसुन्धरा तिष्ठेत् यावदेते धराधरा: ।
यावद्दिवानिशानाथौ तावन्मे वर्ततां कुलम् ॥२५१॥

इति प्रार्थ्य गृहं प्राज्ञः पुनर्देवं समर्चयन् ।
दर्पणाद्यन्यवस्तूनि ध्वजं चापि निवदयेत् ।।२५२।।
ततस्तु वाहनं दद्यात् यस्मिन् देवे यथोदितम् ।
शिवाय वृषभं दत्त्वा प्रार्थयेद्विहिताञ्जलिः ।।२५३।।

पद्मा–जब तक पृथ्वी, पर्वत, सूर्य, चन्द्रमा रहें, तब तक मेरा कुल स्थिर रहे। इस प्रकार गृह से प्रार्थना कर ज्ञानी पुरुष पुनः देवता को पूजन करे तथा ध्वजा दर्पणादि अन्य वस्तुएं प्रदान करे। इसके पश्चात् जिस देवता के लिए जो वाहन कहा गया है वही उसको प्रदान करे। भगवान् शिव को वृषभ दान कर हाथ जोड़कर उनकी प्रार्थना करे ।

हरि०–धराधराः पर्वताः।।२५१-२५३।।

वृषभः त्वं महाकायस्तीक्ष्णशृङ्गोऽरिघातकः ।
पृष्ठे वहसि देवेशं पूज्योऽसि त्रिदशैरपि ।।२५४।।

पद्मा–हे वृषभ! तुम विशाल देहवाले, तेजस्वी सींग वाले तथा शत्रुओं का करने वाले हो। तुम देवेश भगवान् शिव को अपनी पीठ पर बैठाते हो, इसी देवतागण भी तुम्हारी पूजा करते हैं ।

हरि०–ननु वृषभं प्रति किं प्रार्थयेदित्याकांक्षायामाह वृषभ त्वमित्यादि।।२५

क्षुरेषु सर्वतीर्थानि रोम्नि वेदाः सनातनाः ।
निगमागमतन्त्राणि दशनाग्रे वसन्ति ते ।।२५५।।

पद्मा–तुम्हारे चारों खुरों में समस्त तीर्थ, रोमों में चारों सनातन वेद तथा अग्रभाग में समस्त निगम, आगम तथा तन्त्र [illegible] ।

हरि०–दशनाग्रे दन्ताग्रे।।२५५।।

त्वयि दत्ते महाभाग सुप्रीतः पार्वतीपतिः ।
वासं ददातु कैलासे त्वं मां पालय सर्वदा ।।२५६।।
सिंहं दत्त्वा महादेव्यै गरुडं विष्णवे तथा ।
यथा स्तूयान्महेशानि! तन्मे निगदतः शृणु ।।२५७।।

पद्मा–हे महाभाग! तुम्हारे दिए जाने से पार्वतीपति भगवान् शिव प्रसन्न होकर कैलाश में मुझे आवास दें। तुम सदैव मेरा पालन करो। हे महेशानि! इस प्रकार महादेवी को सिंह, भगवान् विष्णु को गरुड़ प्रदान कर जिस प्रकार स्तुति की जाती है वह तुमसे कहता हूँ सुनो ।

हरि०–सुप्रीतः भवतु इति शेषः।।२५६-२५७।।

सुरासुरनियुद्धेषु महाबलपराक्रमः ।
देवानां जयदो भीमो दनुजानां विनाशकृत् ।।२५८।।
सदा देवीप्रियोऽसि त्वं ब्रह्मविष्णुशिवप्रियः ।
देव्यै समर्पितो भक्त्या जहि शत्रून्नमोऽस्तुते ।।२५९।।

पद्मा–हे सिंह! देवासुरसंग्राम के समय तुमने महाबल और पराक्रम को प्रकट किया था और देवताओं की विजय हुई थी। तुम अत्यन्त ही भयङ्कर और दानवों के संहारकर्ता हो। तुम सदैव देवी के प्रिय हो। तुम ब्रह्मा, विष्णु एवं शिव के भी प्रिय हो। भक्तिपूर्वक देवि के प्रति समर्पित होकर तुम मेरे समस्त शत्रुओं का विनाश करो। तुम्हें मेरा नमस्कार है।

हरि०–सिंहस्तुतिमेव विदधाति सुरासुरेत्यादिभ्यां द्वाभ्याम्॥२५८-२५९॥

गरुत्मन् पतगश्रेष्ठ श्रीपतिप्रीतिदायक ।
वज्रचञ्चो: तीक्ष्णनख: तव पक्षा हिरण्मया: ।
नमस्तेऽस्तु खगेन्द्राय पक्षिराज नमोऽस्तुते ।।२६०।।
यथा करपुटेन त्वं संस्थितो विष्णुसन्निधौ ।
तथा मामरिदर्पघ्न विष्णोरग्रे निवासय ।।२६१।।
त्वयि प्रीते जगन्नाथ: प्रीत: सिद्धिं प्रयच्छति ।।२६२।।

पद्मा–हे गरुत्मन्! हे पक्षिश्रेष्ठ! हे श्रीपतिप्रीतिदाय! हे वज्र के समान चोंच वाले! हे तीक्ष्णनख! तुम्हारे पंख स्वर्णमय हैं। हे खगेन्द्र! हे पक्षिराज! तुमको नमस्कार करता हूँ। तुम शत्रुओं के गर्व को चूर करते हो। जिस प्रकार तुम भगवान् विष्णु के समीप हाथ जोड़कर बैठते हो उसी प्रकार मुझे भी भगवान् विष्णु के आगे बैठाओ। तुम्हारे प्रसन्न होने पर जगन्नाथ प्रसन्न होकर सिद्धि प्रदान करते हैं।

हरि०–अथ गरुड़स्तुतिं विदधाति गरुत्मन्नित्यादिभिस्त्रिभि:। गरुत्मन गरुड़। पतगश्रेष्ठ पक्षिश्रेष्ठ ॥२६०-२६२॥

देवाय दत्तद्रव्याणां दद्याद्देवाय दक्षिणाम् ।
तथा कर्मफलञ्चापि भक्त्या तस्मै समर्पयेत् ।
नृत्यैर्गीतैश्च वादित्रै: सामात्य: सबान्धव: ।।२६३।।

पद्मा–देवता के लिए दिए द्रव्यों की दक्षिणा को प्रदान करे तथा भक्तिपूर्वक उस देवता को कर्मफल समर्पित करे। अपने बाँधवों एवं मंत्रियों के साथ नृत्य, गीत एवं वाद्य का आयोजन करे।

हरि० - तस्मै देवाय॥२६३॥

वेश्मप्रदक्षिणं कृत्वा देवं नृत्वाऽऽशयेद्द्विजान्।।२६४।।
देवागारप्रतिष्ठायां य एष कथित: क्रम: ।
आरामसेतुसंक्रामशाखिनामीरितोऽपि स: ।।२६५।।
विशेषेणाऽत्र कृत्येषु पूज्यो विष्णु: सनातन: ।
पूजाहोमौ तथा सर्वं गृहदानविधानवत् ।।२६६।।
अप्रतिष्ठितदेवाय नैव दद्यात् गृहादिकम् ।
अर्च्याऽप्रतिष्ठिते देवे पूजादानं विधीयते ।।२६७।।

अथ तत्र श्रीमदाद्याप्रतिष्ठाक्रम उच्यते ।
येन प्रतिष्ठिता देवी तूर्णं यच्छति वाञ्छितम् ।।२६८।।

पद्मा–गृह की प्रदक्षिणा कर देवता को नमस्कार कर ब्राह्मण भोजन कराए। देवगृह की प्रतिष्ठा का जो यह क्रम कहा गया है, यही क्रम उपवन, सेतु, संक्रम तथा वृक्ष की प्रतिष्ठा में भी विहित है। इन स्थानों में सनातन भगवान् विष्णु का पूजन विशेष से करना होगा। पूजा, होम तथा अन्य समस्त कर्म गृहदान की विधि के अनुसार करे। अप्रतिष्ठित देवता के लिए गृहादि का दान नहीं करना चाहिए। प्रतिष्ठित एवं पूजित देवता के लिए ही पूजा और दानविधि कही गयी है। अब श्रीमदाद्या काली की प्रतिष्ठा का क्रम कहता हूँ। जिससे प्रतिष्ठिता देवी शीघ्र ही वाञ्छित फल प्रदान करती हैं।

हरि०–आशयेत् भोजयेत्॥२६४-२६८॥

तद्दिने साधकः प्रातः स्नातः शुचिरुदङ्मुखः ।
संकल्पं विधिवत् कृत्वा यजेद्वास्त्वीश्वरं ततः ।।२६९।।

पद्मा–आद्या कालिका की प्रतिष्ठा के दिन साधक प्रातः स्नान कर शुद्ध होकर विधिपूर्वक संकल्प करके वास्तुदेवता का पूजन करे।

हरि०–श्रीमदाद्याप्रतिष्ठाक्रममेवाह तद्दिने साधक इत्यादिभिः। तद्दिने श्रीमदाद्याप्रतिष्ठादिने॥२६९॥

ग्रहदिक्पतिहेरम्बाद्यर्चनं पितृकर्म च ।
विधाय साधकैर्विप्रैः प्रतिमासन्निधिं व्रजेत् ।।२७०।।

पद्मा–ग्रह, दशदिक्पाल और गणेशादि की पूजा तथा पितृकर्म कर साधक ब्राह्मणों के साथ प्रतिमा के समीप जाए।

हरि०–हेरम्बो गणेशः॥२७०॥

प्रतिष्ठितगृहे यद्वा कुत्रचित् शोभनस्थले ।
आनीयाऽर्चामर्चयित्वा स्नापयेत् साधकोत्तमः।।२७१।।

पद्मा–श्रेष्ठ साधक प्रतिष्ठित गृह में अथवा किसी मनोहर स्थान में श्रेष्ठ प्रतिमा को लाकर पूजन करके स्नान कराए।

हरि०–**प्रतिष्ठितेत्यादि**। ततः साधकोत्तमः प्रतिष्ठितगृहे कुत्रचिच्छोभनस्थाने वा अर्चां प्रतिमामानीयाऽर्चयित्वा च स्नापयेत्॥२७१॥

भस्मना प्रथमं स्नानं ततो वल्मीकमृत्स्नया ।
वराहदन्तिदन्तात्थमृत्तिकाभिस्ततः परम् ।
वेश्याद्वारमृदा चापि प्रद्युम्नह्रदजातया ।।२७२।।
ततः पञ्चकषायेण पञ्चपुष्पैस्त्रिपत्रकैः ।
कारयित्वा गन्धतैलैः स्नापयेत् प्रतिमां सुधीः ।।२७३।।

पद्मा–सर्वप्रथम भस्म से स्नान कराए इसके पश्चात् बांबी (दीमक) की मिट्टी, शूकर

के दाँतों और हाथी के दाँतों से उखाड़ी गई मिट्टी से स्नान कराए। इसके पश्चात् वेश्या के द्वार की मिट्टी से स्नान कराए। इसके उपरान्त कामकूपसम्भूत द्रव्यविशेष से, पञ्च काषाय से, तथा त्रिपत्र से स्नान कराए। इसके उपरान्त सुधी साधक सुगन्धित तेल से प्रतिमा को स्नान कराए।

हरि०–ननु केन द्रव्येण प्रतिमां स्नापयेदित्यपेक्षायामाह भस्मनेत्यादि।।२७२-२७३।।

वाट्यालबदरीजम्बुवकुलाः शाल्मलिस्तथा ।
एते निगदिताः स्नाने कषायाः पञ्च भूरुहाः ।।२७४।।
करवीरं तथा जातीचम्पकं सरसीरुहम् ।
पाटलीकुसुमञ्चापि पञ्चपुष्पं प्रकीर्तितम् ।।२७५।।
वर्वरातुलसीबिल्वं पत्रत्रयमुदाहृतम् ।।२७६।।

पद्या–वाट्याल, बेर, जामुन, वकुल (मौलसिरी) तथा शाल्मली (शाल)–इन पाँच वृक्षों को पञ्च काषाय कहा गया है। करबीर (कनेर) जाती (आँवला) चम्पक (चम्पा) कमल, पाटली कुसुम (गुलाब) इनको पञ्चपुष्प कहा गया है। बर्बुरा (बबई तुलसी के पत्र) तुलसी पत्र तथा बेलपत्र को त्रिपत्र कहा गया है।

हरि०–ननु कैः पञ्चकषायैः कैः पञ्चपुष्पैस्त्रिपत्रकैश्च कैः प्रतिमां स्नापयेदित्याकाङ्क्षायामाह वाट्यालेत्यादि।।२७४-२७६।।

एतेषु प्रोक्तद्रव्येषु जलयोगो विधीयते ।
पञ्चामृते गन्धतैले तोययोगं विवर्जयेत् ।।२७७।।

पद्या–इन सभी कहे गए द्रव्यों में जल मिलाकर प्रतिमा को स्नान कराये, किन्तु पञ्चामृत और गन्धतैल में जल न मिलाए।

हरि०–ननु केवलैर्भस्मादिभिः प्रतिमां स्नापयेज्जलसंयुक्तैर्वा इत्यपेक्षायामाह एतेष्वित्यादिना।।२७७।।

सव्याहृतिं सप्रणवां गायत्रीं मूलमुच्चरन् ।
एतद्द्रव्यस्य तोयेन स्नापयामि नमो वदेत् ।।२७८।।

पद्या–व्याहृति के साथ प्रणव (ॐ), गायत्री तथा मूलमन्त्र का उच्चारण कर **एतद्द्रव्यस्य तोयेन स्नापयामि नमः** अर्थात् पूर्वोक्त कहे गए द्रव्यों में जिस किसी भी से स्नान करा रहे हो उसका उच्चारण कर मन्त्र पढ़े।

हरि० - ननु केन मन्त्रेण भस्मादिभिः प्रतिमां स्नापयेदित्यपेक्षायामाह सव्याहृतिमित्यादिना। पूर्वं सव्याहृतिं सप्रणवां गायत्रीमुच्चरन् ततो मूलं मन्त्रमुच्चरन् तत एतद्द्रव्यस्य तोयेन स्नापयामि नम इति वदेत्। अनेनैव मन्त्रेण जलसंयुक्तैः भस्मादिभिः प्रतिमां स्नापयेत्।।२७८।।

ततः प्रागुक्तविधिना दुग्धाद्यैरष्टभिर्घटैः ।
कवोष्णसलिलैश्चापि स्नापयेत् प्रतिमां बुधः ।।२७९।।

सितगोधूमचूर्णेन तिलकल्केन वा शिवाम् ।
शालीतण्डुलचूर्णेन मार्जयित्वा विरुक्षयेत् ।।२८०।।
तीर्थाम्भसामष्टघटैः स्नापयित्वा सुवाससा ।
सम्मार्जिताङ्गीं प्रतिमां पूजास्थानं समानयेत् ।।२८१।।

पद्मा–इसके पश्चात् बुद्धिमान साधक पहले कही गई विधि से दुग्धादि आठ घड़ों से तथा कुछ उष्ण (गरम) जल से प्रतिमा को स्नान कराए। फिर दूध में पड़ी हुई गेहूँ के मैदा से, तिल के कल्क से अथवा शालि चावल के चूर्ण से प्रतिमा को मार्जन कर सुखाएँ। फिर तीर्थजल से भरे आठ घड़ों से स्नान कराकर सुन्दर वस्त्रों से पोंछकर स्वच्छ अंगों वाली प्रतिमा को पूजा स्थान में ले जाएँ ।

हरि०–कवोष्णसलिलैः ईषदुष्णैर्जलैः।।२७९-२८१।।

अशक्तौ शुद्धतोयानां पञ्चविंशतिसंख्यकैः ।
कलशैः स्नापयेदर्चां भक्त्या साधकसत्तमः ।।२८२।।
स्नाने स्नाने महादेव्याः शक्त्या पूजनमाचरेत् ।।२८३।।
ततो निवेश्य प्रतिमामासने सुपरिष्कृते ।
पाद्यार्घ्याद्यैरर्चयित्वा प्रार्थयेद्विहिताञ्जलिः ।।२८४।।

पद्मा–इस प्रकार के अनुष्ठान में साधक श्रेष्ठ अशक्त हो तो भक्तिपूर्वक २५ घड़े विशुद्ध जल से प्रतिमा को स्नान कराए। प्रत्येक स्नान के उपरान्त अपनी क्षमता भर महादेवी की पूजा करे। तदुपरान्त सुपरिष्कृत आसन पर प्रतिमा को आसीन कराकर पाद्य, अर्घ्यादि से पूजन कर हाथ जोड़कर प्रार्थना करे ।

हरि०–अर्चा प्रतिमाम्।।२८२-२८४।।

नमस्ते प्रतिमे तुभ्यं विश्वकर्मविनिर्मिते ।
नमस्ते देवतावासे भक्ताभीष्टप्रदे नमः ।।२८५।।
त्वयि सम्पूजयाम्याद्यां परमेशीं परात्पराम् ।
शिल्पदोषावशिष्टाङ्गं सम्पन्नं कुरु ते नमः ।।२८६।।
ततस्तत्प्रतिमामूर्ध्नि पाणिं विन्यस्य वाग्यतः ।
अष्टोत्तरशतं मूलं जप्त्वा गात्राणि संस्पृशेत् ।।२८७।।

पद्मा–हे विश्वकर्मा द्वारा निर्मित प्रतिमे! तुम्हें नमस्कार है। तुम देवता की आवास हो। तुम्हें नमस्कार है। तुम भक्तों को उनका अभीष्ट प्रदान करती हो तुम्हें नमस्कार है। तुममे मैं परात्परा परमेश्वरी आद्या की पूजा करता हूँ। शिल्प दोष से शेष अंग को सम्पन्न करो। तुम्हें नमस्कार है। तदुपरान्त प्रतिमा के मस्तक पर हाथ रखकर संयमित वाणी से १०८ बार मूलमन्त्र का जप करे तदुपरान्त प्रतिमा के समस्त शरीर को स्पर्श करे।

हरि०–ननु प्रतिमां प्रति किं प्रार्थयेदित्यपेक्षायामाह नमस्ते प्रतिमे तुभ्यमित्यादि।।२८५-२८७।।

षडङ्गमातृकान्यासं प्रतिमाङ्गे प्रविन्यसन् ।
षड्दीर्घभाजा मूलेन षडङ्गन्यासमाचरेत् ।।२८८।।

पद्मा–इसके उपरान्त प्रतिमा के अंगों में षडङ्ग तथा मातृकान्यास कर आकारादिषड्दीर्घ स्वरों सहित मूलमन्त्र के द्वारा षडङ्गन्यास करे।

हरि०–षडङ्गेत्यादि। ततः पूर्वविधिना प्रतिमाङ्गे षडङ्गमातृकान्यासं प्रविन्यसन् साधकः षड्दीर्घभाजा मूलेन मन्त्रेणापि प्रतिमाङ्गे षडङ्गन्यासमाचरेत् कुर्यात्।।२८८।।

तारमायारमाद्यैश्च नमोऽन्तैर्बिन्दुसंयुतैः ।
अष्टवर्गैर्देवताङ्गे वर्णन्यासं प्रकल्पयेत् ।।२८९।।

पद्मा–तार (ॐ) माया (ह्रीं) तथा रमा (श्रीं) का उच्चारण करके बिन्दुयुक्त आठ वर्गों से वर्णन्यास करे। यथा **ॐ ह्रीं श्रीं अं नमः, ॐ ह्रीं श्रीं ॐ नमः** इत्यादि।

हरि०–तारेत्यादि। ततः तारमायारमाद्यैरोङ्कारह्रीं श्रीं माद्यैर्नमोऽन्तैर्बिन्दु-संयुतैरनुस्वार सहितैरष्टवर्गैर्देवताङ्गे वर्णन्यासं प्रकल्पयेत् कुर्यात्।।२८९।।

मुखे स्वरान् कवर्गञ्च कण्ठदेशे न्यसेत् बुधः ।
चवर्गमुदरे दक्षबाहौ टाद्यक्षराणि च ।।२९०।।
तवर्गञ्च वामबाहौ दक्षवामोरुयुग्मयोः ।
पवर्गञ्च यवर्गञ्च शवर्गं मस्तके न्यसेत् ।।२९१।।

पद्मा–बुद्धिमान मनुष्य देवता के अंग में वर्णन्यास करने के समय मुख में सभी स्वर, कण्ठदेश में क वर्ग, उदर में च वर्ग, दाहिनी भुजा में ट वर्ग, वामभुजा में त वर्ग, दक्षिण एवं वाम उरुओं में क्रमशः प वर्ग तथा य वर्ग और मस्तक में श वर्ग का न्यास करे।

हरि०–ननु कस्मिन् कस्मिन् देवताङ्गे कं कं वर्गं न्यसेदित्याकांक्षायामाह मुखे स्वरानित्यादि।।२९०-२९१।।

वर्णन्यासं विधायेत्थं तत्त्वन्यासं समाचरेत् ।।२९२।।
पादयोः पृथिवीतत्त्वं तोयतत्त्वञ्च लिङ्गके ।
तेजस्तत्त्वं नाभिदेशे वायुतत्त्वं हृदम्बुजे ।।२९३।।
आस्ये गगनतत्त्वञ्च चक्षुषो रूपतत्त्वकम् ।
घ्राणयोर्गन्धतत्त्वञ्च शब्दतत्त्वं श्रुतिद्वये ।।२९४।।
जिह्वायां रसतत्त्वञ्च स्पर्शतत्त्वं त्वचि न्यसेत् ।
मनस्तत्त्वं भ्रुवोर्मध्ये सहस्रदलपङ्कजे ।।२९५।।
शिवतत्त्वं ज्ञानतत्त्वं परतत्त्वं तथोरसि ।
जीवप्रकृतितत्त्वे च विन्यसेत् साधकाग्रणीः ।
महत्तत्त्वमहङ्कारतत्त्वं सर्वाङ्गके क्रमात् ।।२९६।।

पद्मा–वर्णन्यास करने के पश्चात् तत्त्वन्यास करे। देवता के दोनों चरणों में पृथ्वी तत्त्व,

लिङ्ग (योनि) में जलतत्त्व, नाभि में तेजतत्त्व, हृदयकमल में वायुतत्त्व, मुख में आकाशतत्त्व, दोनों आँखों में रूपतत्त्व, दोनों नासिका छिद्रों में गन्धतत्त्व, दोनों कानों में शब्दतत्त्व, जिह्वा में रसतत्त्व, त्वचा में स्पर्श तत्त्व का न्यास करे। मन का भ्रूमध्य में, सहस्रदलकमल में मनस्तत्त्व का न्यास करें। इसी प्रकार वक्ष: स्थल में शिवतत्त्व, ज्ञानतत्त्व, परतत्त्व, जीवतत्त्व और प्रकृतितत्त्व का न्यास करें। सर्वांग में क्रमश: महत्तत्त्व और अहङ्कारतत्त्व का न्यास करे।

हरि०–ननु कस्मिन् कस्मिन् देवताङ्गे किं किं तत्त्वं न्यसेदित्यपेक्षायामाह पादयो: पृथिवीतत्त्वमित्यादि॥२९२-२९६॥

तारमायारमाद्येन ङे नमोऽन्तेन विन्यसेत् ॥२९७॥

पद्मा–प्रणव (ॐ) माया (ह्रीं) तथा रमा (श्रीं), अन्त में चतुर्थी एक वचन की विभक्ति और नम: लगाकर न्यास करे। यथा - **ॐ ह्रीं श्रीं पृथिवीतत्त्वाय नम:।**

हरि०–ननु केन मन्त्रेण पृथिवीतत्त्वादिकं पादादौ न्यसेदित्यपेक्षायामाह तारेत्यादि। तारमायारमाद्येन ओं ह्रीं श्रीमादिना ङे नमोऽन्तेन पृथिवीतत्त्वादिना मन्त्रेण पृथिवीतत्त्वादिकं पादादौ विन्यसेत॥२९७॥

सबिन्दुमातृकावर्णपुटितं मूलमुच्चरन् ।
नमोऽन्तं मातृकास्थाने मन्त्रन्यासं प्रयोजयेत् ॥२९८॥

पद्मा–बिन्दुयुक्त मातृकावर्णों से पुटित 'नम:' पदान्त मूलमन्त्र का उच्चारण करके मातृकास्थानों में मन्त्र न्यास करे।

हरि०–सबिन्दित्यादि तत: सबिन्दुमातृकावर्णपुटितं सानुस्वारैर्मातृकावर्णैरादावन्ते च संयुक्तं नमोऽन्तं मूलं मन्त्रमुच्चरन् सन् मातृकास्थाने मन्त्रन्यासं प्रयोजयेत् विदध्यात्॥२९८॥

सर्वयज्ञमयं तेज: सर्वभूतमयं वपु: ।
इयं ते कल्पिता मूर्तिरत्र त्वां स्थापयाम्यहम् ॥२९९॥
तत: पूजाविधानेन ध्यानमावाहनादिकम् ।
प्राणप्रतिष्ठां सम्पाद्य पूजयेत् परदेवताम् ॥३००॥
देवगेहप्रदाने तु ये ये मन्त्रा: समीरिता: ।
त एवात्र प्रयोक्तव्या मन्त्रलिङ्गेन पूजने ॥३०१॥
विधिवत् संस्कृते वह्नावचितिभ्योऽर्पिताहुति: ।
आवाह्य देवीं सम्पूज्य जातकर्माणि साधयेत् ॥३०२॥
जातनाम्नी निष्क्रमणमन्नप्राशनमेव च ।
चूडोपनयनं चैते षट्संस्कारा: शिवोदिता: ॥३०३॥

पद्मा–तुम्हारा तेज सर्वयज्ञमय है। तुम्हारा शरीर सर्वभूतमय है। तुम्हारी यह मूर्ति कल्पित है। इसमें मैं तुम्हें स्थापित करता हूँ। तदुपरान्त पूजनविधान के अनुसार ध्यान,

आवाहनादि प्राणप्रतिष्ठा तक के कर्म कर परदेवता का पूजन करे। देवगृह के दान में जो-जो मन्त्र कहे गए हैं, उन्हीं सभी मन्त्रों का यहाँ पर प्रयोग करे। विधिपूर्वक संस्कार की गयी अग्नि में सभी पूजित देवताओं को आहुति प्रदान कर देवी का आवाहन कर जातकर्मादि करे। जातकर्म, नामकरण, निष्क्रमण, अन्नप्राशन, चूड़ाकरण तथा उपनयन – ये छ: संस्कार भगवान् शिव ने कहे हैं।

हरि०–ततः सर्वयज्ञानमयं तेज इत्यादिना देवीं प्रार्थयेत्। वपुः तवेति शेषः ॥२९९-३०३॥

प्रणवं व्याहृतिं चैव गायत्रीं मूलमन्त्रकम् ।
सामन्त्रणाभिधानं ते जातकर्मादि नाम च ॥३०४॥
सम्पादयाम्यग्निकान्तां समुच्चार्य विधानवित् ।
पञ्चपञ्चाहुतीर्दद्यात् प्रतिसंस्कारकर्मणि ॥३०५॥
दत्तनाम्नाऽऽहुतिशतं मूलोच्चारणपूर्वकम् ।
देव्यै दत्त्वाऽऽहुतेरंशं प्रतिमामूर्ध्नि निःक्षिपेत् ॥३०६॥
प्रायश्चित्तादिभिः शेषं कर्म सम्पादयन् सुधीः ।
भोजयेत् साधकान् विप्रान् दीनानाथांश्च तोषयेत् ॥३०७॥
उक्तकर्मस्वशक्तश्चेत् पाथसां सप्तभिर्घटैः ।
स्नापयित्वाऽर्चयन् शक्त्या श्रावयेन्नाम देवताम् ॥३०८॥
इति ते श्रीमदाद्यायाः प्रतिष्ठा कथिता प्रिये ।
एवं दुर्गादिविद्यानां महेशादिदिवौकसाम् ॥३०९॥
चलतः शिवलिङ्गस्य प्रतिष्ठायामयं विधिः ।
प्रयोक्तव्यो विधानज्ञैर्मन्त्रनामोहपूर्वकम् ॥३१०॥

इति श्रीमहानिर्वाणतन्त्रे सर्वतन्त्रोत्तमोत्तमे सर्वधर्मनिर्णयसारे श्रीमदाद्यासदाशिवसंवादे आद्याकालीप्रतिष्ठानुष्ठाने वास्तुमहयागजलाशयादिप्रतिष्ठा-देवगृहदानादिसर्वदेवप्रतिष्ठाकथनं नाम त्रयोदशोल्लासः।

पद्मा–प्रणव (ॐ) व्याहृति (भूर्भुवः स्व) गायत्री, मूलमन्त्र, संबोधन नाम (हे आद्ये!) तुम्हारे जातकर्मादि संस्कार विशेष का नाम उल्लेख कर **सम्पादयामि स्वाहा** अर्थात् सम्पादित करता हूँ। यह कहकर पाँच-पाँच आहुतियाँ प्रदान करे। कहे गए नाम का उल्लेख करते हुए मूलमन्त्र का उच्चारण कर देवी को सौ आहुतियाँ प्रदान कर आहुति का अंश प्रतिमा के मस्तक पर डाले। प्रायश्चित्तादि द्वारा शेष कर्म कर साधकों को भोजन कराए तथा अनाथों एवं दीनों को सन्तुष्ट करे। यदि साधक यह कर्म करने में असमर्थ हो तो सात घड़े जल से प्रतिमा को स्नान कराकर यथाशक्ति पूजा करके देवता को नाम सुनाए। हे प्रिये! मैंने तुमसे आद्याकाली की प्रतिष्ठा का प्रयोग कहा। इसी प्रकार दुर्गादि समस्त विद्याओं और

शिवादि समस्त देवताओं की प्रतिष्ठा करे। सचल शिवलिंग की प्रतिष्ठा में भी मन्त्र द्वारा इसी विधि का प्रयोग निःसन्देह होकर करे॥३०४-३१०॥

हरि०–ननु केन मन्त्रेण देव्या जातकर्मादि साधयेदित्यपेक्षायामाह प्रणवमित्यादि पूर्वम् प्रणवोद्धारं ततो व्याहृतिं भूरादिं ततो गायत्रीं ततो मूलमन्त्रं ततः सामन्त्रणाभिधानम् आमन्त्रणसहितदेवीनाम् ततस्ते इति पदं ततो जातकर्मादिनाम ततः सम्पादयामीति पदं ततोऽग्निकान्तां स्वाहेति पदं समुच्चार्य विधानवित् साधको देव्या जातकर्माणि साधयेदिति पूर्वेणान्वयो विधेयः॥३०४-३१०॥

इति श्रीमहानिर्वाणतन्त्रटीकायां त्रयोदशोल्लासः।

चर्तुदशोल्लासः

श्रीदेव्युवाच

आद्यशक्तेरनुष्ठानात् कृपया भूरिसाधनम्।
कथितं मे कृपानाथ तृप्ताऽस्मि तव भावतः।।१।।
सचलस्येशलिङ्गस्य प्रतिष्ठाविधिरीरितः।
अचलस्य प्रतिष्ठायां किं फलं विधिरेव कः।।२।।

पद्मा–श्रीदेवी ने कहा–हे कृपानाथ! आद्याशक्ति काली के प्रसंग ये आपने कृपाकर बहुत ही सावधानी से मुझसे कहे। मैं आपके भाव से सन्तुष्ट हूँ। आपने सचल शिवलिंग की प्रतिष्ठाविधि कही, किन्तु स्थिर (अचल) शिवलिंग की प्रतिष्ठा किस प्रकार से होती है? उसकी प्रतिष्ठा का फल क्या है?।

हरि०–ॐ नमो ब्रह्मणे।

एवं सकलदेवतानां सचलस्य शिवलिङ्गस्यापि प्रतिष्ठाया विधिफलञ्च श्रुत्वेदानीमचलस्य शिवलिङ्गस्य प्रतिष्ठायाः फलं विधिं च श्रोतुमिच्छन्ती श्रीदेव्युवाच आद्यशक्तेरित्यादि। भावतः प्रीतितः।।१-२।।

कथ्यतां जगतां नाथ! सविशेषेण साम्प्रतम्।
इदं हि परमं तत्त्वं प्रष्टुं वद वृणोमि कम्।।३।।

पद्मा–हे जगत के नाथ! आपके अतिरिक्त यह विशेषतत्त्व किससे पूछूँ! आप ही इस समय इस विशेष परमतत्त्व को कहिए।

हरि०–परमकारुणिकमाशुतोषं सर्वज्ञमपरं कञ्चित् पृच्छ मां किं पुनः पुनः पृच्छसितत्राह इदं हि परमं तत्त्वमित्यादि।।३।।

त्वत्तः को वास्ति सर्वज्ञो दयालुः सर्वविद्विभुः।
आशुतोषो दीननाथो ममाऽऽनन्दविवर्धनः।।४।।

पद्मा–आपकी अपेक्षा दयावान्, सर्वज्ञ, प्रभु, सर्वविचारक शीघ्र प्रसन्न होने वाला, दीनानाथ और मुझे आनन्द प्रदान करने वाला और कौन है?।।४।।

हरि०–सर्ववित् सर्वविचारकः।।४।।

श्रीसदाशिव उवाच

शिवलिङ्गस्थापनस्य माहात्म्यं किं ब्रवीमि ते।
यत्स्थापनान्महापापैर्मुक्तो याति परं पदम्।।५।।
स्वर्णपूर्णमहीदानाद्वाजिमेधायुतार्जनात्।
निस्तोये तोयकरणात् दीनार्तपरितोषणात्।।६।।

यत् फलं लभते मर्त्यस्तस्मात् कोटिगुणं फलम्।
शिवलिङ्गप्रतिष्ठायां लभते नात्र संशयः ।।७।।
लिङ्गरूपी महादेवो यत्र तिष्ठति कालिके ।
तत्र ब्रह्मा च विष्णुश्च सेन्द्रास्तिष्ठन्ति देवताः ।।८।।
सार्धत्रिकोटितीर्थानि दृष्टादृष्टानि यानि च ।
पुण्यक्षेत्राणि सर्वाणि वर्तन्ते शिवसन्निधौ ।।९।।

पद्मा–श्रीसदाशिव ने कहा–शिवलिङ्ग की स्थापना का माहात्म्य मैं तुमसे क्या कहूँ? शिवलिङ्ग के स्थापना से मनुष्य महापातक से मुक्त होकर परमपद को प्राप्त होता है। स्वर्ण से पूर्ण पृथिवी का दान करने से, दश हजार अश्वमेध यज्ञ करने से, निर्जल प्रदेश में जलाशय बनवाने, दीन एवं आर्त्त मनुष्यों को सन्तुष्ट करने से मनुष्यों को जो फल प्राप्त मिलता है, उस फल से करोड़ गुणा फल शिवलिंग की प्रतिष्ठा से प्राप्त होता है, इसमें किसी प्रकार का सन्देह नहीं है। हे कालिके! लिङ्गरूपी महादेव जिस स्थान में विराजते हैं, वहाँ पर ब्रह्मा, विष्णु, इन्द्र और देवगण भी निवास करते हैं। इसमें किसी प्रकार का सन्देह नहीं है। साढ़े तीन करोड़ तीर्थ तथा गुप्त एवं अप्रकाशित सभी पुण्य क्षेत्र शिव के समीप रहते हैं ।

हरि०–प्रथमतः शिवलिङ्गप्रतिष्ठायां फलं श्रीसदाशिव उवाच शिवलिङ्गस्थापनस्येत्यादिभिः ।।५-९।।

लिङ्गरूपधरं शम्भुं परितो दिग्विदिक्षु च ।
शतहस्तप्रमाणेन शिवक्षेत्रं प्रकीर्तितम् ।।१०।।
ईशक्षेत्रं महापुण्यं सर्वतीर्थोत्तमोत्तमम् ।
यत्राऽमरा विराजन्ते सर्वतीर्थानि सर्वदा ।।११।।
क्षणमात्रं शिवक्षेत्रे यो वसेद्भावतत्परः ।
स सर्वपापनिर्मुक्तो यात्यन्ते शङ्करालयम् ।।१२।।

पद्मा–लिंगरूपी शिव के चारों ओर सौ हाथ तक का क्षेत्र शिवक्षेत्र कहा गया है। यह शिवक्षेत्र अत्यन्त ही पवित्र तथा समस्त तीर्थों से श्रेष्ठ है। इस शिवक्षेत्र में सभी देवता और सभी तीर्थ सदैव ही विराजमान रहते हैं। जो मनुष्य एक क्षण भर भी शिवभावपरायण होकर शिवक्षेत्र में निवास करता है वह सभी पापों से मुक्त होकर अन्त समय में शिवलोक को चला जाता है।

हरि०–परितः सर्वतः।।१०-१२।।

अत्र यत् क्रियते कर्म स्वल्पं वा बहुलं तथा ।
प्रभावाद्धूर्जटेस्तत्तत्कोटिकोटिगुणं भवेत् ।।१३।।
यत्र तत्र कृतात् पापान्मुच्यते शिवसन्निधौ ।
शैवक्षेत्रे कृतं पापं वज्रलेपसमं प्रिये! ।।१४।।

पुरश्चर्यां जपं दानं श्राद्धं तर्पणमेव च ।
यत् करोति शिवक्षेत्रे तदनन्ताय कल्पते ।।१५।।

पद्मा–शिवक्षेत्र में कम या अधिक मात्रा में जो कर्म किया जाता है, वह शिव के प्रभाव से करोड़ों गुणा हो जाता है। हे प्रिये! मनुष्य चाहे जिस स्थान में पापकर्म करे, शिव के समीप आते ही उनसे मुक्ति मिल जाती है, किन्तु शिवक्षेत्र में किया गया पाप वज्रलेप के समान होता है, उससे मुक्ति नहीं मिलती है। पुरश्चरण, जप, दान, श्राद्ध, तर्पणादि, कर्म जो शिवक्षेत्र में किए जाते हैं उनका फल अनन्त होता है ।

हरि०–**अत्र शिवक्षेत्रे।** धूर्जटेः शिवस्य।।१३-१५।।

पुरश्चर्याशतं कृत्वा ग्रहे शशिदिनेशयोः।
यत् फलं तदवाप्नोति सकृज्जप्त्वा शिवान्तिके ।।१६।।
गयागङ्गाप्रयागेषु कोटिपिण्डप्रदो नरः ।
यत् प्राप्नोति तदत्रैव सकृत् पिण्डप्रदानतः ।।१७।।

पद्मा–सूर्य ग्रहण अथवा चन्द्र ग्रहण के समय सौ पुरश्चरण करने से जो फल प्राप्त होता है, शिवसान्निध्य में एक बार करने से प्राप्त हो जाता है। गया, गंगा तथा प्रयाग क्षेत्र में करोड़ों पिण्डदान करने से मुनष्य जो फल प्राप्त करता है। शिवक्षेत्र में केवल एक बार पिण्डदान करने से प्राप्त हो जाता है ।

हरि०–ग्रहे ग्रहणे ।।१६-१७।।

अतिपातकिनो ये च महापातकिनश्च ये ।
शैवतीर्थे कृतश्राद्धास्तेऽपि यान्ति परां गतिम्।।१८।।
लिङ्गरूपी जगन्नाथो वेद्यां श्रीदुर्गया सह ।
यत्रास्ति तत्र तिष्ठन्ति भुवनानि चतुर्दश ।।१९।।
स्थापितेशस्य माहात्म्यं किञ्चिदेतत् प्रकाशितम् ।
अनादिभूतभूतेशमहिमा वागगोचरः ।।२०।।
महापीठे तवाऽर्चायामस्पृश्यस्पर्शदूषणम् ।
विद्यते विद्यते नैतल्लिङ्गरूपधरे हरे ।।२१।।
यथा चक्रार्चने देवि! कोऽपि दोषो न विद्यते।
शिवक्षेत्रे महातीर्थे तथा जानीहि कालिके ।।२२।।
बहुनात्र किमुक्तेन तवाग्रे सत्यमुच्यते ।
प्रभावः शिवलिङ्गस्य मया वक्तुं न शक्यते ।।२३।।
अयुक्तवेदिकं लिङ्गं युक्तं वेदिकयाऽपि वा ।
साधकः पूजयेद्भक्त्या स्वाभीष्टफलसिद्धये ।।२४।।

पद्मा–जो मनुष्य महापातकी या अतिपातकी हैं, वे भी इस शिवक्षेत्र एक बार श्राद्ध

करने से परम् गति को प्राप्त करते है। लिंगस्वरूप जगन्नाथ श्रीदुर्गा जी के साथ जिस स्थान में रहते हैं, वहाँ पर चौदह भुवनों का वास होता है। स्थापित शिवलिंग का यह कुछ माहात्म्य तुमसे कहा। जो शिव के अनादि लिंग हैं उनकी महिमा वचनों से परे है। हे सुव्रते! महापीठस्थानों में तुम्हारी पूजा में स्पर्श अस्पृश्य का दोष है, किन्तु शिवलिंग स्वरूप महेश्वर में यह दोष नहीं है। हे देवि! हे कालिके! चक्र पूजन के समय जिस प्रकार कोई दोष नहीं होता, उसी प्रकार महातीर्थस्वरूप शिवक्षेत्र में स्पर्शदोष नहीं मानना चाहिए। इस सम्बन्ध में मैं अधिक क्या कहूँ, तुमसे सत्य ही कहता हूँ, शिवलिंग के पूर्ण प्रभाव को कहने में मैं समर्थ नहीं हूँ। शिवलिंग गौरीपट्ट से युक्त हो या न हो, साधक अपनी अभिलाषा की पूर्ति के लिए भक्तिपूर्वक उसकी पूजा करे ।

हरि०–कृतं श्राद्धं येषां ते कृतश्राद्धा:॥१८-२४॥

प्रतिष्ठापूर्वसायाह्ने देवतां योऽधिवासयेत् ।
सोऽश्वमेधायुतफलं लभते साधकोत्तमः ।।२५।।

पद्मा–जो साधक देवता की प्रतिष्ठा के एक दिन पहले सन्ध्याकाल में देवत अधिवास करता है, वह दश हजार अश्वमेध यज्ञ का फल प्राप्त करता है ।

हरि०–अथाचलस्य शिवलिङ्गस्य प्रतिष्ठाया विधिमाह प्रतिष्ठापूर्वसायाह्ने दिभि:॥२५॥

मही गन्धः शिला धान्यं दूर्वा पुष्पं फलं दधि ।
घृतं स्वस्तिकसिन्दूरं शङ्खकज्जलरोचनाः ।।२६।।
सिद्धार्थं काञ्चनं शैप्यं ताम्रं दीपश्च दर्पणम् ।
अधिवासविधौ विंशद्द्रव्याण्येतानि योजयेत् ।।२७।।

पद्मा–मही, गन्ध शिला, धान्य, दूर्वा (दूब), पुष्प, फल, दधि, घी, स्वस्तिक, सिन्दूर, शंख, काजल, रोचना, सफेद सरसों, स्वर्ण (सोना), चाँदी, ताँबा, दीप, दर्पण– ये बीस प्रकार के द्रव्य अधिवास में लगाए ।

हरि०–ननु केन केन वस्तुना देवतामधिवासयेदित्याकाङ्क्षायामाह महीत्यादि सिद्धार्थ: धवलसर्षप:॥२६-२७॥

प्रत्येकं द्रव्यमादाय मायया ब्रह्मविद्यया ।
अनेनाऽमुष्यपदतः शुभमस्त्वधिवासनम् ।।२८।।
इति स्पृशेत् साध्यभालं मह्याद्यैः सर्ववस्तुभिः ।
ततः प्रशस्तिपात्रेण त्रिधैवमधिवासयेत् ।।२९।।
अनेना विधिना देवमधिवास्य विधानवित् ।
गृहदानविधानेन दुग्धाद्यैः स्नापयेत्ततः ।।३०।।

सम्मार्ज्य वाससा लिङ्गं स्थापयित्वाऽऽसनोपरि ।
पूजानुष्ठानविधिना गणेशादीन् समर्चयेत् ।।३१।।
प्रणवेन करन्यासौ प्राणायामं विधाय च ।
ध्यायेत् सदाशिवं शान्तं चन्द्रकोटिसमप्रभम् ।।३२।।

पद्मा–इनमें से प्रत्येक द्रव्य को लेकर माया (ह्रीं) और ब्रह्मविद्या (गायत्री) का पाठ करते हुए कहे कि इस द्रव्य के द्वारा इस देवता का शुभ अधिवासन हो। **ह्रीं गायत्री अनेन द्रव्येणामुष्य दैवतस्य शुभमधिवासनमस्तु** यह मंत्र पढ़कर मही आदि प्रत्येक द्रव्य से देवता के ललाट को स्पर्श करे। तत्पश्चात् प्रशस्तिपात्र से तीन बार अधिवास करे। इस विधि के द्वारा देवता का अधिवास कर गृहप्रतिष्ठा में कही विधि के अनुसार दुग्धादि के द्वारा देवता को स्नान कराए। स्नान कराने के पश्चात् वस्त्र से शिवलिंग को पोंछकर आसन पर स्थापित करे और पूजा-अनुष्ठान की विधि के अनुसार गणेशादि देवताओं का पूजन करे। प्रणव (ॐ) से कराङ्गन्यास और प्राणायाम करके करोड़ों चन्द्रमा के समान तेजवाले शान्तस्वरूप सदाशिव का ध्यान करे ।

हरि०–ननु केन विधिना देवतामधिवासयेदित्याकाङ्क्षायामाह प्रत्येकमित्यादि। प्रत्येकमह्यादिद्रव्यमादाय गृहीत्वा मायया ह्रीं बीजेन विशिष्टया ब्रह्मविद्यया गायत्र्या संयुक्तेन अनेन द्रव्येण अमुष्य दैवतस्य शुभम्अधिवासनमस्तु इति मन्त्रेण मह्याद्यैः सर्ववस्तुभिः साध्यस्य देवस्य भालं स्पृशेत्। ततः परं प्रशस्तिपात्रेण त्रिधा त्रिवारमेवं विधिना देवमधिवासयेत्।।२८-३२।।

व्याघ्रचर्मपरीधानं नागयज्ञोपवीतिनम् ।
विभूतिलिप्तसर्वाङ्गं नागालङ्कारभूषितम् ।।३३।।
धूम्रपीतारुणश्वेतरक्तैः पञ्चभिराननैः ।
युक्तं त्रिनयनं विभ्रज्जटाजूटधरं विभुम् ।।३४।।
गङ्गाधरं दशभुजं शशिशोभितमस्तकम् ।
कपालं पावकं पाशं पिनाकं परशुं करैः ।।३५।।

पद्मा–भगवान् शिव व्याघ्र का चर्म पहने हुए हैं। उनके शरीर में नाग का यज्ञोपवीत शोभित हो रहा है। उनके सभी अंग विभूति से लिप्त हैं। वे नागों के आभूषणों से सुशोभित हैं। वे धूम्र, पीत, अरुण, श्वेत तथा रक्तवर्ण वाले इन पाँचमुखों से युक्त, तीन नेत्र वाले, जटाजूट वाले, विभु (प्रभु), गंगाधर, दशभुजाओं वाले, चन्द्रकला से सुशोभित मस्तक वाले, बाएं हाथ में कपाल, पावक (अग्नि), पाश, पिनाक तथा परशुधारण करने वाले हैं ।

हरि०–**विभ्रत विभ्रतम्।** 'सुपां सुलुक्' इत्यमो लुक्।।३३-३५।।

वामैर्दधानं दक्षैश्च शूलं वज्राङ्कुशं शरम् ।
वरञ्च बिभ्रतं सर्वैर्देवैर्मुनिवरैः स्तुतम् ।।३६।।

पद्मा–वे अपने दाहिने हाथ में शूल, वज्र, अंकुश, बाण और वार धारण करते हैं। वे सभी देवगणों एवं श्रेष्ठ मुनियों के द्वारा स्तुति किए जाते हैं ।

हरि०–बिभ्रतं दधतम्।।३६।।

परमानन्दसन्दोहोल्लसत्कुटिललोचनम् ।
हिमकुन्देन्दुसङ्काशं वृषासनविराजितम् ।।३७।।
परितः सिद्धगन्धर्वैरप्सरोभिरहर्निशम् ।
गीयमानमुमाकान्तमेकान्तशरणप्रियम् ।।३८।।
इति ध्यात्वा महेशानं मानसैरुपचारकैः ।
संपूज्याऽऽवाह्य तल्लिङ्गे यजेच्छक्त्या विधानतः ।।३९।।
आसनाद्युपचाराणां दाने मन्त्रा पुरोदिताः ।
मूलमत्र मनुं वक्ष्ये महेशस्य महात्मनः ।।४०।।

पद्मा–परमानन्द के समूह से हर्षित उनके दोनों नेत्र हैं। उनकी कांति, हिम कुन्दपुष्प तथा चन्द्रमा के सदृश श्वेतवर्ण वाले बैल के ऊपर आसीन हैं। उनके चारों ओर सिद्धों गन्धर्वों और अप्सराओं के समूह दिन रात स्तुति करते हैं। उमा के पति, एकमात्र शरण में आए भक्तों के प्रिय सदाशिव का मैं ध्यान करता हूँ। इस प्रकार भगवान् शिव का ध्यान कर मानसिक उपचारों के द्वारा पूजन कर शिवलिंग पर उनका आवाहन कर यथाशक्ति उनका पूजन करे। आसनादि उपचार प्रदान करने के मन्त्र मैं पीछे कह आया हूँ। अब महात्मा महेश्वर का मूलमन्त्र कहता हूँ ।

हरि०–परमानन्दसन्दोहोल्लसत्कुटिललोचनम् परमानन्दसन्दोहेनोल्लसन्ति कुटिलानि च लोचनानि यस्य तथाभूतम्। सन्दोहः समूहः।।३७-४०।।

माया तारः शब्दबीजं सन्ध्यर्णान्ताक्षरान्वितम् ।
अर्धेन्दुबिन्दुभूषाढ्यं शिवबीजं प्रकीर्तितम् ।।४१।।
सुगन्धिपुष्पमाल्येन वाससाऽऽच्छाद्य शङ्करम् ।
निवेश्य दिव्यशय्यायां देवीमेवं विशोधयेत् ।।४२।।

पद्मा–माया (ह्रीं), तार (ॐ) शब्दबीज (ह), औ तथा चन्द्रबिन्दु अर्थात् ह्रीं ॐ हौं यह शिवबीज कहा गया है। तत्पश्चात् सुगन्धित पुष्प माला से तथा वस्त्र से शिव को ढककर दिव्यशय्या पर स्थापित कर गौरीपट्ट का भी इसी प्रकार शोधन करे ।

हरि०–महेशस्य मूलमन्त्रमेवाह मायेत्यादिना। पूर्व माया ह्रीं बीजमुच्येत ततस्तारः प्रणवो वाच्यः। ततः सन्ध्यर्णान्ताक्षरान्वितं सन्ध्यक्षरान्ताक्षरसंयुक्तम्। अर्धेन्दुबिन्दुभूषाढ्यञ्च शब्दबीजं हकाररूपमक्षरं वाच्यम्। सकलपदयोजनया ह्रीं ओं हौं इति शिवबीजं प्रकीर्तितम् ।।४१-४२।।

वेद्यां प्रपूजयेद्देवीमेवमेव विधानतः ।
माययाऽत्र करन्यासौ प्राणायामं समाचरेत् ।।४३।।

पद्मा–इस गौरीपट्ट के ऊपर देवी की इस विधि से पूजा करें - सर्वप्रथम ह्रीं बीज से करन्यास तथा प्राणायाम करे ।

हरि०–मायया ह्रीं बीजेन ।।४३।।

उद्यद्भानुसहस्रकान्तिममलां वह्न्यर्कचन्द्रेक्षणाम्
मुक्तायन्त्रितहेमकुण्डललसत्स्मेराननाम्भोरुहाम्।
हस्ताब्जैरभयं वरञ्च दधतीं चक्रं तथाब्जं दधत्
पीनोत्तुङ्गपयोधरां भयहरां पीताम्बरां चिन्तये ।।४४।।
इति ध्यात्वा महादेवीं पूजयेन्निजशक्तितः ।
ततस्तु दश दिक्पालान् वृषभञ्च समर्चयेत् ।।४५।।
भगवत्या मनुं वक्ष्ये येनाऽऽराध्या जगन्मयी ।।४६।।

पद्मा–देवी का ध्यान इस प्रकार करे - जिनकी कान्ति उदय होते हुए हजारों सूर्य के समान है, जो निर्मला है, अग्नि, सूर्य एवं चन्द्र जिनके तीन नेत्र है । जिनका मुखकमल मुस्कानयुक्त है और मोतियों से जड़ित स्वर्ण के कुण्डलों से शोभायमान है। जो अपने चार हाथों में चक्र, कमल, वर तथा अभयमुद्रा धारण किए हुए हैं। जिनके दोनों स्तन मांसल एवं अत्यन्त ऊँचे हैं, जो पीतवस्त्र धारण करती है ऐसी भगवती का मैं ध्यान करता हूँ। इस प्रकार ध्यान कर अपनी शक्ति के अनुसार भगवती का पूजन कर दशदिक्पालों एवं वृषभ का पूजन करे। जिस मन्त्र के द्वारा भगवती की आराधना करनी चाहिए, उसे कहता हूँ।

हरि०–अथ महादेव्या ध्यानमेवाहैकेन उद्यद्भान्वित्यादिना। महादेवीमहं चिन्तये। कथम्भूतां महादेवीम् उद्यद्भानुसहस्रकान्तिम् उद्यतां भानूनां सूर्याणां सहस्रस्येव कान्तिर्दीप्तिर्यस्याः तथाभूताम्। पुनः कीदृशीम् अमलां निर्मलाम्। पुनः कीदृशीम् वह्न्यर्कचन्द्रेक्षणाम् वह्न्यर्कचन्द्राः ईक्षणानि लोचनानि यस्यास्तथाभूताम्। पुनः कीदृशीम् मुक्तायन्त्रितहेमकुण्डललसत्स्मेराननाम्भोरुहाम् मुक्ताभिर्यन्त्रिताभ्यां सम्बद्धाभ्यां हेमकुण्डलाभ्यां लसद्दीप्यमान स्मेरमीषद्धसनशीलम् आननाम्भोरुहं मुखपद्मं यस्याः तथाभूताम्। पुनः कीदृशीम् हस्ताब्जे पाणि कमलैः अभयं वरं चक्रं तथा सुगन्धादिकं दधदब्जं कमलं च दधतीम्। पुनः कीदृशीम् पीनोतुङ्गपयोधराम् पीनौ महान्तावुतुङ्गावुन्नतौ पयोधरौ स्तनौ यस्यास्तथाभूताम्। पुनः कीदृशीम् भयहराम् भयघ्नीम्। पुनः कीदृशीम् पीताम्बराम् पीताम्बरं वस्त्रं यस्यास्तथाभूताम्।।४४-४६।।

मायां लक्ष्मीं समुच्चार्य थान्तं षष्ठस्वरान्वितम् ।
बिन्दुयुक्तं तदन्ते च योजयेद्वह्निवल्लभाम् ।।४७।।

पद्मा–माया (ह्रीं) लक्ष्मी (श्रीं) का उच्चारण कर थान्त अर्थात् द में षष्ठ स्वर ऊ को बिन्दुयुक्त (दूं) करके अन्त में स्वाहा का उच्चारण करे। इस प्रकार यह मन्त्र होगा - **ह्रीं श्रीं दूं स्वाहा**।।४७।।

हरि०–भगवत्या मन्त्रमेवाह मायामित्यादिना। मायां ह्रीं बीजं लक्ष्मीं श्रीं बीज च समुच्चार्य ततः षष्ठस्वरान्वितं बिन्दुयुक्तं च थान्तं वर्णं समुच्चार्य तदन्ते वह्निवल्लभां योजयेत्। सकलपदयोजनया ह्रीं श्रीं दूं स्वाहेति मन्त्रो जातः। थान्तमित्यत्र सान्तमिति वाक्कचित्॥४७॥

पूर्ववत् स्थापयन् देवीं सर्वदेवबलिं हरेत् ।
दधियुक्तमाषभक्तं शर्करादिसमन्वितम् ॥४८॥

पद्मा–पहले की भाँति देवी को स्थापित कर सभी देवों को बलि प्रदान करे; शर्करामिश्रित दधियुक्त माषभक्त की बलि देवताओं को दे ।

हरि०–पूर्ववदित्यादि। ततः पूर्ववत् शिवलिङ्गवत् सुगन्धिपुष्पमाल्येन वाससा चाऽऽच्छाद्य दिव्यशय्यां देवीं स्थापयन् सन् दधियुतं शर्करादिसमन्वितं च माषभक्तं सर्वदेवबलिं हरेद्दद्यात्॥४८॥

ऐशान्यां बलिमादाय वारुणेन विशोधयेत् ।
संपूज्य गन्धपुष्पाभ्यां मन्त्रेणानेन चार्पयेत् ॥४९॥

पद्मा–यह बलि (पूजन सामग्री) ईशानकोण में रखे तथा वारुणबीज "वं" से शुद्ध करे। तदुपरान्त गन्धपुष्प से उसकी पूजा कर कहे गए मन्त्र से उत्सर्ग करे ॥४९॥

हरि०–ननु केन विधिना सर्वदेवबलिं दद्यादित्याकाङ्क्षायामाह ऐशान्यामित्यादि। वारुणेन वमिति मन्त्रेण॥४९॥

सर्वे देवाः सिद्धगणा गन्धर्वोरगराक्षसाः ।
पिशाचा मातरो यक्षा भूताश्च पितरस्तथा ॥५०॥
ऋषयो येऽन्यदेवाश्च बलिं गृह्णन्तु संयताः ।
परिवार्य महादेवं तिष्ठन्तु गिरिजामपि ॥५१॥

पद्मा–सभी देवगण, सिद्धगण, गन्धर्व, नाग, राक्षस, पिशाच, मातृगण, यक्ष, भूत, पितृगण, ऋषि एवं अन्य देवगण सावधान (संयत) होकर बलि को ग्रहण करें तथा–ये सभी महादेव और महादेवी पार्वती के चारों ओर रहें॥५०॥५१॥

हरि०–सर्वदेवबलिसमर्पणमन्त्रमेवा सर्वे देवाः सिद्धगणा इत्यादिकम् ॥५०-५१॥

ततो जपेन्महादेव्या मन्त्रमेनं यथेप्सितम् ।
गीतवाद्यादिभिः सद्भिर्विदध्यान्मङ्गलक्रियाम् ॥५२॥

पद्मा–तदुपरान्त महादेवी के **ह्रीं श्रीं दूं स्वाहा** मन्त्र का यथाशक्ति जप करे। इसके पश्चात् गीत वाद्यादि के द्वारा माङ्गलिक क्रिया करे ।

हरि०–एनं ह्रीं श्रीं दूं स्वाहेतीमम्॥५२॥

अधिवासं विधायेत्थं परेऽह्नि विहितक्रियः ।
संकल्पं विधिवत् कृत्वा पञ्चदेवान् प्रपूजयेत् ॥५३॥

मातृपूजां वसोर्धारां वृद्धिश्राद्धं समाचरन् ।
महेशद्वारपालांश्च यजेत् भक्त्या समाहितः ।।५४।।

पद्मा–इस प्रकार अधिवास करके दूसरे दिन नित्यक्रिया कर विधिवत् संकल्प करके पञ्चदेवों की पूजा करे। फिर मातृकापूजन, वसोर्धा तथा वृद्धिश्राद्ध कर भक्तिपूर्वक पूजा कर भगवान् शिव के नन्दी आदि द्वारपालों की पूजा करे ।

हरि०–पञ्चदेवान् ब्रह्मादीन् ।।५३-५४।।

नन्दी महाबलः कीशवदनो गणनायकः ।
द्वारपालाः शिवस्यैते सर्वे शस्त्रास्त्रपाणयः ।।५५।।
ततो लिङ्गं समानीय वेदीरूपां च तारिणीम् ।
मण्डले सर्वतोभद्रे स्थापयेद्वा शुभासने ।।५६।।

पद्मा–नन्दी, महाबल, कीशवदन, गणनायक–ये भगवान् शिव के द्वारपाल हैं। इन सभी के हाथ में अस्त्र-शस्त्र हैं। इसके उपरान्त वेदीरूपा तारिणी तथा शिवलिंग को लाकर सर्वतोभद्र मण्डल में अथवा उत्तम आसन पर स्थापित करे ।

हरि०–सम्पूज्यान्महेशद्वारपालानाह नन्दीत्यादिनैकेन ।।५५-५६।।

अष्टभिः कलशैः शम्भुं मनुना त्र्यम्बकेन च ।
स्नापयित्वाऽर्चयेत् भक्त्या षोडशैरुपचारकैः ।।५७।।

पद्मा–तदुपरान्त **ह्रीं ॐ ह्रौं त्र्यम्बकं यजामहे** मन्त्र का पाठ करते हुए आठ कलश के जल से भगवान् शिव को स्नान कराकर भक्तिपूर्वक षोडशोपचार से पूजन करे।।५७।।

हरि०–मनुना ह्रीं ओं ह्रौं इति मन्त्रेण। त्र्यम्बकेन् त्र्यम्बकं यजामहे इत्यादिना मन्त्रेण।।५७।।

वेदीं च मूलमन्त्रेण तद्वत् संस्थाप्य पूजयन् ।
कृताञ्जलिपुटः साधुः प्रार्थयेत् शङ्करं शिवम्।।५८।।

पद्मा–फिर ह्रीं श्रीं हूँ स्वाहा मन्त्र से वेदी को स्थापना कर उस पर लिंग को स्थापित कर पूजन करे और साधु पुरुष भगवान् शिव की प्रार्थना करे ।

हरि०–मूलमन्त्रेण ह्रीं श्रीं दूँ स्वाहेति मन्त्रेण। वेदीमित्यत्र देवीमितिवा क्वचित्।।५८।।

आगच्छ भगवन् शम्भो! सर्वदेवनमस्कृत ।
पिनाकपाणे! सर्वेश! महादेव! नमोऽस्तुते ।।५९।।
आगच्छ मन्दिरे देव! भक्तानुग्रहकारक ।
भगवत्या सहागच्छ कृपां कुरु नमो नमः ।।६०।।
मातर्देवि! महामाये! सर्वकल्याणकारिणि ।
प्रसीद शम्भुना सार्धं नमस्तेऽस्तु हरप्रिये ।।६१।।

आयाहि वरदे! देवि! भवनेऽस्मिन् वरप्रदे ।
प्रीता भव महेशानि! सर्वसम्पत्करी भव ।।६२।।
उत्तिष्ठ देवदेवेशि स्वैः स्वैः परिकरैः सह ।
सुखं निवसतां गेहे प्रीयेतां भक्तवत्सलैः ।।६३।।
इति प्रार्थ्य शिवं देवीं मंगलध्वनिपूर्वकम् ।
प्रदक्षिणं त्रिधा वेश्म कारयित्वा प्रवेशयेत ।।६४।।

पद्मा–हे भगवन्! हे शम्भो! हे सभी देवों से नमस्कृत! हे पिनाकपाणे! हे सर्वेश! हे महादेव! आओ, तुम्हें नमस्कार है। हे देव! तुम मन्दिर में आओ। हे भक्तों पर कृपा करने वाले भगवती के साथ इस मन्दिर में आओ। तुम्हे बारम्बार नमस्कार है। हे महामाये! हे सर्वकल्याणकारिणि! हे हरप्रिये! हे माते! हे देवि! भगवान् शिव के साथ तुम प्रसन्न होओ। तुमको नमस्कार है। हे महेशानि! तुम सभी प्रकार की सम्पत्ति देने वाली होओ। हे दे हे देवेशि! अपने-अपने परिवार के साथ उठो। तुम दोनों भक्तवत्सल इस गृह में सु निवास करो तथा प्रसन्न होओ। इस प्रकार शिव शिवा की प्रार्थना कर मंगलध्व हुए तीन बार गृह की प्रदक्षिणा कर उन्हें घर के भीतर प्रवेश कराए ।

हरि०–ननु शङ्करं शिवाञ्च प्रति किं प्रार्थयेदित्यपेक्षायामाह आगच्छ भग इत्यादि ।।५९-६४।।

पाषाणखनिते गर्ते इष्टकारचित्तेऽपि वा ।
अधस्त्रिभागलिङ्गस्य रोपयेन्मूलमुच्चरन् ।।६५।।
यावच्चन्द्रश्च सूर्यश्च यावत् पृथ्वी च सागराः ।
तावदत्र महादेव स्थिरो भव नमोऽस्तु ते ।।६६।।

पद्मा–इसके पश्चात् मूलमन्त्र का जप करते हुए कहे गए मन्त्र से पाषाणखनित गर्त्त में या ईंट से बने गर्त्त के मध्य में लिंग के नीचे का तीन भाग रोपित करे। जब तक चन्द्र और सूर्य हैं, जब तक पृथ्वी और सागर हैं तब तक हे महादेव! तुम इस स्थान में रहो, तुम्हें नमस्कार है ।

हरि०–**पाषाणेत्यादि**। ततो मूलं मन्त्रमुच्चरन् साधकः पाषाणे स्वनिते इष्टकार-चितेऽपि वा गर्ते लिङ्गस्याऽधस्त्रिभागमधो रोपयेत् ।।६५-६६।।

मन्त्रेणानेन सुदृढं कारयित्वा सदाशिवम् ।
उत्तराग्रां तत्र वेदीं मूलेनैव प्रवेशयेत् ।।६७।।
स्थिरा भव जगद्धात्रि सृष्टिस्थित्यन्तकारिणि।
यावद्दिवानिशानाथौ तावदत्र स्थिरा भव ।।६८।।

पद्मा–इस मन्त्र द्वारा सदाशिव को दृढ़ता से स्थापित कर मूलमन्त्र को जपते हुए

उत्तरमुख किया हुआ गौरीपट्ट को उनके ऊपर से प्रवेश कराए और यह मन्त्र पढ़े कि "**हे सृष्टिस्थिसंहारकारिणि! हे जगद्धात्री! स्थिर हो। जब तक सूर्य और चन्द्र हैं, तब तक इस स्थान में स्थिर होकर रहो।**

हरि०–मन्त्रेणेत्यादि। अनेन यावच्चन्द्रश्च सूर्यश्चेत्यादिना मन्त्रेण सदाशिवं सुदृढं कारयित्वा मूलेनैव मन्त्रेण तत्र सदाशिवे वेदीं प्रवेशयेत् ॥६७-६८॥

अनेन सुदृढीकृत्य लिङ्गं स्पृष्ट्वा पठेदिमम् ॥६९॥

पद्मा–इस प्रकार यन्त्र को सुदृढ़ कर शिवलिङ्ग को स्पर्श कर आगे कहे गए मन्त्रों का पाठ करे॥६९॥

हरि०–सुदृढीकृत्य वेदीमिति शेषः॥६९॥

व्याघ्रा भूताः पिशाचाश्च गन्धर्वाः सिद्धचारणाः।
यक्षा नागाश्च वेतालाः लोकपाला महर्षयः ॥७०॥
मातरो गणनाथाश्च विष्णुर्ब्रह्मा बृहस्पतिः।
यस्य सिंहासने युक्ता भूचराः खेचरास्तथा ॥७१॥
आवाहयामि तं देवं त्र्यक्षमीशानमव्ययम्।
आगच्छ भगवन्नत्र ब्रह्मनिर्मितयन्त्रके ॥७२॥
ध्रुवाय भव सर्वेषां शुभाय च सुखाय च।
ततो देवप्रतिष्ठोक्तविधिना स्नापयन् शिवम् ॥७३॥
प्राग्वद्ध्यात्वा मानसोपचारैः सम्पूजयेत् प्रिये।
विशेषमर्घ्यं संस्थाप्य समर्च्य गणदेवताः।
पुनर्ध्यात्वा महेशानं पुष्पं लिङ्गोपरि न्यसेत् ॥७४॥

पद्मा–व्याघ्र, भूत, पिशाच, गन्धर्व, सिद्ध, चारण, यक्ष, नाग, वेताल, लोकपाल, महर्षिगण, मातृकागण, गणपतिगण, विष्णु, ब्रह्मा, बृहस्पति, भूचर तथा खेचर जिनके सिंहासन से युक्त हैं, उन अव्यय, तीन नेत्रवाले ईशान का मैं आवाहन करता हूँ। हे भगवन! इस ब्रह्मनिर्मित यन्त्र में रहिए। तुम सभी को स्थिर रखो और सभी प्राणियों के लिए सुखी एवं कल्याणकारी हो। इसके उपरान्त देवता की प्रतिष्ठा में कही गयी विधि के अनुसार भगवान् शिव को स्नान कराए। हे प्रिये! पहले की भाँति ध्यान करके मानसिक उपचारों से पूजन करे। तदुपरान्त विशेषार्घ्य स्थापित करके गणदेवताओं का पूजन करे और पुनः ध्यान लिंग पर पुष्प चढ़ाए।

हरि०–इमं कं पठेदित्याकाङ्क्षायामाह व्याघ्रभूता इत्यादीत्यादि॥७०-७४॥

पाशाङ्कुशपुटा शक्तिर्यादिसान्ताः सबिन्दुकाः।
हौं हंस इति मन्त्रेण तत्र प्राणान् निवेशयेत्।

चन्दनागुरुकाश्मीरैर्विलिप्य गिरिजापतिम् ।।७५।।
यजेत् प्रागुक्तविधिना षोडशैरुपचारकैः ।
जातनामादिसंस्कारान् कृत्वा पूर्वविधानवत् ।।७६।।

पद्मा–पाश (आं) और अंकुश (क्रों) से पुटित माया (ह्रीं) का उच्चारण कर 'य' से लेकर 'स' तक के सात अक्षरों को अनुस्वारयुक्त कर उनका उच्चारण कर अन्त में 'हौं हंसः' मन्त्र का उचारण कर उस लिंग में प्राण-प्रतिष्ठा करे। तत्पश्चात् चन्दन, अगर और केशर से शिव के अंग का पूजन कर पहले कही गई विधि से षोडशोपचारों से पूजन करे और पहले कही गयी विधि के अनुसार जातकर्म, नामकरण आदि संस्कार करे ।

विशेष–आँ ह्रीं क्रों यं रं लं वं शं षं सं हौं हं सः।।

हरि०–पाशेत्यादि। पाशाङ्कुशपुटा पाशाङ्कुशाभ्याम् आँ क्रों बीजाभ्यां पुट आद्यन्तयोः संयोगो यस्यास्तथाभूता शक्तिः ह्रीं बीजं पूर्वमुच्येत्। ततः सबिन्दुकाः सानुस्वारा यादिसान्ता वर्णा वक्तव्याः। ततो हौं हंसः इत्युच्येत्। योजनया आँ ह्रीं क्रों यं रं, लं, वं, शं, षं, सं, हौं हंस इति मन्त्रो जातः। इत्यनेन मन्त्रेण प्रागुक्तविधानेन तत्र लिङ्गे प्राणान्निवेशयेत् ।।७५-७६।।

समाप्य सर्वं विधिवत् वेद्यां देवीं महेश्वरीम् ।
अभ्यर्च्य तत्र देवस्य मूर्तीरष्टौ प्रपूजयेत् ।।७७।।

पद्मा–समस्त कर्मों को विधानपूर्वक कर्म करे। तत्पश्चात् वेदी में महेश्वरी का पूजन करके उसमें देवदेव की अष्टमूर्ति की पूजा करे।

हरि०–तत्र वेद्यामेव ।।७७।।

शर्वः क्षितिः समुदिष्टा भवो जलमुदाहृता ।
रुद्रोऽग्निरुग्रो वायुः स्याद् भीम आकाशशब्दितः ।।७८।।
पशोः पतिर्यजमानो महादेवः सुधाकरः ।
ईशानः सूर्य इत्येते मूर्तयोऽष्टौप्रकीर्तिताः ।।७९।।

पद्मा–शर्वाय क्षितिमूर्तये नमः, भवाय जलमूर्तये नमः, रुद्राय अग्निमूर्तये नमः, उग्राय वायुमूर्तये नमः, भीमाय आकाशमूर्तये नमः, पशुपतये यजमानमूर्तये नमः, महादेवाय सोममूर्तये नमः, ईशानाय सूर्यमूर्तये नमः–यही अष्टमूर्तियां कही गयी हैं ।

हरि०–महादेवस्य प्रपूज्या अष्टौ मूर्तीराह शर्वः क्षितिरित्यादिभ्यां द्वाभ्याम् ।।७८-७९।।

प्रणवादिनमोऽन्तेन प्रत्येकाह्वानपूर्वकम् ।
पूर्वादीशानपर्यन्तमष्टमूर्तीः क्रमाद्यजेत् ।।८०।।

पद्मा–सर्वप्रथम आदि में 'प्रणव' तथा अन्त में 'नमः' लगाकर प्रत्येक मूर्ति का आवाहन कर पूर्व से ईशान कोण तक क्रमशः आठ मूर्तियों की पूजा करे ।

हरि०–ननु केन विधिना महादेवस्याष्टौ मूर्तिः प्रपूजयेदित्यपेक्षायामाह प्रणवादीत्यादि।

प्रणवादिनमोऽन्तेन नाममन्त्रेण। पूर्वात् पूर्वमारभ्य। यथा शर्व क्षितिमूर्ते इहागच्छ इह तिष्ठ इह सन्निधेहि मम पूजां गृहाणेत्याहूय ओं शर्वाय क्षितिमूर्तये नमः इति मन्त्रेण वेद्यां पूर्वदेशे गन्धपुष्पादिभिः शर्वं क्षितिमूर्तिं यजेत्। एवमेवाऽऽग्नेयादिषु क्रमतोऽन्या अपि सप्तमूर्तीं यजेत्॥८०॥

विशेष–अष्टमूर्तियों का आवाहन एवं पूजन इस प्रकार है–**हे शर्व हे क्षितिमूर्ते! इहागच्छ इहागच्छ इह तिष्ठ इह तिष्ठ इह सन्निधेहि इह सन्निधेहि इह सम्मुखो भव इह सम्मुखो भव इहं सन्निद्धो भव इह सन्निद्धो भव मय पूजां गृहाण'** ऐसे मन्त्र से आवाहन करके पूर्वदिशा में इस मंत्र से पूजन करे ॐ शर्वाय क्षितिमूर्तये नमः आठ दिशा में अष्टमूर्ति की पूजा में भी नाम परिवर्तित कर इस प्रकार आवाहन और पूजन करे॥८०॥

इन्द्रादिदिक्पतीनिष्ट्वा ब्राह्म्याद्याश्चाष्टऽष्टमातृकाः।
वृषं वितानं गेहादि दद्यादीशाय साधकः ॥८१॥
ततः कृताञ्जलिर्भक्त्या प्रार्थयेत् पार्वतीपतिम् ॥८२॥

पद्या–साधक इन्द्रादि सभी दिक्पालों और ब्राह्मी आदि अष्ट मातृकाओं की पूजा करके वृष, वितान, गृहादि सभी शिव को प्रदान करे। तत्पश्चात् हाथ जोड़कर भक्तिपूर्वक पार्वतीपति शिव जी से प्रार्थना करे।

हरि०–इष्ट्वा पूजयित्वा ॥८१-८२॥

गृहेऽस्मिन् करुणासिन्धो स्थापितोऽसि मया प्रभो!।
प्रसीद भगवन् शम्भो सर्वकारणकारण ॥८३॥
यावत् ससागरा पृथ्वी यावत् शशिदिवाकरौ।
तावदस्मिन् गृहे तिष्ठ नमस्ते परमेश्वर ॥८४॥
गृहेऽस्मिन् यस्य कस्यापि जीवस्य मरणं भवेत्।
न तत्पापैः प्रलिप्येऽहं प्रसादात्तव धूर्जटे ॥८५॥
ततः प्रदक्षिणीकृत्य नमस्कृत्य गृहं व्रजेत्।
प्रभाते पुनरागत्य स्नापयेच्चन्द्रशेखरम् ॥८६॥

पद्या–हे करुणा के सागर! मैंने तुम्हे इस गृह में स्थापित किया है। हे प्रभो! तुम सभी कारणों के कारण हो। हे भगवन्! हे शम्भो! प्रसन्न होइए। हे परमेश्वर! जब तक सागर के सहित पृथ्वी रहेगी, जब तक चन्द्र, सूर्य रहेंगे तब तक आप इस घर में रहिए। तुमको नमस्कार है। हे धूर्जटे! इस गृह में जिस किसी भी प्राणी की अकालमृत्यु हो, तुम्हारी कृपा से मैं उसके पाप में लिप्त न होऊँ। इसके उपरान्त प्रदक्षिणा करके घर को जाए तथा दूसरे दिन प्रातःकाल उस स्थान में आकर भगवान् शिव को स्नान कराए।

हरि०–ननु पार्वतीपतिं किं प्रार्थयेदित्याकाङ्क्षायामाह गृहेऽस्मिन् करुणासिन्धो इत्यादि ॥८३-८६॥

शुद्धैः पञ्चामृतैः स्नानं प्रथमं प्रतिपादयेत् ।
ततः सुगन्धितोयानां कलशैः शतसंख्यकैः ।।८७।।

पद्मा–सर्वप्रथम शुद्ध पञ्चामृत से स्नान कराए। इसके पश्चात् सुगन्धित जल से भरे एक सौ कलशों के द्वारा स्नान कराए ।

हरि०–ननु केन द्रव्येण शिवं स्नापयेदित्यपेक्षायामाह शुद्धैरित्यादि।।८७।।

संपूज्य तं यथाशक्त्या प्रार्थयेत् भक्तिभावतः।।८८।।

पद्मा–अपनी क्षमता के अनुसार पूजन करने के उपरान्त भक्तिभाव से प्रार्थना करे।

हरि०–तम् शिवम्।।८८।।

विधिहीनं क्रियाहीनं भक्तिहीनं यदर्चितम् ।
सम्पूर्णमस्तु तत् सर्वं त्वत्प्रसादादुमापते ।।८९।।
यावच्चन्द्रश्च सूर्यश्च यावत् पृथ्वी च सागराः ।
तावन्मे कीर्तिरतुला लोके तिष्ठतु सर्वदा ।।९०।।
नमस्त्र्यक्षाय रुद्राय पिनाकवरधारिणे ।
विष्णुब्रह्मेन्द्रसूर्याद्यैरर्चिताय नमो नमः ।।९१।।
ततस्तु दक्षिणां दत्त्वा भोजयेत् कौलिकान् द्विजान् ।
भक्ष्यैः पेयैश्च वासोभिर्दरिद्रान् परितोषयेत् ।।९२।।
प्रत्यहं पूजयेद्देवं यथाविभवमात्मनः ।
स्थावरं शिवलिङ्गं तु न कदापि विचालयेत् ।।९३।।
अचलस्येशलिङ्गस्य प्रतिष्ठां कथितेति ते ।
सङ्क्षेपात् परमेशानि! सर्वागमसमुद्धृता ।।९४।।

पद्मा–"हे उमापते! इस पूजन में जो कुछ भी विधिहीन, क्रियाहीन तथा भक्तिहीन हुआ हो आपकी कृपा से सब पूर्ण हो। जब तक पृथ्वी तथा सागर, सूर्य और चन्द्र रहे तब तक इस लोक (संसार, पृथ्वी) में अतुल कीर्ति बनी रहे। श्रेष्ठ पिनाकधारी तीन नेत्र वाले रुद्र को नमस्कार है। ब्रह्मा, विष्णु, इन्द्र, सूर्य आदि देवताओं के द्वारा पूजित भगवान् शिव को नमस्कार है।"

इसके पश्चात् दक्षिणा प्रदान कर कौलिकों एवं ब्राह्मणों को भोजन कराये । दरिद्रों को भक्ष्य पदार्थों, पेय द्रव्यों तथा वस्त्रों से सन्तुष्ट करे। प्रतिदिन अपनी सामर्थ्य के अनुसार भगवान् शिव की पूजा करे किन्तु स्थापित शिवलिंग को कभी भी अपने स्थान से न हटाए। हे परमेशानि! मैंने सभी आगमों से उद्धृत कर संक्षेप में अचल शिवलिंग के स्थापना की विधि तुमसे कही है।।८९-९४।।

हरि०–ननु शिवं किं प्रार्थयेदित्याकाङ्क्षायामाह विधिहीनमित्यादि।।८९-९४।।

श्रीदेव्युवाच

यद्यकस्माद्देवतानां पूजाबाधो भवेद्विभो ।
विधेयं तत्र किं भक्तैस्तन्मेकथय तत्त्वतः ।।९५।।
अपूजनीया कैर्दोषैर्भवेयुर्देवमूर्तयः ।
त्याज्या वा केन दोषेण तदुपायश्च भण्यताम् ।।९६।।

पद्मा–श्री देवी ने कहा - हे विभो! यदि अकस्मात् किसी दिन देवता का पूजन न हो सके तो भक्तों को क्या करना चाहिए, आप इसे कहिए। किस दोष के कारण देवमूर्ति अपूज्य और त्याज्य हो जाती है, इसे भी मुझसे कहिए ।

हरि०–**श्रीदेव्युवाच यदीत्यादि।** तत्र पूजाबाधे सति ।।९५-९६।।

श्रीसदाशिव उवाच

एकाहमर्चनाबाधे द्विगुणं देवमर्चयेत् ।
दिनद्वये तद्द्विगुणं तद्द्वैगुण्यं दिनत्रये ।।९७।।
ततः षण्मासपर्यन्तं यदि पूजा न सम्भवेत् ।
तदाऽष्टकलशैर्देवं स्नापयित्वा यजेत् सुधीः ।।९८।।
षण्मासात् परतो देवं प्राक्संस्कारविधानतः ।
पुनः सुसंस्कृतं कृत्वा पूजयेत् साधकाग्रणीः ।।९९।।

पद्मा–श्रीसदाशिव ने कहा - यदि किसी दिन पूजा न हो सके, तो उसके दूसरे दिन उस देवमूर्ति की दुगुनी पूजा करे। दो दिन पूजा न हो सके तो चौगुनी और तीन दिन पूजा न हो सके, तो आठगुनी पूजा करे। यदि छः मास तक पूजा न करे, तो आठ कलश के जल से देवमूर्ति को स्नान कराकर पूजा करे। यदि छः महीने से अधिक समय तक पूजा न हो तो, पहले कहे गए संस्कार की विधि के अनुसार देवमूर्ति को पुनः संस्कारित कर पूजा करे।

हरि०–एवं प्रार्थितः सन् श्रीसदाशिव उवाच एकाहमर्चनाबाधे इत्यादि।।९७-९९।।

खण्डितं स्फुटितं व्यङ्गं संस्पृष्टं कुष्ठरोगिणा ।
पतितं दुष्टभूम्यादौ न देवं पूजयेद्बुधः ।।१००।।
हीनाङ्गं स्फुटितं भग्नं देवं तोये विसर्जयेत् ।
स्पर्शादिदोषदुष्टं तु संस्कृत्य पुनरर्चयेत् ।।१०१।।
महापीठेऽनादिलिङ्गे सर्वदोषविवर्जिते ।
सर्वदा पूजयेत्तत्र स्वं स्वमिष्टं सुखाप्तये ।।१०२।।
यद्यत्पृष्टं महामाये नृणां कर्मानुजीविनाम् ।
निःश्रेयसाय तत् सर्वं सविशेषं प्रकीर्तितम् ।।१०३।।

विना कर्म न तिष्ठन्ति क्षणार्धमपि देहिनः ।
अनिच्छन्तोऽपि विवशाः कृष्यन्ते कर्मवायुना ।।१०४।।
कर्मणा सुखमश्नन्ति दुःखमश्नति कर्मणा ।
जायन्ते च प्रलीयन्ते वर्तन्ते कर्मणां वशात् ।।१०५।।
अतो बहुविधं कर्म कथितं साधनान्वितम् ।
प्रवृत्तयेऽल्पबोधानां दुश्चेष्टितनिवृत्तये ।।१०६।।
यतो हि कर्म द्विविधं शुभञ्चाऽशुभमेव च ।
अशुभात् कर्मणो यान्ति प्राणिनस्तीव्रयातनाम्।।१०७।।

पद्मा–जो मूर्ति टूटी हो, छिद्रवाली हो, कुष्ठ रोगी द्वारा स्पर्श की गयी हो, अंगहीन हो, दूषित भूमि में गिरी हो, बुद्धिमान् मनुष्य ऐसी मूर्ति की पूजा न करे। जो मूर्ति अंगहीन हो, अथवा टूट गयी हो उसको जल में विसर्जित कर दे। किन्तु जो मूर्ति स्पर्शादि दोष से दूषित हो गयी हो, उसको पुनः संस्कारित कर पूजा करें। जो महापीठ और अनादिलिंग है, वह स्पर्शादि दोषों से रहित हैं। सुख प्राप्ति के लिए उसमें अपने इष्ट देवता की पूजा करे। हे महामाये! कर्म के अनुसार जीवित रहने वाले मनुष्यों के कल्याण के लिए जो कुछ तुमने पूछा, मैंने वह सब कहा है। मनुष्य बिना कर्म किए आधा क्षण भी नहीं रह सकते। वे इच्छा न होते हुए भी विवश होकर कर्मरूपी वायु के द्वारा आकर्षित किए जाते हैं। कर्मों के द्वारा ही मनुष्यगण सुख प्राप्त करते हैं, दुःख भोगते हैं, जन्म पाते हैं, मृत्यु के वश में होते हैं तथा कर्मों के वश में ही रहकर जीवित रहते हैं। इसीलिए मैंने अल्पबुद्धि वाले मनुष्यों की प्रवृत्ति के लिए और दुष्टप्रवृत्ति की निवृत्ति के लिए साधन सहित अनेक प्रकार के कर्म कहे हैं। कर्म दो प्रकार के कहे गए हैं–शुभ तथा अशुभ। अशुभ कर्म से प्राणी अत्यधिक कष्ट और यातना पाते है ।

हरि०–व्यङ्गम् विगताङ्गम् ।।१००-१०७।।

कर्मणोऽपि शुभाद्देवि: फलेष्वासक्तचेतसः ।
प्रयान्त्यायान्त्यमुत्रेह कर्म शृङ्खलयन्त्रिताः ।।१०८।।
यावन्न क्षीयते कर्म शुभं वाऽशुभमेव वा ।
तावन्न जायते मोक्षो नृणां कल्पशतैरपि ।।१०९।।
यथा लौहमयैः पाशैः पाशैः स्वर्णमयैरपि ।
तथा बद्धो भवेज्जीवः कर्मभिश्चाऽशुभैः शुभैः।।११०।।

पद्मा–कहे देवि! जो मनुष्य फल में आसक्त होकर शुभ कर्म को करते हैं, वे भी कर्मों के बँधन में बँधकर इस लोक तथा परलोक में आते जाते रहते हैं। शुभ-अशुभ कर्मों का क्षय न होने पर, सौ कल्पों तक भी मनुष्य मुक्त नहीं होता है। जिस प्रकार पशु लोहे अथवा सोने की जञ्जीर से बँधा रहता है उसी प्रकार मनुष्य भी शुभ-अशुभ कर्मों से बँधा रहता है ।

हरि०–एवं नानाविधानि सुखप्रापकानि प्रचुरसाधनसंयुक्तानि कर्माणि व्याहृत्येदानीं ब्रह्मज्ञानेनैव लोका मुक्तिमधिगच्छेयुर्नतु कर्मभिरिति व्याहर्तुमुपक्रमते कर्मणोऽपि शुभादित्यादि। हे देवि शुभादपि कर्मणो हेतोः फलेष्वासक्तचेतसो जनाः कर्मशृङ्खलयन्त्रिताः कर्मरूपेण निगडेन बद्धाः सन्तो लोकादस्मादमुत्र परलोके प्रयान्ति तस्माच्च लोकात् पुनरिहाऽऽयान्ति मुक्तिभाजिनस्तु न भवन्तीत्यर्थः॥१०८-११०॥

कुर्वाणः सततं कर्म कृत्वा कष्टशतान्यपि ।
तावन्न लभते मोक्षं यावत् ज्ञानं न विन्दति ।।१११।।

पद्मा–जब तक ज्ञान नहीं प्राप्त होता, तब तक निरन्तर कर्म करके और सैकड़ों प्रकार के कष्ट उठाकर भी मुक्ति प्राप्त नहीं होती ।

हरि०–न विन्दति न लभते॥१११॥

ज्ञानं तत्त्वविचारेण निष्कामेणापि कर्मणा ।
जायते क्षीणतमसां विदुषां निर्मलात्मनाम् ।।११२।।
ब्रह्मादितृणपर्यन्तं मायया कल्पितं जगत् ।
सत्यमेकं परं ब्रह्म विदित्वैवं सुखी भवेत् ।।११३।।

पद्मा–ज्ञानी, निर्मल चित्तवाले विद्वानों के तत्त्वविचार अथवा निष्काम कर्म के अनुष्ठान द्वारा ही ज्ञान प्राप्त होता है। ब्रह्मा से लेकर एक तिनके तक सम्पूर्ण जगत् माया के द्वारा कल्पित है। एकमात्र 'परम ब्रह्म' ही सत्य है ऐसा जो जानता है वही सुख को प्राप्त करता है ।

हरि०–ननु मोक्षैकसाधनं ज्ञानं कथमुत्पद्यते तत्राह ज्ञानमित्यादि। तत्त्वविचारेण ब्रह्मणो विचारेण क्षीणतमसाम् क्षीणाज्ञानरूपान्धकाराणाम्। निर्मलात्मनां विमलान्तःकरणानाम्॥११२-११३॥

विहाय नामरूपाणि नित्ये ब्रह्मणि निश्चले ।
परिनिश्चिततत्त्वो यः स मुक्तः कर्मबन्धनात् ।।११४।।
न मुक्तिर्जपनाद्धोमादुपवासशतैरपि ।
ब्रह्मैवाऽहमिति ज्ञात्वा मुक्तो भवति देहभृत् ।।११५।।

पद्मा–जो नाम और रूप को त्यागकर नित्य, निश्चल ब्रह्म के तत्त्व का निरूपण करता है, वह कर्म के बन्धन से मुक्त हो जाता है। जप, होम तथा सैकड़ों उपवास करने से भी मुक्ति प्राप्त नहीं होती है किन्तु "मैं ही ब्रह्म हूँ" ऐसा ज्ञान प्राप्त हो जाने पर मनुष्य मुक्ति को प्राप्त हो जाता है ।

हरि०–**विहायेत्यादि**। नित्ये अविनाशिनि निश्चले पूर्वरूपापरित्यागिनि परिनिश्चितं सम्यक् निर्णीतं तत्त्वं याथार्थ्यं येन स परिनिश्चिततत्त्वः॥११४-११५॥

आत्मा साक्षी विभुः पूर्णः सत्योऽद्वैतः परात्परः।
देहस्थोऽपि न देहस्थो ज्ञात्वैवं मुक्तिभाग् भवेत् ।।११६।।

बालक्रीडनवत् सर्वं रूपनामादिकल्पनम् ।
विहाय ब्रह्मनिष्ठो यःस मुक्तो नाऽत्र संशयः।।११७।।
मनसा कल्पिता मूर्ति नृणां चेन्मोक्षसाधनी ।
स्वप्नलब्धेन राज्येन राजानो मानवास्तदा ।।११८।।

पद्मा–आत्मा साक्षी है अर्थात् वह शुभ अशुभ को देखने वाला है, वह सर्वव्यापक, अखण्ड, अद्वितीय एवं परात्पर है। वह देह से सम्बद्ध होते हुए भी देह से असम्बद्ध है। इस प्रकार जानने से प्राणी की मुक्ति हो जाती है। जो मनुष्य नाम तथा रूपादि की कल्पना को बालक के खेल के समान जानकर त्याग कर ब्रह्मनिष्ठ होता है, वह मुक्ति को प्राप्त होता है। इसमें संशय नहीं है। मन में कल्पना की गयी मूर्ति यदि मनुष्यों को मोक्ष प्रदान करती होती, तो स्वप्न में प्राप्त राज्य द्वारा ही मनुष्य वास्तविक रूप से राजा बन जाते। तात्पर्य यह है कि शास्त्रोक्त मूर्ति ही मनुष्यों को मोक्ष प्रदान करती है ।

हरि०–आत्मेत्यादि। साक्षी शुभाशुभद्रष्टा। विभुः व्यापकः। पूर्णः अखण्डरूपः। अद्वैतः स्वजातीयविजातीयस्वगतभेदशून्यः।।११६-११८।।

मृच्छिलाधातुदार्वादिमूर्तावीश्वरबुद्धयः ।
क्लिश्यन्तस्तपसा ज्ञानं विना मोक्षं न यान्ति ते।।११९।।

पद्मा–मिट्टी, पत्थर, धातु अथवा काष्ठादि की मूर्ति को ईश्वर मानने वाले तप (कृच्छचान्द्रायण व्रत) करते हुए कष्ट ही पाते हैं; क्योंकि बिना ज्ञान के मुक्ति नहीं प्राप्त होती है।

हरि०–तपसा कृच्छ्रचान्द्रायणादिना।।११९।।

आहारसंयमक्लिष्टा यथेष्टाहारतुन्दिलाः ।
ब्रह्मज्ञानविहीनाश्चेन्निष्कृतिं ते व्रजन्ति किम् ।।१२०।।
वायुपर्णकणातोयव्रतिनो मोक्षभागिनः ।
सन्ति चेत् पन्नगा मुक्ताः पशुपक्षिजलेचराः ।।१२१।।

पद्मा–मनुष्य आहारसंयम कर चाहे कष्ट उठाए अथवा यथेष्ट भोजन कर अपनी तोंद बढ़ाए अर्थात् मोटा ताजा बने, किन्तु ब्रह्मज्ञान के न होने से किसी प्रकार से उनकी मुक्ति नहीं होती है। जो मनुष्य केवल वायु, पत्ते, कण तथा जल पीकर ही व्रत धारण करते हैं यदि इन लोगों की मुक्ति हो जाए तो सर्प, पशु, पक्षी तथा जल में रहने वाले प्राणी भी मोक्ष के अधिकारी होंगे ।

हरि०–निष्कृतिम् निस्तारम् । व्रजन्ति प्राप्नुवन्ति ।।१२०-१२१।।

उत्तमो ब्रह्मसद्भावो ध्यानभावस्तु मध्यमः ।
स्तुतिर्जपोऽधमो भावो बहिः पूजाऽधमाधमा।।१२२।।

पद्मा–ब्रह्म ही सत्य है और सभी मिथ्या है। यही भाव श्रेष्ठ है। ध्यान का भाव मध्यम है। स्तुति और जप का भाव अधम है। बाह्य पूजा अधम से भी अधम है ।

हरि०–उत्तम इत्यादि। ब्रह्मैव सत् तद्भिन्नं सर्वमसदित्युत्तमो भाव:। उत्तमं भजनं भवतीत्येवमन्वय:। ध्यानभाव: ध्यानरूपं भजनम् ।।१२२।।

योगी जीवात्मनोरैक्यं पूजनं सेवकेशयो: ।
सर्वं ब्रह्मेति विदुषो न योगो न च पूजनम् ।।१२३।।
ब्रह्मज्ञानं परं ज्ञानं यस्य चित्ते विराजते ।
किं तस्य जपयज्ञाद्यैस्तपोभिर्नियमव्रतै: ।।१२४।।

पद्म–जीव तथा आत्मा के ऐक्य को "योग" कहते हैं। सेवक तथा ईश्वर के ऐक्य को पूजन कहते हैं। जिनको इस प्रकार का ज्ञान हो गया है कि ब्रह्म ही सब कुछ है उसके लिए योग और पूजा कुछ भी नहीं है। जिसके चित्त में परमज्ञान ब्रह्मज्ञान विराजमान है उसको जप, यज्ञ, तप, नियम, व्रतादि की कुछ भी आवश्यकता नहीं है ।

हरि०–योग इत्यादि। सर्व ब्रह्मैव भवतीति विदुषो जानतो जनस्य जीवात्मनोरैक्यमेव योगो भवति। सेवकेशयो: सेवकेश्वरयोरैक्यमेव पूजनं भवति। तद्भिन्नो योगो नास्ति। तद्भिन्नं पूजनमपि नास्ति तस्य।।१२३-१२४।।

सत्यं विज्ञानमानन्दमेकं ब्रह्मेति पश्यत: ।
स्वभावात् ब्रह्मभूतस्य किं पूजा ध्यानधारणा ।।१२५।।

पद्म–जो सर्वत्र सत्यस्वरूप, विज्ञानस्वरूप, आनन्दरूप, अद्वितीय ब्रह्म का साक्षात् कर लेता है, वह स्वभावत: ब्रह्मस्वरूप हो जाता है, उसके लिए पूजा, ध्यान तथा धारणा सभी कुछ निरर्थक है ।

हरि०–सत्यमित्यादि। विज्ञानं विज्ञानस्वरूपम्। एकम् अद्वैतम्। धारणा चित्तवृत्ति निरोध:।।१२५।।

न पापं नैव सुकृतं न स्वर्गो न पुनर्भव:।
नापि ध्येयो न वा ध्याता सर्वं ब्रह्मेति जानत:।।१२६।।

पद्म–"ब्रह्म ही सब कुछ है" ऐसा जानने वाले के लिए पाप, पुण्य, स्वर्ग, पुनर्जन्म ध्येय तथा ध्याता कुछ भी महत्त्व नहीं रखते हैं ।

हरि०–न पुनर्भव: न पुनरुत्पत्ति:।।१२६।।

अयमात्मा सदा मुक्तो निर्लिप्त: सर्ववस्तुषु ।
किं तस्य बन्धनं कस्मान्मुक्तिमिच्छन्ति दुर्धिय:।।१२७।।

पद्म–यह आत्मा सदैव ही मुक्त रहता है किसी भी वस्तु में लिप्त नहीं है। उसका बन्धन क्या है जिससे मुक्ति पाने की इच्छा दुर्बुद्धि लोग किया करते हैं ।

हरि०–निर्लिप्त: अनासक्त:।।१२७।।

स्वमायारचितं विश्वमवितर्क्यं सुरैरपि ।
स्वयं विराजते तत्र ह्यप्रविष्ट: प्रविष्टवत् ।।१२८।।

बहिरन्तर्यथाऽऽकाशं सर्वेषामेव वस्तुनाम् ।
तथैव भाति सद्रूपो ह्यात्मा साक्षी स्वरूपतः ।।१२९।।

पद्मा–इस जगत् की रचना ब्रह्मा की माया से हुई है। देवतागण भी इसके भेद को नहीं जान पाते हैं। इस जगत् में परम ब्रह्म प्रविष्ट न होकर भी प्रविष्ट जैसा विराजमान है। जिस प्रकार सभी वस्तुओं के भीतर एवं बाहर आकाश है उसी प्रकार सत्स्वरूप और साक्षीरूप आत्मा सर्वत्र स्वरूप से प्रकाशमान रहता है।।१२८-१२९।।

हरि०–नन्वात्मनो देहरूपं बन्धनमस्त्येव कथमुच्यते अयमात्मा सदामुक्त इत्यादि तत्राह स्वमायेत्यादि। अवितर्क्यन् अनूहनीयम् ।

न बाल्यमस्ति वृद्धत्वं नात्मनो यौवनं जनुः ।
सदैकरूपश्चिन्मात्रो विकारपरिवर्जितः ।।१३०।।

पद्मा–आत्मा का जन्म, बाल्यावस्था और वृद्धावस्था नहीं है। वह सदैव ही एक रूप, चिन्मय एवं विकार रहित हैं ।

हरि०–जनुः जन्म। आत्मनो बालेत्वादेरभावे हेतुमाह सदैकरूप इत्याद्यर्धेन।।१३०

जन्मयौवनवार्धक्यं देहस्यैव न चात्मनः ।
पश्यन्तोऽपि न पश्यन्ति मायाप्रावृतबुद्धयः ।।१३१।।

पद्मा–जन्म, यौवन तथा वृद्धावस्था–ये शरीर की अवस्थाएं है आत्मा मनुष्य की बुद्धि माया से मोहित होने के कारण वे इसे देखकर भी अनदेखा

हरि०–तर्हि कस्य जन्मादिकं भवति तत्राह जन्मेत्यादि।।१३१।।

यथा शरावतोयस्थं रविं पश्यत्यनेकधा ।
तथैव मायया देहे बहुधाऽऽत्मानमीक्षते ।।१३२।।

पद्मा–जिस प्रकार अनेक सरईयों (मिट्टी के बने प्यालानुमा पात्र) में स्थित जल में अनेक सूर्य दिखाई देते हैं, उसी प्रकार माया के प्रभाव से अनेक शरीरों में अनेक आत्माएं दिखाई देती हैं ।

हरि०–ननु तत्तदेहस्थित आत्मा नानारूपः प्रतीयते कथमुच्यते सदैकरूप इति तत्राह यथेत्यादि।।१३२।।

यथा सलिलचाञ्चल्यं मन्यन्ते तद्गते विधौ ।
तथैव बुद्धेश्चाञ्चल्यं पश्यन्त्यात्मन्य कोविदाः ।।१३३।।
घटस्थं यादृशं व्योम घटे भग्नेऽपि तादृशम् ।
नष्टे देहे तथैवात्मा समरूपो विराजते ।।१३४।।
आत्मज्ञानमिदं देवि! परं मोक्षैकसाधनम् ।
जानन्निहैव मुक्तः स्यात् सत्यं सत्यं न संशयः ।।१३५।।

न कर्मणा विमुक्तः स्यान्न सन्तत्या धनेन वा।
आत्मनाऽऽत्मानमाज्ञाया मुक्तो भवति मानवः।।१३६।।
प्रियो ह्यात्मैव सर्वेषां नात्मनोऽस्त्यपरं प्रियम्।
लोकेऽस्मिन्नात्मसम्बन्धात् भवन्त्यन्ये प्रियाः शिवे!।।१३७।।
ज्ञानं ज्ञेयं तथा ज्ञाता त्रितयं भाति मायया।
विचार्यमाणे त्रितये आत्मैवैकोऽवशिष्यते।।१३८।।
ज्ञानामात्मैव चिद्रूपो ज्ञेयमात्मैव चिन्मयः।
विज्ञाता स्वयमेवात्मा यो जानाति स आत्मवित्।।१३९।।
एतत्ते कथितं ज्ञानं साक्षान्निर्वाणकारणम्।
चतुर्विधावधूतानामेतदेव परं धनम्।।१४०।।

पद्मा–जिस प्रकार जल के चञ्चल होने पर उसमें पड़ा चन्द्रमा का प्रतिबिम्ब भी चञ्चल दिखाई देता है उसी प्रकार अज्ञानी मनुष्य भी बुद्धि की चञ्चलता को आत्मा में ही देखते हैं। जिस प्रकार घड़ा के टूट जाने पर भी उसका आकाश पहले की ही भाँति रहता है उसी प्रकार शरीर के नष्ट हो जाने पर भी आत्मा सदैव समभाव में स्थित रहती है। हे देवि! यह ब्रह्मज्ञान मोक्ष का परम कारण है जो इसे जानता है वह निःसन्देह रूप से इस लोक में ही जीवन्मुक्त हो जाता है इसमें सन्देह नहीं है। मनुष्य कर्म के द्वारा मुक्त नहीं होता, सन्तान उत्पन्न करने से मुक्त नहीं होता, धन के द्वारा भी मुक्त नहीं होता किन्तु अपने आप को जानने से ही मुक्ति प्राप्त हो जाती है। सभी प्राणियों को आत्मा ही परमप्रिय है। आत्मा से अधिक प्रिय अन्य कोई वस्तु नहीं है। हे शिवे! इस लोक में व्यक्ति अपने आत्मसम्बन्ध के कारण ही प्रिय होता है। ज्ञान, ज्ञेय तथा ज्ञाता यह तीनों माया से ही प्रतिभासित होते हैं। इन तीनों के तत्त्व का विचार करने पर एकमात्र आत्मा ही शेष रहती है। चिन्मय आत्मा ही ज्ञान, चिन्मय आत्मा ही जानने योग्य वस्तु है तथा स्वयं आत्मा ही ज्ञाता है। जो इसे जानता है, वहीं आत्मवित् है। यह मैंने तुमसे साक्षात् मोक्ष के कारणस्वरूप ज्ञान का उपदेश कहा। यही चार प्रकार के अवधूतों का परम धन है।

हरि०–तद्गते विधौ सलिलगते चन्द्रे। अकोविदाः अविद्वांसः॥१३३-१४०॥

श्रीदेव्युवाच

द्विविधावाश्रमौ प्रोक्तौ गार्हस्थो भैक्षुकस्तथा।
किमिदं श्रूयते चित्रमवधूताश्चतुर्विधाः।।१४१।।
श्रुत्वा वेदितुमिच्छामि तत्त्वतः कथय प्रभो।
चतुर्विधावधूतानां लक्षणं सविशेषतः।।१४२।।

पद्मा–श्री देवी ने कहा - आपने पहले गृहस्थ तथा भिक्षुक इन दो आश्रमों का वर्णन किया। अब आप अवधूत आश्रम चार प्रकार के कहते हो, इसी से मुझे आश्चर्य होता है

कि यह क्या है। हे प्रभो! चार प्रकार के अवधूतों के लक्षण यथार्थ रूप से कहिए। मैं उनको सुनकर उनका तत्त्व जानना चाहती हूँ।

हरि०–चतुर्विधानामवधूतानां लक्षणं विज्ञातुमिच्छन्ती श्रीदेव्युवाच द्विविधावित्यादि ॥१४१-१४२॥

श्रीसदाशिव उवाच

ब्रह्ममन्त्रोपासका ये ब्राह्मणक्षत्रियादयः।
गृहाश्रमे वसन्तोऽपि ज्ञेयास्ते यतयः प्रिये! ॥१४३॥
पूर्णाभिषेकविधिना संस्कृता ये च मानवाः।
शैवावधूतास्ते ज्ञेयाः पूजनीयाः कुलार्चिते! ॥१४४॥

पद्मा–हे प्रिये! जो ब्राह्मण, क्षत्रियादि ब्रह्ममन्त्र के उपासक हैं, वे गृहस्थाश्रम में रहते हुए भी पति जाने जाते हैं। हे कुलार्चिते! जो मनुष्य पूर्णाभिषेक की विधि से संस्कारित हुए हैं। वह सभी शैव अवधूत कहे गए हैं तथा सभी पूजनीय हैं।

हरि०–श्रीदेव्यैवं प्रार्थितः सन् श्रीसदाशिव उवाच ब्रह्ममन्त्रोपासका य इत्यादि ॥१४३-१४४॥

ब्राह्मावधूताः शैवाश्च स्वाश्रमाचारवर्तिनः।
विदध्युः सर्वकर्माणि मदुदीरितवर्त्मना ॥१४५॥
विना ब्रह्मार्पितं चैते तथा चक्रार्पितं विना।
निषिद्धमन्नं तोयञ्च न गृह्णीयुः कदाचन ॥१४६॥
ब्राह्मावधूतकौलानां कौलानामभिषेकिणाम्।
प्रागेव कथितो धर्म आचारश्च वरानने ॥१४७॥
स्नानं सन्ध्याऽशनं पानं दानं च दाररक्षणम्।
सर्वमागममार्गेण शैवब्राह्मावधूतयोः ॥१४८॥

पद्मा–ब्राह्मावधूत तथा शैवावधूत अपने आश्रम और आचार का पालन करते हुए मेरे कहे गए मार्ग पर चलकर समस्त कर्मों को करें। ब्राह्मावधूत ब्रह्म को अर्पित द्रव्य के अतिरिक्त अन्य कोई भी निषिद्ध अन्न तथा निषिद्ध जल कभी भी ग्रहण नहीं करते हैं। हे वरानने! ब्राह्मावधूत कौलों तथा अभिषिक्त कौलों के आचरण व धर्म को पहले ही कह चुका हूँ। स्नान, सन्ध्या, भोजन, पान, दान, स्त्रीरक्षा–इन समस्त कर्मों का अनुष्ठान शैवावधूत तथा ब्राह्मावधूत आगम के अनुसार करें।

हरि०–विदध्युः कुर्युः॥१४५-१४८॥

उक्तावधूतो द्विविधः पूर्णापूर्णविभेदतः।
पूर्णः परमहंसाख्यः परिव्राडपरः प्रिये! ॥१४९॥
कृतावधूतसंस्कारो यदि स्यात् ज्ञानदुर्बलः।
तदा लोकालये तिष्ठन्नात्मानं स तु शोधयेत् ॥१५०॥

रक्षन् स्वजातिचिह्नञ्च कुर्वन् कर्माणि कौलवत् ।
सदा ब्रह्मपरो भूत्वा साधयेत् ज्ञानमुत्तमम् ।।१५१।।
ओं तत्सन्मन्त्रमुच्चार्य सोऽहमस्मीति चिन्तयन् ।
कुर्यादात्मोचितं कर्म सदा वैराग्यमाश्रितः ।।१५२।।
कुर्वन् कर्माण्यनासक्तो नलिनीदलनीरवत् ।
यतेताऽऽत्मानमुद्धर्तुं तत्त्वज्ञानविवेकतः ।।१५३।।

पद्मा–हे प्रिये:! यह शैव अवधूत तथा ब्राह्म अवधूत दो प्रकार के हैं - पूर्ण तथा अपूर्ण। पूर्ण शैव अवधूत तथा ब्राह्म अवधूत का नाम **परमहंस** है। जबकि अपूर्ण शैव अवधूत तथा ब्राह्म अवधूत को **परिव्राट्** कहते हैं। जो मनुष्य अवधूत संस्कार के द्वारा संस्कृत हुआ है वह यदि ज्ञान के विषय में दुर्बल है (अर्थात् उसमें अद्वैतभाव न उत्पन्न हुआ हो) तो वह लोकालय में रहकर आत्मशोधन करे, जिससे कि उसमें **एकमेवाद्वितीयं** का ज्ञान उत्पन्न हो। वह अपने जाति के चिह्न शिखा सूत्रादि की रक्षा करे। वह कौल के समान समस्त कर्मों का अनुष्ठान करता रहे तथा सदैव ब्रह्मनिष्ठ होकर ज्ञानसाधन करे। वह सदैव रागरहित होकर **'ॐ तत् सत्'** इस मन्त्र का उच्चारण करते हुए **'सोऽहमस्मि'** इस प्रकार चिन्तन कर अपने उपयोगी कर्मों का अनुष्ठान करे। वह कमलदल पर स्थित जल की भाँति अनासक्त हृदय से समस्त कर्मों को कर तत्त्वज्ञान के विचार द्वारा स्वयं का उद्धार करने का प्रयत्न करे ।

हरि०–अपर: अपूर्ण:।।१४९-१५३।।

ओं तत्सदिति मन्त्रेण यो यत् कर्म समाचरेत् ।
गृहस्थो वाऽप्युदासीनस्तस्याऽभीष्टाय तद् भवेत् ।।१५४।।
जपो होमः प्रतिष्ठा च संस्काराद्यखिलाः क्रियाः।
ओं तत्सन्मन्त्रनिष्पन्नाः सम्पूर्णाः स्युर्न संशयः ।।१५५।।
किमन्यैर्बहुभिर्मन्त्रैः किमन्यैर्भूरिसाधनैः ।
ब्राह्मेणानेन मन्त्रेण सर्वकर्माणि साधयेत् ।।१५६।।
सुखसाध्यमबाहुल्यं सम्पूर्णफलदायकम् ।
नास्त्येतस्मान्महामन्त्रादुपायान्तरमम्बिके ।।१५७।।

पद्मा–गृहस्थ हो अथवा उदासीन हो, **ॐ तत् सत्** इस मन्त्र के द्वारा जिस कार्य का अनुष्ठान करेगा। उसी के द्वारा वह कर्म अभीष्ट फलदायक होगा। जप, होम, प्रतिष्ठा, संस्कारादि समस्त कर्म **ॐ तत् सत्** मन्त्र द्वारा किए जाने पर ही पूर्ण होते हैं इसमें सन्देह नहीं है। अन्य बहुत से मन्त्रों तथा बहुत से साधनों की क्या आवश्यकता है? केवल **ॐ तत् सत्** मन्त्र द्वारा ही समस्त कर्मों को सम्पन्न करे। यह मन्त्र सुखपूर्वक सिद्ध हो जाता है। इसमें कोई अधिकता नहीं, फिर भी पूर्ण रूप से फल प्रदान करता है। हे अम्बिके! इस मन्त्र के बिना जीव की मुक्ति का दूसरा अन्य कोई उपाय नहीं है ।

हरि०—अथ ओं तत्सदिति मन्त्रस्य माहात्म्यमाह ओं तत्सदिति मन्त्रेणेत्यादिभिः। समाचरेत् कुर्यात्॥१५४-१५७॥

पुरः प्रदेशे देहे वा लिखित्वा धारयेदिमम् ।
गेहस्तस्य महातीर्थं देहः पुण्यमयो भवेत् ।।१५८।।
निगमागमतन्त्राणां सारात्सारतरो मनुः ।
ओं तत्सदिति देवेशि ! तवाग्रे सत्यमीरितम् ।।१५९।।
ब्रह्माविष्णुमहेशानां भित्त्वा तालु शिरः शिखाः ।
प्रादुर्भूतोऽयमों तत्सत् सर्वमन्त्रोत्तमोत्तमः ।।१६०।।

पद्मा—पुर के किसी अंश में अथवा शरीर के किसी अंश में ॐ तत् सत् मन्त्र लिखकर धारण करने से उसका घर महातीर्थ के समान और शरीर पुण्यमय हो जाता है। हे देवेशि! मैं तुमसे सत्य ही कहता हूँ कि ॐ तत् सत् मन्त्र निगम, आगम और समस्त तन्त्रों का सार है। समस्त मन्त्रों से भी अति उत्तम यह मन्त्र ब्रह्मा, विष्णु और शिव के तालु, मस्तक तथा ब्रह्मरन्ध्र को भेद कर उत्पन्न हुआ है ।

हरि०—इमम् ओं तत्सदिति मन्त्रम् ॥१५८-१६०॥

चतुर्विधानामन्नानामन्येषामपि वस्तुनाम् ।
मन्त्रान्यैः शोधनेनाऽलं स्याच्चेदेतेन शोधितम् ।।१६१।।
पश्यन् सर्वत्र सद्रूपं जपंस्तत्सन्महामनुम् ।
स्वेच्छाचारः शुद्धचित्तः स एव भुवि कौलराट् ।।१६२।।
जपादस्य भवेत् सिद्धो मुक्तः स्यादर्थचिन्तनात् ।
साक्षाद् ब्रह्मसमो देही सार्थमेनं जपन् मनुम् ।।१६३।।
त्रिपदोऽयं महामन्त्रः सर्वकारणकारणम् ।
साधनादस्य मन्त्रस्य भवेन्मृत्युञ्जयः स्वयम् ।।१६४।।
युग्मं युग्मपदं वापि प्रत्येकपदमेव वा ।
जप्त्वैतस्य महेशानि साधकः सिद्धिभाग् भवेत्।।१६५।।
शैवावधूतसंस्कारविधूताखिलकर्मणः ।
नापि दैवे न वा पित्रे नार्षे कृत्येऽधिकारिता ।।१६६।।
चतुर्णामवधूतानां तुरीयो हंस उच्यते ।
त्रयोऽन्ये योगभोगादया मुक्ताः सर्वे शिवोपमाः ।।१६७।।

पद्मा—यदि मन्त्र से चर्व्य, चोष्य, भक्ष्य, लेह्य—इन चतुर्विध अन्नों का अथवा अन्य वस्तु का शोधन किया जाय तो फिर किसी अन्य वैदिक अथवा तान्त्रिक मन्त्र से उसे शुद्ध करने की आवश्यकता नहीं रहती है। जो सर्वत्र सत्स्वरूप ब्रह्म को देखता है, जो ॐ तत् सत् मन्त्र का जप करता है, जिसका अन्तःकरण शुद्ध हो गया है, जो स्वेच्छाचारी है वही

पृथ्वी पर श्रेष्ठ कौल है। इस मन्त्र का जप करने से मनुष्य सिद्ध हो जाता है। इसके अर्थ (जिसमें सृष्टि स्थिति प्रलय होती है वह परब्रह्म ही नित्य है) का चिन्तन करने से मुक्ति प्राप्त होती है। जो मनुष्य इस मन्त्र के अर्थ का चिन्तन करते हुए इस मन्त्र का जप करता है, वह मानवशरीरधारी होते हुए भी साक्षात् ब्रह्म हो जाता है। यह त्रिपद महामन्त्र सभी कारणों का कारण है। इस मन्त्र का साधन करने से मनुष्य स्वयं मृत्युञ्जय हो जाता है। हे महेशानि! इस त्रिपद मन्त्र के दो-दो पद अथवा एक-एक पद का जप करने से साधक सिद्ध हो सकता है। जो मनुष्य शैवावधूत के संस्कार से संस्कृत हुए हैं उनको और कोई काम्यकर्म नहीं रहता है।इस लिए वह दैवकर्म, आर्ष कर्म अथवा पितृकर्म करने का अधिकारी नहीं है। चार प्रकार के अवधूतों में चौथा (पूर्ण ब्रह्मावधूत) को हंस कहते हैं। अन्य तीन प्रकार के अवधूत योग और भोग करते हैं। किन्तु चारों प्रकार के अवधूत मुक्त एवं शिवतुल्य होते हैं ।

हरि०–अश्नन् भुञ्जानः॥१६१-१६७॥

हंसो न कुर्यात् स्त्रीसङ्गं न वा धातुपरिग्रहम् ।
प्रारब्धमश्नन् विहरेन्निषेधविधिवर्जितः ॥१६८॥

पद्या–हंस (पूर्ण ब्राह्मावधूत) स्त्रीसङ्ग अथवा धातु (धन) ग्रहण नहीं कर सकता। वह विधि निषेध से रहित होकर प्रारब्ध भोग करने वाला बनकर विहार करता है ।

हरि०–अश्नन् भुञ्जानः ॥१६८॥

त्यजेत् स्वजातिचिह्नानि कर्माणि गृहमेधिनाम् ।
तुरीयो विचरेत् क्षौणी निःसङ्कल्पो निरुद्यमः ॥१६९॥

पद्या–यह चतुर्थ परमहंस अपनी जाति के चिह्न, शिखा, सूत्र, तिलक आदि का त्याग कर देता है तथा गृहस्थ के कर्म भी नहीं करता। वह संकल्परहित एवं उद्यमरहित होकर पृथ्वी पर विचरण करता है।

हरि०–गृहमेधिनाम् गृहस्थानाम् । निरुद्यमः आत्मशरीरनिर्वाहार्थ व्यापारशून्यः॥१६९॥

सदात्मभावसन्तुष्टः शोकमोहविवर्जितः ।
निर्निकेतस्तितिक्षुः स्यान्निःसङ्को निरुपद्रवः॥१७०॥
नाऽवर्ण भक्ष्यपेयानां न तस्य ध्यानधारणाः ।
मुक्तो विरक्तो निर्द्वन्द्वो हंसाचारपरो यतिः ॥१७१॥
इति ते कथितं देवि चतुर्णां कुलयोगिनाम् ।
लक्षणं सविशेषेण साधूनां मत्स्वरूपिणाम् ॥१७२॥

पद्या–वह सदैव आत्मभाव मे ही सन्तुष्ट रहता है। शोक मोह से रहित होता है। उसका रहने का कोई नियत स्थान नहीं होता है। वह तितिक्षायुक्त, शङ्काहीन तथा निरुपद्रव रहता है। वह किसी को भी भक्ष्य अथवा पेय द्रव्य प्रदान नहीं करता है। उसे ध्यान व धारण

नहीं करना होता है। वह मुक्त, विरक्त, निर्द्वन्द्व, हंसाचार-परायण और यति होता है। हे देवि! यह तुमसे चार प्रकार के कुलयोगियों के लक्षण भली-भाँति से कहे। **भावः चिन्तनम् । निर्निकेतः नियतसतत वासशून्यः । तितिक्षुः सहनशीलः ।**

हरि०–सदातत्येत्यादि। भावः चिन्तनम् । निर्निकेतः नियतसतत वासशून्यः। तितिक्षु सहनशीलः॥१७०-१७२॥

एतेषां दर्शनात् स्पर्शादालापात् परितोषणात् ।
सर्वतीर्थफलावाप्तिर्जायते मनुजन्मनाम् ।।१७३।।
पृथिव्यां यानि तीर्थानि पुण्यक्षेत्राणि यानि च ।
कुलसंन्यासिनां देहे सन्ति तानि सदा प्रिये! ।।१७४।।

पद्मा–इन कुलयोगियों का दर्शन करने, स्पर्श करने, इनके साथ वार्तालाप करने अथवा इनको सन्तुष्ट करने से मनुष्यों को सभी तीर्थों के दर्शन का फल प्राप्त होता है। हे प्रिये ! पृथ्वी में ही जितने तीर्थ और पुण्यक्षेत्र हैं, वह सभी कुलसन्यासी के शरीर में सदैव विद्यमान रहते हैं ।

हरि०–अथावधूतानां माहात्म्यमाह एतेषामित्यादिभिः॥१७३-१७४॥

ते धन्यास्ते कृतार्थाश्च ते पुण्यास्ते कृताध्वराः।
यैरर्चिताः कुलद्रव्यैर्मानवैः कुलसाधवः ।।१७५।।
अशुचिर्याति शुचितामस्पृश्यः स्पृश्यतामियात् ।
अभक्ष्यमपि भक्ष्यं स्यात् येषां संस्पर्शमात्रतः।।१७६।।

पद्मा–जो मनुष्य कुलसाधुओं का पूजन कुलद्रव्य के द्वारा करते हैं, वे धन्य हैं, कृतार्थ हैं, पुण्यवान हैं, उन्हें सभी यज्ञों का फल प्राप्त होता है। कुलयोगियों के स्पर्श करने से अपवित्र मनुष्य भी पवित्र हो जाता है, अस्पृश्य मनुष्य भी स्पृश्य होता है। अभक्ष्य वस्तु भी भक्ष्य हो जाती है ।

हरि०–कुलद्रव्यैः मद्यादिभिः॥१७५-१७६॥

किराताः पापिनः क्रूराः पुलिन्दा यवनाः खसाः ।
शुद्धयन्ति येषां संस्पर्शात्तान् विना कोऽन्यमर्चयेत् ।।१७७।।

पद्मा–जिस कुलयोगी के स्पर्श से किरात, पापी, क्रूर, पुलिन्द, यवन तथा खास भी पवित्र हो जाते हैं उसे छोड़कर अन्य किसकी पूजा करनी चाहिए।

हरि०–पुलिन्दाः चाण्डालविशेषाः। खसाः सङ्कर जातिविशेषाः। यदुक्तम्-
झल्ली मल्लश्च राजन्यो व्रात्यो लिच्छविरेव च ।
नटश्च करणश्चैव खसो द्राविड एव च ॥ इति ॥१७७॥

कुलतत्त्वैः कुलद्रव्यैः कौलिकान् कुलयोगिनः ।
येऽर्चयन्ति सकृद्भक्त्या तेऽपि पूज्या महीतले ।।१७८।।

कौलधर्मात् परो धर्मो नास्त्येव कमलानने ।
अन्त्यजोऽपि यमाश्रित्य पूतः कौलपदं व्रजेत् ।।१७९।।
करिपादे विलीयन्ते सर्व प्राणिपदा यथा ।
कुलधर्मे निमज्जन्ति सर्वे धर्मास्तथा प्रिये ।।१८०।।
अहो पुण्यतमाः कौलास्तीर्थरूपाः स्वयं प्रिये ।
ये पुनन्त्यात्मसम्बन्धान् म्लेच्छश्वपचपामरान् ।।१८१।।
गङ्गायां पतितम्भांसि यान्ति गाङ्गेयतां यथा ।
कुलाचारे विशन्तोऽपि सर्वे गच्छन्ति कौलताम्।।१८२।।
यथाऽवर्णवगतं वारि न पृथग्भावमाप्नुयात् ।
तथा कुलाम्बुधौ मग्ना न भवेयुर्जनाः पृथक् ।।१८३।।
विप्राद्यन्त्यजपर्यन्तां द्विपदायेऽत्र भूतले ।
ते सर्वेऽस्मिन् कुलाचारे भवेयुरधिकारिणः ।।१८४।।
आहूताः कुलधर्मेऽस्मिन् ये भवन्ति पराङ्मुखाः।
सर्वधर्मपरिभ्रष्टास्ते गच्छन्त्यधमां गतिम् ।।१८५।।
प्रार्थयन्ति कुलाचारं ये केचिदपि मानवाः ।
तान् वञ्चयन् कुलीनोऽपि रौरवं नरकं व्रजेत् ।।१८६।।

पद्मा–जो मनुष्य कुलयोगियों और कौलगणों की पूजा एक बार भी कुलतत्त्व (मांसादि) एवं कुलद्रव्यों (मद्यादि) से करता है, वह स्वयं भी पृथ्वी में क्योंकि अन्त्यज मनुष्य भी इस धर्म का आश्रय लेकर पवित्र होकर कौलपद को प्राप्त करता है। हे प्रिये! जिस प्रकार समस्त प्राणियों के पदचिह्न हाथी के पदचिह्न में लीन हो जाते हैं, उसी प्रकार सभी धर्म कुलधर्म में लीन हो जाते हैं। हे प्रिये ! स्वंय तीर्थस्वरूप कौलगण पवित्रतम है इसमें आश्चर्य ही क्या है। वे अपने सम्पर्क से म्लेच्छ, श्वपच और पापियों को भी पवित्र बना देते हैं। जिस प्रकार गंगाजल में गिरा अन्य जल भी गंगाजल में परिवर्तित हो जाता है। वैसे ही कुलाचार से प्रविष्ट समस्त जातियों के मनुष्य कौल बन जाते हैं। जिस प्रकार समुद्र में गया जल अलग नहीं होता, उसी प्रकार कुलसागर में मग्न मनुष्य भी पृथक नहीं हो सकता। इस भूलोक में ब्राह्मण से अन्त्यज तक जितने दो पैर वाले मनुष्य हैं, वे सभी कुलाचार के अधिकारी हैं। जो कुलधर्म में बुलाये जाने पर भी नहीं आते, वह सभी धर्मों से पतित होकर अधोगति को प्राप्त होता है। जो मनुष्य कौलाचार के लिए प्रार्थना करते हैं उन्हें यदि कोई कौल ठगे तो वह निश्चित रूप से रौरव नरक में जाता है ।

हरि०–कुलतत्त्वैः मांसादिभिः कुलद्रव्यैः मद्यैः।।१७८-१८६।।

चाण्डालं यवनं नीचं मत्वा स्त्रियमवज्ञया ।
कौलं न कुर्यात् यः कौलः सोऽधर्मो यात्यधोगतिम्।।१८७।।

शताभिषेकात् यत् पुण्यं पुरश्चर्याशतैरपि ।
तस्मात् कोटिगुणं पुण्यमेकस्मिन् कौलिके कृते ।।१८८।।
ये ये वर्णाः क्षितौ सन्ति यद्यद्धर्ममुपाश्रिताः ।
कौला भवन्तस्ते पाशैर्मुक्ता यान्ति परं पदम् ।।१८९।।
शैवधर्माश्रिताः कौलाः तीर्थरूपाः शिवात्मकाः ।
स्नेहेन श्रद्धया प्रेम्णा पूज्या मान्याः परस्परम् ।।१९०।।
बहुनाऽत्र किमुक्तेन तवाग्रे सत्यमुच्यते ।
भवाब्धितरणे सेतुः कुलधर्मो हि नापरः ।।१९१।।
छिद्यन्ते संशयाः सर्वे क्षीयन्ते पापसञ्चयाः ।
दह्यन्ते संशयाः सर्वे क्षीयन्ते पापसञ्चयाः ।
दह्यन्ते कर्मजालानि कुलधर्मनिषेवणात् ।।१९२।।
सत्यव्रता ब्रह्मनिष्ठाः कृपयाऽऽहूय मानवान् ।
पावयन्ति कुलाचारैस्ते ज्ञेयाः कौलिकोत्तमाः ।।१९३।।
इति ते कथितं देवि सर्वधर्मविनिर्णयम् ।
महानिर्वाणतन्त्रस्य पूर्वार्धं लोकपावनम् ।।१९४।।

पद्मा–यदि कोई कौलपुरुष किसी कौलधर्म के चाहने वाले को स्त्री, नीच, यवन, चाण्डाल जानकर उसकी अवज्ञा कर उसे कौल नहीं बनाता, तो वह कौलों में अधम माना जाता है और अन्त में उसकी नीच गति होती है। एक सौ अभिषेकों का पुण्य एक व्यक्ति को कौल बनाने से प्राप्त होता है । भूलोक में जितने वर्ण हैं और जितने प्रकार के धर्मावलम्बीपुरुष हैं, उनमें जो कौल होते हैं वे ही पाशमुक्त होकर परमपद को प्राप्त करते हैं। शैवधर्म का आश्रय लेने वाला कौल साक्षात् शिवस्वरूप और तीर्थस्वरूप हैं। स्नेह, श्रद्धा और प्रेम द्वारा वे एक दूसरे का पूजन सम्मान करते हैं । मैं अब अधिक क्या कहूँ, तुमसे सत्य ही कहता हूँ कि इस संसार सागर से पार होने के लिए कुलधर्म ही एकमात्र सेतु है। इसके अतिरिक्त संसारसागर से पार होने के लिए अन्य कोई उपाय नहीं है। कुलधर्म के सेवन से सभी संशय कट जाते हैं समस्त पाप नष्ट हो जाते हैं और कर्मसमूह जल जाते हैं। जो सत्यव्रती और ब्रह्मनिष्ठ हैं वे कृपावश मनुष्यों को बुलाकर कुलाचार से पवित्र करते हैं। वे ही सभी महात्मा श्रेष्ठ कौलिक कहे जाते हैं। हे देवि ! यह मैंने तुमसे लोकपावन सर्वधर्म निर्णायक **महानिर्वाणतन्त्र** का पूर्वार्द्ध कहा है ।

हरि०–अवज्ञया तिरस्क्रियया ।।१८७-१९४।।

य इदं शृणुयान्नित्यं श्रावयेद्वापि मानवान् ।
सर्वपापविनिर्मुक्तः सोऽन्ते निर्वाणमाप्नुयात् ।।१९५।।
सर्वागमानां तन्त्राणां सारात्सारं परात्परम् ।
तन्त्रराजमिदं ज्ञात्वा जायते सर्वशास्त्रवित् ।।१९६।।

किन्तस्य तीर्थभ्रमणैः किं यज्ञैर्जपसाधनैः ।
जानन्नेतन्महातन्त्रं कर्मपाशैर्विमुच्यते ।।१९७।।
स विज्ञः सर्वशास्त्रेषु सर्वधर्मविदां वरः ।
स ज्ञानी ब्रह्मवित् साधुर्य एतद्वेत्ति कालिके ।।१९८।।
अलं वेदैः पुराणैश्च स्मृतिभिः संहितादिभिः ।
किमन्यैर्बहुभिस्तन्त्रैर्ज्ञात्वेदं सर्वविद्भवेत् ।।१९९।।
आसीद गुह्यतमं यन्मे साधनं ज्ञानमुत्तमम् ।
तव प्रश्नेन तन्त्रेऽस्मिंस्तत् सर्वं सुप्रकाशितम् ।।२००।।
यथा त्वं ब्रह्मणः शक्तिर्मम प्राणाधिका परा ।
महानिर्वाणतन्त्रं मे तथा जानीहि सुव्रते ! ।।२०१।।

पद्मा–जो इसे ध्यानूपर्वक सुनता है अथवा अन्य मनुष्यों को सुनाता है, वह समस्त पापों से मुक्त होकर अन्त में मोक्ष को प्राप्त करता है। समस्त आगामों और समस्त तन्त्रों में श्रेष्ठ एवं सारात्सार इस तन्त्रराज को जानकर मनुष्य समस्त शास्त्रों का ज्ञाता होता है, वही समस्त धर्मज्ञजनों के मध्य श्रेष्ठ है, वहीं साधु, ज्ञानी और ब्रह्म को जानने वाला है। वेद, पुराण, स्मृति, संहिता और बहुत से तन्त्र जानने की उसे क्या आवश्यकता? केवल इसी महानिर्वाण तन्त्र के ज्ञान से ही वह सर्वज्ञ हो जाता है। जो साधन और उत्तम ज्ञान अत्यन्त ही गोपनीय थे, उन्हें मैंने तुम्हारे प्रश्नों के अनुसार इस महानिर्वाण तन्त्र में सुन्दर रूप से प्रकाशित किया है। सुव्रते ! तुम जैसे ब्रह्मशक्ति हो एवं मेरे लिए प्राणों से भी अधिक प्रिय हो उसी प्रकार से इस महानिर्वाणतन्त्र को भी जानो ।

हरि०–अथ महानिर्वाणतन्त्रस्य माहत्म्यमभिधत्ते य इदं शृणुयान्नित्ययित्यादिभिः ॥१९५-२०१॥

यथा नगेषु हिमवान् तारकासु यथा शशी ।
भास्वांस्तेजःसु तन्त्रेषु तन्त्रराजमिदं तथा ।।२०२।।
सर्वधर्ममयं तन्त्र ब्रह्मज्ञानैकसाधनम् ।
पठित्वा पाठयित्वाऽपि ब्रह्मज्ञानी भवेन्नरः ।।२०३।।
विद्यते यस्य भवने सर्वतन्त्रोत्तमोत्तमम् ।
न तस्य वंशे देवेशि पशुर्भवति कर्हिचित् ।।२०४।।
अज्ञानतिमिरान्धोऽपि मूर्खः कर्मजडोऽपि वा ।
शृण्वन्नेतन्महातन्त्रं कर्मबन्धाद्विमुच्यते ।।२०५।।
एतत्तन्त्रस्य पठनं श्रवणं पूजनं तथा ।
वन्दनं परमेशानि नृणां कैवल्यदायकम् ।।२०६।।
उक्तं बहुविधं तन्त्रमेकैकाख्यानसंयुतम् ।
सर्वधर्मान्वितं तन्त्रं नातः परतरं क्वचित् ।।२०७।।

पातालचक्रं भूचक्रज्योतिश्चक्रसमन्वितम् ।
परार्धमस्य यो वेत्ति स सर्वज्ञो न संशयः ।।२०८।।
परार्धसहितं ग्रन्थमेनं जानन्नरो भवेत् ।
त्रिकालवार्ता त्रैलोक्यवृत्तान्तं कथितुं क्षमः ।।२०९।।
सन्ति तन्त्राणि बहुधा शास्त्राणि विविधान्यपि ।
महानिर्वाणतन्त्रस्य कलां नार्हन्ति षोडशीम् ।।२१०।।
महानिर्वाणतन्त्रस्य माहात्म्यं किं ब्रवीमि ते ।
विदित्वैतन्महातन्त्रं ब्रह्मनिर्वाणमाप्नुयात् ।।२११।।

इति श्रीमहानिर्वाणतन्त्रे सर्वतन्त्रोत्तमोत्तमे सर्वधर्मनिर्णयसारे श्रीमदाद्यासदाशिवसंवादे पूर्वकाण्डे शिवलिङ्गस्थापनचतुर्विधावधूतविवरणकथनं नाम चतुर्दशोल्लासः।।१४।।

।। समाप्तोऽयं पूर्वार्धः।।

पद्या–जिस प्रकार समस्त पर्वतों में हिमालय, नक्षत्रों में चन्द्रमा, तेजस्वी, पदार्थों में सूर्यश्रेष्ठ है, वैसे ही तन्त्रों में यह तन्त्रराज श्रेष्ठ है। यह तन्त्र सर्वधर्ममय है। ब्रह्मज्ञान का एकमात्र साधक है । जो इस तंत्र को पढ़ेगा तथा पढ़ाएगा, वह ब्रह्मज्ञानी हो जाएगा। हे देवेशि! समस्त तन्त्रों में श्रेष्ठ यह तंत्र जिसके भी घर में रखा जाएगा, उसके वंश में कोई पशु (पशु भाव का साधक) न होगा। जो अज्ञान से अन्धा, मूर्ख, क्रमसाधन के विषय में जड़ है, वह भी यदि इस तन्त्र को सुनेगा, वह कर्मपाश से छूट जाएगा। हे परमेशानि! इस महातन्त्रको पाठ करने या सुनने से, पूजा अथवा वन्दना करने से मनुष्य को कैवल्य की प्राप्ति होती है। एक-एक आख्यान से युक्त अनेक तन्त्र कहे हैं और सभी धर्मों से युक्त तन्त्र मैंने कहे हैं; किन्तु इससे श्रेष्ठ अन्य कोई तन्त्र नहीं है। इस महानिर्वाण तन्त्र के उत्तरार्द्ध में पाताल चक्र और ज्योतिश्चक्र से समन्वित भूचक्र दिया है। जो मनुष्य उस उत्तरार्द्ध को जानता है, वह सर्वज्ञ होता है इसमें सन्देह नहीं है। जो मनुष्य परार्द्ध के साथ इस महानिर्वाणतन्त्र को जानते हैं वह त्रिकालवार्ता और त्रैलोक्य वृत्तान्त का वर्णन करने में समर्थ होता है। अनेक प्रकार के तन्त्र हैं तथा अनेक प्रकार के शास्त्र भी है, किन्तु कोई भी शास्त्र या तन्त्र इस महानिर्वाणतंत्र के सोलहवें अंश में से एक अंश के भी समकक्ष नहीं है। मैं इस महानिर्वाणतन्त्र के माहात्म्य का क्या वर्णन करूँ? इस महातन्त्र का ज्ञान होने से ब्रह्मनिर्वाण प्राप्त होता है ।

।। इस प्रकार महानिर्वाणतन्त्र का पूर्वार्द्ध पूर्ण हुआ ।।

हरि०–तेज सु तेजस्विषु ॥२०२-२११॥

।। इति महानिर्वाणतन्त्रटीकायां चतुर्दशोल्लासः।।

परिशिष्ट-१

'सर्वोल्लास तंत्र' में 'महानिर्वाण तंत्र' के उद्धरण

श्री सर्वानन्दनाथ सोलहवीं शताब्दी में बंग देश के मेहारपीठ (जिला टिपरा बांग्लादेश) के दशमहाविद्यासिद्ध सिद्ध महापुरुष हुए हैं। इनका ग्रन्थ 'सर्वोल्लासतन्त्र' एक अत्यन्त ही उपयोगी तन्त्र का संग्रह ग्रंथ है। इसके छन्ने, ५८वें तथा ५९ वें उल्लास में महानिर्वाण तंत्र के उद्धरण प्राप्त होते हैं, जो प्रकाशित महानिर्वाण तन्त्र में उपलब्ध नहीं होते हैं। संभव है कि महानिर्वाण तन्त्र के उत्तरकाण्ड (जो कि अब उपलब्ध नहीं है) में यह अंश रहे हों। साधकों एवं पाठकों के लाभ हेतु उन अंशों को यहाँ उद्धृत किया जा रहा है।

१ उल्लास ६ लय प्रकरण

श्रीशिव उवाच

महाकाली परात्मा च चणकाकाररूपिणी ।
मायाच्छादितात्मानं तन्मध्ये समभावतः ।।१।।
महारुद्रः स एवात्मा महाविष्णुः स एव हि ।
महाब्रह्म स एवात्मा नाममात्रविभेदकः ।।२।।
एकमूर्तिस्त्रिनामानि ब्रह्मविष्णु महेश्वराः ।
नानाभावमानो यस्य तस्य मुक्तिर्न विद्यते ।।३।।
ब्रह्माण्डास्तत्र जायन्ते लक्ष लक्षं सुलोचने ।
तत्र ब्रह्मा तत्र विष्णुस्तत्र रुद्रः प्रविन्यसेत् ।।४।।
केचिद् वदन्ति स ब्रह्मा केचिद् विष्णु प्रकथ्यते ।
केचिद् वदन्ति रुद्रः स एको देवो निरञ्जनः ।।५।।
आद्याशक्तियुक्तो देवश्चणकाकाररूपकः ।
आनन्दघनसंयुक्त प्रभुः प्रकृतिरूपधृक् ।।६।।
निर्गुणस्यालयः साक्षान्महाकाल्यालयः प्रिये ।
तत्रैव वर्तते नित्यश्चणकाकाररूपकः ।।७।।
तस्य रूपपरं नित्यं परानन्दपरात्परं ।
नित्यानन्दकरा देवि कालिका दक्षिणे स्थिता ।।८।।
आद्याशक्तिर्महामाया देवनिर्माणकारिणी ।
जायते च क्षितौ वृक्षौ यथा पृथ्व्यां प्रलीयते ।।९।।

तोयात् तु बुद्बुदं जातं यथ तोये प्रलीयते ।
जलदे तड़िदुत्पत्तिर्यथा मेघ प्रलीयते ।
जलदे तडिदुत्पत्तिर्यथा मेघे प्रलीयमते ।।१०।।
तथा ब्रह्मादयो देवाः कालिकायां प्रजायते ।
प्रलयकाले तु पुनस्तस्यां प्रलीयते ।।११।।
शक्तिज्ञानं विना देवि! मुक्तिर्हास्याय कल्प्यते ।
एकांशेन भवेद् ब्रह्मा एकांशेन जनार्दनः ।।१२।।
एकांशेन भवेच्छम्भुः कालिकायाः सुलोचने!।
अपरा सा महाकाली नद्यादीनां समुद्रवत् ।।१३।।
गोष्पदे च यथा तोयं ब्रह्माद्या देवतास्तथा ।
गोष्पदे किं विजानीयात् समुद्रस्य जलं शिवे।।१४।।
तेन ब्रह्मा न जानाति विष्णुः किं वेत्ति शङ्करः।
सृष्टिकर्त्र्या यदा काल्या पाल्यन्ते च सुरादयः।।१५।।
तदा प्रलयकाले तु पुनस्तस्यां प्रलीयते ।
अतो निर्वाणदा काली पुरुषस्य च शर्मदा ।।१६।।
चणकाकाररूपेण प्रकाशं चं मनोमयं ।
यथा सूर्यो जगद् भाति ज्ञेयं च चणकं तथा।।१७।।
एका शक्तिर्द्विधा भूत्वा मध्ये पुरुष भाषितं ।
पुनः प्रलीनकालेऽपि द्विधैकं पुंसगोपितं ।।१८।।
नित्यानित्यद्विधैकात्मा द्विधा भावाश्रिताः पुमान्।
नित्यानित्यं यदैकात्मा तदैकं ब्रह्मविग्रहं ।।१९।।

उल्लास १८

हंसबीजमाहात्म्यं

श्री देव्युवाच

देवेश ! प्राणनाथेश ! त्रिगुण! त्रिगुणात्मक ।
अधुना हंसबीजस्य माहात्म्यं कथय प्रिय! ।।१।।

श्रीशिव उवाच

हंसबीजस्य माहात्म्यं गदितुं नैव शक्यते ।
तव स्नेहेन बद्धोऽहं किञ्चिद्भावं प्रकाशितम् ।।२।।

देवालयं भवेद् देहं हंसेन मनुना शिवे! ।
हंसबीजं समाश्रित्य देही देहे सदा स्थितः ।।३।।
हकारः शङ्करश्चैव सकारः शक्तिरीरितः ।
शिवशक्त्यात्मकं मन्त्रमजपेति प्रकीर्तितं ।।४।।
षट्शतानि दिवारात्रौ सहस्त्राण्येकविंशतिः ।
अजपा नाम गायत्रीं जीवो जपति सर्वदा ।।५।।

श्रीपार्वत्युवाच

शिवशक्त्यात्मकं मन्त्रं जीवो जपति सर्वदा ।
प्रजपेत् केन मूलं च सोऽहं केन विचिन्तयेत् ।।६।।

श्री शिव उवाच

कुम्भकं स्याद हंकारेण सः कारेणापि रेचनं ।
कुम्भकेऽपि जपेन्मन्त्रं प्रत्येके प्रत्येकाक्षरं ।।७।।

उल्लास ११

ध्यानत्रयस्य माहात्म्यं

श्री शिव उवाच

स्वदेहे पूजयेद् देवं नान्यदेहे कदाचन ।
स्वगेहे पायसं त्यक्त्वा भिक्षामटति दुर्मतिः ।।१।।
स्थूलध्यानान्महादेवस्तेजोध्यानाद्धि शङ्करी ।
सूक्ष्मध्यानाद् भवेन्मुक्तिराङ्कारं तत्र संभवं ।।२।।
भिन्नदेहं शिवं शक्तिं तेजोध्यानमभेदकं ।
शिवशक्त्यात्मकं सूक्ष्मं ॐ तत् सद व्यापितं जगत् ।।३।।
विन्दुत्रयं नादयुग्मं विन्दुयुग्मं च नादकं ।
विन्दुमेकं नादयुग्मं ॐकार ब्रह्मबोधकं ।।४।।
कुण्डलिन्यंकुशाकारा विन्दुरूपः सदाशिवः ।
अङ्कमात्रं महादेवि ! शिवशक्तिप्रबोधकं ।।५।।
विन्दुद्वयं विना देवि ! किञ्चिन्मात्रं न जायते ।
वामे च परमा शक्तिर्दक्षिणे परमः शिवः ।।६
शिवशक्त्यात्मकं ब्रह्म वाचातीतं सुनिर्मलं ।
तकारं शङ्करं ज्ञेयं तकारं पुंस्त्वविग्रहं ।।७।।

ब्रह्मबोधमयं देवि! तत् शब्दं शक्तिगोपितं ।
विन्दुयुग्मं नादमेकं तकारं ब्रह्मबोधकं ।।८।।
तत्शब्दं परमेशानि! ॐकारस्यापि बोधकं ।
विना स्वरेण देवेशि ! व्यञ्जनं नैव तिष्ठति ।।९।।
तद् वर्णं सकलं बोधं भावरूपं प्रकाशितम् ।
सकारः शङ्करी श्रेया तकारो नादरूपकः ।।१०।।
शक्तिब्रह्ममयं ज्ञानं सत् शब्दं भावबोधकं ।
व्यञ्जनं पुरुषं ज्ञेयं स्वरं ज्ञेयं च शङ्करीं ।।११।।
शिवशक्त्यात्मकं ब्रह्म सतशब्देनापि भाषितम् ।
सकारं च तकारं च पुरुषं परमेश्वरि ! ।।१२।।
शक्तिज्ञानं मध्यलुप्तं अकारं शब्दबोधकम् ।
पञ्चनादं सप्तविन्दुमेकाङ्कं परमेश्वरि! ।।१३।।
एतैर्युक्तं सकारं हि त्रिवकारं प्रकाशितम् ।
सत्वं रजस्तमश्चैव त्रिवकारेण भाषितम् ।।१४।।
पञ्चनादं पञ्चतत्त्वं विन्दुस्वर्ग विभूषितम् ।
त्रिगुणाक्तं त्रिकोनं च प्रतिकोणं त्रयान्वितम् ।।१५।।
कोणमात्रे विन्दुमात्रं मध्ये नादं महेश्वरि ! ।
सर्ववर्णक्रममिदमङ्कं ज्ञेयं शिवोपरि ।।१६।।
विन्दुद्वयं विना भद्रे ! अङ्कमात्रं न जायते ।
नादविन्दुन्दङ्कयुङ्वर्ण ब्रह्मज्ञानस्य कारणम् ।।१७।।
तत् शब्दं ज्ञेयं सत्शब्द सर्वभावप्रकाशितम् ।
तत्सत ज्ञेयं ब्रह्मबीजं ॐकारऽ भ्रूव प्रकाशितम् ।।१८।।
ॐकाराद् जायते सर्वं ॐकारे च प्रतीयते ।
सृष्टिबीजं हि ॐकारं लयबीजं त्रिलोचने ।।१९।।
हंसबीजात् समुद्भूतं भावं भावातीतं ध्रुवं ।
दक्षिणानां च वामानां सिद्धान्तानां महेश्वरि ! ।।२०।।
हंसः सोऽहं च नाहं च भेदाभेदात्मनात्मकं ।
कालानां चैव दिव्यानां भावातीतं हि केवलम् ।।२१।।

परिशिष्ट- २

अथ दिव्यवीरपशुभावाः

भावचूडामणौ

देव्युवाच

भावस्तु त्रिविधो देव दिव्यवीरपशुक्रमात् ।
गुरवस्त्रिविधाश्चात्र तथैव मन्त्रदेवताः ।।१।।
शक्तिमन्त्रो महादेव ! विशेषान्मन्त्रसिद्धिदः ।
आद्यभावो महादेव ! श्रेयान् सर्वसमृद्धिदः ।।२।।
द्वितीयो मध्यमश्चैव तृतीयः सर्वनिन्दितः ।

सर्वनिन्दित इति ब्राह्मणेतरविषयः ब्राह्मणस्य । तु पशुभावान्य श्रयणे निन्दाश्रवणात् ।

तथा-

लक्षजापात् तथा होमाद् कायक्लेशादिविस्तरैः ।।३।।
न भावेन विना देव ! तन्त्रमन्त्राः फलप्रदाः ।
किं वीरसाधनेनैव विश्वदृष्टि कुलाकुलैः ।।४।।
किं पीठपूजनेनैव किं कन्याभोजनादिभिः ।
स्वयोषित्प्रीतिदानेन किं परेषां तथैव च ।।५।।
किं जितेन्द्रियभावेन किं कुलाचारकर्मणा ।
यदि भावविशुद्धात्मा न स्यात् कुलपरायणः ।।६।।
भावेन लभते मुक्तिं भावेन कुलवर्धनम् ।
भावेन कुलवृद्धिः स्याद्भावेन कुलशोभनम् ।।७।।
किं न्यासविस्तरेणैव किं तत्तच्छुद्धिविस्तरैः ।
किं तथा पूजनेनैव यदि भावो न जायते ।।८।।
केन वा पूज्यते विद्या न चेत् केन न जप्यते ।
फलाभावश्च देवेश ! भावाभावात् प्रजायते ।।९।।

तथा-

प्रथमो, दिव्यभावस्तु कथ्यते शृणु सादरम् ।
यद्गुणदिवता यत्र तत्तेजः पुञ्जपूरितम् ।।१०।।

तेजोमयं जगत् सर्वं विभाव्य मूर्तिकल्पनम् ।
तत्तन्मूर्तिमय मन्त्रे स्वेन स्वेनैव वा पुनः ।।११।।
आत्मानं तन्मयं दृष्ट्वा सर्वभावं तथैव च ।
तत्सर्वं योषिति ध्यात्वा चिन्तयेद्यतमानसः ।।१२।।
अशेषकुलसम्पन्ना नानाजातिसमुद्भवा ।
नानादेशोद्भवा वाऽपि गुणलावण्यसंप्रेता ।।१३।।
द्वितीयवत्सरादूर्ध्वं यावत् स्यादष्टमाब्दकम् ।
तावत् कुमारी विज्ञेया मन्त्रयन्त्रफलप्रदा ।।१४।।
कुमारीपूजनाच्चैव कुमारीभोजनादपि ।
एकद्वित्र्यादिबीजानां फलदा नात्र संशयः ।।१५।।
ताभ्य पुष्पं फल वाऽपि अनुलेपादिकं तथा ।
वलिप्रियं च नैवेद्यं दत्वा तद्भावपूरितः ।।१६।।
दत्वा तदङ्ग आत्मानं वलिभावे विचेष्टितम् ।
ताभिः प्रायः कथालापं क्रीड़ाकौतूहलादिकम् ।।१७।।
यथातथं तत्प्रियकृत् कृत्वा सिद्धीश्वरो भवेत् ।
तस्मात् षोडशपर्यन्तं युवतीति प्रवक्ष्यते ।।१८।।
तत्र भावप्रकाशश्चेत् सद्भावः परमो यतः ।
रक्षितव्याः प्रयत्नेन अक्षतास्ता न कारयेत् ।।१९।।
एष ते कथितो देव! दिव्यभावः सुखावहः ।
न देयो यस्य कस्यापि पशोर्गोप्यः प्रयत्नतः ।।२०।।

॥ इति दिव्याभावः ॥

अथ वीरभावस्तत्रैव

देव्युवाच

वीरभावो महादेव ! कथ्यते शृणु भैरव! ।
निर्द्वन्द्वमानसो भूत्वा हृदा कामकला तनुः ।।१।।
निशासु पूजा प्रवरा हेतुयुक्ता तथैव हि ।
निजं कुलं समाधाय स्वयं भैरवरूपधृक ।।२।।
कुलं च भैरवीरूपं तद्गात्रे न्यासविस्तरम् ।
विन्यसेत् केवलं न्यासं नवयोन्यात्मकं तथा ।।३।।

नवयोन्यात्मकमिति श्रीविद्यापरम् ।

प्रसूनतूलिकामध्ये पुष्पप्रकारसंयुते ।
नानागन्धसमाकीर्णे कुलद्रव्येण यन्त्रकम् ।।४।।
लिखित्वा पूजयेच्छक्तौ घटस्थापनपूर्वकम् ।
स्ववामभागे षट्कोणं तन्मध्ये ब्रह्मरन्ध्रकम् ।।५।।
लिखित्वा तत्र कुम्भं वै सौवर्णं राजतं तथा ।
ताम्रं भूमिमयं वाऽपि महालोहविवर्जितम् ।।६।।
स्थापयेत् कलशाधारं कुम्भं सुगन्धिवासितम् ।
हेतुद्रव्यं ब्राह्मणादिभेदतः संप्रपूरयेत् ।।७।।

ब्राह्मणादिभेदत इति क्षीराज्यमध्वासवरूपं ब्राह्मणादिभिः पूरणीयमित्यर्थः । एवं च वीरब्राह्मणस्य हेतुस्थाने क्षीरमेव च । पशोस्तु तदपि नेति बोध्यम् ।

तत्र यन्त्रं विलिख्यादौ पद्यात् कुलसमुद्भवम् ।
ध्यात्वेष्टदेवतां तत्र जपेदष्टोत्तरं शतम् ।।८।।
धेनुयोनी प्रदर्श्याथ प्रसृतं तद्विचेष्टितम् ।
दृष्ट्वामृतं स्वपात्रे वै नृत्यन्ति योगिनीगणाः ।।९।।
नृत्यन्ति भैरवाः सर्वे नृत्यन्ति मातरोऽपि च ।
इन्द्रादयः सुराः सर्वे नृत्यन्ति मधुलोलुपाः ।।१०।।
ब्रह्माविष्णुमहेशाद्या नृत्यन्ति हर्षतत्पराः ।
अर्घभाण्डं त्रिधा कृत्वा गुरवे चैकभागकम् ।।११।।
एवं कुलाय वै दत्त्वा एकेन देवतर्पणम् ।
पीत्वा कुलरसं नानावस्त्रालङ्कारभूषणम् ।।१२।।
साक्षाद्यदि गुरुर्न स्यात् तदा तोये विसर्जयेत् ।
आनन्दरूपवान् भूत्वा पूजयेत् परमेश्वरीम् ।।१३।।
तत्तत्कल्पविधानेन तत्तद्यत्नेन पूजयेत् ।
विसर्जनं विधायान्ते स्वकुले योजयेत् ततः ।।१४।।
तद्बिम्बरसपानेन अमृतं भक्ष्यते मया ।
तच्चकोरस्सास्वादे सम्मदो मम जायते ।।१५।।
तत्फलग्रहणादेव मेरुशृङ्गावरोहणाम् ।
लतालिङ्गनमात्रेण सुधाधौतकलेवरः ।।१६।।
मूलयोगे कृते तत्र जपेदष्टसहस्रकम् ।
नित्यजाप्ये च होमे च यत्र सङ्ख्या न चोदिता ।।१७।।

तत्रेयं गणना प्रोक्ता अष्टोत्तरसहस्रकम् ।
जलपूतं हविर्द्रव्यं गृहीत्वा तर्पयेत् ततः ।।१८।।
विधाय तर्पणं देव। प्रदक्षिणमनुव्रजेत् ।
स्तुत्वा प्रणम्य कल्पोक्तस्तवेन स्तावयेत् ततः ।।१९
इति वीरकुलं देव ! देववन्द्यं मनोहरम् ।

कालीकल्पे

रात्रौ पर्यटनं चैव रात्रौ शक्तिं प्रपूजयेत् ।।२०।।
अकृत्वा कथमीशान! मद्भक्तः कौलिको भवेत्।

मेरुतन्त्रे

कुलं तु गोपयेद्देवि ! नारिकेलरसाम्बुवत् ।।२१।।
गुरुं प्रकाशयेद्धीमान् मन्त्रं यत्नेन गोपयेत् ।

कुलार्णवे

वेदशास्त्रपुराणानि स्पष्टा वेश्याङ्गना इव ।।२२।।
इयं तु शाम्भवी विद्या गुप्ता कुलवधूरिव ।
सुगुप्तं कौलिकाचारमनुगृह्णन्ति देवताः ।।२३।।
वाञ्छासिद्धिं प्रयच्छन्ति नाशयन्ति प्रकाशनात् ।

मेरौ

न दिवा सेवयेन्नारीं तद्योनिं न निरीक्षयेत् ।।२४।।
स्त्रियं शतापराधां वा पुष्पेणापि न ताडयेत् ।
दोषान् न गणयेत् स्त्रीणां गुणानेव प्रकाशयेत् ।।२५।।

तथा–

कन्या कुमारिका नग्ना उन्मत्ता अपि योषितः ।
न निन्देत् जुगुप्सेत् न हसेन्नावमानयेत् ।।२६।।
एकवृक्षं श्मशानं च समूहं योषितामपि ।
नारी च रक्तवसनां दृष्ट्वा वन्देत भक्तितः ।।२७।।

तथा-

तिष्ठन्ति कुलयोगिन्यः कुलवृक्षेषु सर्वदा ।
तत्पत्रेषु न भोक्तव्यमर्कपत्रे विशेषतः ।।२८।।
न स्वपेत् कुलवृक्षाधो न चोपद्रवमाचरेत् ।
दृष्ट्वा भक्त्या नमस्कुर्याच्छेदयेन्नक कदाचन ।।२९।।

श्लेष्मान्तककरञ्जार्कनिम्बाश्वत्थकदम्बकाः ।
विल्वो-वटोऽदुम्बरश्च चिञ्चा चेति दश स्मृताः ॥३०॥
प्रायश्चित्तं भृगोः पातं संन्यासं व्रतधारणम् ।
तीर्थयात्राभिगमनं कौलः पञ्च विवर्जयेत् ॥३१॥

प्रायश्चित्तादिकं तन्त्रोक्तभिन्नम् ।

रौद्रे

वीरभावं महेशानि ! सर्वथा न प्रकाशयेत् ।

वीर चूड़ामणौ

पूजाकाले महेशानि! यदि कोऽप्यत्र गच्छति ॥३२॥
दर्शयेद्वैष्णवीं मुद्रां विष्णुन्यासं तथा स्तवम् ।
अन्तः शाक्ता बहिः शैवा सभायां वैष्णवा मताः॥३३॥
नानारूपधरा वीरा विचरन्ति महीतले ।

भावचूड़ामणौ

यद्देशे विद्यते वीरस्तत्कुलं वाऽपि भैरव ॥३४॥
न च मारीभयं तत्र न च राजभयादिकम् ।
सुमङ्गलं सदा तत्र धनपुत्रविवर्धनम् ॥३५॥
लक्ष्मीस्तत्र महादेव! सुस्थिरा भवति ध्रुवम् ।
मन्त्रः स्वप्नप्रबोधिन्या अवश्यं वृक्षमूलके ॥३६॥
योजनीयः प्रयत्नेन न च विघ्नं प्रजायते ।
नान्यवीरस्य तद्योग्यं ग्रहणैर्दैवतैरपि ॥३७॥
योगिनीभिर्न लुप्तं च तत्र पापेन लिप्यते ।
यत्र तत्र कुजे वारे श्मशानगमने कृते ॥३८॥
पूजाफलं भवेत् तत्र सप्तवासरसम्मितम् ।
चतुर्दश्यां गते तत्र पक्षपूजाफलं भवेत् ॥३९॥
न गच्छेन्नार्यतः स्थाने पशुरेव न संशयः ।
नास्त्यस्मादधिकं देव इति चिन्तापरायणः ॥४०॥
मदने द्रव्यभोक्ता च भवेत् कुलपरायणः ।
साधके क्षोभमापन्ने मम क्षोभः प्रजायते ॥४१॥
तस्माद्यत्नाद्वीरवरो भवेद्भोगयुतः सुखी ।
भोगेन मोक्षमाप्नोति भोगेन कुलसाधनम् ॥४२॥

विना हेतुमनास्वाद्य क्षोभयुक्तो महेश्वर !।
न पूजा मम संपर्क न ध्यानमनुचिन्तनम् ।।४३।।
तस्माद्भुक्त्वा च पीत्वा च पूजयेत् परमेश्वरीम् ।
नात्र प्रच्युतिदोषोऽस्ति नापरं दोषभूषणम् ।।४४।।
यद्यद्ददति निद्राति यत् करोति यदर्चति ।
तत्सर्वं कुलरूपं च ध्यात्वा च विहरेत् सुखी ।।४५।।
एकाकी निर्जने देशे श्मशाने पर्वते वने ।
शून्यगेहे नदीतीरे निःसङ्गो विहरेन्मुदा ।।४६।।
वीराणां जपकालस्तु सर्वकालः प्रशस्यते ।
सर्वदेशे सर्वपीठे कर्तव्यं च न संशयः ।।४७।।
यदि विप्रो भवेद्भ्रष्टः कुलधर्मपरायणः ।
तदा तेन विधानेन कर्तव्यं कुलतोषणम् ।।४८।।
अपरापुष्पगर्भे तु कुलस्थानं मनोहरम् ।
सर्वदेवमुखं तत्र महाकामकलात्मकम् ।।४९।।
हयारिकुसुमे देवः स्वयमस्ति सदाशिवः ।
तन्मध्ये लघुमादाय पुष्पमध्ये तु चन्दनम् ।।५०।।
रक्तं वा कुसुमं दत्वा ध्यात्वाऽऽत्मानं शिवात्मकम् ।
योजयेच्छिवशक्त्योस्तु ऐक्यं संभावयेद्धिया ।।५१।।
क्षणं विचिन्त्य तत्रैव संपूज्य परमेश्वरीम् ।
जप्त्वा तदेव कुण्डाख्यं द्रव्यं परमदुर्लभम् ।।५२।।
यत्रापराजितापुष्पं जपापुष्पं च भैरव ! ।
करवीरे रक्तशुक्ले द्रोणपुष्पं च तिष्ठति ।।५३।।
तत्र देवी वसेन्नित्यं तद्यन्तो पूजयेन्मम् ।
दत्ते चैव जपापुष्पे पट्टवस्त्रफलं लभेत् ।।५४।।
ब्रह्महत्यादिकं पापं क्षणान्नश्यति निश्चितम् ।
अपरायास्तु माहात्म्यं वक्तुं न हि महेश्वरः ।।५५।।
वीरसाधनकार्यं च कर्त्तव्यं वीरपूरुषैः ।
दिव्यैरपि च कर्त्तव्यं पशुभिर्न च पामरैः ।।५६।।
वरं पामरकार्यं च न पशोरिति निश्चितम् ।
यद्यत्र मत् पुरा प्रोक्तं संकेतं मन्त्रसाधने ।।५७।।
अञ्जनं गुटिकादिं च कुर्याद्वीरो महाबलः ।
दिव्ये वीरे न भेदोऽस्ति यद्भेदं तत् तु कथ्यते ।।५८।।

शान्तो विनीतो मधुरः कलालावण्यसंयुतः ।
दिव्यस्तु देववत् प्रायो वीरश्चोद्धतमानसः ।।५९।।

कुलरत्नावल्याम्

दिव्यवीरौ सुरेशानि ! शक्तिसेवापरायणौ ।
वामिकौलिकभेदाभ्यां प्रत्येकं द्विविधौ स्मृतौ ।।६०।।

भावचूडामणौ

विभूतिभूषणैर्वाऽपि चन्दनैर्वा विलेपितः ।
आकारगोपनो वाऽपि त्यक्तो वा कुलभैरव ।।६१।।
रक्तचन्दनदिग्धो वा वैष्णवो वाऽप्यवैष्णवः ।
अपमाने तु पूजायां हृष्टः पुष्टः सदा भवेत् ।।६२।।
देवनिन्दापरो वाऽपि तत्र पूजापरोऽपि वा ।
पूजा च तत्तद्रहितः कुलाकुलमते स्थितः ।।६३।।
निजभावसमायुक्तो देववद्विहरेत् क्षितौ ।
स्वकुलान्ते पुरश्चर्या कार्या रात्रौ न चान्यथा ।।६४।।
वेदहीने द्विजे देव यथा न श्रुति संकथा ।
विष्णुभक्तिं विना देवीभक्तिर्न प्रभवेद्यथा ।।६५।।
शाक्तज्ञानं विना मुक्तौ यथा हास्याय कल्पते ।
गुरुं विना यथा तन्त्रे नाधिकारः कथंचन ।।६६।।
पतिहीना यथा नारी सर्वकर्मविवर्जिता ।
कुलं विना देवविधौ कदाऽपि मम साधने ।।६७।।
नाधिकारीति कौले यस्तस्माद्भावपरो भवेत् ।
अविनीतं कुलं यस्य स क कथं मम पूजकः ।।६८।।
तस्माद्यत्नात् तथा कार्यं यथा स्याद्विनयान्वितम् ।
भावाभावे कुलेशास्त्रे नाधिकारः कथंचन ।।६९।।
तेन भावविशुद्धश्च साधकः कौलिको भवेत् ।।७०।।

।। इति वीरभावक्रमः ।।

अथ पशुभावस्तत्रैव

देव्युवाच

पशुभावं प्रवक्ष्यामि शृणु वत्स समाहितः ।
यथाविधि पशोर्विद्यां गृहीत्वा भावतत्परः ।।१।।

प्रथमं पूर्वसेवार्थं यत्नतः शुद्धिमाचरेत् ।
नमस्य भोजनं कुर्यान् न स्त्रियं मनसा स्मरेत् ।।२।।
न परद्रव्यलोभी स्यान्न भोगे मानसं भजेत ।
सिन्धुतीरे पर्वते वा कानने च सुरालये ।।३।।
विल्वमूले विविक्ते च पुण्यक्षेत्रे च शोभने ।
न शूद्रदर्शनं कुर्यात् कौटिल्यं यत्नतस्त्यजेत् ।।४।।
देवता शुभवर्णा तु ध्यातव्या सुसमाहितैः ।
त्रिसन्ध्यं देवपूजा तु त्रिसन्ध्यं जपमाचरेत् ।।५।।
रात्रौ मन्त्रं च मालाश्च स्पृशेन्नैव कदाचन् ।
न मन्त्रमुच्चरेद्धुक्त्वा मौनी स्यात् सर्वकर्मसु ।।६।।
पर्वकाले स्त्रियं नैव गच्छेत् साधकसत्तमः ।
पुष्पं गन्धं जल चैव स्वयमानीय पूजयेत् ।।७।।
मैथुनं तत्कथालापं तदगोष्ठीं परिवर्जयेत् ।
ऋतुकालं विना चापि न गच्छेत् स्त्रियमादरात् ।।८।।
पुराणश्रवणे श्रद्धा वेदवेदार्थतत्परः ।
न रात्रौ भोजयेद्विद्वान् ताम्बूलं परमेश्वर ।।९।।
गुरुणा यद्यदादिष्टं तत्सर्वं यत्नतश्चरेत् ।
स्वजातकुसुमं चैव हेतुद्रव्यं च भैरव ।।१०।।
स्पृष्ट्वा तथा समाघ्राय पञ्चगव्येन शुध्यति ।
रक्तवस्त्रं न गृह्णीयाद्देवीभक्तिपरायणः ।।११।।
विष्णुतन्त्रेषु कल्याणि तदनुष्ठानमेव च ।
कार्यं वीरकथालापं न कुर्याद् वीरवन्दिते ।।१२।।
नित्यश्राद्धं गयाश्राद्धं सन्ध्यावन्दनमेव च ।
तीर्थस्नानं पीठदेशगमनं धर्मतत्परः ।।१३।।

मेरुतन्त्रे

देवस्थाने गुरुस्थाने श्मशाने च चतुष्पथे ।
पादुकासनविण्मूत्रमैथुनानि विवर्जयेत् ।।१४।।
प्रमत्तामन्त्यजां कन्यां पुष्पितां पतितस्तनीम् ।
विरूपां वा मुक्तकेशीं कामार्त्तां च न निन्दयेत् ।।१५।।
कन्यायोनौ पशुक्रीडा दिग्वस्त्रां प्रकटस्तनीम् ।
नालोकयेत् परद्रव्यं परदारांश्च वर्जयेत् ।।१६।।

धान्यगोगुरुदेवाग्निकुशपुस्तकसंमुखम् ।।
नैव प्रसारयेत् पादौ न चैतानि विलङ्घयेत् ।।१७।।
आलस्यमदसंमोहशापपैशून्याविग्रहान् ।
असूयामात्मसन्मानं परिनिन्दाश्च वर्जयेत् ।।१८।।

भावचूड़ामणौ

भावस्तु मानसो धर्मः शब्दः स हि कथं भवेत् ।
तस्माद् भावो न वक्तव्योदिङ्मात्रं समुदाहृतम् ।।१९।।
यथेक्षुगुडमाधुर्यमशनैर्ज्ञायते प्रभो ! ।
तथा भावविभावस्तु मनसा परिभाव्यते ।।२०।।

तन्त्रान्तरे-

उत्तमो दिव्यभावः स्याद्वीरभावस्तु मध्यमः ।
पशुभावोऽवरः प्रोक्तो भावमेकं समाश्रयेत् ।।२१।।

।। इति पशुभाव क्रमः ।।

परिशिष्ट- ३

श्मशानकाल्याः वैरिहरं कवचम्

श्रीगणेशाय नमः

कैलाशशिखरारूढं शङ्करं वरदं शिवम् ।
देवी पप्रच्छ सर्वज्ञं सर्वदेवमहेश्वरम् ।।१।।

देव्युवाच

भगवन् ! सर्वदेवेश! देवानां भोगद प्रभो ! ।
प्रब्रूहि मे महादेव ! यद्यपि च प्रभो ! ।।२।।
शत्रूणां येन नाशः स्यादात्मनो रक्षणं भवेत् ।।
परमैश्वर्यमतुलं लभेद येन हि तद् वद ।।३।।

भैरव उवाच

वक्ष्यामि ते महादेवि ! सर्वधर्मविदां वरे ! ।
अद्भुतं कवचं देव्याः सर्वकामप्रसाधकम् ।।४।।
विशेषतः शत्रुनाशकरं रक्षाकरं नृणाम् ।
सर्वारिष्टप्रशमनमतिचारविनाशनम् ।।५।।
सुखदं भोगदं चैव वशीकरणमुत्तमम् ।
शत्रुसंघाः क्षयं यन्ति भवन्ति व्याधि पीडिताः।।६।।
दुःखिनो ज्वरिणश्चैव स्वाभीष्टप्रच्युतास्तथा ।
ध्यायेत् कालीं महामायां त्रिनेत्रां बहुरूपिणीम् ।।१७।।

अस्य श्रीकालिकाकवचस्य भैरव ऋषिः अनुष्टुप छन्दः, श्रीकालिकादेवता शत्रुसंघनाशे विनियोगः।

चतुर्भुजां लोलजिह्वां पूर्णचन्द्रनिभाननाम् ।
नीलोत्पलदलप्रख्यां[1] शत्रुशंघविदारिणीम् ।।८।।
नरमुण्डं तथा खड्गं कमलं च वरं तथा[2] ।
बिभ्राणां रक्तवसनां दंष्ट्राली घोररूपिणीम् ।।९।।
अट्टाहासनिरतां सर्वदा च दिगम्बराम् ।
शवासनस्थितां देवीं मुण्डमालाविभूषिताम् ।।१०।।

---

१. प्रक्ष्याम् २. करवालं वरं तथा

इति ध्यात्वा महोदवीं पुनस्तु कवचं पठेत् ।
ओं कालिका घोररूपाढ्या सर्वकामप्रदा शुभा ।।११।।
सर्वतः संस्तुतः[१] देवी शत्रुनाशं करोतु सा ।
ह्रीं ह्रीं स्वरूपिणी चैव ह्रां ह्रां ह्रूं रूपिणी तथा[२] ।।१२।।
ह्रां ह्रां क्षौं क्षौं स्वरूपा सा सदा शत्रून् प्रशास्तु मे ।
श्रीं ह्रीं रीं रूपिणी देवीं भवबन्धविमोचनी ।।१३।।
ह स क ह ल ह्रीं स्वरूपासौ रिपून् सा हनु सर्वदा ।
यथा शुम्भो हतो दैत्यो निशुम्भश्च महासुरः ।।१४।।
वैरिनाशाय वन्दे तां कालिकां शङ्करप्रियाम् ।
ब्राह्मी शैवी वैष्णवी च वाराही नारसिंहिका ।।१५।।
कौमार्यैन्द्री च चामुण्डा खादयन्तु मम द्विषः ।
सुरेश्वरी घोररूपा चण्डमुण्डविनाशिनी ।।१६।।
मुण्डमालावृत्ताङ्गी च सर्वतः पातु मां सदा ।
ह्रीं ह्रीं कालिके ! घोरद्रंष्ट्रे ! रुधिरप्रिये ! ।

रुधिरवक्त्रे रुधिरावृत्तस्तनि ममामुकशत्रुं खादय खादय, छेदय छेदय, हिंसय हिंसय, मारय मारय, भिन्धि भिन्धि, छिन्धि छिन्धि उच्चाटयोच्चाट्य शोषय शोषय, द्रावय द्रावय स्वाहा ।

एंरीं कालिकायै मदीयशत्रून् समर्पयामि स्वाहा ।

जय जय किरि किरि किटि किटि कट्ट कट्ट मर्दय मर्दय मोहय मोहय हर हर मम रिपून् ध्वंस ध्वंस भक्ष भक्ष त्रोटय त्रोटय यातुधानि चामुण्डे सर्वजनान् राज्ञो राजपुरुषान् स्त्रियो मम वश्याः कुरु कुरु तनु तनु धान्यं धनमश्वान् गजानत्रानि दिव्यकामिनीः पुत्रान् राजप्रियं देहि देहि यच्छ यच्छ क्षां क्षीं क्षूं क्षैं क्षौं क्षः स्वाहा ।

इत्येतत् कवचं दिव्यं कथितं शम्भुना पुरा ।।१७।।
ये पठन्ति सदा तेषां ध्रुवं नश्यन्ति शत्रवः ।
वैरिणः प्रलयं यान्ति व्याधिताश्च भवन्ति हि ।।१८।।
धनहीनाः पुत्रहीनाः शत्रवस्तस्य सर्वदा ।
सहस्रपठनात् सिद्धिः कवचस्य भवेत्तदा ।।१९।।
ततः कार्याणि सिध्यन्ति तद्धि शङ्करभाषितम् ।
श्मशानाङ्गारमादाय चूर्णं कृत्वा प्रयत्नतः ।।२०।।

---

१. सर्वदेवस्तुता,
२. ओं ह्रां ह्रीं स्वरूपिणी चैव ह्रीं ह्रीं हूं स्वरूपिणी तथा इति पाठः।

पादोदकेन पिष्ट्वा च लिखेल्लोहशलाकया ।
भूमौ शत्रून् हीनरूपान् उत्तराशिरस्तथा ।।२१।।
हस्तं दत्त्वा तद्हृदये कवचं तु स्वयं पठेत् ।
शत्रोः प्राणप्रतिष्ठां च कुर्याद् मन्त्रेण मन्त्रवित् ।।२२।।
हन्यादस्त्रप्रहारेण शत्रुर्गच्छेद यमक्षयम् ।
ज्वलिताङ्गारतापेन ज्वरी भवति तादृशः ।।२३।।
प्रोञ्छनैर्वामपादेन दरिद्रो भवति ध्रुवम् ।
वैरिनाशकरं प्रोक्तं कवचं वश्यकारकम् ।।२४।।
परमैश्वर्यपदं चैव पुत्रपौत्रादिवृद्धिदम् ।
प्रभातसमये चैव पूजाकाले विशेषतः ।।२५।।
सायंकाले तथा पाठात् सर्वसिद्धिर्भवेद् ध्रुवम् ।
शत्रुरुच्चाटनं याति देशाच्च विच्युतो भवेत् ।।२६।।
पश्चात् किङ्करतामेति सत्यं सत्यं न संशयः ।
शत्रुनाशकरे देवि ! सर्वसम्पत्करे शुभे ! ।
सर्वदेवस्तुऽते देवि ! कालिके ! त्वां नमाम्यहम् ।।२७।।

।। इति श्रीरुद्रयामले वैरिहरं श्मशानकाल्याः कवचं सम्पूर्णम् ।।

भैरवतन्त्रोक्त
काल्याः जगन्मङ्गलम् कवचम्

भैरव्युवाच

कालीपूजा श्रुता नाथ! भावाश्च विविधाः प्रभो! ।
इदानीं श्रोतुमिच्छामि कवचं पूर्वसूचितम् ।।१।।
त्वमेव स्त्रष्टा पाता च संहर्ता च त्वमेव हि ।
त्वमेव शरणं नाथ! त्राहि मां दुःखसंकटात् ।।२।।

भैरव उवाच

रहस्यं शृणु वक्ष्यामि भैरवि! प्राणवल्लभे! ।
श्रीजगन्मङ्गलं नाम कवचं मन्त्रविग्रहम् ।।३।।
पठित्वा धारयित्वा वा त्रैलोक्यं मोहयेत् क्षणात् ।
नारायणोऽपि यद् धृत्वा नारीभूत्वा महेश्वरम् ।।४।।
योगेशं क्षोभमनयद् यद्धृत्वा च रघूद्वहः ।
वरदृप्तान् जघानैव रावणादिनिशाचरान् ।।५।।

यस्य प्रसादादादीशोऽहं त्रैलोक्यविजयी प्रभुः ।
धनाधिपः कुबेरोऽपि सुरेशोऽभूच्छचीपतिः ।।६।।
एवं हि सकला देवा सर्वसिद्धीश्वराः प्रिये! ।
श्रीजगन्मङ्गलस्यास्या कवचस्य ऋषिः शिवः ।।७।।
छन्दोऽनुष्टुब देवता च कालिका दक्षिणेरिता ।
जगतां मोहने दुष्टनिग्रहे भुक्तिमुक्तिषु ।।८।।
योषिदाकर्षणे चैव विनियोगः प्रकीर्तितः ।
शिरो मे कालिका पातु क्रींकारैकाक्षरी परा ।।९।।
क्रीं क्रीं क्रीं मे ललाटं च कालिका खड्गधारिणी ।
हुँ हुँ पातु नेत्रयुग्मं ह्रीं ह्रीं पातु श्रुती मम ।।१०।।
दक्षिणे कालिके पातु घ्राणयुग्मं महेश्वरी ।
क्रीं क्रीं रसना हुँ हुँ पातु कपोलकम् ।।११।।
वदनं सकल ह्रीं ह्रीं स्वाहास्वरूपिणी ।
द्वाविंशत्यक्षरा स्कन्धौ महाविद्या सुखप्रदा ।।१२।।
खड्गमुण्डधरा काली सर्वाङ्गमभितोऽवतु ।
क्रीं क्रीं हुं त्र्यक्षरा पातु चामुण्डञ्च हृदयं मम ।।१३।।
ऐं हूं ओं ऐं स्तनद्वन्द्वं ह्रीं फट्स्वाह ककुत्स्थलम् ।
अष्टाक्षरी महाविद्या भुजौ पातु सकर्तृका ।।१४।।
क्रीं क्रीं हूं हूं ह्रीं ह्रीं करौ पातु षडक्षरी मम ।
ओं ह्रीं क्रीं मे स्वाहा पातु कालिका जानुनी मम ।।१५।।
कालीहृन्नाम विद्येयं चतुर्वर्गफलप्रदा ।
क्रीं नाभिं मध्यदेशं च दाक्षिणे कालिकेऽवतु ।।१६।।
क्रीं स्वाहा पातु पृष्ठं तु कालिका सा दशाक्षरी ।
ह्रीं ह्रीं दक्षिणे कालिके ह्रीं हूं पातु कटी द्वयम् ।।१७।।
काली दशाक्षरी विद्या स्वाहा पातूरुयुग्मकम् ।
क्रीं हूं ह्रीं सा गुल्फं दक्षिणे कालिकेऽवतु ।।१८।।
क्रीं हूं ह्रीं स्वाहा पातु चतुर्दशाक्षरी मम ।
खड्गमुण्डधरा काली वरदाभयधारिणी ।।१९।।
विद्याभिः सकलाभिः सा सर्वाङ्गमभितोऽवतु ।
काली कपालिनी कुल्या कुरुकुल्या विरोधिनी ।।२०।।
विप्रचित्ता तथोग्रोग्रप्रभा दीप्ता घनत्त्विषः ।
नीला घना वलाका च मात्रा मुद्रा मिता च माम् ।।२१।।

23121
26.03.07

एताः सर्वाः खड्गधरा मुण्डमालाविभूषिताः ।
रक्षन्तु दिगविदिक्षु मां ब्राह्मी नारायणी तथा ।।२२।।
माहेश्वरी च चामुण्डा कौमारी चापराजिता ।
वाराही नारसिंही च सर्वाश्चामितभूषणाः ।।२३।।
रक्षन्तु स्वायुधैर्दिक्षु विदिक्षु मां यथा तथा ।
इति ते कथितं दिव्यं कवचं परमाद्भुतम् ।।२४।।
श्रीजगन्मङ्गलं नाम महामन्त्रौघविग्रहम् ।
त्रैलोक्यकर्षकं ब्रह्म कवचं मन्मुखोदितम् ।।२५।।
गुरुपूजां विधायाथ गृह्णीयात् कवचं ततः ।
कवचं त्रिःसकृद्वापि यावज्जीवं च वा पुनः ।।२६।।
एतच्छतार्धमावृत्य त्रैलोक्यविजयी भवेत् ।
त्रैलोक्यं क्षोभयेत्येव कवचस्य प्रसादतः ।।२७।।
महाकविर्भवेन्मासात् सर्वसिद्धीश्वरो भवेत् ।
पुष्पाञ्जलीन् कालिकायै मूलेनैव पठेत् सकृत् ।।२८।।
शतवर्षसहस्राणां पूजायाः फलमाप्नुयात् ।
भूर्ज्जे विलिखितश्चैतत् स्वर्णस्थं धारयेद् यदि ।।२९।।
शिखायां दक्षिणे बाहौ कण्ठे वा धारयेद् यदि ।
त्रैलोक्यं मोहयेत् क्रोधात् त्रैलोक्यं चूर्णयेद् क्षणात् ।।३०।।
पुत्रवान् धनवान् श्रीमान् नानाविद्यानिधिर्भवेत् ।
ब्रह्मास्त्रादीनि शस्त्राणि तद् गात्रस्पर्शनत्ततः ।।३१।।
नाशमायान्ति या नारी वन्ध्या वा मृतपुत्रिणी ।
कण्ठे वा वामबाहौ वा कवचस्य च धारणात् ।।३२।।
बह्वपतय जीववत्सा भवत्येव न संशयः ।
न देयं परशिष्येभ्यो ह्यभक्तेभ्यो विशेषतः ।।३३।।
शिष्येभ्यो भक्तियुक्तेभ्यश्चान्यथा मृत्युमाप्नुयात् ।
स्पर्द्धामुद्धूय कमला वाग्देवी तन्मन्दिरे वसेत् ।।३४।।
पौत्रान्तं स्थैर्यमास्थाय निवसत्येव निश्चितम् ।
इदं कवचमज्ञात्वा यो भजेत् कालिदक्षिणाम् ।।३५।।
शतलक्षं प्रजप्ता हि तस्य विद्या न सिध्यति ।
स शस्त्रघातमाप्नोति सोऽचिरान्मृत्युमाप्नुयात् ।।३६।।

।। इति भैरवतन्त्रे भैरवभैरवीसंवादे काल्याः कवचं सम्पूर्णम् ।।

हमारे महत्वपूर्ण प्रकाशन

कादम्बरी–आदितः शुकनासोपदेशान्तो भागः – डॉ० नर्मदेश्वर त्रिपाठी	१७०.००
अभिज्ञानशाकुन्तलम्–संस्कृत, हिन्दी व्याख्या सहित – डॉ० धुरन्धर पाण्डेय	१३०.००
सनत्सुजातीयदर्शनम्–संस्कृत, हिन्दी व्याख्या सहित – डॉ० धुरन्धर पाण्डेय	५०.००
तर्कसंग्रहसर्वस्वम् – कुरंगटि श्रीरामशास्त्री	१५०.००
पारिभाषिक-पदार्थ-संग्रह – कुरंगटि श्रीरामशास्त्री	१००.००
मीमांसा-तत्त्व-विवेक – श्रीश्यामसुन्दर शर्मा	१५०.००
श्रीरामचरितमहाकाव्यम् – डॉ छोटेलाल त्रिपाठी	४००.००
छन्दोलंकारसुधा – डॉ० प्रद्युम्न द्विवेदी	३५.००
पंचलक्षणीसर्वस्वम् – डॉ० विजय शर्मा	१५०.००
उदयनकथाश्रित संस्कृत रूपक समीक्षात्मक अध्ययन – डॉ० उषा वर्मा	४००.००
तर्कसंग्रह–'दीपिका' न्यायबोधिनी, सिद्धान्तचन्द्रोदय, पदकृत्य, प्रतिबिम्ब, सुबोधिनी, निरुक्ति, वाक्यवृत्ति, निरलासमन्वितः, ज्योत्स्नाख्याहिन्दीव्याख्या सहितश्च – श्रीनिवास शर्मा	२५०.००
पाणिनिव्याकरणे मूर्धन्यादेशविधानविमर्शः – अखिलेश शुक्ला	३००.००
प्रौढमनोरमा–अजन्तपुल्लिङ्गादि से स्त्रीप्रत्यन्त भागः-संस्कृत हिन्दी व्याख्या सहित – पं० द्वारिकाप्रसाद द्विवेदी (द्वितीय भाग)	३००.००
महापुराण-समकथा-कोश – डॉ० रमाशंकर त्रिपाठी	४००.००
नीतिशतक–संस्कृत, हिन्दी व्याख्या सहित – डॉ० प्रद्युम्न द्विवेदी	५०.००
काव्यप्रकाश–संस्कृत, हिन्दी व्याख्या सहित – डॉ० त्रिलोकीनाथ द्विवेदी	(यंत्रस्थ)
मार्कण्डेय महापुराणम् –भाषा टीका सहित	(यंत्रस्थ)
गरुड़ महापुराणम् –भाषा टीका सहित	(यंत्रस्थ)
अलंकार-शास्त्र में रस सिद्धान्त का विकास – देवनारायण शर्मा	(यंत्रस्थ)
वैयाकरणभूषणसार –संस्कृत हिन्दी व्याख्या सहित–आचार्य देवदत्तशर्मोपाध्याय	(यंत्रस्थ)

BHARATIYA VIDYA SANSTHAN

भारतीय विद्या संस्थान

प्रकाशक एवं पुस्तक विक्रेता

सी. 27/59, जगतगंज, वाराणसी-221002 (उ०प्र०)